॥ भूमिका ॥

जिस अनूठे भाषा काव्य के प्रथम भाग का यह तिल...... गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'राम चरित मानस' ऐसा नाम दिया है और उसके भागों को सोपान कहा है। परन्तु वाल्मीकि जी के संस्कृत महाकाव्य रामायण के अनुसार इसे भी लोग रामायण कहने लगे हैं और इसके सोपानों का 'कांड' ऐसा नाम भी उन्हीं के अनुसार पड़ गया है।

यह वाल्मीकीय रामायण का उल्था नहीं है क्योंकि इस में कथा भाग दूसरे ही प्रकार से अनोखी रीति पर वर्णन किया गया है और इस में अध्यात्म रामायण, भागवत, महाभारत, रघुवंश, कुमारसम्भव, उत्तर रामचरित, हनुमन्नाटक, महा रामायण आदि संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक कवियों की कविता के उत्तम विचार पाये जाते हैं। कहा भी है—नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि। इत्यादि।

हिन्दी साहित्य में तुलसीकृत रामायण से बढ़कर अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ नहीं है इस का प्रचार सब श्रेणियों के लोगों में किसी न किसी रूप से है। यथा—इस का उल्था उर्दू में मुन्शी कालिका प्रसाद लखनौ वाले ने 'रामायण खुशतर' के नाम से किया है। मराठी में भी यह अनुवाद सहित छप चुकी है। रामायण बंगाली में भी है। तुलसीकृत रामायण का तर्जुमा एफ़. एस. ग्रौसी एम. ए. सी. आई. ई. कलेक्टर ज़िला बुलन्दशहर ने अंग्रेजी में किया है।

यह ग्रन्थ धर्मनीति, समाजनीति और राजनीति युक्त सभी आर्ष ग्रन्थों के अनुसार सीधी सादी भाषा में इस प्रकार से उदाहरण के साथ पक्षपात रहित लिखा गया है कि शैव, शाक्त, स्मार्त्त, वैष्णव किसी के सिद्धान्तों से इस का विरोध नहीं पड़ता है तभी तो सभी इसका सन्मान करते हैं।

डाक्टर ग्रियर्सन साहब यों कहते हैं कि गोसाईं जी ने कबीर, नानक आदि की नाईं अपना कोई पंथ नहीं चलाया और इस प्रकार इसकी रचना की है कि किसी पंथ का हिन्दू इन के बताये हुए सन्मार्ग का अनुसरण करने में आगा पीछा न करेगा।

आज कल के हिन्दुओं के प्रसिद्ध प्रचलित धर्म के निमित्त यह पुस्तक बहुत ही विश्वसनीय मार्गदर्शिका है।

रामायण का प्रभाव प्रायः सारे भारत वर्ष पर है। इसकी कहावतें अपढ़, कुपढ़ और सुपढ़ सभी लोगों के कहने सुनने में आती हैं तभी तो केवल रामायण पढ़कर ही कई लोग ज्ञानी बन जाते हैं और विरक्त भी हो जाते हैं। धर्मशासन के लिये यह धर्मशास्त्र का काम देती है।

मुसल्मानी राज्य के पश्चात् हिन्दुओं के चरित्रों में सुधराव के निमित्त यह एक विशेष कारण हुई है।

विद्या प्रचार में भी इससे बहुत कुछ सहायता मिली है। सो यों कि लोग इसके पढ़ने ही के लिये हिन्दी लिखना पढ़ना सीखते हैं। इस ग्रन्थ का आदर और राजा सभी करते हैं।

सादी भाषा होने पर भी रामायण के भाव साधारण तथा गंभीर भी हैं। सभी लोग इसे पढ़कर प्राचीन सीधे भाव में मग्न रहते हैं, साधारण लोग साधारण भाव में और पंडित लोग अनेक अनूठे गंभीर और वेदान्ती विचारों में तल्लीन हो रहे हैं।

हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थ बहुधा कविताओं में लिखे गये हैं और उन की रचना ब्रजभाषा ही में की गई है, परन्तु तुलसीदास जी ने एक नई ही भाषा की सृष्टि की। जिसमें ब्रजभाषा, बैसवाड़ी, भोजपुरी, खड़ी बोली और उर्दू भी स्थान स्थान पर पाई जाती है। ऐसा करने से कवि को अपने भाव सरलता से प्रकट करने का सुभीता पड़ा है और इसी कारण से यह ग्रन्थ सर्व साधारण का मनोरंजक और आबाल वृद्ध वनिता सब को रुचि कर हो रहा है। वाल्मीकीय रामायण के अंग्रेजी कवितावद्ध रचना करने वाले ग्रिफिथ साहब ने लिखा है कि इंगलिस्तान के साधारण लोगों में बाइबिल का जितना आदर और प्रचार है उससे बढ़कर आदर और प्रचार पश्चिमोत्तर प्रान्त के हिन्दुओं में तुलसीकृत रामायण का है।

विद्वान रामायण के बारे में जो कुछ कहा गया है उसे अत्युक्ति न समझना चाहिये क्योंकि इस ग्रन्थ में अनेक उत्तम बातों का समावेश है और वे संक्षेप में यों हैं:

मनहर छन्द—राजन समाजन के काज लख्यो चाहौ जो पै, चाहहु जो देखन रहनि भाई भाई की
सभा माहिं बोलन त्यों छोटे औ बड़ेन हू की, चाहहु विलोकन सरदार रघुराई की।
जाँचन चहहु जो परख 'अध्यात्म' हू की, रस की सरस औ विरस सरलाई की
रीति चाहौ नीति चाहौ प्रीति जो पै चाहौ रहु 'विनायक' नौमि तुलसी गोसाईं की॥

कुण्डलिया—गाथा रामचरित्र की सांसारिक व्यौहार।
ईशभक्ति नृप गुरु भगति, मात पिता को प्यार॥
मात पिता को प्यार सत्यता की दृढ़ताई।
अटल तिया पतिप्रेम मित्र पर की चतुराई॥
कहत 'विनायक राव' भाइ भाई की साधा।
सेवक सेव्य सुप्रेम पूर्ण रघुनायक गाथा॥

बाल कांड सम्पूर्ण रामायण का प्रायः एक तिहाई भाग है। इस कांड में ३६१ दोहे हैं उनमें से १२० दोहे तक भूमिका ही है।

यों तो समस्त बालकांड की रचना उत्तम है परन्तु उस में भी वन्दना, मदन दहन, नारदमोह प्रताप भानु की कथा तथा रामजन्म छन्द, फुलवारी वर्णन और धनुषयज्ञ बहुत ही अद्भुत है। इतना सब होने पर भी इस धुरन्धर कवि ने अपने को दीन और हीन माना है।

रामायण की कथा किन ने किस से किस ढंग से कही, सो सब बालकांड पूर्वार्द्ध में पृ० १३३ की टिप्पणी में विस्तार सहित दी गई है।

इस तिलक का नाम श्री विनायकी टीका रखने का यह कारण है कि (विक्रमीय सम्वत् १९५४) मिती भादों सुदी विनायकी चतुर्थी को इसका आरम्भ किया गया था। सो यों कि मध्य प्रदेश के हिन्दी मिडिल स्कूल की दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों के निमित्त अरण्यकांड की टीका प्रथम लिखी गई थी। इस पर लोगों की विशेष रुचि देख एन्ट्रेन्स क्लास के विद्यार्थियों के निमित्त अयोध्या कांड की टीका लिखी गई। इसके पश्चात् रामायण के प्रेमियों से उत्साहित किये जाने पर किष्किन्धा और सुन्दरकांड की टीका [illegible] गई। तदनन्तर बालकांड की टीका तैयार की गई थी, परन्तु उस के छपने में सोल[illegible] से भी अधिक लगे।

इस टीका में नीचे लिखी बातों का समावेश है:—

(१) संस्कृत श्लोकों का शब्दार्थ अन्वय और अर्थ, कहीं २ भावार्थ गूढ़ार्थ सहित लिखा गया है और बहुधा यह भी दर्शाने का प्रयत्न किया गया है कि गोस्वामीजी ने उन्हें किस हेतु लिखे हैं।
(२) कठिन पद समूहों का अन्वय और उनके समाधान अनेक अर्थ प्रमाणों सहित।
(३) बहुतेरे शब्दों का शुद्ध रूप, बहुतेरों की धातु और बहुतेरों के पर्यायी शब्द।
(४) अर्थ, सरलार्थ, भावार्थ, अनेकार्थ आदि।
(५) उचित उपयोगी सूचनाएँ। (६) ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं का उल्लेख
(७) अनेक शङ्काएँ और उनके समाधान।
(८) भिन्न भिन्न पाठान्तर और उनके अर्थ उपयुक्त सूचनाओं सहित।
(९) कई उपयोगी बातों के स्मरणार्थ रचकर लिखी हुई कविता।
(१०) अनेक धुरन्धर प्राचीन और अर्वाचीन कवियों की काव्य रचनाएँ यथा योग्यस्थान पर टीका में पर विशेष कर टिप्पणियों में (श्लोक, दोहा, चौपाई, भजन, ग़ज़ल, कवित्त, कुंडलिया, छप्पय, सवैया, रेखता, लावनी, बरवा, आर्य्या, दोवई और वीरछन्द आदि कई प्रकार के छन्दों में) दी गई हैं।

(११) जन्मोत्सव के गीत, सोहरे, गारी और ज्योनारें।

(१२) इस कांड में उल्लिखित, देवगण, ऋषि, मुनि राजा, राक्षस, और गन्धर्व आदि के जीवन चरित्र।

(१३) पुरौनी में काव्य लक्षण, गण विचार, अर्थों के प्रकार, रस भेद, इस कांड की कविता का पिंगल विचार, राघव मत्स्य और गजेन्द्र तथा हरिहर की कथा, अँधेरे तथा उजेले पाख का विचार, ६४ कला, वर्ण मैत्री दग्धाक्षर दोष, भाव भेद, वाक्य दोष, काव्य गुण, अजामिल, गणिका और रावण के जीवन चरित्र, कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा के जीवन चरित्र, षोडश संस्कार और श्राद्ध का प्रकार तथा उदाहरणीय वृत्तान्त लिखी गई है।

(१४) छोटे २ क्षेपक तो टिप्पणियों में और बड़े बड़े क्षेपक पुरौनी में पृथक् दे दिये गये हैं इस अभिप्राय से कि वे तुलसीकृत नहीं हैं। अनेक कवियों के बनाये हुए हैं और उनकी भाषा तुलसी दास जी की भाषा से भिन्न है तथा उनकी योजना भी प्राय अनुचित है क्यों कि जिन विचारों को गोस्वामी जी दबाना चाहते थे। क्षेपक वालों ने उन्हें प्रकट करने में अपना गौरव माना है। कहीं कहीं बिल्कुल विरोध भी दर्शाकर दुर्दशा कर दी है। जैसे एक बड़े पराक्रमी दिग्विजयी योद्धा रावण को एक वृद्धा द्वारा टँगड़ी पकड़ कर आकाश में लेजाने के पश्चात् समुद्र में फिंकवा देना (आदि देखो पुरौनी पृ २८)

इस कांड में यन्त्रालय वालों की असावधानी के कारण पूर्वार्द्ध के ३०६ पृष्ठ, उत्तरार्द्ध के ३२० पृष्ठ और पुरौनी के ५६ पृष्ठ अलग २ दिये हैं, यथार्थ में सम्पूर्ण कांड के ७५५ पृष्ठ हैं।

टीकाकार की बनाई हुई कविताओं में कहीं नायक' कहीं 'विनायक' और कहीं पूरा नाम लिखा है। 'नायक' लिखने का कारण यह है कि जबलपुर की कविसमाज द्वारा टीकाकार को 'नायक' कवि की पदवी बसंत पंचमी के उत्सव में प्रदान की गई थी॥

सूचीपत्र।

बालकाण्ड पूर्वार्द्ध

उत्तरार्द्ध ।

॥ पुरौनी ॥

श्री विनायकी टीका पर सम्मतियां।

(१) समालोचना

श्री युत बाबू जगन्नाथ प्रसाद जी (भानु कवि) असिस्टेंट सेटिलमेंट आफ़ीसर मध्यप्रदेश ने ऐसी अनूठी रीति से समालोचना की है कि उन्हों ने अपने ही व्यय से उसे कवितावद्ध सुनहरी अक्षरों में छपवाकर वितरण की है ऐसे शुभचिन्तक, परोपकारी, विद्यानुरागी महाशय को न धन्यवाद दिये बिना और न उनकी समालोचना प्रकाशित किये बिना रहा जाता है।

ढुंढलिया-रामायण टीका करी, बहु जन बुद्धि उदार।
तिन महँ लसी विनायकी, टीकन की सरदार॥
टीकन की सरदार, सार सरलार्थ सुनावे।
पिंगल छन्द प्रबन्ध अलंकृत भावहि जो पै॥
दीपै 'भानु' प्रकाश, ज्ञान सब साधन सामा।
सरस सुखद सब जनन, रामसिय गुण अभिरामा॥

—— :o: ——

(२) समालोचना (हितकारिणी, फ़रवरी १९११)

सम्पादक—पं. रघुवरप्रसाद द्विवेदी बी. ए. हेड मास्टर कस्तूरचंद हितकारिणी सभा हाई स्कूल जबलपुर

श्रीतुलसीकृत रामायण अयोध्याकांड

(विनायकी टीका सहित)

श्रीयुत पंडित विनायकराव इस प्रान्त के शिक्षा विभाग में काम करके अब पेन्शन लेकर घर बैठे हैं। पंडित जी हिन्दी के कैसे प्रेमी हैं सो तो सभी को अच्छी भांति विदित है। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के आप बहुत काल से सदस्य हैं। हिन्दोपयोगी आप ने कई ग्रन्थ लिखे हैं पर अब अवकाश पाकर पंडित जी एक बहुत अच्छे कार्य में प्रवृत्त हुए हैं। हिन्दी के मुख्य मुख्य काव्यग्रन्थों पर उत्तम रीति से टीका करने का आपने दृढ़ संकल्प किया है और मातृभाषा के मुकुट स्वरूप महाकाव्य श्रीतुलसीकृत रामायण के दो कांडों की आपने उत्तम टीका भी प्रकाशित कर डाली है जिस की सहृदय हिन्दी रसिक सज्जनों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। वास्तव में इस रीति पर हिन्दी के किसी काव्यग्रन्थ की टीका आज तक नहीं हुई।

विनायकी टीका में शब्दार्थ, गूढ़ार्थ, भावार्थ सभी कुछ भरा है। संस्कृत के कठिन कठिन शब्दों की व्युत्पत्ति भी उचित स्थानों पर दी है और अन्वय करते हुए शब्दार्थ देकर भावार्थ दिया है शंका समाधान भी खूब किया है और भिन्न २ शब्दों के

परीक्षा की तैयारी करने वाले विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है। टिप्पणियों पर तो मेरा विशेष ध्यान झुका, उनसे मूल का स्पष्टीकरण भलीभांत हो जाता है। तौ भी ये टिप्पणियां न तो बहुत बड़ी हैं और न इधर उधर फैली हैं। मैं चाहता हूं कि और दूसरे काण्डों की टीकाओं में जिन्हें आप लिख रहे हों, आपको ऐसी ही सफलता प्राप्त हो॥

—:o:—

(६) श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु कवि' सेटिलमेंट आफ़ीसर के अंग्रेज़ी पत्र का अनुवाद—बिलासपुर १ मई १६११

मेरे प्रिय पंडित जी "कविनायक"

रामायण पर आपकी टीका तो अद्वितीय ही है इस का प्रभाव साहित्य प्रेमियों पर बहुत पड़ रहा है। यह इतनी स्पष्ट और ऐसी संगति युक्त है कि जितने गहरे उस में पैठते जाओ उतना ही गम्भीर आनन्द उससे प्राप्त होता जाता है। टिप्पणियां और ऐतिहासिक उल्लेख संपूर्ण आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं। मनुष्य को उन के पन्ना पलटने २ विशेष आनन्द होता है। बहुत विस्तृत न होकर यह तो सारगर्भित है और इतने पर भी यथा योग्य है। परमेश्वर आपकी आयु को बढ़ावे, जिसमें आप इस कार्य को जो उपयोगी है, पूरा कर सकें॥

—:o:—

(७)—महा महोपाध्याय डाक्टर गंगा नाथ झा एम. ए., डी. लिट्. इलाहाबाद ता० १५ मार्च सन् १६१२ के अंग्रेज़ी पत्र का अनुवाद।

महाशय,

आप की प्रशंसनीय सटीक तुलसीकृत रामायण अयोध्या कांड के संस्करण के लिये अनेक धन्यवाद हैं। मैं आशा करता हूं कि आप का प्रयत्न सफल होगा।

—.o—

(८)—मुंशी मुरली धर मुंसिफ़ सा० रायपुर के माघ शुक्ल १५ सं० १६७१ के पत्र से उद्धृत—

श्रीयुत मान्यवर पंडित विनायक राव जी की तुलसी [illegible], ख़ास कर की पुस्तक अयोध्या कांड के टीका को मेरे हस्तगत हुई। मेरा पुत्र चिरञ्जीव [illegible] प्रसाद यहां गवर्नमेंट हाई. स्कूल इन्ट्रेन्स क्लास में पढ़ता है इस साल परीक्षा में बैठेगा। इसने मुझे यह पुस्तक दिखाई इसे देख कर बड़ा ही आनन्द हुआ और [illegible] का परि-श्रम यथार्थ हुआ [illegible]

पुस्तक के कुछ पृष्ठ अवलोकन करने से आपकी प्रशंसा प्रत्यक्ष प्रकट हुई. निस्सन्देह आप बड़े सज्जन परोपकारी और विद्याभिलाषी हैं

इस पुस्तक से विद्यार्थियों को तो विशेष लाभ है ही परन्तु सैकड़ों हज़ारों व लाखों इतर मनुष्यों को भी लाभ होगा, इस में सन्देह नहीं. मेरी तुच्छ बुद्धि में द्रव्य दान से विद्यादान बहुत बड़ा है इस विषय में बहुत लिखने की आवश्यकता नहीं. आप मुझे न जानते होंगे, मैं हाल में मुंसिफ़ हूं। आप की पुस्तक देखने से आप के दर्शनों की तीव्र उत्कंठा हो रही है इस इच्छा का सुफल होना ईश्वराधीन है. × × × × ×

यदि आपकी पुस्तकों की सातों कांड की टीका का जिस ढंग से आपने लिखा है, ठीक उसी प्रकार मराठी में टीका हो जाय तो दक्षिण में रामायण सब को प्रिय हो जायगी (क्योंकि) आपने शब्दार्थ, भावार्थ गूढ़ार्थ, शंका समाधान तथा सम्बन्धीय वार्ताओं का कथन किया है और हिन्दी भाषा न जानने वालों को उसकी बड़ी आवश्यकता है. आशा है कि आपने सातों कांड रामायण की टीका समाप्त करली होगी मैं अवश्य उस का ग्राहक बनूंगा।

——:०:——

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत ।

रामायण ।

बालकाण्ड ।

श्री विनायकी टीका सहित ।

श्लोक– † वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ ॥ १ ॥

सूचना – श्री तुलसीदास जी श्री रामचरित मानस नाम ग्रन्थ को भाषा दोष रहित तथा निर्विघ्नता से सिद्ध होने के हेतु श्री सरस्वती जी और श्री गणेश

---

† वर्णानां—श्री गोस्वामी तुलसी दास जी अपने महाकाव्य श्री रामचरित मानस (अर्थात् रामायण) के आरम्भ ही में शास्त्र की इस आज्ञा का पालन करते हैं कि 'आशीर्नमस्क्रिया वस्तु, निर्द्देशोवापि तन्मुखम्' अर्थात् काव्य के आरम्भ में (१) आशीर्वाद युक्त, (२) नमस्कारात्मक और (३) वस्तु निर्द्देशरूप मङ्गलाचरणों में से किसी एक का होना अवश्य है। इसहेतु यहां पर नमस्कारात्मक मंगलाचरण किया गया है और मंगलाचरण से ग्रन्थ के आरम्भ आदि का फल यह है कि—

श्लोक—आदि मध्यावसानेषु, यस्य ग्रन्थस्य मंगलम् ।
तत्पाठात्पाठनाद्वापि, दीर्घायुर्धार्मिको भवेत् ॥

अर्थात् जिस ग्रन्थ के आदि, मध्य और अन्त में मंगलाचरण रहैं उसके

जी की वन्दना करते हैं। उसी के अनुसार श्री रामचरित मानस की टीका आरम्भ करने के पूर्व टीकाकार कृत मंगलाचरण—

दो०—वाणि विनायक पद कमल, नमन विनायक कीन्ह ।
श्री विनायकी तिलक को, श्री गणेश कर दीन्ह ॥

शब्दार्थ—वर्णानां = अक्षरों के । अर्थसंघानां = अर्थ समूहों के, अर्थात् अनेक अर्थों के । रसानां = शृङ्गारादि नवरसों के । छन्दसामपि = छन्दों के भी । कर्त्तारौ = रचने वाले । वाणी विनायकौ = सरस्वती जी और गणेश जी को । वन्दे = मैं प्रणाम करता हूं ॥

अन्वय—वर्णानां, अर्थ संघानां, रसानां, छन्दसां, अपि च मंगलानां कर्त्तारौ वाणी विनायकौ वन्दे ॥

अर्थ पहिला—(तुलसीदास जी कहते हैं कि) अक्षरों, अनेक अर्थों, रसों और छन्दों तथा सम्पूर्ण मंगलों के करने वाले श्री सरस्वती जी और श्री गणेश जी को मैं वन्दना करता हूं ॥

अर्थ दूसरा—मैं अक्षरों, अनेक अर्थों, रसों, छन्दों और कल्याणों के रचयिता सीता और रामचन्द्र जी को प्रणाम करता हूं ॥

सूचना—ऊपर का दूसरा अर्थ इस अभिप्राय से किया गया है कि यद्यपि ग्रन्थ के आरम्भ में श्री गणेश जी की वन्दना करना उचित ही है तथापि तुलसीदास जी के इष्टदेव तो श्री रामचन्द्र जी ही हैं और उन्हीं की यह वन्दना है । जैसा कि आगे के कथन से स्पष्ट होगा ॥ एक समय की बात है कि—

पढ़ने पढ़ाने वाले दोनों दीर्घायु और धर्मात्मा होते हैं ॥

'वर्णानां' इस में [illegible] अक्षर गुरु है क्योंकि वकार संयुक्त अक्षर के पहिले रहने से दीर्घ समझा गया है जैसा पाणिनि ने कहा है कि 'संयोगे गुरुः' इसहेतु ग्रन्थ का आरम्भीय गण मगण है जो सब प्रकार से श्रेष्ठ समझा जाता है। इसका विशेष विमल विचार इसी काण्ड की पुरौनी में मिलेगा ॥

'अर्थ संघानां'—अर्थ तीन प्रकार के होते हैं (१) वाच्य, (२) लक्ष्य और (३) व्यंग्य, इन का विस्तार पुरौनी में है ।

'रसानां'—साहित्य के रस नव हैं सो उदाहरण सहित पुरौनी में देखो। 'छन्दसां'—छन्द अगणित हैं समय२ पर उन का वर्णन किया जायेगा । यहां पर इतना ही लिखना बस है कि—

दो०—है मन को कर्षित सो, छन्द कहावे ताप ।
[illegible], [illegible] विमल भाव ॥

इस काण्ड के छन्दों का विमल विचार पुरौनी में है ॥

वृन्दावन की यात्रा में श्री कृष्णचन्द्र जी की मूर्त्ति के सन्मुख तुलसीदास जी को खड़ा देख कर किसी साधु ने यह तर्कना की थी कि आप तो रामउपासक हैं। इस पर से तुलसीदास जी ने कृष्ण भगवान से यों प्रार्थना की थी कि—

दो०–कहा कहौं छवि आज की, भले बने हौ नाथ।
तुलसी मस्तक जब नवै, धनुषबाण लेव हाथ ॥

उसी समय भक्तवत्सल परमात्मा ने उन की प्रार्थना स्वीकार की, सो यों कि—

दो०–मुरली मुकुट दुराय के, नाथ भये रघुनाथ।
तुलसी रुचि लखि दास की, धनुषबाण लियो हाथ ॥

और भी इसी अनन्यता की पुष्टि में नीचे लिखा हुआ श्लोक प्रसिद्ध है, यथा—

सीतांश संभवां वाणीं, रामांशेन विनायकम्।
सीता रामांश संभूतौ, वन्दे वाणी विनायकौ ॥

अर्थात् सीता जी के अंश से उत्पन्न हुई सरस्वती जी और रामचन्द्र जी के अंश से उत्पन्न हुए गणेश जी, इस प्रकार सीता और राम जी के अंश से उत्पन्न हुई सरस्वती और विनायक जी की मैं वन्दना करता हूं ॥

श्लोक–भवानीशंकरौ वन्दे *श्रद्धा †विश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः ‡स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥ २॥

शब्दार्थ—भवानी शंकरौ = पार्वती और शिवजी। वन्दे = मैं प्रणाम करता

---

* श्रद्धा—गूढ़ता और विचित्रता से आकर्षित होकर किसी बात को गुरु और वेद की सम्मति से जानने आदि की उत्कट इच्छा को 'श्रद्धा' कहते हैं, यथा—'तथापि वैचित्र्य रहस्य लुब्धाः, श्रद्धां विधास्यन्ति सचेतसोऽत्र। (विक्रमोर्वशी १-१३)

अर्थात् तो भी विचित्रता के गुप्त भेद जानने की उत्कट इच्छा से सहृदय इस में श्रद्धा रखेंगे ॥

† विश्वास—पक्का भरोसा। उत्कट इच्छा ही तभी विश्वास कहलाती है जब चाही हुई बात पर भरोसा किसी प्रकार ठीक २ हो जाय। जैसा आरण्यकाण्ड में कहा है 'मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा' ॥

‡ स्वान्तस्थम् ईश्वरम्—हृदय स्थित ईश्वररूप आत्मा जो ईश्वर की कृपा बिना समझ में नहीं आता, जब तक मनुष्य समझता है कि मैं हूं, तब तक उसे शुद्ध आत्मबोध नहीं रहता और जब अहंता भूल जाती है तब ईश्वर ही रहि जाता है। जैसे—

दो०—जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
'कबिरा' नगरी एक में, राजा दो न समाहिं ॥

और भी विस्तारपूर्वक वर्णन उत्तरकाण्ड में मिलेगा ॥

हैं। श्रद्धा विश्वास रूपिणौ = श्रद्धा और विश्वास के रूप। याभ्यां विना = जि दोनों के बिना। न पश्यन्ति = नहीं देखते हैं। सिद्धाः = सिद्ध लोग (वे पवि पुरुष जिन्हें अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त हो चुकी हों)। स्वान्तस्थम् ईश्वरम् = अपने हृदय में के ईश्वर को ॥

अन्वय — श्रद्धा विश्वासरूपिणौ भवानीशंकरौ वन्दे । याभ्यां विना सिद्धाः स्वान्तस्थम् ईश्वरम् न पश्यन्ति ॥

अर्थ — फिर मैं श्रद्धा और विश्वास के मानो स्वरूप ही श्री पार्वती जी और श्री महादेव जी को प्रणाम करता हूं । जिन के बिना सिद्ध लोग भी अपने हृदय में रहने वाले ईश्वर को नहीं देख सक्ते ॥

सूचना — यहां पर श्रद्धारूपी पार्वती जी हैं जिन्हों ने शंकर जी के द्वारा रामायण आदि अनेक राम कथाएँ कहला कर स्वतः शिव जी के वचनों में श्रद्धा रक्खी और दूसरे प्राणियों को भी रामकथा में श्रद्धा कराई, जैसा अध्यात्म रामायण में कहा है —

श्लो० — पुरा त्रिपुरहंतारं , पार्वती भक्तवत्सला ।
श्री राम तत्त्वं जिज्ञासुः , पप्रच्छ विनयान्विता ॥

अर्थात् पहिले एक समय भक्तों पर प्यार करने वाली पार्वती जी श्री रामचन्द्र जी के तत्त्व को जानने की इच्छा से त्रिपुर के मारने वाले शिव जी से विनयपूर्वक प्रश्न करने लगीं । तथा महादेव जी विश्वासरूप हैं जिन्हों ने स्वतः श्री रामचन्द्र जी के ध्यान में ऐसा विश्वास रक्खा है कि उन से बढ़ कर कोई दूसरा रामभक्त नहीं है और अपने ही उदाहरण से दूसरे लोगों को श्री रामचन्द्र जी की भक्ति में विश्वास कराया । यदि ये दोनों न होते तो राम कथा संसार में कदाचित् प्रकट ही न होती, इसहेतु इन दोनों को मूल कारण समझ तुलसी दास जी ने इन की वन्दना की है॥

श्लोक— ‡ वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम् ।
*** यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥३॥**

---

‡ वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं —

श्लोक — विश्लयति कुबोधं , बोध यत्यागमार्थम् ।
सुगति कुगति मार्गौ , पुण्य पापे व्यनक्ति ॥
अवगमयति कृत्या कृत्य भेदं गुरुर्यो ।
भव जल निधि पोतस्तं विना नास्ति किंचित् ॥

अर्थात् गुरु वही है जो शास्त्रों का ज्ञान करा कर अज्ञान को दूर करता है, जो सुगति और कुगति के मार्गों तथा पुण्य और पाप को पृथक् २ समझाता है । जो उचित और अनुचित कर्मों का बोध कराता है और जिस के बिना संसार सागर से पार करने वाला कोई दूसरा नहीं है ॥

* यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते — इस के सम्बन्ध में केशवदास जी की कविता देखिये — (विजयाछन्द) —

शब्दार्थ—वन्दे = मैं वंदना करता हूं। बोधमयं = ज्ञान से परिपूर्ण। नित्यं = सदा। गुरुं = बोध कराने वाला। शंकररूपिणम् = शिवस्वरूप। यम् आश्रितः = जिस के आधार से। हि = विशेष करके। वक्रः अपि = टेढ़ा भी। चन्द्र = चन्द्रमा। सर्वत्र वन्द्यते = सब स्थानों में वन्दना किया जाता है॥

अन्वय—बोधमयं शंकररूपिणम् गुरुं नित्यं वन्दे। यम् आश्रितः वक्र अपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते हि॥

अर्थ—मैं ज्ञान से परिपूर्ण शिव स्वरूप अपने गुरु जी की सदैव वंदना करता हूँ। जिन का आश्रय करके टेढ़ा चन्द्रमा (अर्थात् द्वितिया का चन्द्रमा) भी सब स्थानों में वंदना किया ही जाता है॥

भावार्थ—जिस प्रकार शिव जी के मस्तक में रहने से द्वितिया का टेढ़ा चन्द्र भी मान को पाता है उसी प्रकार शङ्कररूपी गुरु जी की कृपा से मैं जो टेढ़ा अर्थात् सब प्रकार बुद्धिहीन हूँ सो प्रतिष्ठा को प्राप्त होऊँ॥

श्लो०—सीताराम गुणग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ।
वंदे *विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ॥ ४॥

विजया छन्द - ज्यों मणि में अति ज्योति हुती रवि ते कछु और महा छवि छाई।
चन्द्रहि वन्दत है सब 'केशव' ईश ते वन्दनता अति पाई॥
भागिरथी हुति पै अति पावन बावन ते अति पावनताई।
त्यों निमिवंश बड़ोइ हतो भइ सीय सँयोग बड़ीय बड़ाई॥

* विशुद्ध विज्ञान कवीश्वर—कथा प्रसिद्ध है कि एक दिन वाल्मीकि मुनि दो पहर के समय तमसा नदी के किनारे जा पहुँचे तो वहां क्या देखते हैं कि क्रौंच पक्षियों के जोड़े में से एक को किसी बहेलिये ने बाण मार दिया था और उस का जोड़ा वियोग दुःख से तड़फड़ाता था। उसी समय दयार्द्र हो मुनि जी के मुख से यह श्लोक निकल पड़ा कि—

श्लो०—मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्॥ (उत्तर रामचरित)

भाव यह है कि हे बहेलिये! जो तू ने काम मोहित क्रौंच के जोड़े में से एक का वध किया है इसहेतु तू अगणित वर्षों तक प्रतिष्ठा को न पावे॥

इस पर से महादेव ने प्रकट होकर ऋषि जी से यह कहा कि हे ऋषि! तुम्हें शब्द ब्रह्म का प्रकाश हुआ है। तुम्हारे आर्षनेत्र होवें अर्थात् जो मनुष्यों को न दिखे सो तुम देखो और उन नेत्रों की ज्योति अव्याहत हो याने तुम कोई भी बात देखने में असमर्थ न हो और नई २ वार्त्ताओं के प्रकट करने वाले होओ। तुम आदि कवि हुए इसहेतु रामचरित्र वर्णन करो। इतना कह-

शब्दार्थ—सीताराम गुणग्राम=सिया राम के गुणानुवाद। पुण्य अरण्य=पवित्र वन में। विहारिणौ=विहार करने वाले। वन्दे=मैं वन्दना करता हूँ। विशुद्ध विज्ञानौ=निर्मल ज्ञान वाले। कवीश्वर=वाल्मीकि जी। कपीश्वर=हनुमान् जी ॥

अन्वय—सीता राम गुण ग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ वन्दे ॥

अर्थ—सिया राम के गुणानुवादरूपी पवित्र वन में विहार करने वाले निर्मल ज्ञान सम्पन्न कवि वाल्मीकि जी और हनुमान् जी की मैं वन्दना करता हूँ ॥

भाव यह कि वाल्मीकि जी और हनुमान् जी सदैव श्री रामचन्द्र जी के गुणानुवाद में तल्लीन रहते हैं क्योंकि वे उन के शुद्ध परमात्म स्वरूप के परमज्ञाता हैं ॥

कर ब्रह्मा जी अंतर्धान हो गये। श्री वाल्मीकि जी ने सौ कोटि रामायण रची। उन्हों ने सिवाय रामचरित्र के और कुछ वर्णन नहीं किया ॥

कहते हैं कि इन्हों ने बहुत से रामचरित्र पहिले ही से लिख रक्खे थे जो पीछे से श्री रामचन्द्र जी ने किये थे क्योंकि ये दिव्यचक्षु वाले हो गये थे ॥

विशुद्ध विज्ञान कपीश्वर— वाल्मीकीय रामायण के उल्था राम रत्नाकर से उद्धृत श्री रामचन्द्र जी द्वारा हनुमान् जी के विशुद्ध विज्ञान की प्रशंसा—

दो०—पास॥णाय निज बंधु सन, करत प्रशंसा तासु।
लख्यो लखन कपिपति सचिव, विमल वचन हैं जासु ॥

चौ०—साम यजू ऋगुवेद पढ़े हैं। शुद्ध व्याकरण वचन कहे हैं ॥
कपि के कहत न इंगित फीको। किमपि अशुद्ध न बोलन ही को ॥
नहिं विलम्ब नहिं अवरा कटु हैं। यदपि कपि कृत वेष बटु हैं ॥
मध्यम स्वर उर कंठ गहेले। निकसत शब्द सुवचन कहेते ॥
को अस पुरुष न मोहित होई। अरि पुनि सुनि हित मानहि सोई ॥
है व्याकरण सहित यह बानी। शुद्ध सुनत नहिं होत गलानी ॥
जेहि नृप के अस सचिव न होई। ताके काज कौन विधि होई ॥
शुभ अरु अशुभ भूप आचरणी। जानी जात दूत मुख बरणी ॥

दो०—अस कह निज अनुजहिं बहुरि, पवनतनय प्रति राम।
बोले प्रेम बढ़ाय तब, जानि सकल गुण धाम ॥

सूचना—(१) राजाओं को चाहिये कि वे ऐसा ही मंत्री रक्खें।
(२) मंत्रियों को चाहिये कि वे इसी प्रकार की योग्यता रक्खें। और
(३) भाषण कर्त्ताओं को ऐसी ही वाक्यरचना, उच्चारण ध्वनि आदि का अनुकरण करना चाहिये ॥

श्लो०—*उद्भव स्थितिसंहार कारिणीं क्लेश हारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—उद्भव = उत्पत्ति। स्थिति = पालन। संहार = नाश। कारिणीं = करने वाली। क्लेश हारिणीम् = दुःख दूर करने हारी। सर्वश्रेयस्करीं = सब कल्याण करने वाली। सीतां = सीता को। नतः अहं = नमस्कार करता हूं मैं। रामवल्लभाम् = राम की प्यारी को ॥

अन्वय—उद्भव स्थिति संहार कारिणीं क्लेश हारिणीम् सर्वश्रेयस्करीं राम वल्लभाम् सीतां अहं नतः ॥

अर्थ—(सृष्टि की) उत्पत्ति, पालन और नाश करने वाली, दुःख दूर करने हारी, सब कल्याणों की करने वाली राम प्यारी किशोरी जी की मैं वन्दना करता हूं ॥

सूचना—उद्भव से अपने में ज्ञान की उत्पत्ति, स्थिति से बुद्धि की स्थिरता, संहार से तमोगुण अर्थात् अज्ञान का नाश कवि जी चाहते हैं ॥

श्लो०—यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा,
यत्सत्त्वादमृषेव भाति सकलं †रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः।

---

* उद्भव स्थितिसंहार कारिणीं क्लेश हारिणीम्—यह आशय रामतापिनी से मिलता है, यथा—

श्लो०—श्री रामसान्निध्यवशाज्जगदानंददायिनी।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणीं सर्वदेहिनाम् ॥
सा सीता भगवती ज्ञेया मूल प्रकृति संज्ञिता।
प्रणवत्वात्प्रकृतिरिति वदंति ब्रह्मवादिनः ॥

और भी जानकीस्तवराज भाषा टीका से—

सवैया—जागत हीं जननी तव नैन के खोलत में भये अंड अपारे।
ते सब अंडन को परिपालन होत लखै दृग सौंह निहारे ॥
फेरि बिलात न देर लगै जब मूँदत नैन सिया सरकारे।
यों जग पालन सर्ग विनास प्रयास बिना सिय नैन निहारे ॥

† रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः—श्री मत् शंकराचार्य विरचित आत्मप्रबोध से—

श्लो०—संसारः स्वप्नतुल्योहि, राग द्वेषादि संकुलः।
स्वकाले सत्यवद्भाति, प्रबोधे सत्य सद्भवेत् ॥

अर्थात् राग द्वेष आदि से परिपूर्ण यह संसार स्वप्न की नाईं है। जो स्वप्न के समय तो सत्य सा समझ पड़ता है परन्तु जागने पर असत्य ही सूझ पड़ता है ॥

अन्वय—नाना पुराण निगम आगम यद् सम्मतं रामायणे कचित् अन्यतः अपि निगदितं । (तद्) रघुनाथ गाथा भाषा निबंध तुलसी स्वान्तः सुखाय अति मंजुलम् आतनोति ॥

अर्थ—अनेक पुराण, वेद और शास्त्रों की सम्मति जो रामायण में तथा कुछ दूसरे स्थानों में भी कही गई है उस रघुनाथ जी की कथा के निबंध को मैं तुलसीदास अपने चित्त के आनन्द के लिये अति मनोहर रीति से हिन्दी भाषा में वर्णन करता हूं ॥

आगम=शास्त्र, ये छः हैं, जैसे—

दो०—तर्क योग वेदान्त अरु, सांख्य मिमांसा मान।
वैशेषिक पुन जानिये, छऊ शास्त्र परमान ॥

इसी श्लोक के आशय को गुलामी कवि ने कैसी उत्तम रीति से दरशाया है, जैसे:—

कवित्त—अष्टादश पुराण चारि वेद मन शास्त्रन को ग्रंथनि सहस्र भत रामयश वे गये।
पाप को समूह कोटि कोटिन्ह सिराने धर्म राजम महान के कपाट द्वार दे गये॥
भनत 'गुलामी' धन्य तुलसी तिहारी बानी प्रेम सानोभक्तिमुक्तिज्ञानसुख हि गये।
योग सुख यज्ञ सुख लोक सुख भोग सुखपते सुख सुकुन गोसाई लूटि लै गये ॥

(वन्दना २)

सोरठा—*जेहि सुमिरत सिधि होइ, †गणनायक करिवर वदन ।
करहु अनुग्रह सोइ , बुद्धिराशि ‡शुभ गुण सदन ॥१॥

शब्दार्थ—गणनायक = गणों के मुखिया । करिवर वदन = (१) श्रेष्ठ हाथी सरीखा मुख, (२) मुख को दिव्य करने वाले। सदन = (१) स्थान, (२) सदन नाम का कसाई ॥

अर्थ पहिला—जिन के स्मरण करते ही सफलता प्राप्त होती है सो श्रेष्ठ हाथी के समान सुन्दर मुख वाले, बुद्धि से परिपूर्ण और उत्तम गुणों के स्थान श्रीगणेश जी मेरे ऊपर कृपा करें ॥

सूचना-गोस्वामी जी जिस प्रकार संस्कृत भाषा की स्तुति का आरम्भ श्रीगणेश जी की वन्दना से कर आये हैं उसी प्रकार हिन्दी भाषा में भी श्री गणेश जी की वन्दना से ग्रन्थ का आरम्भ करते हैं। कारण पूज्यपद तो इन्हीं को है और वह पद श्री राम नाम ही की महिमा से प्राप्त हुआ था, जैसा आगे कहा है-

'महिमा जासु जान गणराऊ,प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ'

दूसरा अर्थ—जिस के (अर्थात् राम नाम के) स्मरण करने ही से सुन्दर हाथी सरीखे मुख वाले श्री गणेश जी सफल मनोरथ हुए (अर्थात् प्रथम पूज्यपद पागये) सो रामचन्द्र जी जो बुद्धि से परिपूर्ण हैं और जिन्हों ने सदन सरीखे कसाई को मानो अच्छे गुणों का बना दिया है, मेरे ऊपर कृपा करें ॥ (सूचना)

* 'जेहि सुमिरत' का पाठान्तर 'जेहि सुमिरे' भी है 'जेहि' में दीर्घ 'जे, को ह्रस्व पढ़ना पड़ता है नहीं तो मात्रा बढ़ जाती है और 'सुमिरे, में स्मरण करने के पश्चात् ऐसा अर्थ गर्भित होता है 'सुमिरत' से बहुत ही शीघ्रता का बोधहोता है ॥

† गणनायक—परमात्मा के लिये गणनायक यह विशेषण पद्म पुराण भूमि खण्ड अ ६८-१३ में विज्वल ऋषि ने कहा है। यथा.—

श्लोक—आनन्द कन्दाय विशुद्ध बुद्धये, शुद्धाय हंसाय परावराय।
नमोस्तु तस्मै गणनायकाय , श्री वासुदेवाय महा प्रभाय॥

अर्थात् आनन्द के मूलकारण विशुद्ध विशाल समझ, पवित्र, हंस स्वरूपी परात्पर ऐसे सम्पूर्ण गणों के स्वामी महा तेजस्वी वासुदेव भगवान् को मेरा नमस्कार है॥

‡ शुभ गुण सदन—इस के बारे में कबीर दास जी भैरवी में यों अलापते हैं—

हरि से लाग रहो रे भाई। तेरी बिगरी बात बन जाई ॥
रंका तार्यो बंका तार्यो , तार्यो सदन कसाई ।
सुआ पढ़ावत गनिका तारी , तारी है मीरा बाई ॥
ऐसी भक्ति करो घट भीतर , छोड़ कपट चतुराई ।
सेवा बन्दगी औ अधीनता , सहज मिलैं रघुराई ॥ (कहत कबीर)

सो० —कुन्द इन्दु सम देह, †उमारमण करुणायतन ।
जाहि* दीन पर नेह, करौ कृपा ‡मर्दनमयन ॥४॥

शब्दार्थ—कुन्द = सफ़ेद रंग का फूल । इन्दु = चन्द्रमा । उमारमण = पार्वती के पति । करुणायतन = दया के भण्डार ॥

अर्थ—कुन्द के फूल तथा चन्द्रमा के समान स्वच्छ शरीर वाले पार्वती के पति दया के स्थान (श्रीशंकर जी) जिन का प्रेम दीनों पर बना रहता है ऐसे कामदेव के भस्म करने वाले मेरे ऊपर कृपा करैं ॥

---

† उमा (उ = हे + मा = मत) = हे पुत्री ! तप मत कर, पार्वती की माता मैना जी के ये वचन हैं, जैसा कि कुमारसम्भव में लिखा है [सर्ग १ ला]

'उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा , पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम ' ॥२६॥

अर्थात् जब माता मैना ने तपस्या से निषेध करने के लिये कहा कि 'उ' (हे पुत्री) 'म' (मत) — भाव यह कि तपस्या मत कर। तभी से उस सुन्दरी का नाम 'उमा' हुआ ॥

* जाहि दीन पर नेह , करौ कृपा मर्दनमयन — हे शङ्कर जी आप दीनों पर दया करने वाले हैं सो मेरे ऊपर भी दया कर मुझे श्री सीता रामचन्द्र जी के चरणों में निरन्तर अटल प्रेम दीजिये, जैसा कुण्डलिया रामायण में कहा है—

कु०—दीन दयाल दया करौ, दीन जानि शिव मोहिं ।
सीता राम सनेह उर, सहज संत गुण होहिं ॥
सहज संत गुण होहिं , यथा प्रद लाभ दुःख सुख ।
कर्म विवश जहँ जाउँ , तहाँ सिय राम कृपा रुख ॥
राम कृपा रुख नित रहौ, जगत जनित संशय: हरौ ।
कह तुलसि दास शङ्कर उमा, दीन दयाल दया करौ ॥

‡ मर्दन मयन = कामदेव के नाश करने वाले, इस विशेषण से कवि जी ने यह दरशाया है कि 'कामदेव' मनुष्यों का बड़ा भारी शत्रु है जो राम भजन आदि सब शुभ कार्यों में बाधा डालता है। सो शिव जी मेरे ऊपर कृपा कर इस भारी शत्रु से बचावें। क्योंकि यही एक देव हैं जिन्हों ने काम को जला कर 'कामजित' ऐसा नाम पाया है। कामदेव के जलाने आदि की कथा इसी काण्ड में आगे गोसाईं जी ने स्वयं: कही है ॥

सो०—बन्दौं गुरुपद*कंज, कृपासिन्धु नर†रूप हरि।
महा‡मोहतम पुंज; जासु बचन रविकर निकर ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—गुरु=अज्ञान को दूर करने वाले। नररूप हरि=मनुष्य का रूप धारण किये हुए विष्णु जी। रविकर=सूर्य की किरणें। निकर=समूह ॥

पहिला अर्थ—(तुलसी दास जी कहते हैं कि) मैं अपने गुरु जी के कमल-स्वरूपी चरणों की वन्दना करता हूं जो चरण दया के मानो समुद्र ही हैं और जो मनुष्य के शरीर को 'हरि' अर्थात् आवागमन से छुड़ाने वाले हैं तथा जिन के साम्हने मोहरूपी भारी अंधकार "वच न" अर्थात् बच नहीं सक्ता (कारण) उन का प्रकाश सूर्य की अगणित किरणों के समान है (स्मरण रहे कि यहां पर गुरुपद कंज यही मुख कर्त्ता है इसहेतु सब विशेषण चरणों ही के गुण सूचक मानकर यह अर्थ किया गया है और गोस्वामी जी भी तौ इस से आगे १२ लकीरों तक गुरु जी के चरणों ही के सम्बन्ध में लिखते गये हैं) ॥

दूसरा अर्थ—मैं अपने गुरु जी के कमलस्वरूपी चरणों की वन्दना करता हूं जो गुरु जी दया से परिपूर्ण हैं जो मनुष्यरूप धारण किये हुए मानो साक्षात् विष्णु हैं और जिन के वचन ही मानो सूर्य की अगणित किरणों के द्वारा ममतारूपी महा अंधकार को नाश कर देते हैं ॥

सूचना—गुरु जी की महिमा का तुलसीदास जी ने बहुत वर्णन किया है और यह यथार्थ ही है कारण सद्गुरु के उपदेश बिना मनुष्य में न तो ज्ञान न भक्ति आदि मुक्ति के साधन हो सक्ते हैं, जैसा कहा है—

दो०—गुरु गोविंद दोनों खड़े, केहि के लागौं पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविंद दियो लखाय ॥

---

* कञ्ज=कमल, कमल की उपमा बहुधा अनेक स्थानों में मिलती है, कभी उस के रंग से, कभी मधुरता से, कभी पखुरी से, कभी पराग से और कभी रस आदि से। इसहेतु कमल के गुण लिखना अवश्य हैं और वे ये हैं—

श्लोक—कमलं मधुरं वर्ण्यं शीतलं कफ पित्त जित्।
तृष्णा दाहास्र विस्फोट विष सर्प विनाशनम् ॥

अर्थात् कमल मधुर, रँगीला, शीतल तथा कफ और पित्त का शान्त करने वाला है और प्यास, दाह, चेचक तथा विसर्प नाम के रोग का नाश करनेवाला है॥

† नररूपहरि—तुलसी दास जी के गुरु का नाम नरहरि दास किंवा नरसिंह दास ऐसा प्रसिद्ध है। तुलसी दास जी ने उसे स्पष्ट रूप से नहीं कहा परन्तु युक्ति से दरशा दिया है ॥

‡ महा मोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर—गुरु जी के शिक्षारूपी वचनों से मन के भ्रम आदि सब दूर हो जाते हैं, जैसा इसी काण्ड में शिव जी का वाक्य है कि 'सुनु गिरिराज कुमारि, भ्रम तम रवि कर बचन मम' और भी महात्मा सुन्दर दास जी ने स्पष्ट कहा है, जैसे—

अर्थ—श्री गुरु जी के चरण नख का प्रकाश बहुत से मणियों के तुल्य है उन का स्मरण करने से हृदय के नेत्र दिव्य हो जाते हैं (अर्थात् गुरु जी की कृपा से हृदय में शुद्ध ज्ञान उत्पन्न हो जाता है)। उन्हीं का उत्तम प्रकाश मोहरूपी अन्धकार को नाश कर देता है। उस मनुष्य के बड़े भाग्य समझना चाहिये जिस के हृदय में (गुरु चरणों) का ध्यान बँध जावे॥

चौ०—‡उघरहिं विमल विलोचन हीके। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥

अर्थ—हृदय के निर्मल (विवेकरूपी) नेत्र खुल जाते हैं और संसाररूपी रात्रि के, दोष और दुःख दूर हो जाते हैं (अर्थात् सद् असद् विवेक उत्पन्न होता है और उस से अविद्यारूपी रात्रि जो दोष दुःख से परिपूर्ण है सो मिट जाती है)॥

भाव यह कि विवेक के कारण अज्ञान से उत्पन्न हुआ जन्म मरण का दुःख दूर हो जाता है॥

चौ०—सूझहिं रामचरित मणि माणिक। *गुप्त प्रकट जहँ जो जेहि खानिक॥

अर्थ—(हृदय के नेत्र खुल जाने से) श्री रामचन्द्र जी के मणि माणिक रूपी चरित्र जो जहाँ पर जिस खानि में छिपे हैं अथवा प्रकट हैं सो सब दिखाई देने लगते हैं (अर्थात् जिस प्रकार ढूँढ़ने वाला हीरा पन्ना आदि जवाहिरों को ढूँढ़ निकालता है इसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य परमात्मा के चरित्र गुप्त हों या प्रकट खोज लेता है)॥

दो०— यथा सुअंजन आँजिदृग, साधकसिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं शैल बन, भूतल भूरि निधान॥१॥

‡ उघरहिं विमल विलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के—गुरुमत पुष्प पहार से
गुरुमत—जो गुरुदेव को सिर नवाता नहीं है। वो विद्या का वरदान पाता नहीं है॥
हरे दोष गुण ज्ञान से कोष भर दे। गुरुदेव सा कोई दाता नहीं है॥
गुरु के बिना उलटा मारग बतावें। कोई राह सीधी बताता नहीं है॥
ये संसार सागर अगम इस से दूजा। कोई पार गुरु बिन लगाता नहीं है॥
कहै "श्यामा" गुरुशिष्य है कविता का मालण। बिना गुरु कृपा हाथ आता नहीं है॥

* गुप्त प्रकट जहँ जो जेहि खानिक—गुप्त अथवा प्रकट हीरा पन्ना आदि जिस प्रकार खानियों और पहाड़ों की चट्टानों से निकाले जाते हैं इसी प्रकार रामचरित्र भी जो प्रसिद्ध हैं अथवा छिपे हुए हैं वे सब समझ में आ जाते हैं। गुप्त चरित्र यथा—(१) अहल्या का तरना, (२) सीता जी का अग्नि प्रवेश, (३) सती को शिवरूप दिखाना आदि।

और भी—

दो०—जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।
हौं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ॥

शब्दार्थ — सुअंजन (सु = उत्तम + अंजन = सुरमा) = उत्तम सुरमा अर्थात् यह सुरमा जिस के लगाने से ससार के अद्भुत गुप्त पदार्थ दृष्टि में आ जाते हैं (इस सुरमे के बनाने की अनेक विधि तंत्र शास्त्र के ग्रन्थों में मिलेंगी)। साधक = साधने वाला अर्थात् अपने इच्छित काम या मंत्र आदि का साधने वाला। सिद्ध = अध्यात्मिक ज्ञानवाला योगी जिसे सिद्धियां आदि प्राप्त हो चुकी हों। कौतुक = आश्चर्य की बातें। भूतल = पृथ्वी की पृष्ठ पर। भूरि = बहुत। निधान = धन, भंडार॥

अर्थ — जिस प्रकार ज्ञानवान् कार्य की सिद्धि चाहने वाले सिद्ध लोग सिद्धांजन को नेत्रों में लगा लेते हैं तो उन्हें पहाड़ों में (स्वर्ण रत्न आदि की) आश्चर्ययुक्त खदानें, वन में (अद्भुत औषधियां) और पृथ्वी पर बहुत से धन के भण्डार दिखाई देने लगते हैं। इसी प्रकार —

चौ०—गुरुपद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष विभंजन॥

अर्थ — गुरु जी के चरणों की धूल भी मधुर मनोहर अंजन है जो (हृदय के नेत्रों को अमृत के समान है (अर्थात् हृदय को शीतलता और विवेक को स्थिर क देने वाली है (और उन्हीं नेत्रों के अज्ञान आदि दोषों को दूर करने वाली है,

सारांश यह है कि गुरु जी के दिये हुए ज्ञान से हृदय के नेत्र सदा के लिये खुल जाते हैं, ठंडक लिये रहते हैं और उन की अज्ञानरूपी धुन्ध भी दूर हो जाती है॥

चौ०—*तेहि कर विमल विवेक विलोचन। बरणों रामचरित भव मोचन॥

शब्दार्थ — भव मोचन = संसार से छुड़ाने वाले अर्थात् जन्म मरण के दुःखों से छुड़ाकर मोक्ष देने वाले ॥

अर्थ — उसी अञ्जन से विवेकरूपी अपने नेत्रों को निर्मल करके मैं (तुलसीदास) संसार के आवागमन से छुड़ाने वाले श्री रामचन्द्र जी के चरित्रों का वर्णन करता हूं (अर्थात् गुरु कृपा से विवेक को पाकर श्री रामचरित्र लिखता हूं)॥

---

* तेहि कर विमल विवेक विलोचन — यही उत्तम विचार 'शिक्षा' नामी वेदांग में बहुत ही स्पष्ट रूप से दरशाया है, यथा —

श्लोक — अज्ञानांधस्य लोकस्य, ज्ञानांजन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै पाणिनये नमः॥

अर्थात् अज्ञान से मानो अन्धे मनुष्यों के ज्ञानरूपी अंजन की सलाई से जिन्हों ने नेत्रों को खोल दिया है ऐसे महात्मा 'पाणिनि' को नमस्कार है॥

शब्दार्थ—जंगम = चलनेवाला । तीरथराज = प्रयाग ॥

अर्थ—सन्तों का समाज आनन्द और मङ्गल से परिपूर्ण है । मानो संसार का चलने वाला प्रयाग ही हो ॥

सूचना—तुलसीदास जी सन्त समाज को प्रयाग तुल्य समझ उस की विशेषता और प्रयाग की त्रिवेणी अक्षयवट आदि की समता आगे स्पष्टरूप से वर्णन करते

चौ०—*रामभक्ति जहँ सुरसरि धारा । ‡ सरस्वति ब्रह्म विचार प्रचारा

शब्दार्थ—सुरसरि (सुर = देव + सरि = नदी) = देव नदी अर्थात् ग

अर्थ—(सन्त समाजरूपी प्रयाग में) श्री रामचन्द्र जी की भक्ति ही गंगा की धार है और (निर्गुण) ब्रह्म के ज्ञान का विचार ही सरस्वती जी है ॥

---

* रामभक्ति जहँ सुरसरि धारा—गंगाजी की धार से श्री रामचन्द्र जी की भ का मिलान करने के अनेक कारणों में से मुख्य दो लिखे जाते हैं

(१) गंगाजी का जल बिगड़ता नहीं और निरन्तर बहता हुआ दूस नदियों के जल को भी गंगा जल बना देता है इसी प्रकार श्री रामचन्द्र जी व भक्ति किया नष्ट होने पर भी निर्मल रह कर दूसरे भक्तों को भी भक्त बना देत है । जैसा कहा है—

हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो ॥
इक नदिया इक नार कहावे मैलो नीर भरो ।
जब मिल कर दोउ एक बरण भये, सुरसरि नाम परो ॥

(२) गङ्गा जी में कोई भी प्राणी स्नान करने से मुक्ति का भागी हो जाता है इसी प्रकार श्री रामचन्द्र जी की भक्ति के अधिकारी ऊंच नीच स्त्री पुरुष आबाल वृद्ध सब ही हैं । यथा—

श्लोक—विष्णु पादाब्ज सम्भूते, गंगे त्रिपथ गामिनी ।
धर्म द्रवीति विख्याते, पापं मे हर जान्हवी ॥

अर्थात् हे गंगा जी ! तुम विष्णु जी के चरण कमलों से उत्पन्न हुई हो और तुम्हारी तीन धारायें तीनों लोक में बहती हैं, धर्म के कारण तुम दयालु हो जाती हो, सो मेरे पापों को दूर करो ॥

‡ सरस्वति ब्रह्म विचार प्रचारा—सरस्वती जी स्पष्ट रूप से त्रिवेणी में दिखाई नहीं देतीं, कभी २ उनकी लाल धारा किसी २ को दृष्टि पड़ती है वे गुप्त बहती हैं ऐसा लोगों का कहना है सो इन का मिलान निर्गुण ब्रह्म की कथा से करना अति उत्तम है क्योंकि यह कथा भी तो बहुधा गुप्त ही है और किसी किसी महात्मा की समझ में कभी २ आ जाती है। जैसा आरण्य कांड में कहा है—

दो०—पुरइन सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म ।
माया छन्न न देखिये, जैसे निर्गुण ब्रह्म ॥

और भी,

हर जगह मौजूद है पर वह नज़र आता नहीं ।
योग साधन के बिना उसको कोई पाता नहीं ॥

*विधि निषेधमय कलिमल हरनी। कर्म कथा रविनन्दिनि बरनी॥

शब्दार्थ—कलिमल=कलियुग के पाप। रविनन्दिनि=सूर्य की पुत्री अर्थात् यमुना जी॥

अर्थ—कर्तव्य और अकर्तव्य उपदेशों से भरी हुई कर्म कथा जो कलियुग के पापों की नाश करनेवाली है वही यमुना जी कही गई है (प्रयाग में गंगा, सरस्वती और यमुना इन तीन नदियों का सङ्गम है सो सन्त समाज में रामकथा, ब्रह्मकथा और कर्मकथा इन तीनों का सङ्गम बताया गया है)॥

चौ०—हरि‡हर कथा विराजत बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥
बट बिस्वास अचल†निज धर्मा। ‡‡तीरथराज समाज सुकर्मा॥

---

* विधि निषेधमय कलिमल हरनी। कर्म कथा रविनन्दिनि बरनी—
यमुना जी का मिलान कर्म कथा से करना भी अति उत्तम है, क्योंकि श्री कृष्ण जी ने बहुत से शुभ कर्म उसी के किनारे किये थे जैसे—अग्नि भक्षण, काली नाग नाथन, गोपियों को उपदेश आदि।

विधि निषेधमय के कुछ धर्म कर्म ये हैं—

दो०—यज्ञ दान तप अध्ययन, सत्य क्षमा धृति सोय।
अरु अलोभ गनि धर्म ये, आठ भांति ते होय॥

यमुना जी की प्रशंसा कवि शिरोमणि सूरदास जी यों करते हैं॥

राग राम कली—श्री यमुना तिहारो दरश मोहि भावै।
श्री गोकुल के निकट बहत हैं लहरन की छवि आवै॥
सुख करनी दुख हरनी यमुना जो जन प्रात नहावै।
मनमोहन को अति ही पियारी पटरानी कहलावै॥
वृन्दावन में रास रच्यो है मोहन मुरली बजावै।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन को वेद विमल यश गावै॥

‡ हरि हर कथा विराजत बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी—(राग विनोद से)

राग चंचरीक—जैति जैति जैति जैति जैति श्री त्रिवेनी॥
गङ्ग जमुन सरस्वती स्वर्ग की नसेनी। तीर्थ राज आय भई संगम सुख देनी॥
पाप ताप रोग शोक कलिमल की छैनी। दरश परश पान किये पातक हर लेनी॥
चारौ फल पाय दीन विहरै मुद सेनी। बरनत व्रज-चन्द भववारिध की खेनी॥

† अचल निज धर्मा—जैसा कि श्री मद्भगवद्गीता के तीसरे अध्याय में कहा है॥

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ ३५॥

अर्थात् अपने धर्म में प्राण दे देना यह भी उत्तम है, परन्तु दूसरे का धर्म ग्रहण करना दुःखों का स्थान है

‡‡ तीरथराज—(श्लोक)

शब्दार्थ — जंगम = चलनेवाला। तीरथराज = प्रयाग ॥

अर्थ — सन्तों का समाज आनन्द और मङ्गल से परिपूर्ण है। मान
चलने वाला प्रयाग ही हो ॥

सूचना — तुलसीदास जी सन्त समाज को प्रयाग तुल्य समझ उस
और प्रयाग की त्रिवेणी अक्षयवट आदि की समता आगे स्पष्टरूप से वर्ण

चौ०—*रामभक्ति जहँ सुरसरि धारा। ‡सरस्वति ब्रह्म विचार

शब्दार्थ — सुरसरि (सुर = देव + सरि = नदी) = देव नदी अ

अर्थ — (सन्त समाजरूपी प्रयाग में) श्री रामचन्द्र जी की भक्ति
की धार है और (निर्गुण) ब्रह्म के ज्ञान का विचार ही सरस्वती जी

---

* रामभक्ति जहँ सुरसरि धारा—गंगाजी की धार से श्री रामचन्द्र ज
का मिलान करने के अनेक कारणों में से मुख्य दो लिखे जाते हैं
(१) गंगाजी का जल बिगड़ता नहीं और निरन्तर बहता
नदियों के जल को भी गंगा जल बना देता है इसी प्रकार श्री राम
भक्ति क्रिया नष्ट होने पर भी निर्मल रह कर दूसरे भक्तों को भी भ
है। जैसा कहा है—

हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो ॥
इक नदिया इक नार कहावे मैलो नीर भरो।
जब मिल कर दोउ एक बरण भये, सुरसरि नाम पर

(२) गङ्गा जी में कोई भी प्राणी स्नान करने से मुक्ति का भागी हो
इसी प्रकार श्री रामचन्द्र जी की भक्ति के अधिकारी ऊंच नीच
आबाल वृद्ध सब ही हैं। यथा—

श्लोक—विष्णु पादाब्ज सम्भूते, गंगे त्रिपथ गामिनी।
धर्म द्रवीति विख्याते, पापं मे हर जान्हवी ॥

अर्थात् हे गंगा जी! तुम विष्णु जी के चरण कमलों से उत्पन्न हुई हो
तीन धाराएं तीनों लोक में बहती हैं, धर्म के कारण तुम दयालु हो
सो मेरे पापों को दूर करो ॥

‡ सरस्वति ब्रह्म विचार प्रचारा—सरस्वती जी स्पष्ट रूप से त्रिवेणी
नहीं दीखीं, कहीं २ उनकी लाल धारा किसी २ को दृष्टि पड़ती
बहती हैं ऐसा लोगों का कहना है सो इन का मिलान निर्गुण ब्रह्म
इसका कारण यह है क्योंकि यह कथा भी तो बहुधा गुप्त ही है
किसी महात्मा की कृपा से कहीं २ पा जाती है। जैसा आरण्य कांड में

दो॰—पुरइन सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म।
[illegible]

अर्थ—विष्णु जी और शिव जी की जो कथा है (अर्थात् कर्मकांड [illegible] कांड) यह वेनी के मिलने का स्थान है जिन के सुनने मात्र से सम्पूर्ण मंगल प्राप्त होते हैं। अपने धर्म में अचल विश्वास यही अक्षयवट है और स[illegible] सत्कर्म प्रयाग का और भी समाज है ॥

चौ०—सबहि सुलभ सब दिन सब देशा। सेवत सादर शमन कलेश[illegible]
अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ●सद्यफल प्रकट प्रभाऊ

शब्दार्थ—शमन = नाश करना। अकथ = जो कहने में न आवे। अलौकि[illegible] अद्भुत, परलोक का। सद्य = तुरन्त ॥

अर्थ—(सन्तरूपी प्रयाग) सब लोगों को सदैव सभी स्थान में सहज [illegible] मिल सक्ता है। यदि उस का आदर सहित सेवन किया जावे तो यह क्लेश नाश कर देता है। इस तीर्थराज की महिमा कही नहीं जा सक्ती, क्योंकि अद्भुत है और इस का यह प्रभाव प्रकट है कि शीघ्र ही फल दे देता है ([illegible] स्थानी प्रयाग में स्नान आदि करने से अर्थ धर्म, काम और मोक्ष योग्यतानुसार [illegible] में मिलते हैं परन्तु सत्सङ्गति में तो सब ही इच्छित फल तुरन्त ही मिल ज[illegible] जैसा आगे लिखा है) ॥

श्लोक—प्रयागं माधवं सोमं, भारद्वाजं च वासुकिं।
वन्दे अक्षयवटं शेषं, प्रयागं तीर्थ नायकं ॥

भाव यह कि तीर्थराज प्रयाग की समाज में माधव जी, सोमनाथ जी, भार[illegible] जी, वासुकी, अक्षयवट और शेषनाग जी हैं। इसी के अनुसार सन्तों की स[illegible] रूपी प्रयाग में (१) हरि पूजा माधव जी हैं, (२) भगवत् नाम का जाप सोम[illegible] जी, (३) सत्कथा भारद्वाज जी, (४) सम्पूर्ण व्रत वासुकी, (५) अपने धर्म दृढ़ विश्वास अक्षयवट और (६) कथा कीर्त्तन शेषनाग जी हैं ॥

● देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ जैसा कि श्री मद्भागवत में लिखा है.

श्लोक—न ह्यम्मयानि तीर्थानि, न देवा मृच्छिलामया.।
ते पुनन्त्युरुकालेन, दर्शना देव साधवः ॥

अर्थात् न तो जल वाले तीर्थस्थान और न मिट्टी या पाषाण की बनी देव मूर्तियाँ (जल्दी फल देती हैं) ये तो बहुत काल के पश्चात् पवित्र क[illegible] हैं परन्तु साधु तो दर्शनमात्र ही से पवित्र कर देते हैं ॥

दो०—सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग ।
लहहिं चार फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ॥२॥

शब्दार्थ—मज्जहिं = मग्न होते हैं, गोता लगाते हैं । अछत तनु = शरीर रहते ही, जीते जी ॥

अर्थ—सन्त समाजरूपी प्रयाग में (सत्सङ्गति महिमा) सुनना मानो अर्थ की प्राप्ति है, समझना यही धर्म है, मन का प्रसन्न होना यही काम (कामना की सिद्धि है) और विशेष प्रेम में मग्न हो जाना यही मोक्ष है । इस प्रकार जीते जी मनुष्य सभी बातें पा लेता है (परन्तु यथार्थ प्रयाग में तो इन की प्राप्ति शरीर छूटने पर होती है) ।

चौ०—मज्जनफल पेखिय ततकाला । *काक होहिं पिक ‡बकहु मराला ॥
सुनि आचरज करै जनि कोई । सत संगति महिमा नहिं गोई ॥
†वाल्मीकि नारद घटयोनी । निज निज मुखन कही निज होनी ॥

शब्दार्थ—पेखिय (प्रेक्ष)= देखिये । पिक = कोयल । मराल = हंस । गोई = छिपी हुई । घटयोनी = अगस्त्य ऋषि ॥

अर्थ—मग्न होने का फल शीघ्र दिखाई देने लगता है । जिस में कौआ तो कोयल और बगुला हंस हो जाता है (अर्थात् कौए के समान स्वभाव वाले कोयल के समान स्वभाव

---

* काक होहिं पिक—कौए से कोकिल हो जाने का कितना उत्तम उदाहरण तुलसीदास जी ने दिया है कि बहुत ही दुष्ट और मलीन कर्म करने वाले कठोर भाषी वाल्मीकि जी उत्तम कर्म करने वाले मधुर भाषी कोयल ही बन गये । जैसा कहा है—

श्लोक—कूजन्तं राम रामेति, मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविता शाखां, वन्दे वाल्मीकि कोकिलम् ॥

अर्थात् उन कोकिला स्वरूपी वाल्मीकि कवि जी को नमस्कार है जो कवितारूपी वृक्ष की शाखा पर बैठ कर 'राम राम' यही एक मधुर ध्वनि से कूजते रहे हैं ॥ सारांश—लूटमार और हत्या का काम छोड़ सत्सङ्गति से पूरे रामभक्त और आदि कवि बन गये ॥ [देखो वाल्मीकि जी का जीवन चरित्र] ॥

‡ बकहु मराला—ऐसे ही बगुले का हंस हो जाना नारद जी के जीवन चरित्र से स्पष्ट हो जाता कि वे शूद्र सेविका के पुत्र थे पर सज्जनों की सङ्गत से हंस रूप अर्थात् आचरण में परमहंस ही हो गये हैं ॥ ऐसे ही अगस्त्य जी को भी जानो ॥

† वाल्मीकि नारद घटयोनी । निज निज मुखन कही निज होनी ॥
वाल्मीकि जी ने अपना वृत्तान्त श्री रामचन्द्र जी से कहा था, (जब कि वे वनवास के समय उन के आश्रम में मिलने को गये थे) सो यों कि हे श्री रामचन्द्र जी ! मैं पहिले बड़ा दुष्ट था परन्तु किरातों के संग रह कर उन्हीं के कर्म करने लगा था ।
([illegible])

अर्थ — विष्णु जी और शिव जी की जो कथा है (अर्थात् कर्मकांड और ज्ञान कांड) यह बेनी के मिलने का स्थान है जिन के सुनने मात्र से सम्पूर्ण आनन्द मंगल प्राप्त होते हैं। अपने धर्म में अचल विश्वास यही अक्षयवट है और सम्पूर्ण सत्कर्म प्रयाग का और भी समाज है ॥

चौ०—सबहि सुलभ सब दिन सब देशा। सेवत सादर शमन कलेशा।
अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ*सद्यफल प्रकट प्रभाऊ॥

शब्दार्थ — शमन = नाश करना। अकथ = जो कहने में न आवे। अलौकिक = अद्भुत, परलोक का। सद्य = तुरन्त ॥

अर्थ — (सन्तरूपी प्रयाग) सब लोगों को सदैव सभी स्थान में सहज ही मिल सक्ता है। यदि उस का आदर सहित सेवन किया जावे तो यह क्लेशों नाश कर देता है। इस तीर्थराज की महिमा कही नहीं जा सक्ती, क्योंकि अद्भुत है और इस का यह प्रभाव प्रकट है कि शीघ्र ही फल दे देता है (अ स्थानी प्रयाग में स्नान आदि करने से अर्थ धर्म, काम और मोक्ष योग्यतानुसार काला में मिलते हैं परन्तु सत्सङ्गति में तो सब ही इच्छित फल तुरन्त ही मिल जा जैसा आगे लिखा है) ॥

श्लोक — प्रयागं माधवं सोमं, भारद्वाजं च वासुकिं ।
वन्दे अक्षयवटं शेषं, प्रयागं तीर्थ नायकं ॥

भाव यह कि तीर्थराज प्रयाग की समाज में माधव जी, सोमनाथ जी, भारद्वाज जी, वासुकी, अक्षयवट और शेषनाग जी हैं। इसी के अनुसार सन्तों की समाजरूपी प्रयाग में (१) हरि पूजा माधव जी हैं, (२) भगवत् नाम का जाप सोमनाथ जी, (३) सत्कथा भारद्वाज जी, (४) सम्पूर्ण व्रत वासुकी, (५) अपने धर्म दृढ़ विश्वास अक्षयवट और (६) कथा कीर्तन शेषनाग जी हैं ॥

* देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ जैसा कि श्री मद्भागवत में लिखा है.

श्लोक — न ह्यम्मयानि तीर्थानि, न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन, दर्शनादेव साधवः ॥

अर्थात् न तो जल वाले तीर्थस्थान और न मिट्टी या पाषाण की बनी देव मूर्तियाँ (जल्दी फल देती हैं) ये तो बहुत समय के पश्चात् पवित्र करती हैं परन्तु साधु तो दर्शनमात्र ही से पवित्र कर देते हैं ॥

दो०—सुनि समझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चार फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग॥२॥

शब्दार्थ—मज्जहिं=मग्न होते हैं, ग़ोता लगाते हैं। अछत तनु=शरीर रहते ही, जीते जी॥

अर्थ—सन्त समाजरूपी प्रयाग में (सत्सङ्गति महिमा) सुनना मानो अर्थ की प्राप्ति है, समझना यही धर्म है, मन का प्रसन्न होना यही काम (कामना की सिद्धि है) और विशेष प्रेम में मग्न हो जाना यही मोक्ष है। इस प्रकार जीते जी मनुष्य सभी बातें पा लेता है (परन्तु यथार्थ प्रयाग में तो इन की प्राप्ति शरीर छूटने पर होती है)।

चौ०—मज्जनफल पेखिय ततकाला। *काक होहिं पिक ‡बकहु मराला॥
सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई॥
†वाल्मीकि नारद घटयोनी। निज निज मुखन कही निज होनी॥

शब्दार्थ—पेखिय (प्रेक्ष)=देखिये। पिक=कोयल। मराल=हंस। गोई=छिपी हुई। घटयोनी=अगस्त्य ऋषि॥

अर्थ—मग्न होने का फल शीघ्र दिखाई देने लगता है। जिस में कौआ तो कोयल और बगुला हंस हो जाता है (अर्थात् कौए के समान स्वभाव वाले कोयल के समान स्वभाव

---

* काक होहिं पिक—कौए से कोकिल हो जाने का कितना उत्तम उदाहरण तुलसीदास जी ने दिया है कि बहुत ही दुष्ट और मलीन कर्म करने वाले कठोर भाषी वाल्मीकि जी उत्तम कर्म करने वाले मधुर भाषी कोयल ही बन गये। जैसा कहा है—

श्लोक—कूजंतं राम रामेति, मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविता शाखां, वन्दे वाल्मीकि कोकिलम्॥

अर्थात् उन कोकिला स्वरूपी वाल्मीकि कवि जी को नमस्कार है जो कविता रूपी वृक्ष की शाखा पर बैठ कर 'राम राम' यही कूक मधुर ध्वनि से करते रहे हैं॥ सारांश—लूटमार और हत्या का काम छोड़, सत्सङ्गति से पूरे रामभक्त और आदि कवि बन गये॥ [देखो वाल्मीकि जी का जीवन चरित्र]॥

‡ बकहु मराला—ऐसे ही बगुले का हंस हो जाना नारद जी के जीवन चरित्र से स्पष्ट हो जाता कि वे कुछ सेवकिनी के कुपढ़ पुत्र सज्जनों की सङ्गति से हंस रूप अर्थात् आचरण में परमहंस ही हो गये हैं॥ ऐसे ही अगस्त्य जी को भी जानो॥

† वाल्मीकि नारद घटयोनी। निज निज मुखन कही निज होनी॥
वाल्मीकि जी ने अपना वृत्तान्त श्री रामचन्द्र जी से कहा था (जब कि वे वनोवास के समय उन के आश्रम में मिलने को गये थे) सो कि हे श्री रामचन्द्र जी! मैं प्रचेता का पुत्र हूं परन्तु किरातों के साथ रह कर उन्हीं के कर्म करने लगा था।

(क्रमशः)

अर्थ — विष्णु जी और शिव जी की जो कथा है (अर्थात् कर्मकांड और ज्ञान कांड) यह वेनी के मिलने का स्थान है जिन के सुनने मात्र से सम्पूर्ण आनंद मंगल प्राप्त होते हैं। अपने धर्म में अचल विश्वास यही अक्षयवट है और समस्त सत्कर्म प्रयाग का और भी समाज है ॥

चौ०—सबहि सुलभ सब दिन सब देशा। सेवत सादर शमन कलेशा॥
अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ*सद्यफल प्रकट प्रभाऊ॥

शब्दार्थ — शमन = नाश करना। अकथ = जो कहने में न आवे। अलौकिक = अद्भुत, परलोक का। सद्य = तुरन्त ॥

अर्थ — (सन्तरूपी प्रयाग) सब लोगों को सदैव सभी स्थान में सहज ही मिल सक्ता है। यदि उस का आदर सहित सेवन किया जावे तो यह क्लेशों का नाश कर देता है। इस तीर्थराज की महिमा कही नहीं जा सक्ती, क्योंकि यह अद्भुत है और इस का यह प्रभाव प्रकट है कि शीघ्र ही फल दे देता है (अर्थात् स्थानी प्रयाग में स्नान आदि करने से अर्थ धर्म, काम और मोक्ष योग्यतानुसार कालान्तर में मिलते हैं परन्तु सत्सङ्गति में तो सब ही इच्छित फल तुरन्त ही मिल जाते हैं जैसा आगे लिखा है) ॥

श्लोक—प्रयागं माधवं सोमं, भारद्वाजं च वासुकिं ।
वन्दे अक्षयवटं शेषं, प्रयागं तीर्थ नायकं ॥

भाव यह कि तीर्थराज प्रयाग की समाज में माधव जी, सोमनाथ जी, भारद्वाज जी, वासुकी, अक्षयवट और शेषनाग जो हैं। इसी के अनुसार सन्तों की समाज रूपी प्रयाग में (१) हरि पूजा माधव जी हैं, (२) भगवत् नाम का जाप सोमनाथ जी, (३) सत्कथा भारद्वाज जी, (४) सम्पूर्ण व्रत वासुकी, (५) अपने धर्म में दृढ़ विश्वास अक्षयवट और (६) कथा कीर्तन शेषनाग जी हैं ॥

* देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ जैसा कि श्री मद्भागवत में लिखा है.

श्लोक—नह्यम्मयानि तीर्थानि, न देवा मृच्छिलामया. ।
ते पुनंत्युरुकालेन, दर्शनादेव साधवः ॥

अर्थात् न तो जल वाले तीर्थस्थान और न मिट्टी या पाषाण की बनी देव मूर्तियां (जल्दी फल देती हैं) ये तो बहुत समय के पश्चात् पवित्र करते हैं परन्तु साधु तो दर्शनमात्र ही से पवित्र कर देते हैं ॥

दो०—सुनि समझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग ।
लहहिं चार फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ॥२॥

शब्दार्थ—मज्जहिँ = मग्न होते हैं, गोता लगाते हैं । अछत तनु = शरीर रहते ही, जीते जी ॥

अर्थ—सन्त समाजरूपी प्रयाग में (सत्सङ्गति महिमा) सुनना मानों अर्थ की प्राप्ति है, समझना यही धर्म है, मन का प्रसन्न होना यही काम (कामना की सिद्धि है) और विशेष प्रेम में मग्न हो जाना यही मोक्ष है । इस प्रकार जीते जी मनुष्य सभी बातें पा लेता है (परन्तु यथार्थ प्रयाग में तो इन की प्राप्ति शरीर छूटने पर होती है)।

चौ०—मज्जनफल पेखिय ततकाला । *काक होहिं पिक ‡बकहु मराला ॥
सुनि आचरज करै जनि कोई । सतसंगति महिमा नहिं गोई ॥
†वाल्मीकि नारद घटयोनी । निज निज मुखन कही निज होनी ॥

शब्दार्थ—पेखिय (प्रेक्ष) = देखिये । पिक = कोयल । मराल = हंस । गोई = छिपी हुई । घटयोनी = अगस्त्य ऋषि ॥

अर्थ—मग्न होने का फल शीघ्र दिखाई देने लगता है । जिस में कौआ तो कोयल और बगुला हंस हो जाता है (अर्थात् कौए के समान स्वभाव वाले कोयल के समान स्वभाव

---

* काक होहिं पिक—कौए से कोकिल हो जाने का कितना उत्तम उदाहरण तुलसीदास जी ने दिया है कि बहुत ही दुष्ट और मलीन कर्म करने वाले कठोर भाषी वाल्मीकि जी उत्तम कर्म करने वाले मधुर भाषी कोयल ही बन गये । जैसा कहा है—

श्लोक—कूजंतं राम रामेति, मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविता शाखां, वन्दे वाल्मीकि कोकिलम् ॥

अर्थात् उन कोकिला स्वरूपी वाल्मीकि कवि जी को नमस्कार है जो कविता रूपी वृक्ष की शाखा पर बैठ कर 'राम राम' यही कूक मधुर ध्वनि से करते रहे हैं ॥ सारांश—लूटमार और हत्या का काम छोड़ सत्सङ्गति से पूरे रामभक्त और आदि कवि बन गये ॥ [देखो वाल्मीकि जी का जीवन चरित्र] ॥

‡ बकहु मराला—ऐसे ही बगुले का हंस हो जाना नारद जी के जीवन चरित्र से स्पष्ट हो जाता कि व कुछ वेदविदों के कुपढ़ पुत्र सज्जनों की सङ्गति से हंस रूप अर्थात् आचरण में परमहंस ही हो गये हैं ॥ ऐसे ही अगस्त्य जी को भी जानो ॥

† वाल्मीकि नारद घटयोनी । निज निज मुखन कही निज होनी ॥

वाल्मीकि जी ने अपना वृत्तान्त श्री रामचन्द्र जी से कहा था (जब कि वे वनोवास के समय उन के आश्रम में मिलने को गये थे) कि हे श्री रामचन्द्र जी ! मैं ब्राह्मण का पुत्र हूं परन्तु किरातों के संग रह कर उन्हीं के कर्म करने लगा था।

(निदान)

वाले हो जाते हैं और बगुले के समान जीव हन्स के तुल्य हो जाते हैं जैसा कि आगे है)। इस बात को सुनकर कोई अचरज न करे काहे से सत्सङ्गति का प्रभाव कुछ [illegible] नहीं है, देखो वाल्मीकि, नारद और अगस्त्य इन्हों ने अपनी दशा अपने ही मु[ख से] कही है (ये ही कोयल और हंस हो जाने के उदाहरण हैं, देखो टिप्पणी)॥

चौ०—*जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना॥
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहां जेहि पाई॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहु वेद न आन उपाऊ॥

शब्दार्थ—जहाना (फ़ारसी जहान)=जगत॥

अन्वय—जहाना जे (१) जलचर (२) थलचर (३) नभचर (४) [जड़] (५) चेतन नाना जीव। (तिन ने क्रमानुसार) (१) मति (२) कीरति (३) ग[ति] (४) भूति (५) भलाई जेहि जब जेहि जतन जहां पाई। सो सतसंग प्रभाऊ जान[ब] लोकहु वेद आन उपाऊ न॥

अर्थ—संसार में जितने (१) जल में रहने वाले (२) थल पर रहने वाले (३) आकाश में उड़ने वाले, (४) जड़ और (५) चैतन्य नाना प्रकार के जीवों ने [क्र]मानुसार जो (१) बुद्धि, (२) बड़ाई (३) गति, (४) ऐश्वर्य और (५)

निदान सन्त प्राणियों की सङ्गति से ऐसा सुधरा कि इस अवस्था को प्राप्त हुआ कि लोग मुझे महर्षि कहते हैं और मैं ब्रह्मा जी के वरदान से आदि कवि हो गया। (पूरा जीवन चरित्र अयोध्याकांड की श्री विनायकी टीका में मिलेगा)॥

जब श्री वेद व्यास जी को शान्ति न होती थी तब नारद जी ने अपनी कथ[ा] उन से यों वर्णन की थी कि अकाल पड़ने पर मेरी माता ने साधुओं की जूठ[न] से मेरा पालन किया था उसी के प्रभाव तथा उन्हीं की सङ्गति से मैं ब्रह्मा क[ा] पुत्र होकर देवर्षि कहलाने लगा। (पूरा वृत्तान्त आरण्य कांड की श्री विनायकी टीका की [illegible] में देखो)॥

घटयोनी अर्थात् अगस्त्य ऋषि ने शिव जी से कहा (जब कि '[illegible] [illegible] नाहीं। [illegible] [illegible] नाहीं') कि हे शिव जी! मेरी उत्पत्ति [illegible] है तो भी महात्माओं की कृपा और भक्ति प्रदान से मैं इस योग्यता को प्राप्त हुआ कि [illegible] [illegible] से [illegible] कर [illegible] भी [illegible] वर्णन करने [illegible] रहे हैं इत्यादि। [illegible] कथा [illegible] की श्री विनायकी टीका [illegible] [illegible] में है॥

* जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना—[illegible] [illegible] [illegible] की कथा [illegible] में मिलेगी, जड़ादि की कथा [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किष्किन्धा कांड की श्री विनायकी टीका [illegible] है। [illegible] [illegible] कांड में है॥

पवरी सब काहू किसी भी प्रकार से जिस ने जहां पाई है सो सब सत्सङ्ग ही के प्रभाव से जानो क्योंकि संसार अथवा वेद में कहीं भी कोई दूसरा उपाय नहीं है अर्थात् (१) जलचारी जीव राघव मत्स्य ने बुद्धि, (२) थलचारी जीव गजेन्द्र ने सद्गति, (३) नभचारी जटायु ने गति, (४) जड़ पाषाणरूपी अहल्या ने ऐश्वर्य और (५) चैतन्य हनुमान, सुग्रीव आदि ने भलाई पाई है। सो सब सत्संग ही के कारण से समझो, दूसरा कारण नहीं) ॥

चौ०–बिन सतसंग विवेक न होई। रामकृपा बिन सुलभ न सोई ॥
सतसंगति मुद मंगलमूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥

अर्थ – सज्जनों की सङ्गति के बिना ज्ञान नहीं होता सो सत्सङ्गति श्री रामचन्द्र जी की कृपा के बिना मिलना सहज नहीं है। सत्सङ्गति आनन्द और मङ्गल की जड़ है तथा उस का फल सिद्धि है, सम्पूर्ण साधनायें उस के फूल हैं (अर्थात् जिस प्रकार जड़ से वृक्ष, उस से फूल और फूल से फल होते हैं उसी प्रकार सत्सङ्गति से आनन्द मंगल उस से उपासना भक्ति और इन से मुक्ति मिलती है) ॥

चौ०–*शठ सुधरहिं सतसंगति पाई। ‡पारस परसि कुधातु सुहाई ॥
विधि वश सुजन कुसंगतिपरहीं। फनि मनि सम निज+गुन अनुसरहीं॥

शब्दार्थ – पारस (स्पर्शमणि)=एक प्रकार की पथरी जिस के संसर्ग से लोहा सोना हो जाता है। परसि (स्पर्श)=छूने से। कुधातु=लोहा। विधि वश= दैवयोग से ॥

---

* शठ सुधरहिं सतसंगति पाई—भर्तृहरि प्रवर का वचन भी विचार करने योग्य है, यथा-

श्लो०——जाड्यन्धियो हरति सिंचति वाचि सत्यम्,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्,
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥

अर्थात् बुद्धि की जड़ता को मिटाती, वाणी में सत्य को जुटाती, मान को बढ़ाती, पाप को घटाती, चित्त को प्रसन्न रखती और दिशाओं में यश फैलाती है, कहो तो सही, सत्सङ्गति पुरुष के हेतु क्या नहीं करती (अर्थात् सभी कुछ करती है) ॥

‡ पारस (स्पर्शमणि)=एक प्रकार की पथरी जिसके संसर्ग से लोहा सोना हो जाता है। आल्हखण्ड में लिखा है 'पारस पूजा है मड़ुवे में लोहा छुवत सोन हुइ जाय' ॥

\+ फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं—
दो०——बुद्धिमान गम्भीर को, संगति लागत नाहिं ।
ज्यों चन्दन ढिग अहि रहत, बिष न होत तेहि माहिं ॥

अर्थ — दुष्ट मनुष्य भी सज्जनों की संगति से सुधर जाते हैं जैसे पारस के छू
ही से लोहा सोना हो जाता है । दैवयोग से यदि सज्जन मनुष्य बुरी संगति में पड़
जावें तो वे अपने सद्गुणों को लिये रहते हैं जैसे सर्प के संग में रहकर
मणि अपने गुण को लिये रहती है ॥

चौ०—*विधि हरि हर कवि कोविद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी
सो मो सन कहि जात न कैसे । †शाकवणिक मणि गण गुण जैसे

शब्दार्थ — कोविद = पण्डित । शाक वणिक = तरकारी बेंचने वाला, कुँजड़ा

अर्थ — ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कवि और पण्डित लोग भी साधुओं की महि
नहीं कह सके । वह महिमा मुझ से किसी भी प्रकार नहीं कही जा सकती
प्रकार कुँजड़ा मणियों की परख नहीं कर सक्ता ॥

दो०—‡वन्दौं सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोउ ।
अंजुलि गत शुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोउ ॥

* विधि हरि हर कवि कोविद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी — देखो मह
रामायण में श्री शङ्कर जी अपने मुख ही से यों कहते हैं, यथा —

श्लो० — अहं विधाता गरुड़ध्वजश्च, रामस्य बाले समुपासकानाम्
गुणाननंतान् कथितुं न शक्तास्सर्वेषु भूतेष्वपि पावनतरां

अर्थात् शिव जी बोले कि हे पार्वती ! मैं, ब्रह्मा और विष्णु जी
श्री रामचन्द्र जी के भक्तों के अगणित गुणों को कहने की सामर्थ्य नहीं रख
क्योंकि वे सब तो सकल प्राणियों से पवित्र हैं ॥

और भी — वैराग्य सन्दीपिनी से —

सो० — को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा सन्त की ।
जिन के विमल विवेक, शेष महेश न कह सकत ॥

† शाक = भाजी तरकारी, जैसा कि भामिनी विलास में है —

श्लो० — दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा, मनोरथान् पूरयितुम् समर्थः ।
अन्यैर्नृपैर्यत्परि दीय मानं, शाकाय वास्याल्लवणाय वास्यात

अर्थात् दिल्ली का राजा हो हो या परमेश्वर हो तो वे मनोरथों को पू
कर सके हैं, परन्तु और दूसरे राजाओं का दान्य या तो तरकारी के लिये अथ
नमक के लिये होता है ॥

‡ वन्दौं सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोउ — इस के विषय में महात्
सुन्दर ने बड़ा ही सुन्दर कहा है —

सवैया — कोउ इक निन्दत कोउ इक वन्दत कोउ इक देत है आय के भक्षण ।
कोउ इक आय लगावत चन्दन कोउ इक डारत धूरि ततक्षण ॥
कोउ कहै यह मूरख दीसत कोउ कहै यह आप विचक्षण ।
'सुन्दर' काहू सों राग न द्वेष [illegible] के लक्षण ॥

अर्थ — समदर्शी सन्त लोगों की मैं वन्दना करता हूं जिन का न तो कोई हितुआ है और न अहितुआ। जैसे अँजुली में रक्खे हुए फूल दोनों हाथों को बराबर सुगन्ध देते हैं (अर्थात् सन्त लोग मित्र शत्रु को बराबर लेखते हैं ऐसे ही अँजुली में रक्खे हुए फूल दाहिने बायें हाथों को एक ही सी सुगन्ध देते हैं) ॥

दो०—सन्त सरल नित जगत हित, जानि स्वभाव सनेहु।
बाल विनय सुन कर कृपा, रामचरण रति देहु ॥ ३ ॥

अर्थ — सन्त लोग सीधे स्वभाव वाले और संसार के हित करने हारे हैं वे मेरे सच्चे भाव और प्रेम की पहिचान करें तथा मुझ बालक की विनती सुन कर कृपा करें और श्री रामचन्द्र जी के चरणों में मेरी प्रीति लगावें ॥

(४. खलगणों की वन्दना)

चौ०—बहुरि वन्दि †खल गण सतिभाये। जे ‡बिन काज दाहिने बाँये॥

शब्दार्थ — सतिभाये = सीधे स्वभाव से (छल कपट से किम्वा द्वेष भाव से नहीं)।

और भी — श्री मद्भगवद्गीता के १२वें अध्याय में यों कहा है —
'समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः' ॥ १८ ॥
अर्थात् (सन्त जन) शत्रु और मित्र तथा मान और अपमान सब को एकसा लेखते हैं ॥

और भी — उत्तरकाण्ड में कहा है —
चौ० — सम अभूत रिपु विमद विरागी। लोभामर्ष हर्ष भय त्यागी ॥

† खलगण — इस शब्द की व्युत्पत्ति अर्थ सहित सुभाषित रत्न भाण्डागार में यों बताई है —
श्लो० — विशिख व्यालयोरन्त्य, वर्णाभ्यां यो हि निर्मितः।
परस्य हरति प्राणान्नैतच्चित्रं कुलोचितम् ॥
अर्थ — जो शब्द 'विशिख' और 'व्याल' इन शब्दों के अन्त्य अक्षरों से बना है (अर्थात् विशिखः का अन्तिम अक्षर 'ख' और व्याल का अन्त्य अक्षर 'ल' इस प्रकार 'खल' शब्द की व्युत्पत्ति है) दूसरों के प्राणों का हरण करता है यह कुछ अचरज नहीं है कुल के योग्य ही है (अर्थात् विशिख प्राण हरता है और व्याल भी प्राण हरता है इन दोनों से जो उत्पन्न है वह और भी बढ़कर प्राण हरता होवेहीगा, जैसा अयोध्याकाण्ड में कहा है। —
दो० — बायस तें बारज कठिन, होर दाप नहिं मोर।
कुलिश कठिन तें कोमलहिं, होत बराबर कठोर।

‡ जे बिन काज दाहिने बाँये — इसी आशय को भर्तृहरि जी ने नीतिशतक में यों कहा है — 'ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे' अर्थात् जो मनुष्य बिना मतलब ही के दूसरों के हित का नाश करते हैं, हम नहीं जानते कि उन्हें किस नाम से पुकारें (क्योंकि उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तो गिना चुके हैं)। और भी —

(क्रमशः)

चौ०—*हरि हर यश राकेश राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से ॥

शब्दार्थ—राकेश (राका = पूर्णमासी + ईश = स्वामी) = पूर्णमासी की रात्रि का स्वामी अर्थात् पूर्णचन्द्रमा। सहसबाहु [सहस = हज़ार + बाहु = भुजा] = हज़ार भुजा वाला अर्थात् कार्तवीर्य ॥

अर्थ—ये विष्णु जी और शिव जी के यशरूपी चन्द्रमा को राहु के तुल्य [ग्रहण लगाने वाले] हैं और ये ही दूसरों की हानि करने को कार्तवीर्य के समान हज़ार भुजा वाले योधा बन जाते हैं ॥

चौ०—जेपरदोपलखहिं †सहसाखी। परहित घृत जिनके मनमाखी ॥

---

* हरिहर यश राकेश राहु से। आदि—हरिहर का यश पुरीनी में मिलेगा, राहु और सहसबाहु की कथा परशुराम सम्वाद में मिलेगी ॥

दुष्ट जन हरि कथा में कई प्रकार से बाधा डालते हैं सो नीचे लिखे हुए श्रोताओं के प्रकार से विदित होगा :—

दो०—इक श्रोता सौता तथा, सोता सोंटा जान।
शरमौता अरु सिलवटा, और सरौता मान ॥

अर्थात् ईश्वर के गुणानुवाद सुनने वाले सात प्रकार के होते हैं—

(१) श्रोता = चित्त लगाकर, मन से सुनने वाले।
(२) सौता = कथा सुनने को तो जावें पर ध्यान न देवें।
(३) सोता = जो कथा के समय आलस और नींद के वश रहें।
(४) सोंटा = जो बहुत देरी से कथा सुनने आवें।
(५) शर्मौता = जो लज्जावश कथा न सुन।
(६) सिलवटा = जो कथा सुनकर समझें नहीं (मूर्ख)
(७) सरौता = जो कथा के समय अनेक कुतर्कों से कथा के आशय को काटें और उस में विश्वास न रख कर ईश्वर की निन्दा करें।

† सहसाखी (सहस = हज़ार + आखी (अक्षि) = आँख) = हज़ार नेत्रों से। परन्तु ऐसा अर्थ करने में हज़ार आँखों से दोषों को देखना यह पुनरुक्ति हो जायेगी, क्योंकि आगे तुलसी दास जी ने लिखा है 'सहस नयन पर दोष निहारा' जो इन्द्र के साथ तुलना करने में उचित ही है। इसहेतु सहसाखी का अर्थ यहाँ पर (सहसा = एक दम से + आखी = आँख) = एक दम से आँख का पड़ना अर्थात् 'बहुत जल्दी देख लेना' ऐसा उचित होगा। दुष्ट लोग दूसरों के थोड़े से ही अपगुण को जल्दी देख लेते हैं, जैसा कहा है—

श्लो०—खलः सर्षप मात्राणि, परच्छिद्राणि पश्यति।
आत्मनो बिल्व मात्राणि, पश्यन्नपि न पश्यति।

अर्थात् दुष्ट मनुष्य सरसों सरीखे (छोटे) दूसरे के दोषों को देख लेता है परन्तु बेल के सदृश अपने बड़े दोष को देखता हुआ भी अनदेखता सा कर देता है ॥

समान हैं तथा जो पाप और दुर्गुणरूपी धन से तो मानो कुबेर ही हैं [
तीखे, क्रोधी और पापी तथा दुर्गुणी हैं] ॥

चौ०—†उदय केतु सम हित सब ही के। ‡कुम्भकरण सम सोवत

शब्दार्थ—केतु = पुच्छलतारा।

अर्थ—पुच्छलतारे की नाईं बढ़ती पाकर [खल] सब ही के हितक
अर्थात् जिस प्रकार पुच्छलतारे का उदय होना बहुधा राजा प्रजा के लिये
उसी प्रकार खलों का अधिकार बढ़ना भी लोगों को हानिकारक
हित' का अर्थ 'अहित' व्यंग्य से समझना चाहिये)। ये लोग यदि
ी नाईं सोते रहें तो अच्छा है (अर्थात् लोग इन के उपद्रवों से बचे

---

† उदय केतु सम हित सब ही के—केतु, धूमकेतु अथवा पुच्छलतारा व
जो कभी २ रात्रि के समय कई दिनों तक दिखाई देता है, और
एक लम्बी प्रकाश की पूँछ सी दीख पड़ती है। यह पूँछ बहा
होती है, इसहेतु इसे बहारू का तारा भी कहते हैं, यूरुपनिवासी
की नाईं इस के उदय को युद्ध, मरगी दुर्भिक्ष तथा किसी
राजा की मृत्यु की सूचना देने वाला समझते थे, परन्तु अब यू
तिर्विदों ने यह सिद्ध कर लिया है कि धूमकेतुओं का उदय निय
अन्तर से, हुआ करता है और उन के भ्रमण करने की नियमित
हैं तथा ये सौर जगत के अङ्ग भी हैं। एक धूमकेतु अपने आवि
साहब के नाम से प्रसिद्ध है, यह केतु अंडाकार कक्षा में भ्रमण
और सूर्य से तीन अरब ५० करोड़ मील दूर तक जाता है।
कक्षा पर घूमने में लगभग ७५ वर्ष के लगते हैं। माध्याकर्षण
लेकर और भी दो धूमकेतुओं की गतिविधि का निश्चय किया

ज्योतिर्विदों ने केतुओं के तीन भेद लिखे हैं, पहिला वह
उज्ज्वल सा तारा और दुमसी हो, दूसरा भी पहिले की नाईं
परन्तु उस के तारे के भीतर से और तारागण भी दृष्टि पड़ते रहें
तीसरा वह जिसमें उज्ज्वल तारा न रहकर धुएँ का गुब्बार सा
पड़ता है॥

‡ कुम्भकरण सम सोवत नीके—कुम्भकरण ने तपस्या करके यही व
था कि मैं छः मास तक सोया करूं। इसी कारण कदाचित
और बहुत से उपद्रव बचते थे। इसका जीवन चरित्र आगे इ
मिलेगा।

अर्थ—जो दूसरों के अवगुणों को आंख गड़ा के ही देखते हैं [अर्थात् शीघ्रता से देखते हैं] और दूसरों का भला यही मानो घी है उस के लिये मक्खी बन जाते हैं [अर्थात् दूसरों के काम बिगाड़ने में वे अपने प्राण भी तक कर देते हैं]॥

चौ०—तेज कृशानु रोष *महिषेशा। अघ अवगुण धन धनिक धनेशा।

शब्दार्थ—कृशानु = अग्नि। धनेशा (धन + ईश) = धन के स्वामी।

अर्थ—जिन का तेज अग्नि के समान और क्रोध यमराज अथवा महि

---

* महिषेशा—(१) यमराज—वेदों के अनुसार 'यम' मृत्यु के देवता हैं जि साथ मृतक प्राणियों की आत्मा रहती है। इन के जन्मदाता सूर्य और इन की स्त्री संज्ञा हैं। ये वैवस्वतमनु और यमुना के भाई हैं। इन हरा, वस्त्र लाल और स्वरूप भयङ्कर है। इन का वाहन महिष है इस इन का नाम महिषेश है। इन के हथियार दण्ड और पाश हैं। हे विजया और सुशीला इन की स्त्रियाँ हैं। इन के अनेक नाम हैं यथा— अन्तक, काल, कृतान्त, शमन, दण्डधर, भीमसेन, पाशी, पितृपति, प्रेतराज देव, वैवस्वत, औदुम्बर और धर्मराज। मरने पर प्राणियों की आत्मा के द्वारा इन्हीं के पास न्याय के हेतु जाती है जहाँ चित्रगुप्त जी उस के का हिसाब किताब पढ़ सुनाते हैं और फिर आत्मा को कर्मानुसार स्वर्ग नरक या पुनर्जन्म के हेतु मृत्यु लोक का वास दिया जाता है। ये द दिशा के स्वामी हैं। इस हेतु इन्हें दक्षिणाशापति कहते हैं। यम के नाम एक धर्मशास्त्र प्रसिद्ध है॥

(२) महिषासुर दैत्य—रम्भ नाम के दानव को महिषी से जो पुत्र हुआ था, उस का नाम महिषासुर है। इसने हेमगिरि पर केवल वायु के आ से रह कर कठिन तपस्या की। ब्रह्मदेव ने प्रकट हो कर इसे वरदान देना चा यह अमरत्व चाहता था और जब यह वरदान न मिल सका तो उस ने कि स्त्रीरूप छोड़ कर किसी से मेरा वध न हो। ब्रह्मा जी ने कहा ऐसा होवे वरदान पाते ही इस ने अपने राक्षसी स्वभाव के अनुसार उपद्रव आरम्भ कर दिया। इसने बहुत से बलवान् राक्षसों को अपने अधिकार बड़े पदों पर नियत करके इन्द्र को युद्ध में परास्त किया। जब इस प्राणियों को दुःख पहुँचने लगा तब आदि शक्ति ने अठारह भुजा धारण किया। जब यह हाल महिषासुर को मालूम हुआ तब से राक्षस उन से लड़ने को भेजे। वे सब मारे गये। तब यह देवी स्वरूप से लड़ने को गया। देवी जी के साथ इस क्रोधी घोर युद्ध हुआ निदान यह उन्हीं के हाथ से मारा गया (सविस्त भागवत में है)॥

पृथु के समान जान उन्हें प्रणाम करता हूं क्योंकि वे दूसरों के अवगुण सुनने के लिये मानो दश हज़ार कान वाले हो जाते हैं [भाव यह है कि जैसे पृथु जी ने 'अघ पर' अर्थात् पापों से रहित परमेश्वर के गुणानुवाद सुनने के हेतु दश हज़ार कानों की शक्ति मांग ली थी] इसी प्रकार खल जन दूसरों के दोष इस रीति से ध्यान लगाकर खोज खोज कर सुनते हैं जैसे कोई दश हज़ार कान वाला मनुष्य सुने ॥

चौ०—बहुरि शक्र सम विनवौं तेही। संतत सुरानीक हित जेही ॥
वचन वज्र जेहि सदा पियारा। †सहस नयन परदोष निहारा ॥

शब्दार्थ—शक्र = इन्द्र। सुरानीक = (१) (सुर = देवता + अनीक = सेना) = देवताओं की सेना, (२) (सुरा = मदिरा + नीक = अच्छी) = अच्छी मदिरा ॥

अर्थ—फिर मैं दुष्टों को इन्द्र के समान मान कर प्रणाम करता हूं क्योंकि जिस प्रकार इन्द्र को देवताओं की सेना प्यारी है वैसे ही खलों को मदिरा बहुतही हितकारी जान पड़ती है। जिस प्रकार इन्द्र को वज्र प्यारा है उसी प्रकार खलों को वज्र समान वचन प्यारा है और जिस प्रकार इन्द्र ने हज़ार नेत्रों से 'दोष पर' अर्थात् दोषों से रहित रामचन्द्र जी के विवाह उत्सव को बड़े चाव से देखा था उसी प्रकार ये दूसरों के दोषों को बड़ी चाव से देखने के लिये मानो हज़ार आंखवाले होजाते हैं॥

दो०—*उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खल रीति।
जानि पानि जुग जोरि कर, विनती करौं सप्रीति ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—उदासीन (उद् = अलग + आसीन = बैठा हुआ) = अलग बैठा हुआ, मध्यस्थ ॥

अर्थ—खलों की यह रीति है कि वे मध्यस्थ, शत्रु अथवा मित्र सभी का हित सुनते ही जल जाते हैं यह समझ कर मैं दोनों हाथों को जोड़ कर प्रेम सहित विनय करता हूं (अर्थात् दुष्ट प्रकृति वाले यदि पढ़े लिखे हुए तो भाषा या कविता

---

† सहस नयन परदोष निहारा—रामचन्द्र जी के विवाह उत्सव के समय सम्पूर्ण देवता एकत्र हुए थे। उस समय ब्रह्मा ने आठ आँखों से, स्वामिकार्तिक ने १२ आँखों से शिवजी ने पन्द्रह आँखों से और इन्द्रने हज़ार आँखों से श्री रामचन्द्र जी की छवि को निहारा था, यथा—
'रामहिं चितव सुरेश सुजाना। गौतम श्राप परम हित माना ॥
देव सकल सुरपतिहिं सिहाहीं। आज पुरन्दर सम कोउ नाहीं ॥'

* उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति—जैसा कहा है—
दो०—पर सुख सम्पति देखि सुन, जरहिं जे जड़ बिन आग।
तुलसी तिन के भाग ते, चलत भलाई भाग ॥

चौ०—पर‡अकाज लग तनु परिहरिहीं। जिमि हिमउपल कृषीदल गरं

शब्दार्थ—हिम उपल = ओला। गरहीं = गल जाते हैं॥

अर्थ—दूसरे को हानि पहुँचाने के हेतु ये लोग आप भी मर मिटते हैं ओले खेती का नाश कर आप भी गल जाते हैं॥

चौ०—†वन्दौं खल जस शेष सरोषा। सहस बदन बरनैं पर दोषा।
पुनि प्रणवौं पृथुराज समाना। पर अघ सुनैं सहस दश कान

शब्दार्थ—सहस बदन [सहस वदन] = हज़ार मुँह से। प्रणवौं = प्र करता हूं। सरोषा = तेजस्वी॥

अर्थ—फिर भी मैं खलों को तेजस्वी सर्पराज के समान समझता हूं जो के दोषों को वर्णन करने में मानो हज़ार मुँह वाले बन जाते हैं [भाव यह है जिस प्रकार तेजस्वी शेष नाग जी अपने हज़ार मुँह से 'दोष पर' अर्थात् से परे ऐसे विष्णु जी के गुणानुवाद वर्णन करते हैं इसी प्रकार दुष्ट जन बड़ी चप से दूसरों के दोष वर्णन करने की कई प्रकार से चेष्टा करते हैं]। फिर मैं महा

---

‡ पर अकाज लग तनु परिहरिहीं—

कुण्डलिया—साईं सन अरु दुष्टजन, इनको यही स्वभाव।
खाल खिचावैं आपनी, पर बंधन के दाँव॥
परबंधन के दाँव, खाल अपनी खिचवावैं।
मूड़ काटि कै धरैं, तऊ पुनि बाज न आवैं॥
कह गिरधर कविराय, जरैं अपनी कुटिलाई।
जल में गिर सड़ गये, तऊ छोड़ी न खुटाई॥

† बन्दौं खल जस शेष सरोषा—दुष्ट निंदक प्राणियों के पैर पकड़ कर ही निंदा आदि बचा सक्ते हैं। जैसा कहा है—

दो०—तुलसी निन्दक वन्दियो, इहि सम और न जोर।
चरण गहत शिर कटि गयो, जिमि सेंधे को चोर॥

अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि अपने निन्दा करने वाले के चरण गह लेना ही उचित है क्योंकि इस के समान और दूसरा उपाय नहीं है। जैसे सेंध लगाकर पैर के बल किसी के मकान में घुसने वाले चोर के यदि मकान वाला चरण गह लेवे तो चोर के साथी ही उस का सिर काट कर ले जाते हैं अपने को कुछ विशेष उपाय नहीं करना पड़ता यदि उनसे झगड़ा करने का उद्योग करें तो उस में अपनी ही बड़ी हानि कदाचित् प्राण हानि तक होना सम्भव है॥
और भी अयोध्याकांड में 'चोर नारि जिमि प्रकट न रोई' का अर्थ देखो॥

के समान जान उन्हें प्रणाम करता हूं क्योंकि वे दूसरों के अवगुण सुनने
लिये मानो दश हज़ार कान वाले हो जाते हैं [भाव यह है कि जैसे
जी ने 'अघ पर' अर्थात् पापों से रहित परमेश्वर के गुणानुवाद सुनने
हेतु दश हज़ार कानों की शक्ति मांग ली थी] इसी प्रकार खल जन दूसरों के
इस रीति से ध्यान लगाकर खोज खोज कर सुनते हैं जैसे कोई दश हज़ार
वाला मनुष्य सुने ॥

१०–बहुरि शक्र सम विनवौं तेही । संतत सुरानीक हित जेही ॥
वचन वज्र जेहि सदा पियारा । सहस नयन परदोष निहारा ॥

शब्दार्थ – शक्र = इन्द्र । सुरानीक = (१) (सुर = देवता + अनीक = सेना)
देवताओं की सेना, (२) (सुरा = मदिरा + नीक = अच्छी) = अच्छी मदिरा ॥

अर्थ – फिर मैं दुष्टों को इन्द्र के समान मान कर प्रणाम करता हूं क्योंकि जिस
प्रकार इन्द्र को देवताओं की सेना प्यारी है वैसे ही खलों को मदिरा बहुतही हितकारी
र पड़ती है । जिस प्रकार इन्द्र को वज्र प्यारा है उसी प्रकार खलों को वज्र
समान वचन प्यारा है और जिस प्रकार इन्द्र ने हज़ार नेत्रों से 'दोष पर' अर्थात्
दोषों से रहित रामचन्द्र जी के विवाह उत्सव को बड़े चाव से देखा था उसी
प्रकार ये दूसरों के दोषों को बड़ी चाव से देखने के लिये मानो हज़ार आंखवाले होजाते हैं॥

दो०–उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खल रीति ।
जानि पानि जुग जोरि कर, विनती करौं सप्रीति ॥ ४ ॥

शब्दार्थ – उदासीन (उद् = अलग + आसीन = बैठा हुआ) = अलग बैठा
हुआ, मध्यस्थ ॥

अर्थ—खलों [illegible] है कि वे मध्यस्थ, शत्रु अथवा मित्र सभी का हित
सुनते ही [illegible] हाथों को जोड़ कर प्रेम सहित
विनय [illegible] लिखे हुए तो भाषा या कविता

[illegible] जी के विवाह उत्सव के समय सम्पूर्ण
ब्रह्मा ने आठ आँखों से, स्वामिकार्तिक ने १२
[illegible] आँखों से श्री रामचन्द्र
[illegible]
माता ॥
[illegible] नारी, ॥
ऐसा कहा है—
[illegible] खल दिन रात ।
भलाई भाग ॥

के दोष निकालने लगते हैं और जो अपढ़ हुए तो अनेक कुतर्क उठाने लगें इस हेतु कवि जी विनय करते हैं कि मेरे ऊपर कृपा दृष्टि रखिये)॥

चौ०—मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। *तिन निज ओर न लाउब भोरा॥
‡पायस पालिय अति अनुरागा। होहिं ×निरामिष कबहुँ कि कागा॥

शब्दार्थ—पायस = खीर से। निरामिष (निः = विना + आमिष = मांस): विना मांस॥

अर्थ—मैं ने अपनी ओर से तो विनती की है परन्तु वे अपनी ओर सीधे न चलेंगे। जिस प्रकार कौए को खीर खिलाकर बड़े प्रेम से भी पालें, क्या वह मांसखाना छोड़ देगा? (अर्थात् विनती से दुष्ट नहीं पसीजते जैसे प्रेम से खीर खिलाने पर भी मांस खाना नहीं छोड़ते)॥

(५. सन्त और, असन्तों की वन्दना)

चौ०—वन्दौं †संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना॥
बिछुरत एक प्राण हरिलेहीं। मिलत एक दारुण दुख देहीं॥

---

* तिन निज ओर न लाउब भोरा—जैसा कि किसी कवि ने कहा है—

श्लो०—बहुभिर्यत्न विधानैर्न भवति सरला खल प्रकृतिः।
नलिका गतमपि सुचिरं न भवति सरलं शुनः पुच्छम्॥

अर्थात् बहुत से उपायों के करने पर भी दुष्ट मनुष्य का स्वभाव सुधरता नहीं है जिस प्रकार कुत्ते की पूँछ नली में डाल कर रखने पर भी टेढ़ी की टेढ़ी बनी रहती है (तभी तो कहावत प्रसिद्ध है कि १२ वर्ष कुत्ते की पूँछ पुँगरिया में रक्खी, जब खोली तब टेढ़ी की टेढ़ी)॥

‡ 'पायस' का पाठान्तर 'बायस' भी है परन्तु इस में पुनरुक्ति दोष होता है।

× होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा:—

जाको परो सुभाव जाय नहिं जीसों। नीम न मीठो होइ सींच गुड़ घी सों॥

और भी—

सवैया—प्याज कि गांठ कपूर मिलाय के बेर पचासक धोय मँगाई।
केशर की पुट दीसक दै पुनि चन्दन वृक्ष कि छाँह सुखाई॥
बेला कलीन लपेट धरी तऊ आखिर बास वही फिर आई।
वैसहि नीच कुजाति कि प्रकृति कोटि करौ पै कुटेक न जाई॥

† वन्दौं सन्त असज्जन चरना—इस में कोई २ यह शंका कर बैठते हैं कि गोस्वामी जी ने साधुओं की वन्दना करके असाधुओं की वन्दना पृथक् की है अब फिर यहाँ साधु और असाधु दोनों को मिला कर क्यों वन्दना की है? इस का समाधान यह है कि मिलाकर वन्दना करने २ तुलसीदास जी ने यह स्पष्ट दरशा दिया है कि साधु और असाधु दोनों का उत्पत्तिस्थान एक जगत् ही है परन्तु (१) अपने कर्म करने से और (२) सज्जनों की संगति से

शब्दार्थ – दुखप्रद = दुःख देने वाला। उभय = दोनों ॥

अर्थ – अब सन्त और असन्तों के चरणों की प्रणाम करता हूं दुःखदायी तो दोनों वर्णन किये गये हैं परन्तु कुछ भेद के साथ (सो यों कि) सन्त लोग यदि बिछुड़ जाँय तो प्राणों को हर लेवें और असन्त लोग यदि मिल जावें तो कठिन पीड़ा पहुंचावें (अर्थात् सज्जनों का वियोग असह्य होकर कभी कभी प्राणहानि कर डालता है जैसा कि दशरथ जी के विषय में गोसाईं जी ने इसी काण्ड के १६वें सोरठे में कहा है–'बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तनु तृण इव परिहरेउ' और दुर्जनों के मिलने से दारुण दुःख का प्रमाण उत्तरकांड से–यह है 'जिमि कुठार चन्दन आचरणी') ॥

चौ०–*उपजहिं एक संग जल माहीं। जलज जोंक जिमि गुण बिलगाहीं
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू

शब्दार्थ – सुरा = मदिरा। जनक = पिता। अगाधू = अथाह ॥

अर्थ – (यद्यपि) एक ही साथ जल में उत्पन्न होते हैं (तौ भी) कमल और जोंक इन के गुण भिन्न भिन्न होते हैं (अर्थात् जल से उत्पन्न कमल में सुगन्ध, ठंडक और सुन्दरता रहती है और उसी जल से उत्पन्न जोंक में घिनौनापन, रक्त पीना और डरावनी सूरत होती है)। साधु और असाधु क्रमानुसार अमृत और मदिरा के तुल्य होते हैं और उन का उत्पत्तिस्थान क्रमानुसार संसार और समुद्र मात्र है (अर्थात् साधु और असाधु दोनों एक ही जगत् में उत्पन्न होते हैं परन्तु उन के गुण पृथक् पृथक् हैं जिस प्रकार अमृत और मदिरा एक ही समुद्र से उत्पन्न हुए हैं तौ भी उन के गुण अलग अलग हैं)॥

मनुष्य साधु हो जाते हैं वैसे ही (१) बुरे कर्म करने से और (२) बुरी संगति से लोग असाधु हो जाते हैं न उन का कोई अलग देश है, न जाति, न कुल और न कोई भिन्न रूप है जिससे साधु और असाधु पहिचाने जावें यनके तो लक्षणमात्र ही पहिचान कराने वाले हैं ॥

* उपजहिं एक संग जल माहीं–

दो०–एक उदर यादी समय, उपज न इक सी होय।
जैसे काँटे बेर के, बाँके सीधे जोय ॥

कमल का गुण रक्तवर्धक है (देखो पृ० १५) और जोंक का गुण रक्तशोषक है जैसा कहा है –

दो०–दोषहि को उमहै गहै, गुण न गहै खल लोक।
पियै रुधिर पय ना पियै, लगी पयोधर जोंक ॥

चौ०—भल अनभल निजनिज करतूती । लहत सुयश अपलोक विभूति ।
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू । गरल अनल कलिमल सरि व्याधू ।
गुण अवगुण जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ।

शब्दार्थ — सुधा = अमृत । सुधाकर (सुधा = अमृत + कर = किरण) = अमृतमयी किरणों वाला, चन्द्रमा । गरल = विष । कलिमल सरि = कर्मनाशा नदी

अर्थ — भले और बुरे अपनी अपनी करनी के अनुसार सुकीर्त्ति की शोभा और अपकीर्त्ति की दुर्दशा को पाते हैं । अमृत, चन्द्रमा और गङ्गा नदी ये साधुओं के तुल्य हैं । विष, अग्नि और कर्मनाशा नदी ये असाधुओं के सदृश हैं (अर्थात् साधुओं में अमृत की नाईं अमरता, चन्द्रमा के तुल्य शीतलता और गङ्गा जी के समान पाप दूर कर देने की शक्ति है इसी प्रकार असाधुओं में विष की नाईं मृत्यु अग्नि तुल्य दाहकता और कर्मनाशा नदी के समान पुण्य हर लेने की शक्ति है) ॥

दो०—भलो भलाई पै लहइ , लहइ निचाई नीच ।
सुधा सराहिय अमरता , गरल सराहिय मीच ॥ ५ ॥

अर्थ — भला तो भलाई के लिये रहता है और नीच ओछेपन को पकड़ता [illegible] अमृत की अमर कर देने का गुण सराहना करने के योग्य है परन्तु विष में [illegible] का गुण सराहनीय है ॥

*खल गहग्रगुण साधुगुण गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥
तेहि ते कछु गुणदोष बखाने । संग्रह त्याग न बिन पहिचाने ॥

शब्दार्थ—गाहा (सं० गाथा) = कथा । अवगाहा = गहरा ॥

अर्थ—दुष्ट तो दुर्गुणों का और सज्जन गुणों का ग्रहण करते हैं और दोनों ...री गहरे समुद्र के समान हैं (अर्थात् न तो दुष्टों के अवगुणों का लेखा लग ... है और न सज्जनों के गुणों का)। इसहेतु उन के थोड़े से गुण और दोष ... किये हैं काहे से कि बिना पहिचाने उन का सङ्ग अथवा त्याग नहीं हो सक्ता ...र्थात् कहे हुए गुणों में से जिस में कुछ गुण मिलें उसे सन्त समझो और जिस ...गुण पाये जायँ उसे दुष्ट जान लो)॥

०—भलेउ पोच सब विधि उपजाये। गनि गुन दोष वेद बिलगाये॥
कहहिं वेद इतिहास पुराना। विधि प्रपंच गुण अवगुण साना॥

अर्थ—भले बुरे सब ब्रह्मा ने पैदा किये हैं और वेदों ने गुणों तथा अव...ों के विचार से उन का भेद बताया है। वेदों, इतिहासों और पुराणों का कहना ...कि ब्रह्मा की सृष्टि में गुण और अवगुण मिले हुए हैं॥ (सो यों कि)

०—दुख सुख पाप पुण्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिय सजीवन माहुर मीचू॥

अर्थ—दुःख और सुख, पाप और पुण्य, दिन और रात, सज्जन और दुष्ट, ...ाति और कुजाति दैत्य और देवता, ऊँचा और नीचा, जिलाने वाला अमृत ...र मारने वाला विष॥

०—†माया ब्रह्म जीव जगदीशा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीशा॥

---

* इस पर प्रमाण—

दो०—गुण में औगुण खोजहीं, दिये न समझैं नीच ।
ज्यों सूरी के खेत में, सूकर खोजत कीच ॥

† माया ब्रह्म जीव जगदीशा । लच्छि अलच्छि रंक अवनीशा ॥
किसी २ ग्रन्थ में यह पंक्ति क्षेपक मान छोड़ दी गई है, ऐसा करने से दो बातों का निर्णय भली भांति से हो जाता है सो यों कि (१) 'विधि प्रपंच गुण अवगुण साना' इस के अनुसार ब्रह्म की सृष्टि में ब्रह्म के बनाये हुए ब्रह्म माया आदि तो हैं ही नहीं उस के बनाये हुए कैसे कहें। (२) 'माया ब्रह्म'

काशी मग सुरसरि क्रमनाशा । मरु मालव महिदेव गवासा ।
स्वर्ग नरक अनुराग विरागा । निगम अगम गुण दोष विभागा ।

अर्थ—माया और ब्रह्म, जीव और जगदीश, लक्ष्मी और दरिद्रा, भिखारी और राजा । काशी और मगधदेश, गङ्गा नदी और कर्मनाशा नदी, मारवाड़ और मालवा ब्राह्मण और कसाई । स्वर्ग और नरक, प्रेम और परित्याग इन सब के गुण और दोषों का भेद वेदों और शास्त्रों में बताया गया है ॥

सूचना—ऊपर कही हुई वस्तुएँ यद्यपि एक दूसरे के विरुद्ध गिनाई गई हैं, तो भी उन में से प्रत्येक में गुण और अवगुण भरे ही हैं इस का निर्णय वेदों और शास्त्रों के पढ़ने से ठीक ठीक समझ में आ जावेगा ॥

इन दो से माया अवगुण सहित और ब्रह्म गुण सहित ऐसा अर्थ करना पड़ेगा परन्तु ब्रह्म तो गुण से परे है उस में कोई विशेषण इस प्रकार का देना अशुद्ध होगा । इस हेतु ठीक भी जँचता है कि यह पंक्ति पीछे से मिलाई हुई है और यदि मिलाई हुई न होती तो विधि के प्रपंच वर्णन में पहिले ही लिखी जाती सो तो है नहीं यह तो तीसरी पंक्ति में है प्रपंच का आरम्भ तो 'दुख सुख पाप पुण्य दिन राती' से है ॥

यदि इसे मान लें तो 'विधि प्रपंच गुण अवगुण साना' का अर्थ यों करना पड़ेगा कि 'सृष्टि क्रम गुण अवगुण से मिले हुए पदार्थों का है और ब्रह्म जीव जगदीश ये चारों परब्रह्म परमात्मा आप ही हो गया, माया [illegible] सहित है और ब्रह्म निर्गुण सब में व्याप्त है, जीव ब्रह्म का अंश ही है तथा जगदीश ब्रह्मा विष्णु महेश इन रूपों से है जैसा कि श्री मद्भगवद्गीता अ० ७ [illegible] १४वें में कहा है—

श्लो०—दैवी ह्येषा गुणमयी , मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते , मायामेतां तरन्ति ते ॥

अर्थात् यह मेरी माया दैवी और गुणमयी होकर जीतने के योग्य है जो मेरी शरण रहते हैं वे इस माया से छुटकारा पा जाते हैं ॥

जीव—जैसा कि श्री मद्भगवद्गीता के १५वें अध्याय में कहा है—

ममैवांशो जीव लोके , जीव भूतः सनातनः ॥ ७ ॥

अर्थात् इस संसार में जीव मेरा ही अंश है तथा सनातन से है ॥

'जगदीश'—कहा है कुमार सम्भव में (सर्ग ७-४४)—

श्लो०—एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा , सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम् ।
विष्णोर्हरस्तस्य हरिः कदाचित् , वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ ॥

अर्थ—यही एक मूर्ति है जिसने ब्रह्म और [illegible] भाग किये हैं (अर्थात् विष्णु, महेश), इन में [illegible] की सनातनता है । जैसे कभी [illegible] कभी महादेव से विष्णु, कभी [illegible] श्रेष्ठ और बड़े समझे जाते हैं ॥

दो०.— जड़ चेतन गुण दोषमय , विश्व कीन्ह करतार ।
‡संत हंस गुण गहहिं पय , परिहरि वारि विकार ॥ ६ ॥

अर्थ — विधाता ने संसार के जड़ और चेतन जीवों को गुण और दोषों से भरा हुआ उत्पन्न किया है । सन्तजन हंस की नाईं दुर्गुणरूपी पानी का त्याग कर सद्गुणरूपी दूध का ग्रहण करते हैं (अर्थात् जिस प्रकार पनियां दूध में से हंस केवल दूध ही को पी लेता है इसी प्रकार सन्तजन मिश्रित संसार में से सद्गुणों को ले लेते हैं) ॥

चौ०—अस विवेक जब देइ विधाता । तब तजि दोष गुनहिं मन राता ॥
***काल स्वभाव करम बरिआई । भलेउ प्रकृति वश चुकहिं भलाई ॥**

---

‡ सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार—जैसा कि कहा है—

श्लोक—अनन्त पारं बहु वेदि तव्यं, अल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः ।
यत्सार भूतं तदुपासितव्यं, हंसो यथा क्षीर मिवाम्बु मिश्रम् ॥

अर्थात् विद्या अपार है, सीखने को बहुत है परन्तु समय थोड़ा है और उस में बाधायें बहुतेरी हैं इस हेतु जो कुछ सार हो उसी का ग्रहण करे जिस प्रकार हन्स पनियां दूध में से केवल दूध ही पी लेता है ॥

* १ काल २ स्वभाव ३ करम बरिआई । भलेउ प्रकृति वश चुकहिं भलाई—

(१) काल की बरिआई-द्वापर के अन्त में राजा परीक्षित के राज्य करते समय चांडाल वेषधारी कलिकाल के आगमन से गौरूपधारी पृथ्वी और वृषभरूपधारी धर्म भागे जाते थे. राजा ने कारण पूछा और सब समाचार जानकर उसने कलि को मारना चाहा . कलियुग ने कह सुनाया कि कर्त्तार के प्रबंध में किसी का हस्ताक्षेप नहीं चलता, महाराज ! आप मुझे कहीं रहने को स्थान दीजिये. परीक्षित के कथनानुसार वह जुआ, चोरी, स्वर्ण आदि में जा बसा. मुकुट के स्वर्ण में भी कलियुग का वास होने से राजा की मति पलट गई और उसने एक समय एक मरा सर्प उठाकर लोमश ऋषि के गले में डालदिया-जब यह हाल लोमश ऋषि के पुत्र शृंगी ऋषि को मालूम हुआ तब उसने शापदिया कि पिता जी के गले में सर्प डालने वाले को यही सर्प सातवें रोज़ डसेगा. शाप [illegible] कर राजा पछताने लगा कि कलिकाल के प्रभाव से मैं [illegible] मुनि ने श्रीमद्भागवत् का समाह [illegible]

(प्रेम सागर)

अर्थ—अच्छा भेष बनाये हुए जो संसार को धोखा देने वाले हैं वे भी भेष के कारण पूजे जाते हैं परन्तु अन्त में उन का भेद खुल ही जाताहै निवाह नहीं होता जिस प्रकार कालनेमि, रावण और राहु (इन राक्षसों) का भेद खुल ही गया (अर्थात् इन के बनावटी रूप न छिप सके)॥

चौ०—किये कुबेष साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू॥
‡हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु वेद विदित सब काहू॥

अर्थ—यद्यपि कुभेष भी धारण किये हों तौ भी साधु लोग आदर को पाते हैं जिस प्रकार संसार में (रीछ तनुधारी) जामवंत और (वानर रूप) हनुमान् (आदरणीय हुए हैं)। संसार में वेदद्वारा सब को विदित है कि बुरी संगति से हानि और भली संगति से लाभ होता है॥

चौ०—गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा॥
●साधु असाधु सदन शुक सारी। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी॥

---

† रावण—लंका का राजा रावण यतीभेष धारण कर पंचवटी में गया. वहां पर उस ने सीता जी के पास आकर भिक्षा माँगी, सीता जी उसे अतिथि जान कन्द मूल फल देने लगीं, परन्तु इस ने फिर भी [?] छल से उन्हें भुलाया व लक्ष्मण द्वारा खींची हुई रेखा के बाहर बुला लिया और राजनीति व [?] भरी हुई भय तथा प्रीति की बातें करने लगा। सीता जी ने जान लिया कि यह कोई दुष्ट मायावी यती का भेष धारण किये है। इस हेतु उन्हों ने कहा कि तुम यती हो कर ऐसे दुष्ट वचन कहते हो और श्री रामचन्द्र जी के प्रताप का वर्णन किया। रावण ने तुरन्त अपना राक्षसी रूप प्रकट किया और जबरई से सीता का हरण किया. इस प्रकार इस का भी भेद खुल गया। रावण का पूरा जीवन चरित्र अन्यत्र मिलेगा।

** राहु—देवरूप धारी राक्षस राहु का भेद समुद्र मथन के पश्चात् अमृत और सुरा बांटते समय सूर्य और चन्द्र के संकेतों से विष्णु जी को प्रकट हो गया था—पूरी कथा पद्मपुराण [?] संवाद में है॥

‡ हानि कुसंग सुसंगति लाहू—

दो०—संगति कीजै साधु की, हरै और की व्याध।
ओछी संगति नीच की, आठहु पहर उपाध॥
होत सुसंगति सहज सुख, दुख कुसंग के थान।
गंधी और लुहार की, देखो बैठि दुकान॥

● साधु असाधु सदन सुकसारी। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी—
एक तोता [illegible] के घर रहता है कि इन दोनों [illegible] एक [illegible] हुए साधु संगति से इन दोनों में ऐसा भेद हो गया कि—

अर्थ—(उदाहरण यह है कि ऊपर जाने वाली) हवा के साथ धूल आ
उड़ जाती है, और नीचे आने वाले पानी के साथ कीचड़ में मिल जाती है। (
प्रकार) तोता और मैना साधु के घर रहने से राम नाम पढ़ते हैं परन्तु वे ही दु
घर पड़ने से गालियां बका करते हैं ॥

भाव यह कि पशु पक्षी और निर्जीव पदार्थ भी अच्छी संगति में सुधरते औ
बुरी संगति में बिगड़ते हैं ॥

चौ०—धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिय पुराण मंजुमसि सोई।
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जगजीवन दाता।

शब्दार्थ—अनल = अग्नि। अनिल = हवा।

अर्थ—(लकड़ी आदि ईंधन के संसर्ग से जलाई हुई अग्नि का) धुआं कि
भी पदार्थ में लग कर उसे काला कर देता है। वही धुआं यदि चिराग़ के संसर्ग
उत्पन्न हो तो उत्तम स्याही बन जाने से पुराण आदि लिखने के काम आता है। वही धु
पानी, अग्नि और वायु के संसर्ग से यदि उत्पन्न हो तो भाफरूप हो बादल ब
संसार का प्राणदाता हो जाता है। सारांश—धुआं या धुआंरूपी भाफ एक ही है पर
केवल धुआं, कारिख लगाता है, वही स्याही बन कर पुराण आदि लिखने
काम आता है और भाफरूप हो बादल बन बरसने लगता है जिससे संसार
जीवन होता है ॥ स्मरण रहे कि इस अंतिम कार्य ही के कारण मेघ को धूम-योनि
और पानी को जीवन कहते हैं ॥

दो०—ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुयोग सुयोग।
होइ कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलक्षण लोग ॥

अर्थ—(नव) ग्रह, औषधि, पानी, हवा और कपड़ा ये बुरे के योग से अशु
और भले के योग से शुभ समझे जाते हैं, संसार में लोग तो लक्षण ही देखते
(अर्थात् किस की संगति से कौन उत्तम समझा गया और फिर वही किस
संगति से बुरा समझा गया)। भाव यह है कि वे ही पदार्थ संगति भेद से भले व

श्लोक—अहं मुनीनां वचनं शृणोमि, शृणोति [illegible] नाम् वचः।
न चास्य दोषो न च मे गुणो वा, संसर्गजा दोष गुणा भवंति ॥

अर्थ—हे राजा ! मैं तो मुनियों के वचन सुना करता हूं और यह दू(सरा)
[illegible] के वचन सुना करता है इस में न तो उस का दोष है
न मेरा गुण, दोष और गुण तो संगति ही से होते हैं (अर्थात् साधुओं (की)
संगति से मैं राम नाम पढ़ता हूं और यह दूसरा दुष्टों की संगति से मा(र)
मार करता रहता है)

बुरे समझे जाते हैं, जैसे नवग्रह में से कोई भी यदि एकादश स्थान में हो तो शुभ, और और स्थानों में शुभ व अशुभ यथा योग्य माने जाते हैं। औषधि—अच्छे अनोपान के साथ सेवन करने से लाभदायक और बुरे अनोपान से हानिकारक हो जाती है। जल—शुद्ध गंगाजल और गुलावजल आदि के विरुद्ध कर्मनाशा और नाली का जल। हवा—सुगन्धित और दुर्गन्धित हवा को सब जानते हैं और इसी प्रकार पुण्यात्मा पुरुष के पास का कपड़ा पवित्र और नीच वा मृतक के संसर्ग से वही अपवित्र समझा जाता है॥

दो०—*सम प्रकाश तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह।
शशि पोषक शोषक समुझि, जग यश अपयश दीन्ह॥

शब्दार्थ—पाख (पक्ष) = पखवारा। पोषक = बढ़ानेवाला। शोषक = घटाने वाला॥

अर्थ—(महीने के) दोनों पखवारों में चन्द्रमा का उजेला और अँधेरा बराबर ही रहता है परन्तु ब्रह्मा ने उनके नामों में भेद कर दिया है। एक को चन्द्रमा का बढ़ाने वाला समझ बड़ाई दी (अर्थात् इसका नाम शुक्ल पक्ष या उजेला पाख रख दिया) और दूसरे को चन्द्रमा का घटाने वाला समझ कुबड़ाई दी (अर्थात् इसका नाम कृष्ण पक्ष किम्वा अँधेरा पाख रख दिया)

दो० †जड़ चेतन जग जीव जे, सकल राममय जानि।
बन्दों सब के पद कमल, सदा जोरि युग पानि॥

---

* सम प्रकाश तम पाख दुहुँ—स्मरण रहे कि चन्द्रमा में स्वतः का प्रकाश नहीं है, वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाश पाता है इसहेतु गोल होने के कारण उसका आधा भाग जो सूर्य के साम्हने रहता है सदैव प्रकाशित रहता है, और आधा भाग अप्रकाशित रहता है। सूर्य, पृथ्वी तथा चन्द्रमा की स्थिति और गति के कारण चन्द्रमा का घटना बढ़ना हम लोगों की दृष्टि में आता रहता है यहां तक कि अमावास्या को चन्द्रमा का उजेला भाग सूर्य ही के सम्मुख रह कर उसका अँधेरा भाग हमारे साम्हने रहने से कुछ भी नहीं दिखाई देता और पूर्णिमा को सब प्रकाशित भाग दीख पड़ता है। इसका विशेष वर्णन सिद्धान्त के ग्रन्थों में मिलेगा तथा पुराणों में भी इसके समझाने का प्रयत्न किया जावेगा॥

† जड़ चेतन जग जीव जे सकल राम मय जानि—

क०—बीजहू में फूल जैसे तन्तुहू में पट जैसे मृत्तिका में घट जैसे काया में रमाया है।
फूलहू में बास जैसे रवि में प्रकाश जैसे काठहू में आग ज्यों आकाश बीच छाया है॥
पानीहू में जल जैसे दीप में प्रकाश जैसे चकमक में आग जैसे दूध घृत पाया है।
आपहू को आप जामें पुन्यहू न पाप कछु आपही में आप जिन खोजा तिन पाया है॥

(और भी)

*हँसिहहिं क्रूर कुटिल कुविचारी। जे परदूषण भूषण

शब्दार्थ--तोतरि = साफ़ नहीं, अधूरी

अर्थ—जैसे छोटे बच्चे तोतली बातें करते हैं तौ भी माता पिता उन्हें सु प्रसन्न होते हैं (अर्थात् जिस प्रकार मातापिता अपने बालकों के बेढंग वचन सुनकर उन के बेढंगपने का विचार न कर उनके आशय मात्र पर प्रसन्नता विचार करते हैं इसी प्रकार सज्जन दूसरों के लेख के अवगुणों का विचार न उसके आशय पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं)। उसी कथन को सुन कर टेढ़े और बुरे विचार वाले हँसेंगे क्योंकि वे तो दूसरों के दोषों को ढूंढने में बड़ाई समझते हैं ॥

चौ०—†निजकवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति
जे पर भनित सुनत हरषाहीं। ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं

अर्थ—अपनी बनाई हुई कविता किस को अच्छी नहीं लगती है वह चाहे हो या बुरी। परन्तु जो लोग दूसरे का लेख सुनकर प्रसन्न होते हैं उन उत्तम पुरुष संसार में बहुत नहीं हैं (अर्थात् विरले हैं)॥

चौ०—जग बहु नर सरिता सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जलपाई
सज्जन ‡ सुकृत सिन्धु सम कोई। देखि पूर विधु बाढ़हिं जोई

अर्थ—हे भाई! संसार में बहुत से मनुष्य नदी के समान हैं (भाव यह कि मनुष्यों में स्वतः की बुद्धि तो होती ही नहीं यहां वहां के चुटकिले सीख कर ही कथन की बड़ाई करते फिरते हैं) और सत्कर्मी सत्पुरुष समुद्र के समान हो

---

* हँसिहहिं क्रूर कुटिल कुविचारी। जे परदूषण भूषण धारी—दूसरे के लेख की निंदा करने वाले बहुत से लोग होते हैं कहा है उत्तर राम चरित में अंक १—५

श्लोक—सर्वथा व्यवहर्तव्यं, कुतोह्यवचनीयता।
यथा स्त्रीणां तथा वाचाम्, साधुत्वे दुर्जनो जनः॥

अर्थ—सदा कर्तव्य करते रहना चाहिये, निर्दोषीपन कहां से रह सकता है क्योंकि मनुष्य स्त्रियों के सतीत्व और वाणी की शुद्धता के विषय में दुष्ट प्रकृति के होते हैं (अर्थात् स्त्रियों और उत्तम भाषा के दोष ही ढूंढा करते हैं)

† निज कवित्त केहि लाग न नीका—कहावत प्रसिद्ध है कि अपना दोष कोई नहीं देखता जैसे—

दो०—पर को अवगुण देखिये, अपनो दृष्टि न होय।
करै उजेरो दीप ज्यों, तरे अँधेरो सोय॥

‡ 'सज्जन' का रूपान्तर 'सज्जन' भी है जिस का अर्थ 'कोई विरला' है

दो०—सुनि समझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग ।
लहहिं चार फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ॥२॥

शब्दार्थ—मज्जहिं = मग्न होते हैं, गोता लगाते हैं । अछत तनु = शरीर रहते ही, जीते जी ॥

अर्थ—सन्त समाजरूपी प्रयाग में (सत्सङ्गति महिमा) सुनना मानों अर्थ की प्राप्ति है, समझना यही धर्म है, मन का प्रसन्न होना यही काम (कामना की सिद्धि है) और विशेष प्रेम में मग्न हो जाना यही मोक्ष है । इस प्रकार जीते जी मनुष्य सभी बातें पा लेता है (परन्तु यथार्थ प्रयाग में तो इन की प्राप्ति शरीर छूटने पर होती है) ।

चौ०—मज्जनफल पेखिय ततकाला । *काक होहिं पिक †बकहु मराला ॥
सुनि आचरज करै जनि कोई । सत संगति महिमा नहिं गोई ।
वाल्मीकि नारद घटयोनी । निज निज मुखन कही निज होनी ।

शब्दार्थ—पेखिय (प्रत्यक्ष) = देखिये । पिक = कोयल । मराल = हंस । गोई = छिपी हुई । घटयोनी = अगस्त्य ऋषि ॥

अर्थ—मग्न होने का फल शीघ्र दिखाई देने लगता है । जिस में कौआ तो कोयल और बगुला हंस हो जाता है (अर्थात् कौए के समान स्वभाव वाले कोयल के समान स्वभाव

---

* काक होहिं पिक—कौए से कोकिल हो जाने का कितना उत्तम उदाहरण तुलसीदास जी ने दिया है कि बहुत दो हुए और मलीन कर्म करने वाले कठोर भाषी वाल्मीकि जी उत्तम कर्म करने वाले मधुर भाषी कोयल हो बन गये । जैसा कहा है—

श्लोक—कूजन्तं राम रामेति, मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविता शाखां, वन्दे वाल्मीकि कोकिलम् ॥

अर्थात् उस कोकिला रूपी वाल्मीकि कवि जी को नमस्कार है जो कविता रूपी वृक्ष की शाखा पर बैठ कर 'राम राम' यही एक मधुर ध्वनि से करते रहे । वाल्मीकि—लूटमार और हत्या का काम छोड़ सत्संगति से पूरे रामभक्त और कवि बन गये ॥ [देखो वाल्मीकि जी का जीवन चरित्र] ॥

† बकहु मराला—बगुले ही बगुले का हंस हो जाना [illegible]

अर्थ—संसार में जितने जड़ और चेतन जीव हैं उन सब को रामरूप समझ सब के चरण कमलों को दोनों हाथ जोड़ कर सदैव वन्दना करता हूं (जड़ में भी ईश्वर की सत्ता विद्यमान है नहीं तो वे पदार्थ ही न रहें। इस के लिये जड़ खम्भे में से नृसिंह रूप धारी ईश्वर का प्रकट होना जड़ को भी राममय करता है)॥

दो०—देव दनुज नर नाग खग, प्रेत पितर *गन्धर्व।
वन्दौं †किन्नर रजनिचर, कृपा करहु अब सर्व॥७॥

अर्थ—देवता, दैत्य, मनुष्य, सर्प, पक्षी, प्रेत, पितर, गंधर्व, किन्नर और ... इन सब की वन्दना करता हूं आप सब के सब अब कृपा कीजिये॥

चौ०—*आकर चार लाख चौरासी। †जाति जीव जल थल नभ वासी।

कोई कोई लोग गणित की युक्ति से भी सिद्ध करते हैं कि सब पदार्थ राम ही हैं। यथा—

दोहा—नाम चतुर्गुण पंचयुत, द्विगुण कृत्य कर मान।
अष्टपद् को भाग दे, शेष राममय जान॥

अर्थात् (जैसे तीन अक्षर का नाम कोई भी हो) उसे चार से गुणा करो तो (३×४)=१२ हुए, उस में ५ जोड़े तो १७ हुए, फिर १७ के दूने ३४ फिर इस में ८ का भाग दिया तो शेष रहे दो जो रामनाम के अक्षर हैं. इसी प्रकार ४, ५, ६ आदि कितने ही अक्षरों के नाम से ऊपर रीति से शेष दो ही बचेंगे॥

* गंधर्व—एक प्रकार के देवताओं के गवैये जिनका बड़ा मधुर स्वर रहता है। इनका निवास स्थान गुह्यलोक और विद्याधर लोक के मध्य है. इन के ११ प्रकार कहे गये हैं (देखो विष्णु पुराण)

† किन्नर किम्वा किम्पुरुष, इन का वर्णन आरण्य काण्ड की भी विनायकी टीका की टिप्पणी में मिलेगा॥

* आकर चार लाख चौरासी—आकर चार अर्थात् चार प्रकार के जीव और लाख चौरासी जाति जीव वाने चौरासी लाख जीवों के प्रकार ये हैं—

दो०—नर पशु 'पिंडज' जानिये, पक्षी 'अंडज' जान।
चीलर 'स्वेदज' 'उद्भिज्ज' सकल वनस्पति मान॥
मनुज चार नौ दस पशु, पक्षि लक्ष दश जान।
जलचर नौ कृमि रुद्र लख, थावर नखत प्रमान॥

रुद्र लाख = ११ लाख। नखत = २७ (लाख)

† जाति और जल थल नभ वासी—सब प्रकार के जीवों को प्रणाम करता ...

सीय राम मय सब जग जानी । करौं प्रणाम जोरि युग पानी ॥

अर्थ—चार खानि से उत्पन्न हुए चौरासी लाख प्रकार के जीव पानी में, थल र और आकाश में रहते हैं । सब संसार को सीताराम मय समझ मैं दोनों ाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूं ॥

ौ०—जानि कृपा कर किंकर मोहू । सब मिल करहु छाँड़ि छल छोहू ॥
निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं । ता तें विनय करहुँ सब पाहीं ॥

अर्थ—आप सब मिल कर दया से मुझे अपना सेवक समझिये और भेद का वेचार न कर मुझ पर प्रेम कीजिये । मुझे न तो अपनी बुद्धि और न कविता शक्ति का भरोसा है इसी हेतु सबसे विनती करता हूं ॥

ौ०—करन चहउँ रघुपति गुणगाहा । लघुमति मोरि, चरित अवगाहा ॥
सूझ न एकउ अंग उपाऊ । मन मति रंक मनोरथ राऊ ॥

अर्थ—मैं श्री रामचन्द्र जी के गुणों की कथा लिखना चाहता हूं, मेरी बुद्धि तो थोड़ी है परंतु चरित्र गंभीर हैं । मुझे न तो कविता के अंग और न उपाय सूझते हैं क्योंकि मन और बुद्धि तो दरिद्री हैं परन्तु विचार राजा के तुल्य हैं ॥

ौ०—मति अति नीच ऊँच रुचि आछी । चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी ॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई । सुनिहहिं बाल बचन मन लाई ॥

अर्थ—मेरी बुद्धि तो तुच्छ है परन्तु इच्छा बहुत बढ़कर है सो इस प्रकार कि स्वर्गीय) अमृत को मैं चाहता हूं परन्तु संसारी छाछ भी मिलना दुर्लभ है । सत्पुरुष मेरे इस ढीठपने को क्षमा करेंगे और मुझ अबोध के कथन को चित्त लगा कर सुनेंगे ॥

ौ०—†ज्यों बालक कह तोतरि बाता । सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता ॥

---

* [illegible] श्री मद्भागवत् में व्यास जी ने फरमाया है —

श्लोक—खं वायुमग्निं सलिलं महीं च, ज्योतिश्च सत्त्वानि दिशोद्रुमादीन ।
सरित्समुद्रांश्च हरेश्शरीरं, यत्किंच भूतं प्रणमेदनन्यः ॥

अर्थात् अनन्य भक्त को चाहिये कि वह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र आदि, जीवधारी, दिशा, वृक्ष आदि, नदी और समुद्र सब को परमेश्वर का रूप जानकर प्रणाम करे ॥

†ज्यों बालक कह तोतरि बाता । सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता—
दो०—कहै धाय कंगुरी गहैं, कहै सिखावे बैन ।
सो शिशु की तुतरी गिरा, देत पिता हिय चैन ॥

*हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी । जे परदूषण भूषण धारी ॥

शब्दार्थ--तोतरि = साफ़ नहीं, अधूरी

अर्थ—जैसे छोटे बच्चे तोतली बातें करते हैं तो भी माता पिता उन्हें सुन कर प्रसन्न होते हैं (अर्थात् जिस प्रकार मातापिता अपने बालकों के बेढंगे वचनों को सुनकर उन के बेढंगपने का विचार न कर उनके आशय मात्र पर प्रसन्नता प्रकट विचार करते हैं इसी प्रकार सज्जन दूसरों के लेख के अवगुणों का विचार न कर उसके आशय पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं)। उसी कथन को सुन कर दुष्ट टेढ़े और बुरे विचार वाले हँसेंगे क्योंकि वे तो दूसरों के दोषों को ढूंढने में अपनी बड़ाई समझते हैं ॥

चौ०—†निजकवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका ॥
जे पर भनित सुनत हरषाहीं । ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं ॥

अर्थ—अपनी बनाई हुई कविता किस को अच्छी नहीं लगती है वह चाहे भली हो या बुरी। परन्तु जो लोग दूसरे का लेख सुनकर प्रसन्न होते हैं उन की भांति उत्तम पुरुष संसार में बहुत नहीं हैं (अर्थात् विरले हैं) ॥

चौ०—जग बहु नर सरिता सम भाई । जे निज बाढ़ि बढ़हिं जलपाई ॥
सज्जन ‡सुकृत सिन्धु सम कोई । देखि पूर विधु बाढ़हिं जोई ॥

अर्थ—हे भाई! संसार में बहुत से मनुष्य नदी के समान हैं (भाव यह कि मनुष्यों में स्वतः की बुद्धि तो होती ही नहीं यहां वहां के चुटकिले सीख कर उन्हीं कथन की बड़ाई करते फिरते हैं) और सत्कर्मी सत्पुरुष समुद्र के समान हैं

* हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। जे परदूषण भूषण धारी—दूसरे के लेख की [illegible] करने वाले बहुत से लोग होते हैं कहा है उत्तर राम चरित में अंक १—५

श्लोक—सर्वथा व्यवहर्तव्यं, कुतो ह्यवचनीयता।
यथा स्त्रीणां तथा वाचाम्, साधुत्वे दुर्जनो जनः॥

अर्थ—सदा [illegible] करते रहना चाहिये, निर्दोषपन कहां से रह सकता है क्योंकि मनु[illegible] स्त्रियों के सतीत्व और वाणी की शुद्धता के विषय में दुष्ट प्रकृति के होते हैं (अर्थात् स्त्रियों और उत्तम भाषा के दोष ही ढूंढा करते हैं)

† निज कवित्त केहि लाग न नीका—यह प्रसिद्ध है कि अपना दोष नहीं देखता जैसे—

दोहा—पर का अवगुण देखिये, अपनो दृष्टि न होय।
[illegible] ॥

‡ [illegible] विरला है

ो चन्द्रमा को पूर्ण देख कर बढ़ते हैं (अर्थात् अपनी ही विद्या से तो बहुतेरे मनुष्य ूले नहीं समाते परन्तु दूसरे की बढ़ती देख प्रसन्न होने वाले महात्मा विरले ही हैं) ॥

दो०—भाग छोट अभिलाष बड़, करउँ एक विश्वास ।
पैहहिं सुख सुनि सुजन सब, खल करिहैं उपहास ॥ ८ ॥

अर्थ—मेरा भाग्य तो छोटा है परन्तु इच्छा बड़ी है तौ भी मुझे इस बात का िश्चय है कि सभी सज्जन सुन कर सुख पावैंगे और दुष्टजन हँसी करैंगे ॥

ौ०—खल परिहास होइ हित मोरा । काक कहहिं कलकंठ कठोरा ॥
+हंसहिं बक दादुर चातक ही । हँसहिं मलिन खल विमल बतकही॥

शब्दार्थ—कलकंठ (कल = मीठा + कंठ = गला) = मीठे गले वाली अर्थात् ोयल । बक = बगुला । दादुर = मेंडक । बतकही = बातचीत ।

अर्थ—दुष्ट मनुष्यों के हँसी करने से मेरा हित होगा, जैसे कौए कोयल के शब्द को कठोर कहते हैं (अर्थात् कौए कोकिला की निंदा करते हैं तो उसमें कोयल की प्रशंसा ही होती है)। बगुला हंस को. मेंडक पपीहे को और नीच दुष्ट निर्मल वाक्य रचना पर हँसते ह । (भाव यह कि यदि लोग मेरे काव्य पर हँसेंगे तौ वे बरिआई से मुझे कवि मान लेवेंगे और मुझ में कविता के अंग हैं ही नहीं)॥

ौ०—कवित रसिक न रामपद नेहू । तिन कहँ सुखद हास रस एहू ॥
भाषा भनित मोरि मति भोरी । हँसिबे योग हँसे नहिं खोरी ॥

शब्दार्थ—भनित (सं० भणित, धातु भण = बोलना) = कही हुई

अर्थ—जो कविता के रसिया नहीं हैं और जिनका प्रेम रामचन्द्र जी के चरणों में नहीं है उन्हें तो यह आनंद देने वाला हास्य रस होगा (अर्थात् वे इस की हँसी

+ हंसहिं बक दादुर चातक ही—नीच प्राणी बड़ों की निंदा करने के निमित्त अपनी बड़ाई की झूठी डींग मारते हुए लज्जित नहीं होते, जैसेः—

कुंडलिया—कौवा कहत मराल सों कौन जाति को तोन ।
तो सो बड़रूपी सदा कोउ न जग में होन ॥
कोउ न जग में होन कुटिल मैले मल खाने ।
उतर ईट मर्याद धाए आचार न जाने ॥
कह गिरधर कविराय बड़ी ने लखो होंसा ।
धन्य हमारो देश जहाँ सज्जन जन कौवा ॥

उड़ावेंगे)। क्योंकि एक तो हिन्दी कविता और दूसरे मेरी मति भी थोड़ी है इ
हँसने ही के योग्य है, हँसने वालों को कुछ दोष नहीं है ॥

चौ०—प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिनहिं कथा सुनि लागहि फी

अर्थ—जिनका प्रेम ईश्वर के चरणों में नहीं है और न उनकी समझ
ठीक है उन को यह कथा सुनने में नीरस लगेगी।

दूसरा अर्थ—जिन प्राणियों का प्रेम श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में तो है नहीं,
उनकी समझ अच्छी है (अर्थात् जो राम भक्त तो नहीं हैं परन्तु काव्य के गुण
जानते हैं) उन को यह कथा अच्छी न लगेगी (क्योंकि इस में काव्य की उत्तम
का विशेष विचार नहीं किया गया सो काव्य प्रेमी इसे काहे को सराहेंगे) ॥

तीसरा अर्थ—जिन की समझ इतनी अच्छी नहीं है कि वे समझ सकें कि श्री
चन्द्र जी के चरणों में प्रेम लगाने से क्या लाभ होता है उन्हें यह कथा
लगेगी ॥

चौ०—हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन कहँ मधुर कथा रघुवर

अर्थ—परन्तु जिन का प्रेम विष्णु और शिव जी के चरणों में है तथा
की बुद्धि बुरे विचारों से रहित है उन को श्री रामचन्द्र जी की कथा मनोहर
पड़ेगी ॥

दूसरा अर्थ—जिन लोगों का प्रेम विष्णु जी के चरणों में लगा हुआ है
शिव जी के विषय में जो कुतर्क नहीं करते उन को तो राम कथा अच्छी ही
परन्तु जो शिव भक्त हैं और विष्णु जी से वैर भाव की कुतर्कना नहीं करते उ
यह कथा अच्छी लगेगी क्यों कि रामायण की कथा को तो शिव जी ही ने क

चौ०—राम भक्ति भूषित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सु

कवि न होउँ नहिं वचन प्रवीना। *सकल कला †सब विद्या ही

अर्थ—सज्जन इस कथा को मन में श्री रामचन्द्र जी की भक्ति से शोभा
जान कर सुन्दर वाणी से प्रशंसा करते हुए सुनेंगे। क्यों कि मैं न तो क
और न बोलने में चतुर हूं तथा सम्पूर्ण कला और सब विद्याओं से रहित हूं

* सकल कला—६४ कला होती हैं सो पुराणों में देखो।

† सब विद्या—विद्या १४ हैं, यथा—

श्लोक—[illegible]
[illegible] च, विद्या [illegible]॥

[illegible] (१) [illegible] (२) [illegible] (३) [illegible] (४) [illegible]
(९) [illegible] (८) [illegible] (९)
(१०) [illegible] (१३) [illegible] और (१४) [illegible]

चौ०—*आखर अर्थ अलंकृत नाना। छन्द प्रबंध अनेक विधाना॥
भाव†भेद रसभेद अपारा। कवित दोष गुण विविध प्रकारा॥
कवित† विवेक एक नहिं मोरे।‡ सत्य कहौं लिखि कागद कोरे॥

अर्थ—अक्षर भी तो अनेक अर्थों और अलंकारों से भरे पड़े हैं और छन्दों की रचना भी अनेक प्रकार है। भावों के भेद तथा रसों के भेद भी अनगिनती हैं और कविता के दोष गुण भी तरह तरह के हैं। कविता रचने का ज्ञान मुझ में कुछ भी नहीं है, मैं कोरे कागज़ पर लिख कर सत्य सत्य ही कहता हूं॥

दो०—भनित मोरि सब गुण रहित, विश्व विदित गुण एक।
सो विचारि सुनिहहिं सुमति, जिनके विमल विवेक॥९॥

अर्थ—मेरी कविता सब गुणों से रहित है तो भी इस में लोक प्रसिद्ध एक गुण है, उसी का विचार कर जिनका ज्ञान निर्मल है ऐसे बुद्धिमान् लोग उसे सुनेंगे (वह गुण यह है)॥

---

* आखर अर्थ अलंकृत नाना इत्यादि—अक्षरों में वर्ण मैत्री, दग्धाक्षर दोष; अर्थ में, वाच्य, व्यंग्य, लक्ष्य; अलङ्कारों में उपमाआदि; छन्द रचना में अनुष्टुप्, सोरठा, दोहा, चौपाई आदि; भाव में स्थाई, सञ्चारी आदि; रसों में शृङ्गार, हास्य आदि; दोषों में कर्ण कटु, ग्रामीण आदि, और गुणों में माधुरी प्रसाद आदि इन सब का संक्षेप से कुछ वर्णन पुरानी में मिलेगा॥

† कवित विवेक एक नहिं मोरे—गोस्वामी जी बड़ी चतुराई के साथ कविता में दोष गुण आदि का ठीक २ कथन तो कर ही चुके हैं फिर अन्त में कहते हैं कि मुझ में कविता का कुछ भी विवेक नहीं है सो वे इस विचार से कहते हैं कि अपने मुँह से अपनी ही स्तुति करना उचित नहीं, जैसा कहा है 'इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः' अर्थात् यदि इन्द्र भी अपने मुँह से अपने गुणों का वर्णन करें तो लघुता को प्राप्त हो जावें॥

‡ सत्य कहौं लिखि कागद कोरे—(१) यह कथन एक प्रकार की सौगन्ध मानी जाती है जिस के कहने से कहने वाला अपने हृदय की निष्कपटता दर्शाता है। सो यहाँ पर गोस्वामी जी अपनी आधीनता निष्कपट हृदय से बतलाते हैं जैसा कि हनुमान् जी ने परम भक्त होने पर भी कहा था कि—

'तापर मैं रघुवीर दोहाई। जानहुं नहिं कछु भजन उपाई'॥

(२) इस से यह भी ध्वनि निकलती है कि मैं इस ग्रन्थ में अपनी कवित्व शक्ति का ज्ञान दिखलाना नहीं चाहता, मेरा मुख्य विचार तो श्री रामचन्द्र जी जो सत्य स्वरूप हैं उन्हीं के गुणानुवाद वर्णन करने का है क्योंकि श्री रामचन्द्र जी ही सत्य स्वरूप अर्थात् सत्य स्वरूप हैं जैसा कहा है कि 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या' अर्थात् ब्रह्म सत्य है और संसार झूठ है और इसी की पुष्टि में गोसाईं जी कहते हैं कि—'एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुराण श्रुति सारा'॥

[illegible]

चौ०—भनित विचित्र सुकवि कृत जोऊ। [illegible]

विधुबदनी सब भांति सवांरी। सोह न बसन बिना बर नारी॥

अर्थ—[illegible] बिना [illegible] के ध्यान में [illegible] बिना शोभा को नहीं पाती।

चौ०—सब गुण रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम यश अंकित [illegible]

सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संतगुणग्राही॥

---

* मंगल भवन अमंगल हारी—जैसा कि मांधाता स्मृति में कहा है—

श्लोक—मंगलानां मंगलं नित्यं, परानंदस्य बोधकम् ।
शोधकं चित्त वृत्तीनां, मनाम्यं नाम मंगलम् ॥

अर्थात् उस मंगलीक नाम का स्मरण करो जो सदैव पापों का हरने वाला, परम आनन्द का देने वाला तथा राग द्वेष आदिक चित्त वृत्तियों के रोकने वाला है ॥

† भनित विचित्र सुकवि कृत जोऊ । रामनाम बिन सोह न सोऊ— श्रीमद्भागवत् के प्रथम स्कन्ध के ५ वें अध्याय में इस का कथन यों है—

श्लोक—नयद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो, जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद्वायसं तीर्थमुशंतिमानसा, नयत्रहंसाः निरमंत्युशिक्क्षया ॥

अर्थात् जिस वाणी ने संसार को पवित्र करने वाली ईश्वर की कीर्ति का वर्णन नहीं किया उस वाणी को चाहे वह कैसे ही सुललित पदों से भरी हो सत्य प्रभाव मन वाले संन्यासी जो सुन्दर ब्रह्म में रममाण होते हैं उसे कौओं का तीर्थ मानते हैं (अर्थात् उसे असज्जनों के कहने सुनने के योग्य समझते हैं जैसे कि मानसरोवर के रहने वाले राजहंस कौओं के तीर्थ स्थान अर्थात् घूरे पर नहीं ठहरते) ॥

‡ सब गुण रहित कुकवि कृत बानी—इस के विषय में भी श्रीमद्भागवत् के प्रथम स्कन्ध के ५वें अध्याय में कैसी उत्तम रीति से कहा है—

श्लोक—तद्वाग्विसर्गो जनताघ विप्लवो, यस्मिन् प्रतिश्लोक मबद्धवत्यपि ।
नामान्यनंतस्य यशोंकितानि यत्, शृण्वन्तिगायन्ति गृणंति साधवः ॥

अर्थात् उस वाणी को जो मनुष्यों के पापों को हरती है यदि वह बेढंगेपन से रचित भी हो—तो भी परमेश्वर के नाम और यश से परिपूर्ण होने से सज्जन उसे [illegible] गाते हैं और वर्णन करते हैं ॥

अर्थ—सम्पूर्ण काव्यलक्षणों से हीन अनाड़ी कवि की बनाई हुई कविता भी यदि ईश्वर के नाम अथवा यश को लिये हो, तो उसे बुद्धिमान् लोग प्रेम से कहते और सुनते हैं काहे से कि सत्पुरुष तो भौंरे की नाईं गुणों के गाहक होते हैं॥

चौ०—यदपि कवित रस एकउ नाहीं। राम प्रताप प्रकट इहिमाहीं॥
सोइ भरोस मोरे मन आवा। केहि*न सुसंग बड़प्पन पावा॥

अर्थ—यद्यपि कविता के गुण इस में एक भी नहीं हैं तो भी इस में रामचन्द्र जी की महिमा कही गई है। यही विश्वास मेरे जी में भी जम गया। देखो अच्छी सङ्गति से किसने बड़ाई नहीं पाई (अर्थात् सब को सुसङ्गति से बड़ाई मिली है जिस के कुछ उदाहरण ये हैं)

चौ०—धूमउ तजइ सहज करुआई। अगरु प्रसंग सुगंध बसाई॥
भनित भदेस वस्तु भलि बरनी। रामकथा जग मंगल करनी॥

शब्दार्थ–अगरु (सं०)=सुगंधित लकड़ी॥

अर्थ–धुआँ भी अपना स्वाभाविक कड़ुआपन छोड़ कर सुगंधित पदार्थों के संग से सुगंधित हो जाता है। (इसी प्रकार यद्यपि) मेरी कविता भद्दी है तो भी इस में अच्छी वस्तु का वर्णन है और वह रामकथा है जो संसार को मंगल देने वाली है॥

छन्द—मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसीकथा रघुनाथ की।
गति क्रूर कविता सरित की ज्यों सरित पावनपाथ की॥
प्रभु सुयश संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी।
†भव अंग भूति मसान की सुमिरत सोहावनि पावनी॥

---

* केहि न सुसंग बड़प्पन पावा—

दो०—जाहि बड़ाई चाहिये, तजै न उत्तम साथ।
ज्यों पलास सँग पान के, पहुँचै राजा हाथ॥

† भव अंग भूति मसान की सुमिरत सोहावनि पावनी—

श्लोक- स्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचराः।
चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटी परिकरः
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि।

[illegible]

अर्थ—विष्णु जी और शिव जी भी जो कहा है (अर्थात् [illegible] और
[illegible]) यह वेनी के मिलने का स्थान है जिन के सुनने मात्र से सम्पूर्ण मं[illegible]
मंगल प्राप्त होते हैं। अपने धर्म में अचल विश्वास यही अक्षयवट है और सत्[illegible]
सत्कर्म प्रयाग का और भी समाज है॥

चौ०—सबहि सुलभ सब दिन सब देशा। सेवत सादर शमन कलेशा॥
अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ सद्यफल प्रकट प्रभाऊ।

शब्दार्थ—शमन = नाश करना। अकथ = जो कहने में न आवे। अलौकिक:
अद्भुत, परलोक का। सद्य = तुरन्त॥

अर्थ—(सन्तरूपी प्रयाग) सब लोगों को सदैव सभी स्थान में सहज [illegible]
मिल सक्ता है। यदि उस का आदर सहित सेवन किया जावे तो वह क्लेशों
नाश कर देता है। इस तीर्थराज की महिमा कही नहीं जा सकती, क्योंकि
अद्भुत है और इस का यह प्रभाव प्रकट है कि शीघ्र ही फल दे देता है (अर्थ
स्थानी प्रयाग में स्नान आदि करने से अर्थ धर्म, काम और मोक्ष योग्यतानुसार कालान्[illegible]
में मिलते हैं परन्तु सत्सङ्गति में तो सब ही इच्छित फल तुरन्त ही मिल जाते हैं,
जैसा आगे लिखा है)॥

श्लोक--प्रयागं माधवं सोमं, भारद्वाजं च वासुकिं।
वन्दे अक्षयवटं शेषं, प्रयागं तीर्थ नायकं॥

भाव यह कि तीर्थराज प्रयाग की समाज में माधव जी, सोमनाथ जी, भारद्वाज
जी, वासुकी, अक्षयवट और शेषनाग जो हैं। इसी के अनुसार सन्तों की समाज
रूपी प्रयाग में (१) हरि पूजा माधव जी हैं, (२) भगवत् नाम का जाप सोमनाथ
जी, (३) सत्कथा भारद्वाज जी, (४) सम्पूर्ण व्रत वासुकी, (५) अपने धर्म में
दृढ़ विश्वास अक्षयवट और (६) कथा कीर्त्तन शेषनाग जी हैं॥

देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ जैसा कि श्री मद्भागवत में लिखा है

श्लोक—नह्यम्मयानि तीर्थानि, न देवा मृच्छिला मया।
ते पुनंत्युरुकाले न, दर्शना देव साधवः॥

अर्थात् न तो जल वाले तीर्थस्थान और न
[illegible]सियां (जल्दी फल देती हैं) ये तो
[illegible]तु साधु तो दर्शनमात्र ही से पवित्र

दो०—सुनि समझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग ।
लहहिं चार फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ॥२॥

शब्दार्थ—मज्जहिं=मग्न होते हैं, गोता लगाते हैं । अछत तनु=शरीर रहते ही, जीते जी ॥

अर्थ—सन्त समाजरूपी प्रयाग में (सत्सङ्गति महिमा) सुनना मानो अर्थ की प्राप्ति है, समझना यही धर्म है, मन का प्रसन्न होना यही काम (कामना की सिद्धि है) और विशेष प्रेम में मग्न हो जाना यही मोक्ष है । इस प्रकार जीते जी मनुष्य सभी बातें पा लेता है (परन्तु यथार्थ प्रयाग में तो इन की प्राप्ति शरीर छूटने पर होती है) ।

चौ०—मज्जनफल पेखिय ततकाला । *काक होहिं पिक ‡बकहु मराला ॥
सुनि आचरज करै जनि कोई । सत संगति महिमा नहिं गोई ॥
†वालमीकि नारद घटयोनी । निज निज मुखन कही निज होनी ॥

शब्दार्थ—पेखिय (प्रेक्ष)=देखिये । पिक=कोयल । मराल=हंस । गोई=छिपी हुई । घटयोनी=अगस्त्य ऋषि ॥

अर्थ—मग्न होने का फल शीघ्र दिखाई देने लगता है । जिस में कौआ तो कोयल और बगुला हंस हो जाता है (अर्थात् कौए के समान स्वभाव वाले कोयल के समान स्वभाव

---

* काक होहिं पिक—कौए से कोकिल हो जाने का कितना उत्तम उदाहरण तुलसीदास जी ने दिया है कि बहुत ही दुष्ट और मलीन कर्म करने वाले कठोर भाषी वाल्मीकि जी उत्तम कर्म करने वाले मधुर भाषी कोयल ही बन गये । जैसा कहा है—

श्लोक—कूजंतं राम रामेति, मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविता शाखां, वन्दे वाल्मीकि कोकिलम् ॥

अर्थात् उन कोकिला स्वरूपी वाल्मीकि कवि जी को नमस्कार है जो कविता रूपी वृक्ष की शाखा पर बैठ कर 'राम राम' यही एक मधुर ध्वनि से करते रहे हैं ॥ सारांश—लूटमार और हत्या का काम छोड़ सत्सङ्ग से पूरे रामभक्त और आदि कवि बन गये ॥ [देखो वाल्मीकि जी का जीवन चरित्र]

‡ बकहु मराला—ऐसे ही बगुले का ... से [... कद

अर्थ—विष्णु जी और शिव जी की जो कथा है (अर्थात् कर्मकांड और ज्ञान कांड) यह वेनी के मिलने का स्थान है जिन के सुनने मात्र से सम्पूर्ण आनन्द मंगल प्राप्त होते हैं। अपने धर्म में अचल विश्वास यही अक्षयवट है और सम्पूर्ण सत्कर्म प्रयाग का और भी समाज है ॥

चौ०—सबहि सुलभ सब दिन सब देशा। सेवत सादर शमन कलेशा॥
अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ॰सद्यफल प्रकट प्रभाऊ॥

शब्दार्थ—शमन = नाश करना। अकथ = जो कहने में न आवे। अलौकिक = अद्भुत, परलोक का। सद्य = तुरन्त ॥

अर्थ—(सन्तरूपी प्रयाग) सब लोगों को सदैव सभी स्थान में सहज ही मिल सक्ता है। यदि उस का आदर सहित सेवन किया जावे तो यह क्लेशों को नाश कर देता है। इस तीर्थराज की महिमा कही नहीं जा सक्ती, क्योंकि यह अद्भुत है और इस का यह प्रभाव प्रकट है कि शीघ्र ही फल दे देता है (अर्थात् स्थानी प्रयाग में स्नान आदि करने से अर्थ धर्म, काम और मोक्ष योग्यतानुसार कालान्तर में मिलते हैं परन्तु सत्सङ्गति में तो सब ही इच्छित फल तुरन्त ही मिल जाते हैं जैसा आगे लिखा है) ॥

श्लोक—प्रयागं माधवं सोमं, भारद्वाजं च वासुकिं ।
वन्दे अक्षयवटं शेषं, प्रयागं तीर्थ नायकं ॥

भाव यह कि तीर्थराज प्रयाग की समाज में माधव जी, सोमनाथ जी, भारद्वाज जी, वासुकी, अक्षयवट और शेषनाग जी हैं। इसी के अनुसार सन्तों की समाज रूपी प्रयाग में (१) हरि पूजा माधव जी हैं, (२) भगवत् नाम का जाप सोमनाथ जी, (३) सत्कथा भारद्वाज जी, (४) सम्पूर्ण व्रत वासुकी, (५) अपने धर्म में दृढ़ विश्वास अक्षयवट और (६) कथा कीर्तन शेषनाग जी हैं ॥

॰ देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ जैसा कि श्री मद्भागवत में लिखा है.

श्लोक—नह्यम्मयानि तीर्थानि, न देवा मृच्छिला मया।
ते पुनंत्युरुकाले न, दर्शना देव साधवः॥

अर्थात् न तो जल वाले तीर्थस्थान और न मिट्टी या पाषाण की बनी हुई देव मूर्त्तियां (जल्दी फल देती हैं) ये तो बहुत समय के पश्चात् पवित्र करती हैं परन्तु साधु तो दर्शनमात्र ही से पवित्र कर देते हैं ॥

०-*मणि†माणिक‡मुक्ता छबिजैसी। अहि गिरि गज शिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुणी तनु पाई। लहहिं सकल शोभा अधिकाई॥

शब्दार्थ — किरीट = मुकुट। तरुणी = जवान स्त्री।

अर्थ — रत्न, माणिक और मोती की जो यथार्थ शोभा है वह (क्रमानुसार) सर्प, पर्वत और हाथी के शिरोभाग में नहीं फबती (परन्तु) सब के सब या तो राजा के मुकुट में या जवान स्त्री के शरीर पर (अलङ्कार रूप में) बड़ी भारी शोभा को प्राप्त होते हैं (अर्थात् रत्न, माणिक और मोती अपने २ उत्पत्ति स्थान में इतनी शोभा नहीं पाते जितनी कि स्थानान्तर हो योग्य संगति पाकर सुशोभित होते हैं)॥

०तैसेहि सुकवि कवित बुध कहहीं+उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥
भगति हेतु विधि भवन विहाई। ††सुमिरत शारद आवति धाई॥

अर्थ — इसी प्रकार बुद्धिमानों का कहना है कि अच्छे कवियों की कविता एक स्थान में बनाई जाती है और दूसरे स्थान में उसकी प्रतिष्ठा होती है (अर्थात् कवि

---

* मणि — रत्न, जो किसी २ सर्प के मस्तक में रहता है न कि प्रत्येक सर्प के मस्तक पर, जैसा कहा है कि 'फण फण मणि नहिं होत'।

† माणिक=लालरंग का क़ीमती पत्थर जो किसी किसी पहाड़ में मिलता है, जैसा कहा है 'शैले शैले न माणिक्यं' अर्थात् प्रत्येक पहाड़ में माणिक नहीं मिलता।

दोहा — पंडित अरु वनिता लता, शोभित आश्रय पाय।
है माणिक बहु मोल को, हेम जटित छवि छाय॥

‡ मुक्ता=मोती, जो सीप में पैदा होता है और किसी किसी हाथी के मस्तक में रहता है, इन के उत्पत्ति स्थान मल्लिनाथ ने यों लखाये हैं।

श्लोक — करीन्द्र जीमूत वराह शंख मत्स्यादि शुक्त्युद्भव वेणु जानि।
मुक्ता फलानि प्रथितानि लोके तेषां तु शुक्त्युद्भव मेव भूरि॥

अर्थात् (दोहा) — गज घन शूकर शंख झख, सीप बांस अरु शेष।
आठ ठौर मोती कथित, सीपी माहिं विशेष॥

+ उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं —

दोहा — कविगण कविता करहिं जो, ज्ञानवान रस लेइ।
जन्म देइ पितु पुत्रि को, पुत्रि पतिहि सुख देइ॥

†† सुमिरत शारद आवति धाई — बलभद्र भक्त कृत श्री शारदा जी का स्मरण इकताला के ताल में यों है —

शारद सुखद दरशताप जगत जननि वानी।
सुरसरि हंस गमनि हरनिताप मोद दर्शनि, सहनि सुखद भवन भवन कहनि में बखानी।
श्वेत वारन व्यसन एक रामपद्म रसन मांहि, बसन बहु रमन वास हास व्यसन जानी॥
दीन हितू लीन पीन ताप दाप छीन करन, है प्रवीन दीन दाप तीन तीह मानी।
मानि चरण धाम कामि मरम दानि भरम भानि, चाहत बलभद्र सोहि ज्ञानि परम दानी॥

अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि रामचन्द्र जी की कथा कल्याण क[illegible] वाली और कलियुग के पापों को हरने हारी है। मेरी कवितारूपी नदी की टेढ़ी है जिस प्रकार 'पावनपाथ' अर्थात् गंगा जी की आड़ी टेढ़ी धारा हो[illegible] (भाव यह कि कविता ऐसी अड़बड़ है कि जैसी गंगा की धार परन्तु उस[illegible] श्री रामचन्द्र जी का मंगलदायक यश है जैसे गंगा जी की धार तो टेढ़ी है पर[illegible] उसका जल पवित्र करने वाला है)। इसी प्रकार मेरी भद्दी कविता श्री रामचन्द्र जी के सुन्द[illegible] यश के साथ रहने से अच्छी कविता कहलावेगी और सज्जनों के मन को रुचेगी[illegible] जिस प्रकार चिता भस्म (जो अपवित्र समझी जाती है)। शिव जी के शरीर[illegible] संसर्ग से स्मरण करने में सुखकारी तथा पवित्र हो जाती है॥

दो०—प्रिय लागहि अति सबहि मम, भनित रामयश [illegible]
*दारु विचारु कि करइ कोउ, वंदिय मलय प्रसं[illegible]

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के गुणानुवादों सहित मेरा कथन सब लोगों को [illegible] ही अच्छा लगेगा। क्या कोई कभी (चंदन की) लकड़ी का विचार करता है? [illegible] की तो चंदन के संसर्ग से वंदना की जाती है (अर्थात् चन्दन की सुवास से उस[illegible] पास के सभी वृक्ष चन्दन बन जाते हैं सो चन्दन पा कर लोग यह विचार कभी[illegible] नहीं करते कि यह किस वृक्ष की लकड़ी है जो चन्दन बन गई वे तो उसे चन्दन[illegible] मान आदर देते हैं इसी प्रकार सब लोग मेरी कविता कैसी है इस का विचार न[illegible] कर रामयश से सम्मिलित होने के कारण उस का आदर करेंगे॥

दो०—†श्याम सुरभि पय विशद अति, गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम सिय रामयश, गावहिं सुनहिं सुजान॥ १०॥

अर्थ—कृष्णा गाय के दूध को सफ़ेद और अधिक गुणकारी होने के कारण सब लोग पीते हैं। इसी प्रकार देहाती बोली में भी वर्णन किया हुआ सीता रामचन्द्र जी का यश ज्ञानी लोग कहते और सुनते हैं॥

---

* दारु विचारु कि करइ कोउ, वंदिय मलय प्रसंग—(टीकाकार का)
दोहा—[illegible] गिरि [illegible], जहँ [illegible]।
[illegible] मलयगिरि जहँ [illegible], [illegible] चंदन ह्वै जाहिं॥

† श्याम सुरभि—वैद्यक के अनुसार कृष्णा गौ का दूध [illegible] बढ़ाने वाला और वात [illegible] करने वाला होता है [illegible] कि [illegible] में लिखा है—कृष्णायाः गो[illegible] [illegible] अर्थात् कृष्णा गौ का दूध वात नाशक और अधिक गुणकारी होता है॥

०-*मणि†माणिक‡मुक्ता छबिजैसी। अहि गिरि गज शिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुणी तनु पाई। लहहिं सकल शोभा अधिकाई॥

शब्दार्थ—किरीट=मुकुट। तरुणी=जवान स्त्री।

अर्थ—रत्न, माणिक और मोती की जो यथार्थ शोभा है वह (क्रमानुसार) सर्प, पर्वत और हाथी के शिरोभाग में नहीं फबती (परन्तु) सब के सब या तो राजा के मुकुट में या जवान स्त्री के शरीर पर (अलङ्कार रूप में) बड़ी भारी शोभा को प्राप्त होते हैं (अर्थात् रत्न, माणिक और मोती अपने २ उत्पत्ति स्थान में इतनी शोभा नहीं पाते जितनी कि स्थानान्तर हो योग्य संगति पाकर सुशोभित होते हैं)॥

दो०तैसेहि सुकवि कवित बुध कहहीं+उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥
भगति हेतु विधि भवन बिहाई। ††सुमिरत शारद आवति धाई॥

अर्थ—इसी प्रकार बुद्धिमानों का कहना है कि अच्छे कवियों की कविता एक स्थान में बनाई जाती है और दूसरे स्थान में उसकी प्रतिष्ठा होती है (अर्थात् कवि

---

* मणि—रत्न, जो किसी २ सर्प के मस्तक में रहता है न कि प्रत्येक सर्प के मस्तक पर, जैसा कहा है कि 'फण फण मणि नहिं होत'।

† माणिक=लालरंग का कीमती पत्थर जो किसी किसी पहाड़ में मिलता है, जैसा कहा है 'शैले शैले न माणिक्यं' अर्थात् प्रत्येक पहाड़ में माणिक नहीं मिलता।

दोहा—पंडित अरु वनिता लता, शोभित आश्रय पाय।
है माणिक बहु मोल को, हेम जटित छबि छाय॥

‡ मुक्ता=मोती, जो सीप में पैदा होता है और किसी किसी हाथी के मस्तक में रहता है, इन के उत्पत्ति स्थान मल्लिनाथ ने यों लखाये हैं।

श्लोक—करीन्द्र जीमूत वराह शंख मत्स्यादि शुक्त्युद्भव वेणु जानि।
मुक्ता फलानि प्रथितानि लोके तेषां तु शुक्त्युद्भव मेव भूरि॥

अर्थात् (दोहा)—गज घन शूकर शंख झख, सीप बांस अरु शेष।
आठ ठौर मोती कथित, सीपी माहि विशेष॥

+ उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं—

दोहा—कविगण कविता करहिं जो, ज्ञानवान रस लेइ।
जन्म देइ पितु पुत्रि को, पुत्रि पतिहि सुख देइ॥

†† [illegible] धाई—बलभद्र भक्त कृत श्री शारदा जी का स्मरण रूकावली

[illegible]

[illegible] सुखद भवन भवन [illegible] में बखानो।
[illegible] दास दास [illegible] जानों॥
[illegible] हाथ [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] राम [illegible]॥

लोग जो कविता रचते हैं उनकी पूरी २ मान और प्रशंसा दूसरे विद्वानों के होती है)। स्मरण करते ही भक्ति के कारण सरस्वती ब्रह्मलोक से दौड़ दौड़ आ जाती है॥

दूसरी लकीर का दूसरा अर्थ—भक्तों के निमित्त 'शारदा' अर्थात् वाणी 'विधि भवन' अर्थात् ब्रह्मा के घर से (भाव उनके उत्पत्ति स्थान अर्थात् नाभि से) निकल हृदय में आती है फिर कण्ठ में से मुख में शीघ्र आ जाती है। सारांश यह है भगवद्भक्त के निमित्त भगवान् की इच्छा से वाणी नाभि स्थान से स्फुरण हो में आकर कंठ और मुख में आकर शब्द रूप प्रकट होती है जैसा वाल्मीकि जी मुख से ईश्वर प्रेरित वह श्लोक निकल पड़ा था कि जिसके प्रताप से वे आदि हो गये (देखो वाल्मीकि जी का जीवन चरित्र)।

चौ० राम चरित सर बिन अन्हवाये। सो श्रम जाय न कोटि उपाये।
कवि कोविद अस हृदयविचारी। गावहिं हरि यश कलिमलहारी।

अर्थ—सरस्वती की वह थकावट रामचरित रूपी तालाब में स्नान कराये बिना करोड़ों उपायों से भी नहीं मिटती (सारांश यह कि यदि अपनी वाणी में वर्णन करने की शक्ति आ जावे तो परमेश्वर के यश का वर्णन करना उत्तम होगा)। (तो) कविगण और पंडित लोग हृदय से ऐसा विचार कर कलियुग के पापों का नाश करने वाले ईश्वर के प्रताप ही को गाते रहते हैं॥

चौ० कीन्हें प्राकृत जन गुण गाना। शिरधुनि गिरा लागि पछताना।
हृदय सिंधु मति सीपि समाना। स्वाती शारद कहहिं सुजाना।
जो बरखइ वर वारि विचारू। *होहिं कवित मुक्ता मणि चारू।

अर्थ—जो साधारण मनुष्यों के गुणों का वर्णन किया जावे तो सरस्वती जी शिर पीट पीट कर पछताने लगती हैं (अर्थात् साधारण मनुष्यों के गुण वर्णन करने में कविता शक्ति का बड़ा भारी अनादर है क्योंकि उस में मनुष्यों की अयोग्य बड़ाई की जाती है)। ज्ञानी लोग कहते हैं कि हृदय तो समुद्र के समान है बुद्धि सीप के सदृश है और विद्यादी मानो स्वाति (नक्षत्र) की बूँद है। जो विचाररूपी उत्तम

---

* होहिं कवित मुक्ता मणि चारू—इस विषय पर ठाकुर कवि की कविता देखिये—

सवैया—मोतिन कैसी मनोहर माल गुहै तुक अक्षर रीझ रिझावै।
धर्म को पंथ कथा हरिनाम कि उक्ति अनूठी बनाय सुनावै॥
ठाकुर सो कवि भावत मोहि जो राज सभा में बड़प्पन पावै।
पंडित और प्रवीनन के चित्त हरै सो कवित...

ाह बरसे तो उस में से कवित्तरूपी सुन्दर मोती और मणि उत्पन्न होवें ॥

भाव यह है कि गंभीर बुद्धि वाले हृदय में श्रेष्ठ मति के कारण उत्तम वाणी किट हो कर शुद्ध विचार कवितारूप में प्रकाशित होवे तो यह कविता बहुत ही सुन्दर सुहावनी होगी ॥

दो० –युक्ति बेधि पुनि पोहिये, रामचरित बरताग ।
पहिरहिं सज्जन विमल उर, शोभा अति अनुराग ॥ ११ ॥

अर्थ–(कवितारूपी मोतियों को) युक्तिरूपी सरांग से बेध कर रामचंद्र जी के रित्ररूपी सुंदर धागों में पोह लेना चाहिये । यह मुक्तमाल सज्जन अपने स्वच्छ द्य में धारण करेंगे तब ईश्वर में विशेष प्रेम जो उत्पन्न होगा वही शोभा होगी ॥ सारांश कविता को बुद्धिमानी से रामयश मयी बना कर सत्पुरुष उसे अपने हृदय रख विशेष प्रेमी हो जाते हैं) ॥

चौ०–जे जनमे कलिकाल कराला । * करतब बायस बेष मराला ॥
चलत कुपंथ वेद मग छाँड़े । † कपट कलेवर कलिमल भाँड़े ॥

अर्थ–जो लोग इस कठिन कलियुग में जन्म लेते हैं वे देखने में तो हंस का सा भेष नाये रहते हैं परन्तु उनके काम कौए की नाईं होते हैं । वे वेद की रीति को छोड़ कुमार्ग पर लते हैं, उनका शरीर छल से भरा हुआ है, और वे कलियुग के पापों के भंडार ही हैं ॥

चौ०–वंचक ‡ भक्त कहाइ रामके । + किंकर कंचन कोह काम के ॥
तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी । धिक धरमध्वज धंधक धोरी ॥

---

* करतब बायस बेष मराला—

क०—घर की पियारी ताहि करके नियारी मद्य पनि के अचारी भारी डोलत सफ़र में ।
छोड़ द्विज देवनि की मंडली को संग भलो साधु कहवाय जाय सोवत नफ़र में ॥
कहैं शिवराम सांची बात ही को आंच माने आंखिन पिराय बैठ पैठत अकर में ।
शेष गाय हँसि के सुजीवन के छीन धन करि के मकर भाग जात हैं मकर में ॥

† कपट कलेवर कलिमल भाँड़े—

गीता पुस्तक हाथ साथ विभवा, माला विशाला गले ।
गोपीचंदन चर्चितं सुललितं, भालं च वक्षस्थलं ॥
वैराग्यः रँगया दुशाल पटया, कोरी बड़ाई बड़ी ।
हा वैराग्य कुतो गतोसि भवतां, नामापि न श्रूयते ॥

‡ वंचक भक्त कहाइ राम के—

दो०—जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम ।
मन कांचे नाचे वृथा, सांचे राचे राम ॥
दिरसे विरले पाइये, माया त्यागी संत ।
तुलसी कामी कुटिल खल, केंची काक अनन्त ॥

+ किंकर कंचन कोह काम के—रामरसरंजर से—

[सवैया]

लोग जो कविता रचते हैं उसकी पूरी २ जांच और प्रशंसा दूसरे विद्वानों के
होती है)। स्मरण करते ही भक्ति के कारण सरस्वती ब्रह्मलोक को छोड़ दौड़
आ जाती है ॥

दूसरी लकीर का दूसरा अर्थ — भक्तों के निमित्त 'शारदा' अर्थात् वाणी
भवन' अर्थात् ब्रह्मा के घर से (भाव उनके उत्पत्ति स्थान अर्थात् नाभि से) निकल
हृदय में आती है फिर कण्ठ में से मुख में शीघ्र आ जाती है। सारांश यह
भगवद्भक्त के निमित्त भगवान् की इच्छा से वाणी नाभि स्थान से स्फुरण हो
में आकर कंठ और मुख में आकर शब्द रूप प्रकट होती है जैसा वाल्मीकि
मुख से ईश्वर प्रेरित वह श्लोक निकल पड़ा था कि जिसके प्रताप से वे आदि
हो गये (देखो वाल्मीकि जी का जीवन चरित्र)।

चौ० राम चरित सर बिन अन्हवाये। सो श्रम जाय न कोटि
कवि कोविद अस हृदयविचारी। गावहिं हरि यश कलिमल

अर्थ — सरस्वती की वह थकावट रामचरित रूपी तालाव में स्नान करा
करोड़ों उपायों से भी नहीं मिटती (सारांश यह कि यदि अपनी वाणी में
करने की शक्ति आ जावे तो परमेश्वर के यश का वर्णन करना उत्तम होगा)
तो) कविगण और पंडित लोग हृदय से ऐसा विचार कर कलियुग के पापों
करने वाले ईश्वर के प्रताप ही को गाते रहते हैं ॥

चौ० कीन्हें प्राकृत जन गुणगाना। शिरधुनि गिरा लागि
हृदय सिंधुमतिसीपि समाना। स्वाती शारद कहहिं
जो बरसइ बर बारि बिचारू। *होहिं कवित मुक्ता मणि

अर्थ — जो साधारण मनुष्यों के गुणों का वर्णन किया जावे तो
शिर पीट पीट कर पछताने लगती है (अर्थात् साधारण
कविता शक्ति का बड़ा भारी अनादर है क्योंकि उस
जाती है)। ज्ञानी लोग कहते हैं कि हृदय तो
समुद्र है और विचारी मानो स्वाति (नक्षत्र)

---

* होहिं कवित मुक्ता मणि चारु — इस विषय
कविता — [illegible] मनोहर [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

ई बरसे तो उस में से कवितरूपी सुन्दर मोती और मणि उत्पन्न होवें ॥

भाव यह है कि गंभीर बुद्धि वाले हृदय में श्रेष्ठ मति के कारण उत्तम वाणी [illegible]हट हो कर शुद्ध विचार कवितारूप में प्रकाशित होवे तो यह कविता बहुत ही सुन्दर [illegible]हावनी होगी ॥

दो०—युक्ति बेधि पुनि पोहिये, रामचरित बरताग ।
पहिरहिं सज्जन विमल उर, शोभा अति अनुराग ॥११॥

अर्थ–(कवितारूपी मोतियों को) युक्तिरूपी सरांग से बेध कर रामचंद्र जी के [illegible]रित्ररूपी सुंदर धागों में पोह लेना चाहिये । यह मुक्तमाल सज्जन अपने स्वच्छ [illegible]दय में धारण करेंगे तब ईश्वर में विशेष प्रेम जो उत्पन्न होगा वही शोभा होगी ॥ सारांश कविता को बुद्धिमानी से रामयश मयी बना कर सत्पुरुष उसे अपने हृदय [illegible] रख विशेष प्रेमी हो जाते हैं) ॥

चौ०—जे जनमे कलिकाल कराला । * करतब वायस वेष मराला ॥
चलत कुपंथ वेद मग छाँड़े । † कपट कलेवर कलिमल भाँड़े ॥

अर्थ–जो लोग इस कठिन कलियुग में जन्म लेते हैं वे देखने में तो हंस का सा भेष [illegible]धारे रहते हैं परन्तु उनके काम काए की नाईं होते हैं । वे वेद की रीति को छोड़ कुमार्ग पर [illegible]चलते हैं, उनका शरीर छल से भरा हुआ है, और वे कलियुग के पापों के भंडार ही हैं ॥

चौ०—बंचक ‡ भक्त कहाइ रामके । + किंकर कंचन कोह कामके ॥
तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी । धिक धरमध्वज धंधक धोरी ॥

---

* करतब वायस वेष मराला—

क०—घर की पियारी नाहि पर की पियारी अप धनि के [illegible]
[illegible] साधु कहवाय [illegible]
[illegible]
[illegible]

† कपट कलेवर कलिमल भाँड़े—

गीता पुस्तक हाथ साथ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

शब्दार्थ—वंचक = ठगिया। किंकर (किम् = क्या + कर = करना) = क्या करें (ऐसा प्रश्न जो अपने स्वामी से करे), दास। कंचन = सोना। कोह = क्रोध। प्रथम रेख = पहिली लकीर (किसी की गिन्ती करने में लकीर खींच कर कहते हैं 'एक' फिर दूसरी लकीर खींच कर कहते हैं 'दो' इत्यादि। इसमें पहिली लकीर के साथ जो गिना जाता है वह पहिला (मुखिया) कहलाता है। अर्थात् पहिले नम्बर वाला, या मुखिया। धिक (सं०) = धिक्कार। धर्मध्वज (धर्म = पुण्य + ध्वज = झंडा) = पुण्य का झंडा, पाखंडी (ढोंगरी)। धंधक = काम करने वाला। धोरी = बैल

अर्थ—ठगिया तो हैं पर रामजी के भक्त कहलाते हैं (यथार्थ में) धन और काम के सेवक हैं (अर्थात् धोखा देकर रामदास बनते हैं पर सच पूछो धन दास, क्रोधदास, स्त्री दास हैं, भाव यह है कि वे दिखावटी साधु के रूप में बटोरते हैं, क्रोध करते हैं और स्त्रीवासना रखते हैं)। ऐसे पाखंडियों में मेरी गिन्ती है, धिक्कार है ऐसे धर्मध्वजियों को जो अपने धंधों में बैल के समान जुते रहते हैं (अर्थात् ऐसे मुझ सरीखे पाखंडियों को धिक्कार है जो रामभक्त कहला कर लोगों को नाना प्रकार से ठगने के उद्योग में लगे रहते हैं)॥

चौ०—जो अपने अवगुण सब कहऊँ। बाढ़ै कथा पार नहिं लहऊँ॥
ता तें मैं अति अल्प बखाने। थोरे महँ जानहहिं सयाने॥

अर्थ—जो मैं अपने सम्पूर्ण दुर्गुणों का बखान करूं तो कथा बहुत बढ़ जावेगी और उसकी समाप्ति न होगी। इसहेतु मैं ने बहुत ही थोड़े में उन्हें कह डाला है चतुर लोग थोड़े ही में समझ जावेंगे।

चौ०—समुझि विविध विधि विनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी॥
एतेहु पर करहहिं जे शंका। मोहि ते अधिक ते जड़मति रंका॥

अर्थ—मेरी नाना प्रकार की विनय पर ध्यान रख कोई भी कथा सुन कर मुझे दोष न देगा (अर्थात् मेरी नम्रता, निज दोष स्वीकार और रामकथा का महत्व

सवैया—किंकर काम के कोह के कूकुरे करता काम्हरी में कठिनोई।
लोभ दलान के काम करैया कहैया कुढंग कुमार करोई॥
कंचन कामिनी काज के काजिल काजी कुपातन कृत्यकुखोई।
कूकुर कर्म कहाँ कहँ लौं करतूत यहे कलि के सब कोई॥

विचार बहुधा लोग मुझे दोष न देवेंगे)। इतने पर भी जो लोग शंका करेंगे उन्हें मुझ से भी अधिक मूर्ख और मति हीन समझना चाहिये ॥

चौ०—कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ । मति अनुरूप रामगुण गावउँ ।
*कहँ रघुपति के चरित अपारा । कहँ मति मोरि निरत संसारा ।

शब्दार्थ—अनुरूप = अनुसार । निरत = आसक्त. फंसी हुई ॥

अर्थ—न तो मैं कवि हूं और न चतुर कहलाता हूं, मैं तो अपनी बुद्धि के अनुसार श्री रामचन्द्र जी के गुणों का वर्णन करता हूं। कहां तो रघुनाथ जी के अनगिनती चरित्र और कहां मेरी बुद्धि जो संसारी कामों में फंसी हुई है (भाव यह कि बुद्धि थोड़ी और चरित्रों का पारावार नहीं) ॥

चौ०—जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं । कहहु तूल केहि लेखे माहीं ॥
समुझत अमित राम प्रभुताई । करत कथा मन अति कदराई ।

शब्दार्थ—मारुत = पवन । तूल = रुई ॥

अर्थ—जो पवन सुमेरु पर्वत को उड़ा सक्ते हैं उसके साम्हने रुई किस गिनती में है (भाव यह कि जिन रामचरित्रों को शारद, नारद, आदि भी वर्णन नहीं कर सक्ते उनका वर्णन में तुलसीदास कैसे कर सकूंगा)। श्रीरामचन्द्र जी की अपरंपार महिमा पर विचार करने से उनकी कथा लिखने में मन बहुत कचियाता है ॥

दो०—†शारद शेष महेश विधि, आगम निगम पुरान ॥
नेति नेति कहि जासु गुण, करहिं निरन्तर गान ॥ १२ ॥

---

* कहँ रघुपति के चरित अपारा—इसी आशय को रघुवंश में कालिदास जी ने कैसी उत्तम रीति से वर्णन किया है यथा.—

श्लोक—क्व सूर्य प्रभवो वंशः क्व चाल्प विषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरं ॥

अर्थात् (कालिदास जी कहते हैं कि) कहां तो सूर्य से उत्पन्न वंश और कहां मेरी अल्प बुद्धि, मैं मोह वश एक नाव के द्वारा [illegible] समुद्र के पार जाना चाहता हूं ॥ भाव यह कि सूर्य वंश का वर्णन बहुत ही कठिन है अतएव मेरी बुद्धि काम नहीं देती ॥

† शारद शेष महेश विधि, आगम निगम पुरान—आदि—श्री गजाधर प्रसाद (उपनाम मोहिनी दास) बनारस निवासी कृत प्रेम पीयूष धारा से—

पद—रघुवर तेरो नाम अनंत ।
गावत शेष महेश शारदा, पावत तदपि न अन्त ॥
ध्यावत सनकादिक मुनि नारद, नित नित निगम कहन्त ।
मोहनि दास मगन है निशि दिन, तेरो ध्यान धरन्त ॥

अर्थ—सरस्वती, शेषनाग, महेशजी, ब्रह्मदेव, शास्त्र, वेद और पुराण (वेद शास्त्र) जिनके गुणानुवाद सदैव वर्णन किया करते हैं और फिर भी कहते 'नेति' 'नेति' अर्थात् इतना ही नहीं, इतना ही नहीं ॥

चौ०—सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। *तदपि कहे बिन रहा न कोई॥
तहां वेद अस कारण राखा। †भजन प्रभाव भाँति बहु भाखा॥

अर्थ—परमेश्वर के महत्व को सभी जानते हैं (कि वह अकथनीय है) इतने पर भी उसकी कुछ न कुछ महिमा कहे बिना कोई न रहा। उसका कारण वेदों अनुसार यही निश्चित हुआ कि भजनों का प्रभाव अनेकन भांति का है (अर्थात् अपनी अपनी भावना के अनुसार ईश्वर के गुणों का गान लोग किया करते हैं)॥

चौ०—एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद परधामा॥
व्यापक विश्वरूप ‡भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना॥

शब्दार्थ—अनीह = इच्छारहित। अरूप = आकार रहित। अनामा = नाम रहित। अज = जन्म रहित। सच्चिदानन्द (सत = तीनों काल में रहने वाला + चित = चैतन्य किंवा ज्ञानस्वरूप + आनन्द = पूर्ण सुख) = त्रिकाल अबाधित, चैतन्य स्वरूप और आनन्द घन। परधामा = जिनका स्थान सबसे परे है—

---

* तदपि कहे बिन रहा न कोई—जसवंत जसो भूषण से—
दो०—अबलौं कल्पारंभ ते, आये कहत अनेक।
कत समस्त कहिये समथ, मैं अलपायु रु एक॥

† भजन प्रभाव भाँति बहु भाखा—जैसा कि श्री मद्भागवत में लिखा है—
श्लोक—यत्कीर्त्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं। यद्वंदनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमोनमः॥

अर्थात्—जिस प्रभु के गुणानुवाद कहना, जिसका स्मरण करना, जिसका दर्शन करना, जिस की वंदना करना, जिस का यश सुनना, और जिस का पूजन करना प्राणियों के पापों को तुरंत ही नाश कर देता है ऐसे कल्याण रूपी परमेश्वर को प्रणाम है॥

‡ व्यापक विश्वरूप भगवाना—ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में नारद जी के वचन अम्बरीष प्रति—
श्लोक—दर्शनागम्यकं विश्वं मया विज्ञान चक्षुषा।
वाङ्मनोगोचरातीतं निर्विकल्पं मयोद्दृम्॥

अर्थात् हे अम्बरीष जी! जो मैं ने ध्यान धरके विज्ञान के नेत्रों से देखा वह संसार में रामजी को व्याप्त देखा जो मनसा वाचा कर्मणा से परे निर्विकार और अनादि हैं॥

...ीतु वैकुंठवासी । व्यापक = सब स्थानों में रहने वाले । ...रूप = विराटरूप । भगवान् (भग = ऐश्वर्य + वान् = वाले) ...छः ऐश्वर्य वाले ।

अर्थ—केवल एक, इच्छा रहित, आकार रहित, नाम रहित, जन्म रहित, सच्चिदा- ... वैकुंठ निवासी, घट घट वासी, विराटरूप और षडैश्वर्यशाली परब्रह्म हैं ... देह धारण कर अनेक चरित्र करते हैं ॥

...—सो केवल भक्तन हित लागी । परम कृपालु प्रणत अनुरागी ॥
जेहि जन पर ममता अति छोहू । तेहि करुणा कर कीन्ह न कोहू ॥

अर्थ—(वे) परम दयालु हैं और शरणागत पर प्रेम करते हैं उन ईश्वर का ...ार लेना केवल अपने भक्तों के निमित्त है । दयासागर परमेश्वर की कृपा और जिस प्राणी पर होता है उस पर वे क्रोध नहीं करते ॥

...० — गई बहोर गरीब नेवाजू । सरल सबल साहिब रघुराजू ॥
बुध बरनहिं हरियश अस जानी । करहिं पुनीत सुफलनिज बानी ॥

अर्थ—(गाने की रीति पर) प्रभु बिगड़ी के बनाने वाले, दीनों के पालने वाले, हैं ...ल सबल भगवान । रघुवंश जन्मने वाले । ऐसासमझ बुद्धिमान् लोग श्री रामचन्द्र का यश वर्णन कर के अपनी वाणी को पवित्र और सफल करते हैं ॥

जेहि जन पर ममता अति छोहू । तेहि करुणा कर कीन्ह न कोहू—
वाल्मीकीय रामायण में कहा है—

श्लोक—मित्र भावेन संप्राप्तं, नत्यजेयं कथंचन ।
दोषो यद्यपि तस्यस्यात्, सतामेतद्धि गर्हितम् ॥

अर्थात् जिससे मित्र भाव मान लिया है उसे कभी न छोड़ना चाहिये । ...दि उसका दोष भी हो क्योंकि यह बात सज्जनों के लिये निन्दनीय है ॥

गई बहोर गरीब नेवाजू । सरल, सबल, साहिब रघुराजू—
गई बहोर से अनेक अभिप्राय निकलते हैं यथा (१) जो कोई वस्तु किसी की चली गई हो तो फिर से मिला देते हैं (२)
भक्तों के अवगुणों पर विचार न करके उन पर कृपा करते हैं (३) देवताओं के गये हुए राज्य और सुख को ...तार धारण कर लौटा देते हैं इत्यादि ॥
गरीब नेवाजू—गरीब ने ... ...दि गरीबों का उद्धार किया ॥
सरल—... ...प्यार से बर्ताव किया था

...नाश किया ॥
...जतिलक कर

...ों पर दिखाई और

चौ०–तेहि बल मैं रघुपतिगुण गाथा। कहिहउँ नाइ रामपद माथा॥
मुनिन्ह प्रथम हरिकीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई॥

अर्थ—उसी के आधार से मैं श्री रामजी के चरणों में सीस नवाकर रघुनाथ जी के चरित्रों की कथा कहूंगा। वाल्मीकि आदि ऋषि हरियश पहिले ही लिख चुके हैं इसहेतु हे भाई! मुझे उन्हीं के अनुसार चलना सहज हो गया है।

दो०–अति अपार जे सरित वर, जो नृप सेतु कराहिं।
चढ़िपिपीलिकउ परमलघु, विनश्रम पारहि जाहिं॥ १३॥

शब्दार्थ—पिपीलका = चींटी॥

अर्थ—(देखो यदि) बड़ी गंभीर नदी का पुल कोई राजा बंधवा देता है तो उस पुल के सहारे से बहुत ही छोटी चींटी भी विना अड़चन के पार हो जाती है (इसी प्रकार वाल्मीकि व्यास आदि मुनियों ने अति गंभीर रामचरित्रों की जो कथा वर्णन कर दी है तो अब अति अल्प बुद्धि वाला मैं तुलसीदास उसी के आधार से कुछ रामचरित्र वर्णन करने में समर्थ हो सक्ता हूं)॥

चौ०–इहि प्रकार बल मनहि दृढ़ाई। करिहौं रघुपति कथा सुहाई॥
*व्यास आदि कवि पुंगव नाना। जिन सादर हरि चरित बखाना॥

---

* व्यास आदि कविपुंगव नाना—पहिले छः मन्वन्तरों की जो कुछ व्यवस्था हो सो ईश्वर जाने, परन्तु प्रचलित मन्वन्तर में प्रत्येक चौकड़ी के द्वापरयुग के अन्त में एक एक व्यास हुए हैं जिन के नाम ये हैं पहिले व्यास (१), स्वयंभू (२), प्रजापति (३), उशना (४), वृहस्पति (५), सविता (६), मृत्यु (७), मघवा (८), वशिष्ठ (९), सारस्वत (१०), त्रिधामा (११), त्रिविश (१२), भारद्वाज (१३), अन्तरिक्ष (१४), धर्म (१५) त्रय्यारुण (१६), धनंजय (१७), मेधातिथि (१८), व्रती (१९), अत्रि (२०), गौतम (२१), हर्यात्मा (उत्तमा) (२२), वेन वाजश्रवा (२३), सोमशुष्मायण (२४), तृणविन्दु (२५), भार्गव (२६), शक्ति (२७), जातुकर्ण और (२८) वर्तमान व्यास कृष्ण द्वैपायन (ये पराशर के पुत्र हैं) अब २९वीं चौकड़ी में द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा व्यास होवेंगे, जैसा कहा है (देवी भागवत स्कन्ध १-४) 'एकोन विंशे संप्राप्ते, द्रौणिर्व्यासो भविष्यति'। व्यास शब्द का अर्थ वेद की व्यवस्था करने वाला समझा जाता है, इस का यही काम है कि वेदों की जो अव्यवस्था हो गई हो, उसे ठीक किया करें॥

इन महात्मा के विषय में बुंदेलखण्ड की जैतपुर निवासिनी गीतसखी कृत कविता देखिये—

पद—जय जय विशद व्यास की वानी।
मूलाधार इष्ट स्वमत उत्कर्ष भक्ति रसखानी॥

(लोक वेद)

सहज बैर बिसराय रिपु, जो सुनि करहिं बखान ॥

अर्थ–जो कविता सरल हो और यश निर्मल हो उसी का आदर सज्जन करते तथा उसी को सुन कर स्वाभाविक वैरी भी अपने वैर को छोड़ करके उसका वर्णन ने लगते हैं ॥

दोहा–सो न होइ बिन बिमल मति, मोहि मतिबल अति थोरि ।
करहु कृपा हरियश कहउँ, पुनि पुनि करउँ निहोरि ॥

अर्थ–ऐसी कविता बिना शुद्ध बुद्धि के नहीं हो सक्ती और मुझ में बुद्धि का बल बहुत थोड़ा है। इस हेतु बारंबार विनती करता हूं कि आप लोग कृपा करें जिस से मैं रामयश वर्णन कर सकूं ॥

दो०–कवि कोविद रघुवरचरित, मानस मंजु मराल ।
बालविनय सुनि सुरुचिलखि, मोपर होहु कृपाल ॥

अर्थ–कवि और पंडित लोग श्री रामचंद्र जी के मानसरोवररूपी चरित्रों के सुंदर हंस हैं ऐसे जन मुझ अज्ञानी की विनती सुन और प्रेम को देख मुझ पर दयालु होवें ॥

सो०–*वंदौंमुनिपदकंज, रामायण जिन निरमयेउ ।
सखरसकोमल मंजु, दोप रहित दूपण सहित ॥

श्लोक–युध्यंतमर्जुनं दृष्ट्वा के के देवा न विस्मिताः ।
न मन्ये यदु गोविंदो दृष्ट कर्ण पराक्रमः ॥

अर्थ–अर्जुन को संग्राम करते देख कौन २ से देवता आश्चर्य युक्त नहीं हुए (अर्थात् सभी चकित हुए थे) परंतु श्री कृष्ण जी ने कर्ण के पराक्रम को देख अर्जुन के पराक्रम को कुछ प्रशंसनीय न समझा (कारण श्री कृष्ण जी सारथी थे, पृथ्वी अर्जुन के रथ को विशेष आकर्षित किये थी और हनुमान् जी ध्वजा पर विराजे थे तो भी कर्ण के बाण से अर्जुन का रथ पीछे हट ही जाता था, यह बात श्री कृष्ण जी ही जानते थे इसी से इन्हों ने शत्रु पक्ष वाले कर्ण के बल की प्रशंसा की)।

* वंदौं मुनिपद कंज ......यह सोरठा प्रायः नीचे लिखे श्लोक ही का उल्था है —

नमस्तस्मै कृता येन पुण्या रामायणी कथा ।
सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला ॥

कवि वाल्मीकि जी की वंदना करने का यह अभिप्राय है कि ये आदि कवि हैं और वरदान पाये हुए हैं। ये श्री रामचन्द्र जी के समकालीन थे तथा इन्हों ने रामायण में पहिले ही से वे बातें लिख दीं थी जिनकी घटना पीछे हुई। इन सब बातों का विचार कर कवि जी ने आरंभ हीं के सोरठे श्लोक में इनकी वन्दना कर ली है और अब फिर से उसे स्पष्ट कर इनकी कविता से आरम्भ करते हैं जो सरल, अलंकार आदि से युक्त हो कर इसी श्लोक का उल्था है ॥

[illegible]

चौथा अर्थ दूसरी लकीर का—रामायण की कथा कोमल और मंजु है यदि सखरता अर्थात् कठोरता इसमें ढूंढ़ी जावे तौ केवल 'खर' राक्षस का नाम ही है और दूसरी सखरता नहीं, इसी प्रकार इस में दूषण भी नहीं है यदि दूषणों का खोज करें तौ 'दूषण' राक्षस का नाम मात्र दूषण के स्थान में है और कोई दूसरा दूषण नहीं ॥ (यह अर्थ प्राय: उस कविता के अर्थ की नाईं है जो तुलसीदास जी ने उत्तर कांड में लिखी है, यथा—दंड यतिन कर भेद जहँ, नर्त्तक नृत्य समाज। जितहु मनहि अस सुनिय जग, रामचन्द्र के राज) ॥

सो०—*वंदौं चारिउ वेद, भववारिधिबोहित सरिस।
जिनहिं न सपनेहु खेद, बरनत रघुवर विशद यश ॥

अर्थ—मैं चारों वेदों की वंदना करता हूं जो संसाररूपी समुद्र से पार करने के [लि] नौका के समान हैं और जिन को श्री रामचन्द्र जी की निर्मलकीर्त्ति वर्णन [क]रने में कुछ भी क्लेश नहीं होता ॥

सो०—†वंदौं विधिपदरेणु, भवसागर जेहि कीन्ह जहँ।
संत सुधा शशि धेनु, प्रकटे खल विष वारुणी ॥

---

* वंदौं चारिउ वेद—चारों वेदों में परमात्मा की स्तुति अनेक रूप में की गई है और वही [प]रमात्मा अवतार धारण कर रामरूप हो गये हैं इस हेतु श्री रामचन्द्र जी का [य]श वर्णन मानो परमात्मा ही का यश वर्णन है जो कि वेदों में किया गया है. यह उस [शं]का का समाधान है जो लोग कभी २ विचारने लगते हैं कि वेद में रामयश का वर्णन [न]हीं, और भी—

वेद वेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसा दासीत् साक्षाद्रामायणात्मना ॥

अर्थात् वेदों से जानने के योग्य परात्पर ब्रह्म ने दशरथ जी के यहां पुत्र रूप से अवतार लिया तब वेद भी वाल्मीकि मुनि के द्वारा रामायण रूप में अवतीर्ण हुए. तभी तो गोस्वामी जी कहते हैं कि वेदों को रामयश वर्णन करने का क्लेश लेश मात्र भी नहीं होता ॥

† वंदौं विधिपदरेणु, भवसागर जेहि कीन्ह जहँ—इस में कदाचित् कोई यह शंका कर बैठे कि ब्रह्मा जी की स्तुति बहुधा ग्रंथों में नहीं मिलती यहां पर गोस्वामी जी ने क्यों की तो उसका कारण तुलसी दास जी स्पष्ट करते हैं कि इस सृष्टि के कर्त्ता तो ब्रह्मदेव ही हैं इस के सिवाय अध्यात्म रामायण में स्वतः शिव जी ब्रह्मदेव के महात्म्य को दो वर्णन करते हैं।

(श्लोक)

अर्थ—ब्रह्मदेव की चरणरज को मैं वंदना करता हूं जिन ब्रह्मदेव ने संसार को बनाया है। जहां पर संत तो मानो अमृत, चंद्रमा और गौ के समान हैं और दुष्टजन विष और मदिरा के तुल्य हैं ॥

दो०—विबुध विप्र बुध ग्रह चरण, वंदि कहउँ कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल, *मंजु मनोरथ मोरि ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—विबुध=देवता ॥

अर्थ—मैं देवताओं, ब्राह्मणों, सज्जनों और नवग्रहों के चरणों की वंदना हाथ जोड़ कर करता हूं। सब ही प्रसन्न हो कर मेरी सुन्दर मनोकामनाएँ पूर्ण कीजिये ॥

(६. शिव पार्वती जी की विशेष वंदना)

चौ०—पुनि वंदौं शारद सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता॥

श्लोक—तत्रद्दष्ट्वा मूर्त्तिमद्भिश्छन्दोभिः परिवेष्टितम्।
बालार्क प्रभया सम्य भासयंतंसभागृहम्॥
मार्कण्डे यादि मुनिभिः स्तूयमानं मुहुर्मुहुः।
सर्वार्थ गोचरंज्ञानं, सरस्वत्या समन्वितम्॥
चतुर्मुखं जगन्नाथं भक्ताभीष्ट फलप्रदम्।
प्रणम्यदंडवद्भक्त्या तुष्टाव मुनि पुंगवः॥

अर्थात् वहां पर नारद मुनि ने ब्रह्मा जी को मूर्त्ति धारण किये हुए चारों वेदों से सेवा किये हुए तथा प्रातःकाल के सूर्य के समान सम्पूर्ण सभा गृह को सुशोभित करते हुए देखा और बार बार मार्कण्डेय आदि अनेक मुनि उनकी स्तुति कर रहे थे जो वेद आदि सब शास्त्र और जे लौकिक पदार्थ हैं तिन सब के जानने वाले हैं और सरस्वती देवी सहित हैं। जो संसार के स्वामी चार मुँह वाले और भक्तों को इच्छित फल के देने वाले हैं ऐसे ब्रह्मा जी को वे नारद मुनि भक्तिपूर्वक नमस्कार कर के खड़े हो रहे ॥

'भवसागर जेहि कीन्ह जहँ'—कवि की चतुराई देखिये कि जब उन्हों ने संसार को समुद्र के समान कहा तो उसमें के कुछ जीव, को समुद्र से निकले हुए चौदह रत्न के तुल्य ही बताया। यथा—उत्तम रत्न संत हैं जिनकी तुलना अमृत, चन्द्रमा और कामधेनु से की है सो यों कि संतजन अमृत के समान गुणकारी हैं क्यों कि वे रामयश सुना कर लोगों को मानो अमर कर देते हैं ऐसे ही चन्द्रमा के समान उनके त्रैताप दूर करते हैं और कामधेनु के समान इच्छित फल देने वाले हैं॥ असंतों की उपमा विष और मदिरा से की है कारण वे विष तुल्य ज्ञान वैराग्य के घातक और मदिरा की नाईं मादक हैं॥

* इन १४ दोहों में श्री गोसाईं जी ने १४ भुवन के रहने वाले जीवधारियों की वंदना की है।

*मज्जन पान पाप हर एका। †कहन सुनन इक हर अविवेका

अर्थ—फिर मैं शारदा जी और गंगा जी की वंदना करता हूं इन दोनों चरित्र पवित्र और मनोहर हैं। एक (गंगा जी) में स्नान करने या उनका जल पी से पापों का नाश होता है और दूसरी (शारदा जी) के कहने सुनने से अज्ञान न हो जाता है (अर्थात् शारदा जी का कथन और श्रवण करने ही अज्ञान मि जाता है)॥

चौ०—गुरु पितु मातु महेश भवानी। प्रणवौं दीनबंधु दिनदानी ॥
सेवक स्वामि सखा सियपी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के

शब्दार्थ—दिनदानी=प्रति दिन पालन करने वाले। निरुपधि (निर्-नहीं उपाधि = छल) = छल रहित अर्थात् शुद्ध.

अर्थ—गुरु और पिता के तुल्य शिवजी तथा माता के समान पार्वती जी की

---

* मज्जन पान पाप हर एका—

[illegible]

वंदना करता हूं, जो दीनों पर दया करने वाले तथा प्रति दिन पोषण करने व
(क्यों कि शिव जी) श्री रामचंद्र जी के सेवक, स्वामी और सखा समझे
तभी तो वे सब प्रकार से तुलसी दास जी के शुद्ध हित करने वाले समझे

चौ०—कलिविलोकिजगहितहरगिरिजा।*शावर मंत्रजालजिन
अनमिल आखर अर्थ न जापू। प्रकट प्रभाव महेश प्रतापू॥

शब्दार्थ—शावरमंत्र = सिद्ध शावर नाम के ग्रंथ में लिखे हुए मंत्र।
(सृजा) = रचा। आखर शुद्धरूप अक्षर॥

अर्थ—कलियुग को देख जिन महादेव पार्वती जी ने संसार की भलाई के
शावर मंत्र रचे हैं। जिन में न तो अक्षरों का ठीक ठीक मेल ही है न अर्थ है
न जपने की कोई विधि है परन्तु महादेव जी के प्रताप से उन मंत्रों का प्रभाव
है (अर्थात् उन से सिद्धि होती है)॥

चौ०—सो महेश मोहि पर अनुकूला। करहिं कथा मुद मंगल मूला
सुमिरि शिवा शिव पाइ पसाऊ। बरनउँ रामचरित चितचाऊ

शब्दार्थ—शिवा = पार्वती। पसाऊ (प्रसाद) = प्रसन्नता। चाऊ (चाव
उमंग॥

अर्थ—ऐसे महादेव जी मुझ पर प्रसन्न हो कर मेरी कथा को आनंद
की देने वाली कर देवें (अर्थात् जिन शिव जी ने शावर मंत्रों को सिद्धि दे
उन्हें मेरी कथा को आनंद मंगल देने वाली कर देना कुछ भी कठिन नहीं
अब भवानी शंकर का स्मरण कर और उन की प्रसन्नता प्राप्त कर मैं बड़ी उमं
राम कथा लिखता हूं॥

स्वामी—(अयोध्याकांड में) 'तब मज्जन करि रघुकुल नाथा। पूजि पार्थिव नायउ माथ
सखा—(लंकाकांड में) 'शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास।
सो नर करहिं कल्प भर, घोर नरक महँ वास॥

और श्री सेतुबन्ध के समय श्री रामचंद्र जी द्वारा स्थापित किये हुए शिव जी
'रामेश्वर' इस नाम के समास से भी तीनों बातें स्पष्ट होती हैं—
सेवक का अर्थ—रामः ईश्वरो यस्य अर्थात् राम हैं ईश्वर जिन के।
स्वामी का अर्थ—रामस्य ईश्वरः अर्थात् राम के स्वामी।
सखा—रामश्चासौ ईश्वरः अर्थात् जो राम हैं सोई ईश्वर शिव जी हैं।

* [illegible] शिव जी ने शावर का [illegible] इस लिये कहते हैं
[illegible] किया था जिसका विस्तार पूर्वक [illegible]
[illegible] में लिखा है। शावर के रचित मंत्र 'शावर' कहलाये और
[illegible] में नहीं आता तो भी वे सिद्धि के
[illegible] में वे मंत्र लिखे हैं उस का नाम सिद्ध शावर ग्रन्थ।

चौ०—भणित मोरि शिव कृपा विभाती। शशिसमाज मिलि मनहुँ सुराती॥
जो यह कथा सनेह समेता। कहिहहिं सुनहहिं समझि सचेता॥
होइहहिं रामचरण अनुरागी। कलिमल रहित सुमंगल भागी॥

शब्दार्थ—विभाती = सुशोभित होगी।

अर्थ—शिव जी की कृपा से मेरी कविता इस प्रकार सुशोभित होगी जिस प्रकार त्र और चन्द्रमा सहित रात्रि सुहावनी लगती है। (भाव यह कि रात्रि अनेक पों से युक्त होने पर भी चन्द्रमा सहित तारागणों से सुशोभित होती है, इसी प्रकार पों की मेरी भद्दी कविता भी शिव जी की कृपा से सब को प्रिय लगेगी)। जो नुष्य इस कथा को प्रेम सहित ध्यान पूर्वक कहेंगे, सुनेंगे और समझेंगे। वे श्री मचन्द्र जी के चरणों में प्रेम लगावेंगे और कलियुग के पापों से छुटकारा पा कर म्पूर्ण कल्याणों को पावेंगे॥

दो०—*सपनेहुँ साँचेहु मोहि पर, जो हर गौरि पसाव।
तौ फुर होइ जो कहेउँ सब, भाषा भणित प्रभाव॥१५॥

शब्दार्थ-पसाव (शुद्ध शब्द प्रसाद) = प्रसन्नता, कहा है अमर कोश में प्रसादस्तु प्रसन्नता'

अर्थ—स्वप्न में भी अथवा यथार्थ में जो मुझ पर महादेव पार्वती जी की प्रसन्नता है तो मैं ने जो कुछ भाषा में कथन करने का प्रभाव कहा है सो सब सत्य ही होवे॥

(७. अयोध्या नगरी, राजा दशरथ और उनके परिकर की वन्दना)

चौ०—†वन्दौं अवधपुरी अति पावनि। सरयूसरिकलिकलुषनसावनि
प्रणवौं पुर नर नारि बहोरी। ममता जिन पर प्रभुहि न थोरी॥

* सपनेहुँ साँचेहु मोहि पर, जो हर गौरि पसाव—उत्तम और कठिन कार्यों की सूचना महात्माओं को बहुधा स्वप्न द्वारा हो जाया करती है, क्योंकि ईश्वर के संकेत बहुधा स्वप्न द्वारा अथवा महात्माओं की बुद्धि स्फुरण द्वारा हुआ करते हैं। यथा—

श्लोक—आदिष्ट वान्यथा स्वप्ने, रामरक्षामिमां हरः।
तथा लिखित वान्प्रातः, प्रबुद्धो बुधकौशिकः॥

अर्थात् जिस प्रकार इस राम रक्षा को भी महादेव जी ने [illegible] जी से स्वप्न में कह सुनाई थी, उसी प्रकार उन्हों ने प्रातःकाल उठ कर लिख डाली॥

† वन्दौं अवधपुरी अति पावनि। सरयू सरि कलि कलुष नसावनि—अति पावनि कहने का यह अभिप्राय है कि और पवित्र स्थानों से यह पुरी श्रेष्ठ समझी गई है जैसा कहा गया है—
अयोध्या सर्व वैकुण्ठानां मूलाधारः मूलप्रकृतेः परात्परा
तत्सद्ब्रह्म मया विरजोत्तरा दिव्य रत्नकोशाढ्या [illegible] नित्यमेव [illegible]
विहारस्थलमस्तीति।

वंदना करता है, जो दीनों पर दया करने वाले तथा नित हित करते ... (जो कि शिव जी) श्री रामचंद्र जी के सेवक, स्वामी और सखा हैं ... सभी जीवों के सब प्रकार से तुलसी दास जी के शुभ हित करने वाले ...

चौ०—कलिविलोकिजगहितहरगिरिजा। शावर मंत्रजाल जिन सिरजा॥
अनमिल आखर अर्थ न जापू। प्रकट प्रभाव महेश प्रतापू॥

शब्दार्थ—शावरमंत्र = सिद्ध शावर नाम के ग्रंथ में लिखे हुए ... (सृजा) = रचा। आखर शुद्धरूप अक्षर॥

अर्थ—कलियुग को देख जिन महादेव पार्वती जी ने संसार की भलाई के लिये शावर मंत्र रचे हैं। जिन में न तो अक्षरों का ठीक ठीक मेल ही है न अर्थ न जपने की कोई विधि है परन्तु महादेव जी के प्रताप से उन मंत्रों ... है (अर्थात् उन से सिद्धि होती है) ॥

चौ०—सो महेश मोहि पर अनुकूला। करहिं कथा मुद मंगल मूला॥
सुमिरि शिवा शिव पाइ पसाऊ। बरनउँ रामचरित चित चाऊ॥

शब्दार्थ—शिवा = पार्वती। पसाऊ (प्रसाद) = प्रसन्नता। चाऊ (... उमंग ॥

अर्थ—ऐसे महादेव जी मुझ पर प्रसन्न हो कर मेरी कथा को आनंद की देने वाली कर देवें (अर्थात् जिन शिव जी ने शावर मंत्रों को सिद्धि ... उन्हें मेरी कथा को आनंद मंगल देने वाली कर देना कुछ भी कठिन नहीं ... अब भवानी शंकर का स्मरण कर और उन की प्रसन्नता प्राप्त कर मैं बड़ी ... राम कथा लिखता हूं ॥

...मी—(अयोध्याकांड से) 'तब मज्जन करि रघुकुल नाथा। पूजि पार्थिव ...
...—(लंकाकांड से) 'शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम ...
सो नर करहिं कल्प भर, घोर नर्क महँ ...
...और भी सेतुबन्ध के समय श्री रामचंद्र जी द्वारा स्थ...
...वर' इस नाम के समास से भी तीनों बातें स्पष्ट होती...
...सेवक का लक्ष्य—रामः ईश्वरो यस्य अर्थात् राम हैं...
...स्वामी का लक्ष्य—रामस्य ईश्वरः अर्थात् राम के...
...खा-रामश्चासौ ईश्वरः अर्थात् जो राम हैं सोई...
...शावर मंत्र जाल जिन सिरिजा–शिव जी को...
...वर रूप धारण कर अर्जुन से संग्राम...
...किरातार्जुनीय ग्रन्थ में लिखा है। शावर...
...अक्षरों का ठीक २ मेल तथा अर्थ...
...है। इसी हेतु जिस ग्रंथ में ये मंत्र...

लोग सीता जी का अग्नि द्वारा शुद्ध होना न देख सके थे, क्यों कि यह कार्य बहुत दूर समुद्र के पार लंका में हुआ था, उन के चित्त की शुद्धि कर उन को सन्तुष्ठ किया)॥

चौ०—वन्दौं †कौशल्या दिशि प्राची। कीरति जासु सकल जग माँची॥
प्रकटेउ जहँ रघुपति शशि चारू। विश्व सुखद खल कमल तुषारू॥

शब्दार्थ—प्राची=पूर्व दिशा। माँची=फैली है

अर्थ—मैं कौशल्या जी को पूर्व दिशा के समान मान प्रणाम करता हूं काहे से के उन की कीर्त्ति सब दिशाओं में फैली हुई है। जहां से उत्तम चन्द्रमारूपी श्री रामचन्द्र जी प्रकट हुए, जो संसार को सुख देने वाले और कमलस्वरूपी दुष्टों को नाश करने के हेतु शीत के समान हैं (भाव यह है कि चन्द्र पूर्व दिशा से उदय हो कर सब लोगों को सुख देता है परन्तु अपनी विशेष शीतलता से कमलों को सुखा डालता है इसी प्रकार कौशल्या से प्रकट हुए श्री रामचन्द्र जी सज्जनों के सुख दाता और दुष्टों के प्राण हर्त्ता हैं)॥

चौ०—दशरथ राव सहित सब रानी। सुकृत सुमंगल मूरति मानी॥
करौं प्रणाम कर्म मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी॥
जिनहिं विरचि बड़ भयउ विधाता। महिमा अवधि राम पितु माता॥

अर्थ—रानियों समेत महाराजा दशरथ जी को अच्छे कर्म और कल्याण स्वरूप मान मनसा, वाचा, कर्मणा से मैं प्रणाम करता हूं, आप सब मुझे अपने पुत्रों का सेवक समझ कृपा कीजिये। जिनको उत्पन्न करके ब्रह्मा ने भी बड़ाई पाई, कारण सब महिमा की सीमा जो श्री रामचन्द्र जी हैं उनके ये माता पिता हैं॥

गये, परन्तु उन्हों ने श्री रामचन्द्र जी को यह सन्देशा भिजवाया कि आप का राज्य नया है "आप को चाहिये कि अपनी प्रजा को प्रसन्न करते रहैं, उस से जो यश की प्राप्ति है वही अपना बड़ा धन है" इस के अनुसार जब श्री रामचन्द्र जी ने अपने विश्वासी दूत के द्वारा समाचार पाया कि कोई कोई श्री सीता जी के अग्नि शुद्धि पर विश्वास नहीं करते क्यों कि यह कार्य बहुत ही दूर समुद्र के पार लंका में हुआ था। इस हेतु उन्हें इस के देखने का अवसर न मिला था। श्री रामचन्द्र जी ने गर्भवती होने पर भी सीता जी का परित्याग वाल्मीकि ऋषि के आश्रम के निकट करा दिया। कुछ काल के अनन्तर वाल्मीकि ऋषि ने वन देवता, पृथ्वी देवी, अग्नि देव आदि के साथ सीता जी को उनके दो पुत्रों समेत भरी सभा में श्री रामचन्द्र जी को सौंप दिया और कहा—हम सब लोगों का कथन है कि श्री जानकी जी सर्वथा निर्दोष हैं। आप ने इनका परित्याग कर प्रजा के लोगों पर अपना प्रेम दर्शाया सो उत्तम किया। अब अयोध्यावासी भी अपनी निर्मूल शंका को मिटावें। इस प्रकार अयोध्यानिवासियों को शोक रहित कर अन्त में श्री रामचन्द्र जी ने उन्हें वैकुंठ वास दिया॥ (देखो अध्यात्म तथा वाल्मीकीय रामायण उत्तर काण्ड)

† वन्दौं कौशल्या दिशि प्राची—प्रकटेउ जहँ रघुपति शशि चारु—(चरित्र)

ता जी का अग्नि द्वारा शुद्ध होना न देख सके थे, क्यों कि यह कार्य बहुत
; के पार लंका में हुआ था, उन के चित्त की शुद्धि कर उन को सन्तुष्ट किया)॥

न्दौं कौशल्या दिशि प्राची। कीरति जासु सकल जग माँची॥
प्रकटेउ जहँ रघुपति शशि चारू। विश्व सुखद खल कमल तुषारू॥

ब्दार्थ—प्राची=पूर्व दिशा। माँची=फैली है

र्थ—मैं कौशल्या जी को पूर्व दिशा के समान मान प्रणाम करता हूं काहे से
। की कीर्त्ति सब दिशाओं में फैली हुई है। जहां से उत्तम चन्द्रमारूपी
रचन्द्र जी प्रकट हुए, जो संसार को सुख देने वाले और कमलस्वरूपी दुष्टों
श करने के हेतु शीत के समान हैं (भाव यह है कि चन्द्र पूर्व दिशा से उदय
सब लोगों को सुख देता है परन्तु अपनी विशेष शीतलता से कमलों को सुखा
। है इसी प्रकार कौशल्या से प्रकट हुए श्री रामचन्द्र जी सज्जनों के सुख
और दुष्टों के प्राण हर्त्ता हैं)॥

—दशरथ राव सहित सब रानी। सुकृत सुमंगल मूरति मानी।
करौं प्रणाम कर्म मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी।
जिनहिं विरचि बड़ भयउ विधाता। महिमा अवधि राम पितु माता।

अर्थ—रानियों समेत महाराजा दशरथ जी को अच्छे कर्म और कल्याण
प मान मनसा, वाचा, कर्मणा से मैं प्रणाम करता हूं, आप सब मुझे अपने
का सेवक समझ कृपा कीजिये। जिनको उत्पन्न करके ब्रह्मा ने भी बड़ाई पाई,
रण सब महिमा की सीमा जो श्री रामचन्द्र जी हैं, उनके ये माता पिता हैं॥

।, परन्तु इन्दों ने श्री रामचन्द्र जी को यह सन्देशा भिजवाया कि आप का राज्य
त है "आप को चाहिये कि अपनी प्रजा को प्रसन्न करते रहें, उस से जो यश की
ति है वही अपना बड़ा धन है" इस के अनुसार जब श्री रामचन्द्र जी ने अपने
एचारी दूत के द्वारा समाचार पाया कि कोई कोई श्री सीता जी के अग्नि शुद्धि पर
श्वास नहीं करते क्यों कि यह कार्य बहुत ही दूर समुद्र के ...

शब्दार्थ—विदेह (वि=नहीं + देह = शरीर) = जिसको अपने शरीर का कुछ [ध्या]न नहीं था, केवल परमेश्वर का ध्यान था अर्थात् राजा जनक। गोई = छिपा कर

अर्थ—मैं राजा जनक जी को परिवार समेत वन्दना करता हूं जिन सब का गुप्त [प्रेम] श्री रामचन्द्र जी के चरणों में था। उस प्रेम को उन्हों ने योग और भोग में [छि]पा कर रक्खा था परन्तु श्री रामचन्द्र जी को देखते ही वह प्रकट हो गया (अर्थात् [वि]देह जी तो रामप्रेम को अपने योग के अभ्यास के कारण प्रकट नहीं होने देते थे [पर]न्तु श्री रामचन्द्र जी के दर्शन होते ही वह छिप न सका, प्रमाण—

'इनहिं विलोकत अति अनुरागा। बरबश ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा' और परिजन [का] प्रेम तो उनके भोग विलास के कारण समझ न पड़ता था सो वह भी राम दर्शन [से] प्रकट हो गया। जैसे–'पहिचान को केहि जान सबहि, अपान सुधि भोरी भई')॥

चौ०–प्रणवौं प्रथम भरत के चरणा। * जासु नेम ब्रत जाय न बरणा॥
† रामचरण पंकज मन जासू। लुब्ध मधुप इव तजै न पासू॥

अर्थ– (श्री रामचन्द्र जी के तीन भाइयों में से) पहिले भरत जी के चरणों [क]ो मैं वंदना करता हूं जिन के नियम और ब्रत का वर्णन नहीं किया जा सक्ता। [ज]िनका मन श्री रामचन्द्र जी के कमलस्वरूपी चरणों में भौंरे की नाई ऐसा लुभा रहा था कि साथ नहीं छोड़ता था॥

चौ०–बन्दौं लछिमन पद जलजाता। शीतल सुभग भक्त सुखदाता

* जासु नेम ब्रत जाय न बरणा—भरत जी के नियम और ब्रत का विस्तार सहित वर्णन अयोध्या काण्ड में मिलेगा॥

† रामचरण पंकज मन जासू। लुब्ध मधुप इव तजै न पासू—इसकी छटा पं० रामनाथ तिवारी ओझा जी बांदा निवासी द्वारा प्राप्त कवित्त में यों है—

क०—श्याम घन तन पर बिज्जु से दशन पर माधुरी हँसन पर बिलस लगी रहे।
घोर घारे भाल पर लोचन विशाल पर उर बनमाल पर जगत जगी रहे॥
जंघ जुग जानु पर मंजु मुस्कान पर 'श्री पति सुजान' मति प्रेम सों पगी रहे।
नूपुर मगन पर कंज से पगन पर आनँद मगन मेरी लगन लगी रहे॥

'रामचरण पंकज मन जासू' यह बात भरत जी के वचनों से प्रकट होती है जिस समय उन्हों ने चित्रकूट जाते हुए गंगा जी से बरदान मांगा था कि–

दो०–धर्म न अर्थ न काम रुचि, पद न चहौं निर्वान।
जन्म जन्म रति रामपद, यह बरदान न आन॥

अर्थ—मैं शत्रुघ्न के चरणारविंदों को नमन करता हूं जो योधा, सुन्दर स्वभाव और भरत जी के साथी हैं। बड़े बलवान् हनुमान् जी को भी प्रणाम करता हूं की कीर्त्ति स्वत: श्री रामचन्द्र जी ने वर्णन की है॥

१—वन्दौं पवन कुमार, खल वन पावक ज्ञानघन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम शर चाप धर॥ १७॥

शब्दार्थ—आगार = स्थान, घर

अर्थ—वायुपूत की मैं वंदना करता हूं जो वन स्वरूपी दुष्टों को दावानल के न जलाने वाले हैं और ज्ञान से परिपूर्ण हैं (तभी तो) उन के हृदयरूपी घर श्री रामचन्द्र जी धनुषवाण धारण किये हुए निवास करते हैं (अर्थात् शत्रुजित, ज्ञानी हनुमान् जी अपने हृदय में धनुषधारी अवध विहारी जी का ध्यान रहते हैं)॥

दूसरा अर्थ—'बसहिं राम शर चाप धर' इस में यह अर्थ भी ध्वनित होता है श्री रामचन्द्र जी धनुषवाण को और स्थानों में तो धारण किये ही रहते हैं परन्तु महावीर जी ऐसे योधा और विश्वासपात्र परम भक्त हैं कि इन के हृदय में निवास ते समय श्री रामचन्द्र जी अपने धनुष बाण को अलग धर देते हैं। (परमेश्वर का द्व भक्त पर ऐसा ही अटल प्रेम रहता है)॥

अहिराधण की भुजा उखारी बैठ रह्यो मठ माहीं।
जो पै भरत हनुमत नहिं होते को लावै जग माहीं॥
आज्ञा भंग कबहुँ नहिं कीन्हीं जहँ पठयो तहँ आई।
'तुलसि दास', मारुतसुत महिमा कहे न नेक सिराई॥

वन्दौं पवन कुमार, खल वन पावक ज्ञानघन—राग विनोद से राग सहाना—वन्दौं अंजनिसुत सुख दायक।

जेहि उर राम बसत नित प्रति ही धारे कर धनु सायक॥
पर्‌यो आनि के शरण रावरी जानि आपनो पायक।
करि के कृपा कोर कछु हेरौ हौ प्रभु तुम सब लायक॥
महावीर तव नाम बखान्यो निज मुख सो रघुनायक।
मंगल करन सदा नित प्रति ही दुख सकुन के घायक॥
होहु दयाल दया करि मेरे तुम हो हौ पितु मायक।
कीन्हो तव प्रभचन्द आसरो सुमिरत मन बच कायक॥

रघुपति कीरति विमल पताका। ⊙ दंड समान भयउ यश जा

शब्दार्थ—जलजाता (जल = पानी + जात = उत्पन्न) = कमल।
या लकड़ी जिस पर ध्वजा लगाई जाती है॥

अर्थ—लक्ष्मण जी के कमलरूपी चरणों को मैं प्रणाम करता हूं जो शांति
सुन्दर और भक्तों को सुखदाई हैं। श्री रामचन्द्र जी की कीर्तिरूपी पवित्र
लिये जिनका यश दंड के समान हो गया (अर्थात् श्री रामचन्द्र जी की
बढ़ाने वाले लक्ष्मण जी हुए)॥

चौ०—शेष सहस्र सीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टा
सदा सो सानुकूल रह मो पर। † कृपासिंधु सौमित्र गुणा

अर्थ—जो हज़ार मस्तक वाले शेष नाग जी पृथ्वी का भार उतारने
संसार में अवतरे हैं। ऐसे कृपासागर गुणआगर सुमित्रा पुत्र मेरे ऊप
प्रसन्न रहें॥

चौ०—रिपुसूदन पद कमल नमामी। शूर सुशील भरत अनुगा
महावीर विनवौं हनुमाना। राम जासु यश आप बखाना

⊙ दंड समान भयो यश जा का— श्री रामचन्द्र जी की कीर्ति तो सभी
से है परन्तु यह रावण, मेघनाद आदि सम्पूर्ण दुष्ट राक्षसों का वध करवे
विशेष बढ़ी। क्यों कि अवतार ही मुख्य कर के इसी हेतु हुआ था।
की सहायता करने में लक्ष्मण जी ने विशेष उद्योग किया था तथा
तक नींद, नाहिं भोजन का त्याग कर मेघनाद सरीखे बड़े पराक्रमी यं
स्वतः वध साधन कर अगणित राक्षसों को भी मारा था। इसी हेतु
जी कहते हैं कि श्री रामचंद्र जी की कीर्ति को ऊंचा कर थांभने
लक्ष्मण जी हुए.

† कृपासिन्धु सौमित्र गुणाकर— पहिले 'लक्ष्मण' ऐसा नाम लिख कर
कृपासिन्धु सौमित्र कहा। इसका यह अभिप्राय है कि सौमित्र
सुमित्रा के पुत्र और सुमित्रा अर्थात् उत्तम हित करने वाली ऐसा हु
जैसा अयोध्या कांड में लिखा है—'सहज सुहृद बोली मृदु बानी' ऐसी मा
के पुत्र भी कृपासिन्धु होने चाहिये॥

अर्थ—शुकदेव जी, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, भक्त नारद मुनि और मुनियों में श्रेष्ठ बड़े ज्ञानी पंडित हैं उन सब को पृथ्वी पर शिर नवा कर नमन ता हूं, हे मुनीश्वरो ! मुझे अपना सेवक समझ कृपा कीजिये ॥

—* जनकसुता जगजननि जानकी। अतिशय प्रिय करुणानिधान की॥
† ता के युग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निर्मल मति पावउँ॥

अर्थ—जनक की पुत्री, संसार की माता और दया सागर (श्री रामचन्द्र जी) बहुत ही प्राण प्यारी श्री जानकी जी हैं। मैं उन के कमलस्वरूपी दोनों चरणों मानता करता हूं, जिनकी कृपा से मुझे शुद्ध बुद्धि प्राप्त हो ॥

१—पुनि मन वचन कर्म रघुनायक। चरण कमल वन्दौं सब लायक॥
‡ राजिवनयन धरे धनुशायक। भक्त विपति भंजन सुखदायक॥

---

* जनकसुता जगजननि जानकी आदि—इस में यह शंका हो सक्ती है कि जनकसुता और जानकी इन दोनों शब्दों से एक ही अर्थ सूचित होता है अतएव पुनरुक्ति दोष दीख पड़ता है। उसका समाधान यह है कि एक तो जनक जी की दो पुत्री थीं एक जानकी जी और दूसरी उर्मिला (जिसका विवाह लक्ष्मण जी से हुआ था)। इस हेतु 'जानकी' इस शब्द के कहने से दूसरी जनकसुता का निषेध हुआ। दूसरे गोस्वामी जी ने बड़ी चतुराई के साथ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिन से स्त्री की जो प्रसिद्धता तीन प्रकार से होती है उन तीनों की विशेषता सूचित करते हुए जानकी जी की विशेष प्रतिष्ठा दर्शाई है। सो यों— (१) पिता की प्रसिद्धता—जनकसुता से स्पष्ट हुई। (२) पुत्रकी यानी जगत कहने से बड़े बड़े प्रतिष्ठित महात्माओं का पुत्र होना सूचित किया और (३) श्री रामचन्द्र जी की प्रिया कह कर परमात्मा पति की प्रतिष्ठा से बढ़ कर और क्या कहा जा सक्ता है कि उनका सौभाग्य अटल है और किसी बात की कमी नहीं ॥

† ताके युग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निर्मलमति पावउँ—
श्री शिव जी कृत जानकीस्तवराज से—

श्लोक—वन्दे विदेहतनया पद पुंडरीकं, कैशोर सौरभ समाहृत योगि चित्तम्।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनि हंस सेव्यं, सन्मानसालिपरि पीत परागपुंजम् ॥

अर्थ (सवैया में)—जे निज कोमल नार सुगन्ध से योगिन के चित चोर लिये हैं।
तीनहुँ ताप विनाशन को मुनिहंस निरन्तर सेव रहे हैं ॥
सन्त सुमानस भृंग पराग पिये जिन के सब तौर हरे हैं।
ते मिथिलेशलली पदकंज दोऊ प्रदर्शे अनुराग भरे हैं ॥

‡ राजिव नयन धरे धनुशायक—
श्लोक—दूर्वादलद्युतितनुं तरुणाब्ज नेत्रं, हेमाम्बरं वर विभूषण भूषितांगम्।
कन्दर्प कोटि कमनीय किशोर मूर्ति, पूर्ण मनोरथ भवं भज जानकीशम् ॥

स्त्रीलिंग शब्दों) से दरशा करके स्पष्ट कर दिया कि सीता राम अथवा राम ॥ की शब्द रचना में कुछ भी अन्तर नहीं है और न उन में पूर्वा पर का विचार । एक ही हैं जैसा टिप्पणी के श्लोक में कहा है॥

(८ राम नाम की महिमा)

चौ०—*बन्दौं रामनाम रघुवर के। हेतु कृशानु भानु हिमकर के॥

शब्दार्थ—राम (रम् = खेलना) = जिसमें सम्पूर्ण प्राणी क्रीड़ा करते हैं और सभी में रम रहा है॥

अर्थ—मैं रघुकुल श्रेष्ठ श्री राम जी के नाम की वन्दना करता हूं जो अग्नि, र्य और चन्द्र के कारण हैं (अर्थात् अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा जिनके बिना सब गत् और उसके सब प्राणी रह ही नहीं सकते उन के जो प्रसिद्ध उत्पत्ति स्थान हैं से रामनाम की मैं वन्दना करता हूं)। जैसा कहा है पुरुष सूक्त में—

श्लोक—चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च, प्राणाद्वायुरजायत॥

अर्थात् परमात्मा के मन से चन्द्र और नेत्रों से सूर्य उत्पन्न हुए, मुख से इन्द्र और अग्नि की उत्पत्ति हुई और श्वास से वायु की॥ भाव यह कि अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा के आदि कारण श्री राम ही हैं और उसी राम नाम की महिमा के बारे में महा रामायण में यों कहा है—

श्लोक—परमेश्वर नामानि सन्त्यनेकानि पार्वति।
परन्तु रामनामेदं सर्वेषामुत्तमोत्तमम्॥१॥
नारायणादि नामानि कीर्तितानि बहून्यपि।
आत्मा तेषां च सर्वेषां राम नाम प्रकाशकः॥

अर्थात् (महादेव जी कहते हैं कि) हे पार्वती! परमेश्वर के अनेक नाम हैं परन्तु यह राम नाम सब नामों से बहुतही उत्तम है। नारायण आदि नाम भी बहुत कहे गये हैं परन्तु उन सब नामों का प्रकाशक केवल राम नाम ही उन की आत्मा के तुल्य जानो॥

दूसरा अर्थ—मैं रघुकुल श्रेष्ठ रामनाम की वंदना करता हूं जो कृशानु

* बन्दौं रामनाम रघुवर के—'रघुवर रामनाम' इस कथन से यह अभिप्राय है कि 'राम' ऐसा नाम तीन अवतार विशेष का है यथा परशुराम, रघुवर राम और बलराम। इन तीनों में से केवल राम नाम को अलग दरशाने के लिये 'रघुवर राम' ऐसा लिखा है अर्थात् रघुकुल श्रेष्ठ श्री राम जी। इस में ध्वनि भी अनुप्रासें इसी प्रकार भासती है जिस प्रकार 'जनकसुता जग जननि जानकी' इस के कथन में झलकती है देखो इस कांड की टि० पृ० ७५

अर्थ—फिर मनसा, वाचा, कर्मणा से सब प्रकार सुयोग्य
के चरणारविंदों को प्रणाम करता हूं । वे कमलनयन, धनुष
की विपत्ति नाश करने वाले और सुख देने हारे हैं ।

दो०—⊛गिरा अर्थ जल वीचि सम, कहियत भिन्न न
वंदौं सीतारामपद, जिनहिं परमप्रिय खि

शब्दार्थ—वीचि=लहर । खिन्न=दुखी ॥

अर्थ—सीता और राम को वाणी और अर्थ तथा जल और
समझना चाहिये जो कहने में तो भिन्न हैं परन्तु यथार्थ में भिन्न हैं नहीं
जिस प्रकार वाणी और अर्थ कहने में दो अलग अलग शब्द हैं परन्तु
जो वाणी है सो अर्थ है, जो अर्थ है वही वाणी है । इन में कुछ भी भेद
दोनों एक ही हैं इसी प्रकार जल और उसकी लहर भी नाम के भिन्न, पर
ही । वैसे ही सीता और राम कहने को दो व्यक्ति, परन्तु दोनों एक ही ।
ऐसे सीताराम जी के चरणों की मैं वन्दना करता हूं जिन्हें दीन दुखिया
प्यारे हैं (सीता राम जी को दीन दयाल, दीना नाथ आदि जो विशेष
हैं उनका यही अभिप्राय है कि जब मनुष्य सब प्रकार से अपने सब
निराश हो ईश्वर का स्मरण करता है तब तुरन्त ही वे उसकी सहायता
यही अभिप्राय ' परमप्रिय खिन्न ' का है) ॥

सूचना—धन्य है गोसाईं तुलसीदास जी की शब्दयोजनाशक्ति को
ने सीता राम ऐसे शब्द के लिये ' गिरा अर्थ ', की, उपमा (स्त्रीलिंग और
शब्दों ही से) दर्शाई तथा राम और सीता की उपमा ' जल वीचि ' (

अर्थात् दूब के दल के समान शरीर वाले, नवीन कमल के समान नेत्र
पीताम्बर तथा उत्तम आभूषणों से सुशोभित अंग वाले करोड़ों कामदेव के
वाले किशोर अवस्था वाले भक्तों के मनोरथ पूर्तिरूप सीतापति का भजन

● गिरा अर्थ जल वीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न—इसी अभिप्राय
वाला यह वचन है ' रामस्सीता जानकी रामचन्द्रो, नित्याखंडो ये
[illegible] यह कि राम और सीता [illegible] सीता और राम ये सर्वंच
देखने वाले हैं वे ही पंडित हैं (अर्थात् राम और सीता [illegible]
मात्र को ही भिन्न भिन्न शब्द हैं परन्तु इन दोनों का तत्व
[illegible] गोसाईं जी ने कहा है

चौ०—[illegible] मन [illegible] मोरा । [illegible] मिला ।
[illegible] नाहीं । [illegible] प्रीति रहा ।
दो०—[illegible] रामायण में लिखा है—
[illegible]

श कर ज्ञान चाहते हैं और चन्द्रमा का हेतु मान हृदय में शान्ति शीतलता भक्ति चाहते हैं जिस से राम चरित कहने में सामर्थ्यवान् हो जावैं॥

विधिहरि हर मय वेद प्राण से। अगुण अनूपम गुण निधान से॥

अर्थ—राम नाम ब्रह्मा, विष्णु और महेश मय ही है (अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु महेशात्मक है। भाव यह है कि रजोगुण स्वरूप ब्रह्मा का सृष्टि के उत्पन्न करने का काम, सतोगुण स्वरूप विष्णु का सृष्टि पालन का काम और तमोगुण स्वरूप शिव जी का संहार का काम, इन सब कामों के कर्त्ता राम ही हैं) और राम ही वेद के प्राण रूप हैं (अर्थात् जैसे प्राणों के बिना शरीर की स्थिति हो नहीं सकती इसी प्रकार ओंकारात्मक राम के बिना वेद की स्थिति नहीं। भाव यह कि वेद का मुख्य आधार ओंकार ही है जो राम का दूसरा रूप ही है)। जो सत रज तम तीनों गुणों से रहित ब्रह्मरूप हैं और ऐसे ही उपमा रहित तीनों गुणों से युक्त अवतार रूप हैं (सारांश यह है कि वही राम त्रिदेव रूप हैं, वही वेद मूल हैं, वे ही निर्गुण ब्रह्म हैं और वे ही सगुण अवतार हैं)

विधि हरि हर मय—महारामायण से—

> श्लोक—अकारः प्रणवे सत्वमुकारश्च रजोगुणः।
> तमो हलश्च मकारः स्यात् त्रयोऽहंकार संभवाः॥
> प्रिये भगवतो रूपं त्रिविधं जायतेऽपि च।
> विष्णुर्विधिरहं चै व त्रयो गुण विधारिणः॥

अर्थात् ओम् में अकार सत्व गुण है, उकार रजोगुण और हल् मकार तमोगुण है ये तीनों अहंकार के कारण हैं। हे प्रिये पार्वती! भगवत का रूप तीन प्रकार का होता है उन में से विष्णु, ब्रह्मा और मैं (शिव) तीनों क्रम से तीनों गुणों (अर्थात् क्रमानुसार सत, रज, तम) के धारण करने वाले हैं॥

वेद प्राण से—महारामायण में लिखा है—

> श्लोक—रकारो गुरु रकारस्तथा वर्ण विपर्यय।
> मकार व्यंजनं चैव प्रणवश्चाभि धीयते॥

अर्थात् रकार और हृस्व अकार इन दोनों का लौट पलट करने से अर् हो गया फिर इस अर्द्ध रकार का विसर्ग समझा गया पुनः अकार के पश्चात् विसर्ग उकार में पलट गया। तब अ + उ = ओ हो गया उसके पश्चात् हल मकार अनुस्वार के रूप में लिखने से ओम् बन गए (भाव यह कि ओम् राम शब्द का रूपान्तर ही है) और अक्षरों के ये सब विकट व्याकरण होते हैं॥

भानु और हिमकर संसार के इन प्रसिद्ध पदार्थों के कारण भूत हैं (अर्थात्
कृशानु शब्द में यदि न रहे तो कृशानु निरर्थक रह जावे, इसी प्रकार अ
रहने से भानु शब्द का भनु तथा मकार के विना हिमकर का हिकर दोनों
भाव यह कि राम ही इन तीनों के हेतु हुए और ये तीनों संसार के चला
जैसे (१) कृशानु से अन्नपाक, शीतदमन, रात्रि में प्रकाश और जठराग्नि से
का जीवन (२) भानु से सब ब्रह्माण्ड की यथा स्थान स्थिति, सब में प्रका
जीव पालन, तम निवारण प्राणियों का संरक्षण, जलशोषण और मेह वर्ष
ऐसे ही (३) हिमकर से रात्रि में प्रकाश, तापदमन, शीतलता,
आदि संसार के बड़े २ आवश्यक और हितकारी कार्य हुआ करते हैं

तीसरा अर्थ—मैं रघुकुल श्रेष्ठ रामनाम की वन्दना करता हूं जो
भानु और हिमकर के हेतु बीजरूप हैं (अर्थात् इन के मंत्रों में रकार
और मकार पारमार्थिक विचार से बीजरूप समझे गये हैं और उन के
महारामायण के नीचे लिखे हुए श्लोकों से स्पष्ट हैं। यथा—

श्लोक—रकारोऽनल बीजं स्यात् ये सर्वे वाड़वादय
कृत्वा मनोमलं सर्वं भस्म कर्म शुभाशुभम् ॥ १
अकारो भानु बीजं स्यात् वेद शास्त्र प्रकाशकः
नाशयत्येव सो दीप्त्या या विद्या हृदये तमः ॥ २ ॥
मकारश्चन्द्र बीजं स्याद्यद्पां परिपूरणम् ।
त्रैतापं हरते नित्यं शीतलत्वं करोति च ॥ ३ ॥
रकारो हेतु वैराग्यं परमं यच्च कथ्यते ।
अकारो ज्ञान हेतुश्च मकारो भक्ति हेतुकः ॥ ४ ॥

अर्थात् रकार उस अग्नि का बीज है जिस में वाड़व जठराग्नि आदि स
लित हैं जो सम्पूर्ण मन के विकार और शुभाशुभ कर्मों को जलाकर भस्म क
है ॥ १ ॥ अकार भानु का बीज है जो वेद और शास्त्रों का प्रकाश करने वा
और जो अपने प्रकाश से हृदय के अविद्या रूपी अंधकार का नाश कर देता है ॥
मकार चन्द्र बीज है जो पानी का बढ़ाने वाला और जो सदैव तीनों तापों क
कर के शीतलता देता है ॥ ३ ॥ फिर भी रकार उस वैराग्य का हेतु है जो स
श्रेष्ठ कहा जाता है, अकार ज्ञान का हेतु है और मकार भक्ति का हेतु है। ४॥
तात्पर्य यह है कि गोस्वामी जी श्री रामचन्द्र जी को
हृदय के, को जलाना चाहते हैं, ग्रंथ का हेतु मान का

(सब देवताओं की पूजा के समय) पहिले पूजे जाते हैं (अर्थात् देवी देवता आदि किसी का पूजन क्यों न करना हो शास्त्र की विधि के अनुसार सब से पहिले 'श्री महा गणाधि पतये नमः' इत्यादि से पूजन का आरम्भ होता है)॥

—जान आदिकवि नामप्रतापू। †भयउ शुद्ध कर उलटा जापू॥

अर्थ—आदिकवि वाल्मीकि जी भी राम नाम का माहात्म्य जान गये थे जो उलटा जाप करते करते (अर्थात् 'मरा मरा' रटते रटते) मुनि होगये॥

—‡सहस्र नाम सम सुनि शिववानी। जपि जेईं पिय संग भवानी॥

े बड़ी चिन्ता में पड़े, परन्तु नारद जी के कहने से उन्हों ने पृथ्वी पर राम नाम लिखकर उस की प्रदक्षिणा की ओर सहज ही में सब से पहले ब्रह्मदेव के पास जा पहुँचे। निदान श्री रामचन्द्र जी के नाम का माहात्म्य तथा उन के रोम रोम पर अनेक ब्रह्माण्डों का विचार कर विधाता ने गणेश जी को प्रथम पूज्यपद दे दिया। देखो गणेश पुराण में भी गणेश जी स्वतः अपने मुख से यों कहते हैं—

श्लोक—तदादि सर्व देवानां, पूज्योस्मि मुनि सत्तम।
राम नाम प्रभा दिव्या, राजते मे हृदिस्थले॥

अर्थात् हे मुनि श्रेष्ठ! तब तो मैं सब देवताओं में प्रथम पूज्यपद को पा गया यह राम नाम का प्रभाव मेरे हृदय में अभी तक प्रकाशित हो रहा है।

† भयउ शुद्ध कर उलटा जापू— 'मरा मरा' यदि जल्दी जल्दी कहा जावे तो वह राम नाम ही हो जाता है उच्चारण करने से स्पष्ट हो जायगा। इस के बारे में यों कथन है—

कवित्त—जहां बालमीक भये व्याध ते मुनिन्द साधु मरा मरा जपे सिख सुन ऋषि सात की
सिय को निवास लवकुश को जनम थल तुलसी छुवत छोंह ताप गरे गात की।
विटप महीप सुर सरित समीप सो है सीतावट पेखत पुनीत होत पातकी।
वारि पुर दिगपुर बीच विलसत भूमि अंकित सो जानकी चरण जलजात की॥

‡ सहस्र नाम सम सुनि शिववानी। जपि जेईं पिय संग भवानी—यही आशय प्रातः स्मरणीय श्री वाल्मीकि जी के कथन में है—

श्लोक—प्रातर्वदामि वचसा रघुनाथ नाम, वाग्दोष हारि सकलं शमलं निहन्ति॥
यत्पार्वती स्वपतिना सह भुक्त कामा, प्रीत्या सहस्र हरि नाम समं जजाप॥

अर्थात् प्रातः काल में अपनी वाणी से श्री रामचन्द्र जी के नाम का उच्चारण करता हूं जो सम्पूर्ण वाणी के दोषों और पापों का नाश करने वाला है। जिस नाम को पार्वती जी ने अपने स्वामी शिव जी के साथ भोजन करने की इच्छा से प्रेमपूर्वक विष्णु सहस्र नाम के तुल्य समझ कर जपा था और भी स्वतः शिवजी का वचन (पद्म पुराण से)—

राम रामेति रामेति, रमे रामे मनोरमे। सहस्र नाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने॥

अर्थात् हे पार्वती! राम राम और फिर राम ऐसा जप करते हुए मैं मन के रमाने वाले राम में रमता हूं, हे सुमुखी! राम नाम विष्णु सहस्र नाम तुल्य है॥

अर्थ—"(राम नाम) विष्णु सहस्र नाम के समान है," शिव जी के ऐसे कथन को सुन पार्वती जी राम नाम जप कर अपने पति के साथ भोजन करने को बैठीं॥

चौ०—हरपे हेतु हेरि हर ही को । किय*भूषण तियभूषण ती को ॥

अन्वय—हरही को हेतु हेरि हरपे । तियभूषण ती को भूषण किय

अर्थ—महादेव जी पार्वती जी के हृदय का आशय समझ ऐसे प्रसन्न हुए उन्हों ने पतिव्रताओं में शिरोमणि पार्वती जी को अपने शरीर ही में धारण कर लिया (अर्थात् जब शिवजी ने देख लिया कि मेरे कहने के अनुसार राम नाम को विष्णु सहस्र नाम के बराबर मान लिया और उस पर विश्वास कर विष्णु सहस्र नाम के पाठ के पल्टे केवल राम नाम जप लिया और भोजनों को आ बैठीं । तब वे ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्हों ने पार्वती को अपने शरीर ही में धारण कर ' अर्ध नारी नटेश्वर ' बन गये । भाव यह है कि जिस प्रकार स्त्री को पुरुष की अर्धांगी कहते हैं उस प्रकार शिवजी ने ऐसा रूप ही धारण कर लिया कि जिसमें दहिने अंग शिव जी के और बायें अंग पार्वती जी के एक ही मूर्त्ति में हो गये (देखो अयोध्या काण्ड की श्री विनायकी टीका की दूसरी टिप्पणी पृष्ठ १, २)

दूसरा अर्थ—महादेव जी पार्वती के हृदय का भाव देख बहुत प्रसन्न हुए इस हेतु उन्होंने पार्वती को तिय भूषण (अर्थात् स्त्रियों में श्रेष्ठ लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियों का भी भूषण रूप) बना दिया । भाव यह कि उत्तम पतिव्रता स्त्रियों में भी शिरोमणि बना दी । जैसा सीता जी ने पुष्पवाटिका में गौरी पूजने के समय कहा था—

दोहा—पति देवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेख ।
महिमा अमित न कहि सकत, सहस शारदा सेख ॥

तीसरा अर्थ—महादेव जी पार्वती जी के हृदय का आशय देख बहुत प्रसन्न हुए इस हेतु उन्होंने पार्वती को अपना भूषण बना (अर्थात् अपने शरीर ही में भूषणों के बदले धारण करके) 'तियभूषण' नामधारी बन गये । सारांश यह कि 'तियभूषण' नाम केवल शिव जी का ही है जिन्होंने पार्वती जी को अपने बचनों

---

* तिय भूषण तियभूषण ती को—इस पर अमर दास कवि कृत [illegible] देखिये—
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

पर दृढ़ विश्वास वाली देख पतिव्रताओं में श्रेष्ठ करने के निमित्त अंग ही में धारण कर उसी के अनुसार 'तियभूषण' अर्ध नारीश्वर और अर्ध नारी नटेश्वर कहलाये ॥

चौ०—नामप्रभाव जान शिव नीको । *कालकूट फल दीन्ह अमी को ॥

अर्थ—राम नाम का प्रभाव 'शिव जी तो भली भांति जानते ही हैं कि जिससे कालकूट नामी विष ने अमृत सरीखा फल दिया (अर्थात् कालकूट विष खाने वाला मर जाता है पर राम नाम के प्रभाव से शिव जी उसे इस प्रकार पीगये जिस प्रकार देवता अमृत को पीकर अमरत्व को प्राप्त होगये)॥

दोहा०—1वर्षा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी शालि सुदास ।
रामनाम वर बरनयुग , सावन भादों मास ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—शालि = धान

अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी की भक्ति वर्षा ऋतु के समान है, उत्तम भक्त धान के समान हैं और 'राम' इस नाम के दो अक्षर (अर्थात् 'रा' और 'म' क्रमानुसार) सावन और भादों के महीने हैं (भाव यह कि जिस प्रकार वर्षा ऋतु के दोनों महीनों में अधिक पानी बरसने से धान विशेष बढ़कर पुष्ट

---

*कालकूट फल दीन्ह अमी को—

गरलपान करने की कथा विस्तार पूर्वक किष्किन्धाकाण्ड की भी विनायकी टीका की उस टिप्पणी में मिलेगी जो इस सोरठे पर लिखी गई है,—जरत सकल सुर वृन्द, विषम गरल जेहि पान किय—आदि—(विनय पत्रिका से)

राग बिलावल— को जांचिये शम्भु तजि आन।

दीन दयालु भक्त आरति हर सब प्रकार समरथ भगवान॥
कालकूट ज्वर जरत सुरासुर निज पन लागि किये विष पान।
दारुण दनुज जगत दुख दायक मारेउ त्रिपुर एक ही बान॥
सेवत सुलभ उदार कल्पतरु पारवती पति परम सुजान।
देहु कामरिपु रामचरन रति तुलसिदास कहँ कृपानिधान॥

1 वर्षा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी शालि सुदास......सावन भादों मास—रामचन्द्रिका की भूमिका से—

छप्पय—परम प्रीति सिय जासु, संग दामिनि सम सोहै।
पीत मुकुट बहु रंग संग सुर धनु छवि मोहै॥
चौंधति हँसनि सुदंत वारि अमरित बरसावहिं॥
निरखि रामघन मोर और अमरोर मचावहिं।
इम चतुर किसान जियहि करि नहिं उताप देख्यो नितो।
रघुपति नाम दुइ वर्ण जनि वर भक्ति शालि सिंचत नितो॥

अर्थ—कहने में (जीभ को) सुनने में (कानों को) और स्मरण करने में (मन को) अत्यंत प्रिय हैं, मुझ तुलसीदास को तो राम लक्ष्मण के सदृश प्यारे हैं । इन अक्षरों का वर्णन करने में प्रीति विशेष जुटी रहती है कारण ये ब्रह्म और जीव के समान सदा के संगी हैं ।

दूसरी लकीर का दूसरा अर्थ—यदि रकार और मकार इन अक्षरों का अलग २ वर्णन करें तो उनके मेल में भेद पड़ेगा, परन्तु ये तो ब्रह्म और जीव की नाईं सदा साथ ही रहने वाले हैं (अर्थात् जैसे रकार का उच्चारण स्थान मूर्द्धा है और मकार का ओष्ठ है परन्तु मुख्य उच्चारण स्थान मुँह ही है) इसी प्रकार जीव संसारी और ब्रह्म निर्गुण हैं तौ भी ये दोनों परमात्मा के रूप विशेष हैं ॥

चौ०—*नर नारायण सरिस सुभ्राता। जग पालक विशेषि जन त्राता॥
†भक्ति सुतिय कल करन विभूषण। जगहित हेतु विमल विधु पूषण॥

वृक्ष के सब ओर से संग हैं । उन दोनों में से एक तो फल को स्वादु मनाकर खाता है और दूसरा न खाता हुआ साक्षी मात्र है । भाव यह कि प्रकृति रूप एक वृक्ष है । इस में दो पक्षी रहते हैं वे परमात्मा और जीवात्मा हैं । वृक्ष जड़ असमर्थ होता है और पक्षी चेतन होते हैं इसलिये इन दोनों आत्माओं को पक्षियों की उपमा दी गई है वृक्ष को 'समान' इस अंश में कहा है कि यह भी अनादि हैं और ये दोनों व्याप्य व्यापक भाव से एक दूसरे से संयुक्त होने के कारण सयुज कहे गये हैं तथा अनेक बातों में एक से होने के कारण मित्र कहे गये हैं दोनों में बड़ा अन्तर तो यह है कि एक (जीव) वृक्ष के फल खाता है (अर्थात् कर्म और उनके फल भोगता है) और दूसरा (ब्रह्म) कर्म और उसके फल से रहित है केवल साक्षी मात्र है ॥

* नरनारायण—किष्किन्धा काण्ड की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० ११ में देखो ।

† भक्ति सुतिय कल करन विभूषण । जगहित हेतु विमल विधु पूषण—शिवसंहिता से—

श्लोक—मुक्ति स्त्री कर्ण पूरौ मुनि हृदय वयः पक्षती तीर भूमी ।
संसारा पारसिन्धोः कलिकलुष तमस्तोमसोमार्क बिम्बौ ॥
कर्मालि पुण्य पुंज द्रुम ललित दले लोचने च ध्वनीनां ।
नामं रामेति वर्णौ सविद कलयतां सततं सज्जनानाम् ॥

अर्थात् मुक्तिरूपी स्त्री के मानो कर्णफूल हैं, मुनियों के मन पक्षीरूपी हृदयों को दोनों किनारे, भवसागर के कलियुगी पापरूपी अन्धकार के नाश करने को सूर्य और चन्द्र, पुण्यरूपी अंकुरित वृक्ष के मानो दो दल हैं और जो वेदों के नेत्र हैं ऐसे रामनाम के दो अक्षर सदा सज्जनों को आनन्द व शान्ति के देने वाले हैं ।

शब्दार्थ—जनत्राता=भक्तों की रक्षा करने वाले। करन विभूषण=कर्णफूल। विधु=चन्द्रमा। पूषण=सूर्य ॥

अर्थ—नर नारायण के समान सुन्दर भाई भाई हैं, संसार के पालने वाले तो हीं परन्तु भक्तों की विशेष रक्षा करते हैं। भक्तिरूपी सौभाग्यवती स्त्री के ये मनो कर्णफूल हैं और संसार के लाभ के लिये ये चन्द्र तथा सूर्य के समान हैं ॥

चौ०—*स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ शेष सम धर वसुधा के॥

शब्दार्थ—स्वाद=रसका मज़ा। तोष=तृप्ति। सुगति=अच्छी गति अर्थात् मुक्ति। कमठ=कछुआ। वसुधा (वसु=धन + धा=रखना)=धनको धारण करने वाली अर्थात् पृथ्वी

अर्थ—मुक्तिरूपी अमृत के ये स्वाद और तृप्ति के समान हैं और पृथ्वी को धारण करने के हेतु कच्छप और शेष नाग के समान हैं।

चौ०—जनमन मंजु कंज † मधुकरसे। ‡ जीह जसोमति हरिहलधरसे॥

---

* स्वाद तोष सम सुगति सुधा के—अमृत में उत्तम स्वाद तथा फिर भूख न लगने का सन्तोष भी है (शेष पदार्थों में बहुधा खाने के समय स्वाद तो रहता परन्तु सदा के लिये सन्तोष नहीं होता खाने की इच्छा बार २ होती है) इसी प्रकार सुगति अर्थात् मुक्ति के हेतु राम नाम के वर्ण स्वाद और सन्तोष दोनों की नाईं हैं (अर्थात् मुक्ति पा जाने से फिर लोगों को स्वर्ग आदि सुख भोग के पश्चात् फिर मर्त्य लोक में आ[illegible] का क्लेश बारम्बार नहीं उठाना पड़ता यह तो स्वाद, और सन्तोष से परिपूर्ण मुक्त का घटता है) जैसा कहा है—

गज़ल-श्रीराम कहने का मज़ा जिस की ज़बां पर आ गया।
मुक्त जीवन हो गया चारों पदारथ पा गया॥
लूटा मज़ा प्रह्लाद ने राम नाम के परताप से।
नरसिंह हो दर्शन दिया तिहुँ लोक में यश छा गया॥
थी जो शबरी जाति भिलिनी नाम का सुमिरन किया।
परमात्मा घर जा के उस के बेर जूठे खा गया॥
कलिकाल में जो भक्त हैं उनका भी है रुतबा बड़ा।
नरसी की हुंडी द्वारिका में श्यामला सकरा गया॥
[illegible] कीर्ति विमल [illegible] संसार में।
[illegible] राम रस बरसा गया॥

मधु—इसके अनेक अर्थ हैं, जैसे—

दो०—मधु बसन्त मधु चैत्रमधु, मधु मदिरा मकरन्द।
मधु [illegible] मधु पद मधु सुधा, मधुसूदन गोविन्द॥

[illegible] इसपर है—
[illegible] बार बार [illegible]।
है [illegible]

शब्दार्थ—कंज=कमल। मधु=पानी। कर=किरण (सूर्य की)। जीह = जीभ॥

अर्थ—भक्तजनों के कोमल कमल समान हृदय को आनन्द देने वाले जल और सूर्य के समान हैं (अर्थात् जैसे जल से कमल की वृद्धि होती और सूर्य से प्रसन्नता होती है इसी प्रकार रकार मकार से भक्तजनों की प्रसन्नता बढ़ती है)। जसोदारूपी जीभ को कृष्ण और बलदाऊ जी के समान आनंद दाता हैं (अर्थात् जिस प्रकार जसोदा जी को कृष्ण बलदाऊ जी ने आकर सुखदिया था, इसी प्रकार रकार और मकार यदि जीभ पर आ बसें तो सब सुखों के देने वाले हो जाते हैं)॥

दो०—एक छत्र इक मुकुटमणि, सब वर्णन पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के, वर्ण विराजत दोउ॥२०॥

अर्थ—एक (रकार) छत्ररूप होकर तथा दूसरा (मकार) मुकुट में मणि की नाईं होकर सब अक्षरों के माथे पर देखने में आते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि राम नाम के दो अक्षर (अर्थात् र और म) विशेष शोभायमान होते हैं (भाव यह है कि और सब व्यंजन स्वर रहित होने से शक्तिहीन समझे जाते हैं परन्तु रकार और मकार स्वर रहित होते ही शेष अक्षरों के माथे पर जा शोभते हैं सो इस प्रकार कि रकार की रेफ मानो राजा का छत्र और मकार का अनुस्वार मानो राजाओं के मुकुट का हीरा है। यथा—'वर्णानामर्थ संघानां' में रकार रेफ और मकार अनुस्वार रूप अनेक बार आये हैं)॥

कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलाये।
सुफलकसुत मेरे प्राण हरण को कालरूप होय आये॥
बरु यह गोधन कंस लेय सब मोहि बन्दि लै मेलै।
इतनो माँगत कमलनयन मेरी आँखिन आगे खेलै॥
को कर कमल मथानी गहि है को दधि माखन खै है।
बदुरो इन्द्र बरसिहैं ब्रज पर को गिरि नख पर लै है॥
बासर देखि विलोकत जीयों संग लागि हुलराऊँ।
हरि बिछुरत जो रहौं कर्मवश तो केहि कंठ लगाऊँ॥
[illegible]र भर परत यशोदा अधर बदन बिलखानी।
दशा कहाँ लग बरणौं दुखित नंद की रानी॥

[illegible] [illegible]थि—
[illegible]र्ग यथाद्वियर्णौ [illegible] गहस्वरो मूर्ध्नि गतौ हसानाम्।
[illegible]तौ ह[illegible] [illegible]दी कथं नोर्द्ध गतिं प्रयाति॥
[illegible]नाम के [illegible] वर्ण (र् और म्) स्वर रहित होने
[illegible]र शिर पर [illegible] ऐसे 'रामचन्द्र' के चरणों के हृदय
[illegible]जारी [illegible] [illegible]प्त होयेंगे (अर्थात् अवश्य होयेंगे)

(६ नामी से नाम की महिमा विशेष)

चौ०—*समझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी॥

अर्थ—नाम और नाम वाला ये दोनों एक ही समान समझ पड़ते हैं और इन का एक दूसरे से ऐसा सम्बन्ध है जिस प्रकार स्वामी और सेवक का सम्बन्ध (अर्थात् कौन स्वामी और कौन सेवक इस का भी ज्ञान कठिन है क्योंकि उन का सम्बन्ध अटल है और वह उलट पुलट भाव में भी एक ही सा रहता है)।

दूसरा अर्थ—नाम और नाम वाले की आपस की प्रीति एक बराबर समझना और इन दोनों तथा ईश्वर की प्रीति सेवक और सेव्य की सी है॥

चौ०—†नाम रूप दोउ ईश उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥

शब्दार्थ—उपाधि (उप=पास + आ=से + धा=रखना)=पास रखना, रहना, धर्म की चिंता, पदवीविशेष और माया। अकथ=कहने में न आवे। अनादि=जिसका आदि न हो अर्थात् जो सदैव से हो। साधी=सिद्ध करना, अभ्यास करना।

अर्थ—नाम और रूप को बहुतेरे ईश्वर की उपाधि मानते हैं परन्तु ये वर्णन में नहीं आ सक्ते और सनातन से हैं। सूक्ष्म विचार से समझ में आ सक्ते हैं (ये अर्थ वेदान्तियों के पक्ष में है जिन का यह सिद्धान्त है कि ईश्वर को नाम और रूप नहीं ये तो उसके माया के साथ अनेक रूपों में होते ही उपाधि की रीति के साथ हो जाते हैं)।

दूसरा अर्थ—नाम और रूप दोनों ईश्वर के उपाधि (अर्थात् समीप वाले हैं)। नाम का प्रभाव कहने के योग्य नहीं और रूप सनातन से है तौ भी अच्छी बुद्धि वाले इनका विचार कर सक्ते हैं (अर्थात् नाम के ग्रहण करने से सहज में जीव ईश्वर के समीप पहुँच सक्ता है परन्तु आकार का ध्यान कठिनाई तथा बड़ी बुद्धिमानी से विचार में आता है)

तीसरा अर्थ—नाम रूप ये दोनों उपाधि अर्थात् धर्म रक्षा के विचार

* समझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी—आरण्यकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका में 'संतत मो पर कृपा करेहू' की टिप्पणी देखो॥

† नाम रूप दोउ ईश उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी—जैसा कि विनय दोहावली में कहा है—

दो०—नाम, अरूप अरूप गुण, [illegible] न पावैं पार।
सब प्रकार सो स्वरूप है, महिमा अपार॥

णी की पहुंच से बाहर सनातन परब्रह्म ने धारण किये हैं यह बात ज्ञानवान् ने अपनी उत्तम समझ के अनुसार सिद्ध कर दिखाते हैं (अर्थात् निराकार ब्रह्म ने की रक्षा के हेतु साकार बन नाम रूपसे प्रकट होते हैं)॥

चौथा अर्थ–नाम और रूप ये दोनो ईश (अर्थात् सामर्थ्यवान् हैं) इनकी उपाधि कथ है (अर्थात् दोनों का भेद कहना कठिन है) क्योंकि नाम और रूप दोनों नादि हैं यह बात बड़े ज्ञानवान् भक्तों ने साधी (अर्थात् समझी है)॥इससे ह तात्पर्य निकलता है कि नाम और रूप ये दोनों सर्व सामर्थ्य रखते हैं, ईश ोई तीसरा पदार्थ इन से भिन्न नहीं है क्योंकि यह प्रकरण केवल नाम और रूप ो का है॥

ा०—को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू॥
देखिय रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम बिहीना॥

अर्थ—(नाम और रूप में से) किसे बड़ा और किसे छोटा कहकर अपराधी नें, साधु लोग तो गुणों का भेद सुनते ही समझ लेवेंगे (कि कौन बड़ा है और कौन छोटा है)। (भाव यह कि नाम और रूप दोनों को बराबर ही कहना चाहिये, परन्तु दोनों के लक्षण बारीकी से विचार करके साधु लोग आप ही समझ लेवेंगे कि नाम में विशेषता है)॥ रूप को नाम के आधीन ही देखते हैं क्यों कि नाम के बिना रूप का ज्ञान नहीं होता (अर्थात् नाम लेने से वस्तु का अच्छी तरह से ज्ञान हो जाता है तभी तो व्याकरण में नाम को संज्ञा कहते हैं और संज्ञा शब्द का अर्थ 'अच्छी तरह से ज्ञा[illegible]रने वाला' ऐसा होता है। संज्ञा को मराठी व्याकरण में नाम कहते हैं।)

दो०—रू[illegible] करतल गत न परहिं पहिचाने॥
[illegible]। आवत हृदय सनेह बिशेषे॥

[illegible]प रूप का पदार्थ अपनी हथेली में भी हो तो [illegible] अमोल [illegible] में हो और उसका नाम [illegible]) जान सके। जिस [illegible] सुमेरु पर्वत के समीप [illegible] अपना नाम नहीं बताया [illegible]म का स्मरण किया जावे [illegible]ता है (जिस प्रकार गुरुवशिष्ठ [illegible] जी ने पहले इन के हृदय में [illegible] रूप थे)॥

चौ०—*नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति

†अगुण सगुण बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी

शब्दार्थ—सुखद = सुख देने वाली। सुभाखी (सुसाक्षी)=उत्तम गवाह। प्रबोधक = भली भांति समझाने वाला। दुभाखी (दु=दो + भाखी=भाषा जानने वाला) दो भाषाएँ जानने वाला (अर्थात् ऐसा पुरुष जो एक देश की भाषा न जानने वाले पुरुष को दूसरे देश की भाषा को उसी की बोली में समझा दे, जैसे अंग्रेज़ी और हिन्दी पढ़ा हुआ मनुष्य किसी अंग्रेज़ को हिन्दी वाले की बात चीत अंग्रेज़ी में समझा दे और अंग्रेज़ की बातचीत हिन्दी भाषा में हिन्दी वाले को समझा दे)॥

अर्थ—नाम और रूप के गुणों की कथा कहने में नहीं आती वह समझने में तो सुख की देने वाली है पर वर्णन नहीं की जा सकती। निर्गुण और सगुण ईश्वर के बीच में नाम उत्तम साक्षी के समान है और दोनों को समझाने के निमित्त चतुर दुभाषियों का काम देता है (अर्थात् नाम ही से निर्गुण ब्रह्म का कुछ बोध हो जाता है और नाम ही से सगुण रूप का विशेष ज्ञान होता है)॥

दो०—‡राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहरहुँ, जो चाहसि उजियार॥ २१॥

अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि जो तुम अपने हृदय के नेत्रों तथा बाहरी नेत्रों में प्रकाश चाहते हो तो रामनामरूपी मणि के दीपक को (मुखरूपी) द्वार के जीभरूपी देहरी पर धारण करो (अर्थात् जो हृदय के अज्ञान को दू[र]

---

* नाम रूप गति अकथ कहानी—ईश्वर के निर्गुण और सगुण रूप तथा नाम का वर्णन करना कठिन है, जैसा कि तुलसीराम जी ने आरण्यकांड में लिखा है 'निर्गुण सगुण विषम समरूपं, ज्ञान गिरा गोतीतमनूपम्'

† अगुण (सगुण) बिच नाम सुसाखी—निर्गुण परब्रह्म यद्यपि नाम रूप रहित है तो भी उसे किसी न किसी प्रकार के नाम ही से जानते हैं। जैसे निर्गुण, निराकार, ब्रह्म, अलख आदि। [illegible] में कहा है—

श्लोक—[illegible]
[illegible], प्रधान पुरुषेश्वरम्।
[illegible], [illegible] कीर्तने॥

अर्थात् [illegible] अक्षर और प्रधान पुरुष को भी [illegible] हैं॥

‡ [illegible] दीप धरु, जीह देहरी द्वार—जैसा कि [illegible] में लिखा

रना चाहो और बाहिरी वस्तुओं को ईश्वरमयी देखना चाहो तो दिन रात पनी जीभ से राम नाम को जपते रहो)।

सूचना—देहरी पर के दीपक से घर के भीतर और बाहर दोनों जगह उजेला ोता है इस हेतु रामनामरूपी दीपक को जीभ देहरी पर रखने को कहा और ल आदि का दीपक तेल के न रहने से अथवा वायु के वेग आदि से बुझ ाता है परन्तु मणिरूप दीपक सदा प्रकाश किया करता है॥

ो०—नाम जीह जपि*जागहिं योगी। विरति विरंचि प्रपंच वियोगी॥
ब्रह्म सुखहि †अनुभवहिं अनूपा। अकथ ‡अनामय नाम न रूपा॥

अर्थ—योगी जन ब्रह्मा के प्रपंच (अर्थात् संसार) से विरक्त हो अपनी जीभ

दो०—हिय निर्गुण नयनन सगुण, रसना राम सुनाम।
मनहु पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम॥

* जागहिं योगी—ठीक यही आशय गोसाईं जी ने अयोध्याकाण्ड में कहा है—

चौ०—मोह निशा सब सोवनिहारा। देखिय स्वप्न अनेक प्रकारा।
इहि जग यामिनि जागहिं योगी। परमारथी प्रपंच वियोगी॥

[देखो अयोध्याकाण्ड रामायण की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० १६८]

और भी—

गज़ल——दरश अपना जो रघुनन्दन, दिखा दोगे तो क्या होगा।
जगत भ्रम जाल से मुझ को, छुड़ा दोगे तो क्या होगा॥
अब इस संसार सागर में, मेरी नैया जो डूबे है।
कृपा करके किनारे पै, लगा दोगे तो क्या होगा॥
हौं सोता माया रजनी में, मुझे आते बहुत सपने।
ये गहिरी नींद सोने से, जगा दोगे तो क्या होगा॥
लगी है प्यास 'ख़ुशदिल' को तेरे दर्शन की हे भगवन्।
बूंद स्वांती की बरसा कर, बुझा दोगे तो क्या होगा॥

† अनुभव (अनु=पीछे+भू=होना)=देख भाल के पीछे ज्ञान, यथार्थ ज्ञान, साक्षात्कार जैसा कि अमरकोष की टीका में लिखा है 'उपलंभः अनुभवः साक्षात्कारस्य'।

‡ अनामय (अन=नहीं+आमय=रोग)=निरोग। लिखा है अमर कोष में—'अनामयं स्यादारोग्यं'

'अकथ अनामय नाम न रूपा' ऐसे ब्रह्म के सुख के बारे में यों कहा है—

क०—रवि को प्रकाश जैसे देखियत मुकुर मध्य मुकुर को प्रकाश जैसे जल को उजास है।
जल के प्रकाश तें दीप को प्रकाश सो देखो घरे मन्दिर के भीतर उजास है॥
ऐसे परमात्मा ते आत्मा विचार लीजै आत्मा ते मन मन ते ज्ञान बिकास है।
साखी परमात्मा अखण्डित सब ही के माहिं सब ही ते न्यारो सदा आनंद को रास है॥

से राम नाम जपकर (मोहरूपी रात्रि में) जागते हैं (अर्थात् सब प्राणी
मोह में फंसे हुए मानो में सुप्त पने रहते हैं परन्तु योगीजन ममता, मो
चैतन्यता से रहकर परमात्मा के ध्यान में लग जाते हैं)। वे उपमा रहित,
रोग रहित और नाम रूप विहीन ब्रह्म के सुख को अनुभव करते हैं (वे
हैं जैसे शंकर जी, शुकदेव मुनि नारद जी आदि)॥

चौ०—जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। *नाम जीह जपि जानहिं ते
†साधक नाम जपहिं लव लाये। होहिं सिद्ध ‡अणिमादिक पा

अर्थ—जो लोग ईश्वर के गूढ़ तत्व को जानना चाहते हैं वे भी राम
का उच्चारण अपनी जीभ से करके जान लेते हैं (अर्थात् जो जिज्ञासु भक्त नि
ब्रह्म का प्रकृति के संबंध से नाना रूप धारण करने का भेद जानना चाह
उन्हें भी राम नाम का आधार है जैसे पार्वती और राजा परीक्षित आदि)
जो-अर्थ सिद्धि चाहने वाले प्राणी मन लगाकर रामनाम जपते हैं वे अणि
आदि अनेक सिद्धियां प्राप्त कर सिद्ध हो जाते हैं (ये अर्थार्थी भक्त हैं जो अर्थ
इष्ट सिद्धि राम नाम जप कर पालेते हैं जैसे सुग्रीव विभीषण आदि)।

---

* नाम जीह जपि जानहिं तेऊ—जीभ से जपने और हृदय से जपने का अन्तर
महारामायण में यों समझाया है—

श्लोक—अन्तर्जपन्ति ये नाम, जीवन्मुक्ता भवन्ति ते।
तेषां न जायते भक्ति र्न च राम समीपका:॥
जिह्वयाप्यंतरेणैव राम नाम जपन्ति ये।
ते च प्रेमापरा भक्त्या नित्यं राम समीपका:॥

अर्थात् जो लोग राम नाम का जाप मन में किया करते हैं वे जीवनमुक्त
होते हैं परन्तु न उन्हें भक्ति मिलती है न वे राम के समीपी होते हैं॥ जो
लोग राम नाम का जाप जीभ से करते हैं उन्हें प्रेमा परा भक्ति मिलती है और
वे श्री रामचन्द्र जी के समीपी हो जाते हैं॥

† साधक नाम जपहिं लय लाये। होहिं सिद्ध अणिमादिक पाये—रामचन्द्रिका से—
क०—पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परि पूरण बतावें न बतावें और उक्ति को।
दरशन देत जिन्हें दरशन समुझै न नेति नेति कहै वेद छांड़ि भेद युक्ति को॥
थानि यह केशौदास अनुदिन राम राम रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देहि अणिमादि गुण देहि गरिमादि भक्ति देहि महिमादि नाम देहि मुक्ति को॥

‡ अणिमादिक—अणिमा, आदि आठ सिद्धियां हैं यथा—नाममंजरी से
दो०—अणिमा महिमा गरिमा लघिमा प्रापति काम।
वशीकरण अरु ईशता अष्ट सिद्धि के नाम॥

इन आठों सिद्धियों का विस्तार पूर्वक रायबरेली की श्री विनायकी टीका में
लिखा है देखो टि० पृ० ३१७

चौ०—जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
*रामभक्त जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥

शब्दार्थ—अनघ (अन=नहीं+अघ=पाप)=पाप रहित।

अर्थ—जिन प्राणियों को अत्यंत कष्ट हो और वे राम नाम का जाप करें तो उनका कठिन कष्ट दूर हो कर वे सुखी हो जाते हैं (ये आरत भक्त हैं जो नाम प्रताप से सुखी हो जाते हैं जैसे द्रोपदी, गजेन्द्र आदि)। संसार में चार प्रकार के रामभक्त हैं ये चारों सत्कर्मी, निष्पाप और परोपकारी हैं (तीन प्रकार के भक्त तो ऊपर लिख आये हैं अब चौथे प्रकार के भक्त का वर्णन नीचे के दोहे में किया है)।

चौ०—चहुँ चतुरन कहँ नाम अधारा। † ज्ञानी प्रभुहि विशेष पियारा॥
चहुँ युग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। ‡ कलि विशेष नहिं आन उपाऊ॥

अर्थ-चारों प्रकार के चतुर भक्तों को नाम ही का भरोसा रहता है परंतु ज्ञानी-भक्त परमेश्वर को परम प्रिय है। चारों युग और चारों वेदों में नाम का प्रभाव कहा

---

* रामभक्त जग चारि प्रकारा—चार प्रकार के भक्त ऊपर कह आये हैं ये ही चार श्री मद्भगवद्गीता में कहे हैं—(अध्याय ७-१६)।

श्लोक—चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

अर्थात् श्रीकृष्ण जी बोले हे अर्जुन! सत्कर्म करने वाले चार प्रकार के प्राणी जो मेरा भजन किया करते हैं वे ये हैं (१ आर्त्तभक्त (२) जिज्ञासु, (३) अर्थार्थीभक्त और (४) ज्ञानीभक्त॥

† ज्ञानी प्रभुहि विशेष पियारा—यथा—'वासुदेवः सर्वमिति समहात्मा सुदुर्लभः' अर्थात् जिस के भगवान् ही सब कुछ हैं ऐसा महात्मा अति दुर्लभ है॥

‡ कलि विशेष नहिं आन उपाऊ—विनय पत्रिका से—
राम नाम के जपे जाय जिय की जरनि।
कलि काल अपर उपाय ते अपाय भये जैसे तम नाशिबे को चित्र के तरनि॥
करम कलाप परिताप पाप साने सब ज्यों सुफूल फूले तरु फोकट फरनि।
दंभ लोभ लालच उपासना विनाशि नीके सुगति साधन भई उदर भरनि॥
योग न समाधि निरुपाधि न विराग ज्ञान वचन विशेष वेष कहुँ न करनि।
कपट कुपथ कोटि कहनि रहनि खोटी सकल सराहैं निज निज आचरनि॥
मति राम नाम ही सों रति राम नाम ही सों गति राम नाम ही की विपति हरनि।
राम नाम सों प्रतीति प्रीति राखे कबहुँ के तुलसी ढरेंगे राम आपनी ढरनि॥

गया है परन्तु कलियुग में विशेष कर के (क्यों कि यहां) दूसरा उपाय है ही न

दो०—सकल कामना हीन जे, रामभक्तिरसलीन।
नाम सप्रेम पियूष ह्रद, तिन्हुँ किये मन मीन ॥२२॥

शब्दार्थ—पियूष शुद्ध रूप पीयूष (पीय्=पीना)=अमृत। ह्रद=सरोवर। मीन=मछली।

अर्थ—जो लोग संपूर्ण इच्छाओं को छोड़ कर राम भक्ति के प्रेम में मग्न हो जाते हैं वे भी तौ राम नाम रूपी सुन्दर प्रेम के अमृतरूपी तालाव में अपने मन को मछली बनाते हैं (भाव यह कि चौथे प्रकार के अर्थात् ज्ञानी भक्त भी राम नाम के जपने ही में तत्पर रहते हैं) ॥

चौ०—*अगुण सगुण दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरे मत बड़ नाम दुहूँ ते। किय जेहि युग निज बस निजबूते॥

अर्थ—परब्रह्म के निर्गुण और सगुण ऐसे दो रूप हैं जो वर्णन से परे, अ आदि रहित और उपमा रहित हैं। मेरी समझ में नाम दोनों से बड़ा है जिस ने अ बल से दोनों को अपने आधीन कर रक्खा है ॥

†सुजन जन जानहिं जनकी। कहहुँ प्रतीति प्रीति रुचि मनकी

—मौ॰ सुजन जन जन की जानहिं (मैं) मन की प्रतीति प्रीति रुचि कहहुँ-

र्थ—अनुभवी बुद्धिमान् लोग मनुष्य के मन की बात जान लेते हैं, मैं अपने विश्वास प्रेम और रुचि के अनुसार कहता हूं (गोस्वामी जी ने निर्गुण ग्रन्थ से बढ़ कर जो नाम को कहा है उसके विषय में वे यह दर्शाते हैं कि गों के विचार में नाम केवल ईश्वर की उपाधि है) परन्तु मैं अपनी

दुइ ब्रह्म सरूपा—
हीं के देखवे को आप ही सगुण भयो सतरज तम होय जग को पसारो है।
∴ कोऊ नीच कोऊ राय कोऊ रंक कहूँ दास कहूँ ठाकुर आपही पधारो है॥
र भाव कर कर्म को विभाग भयो कर्म उपासन कहूँ ज्ञान को विचारो है।
धार भयो तीनों ते बाहिर है 'हंसराज' आतमाहि आप है न न्यारो है॥

यहां पर 'सुजन' शब्द के पीछे 'जन' शब्द फिर आने से पुनरुक्ति ा है परन्तु इसे बहु वचन का चिन्ह मान लेने से यह दोष है क्योंकि व्याकरण का नियम है कि कहीं २ 'गण' 'जन' 'जाति' के लगाने से बहु वचन बन जाता है जैसे देवगण 'बुधजन' 'विशेष' रहित होंगा।

बुद्धि के अनुसार उसे निर्गुण और सगुण रूपों से बढ़ कर सिद्ध करना चाहता हूं)—

दूसरा अन्वय, अर्थ—'मौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की' इस पाठान्तर का।

अन्वय—सुजन (सुज्ञ) जन की मौढ़ि जनि जानहिं ।

अर्थ—बुद्धिमान् लोग मेरे इस कथन को (कि 'मोरे मत बड़ नाम दुहूं ते') मौढ़ि अर्थात् बढ़ावे सहित दाम्भिक कथन न समझ बैठें (अर्थात् लोग यह न समझें कि मेरा कथन आग्रह और घमंड का है) मैं तो समझता हूं कि—

चौ०—एक दारुगत देखिय एकू। पावक सम युग ब्रह्म विवेकू ॥

अर्थ—दोनों ब्रह्म का ज्ञान अग्नि के समान है जो अग्नि एक तो लकड़ी के भीतर रहती है (रगड़ने से उत्पन्न होती है) और दूसरी जो दिखाई देती है (कोयला, ईंधन आदि के जलते हुए रूप में। इसी प्रकार ब्रह्म को आगे समझाया है)

चौ०—उभय अगम युग सुगम नाम ते। कहेउँ नाम बड़ ब्रह्म राम ते ॥

अर्थ—दोनों निर्गुण और सगुण की प्राप्ति कठिन है परन्तु नाम के द्वारा सुलभ हो जाती है तभी तो नाम को (निर्गुण) ब्रह्म और (सगुण) राम से बड़ा कहा—

चौ०—व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी। सत चेतन घन आनँद राशी॥

***अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥**

†नाम निरूपन नाम जतन ते। सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन ते॥

---

* अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी— कहा है कबीर दास जी ने।

भजन—पानी में मीन पियासी मोहि देखत आवे हाँसी।
सुख सागर निज भरो रहत है निशि दिन रहत निरासी॥
मोती बनकर रहत जंगल में निशि दिन रहत उदासी।
कस्तूरी बन में मृग खोजत सूंघ फिरत बहु घासी॥
आतमज्ञान बिना नर भटकत कोई मथुरा कोई काशी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो हर बिन कटत न फाँसी॥

† नाम निरूपन नाम जतन ते। सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन ते—

इस उदाहरण में रतन मुख्य है इस का मोल गौण है इसी प्रकार नाम मुख्य है रूप गौण है अर्थात् नाम का प्रभाव रूप को प्रकट करने में सर्वथा सामर्थ्यवान् है जैसे प्रह्लाद भक्त के हृदय में राम नाम रूपी रत्न हो रहा था कि उसने अपने प्रभाव से प्रह्लाद को जल से, अग्नि से, सर्प से और विष आदि से बचा लिया। फिर इसी नाम के प्रभाव से परमेश्वर ने खंभ से नृसिंह रूप प्रकट किया। अर्थात् नाम से रूप प्रकट हुआ—

अर्थ—एक नाश रहित, सत चेतन मय और आनंद की राशि परब्रह्म घ
में भरा हुआ है। हृदय में विकार रहित ऐसे परमात्मा के रहते हुए भी संसार के
प्राणी इच्छाओं के कारण दीन और काम क्रोध आदि के कारण दुखी हो रहे
(अर्थात् ब्रह्म तो सब में व्याप्त है परन्तु जीव अपने कर्मों के कारण दीन
दुःख भोग रहे हैं। वे कस्तूरिया मृग की नाईं भूल में पड़ कर परमेश्वर
जो उन्हीं के अंतर्गत है अनेक बाहरी स्थानों में ढूंढ़ते फिरते हैं जैसे
वाला मृग कस्तूरी को बाहिर जंगल में ढूंढ़ता फिरता है परन्तु यह नहीं जानत
कि कस्तूरी मेरे अंग ही में है)। नाम का ठीक ठीक निर्णय-नाम ही के द्वारा
करने से शुद्ध होता है। जैसे रत्न का मोल रत्न ही पर विचार करने से निश्च
जाना जाता है (अर्थात् ध्यान सहित नाम के जाप से शुद्ध आत्मज्ञान हो जाता
जैसे रत्न के रंग रूप आदि का विचार करने से उस के दामों का विचार कि
जाता है)॥

दो०—निर्गुणते यहि भाँति बड़, नाम प्रभाव अपार।
कहउँ नाम बड़ रामते, निज विचार अनुसार॥२३॥

अर्थ—इस प्रकार निर्गुण ब्रह्म से नाम का बड़ा भारी माहात्म्य कहा, अ
अपनी समझ के अनुसार (सगुण) राम से भी नाम को बड़ा
सूचना—यहाँ पर कविजी बड़ी बुद्धिमानी से
[illegible] करते हैं कि जिसमें लोगों का
भार दयान है, [illegible]

- पि के हेत राम ने तो सुकेतु गंधर्व की लड़की अर्थात् ताड़का को उसके एक पुत्र सुबाहु और सम्पूर्ण सेना को निश्शेष कर दिया॥

चौ०—सहित दोष दुख दास दुराशा। दलइ नाम जिमि रवि निशिनाशा॥
भंजेउ राम आप * भवचापू। † भव भय भंजन नाम प्रतापू॥

शब्दार्थ—दुराशा (दुर=बुरी + आशा = आस)=बुरी आशा। दलइ = नाश करे।

अर्थ—दोष और दुःखों के साथ साथ भक्तों की बुरी वासनाओं को नाम इस प्रकार से नष्ट कर देता है जिस प्रकार सूर्य अंधकार को नाश कर देता है। स्वतः राम ने महादेव जी का धनुष तोड़ा परन्तु नाम का प्रभाव तो संसार के भय को दूर करने वाला है (अर्थात् संसार के आवागमन से छुड़ाने वाला है)।

०—दंडक वन प्रभु कीन्ह सुहावन। जनमन अमित नाम किय पावन॥
निशिचर निकर दलेउ रघुनंदन। नाम सकल कलिकलुष निकंदन॥

अर्थ—राम जी ने दंडक वन को पवित्र किया परंतु नाम ने तो असंख्य मनुष्यों के मन को पवित्र किया। रघुनाथ जी ने तो राक्षसों के समूह का नाश किया परंतु नाम तो कलियुग के सम्पूर्ण पापों का दूर करने वाला है॥

दो०— ‡ शवरी गीध सु सेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुणगाथ॥ २४॥

---

* भव = महादेव, जैसे लिखा है अमर कोश में—
व्योमकेशो भवोभीमः स्थाणू रुद्र उमापतिः
अर्थात् व्योमकेश, भव, भीम, स्थाणु, रुद्र और उमापति ये सब शिव जी के नाम हैं।

† भव = संसार, जैसा मेदिनी कोश में लिखा है—
भवः क्षेमे च संसारे सत्तायां प्राप्ति जन्मनः
अर्थात् भव का अर्थ, [१] क्षेम, [२] संसार [३] सत्ता और [४] जन्म में आया हुआ [है]

‡ शबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ—विनय पत्रिका में लिखा है—
रघुबर रावरि यहै बड़ाई।
निदरि गनी आदर गरीब पर करत कृपा अधिकाई॥
थके देव साधन करि सपनेहुँ नहिं देत दिखाई।
केवट कुटिल भालु कपि कौनप कियो सकल सँग भाई॥
मिलि मुनि वृन्द फिरत दंडक बन सो चरचौ न चलाई।
बारहि बार गीध शबरी की बरनत प्रीति सुहाई॥
स्वान ... कहे ... पुर बाहर यतिहि गयन्द चढ़ाई।
... नय नगर बसाई॥
... सदा पतिआई।
... सुजस बनाई॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने शबरी जटायु सरीखे अच्छे भक्तों को मुक्ति दी नाम ने तो बहुतेरे दुष्टों का उद्धार कर दिया जिन के गुणों की कथा वेद वर्णन की गई है ॥

चौ०—राम सुकंठ विभीषण दोऊ । राखे शरण जान सब कोऊ ॥
नाम अनेक गरीब निवाजे । लोक वेद वर विरद विराजे ॥

अर्थ—सब लोग जानते हैं कि श्री रामचन्द्र जी ने सुग्रीव और विभीषण इन दोनों को अपनी शरण में रक्खा । परन्तु नाम ने तो बहुत से गरीबों को आश्रय दिया जिसकी उत्तम कीर्ति लोक और वेद में प्रसिद्ध है । (जैसे अजामिल, सदन कसाई, रैदास आदि) ॥

चौ०—राम भालु कपि कटक बटोरा । सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा ॥
नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं । करहु विचार सुजन मन माहीं ॥

अर्थ—श्री राम जी ने रीछ और बंदरों की सेना इकट्ठी की और समुद्र का पुल बांधने में कुछ कम श्रम न किया (अर्थात् बड़े प्रयास से पुल बँधवाया) । हे सज्जनो ! मन में विचार करके तो देखो कि नाम के लेते ही संसाररूपी समुद्र सूख जाता है (अर्थात् संसार स्वमवत् समझ पड़ता है) ।

चौ०—राम सकुल रण रावण मारा । सीय सहित निजपुर पग धारा ॥
राजा राम अवध रजधानी । गावत गुण सुर मुनि वर बानी ॥

अर्थ—रघुवर ने संग्राम में कुल सहित रावण को मार डाला और सीता जी को साथ ले अवध को लौटे । वहां पर श्री रामचन्द्र जी राजा और अवध पुरी उनकी राजधानी हुई, इन चरित्रों को देव और मुनि गण मधुर ध्वनि से गाते हैं ॥

चौ०—सेवक सुमिरत नाम सप्रीती । बिनुश्रम प्रबल मोहदल जीती ॥
फिरत सनेह मगन सुख अपने । नामप्रसाद सोच नहिं सपने ॥

अर्थ—भक्तजन नाम का प्रेम सहित स्मरण कर बड़ी बलवती ममता की सेना

[illegible]रत सनेह मगन सुख अपने—

सवैया—प्रभु [illegible] करी [illegible] गिरा [illegible] कर [illegible] मही ।
[illegible] [illegible] [illegible] तत्काल विलंब किये न तहीं ॥
[illegible] है [illegible] है [illegible] कर [illegible] भूप जहीं ।
[illegible] [illegible] विभीषण को जन को प्रभु राम न [illegible] कहीं ॥

को जीत लेते हैं और नाम के प्रभाव से उन्हें सोच नाम को भी नहीं रहता तथा वे अपने ही प्रेमरूपी आनंद में मग्न रहते हैं ॥

दो०—* ब्रह्म राम ते नाम बड़, वरदायक वरदानि।
† राम चरित शत कोटिमहँ, लिय महेश जियजानि ॥२५॥

शब्दार्थ—वरदायक=वरदान देने वाला ।

अर्थ—(इस प्रकार निर्गुण) ब्रह्म तथा (सगुण) राम से नाम बड़ा ठहरा और यह (देव मुनि ऋषि आदि) वरदान देने वालों को भी वरदान का देने वाला है यही सब जान कर शिव जी ने सौ करोड़ रामायण में से सार छाँट लिया ॥

---

* ब्रह्म राम ते नाम बड़, वरदायक वरदानि—
राग पहाड़—सब मत को मत यह उपदेसू ।
मूलमंत्र यह उचित सिखावन भजमन सुत अवधेसू ॥
अरिपुर नरपुर देवलोकपुर रंक फकीर नरेसू ।
जो जापक सियराम नाम को सो भव सिंधु तरेसू ॥
जप तप संयम दान नेम व्रत तीरथ अमित करेसू ।
तुलहि न सीताराम नाम सम वेद पुराण कहेसू ॥
गावत शंभु आदि नारद मुनि व्यास विरंचि गनेसू ।
यह सब गावत नाम महातम काग भुशुंडि खगेसू ॥
नाम प्रतीति धार हिरदे मे उमा सो कहाँ महेसू ।
तुलसिदास यह नाम की महिमा कलिमल सकल हरेसू ॥

† राम चरित शत कोटि महँ लिय महेश जियजान कुण्डलिया रामायण से—
कुण्डलिया—राम चरित शत कोटि शारदा शिव गावें ।
नारद शुक सनकादि वेद कहि कोटिन गावें ॥
कोटिहि गावें चरित पार कह पावत नाहिन ।
कहि कहि हारे सकल रामयश कहन सिराहिन ॥
नहिं सिराहिं रघुवीर गुण सो तुलसी मन में डरत ।
अजहुँ गाय वेदन कहा कहें चरित अपारतिथ तरत ॥

और भी—
जो राम कहने का मज़ा जिसकी ज़बां पै आगया ।
मुक्ति जीवन हो गया, चारों पदारथ पा गया ॥
शंभु ने सौ कोटि की तकसीम में पाया इसे ।
जिस पै कृपा इस नाम की, सतगुरु उसे बतला गया ॥

सौ कोटि की तकसीम का ब्यौरा यों है कि रामायण के विषय में सौ करोड़ श्लोक हैं। जिन्हें शिवजी ने तीनों लोक निवासियों को बाँट दिये । प्रत्येक लोक वालों को ३३३३३३३३३३ श्लोक मिले । बचा एक श्लोक जो अनुष्टुप होने से ३२ अक्षरों का था । इसमें से दस २ अक्षर प्रत्येक लोक वालों को और दिये तो दो अक्षर (अर्थात् रा और म) शेष रहे जो शिवजी ने अपने लिये ।

अर्थ—ध्रुव ने (अपनी विमाता और पिता के निरादर से) उदास हो कर ईश्वर का नाम जपा तो ऐसा स्थान पाया जो कि उपमा रहित और अटल है । पवन-हनुमान् जी ने पवित्र रामनाम का स्मरण करने से श्री रामचन्द्र जी को अपने वश में कर रक्खा है ॥

०—*अपर अजामिल †गज गणिकाऊ । भये मुक्त हरि नाम प्रभाऊ ॥
‡कहउँ कहां लगि नाम बड़ाई । राम न सकहिं नाम गुण गाई ॥

अर्थ—इनके सिवाय अजामील, गजेन्द्र और गणिका भी राम नाम के प्रताप से मुक्त हो गये । (मैं) नाम का प्रताप कहां तक कहूं कदाचित् स्वतः रामचन्द्र जी भी नाम के गुणानुवाद न कह सकेंगे ॥

सवैया—पावन देव पुरातन ब्रह्म हैं ध्यान धरे मन होत अशोक है ।
शारद नारद शेष गणेश गन्यो शिर मौर महेश को थोक है ॥
वेद पुराणन्ह में कविराम यही चरचा कवि कल्पना को कहै ।
श्री हनुमान हिये रघुनाथ बसैं रघुनाथहि में सब लोक है ॥

* अपर अजामिल गज गणिकाऊ—

राग जंगला—रघुवर चरण शरण सुख दायक क्यों न गहो मन मेरे ।
कोटि जन्म के संचित सगरे पाप विनाशैं तेरे ॥
जिन चरणन्ह की शरण गहे ते उधरे पतित घनेरे ।
अजामील गणिका गज गीधन हरिपुर किये बसेरे ॥
जिन चरणन्ह की रेणु परस मुनि पत्नी तरी सबेरे ।
भालु भील रजनीचर वानर काट गये भव फेरे ॥
कोटि कलंक मिटे कुमतिन के जिन चरणन्ह के हेरे ।
' रस हरी ' हम जान भये हैं इन चरणन्ह के चेरे ॥

सूचना—अजामील, गज और गणिका की कथा पुराणों में है ॥

† गज—राग बिहागरी—हे गोविंद राखु शरण अब तो जियत हारे ।
नीर पीवन हेतु गयो सिन्धु के किनारे ॥
सिन्धु बीच बसत ग्राह चरण गहि पछारे ।
लड़त लड़त सांझ भई लै गयो मझधारे ॥
नासिका लौं बूड़न लाग्यो कृष्ण को पुकारे ।
द्वारिका में शब्द भयो गरुड़ बिन पधारे ॥
ग्राह को तो मारि कै गजराज को उबारे ।
सूरदास दास भये नंद के दुलारे ॥

‡ कहउँ कहां लगि नाम बड़ाई । राम न सकहिं नाम गुण गाई—
इसी आशय को श्री कृष्ण परमात्मा अपने भक्त अर्जुन से कहते हैं कि—
दो०—सुमन सकल मेरो जो होई । तेहि समान को कहँ नहिं कोई ॥
सुनहु पार्थ मैं कहौं पुकारी । नाम कि महिमा कहउँ न पारी ॥

दो०—राम नाम को कल्पतरु, कलि कल्यान निवास।
*जो सुमिरत भये भाँगते, तुलसी तुलसीदास॥२६॥

अर्थ—कल्पवृक्ष रूपी राम नाम कलियुग में सम्पूर्ण मंगलों का धाम है जिस का स्मरण करते ही भांग सरीखे नए वृक्ष से मैं तुलसीदास तुलसी पत्र के समान पवित्र हो गया (अर्थात् राम नाम के प्रताप से अति तुच्छ जीव मैं तुलसीदास इस लोक में पूजनीय समझा गया)

चौ०—†चहुँ युग तीनि काल तिहुँ लोका। भयेनाम जपि जीव विशोका॥
वेद पुराण संत मत येहू। सकल सुकृत फल नाम सनेहू॥

अर्थ—चारों युग, तीन काल और तीनों लोक में प्राणी राम नाम जप कर शोक से रहित हो गये। वेद, पुराण और संतों ने यही निर्णय किया है कि सम्पूर्ण सत्कर्म का फल 'राम नाम में प्रेम' ही है॥

चौ०—‡ ध्यान प्रथम युग मख विधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥

अर्थ—प्रथम युग अर्थात् सतयुग में ईश्वर का ध्यान करने से, दूसरे युग अर्थात् त्रेता युग में यज्ञ करने से और द्वापर में पूजन करने से परमेश्वर प्रसन्न होते हैं।

---

* जो सुमिरत भये भाँगते, तुलसी तुलसी दास—तुलसी दास जी को यथार्थ में तुलसी ही की उपमा श्री मधुसूदन सरस्वती जी ने प्रसन्न हो कर यों कही है, यथा—

श्लोक—आनन्द कानने कश्चिज्जंगमस्तुलसी तरुः।
कविता मंजरी यस्य, राम भ्रमर भूषिता॥

इसी का अनुवाद कविता बद्ध श्री काशी राज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंहजी कृत भी सराहनीय है—

दो०—तुलसी जंगम तरु लसै, आनँद कानन खेत।
कविता जाकी मंजरी, राम भ्रमर रस लेत॥

† चहुँ युग तीनि काल तिहुँ लोका—

छप्पय—शंकर शुक सनकादि कपिल नारद हनुमाना।
विधिक शेष प्रहलाद बलि भीषम जग जाना॥
अर्जुन ध्रुव अंबरीष विभीषण महिमा भारी।
अनुरागी अक्रूर गदा ऊधौ अधिकारी॥
भगवन्त भक्ति [illegible]
हरि [illegible]

‡ ध्यान प्रथम युग मख विधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे—ठीक यही बात पुराण में लिखा है—

श्लोक—ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
[illegible]॥

सतयुग में ध्यान करने से, त्रेता में यज्ञ करने से और द्वापर में जो फल पूजा करने से प्राप्त होता है वही फल कलियुग में केवल नाम के उच्चारण करने से [illegible]

कलियुग केवल पाप की जड़ और अपवित्र है ऐसे पापरूपी समुद्र में मनुष्यों के मन मछली के समान हो रहे हैं ॥

चौ०—* नाम कामतरु काल कराला । सुमिरत शमन सकल जग जाला ॥
राम नाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता ॥

अर्थ—कराल काल अर्थात् कलियुग में नाम कल्पवृक्ष के समान है कि जिसका स्मरण करते ही संसार के सब जंजाल मिट जाते हैं। कलियुग में रामनाम ही इच्छित फल का देने वाला है, इस संसार में माता पिता के समान है और परलोक में कल्याण देने वाला है ॥

चौ०—† नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू । राम नाम अवलंबन एकू ॥
कालनेमि कलि कपट निधानू । नाम सुमति समरथ हनुमानू ॥

अर्थ—कलियुग में न तो कर्म, न भक्ति और न ज्ञान है केवल रामनाम ही का आधार है। कलियुग तो कालनेमि राक्षस के समान छल का भंडार ही है और रामनाम तो बुद्धिमान् हनुमान् के समान सामर्थ्यवान है ॥

---

* नाम कामतरु काल कराला—
भजन— कलि नाम कामतरु राम को ।
दलनि हार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घन घाम को ॥
नाम लेत दाहिनो होत मन बाम बिधाता बाम को ।
कहत मुनीश महेश महातम उलटे सूधे नाम को ॥
भलो लोक परलोक तासु जाके बल ललित ललाम को ।
तुलसी जग जानियत नाम तें सोच न कूच मुकाम को ॥

† नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू- जैसा कि गरुड़ पुराण में लिखा है—
श्लोक - कलौ संकीर्तना देव सर्व पापं व्यपोहति ।
तस्मात्[illegible] नाम नारदस्तु कार्यं संकीर्तनं परम् ॥
अर्थात् कलियुग में नाम के उच्चारण मात्र से सर्व पाप दूर हो जाते हैं इस हेतु श्री राम नाम का जाप करना उत्तम है। और भी—
राग धनाश्री—कहौं कछु श्री भागवत विचार ॥
हरि को भजि करो निशि बासर [illegible] दिन चार ।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

दो०—राम नाम नरकेसरी, कनककशिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि, पालहिं दलि सुरसाल॥२७॥

शब्दार्थ—नरकेसरी (नर+केसरी=सिंह)=नरसिंह। कनककशिपु (कनक हिरण्य+कशिपु=कश्यप) =हिरण्य कश्यप। जापक=जपने वाले, भक्त। सुरसाल (सुर=देवता+साल=वैरी)=देवताओं के वैरी अर्थात् राक्षस।

अर्थ—रामनाम तो नरसिंह अवतार के समान है और कलियुग हिरण्यकश्यप की नाईं है तथा भक्त जन प्रहलाद सरीखे हैं इनका पालन उस देव वैरी को मार कर किया जाता है (अर्थात् जिस प्रकार नरसिंह जी ने देवताओं के वैरी हिरण्य कश्यप को मार प्रहलाद भक्त की रक्षा की उसी प्रकार रामनाम भक्तों के वैरी कलियुग को परास्त कर भक्तों की रक्षा करने वाला है)॥ इति नाम प्रभाव वर्णन

———o———

(१० सेव्य सेवक भाव)

चौ०—*भाय कुभाय अनख आलसहूं। नाम जपत मंगल दिशि दशहूं॥
सुमिरि सो राम नाम गुण गाथा। करौं नाइ रघुनाथहि माथा॥

शब्दार्थ—भाय (भाव)= अच्छे प्रेम से। कुभाय (कुभाव)=वैर आदि भाव से। अनख=तीख, क्रोध॥

अर्थ—(तुलसी दास जी कहते हैं कि) प्रेम, वैर, क्रोध या आलस्य के कारण भी नाम जपने से दशों दिशाओं में (अर्थात् सब जगह) आनन्द मंगल ही होता है। ऐसे राम नाम का स्मरण कर तथा श्री रामचन्द्र जी को शिर नवाकर मैं उन गुणानुवाद वर्णन करता हूं॥

---

*भाय कुभाय अनख आलसहूं। नाम जपत मंगल दिशि दसहूं— प्रीति से किम्वा वैर के कारण अथवा किसी प्रकार से रामनाम कहने वालों का मंगल होता ही है—[illegible] पुराण में लिखा है, यथा—
श्लोक—[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] काम, क्रोध, [illegible] ॥
[illegible] लिखा है—

[illegible]

०—मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपा अघाती॥
राम सुस्वामि कुसेवक मो सो। निजदिशि देखिदयानिधि पोसो॥

शब्दार्थ—पोसो (पोषण)=पालन किया, रक्षा की।

अर्थ—जिनकी कृपा से कृपा को भी सन्तोष नहीं होता (अर्थात् यदि कृपा को जीव समझ लेवें तो वह भी श्री रामचन्द्र जी की कृपा चाहती ही रहती है) ऐसे श्री मचन्द्र जी सभी प्रकार से मुझे सम्हाल लेवेंगे।

'जासु कृपा नहिं कृपा अघाती' का दूसरा अर्थ—जिनकी अनेक भांति की पा किसी एक प्राणी पर कृपा दर्शाते हुए भी सन्तोष को नहीं प्राप्त होती (अर्थात् भु के चित्त में यह चाव बनाही रहता है कि जितनी कृपा मैंने इस प्राणी पर की वह पूरी नहीं हुई। यदि और भी करता तो अच्छा होता। जैसा कहा है—

'जो सम्पति शिव रावणहि, दीन्हि दिये दस माथ।
सो सम्पदा विभीषणहि, सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥'

ऐसे उत्तम स्वामी श्री रामचन्द्र जी ने मुझ सरीखे अधम सेवक की जो रक्षा की सो उन दया सागर ने अपनी ही ओर देख कर की (अर्थात् मुझ सरीखे अधम सेवक की कोई रक्षा न करता परन्तु श्री रामचन्द्र जी ने अपने ही स्वभाव 'दीन-पोषकता के विचार से मुझे अपना बना लिया)।

चौ०—लोकहुँ वेद सुसाहिबरीती। विनय सुनत पहिचानत प्रीती॥
गनी गरीब ग्राम नर नागर। पंडित मूढ़ मलीन उजागर॥

दोहा—जाय ... दाल॥
... भाल॥

और भी ...

... राम सिया रे।
... लिया रे॥
... रे।
... रे॥
... दासी—
... गे।
... गे।
... गे।
... गे॥

*सुकवि कुकवि निजमति अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी

शब्दार्थ—गनी (अरबी, ग़नी)=धनवान् । ग्रामनर=देहाती लोग ।

अर्थ—संसार में तथा वेद में अच्छे राजाओं की यह रीति कही है कि वे को सुन कर प्रेम पहिचान लेते हैं। धनवान्, कंगाल, देहाती लोग, चतुर पंडित, मूर्ख बुरे और भले। प्रवीण कवि और साधारण कवि तथा सब ही अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार राजा की प्रशंसा करते हैं॥

चौ०—साधु सुजान सुशील नृपाला। ईश † अंश भव परम कृपाला।
सुनि सनमानहिं सबहि सुबानी। भणितभक्तिनतिगतिपहिचानी॥

अर्थ—क्योंकि राजा लोग सज्जन, चतुर, शीलवान्, ईश्वर का अंश और दयालु होते हैं। ये सब की सुन कर मधुर वचनों से उनका आदर करते हैं क्योंकि ये उनकी उक्ति, भक्ति नम्रता और पहुँच की जांच रखते हैं॥

---

* सुकवि कुकवि निज मति अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी— राजा भोज के समय संस्कृत और नागरी भाषा पढ़ने पढ़ाने का ऐसा उत्तेजन दिया जाता था कि ग्राम निवासी मूर्ख और पंडित आदि सभी अपनी २ बुद्धि के अनुसार [illegible] कविता बना कर राजा को सुनाते थे और राजा उनकी शुद्धता पर विचार न कर उनका प्रेम देख उन्हें पारितोषिक देते थे। जैसा कि [illegible] मनुष्यों में अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार राजा के यश की सराहना [illegible] ने कविता [illegible] कर यों सुना कर पारितोषिक पाया था—

[illegible]
हे राजन मम यशो भाति, [illegible]॥

[illegible] हे राजा! आपकी कीर्ति (१) दही की नाईं, (२) [illegible] (३) [illegible] और (४) [illegible]

चौ०—यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जानि शिरोमणि कोशलराऊ॥
*रीभत राम सनेह निसोते। को जग मंदमलिन मति मो ते॥

शब्दार्थ—निसोते (सं० निस्रोत। नि=लगातार+स्रोत=धार)=लगातार धार से, सदैव, अटूट।

अर्थ—यह तो साधारण राजाओं का स्वभाव है परन्तु कोशलराज रामचन्द्र जी तो सब में शिरोमणि हैं सो अवश्य ही जानेंगे। श्री रामचन्द्र जी तो अटूट प्रेम से प्रसन्न होते हैं और संसार में मुझ सरीखा मूर्ख तथा कुबुद्धि कौन है॥

दो०—† शठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं रामकृपालु।
उपल किये जलयान जेहि, सचिव सुमति कपि भालु॥

शब्दार्थ—उपल=पत्थर। जलयान (जल=पानी+यान=सवारी) = पानी की सवारी अर्थात् नाव।

अर्थ—मुझ मूर्ख सेवक के प्रेम को दयालु श्री रामचन्द्र जी निबाहेंगे जिन्हों ने पत्थरों को (लंका प्रवेश के पूर्व पुल बांधने के समय) नौका की नाईं तैराया था और बंदर तथा रीछों को चतुर मंत्री बनाया था॥

दो०—हौंहुँ कहावत सब कहत, राम सहत उपहास॥
‡ साहिब सीतानाथ से, सेवक तुलसीदास॥२८॥

---

* रीभत राम सनेह निसोते—
राग धनाश्री—सब से ऊंची प्रेम सगाई।
दुर्योधन की मेवा त्यागी साग विदुर घर पाई॥
जूठे फल शबरी के खाये बहुविधि प्रेम लगाई।
प्रेमहि बश नृप सेवा कीन्हीं आप बने हर नाई॥
राजसूय मख पांडव कीन्हीं ता में जूठ उठाई।
प्रेम के बश अर्जुन रथ हाँक्यो भूल गये ठकुराई॥
ऐसी प्रीति बढ़ी बृन्दावन गोपिन नाच नचाई।
सूर क्रूर इस लायक नाहीं कहँ लग करौं बड़ाई॥

† शठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं राम कृपालु—
राग धनाश्री—मेरी सुध लीजो श्री ब्रजराज।
और नहीं जग में कोउ मेरो तुमहिं सुधारन काज॥
गणिका गीध अजामिल तारे श्री शबरी गजराज।
सूर पतित तुम पतित उधारन बाँह गहे की लाज॥

‡ साहिब सीतानाथ से, सेवक तुलसी दास—इस में कोई २ पंडित लोग 'राम सहत उपहास' इस के आधार पर यह अर्थ ध्वनित करते हैं कि सीता के

अर्थ—'सीतापति से स्वामी और तुलसी दास से सेवक' यह बात
कहलवाता हूं और सब लोग कहते भी हैं सो इस प्रकार की हँसी श्री रामचन्द्र जी
(अर्थात् कहाँ तो सीता के नाथ और कहाँ तुलसी का दास, जो सीता के स्वामी
से तुलसी के सेवक का क्या संबंध। इस में एक ध्वनि यह है कि सीता के सेवक
सीता के पति का प्रेम स्वाभाविक है परन्तु तुलसी के सेवक पर सीता
प्रेम कैसा?)।

चौ०—अति बड़ मोर ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहु नाक सि
समझि सहम मोहि अपडर अपने। सो सुधि राम कीन्हि नहि

अर्थ—मेरा बहुत बड़ा ढीठपन और दोष सुनकर पाप और नरक ने भी
सिकोड़ ली (अर्थात् मेरी ढिठाई से पाप भी मेरी निंदा करने लगा और
नरक भी दूषित होने के भय से घृणा करने लगा)। सारांश यह कि मैं बड़ा ढीठ
पापी हूं जो सब प्रकार से अयोग्य होने पर भी राम सेवक बना हूं। मैं अपने
ढीठपन के कारण, अपने ही डर से वृथा लज्जित होता हूं। उसका विचार तो श्री रामचन्द्र
जी ने स्वप्न में भी नहीं किया (क्योंकि यदि करते तो मेरे चित्त में क्षोभ हो जा
मैं उनसे विमुख हो जाता)।

पति एक पत्नी व्रतधारी श्री रामचन्द्र जी तुलसी के दास को अपना से
समझ कर अपने को 'तुलसी वल्लभ' नाम धारी समझ उपहास समझते
और यह आशय गर्भित करते हैं कि तुलसी वल्लभ अर्थात् वृंदा तुलसी जो
तुलसी वृक्ष के रूप से अवतरी। उसके पति के नाम से परमेश्वर अपने को
प्रसिद्ध कर चुके हैं और इसी के आधार से तुलसी के सेवक तुलसीदास को
अपना दास मानते हैं तथा इसी आशय को पुष्ट करने के हेतु तुलसीदास
न यह दोहा प्रमाण में देते हैं, यथा—

दोहा—सहस नाम मुनि भनित सुनि, 'तुलसी वल्लभ' नाम।
सकुचत हिय हँसि निरखि सिय, धर्म धुरंधर राम॥

शब्द चातुरी के रहस्य को सहृदय समझ लेंगे॥
सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी—दोनों कवि शिरोमणि तुलसीदास जी तथा
स जी अपने २ प्रभु श्री रामचन्द्र जी तथा श्री कृष्ण चन्द्र जी के सन्मुख
ने को महा अधम समझ किस प्रकार विनय करते हैं—

भजन—विनती करत मरत हौं लाज॥ टेक॥
यह काया नखसिख लौं मेरी पापन्ह भरी जहाज॥
आगे भयो न पाछे कबहूं सब पतितन सिरताज।
भागत नरक नाम सुनि मेरो पीठ देत यमराज॥
गीध अजामिल गणिका तारी मेरे कौने काज।
सूर अधम को जबहि तारिहौ तब कहिहौं महाराज॥

१०— बिनअवलोकि सुचित चखचाही। भक्ति मोरि मति स्वामि सराही॥
कहत नसाइ होइ हिय नीकी। *रीझत राम जानि जन जी की॥

अर्थ— (स्वप्न में भी सुध न कीन्ह)—जब इस बात को सुना और देखा तब चैतन्य हो जो ज्ञान दृष्टि से विचारा तो जाना कि प्रभु जी ने मेरी भक्ति की सराहना अपने मन से की। (काहे से) कहते चाहे न बने परन्तु हृदय में ठीक बसी हो तो रामचन्द्र जी मनुष्य के हृदय की बात जान कर प्रसन्न होते हैं॥

चौ०—† रहत न प्रभुचित चूक किये की। करत सुरति सौ बार हिये की॥
जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हकुचाली॥

शब्दार्थ—सुकंठ=सुग्रीव

अर्थ—रामचन्द्र जी के हृदय में भक्तों के किये हुए दोष का विचार नहीं रहता वे तो उनके हृदय की बात सौ सौ बार स्मरण करते हैं (अर्थात् रामचन्द्र जी अपने भक्तों के बुरे कर्मों को भूल कर उनके हृदय को भक्ति का बड़ा विचार रखते हैं)। (देखो) जिस पाप के कारण बहेलिये की नाईं छिपकर बालि का वध किया था वही पाप सुग्रीव ने भी किया।

---

* रीझत राम जानि जन जी की—

गज़ल—क्यों दीननाथ मुझ पै तुम्हारी दया नहीं।
आश्रित तेरा नहीं हूं कि तेरी प्रजा नहीं॥
मेरे तो नाथ कोई तुम्हारे सिवा नहीं।
माता नहीं है बंधु नहीं है पिता नहीं॥
माना कि मेरे पाप बहुत हैं पै हे प्रभू।
कुछ उससे न्यूनतर तो तुम्हारी दया नहीं॥
करुणा करोगे क्या मेरे आँसू ही देख कर।
जो क्या भी मेरे दुःख तो तुम से छिपा नहीं॥
तुम भी शरण न दोगे तो जाऊंगा मैं कहां।
अच्छा हूं या बुरा हूं किसी और का नहीं॥

† रहत न प्रभुचित चूक किये की। करत सुरति सौ बार हिये की॥

राग बिलावल—माधो जू जो जन से बिगरै।
तउ कृपाल करुणामय केसव प्रभु नहिं चित्त धरै॥
ज्यों शिशु जननि जठर अन्तर गत सुत अपराध करै।
तऊ जतन कर पोष पोष चित बिहँसत अंक भरै॥
यदपि बिटप पर हनत हेम कर कर कुठार धरै।
तदपि स्वभाव सुसील सुशीतल त्रिभुवन ताप हरै॥
कारण करन अनन्त अजित पद बंदि बिधि धरन धरै।
पद बलि काल कलन नहिं मो पै शरण उबरै॥

चौ०—* सोइ करतूति विभीषण केरी । सपनेहु सो न राम हिय
ते भरतहि भेटत सनमाने । राज सभा रघुवीर बख

अर्थ—वैसा ही कर्म विभीषण ने भी किया उस का विचार रामचन्द्र जी ने
भी न किया । वरन भरत मिलाप के समय उनका बड़ा आदर किया और राजस
में श्री रामचन्द्र जी ने स्वत: उन की बड़ाई की ।

दो०—† प्रभु तरुतर कपि डार पर, ते किय आपु समान ।
तुलसी कहूँ न राम से, साहिब शील निधान ॥

अर्थ—देखो रामचन्द्र जी तो वृक्ष के नीचे बैठते थे और वानर उसी वृक्ष
की डालियों पर बैठा करते थे, ऐसे शिष्टाचार रहित बन्दरों को भी अपने समान
कर लिया (अर्थात् उनके देह जनित अपमान का विचार न कर उन्हें बैकुं
का निवास दिया) तुलसीदास जी कहते हैं कि रामचन्द्र जी सरीखे शील संकोच
करने हारे प्रभु कहीं हैं ही नहीं ।

दो०—‡ राम निकाई रावरी, है सब ही को नीक ।
जो यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक ॥

---

* सोइ करतूति विभीषण केरी । सपनेहु सो न राम हिय हेरी—
सवैया—सोक समुद्र निमज्जत काढ़ि कपीश कियो जग जानत जैसो ।
नीच निशाचर बैरी को बन्धु विभीषण कीन्हों पुरन्दर कैसो ॥
नाम लिये अपनाय लियो तुलसी सो कहौ जग कौन अनैसो ।
आरत आरति भंजन राम गरीब निवाज न दूसर ऐसो ॥

† प्रभु तरुतर कपि डार पर, ते किय आपु समान—
गज़ल—[illegible] मुझे याद हो कि न याद हो ।
[illegible] याद हो कि न याद हो ॥
[illegible] था ।
[illegible] याद हो कि न याद हो ॥
[illegible] था ।
[illegible] याद हो कि न याद हो ॥
[illegible] याद है ।
[illegible] याद हो ॥

‡ [illegible]

शब्दार्थ—तुलसीक=तुलसीको।

अर्थ—हे श्री रामचन्द्र जी आप का भलापन सब ही के लिये उत्तम है, यदि यह बात सदा सत्य ही है तो मुझ तुलसी दास को भी उत्तम होवेगी (इस में कोई सन्देह नहीं)।

दो०—*इहि विधि निज गुण दोष कहि, सबहि बहुरि शिर नाइ।
वरणौं रघुवर विशद यश, सुनि कलि कलुष नशाइ ॥ २६॥

अर्थ-इस प्रकार अपने गुण और दोषों को बता कर तथा सब को शिर नवाकर मैं श्री रामचन्द्र जी का निर्मल यश वर्णन करता हूं जिसके सुनने से कलियुग के पाप नाश हो जाते हैं।

भाव यह कि 'हम श्री राम जी के हैं' केवल इतना ही गुण कहा जा सक्ता है और दोष तो अनेक हैं जिन का कुछ वर्णन हो ही चुका है इतना कह कर नम्रता पूर्वक मैं श्री राम कथा कहता हूं जिसके प्रभाव से सम्पूर्ण दोष दूर हो जाते हैं॥

क०—दया सिन्धु दीना नाथ आरत हरण भारी, द्रौपदी उबारी तैंने मोहको उबार ल्यो।
गनिका उबारी गज संकट निवारो, प्रह्लाद हितकारी दुख दारिद निवार ल्यो॥
गौतम की तिया तारी पग निज रज धारी द्विज हित कारी भवसागर उधार ल्यो।
टेरैं प्रभु नंदलाल दीनबन्धु भक्तपाल करुणा कृपाल लाल विरद सम्हार ल्यो॥

* इहि विधि निज गुण दोष कहि—इस में कोई कोई यह शंका कर बैठते हैं कि गोस्वामी जी ने अपने ही मुँह से अपने गुण का कथन क्यों किया? उस का समाधान यह है कि इन्हों ने लोगों की कथन प्रणाली के अनुसार ऐसा कहा है। लोग प्रायः प्रत्येक वस्तु के बारे में प्रश्न करते समय उसके 'गुण दोष' पूछते हैं, क्योंकि गुण दोष प्रायः सभी में पाये जाते हैं, जैसा कह आये हैं कि—'जड़ चेतन गुण दोष मय' 'विश्व कीन्ह करतार' इत्यादि। इसके सिवाय तुलसी दास जी ने भी अपनी कविता के बारे में यों कहा है कि "भनिति मोरि सब गुण रहित, विश्व विदित 'गुण एक' इत्यादि"। और वह गुण यह है कि 'इहि महँ रघुपति नाम उदारा'। बस इन्हीं आधारों से कवि जी अपने को श्री रामचन्द्र जी का सेवक समझ इस बात पर विश्वास कर लिखते हैं कि—

दोहा—'राम निकाई रावरी, है सब ही को नीक'।
जो यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक॥

भाव यह कि श्री रामचन्द्र जी ने [illegible] है नहीं तो मैं इस ग्रन्थ के लिखने में सामर्थ्यवान् न हो सकता। यदि वे मेरे चित्त में ऐसे विचार उत्पन्न कर देते कि मैं रामचरित्रों को लिख ही न सकता। कारण कहा है—

दोहा—[illegible]

चौ०—याज्ञवल्क्य जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिवरहिं सुनाई॥
कहिहउँ सो संवाद बखानी। सुनहुँ सकल सज्जन सुखमानी॥

अर्थ—याज्ञवल्क्य जी ने जो सुहावनी कथा भरद्वाज मुनि से कही थी उस वार्तालाप का वर्णन करके कहूंगा, हे सम्पूर्ण सत्पुरुषो! इसे आनंद पूर्वक सुनिये।

चौ०—शंभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपाकरि उमहिं सुनावा॥
*सोइ शिव कागभुशुंडिहि दीन्हा। रामभक्त अधिकारी चीन्हा॥

अर्थ—महादेव जी ने यह सुहावना चरित्र पहिले बनाया फिर कृपा कर पार्वती को सुनाया। उसी को शिव जी ने जब जान लिया कि यह राम भक्त हैं और कथा के अधिकारी हैं तब कागभुशुंडि को दिया॥

चौ०—तेहि सन याज्ञवल्क्य मुनि पावा। तिन पुनि भरद्वाज प्रतिगावा॥
ते श्रोता वक्ता सम शीला। समदरशी जानहिं हरि लीला॥

अर्थ—कागभुशुंडि से याज्ञवल्क्य मुनि जी ने पाया और फिर उन्हों ने भरद्वाज जी से वर्णन किया। वे सुनने वाले और कहने वाले एक स्वभाव के हैं वे सब को समान दृष्टि से देखते हैं और ईश्वर के चरित्रों को जानते हैं॥

चौ०—जानहिं तीन काल निज ज्ञाना। करतल गत आमलक समाना॥
औरउ जे हरि भक्त सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं विधि नाना॥

अर्थ—वे अपने ही ज्ञान से भूत भविष्यत वर्तमान तीनों काल का ज्ञान जानते हैं जिस प्रकार लोग हाथ में आये हुए आंवले को समझ लेते हैं। और भी जो ईश्वर के चतुर भक्त हैं वे भी अनेक प्रकार से कहते सुनते और समझते हैं॥

---

* और फिर कागभुशुंडिहि दीन्हा...... शिव जी ने रामकथा पार्वती जी को [illegible] सुनाई थी परन्तु कागभुशुंडि जी को लोमश ऋषि के द्वारा [illegible] [illegible] कि [illegible] से कहा है—[illegible] शिव जी ने कागभुशुंडि जी को [illegible] [illegible]

[illegible]

दो०—मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सु *सूकर खेत ।
समुझी नहिं तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ॥

अर्थ-(तुलसीदास जी कहते हैं कि) मैंने अपने गुरु से वाराह क्षेत्र में यह कथा सुनी थी परंतु बाल अवस्था होने से ठीक ठीक समझी नहीं क्योंकि उस समय मैं बहुत नादान था ॥

दो०—†श्रोता वक्ता ज्ञाननिधि, कथा राम की गूढ़ ।
किमि समुझैं यह जीव जड़, कलिमल ग्रसित विमूढ़ ॥३०॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी की कथा इतनी गूढ़ है कि उस के सुनने वाले और कहने वाले दोनों ज्ञान के भन्डार होना चाहिये फिर मुझ तुलसी दास सरीखा कलियुग क पापों में फँसा हुआ महामूर्ख प्राणी उस को कैसे समझ सकता था ॥

चौ०—तदपि कही गुरु बारहि बारा । समुझि परी कछु मति अनुसारा ॥
‡भाषाबद्ध करब मैं सोई । मोरे मन प्रबोध जेहि होई ॥

अर्थ—तौ भी गुरु जी ने बारम्बार उसे कहा तब अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ मेरी समझ में आगई । उसी को मैं हिन्दी भाषा की कविता में लिखूँगा जिस से मेरे चित्त को समाधान हो ॥

---

* सूकर खेत (सूकर=वाराह+खेत=क्षेत्र)=वाराहक्षेत्र, जो अयोध्यापुरी से १२ कोस पश्चिम की ओर सरयूनदी के किनारे है ॥

† श्रोता वक्ता ज्ञान निधि, कथा राम की गूढ़ .... मृदङ्गाग रत्नाकर से—

कुण्डलिया—बानी बहुत प्रकार है ताको नाहीं अन्त ।
जोई अपने काम की सोई सुने सिधान्त ॥
सोई सुने सिधान्त सन्त जन गावत होई ।
चित्त ध्यान के ठौर सुने जो नित प्रति सोई ॥
यथा हंस पय पिये रहे ज्यों को त्यों पानी ।
ऐसे लई विचार शिष्य बहु विधि है बानी ॥

‡ भाषाबद्ध करब मैं सोई—इस में कोई कोई लोग यह शंका कर बैठते हैं कि जब इस ग्रन्थ को भाषा में लिखने का निश्चय किया गया तो फिर इस में संस्कृत श्लोक, संस्कृत मिश्रित स्तुतियां तथा और भाषाओं के शब्द क्यों लिखे गये उसका समाधान यों है— काव्य प्रकाश में लिखा है कि 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' अर्थात् प्रधानता से नाम रक्खा जाता है जैसे 'महाब्राह्मण ग्रामोऽयम्' अर्थात् यह ब्राह्मणों का गाँव है इसके कहने से यह तात्पर्य है कि इस गाँव में ब्राह्मणों की संख्या अधिक है कुछ और लोगों का निषेध नहीं होता क्योंकि इसी गाँव में

[शेष आगे]

चौ०—जस कछु बुधि विवेक बल मेरे। ⊛ तस कहिहउँ हिय हरि के प्रेरे॥
निज सन्देह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भवसरिता तरनी॥

स्त्रियां, बालक और वृद्ध आदि साधारण लोग भी बसते हैं। इसी नियम अनुसार इस रामायण को चौपैया रामायण कहते हैं। इस से दोहा, सोरठा हरिगीतिका और श्लोक आदि का निषेध नहीं पाया जाता। अतएव इस रामायण में कुछ संस्कृत किंवा दो एक शब्द फ़ारसी, भोजपुरी आदि भाषाओं के होने से उस की भाषाबद्धता मिटती नहीं, बनी ही रहती है॥

भाषाबद्ध करब मैं सोई—यह कहने से कवि जी का यह अभिप्राय है कि मैं संस्कृत भाषा में न लिखकर इसे हिन्दी भाषा ही में लिखता हूं जिस में साधारण लोगों की समझ में आजावे। इस के सिवाय भाषा में भी नौ उत्तम उत्तम ग्रन्थ लिखे गये हैं। जिन के बारे में मणिदेव कवि बनारसी ने यों कहा है—

क०—याहु माहिं शंकर बनाये सिद्ध मंत्र सब तिन सो सहज मानि दूरि करै कठिन कलेशन्ह के कन्द को।
मोहनादि होत सब तिन सों भयङ्कर विलात लखि दुन्द को।
और सुनी तुलसी गोसाइँ सूर आदिन की कविता सों भाषै 'मणिदेव' बुध वृन्द को।
मन को लगाइ सुनी मेरी बात भाषा अति लागतिहै प्यारी रघुनन्द ब्रजचन्द को।

'भाषाबद्ध' का पाठान्तर 'भाषा बन्ध' भी है।

मोरे मन प्रबोध जेहि होई—इस में कोई कोई लोग यह शंका कर बैठते हैं कि गुरु जी के कहने से क्या प्रबोध नहीं हुआ जो गोसाइँ जी भाषा में राम कथा को लिख कर अपने मन का प्रबोध किया चाहते हैं? समाधान—कवि जी का यह अभिप्राय नहीं है कि गुरु जी के कथन से प्रबोध नहीं हुआ। वे तो यह कहते हैं कि जो कुछ गुरु जी ने बारम्बार कह कर मुझे समझाया उसी को मैं लिखता हूं। इस अभिप्राय से कि 'सुनी हुई बात ठीक ठीक समझ में आगई'। ऐसा तभी सिद्ध होता है जब उसे लिख डाले। क्योंकि लिखने में पूर्वा पर विचार, भाषा की रचना, कथा का भाव आदि अनेक बातों का विचार करना पड़ता है। इसी से भाषाबद्ध करने पर मेरे मन को प्रबोध होगा। यह स्वामी जी का यथार्थ कथन है कुछ आत्म-स्तुति के निमित्त नहीं है॥

⊛ तस कहिहउँ हिय हरि के प्रेरे—श्री मद्भगवद्गीता के १० वें अध्याय में श्री कृष्ण जी के वचन यों हैं—

श्लोक—अहमात्मा गुडाकेश सर्व भूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥२०॥

अर्थात् हे अर्जुन! सब प्राणियों के अन्तःकरण में आत्मारूप मैं ही बस रहा हूं और मैं ही सब प्राणियों के आदि, मध्य और अन्त में बना रहता हूं। इसी हेतु—

श्लोक—अहिंसा समता तुष्टि स्तपोदानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः॥५॥

अर्थात् अहिंसा, समता, सन्तोष, तप, [illegible] न, यश और अपयश आदि के ये सब प्रकार के विचार प्र[illegible] [illegible] ही की प्रेरणा से होते हैं

अर्थ—मुझ में जो कुछ बुद्धि का बल और ज्ञान का बल है, तथा हृदय में जिस प्रकार ईश्वर की प्रेरणा होगी उसी प्रकार वर्णन करूंगा। मैं उस कथा का वर्णन करूंगा जिस से मेरा सन्देह, मोह और अज्ञान दूर हो तथा जो संसाररूपी नदी से पार उतारने के हेतु नौका के समान है॥

दो०—*बुध विश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष विभंजनि॥
रामकथा कलि पन्नग †भरनी। पुनि विवेक पावक कहँ अरनी॥

शब्दार्थ—पन्नग (पद=पैर+न=नहीं+गम्=जाना)=जो पैर से न चले अर्थात् सर्प। अरनी (अरणि)=एक प्रकार की लकड़ी जिसको आपस में रगड़कर यज्ञ की अग्नि उत्पन्न करते हैं॥

अर्थ—रामकथा बुद्धिमानों को शांति देने वाली और सम्पूर्ण मनुष्यों को आनंद देने हारी है तथा कलियुग के पापों का नाश करने वाली है। रामकथा कलियुगरूपी सर्प को मयूरी के समान नाश करने वाली है इसी प्रकार विवेकरूपी अग्नि को बढ़ाने के लिये अरनी लकड़ी के समान है॥

चौ०—‡रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई॥
सोइ वसुधा तल सुधा तरंगिनि। भव भंजनि भ्रम भेकभुअंगिनि॥

शब्दार्थ—कामदगाई (काम=इच्छा + दा=देना + गाई=गौ)=इच्छा पूर्ण

---

* बुध विश्राम सकल जन रंजनि। राम कथा कलि कलुष विभंजनि—
नवपंचामृत रामायण से—

क०—काटि यम फांसी जग करत खलासी कलि, कलुष प्रवासी पनकासी सहिता है जू।
चन्द्र चन्द्रिकासी पुण्य पुंजन प्रकासीगन, विघन विनासी गरिमासी ललिता है जू॥
मधुर सुधासी साधु रसना निवासी हरि, सुयश विलासी बिमलासी उदिता है जू।
कल्प की लता सी मानों मुक्ति मुदितासी विधि, धाक वनितासी तुलसी की कविता है जू॥

† भरनी—मयूरी। जैसा कहा है—
भरणी मयूर पत्नी स्यात् वरटा हंस योषिता।
अर्थात् भरणी तो मोर की स्त्री अथवा लिङ्गोर है और वरटा हंसी को कहते हैं॥

‡ रामकथा कलि कामद गाई—कहा है—
श्लोक—तस्माच्छृणुध्वं विप्रेन्द्र, देव देवस्य चक्रिणः।
रामायण कथा चैसा, कामधेनूपमा स्मृता॥
अर्थात् (नारदमुनि जी का वचन सनत्कुमार मुनि पर है कि) हे विप्र श्रेष्ठ! आप लोग इस हेतु से चक्रधारी देवन के देव श्री रामचन्द्र जी की इस कथा को सुनिये जो, कामधेनु की नाईं है॥

करने वाली गौ अर्थात् कामधेनु। वसुधा (वसु=धन + धा = रखना)= पृथ्वी।
तरंगिनि = नदी। भेक=मेंढक। भुअंगिनि = सर्पिणी ॥

अर्थ—कलियुग में राम कथा कामधेनु के समान है (अर्थात् जो कुछ
करके मनुष्य इस कथा का श्रवण कीर्त्तन करे उसकी वह कामना पूर्ण हो
है) और सत्पुरुषों के लिये तो यह कथा सुन्दर सजीवन बूटी है। यही
पृथ्वी पर मानो अमृत की नदी की नाईं है और यही संसार को मिटाने वाली
(अर्थात् इस से यह ज्ञान हो जाता है कि यह संसार झूठा है) भ्रम रूपी मेंढक
को सर्पिणी के समान है ॥

चौ०—*असुरसेनसम नरकनिकंदिनि। साधुविबुधकुलहितगिरिनंदिनि॥
संत समाज पयोधि रमासी। † विस्व भारधर अचल छमा सी॥

शब्दार्थ—असुरसेन= गया तीर्थ। निकंदिनि= नाश करने वाली। विबुध=
देवता। गिरिनंदिनि (गिरि = पर्वत + नंदिनि = पुत्री) =गंगा जी। छमा=पृ

अर्थ—यही कथा गया तीर्थ के समान नरक का नाश करने वाली औ
सज्जन तथा देवताओं के समूहों का हित करने में गंगा जी के समान है। संतो
की समाज रूपी समुद्र को लक्ष्मी के समान और संसार का बोझ सम्हालने के
लिये अचल पृथ्वी के समान है ॥

---

* असुर सेन सम नरकनिकंदिनि। साधु विबुध कुलहित गिरिनंदिनि
ठीक यही आशय भक्तशिरोमणि प्रहलाद जी के वचनों में झलकता है, यथा

श्लोक—नगंगा न गया सेतुर्न काशी न च पुष्करः।
जिव्हाग्रे वसते यस्य हरि रित्यक्षरद्वयम् ॥

अर्थात् जिसकी जीभ पर 'राम' ये दो अक्षर बने रहते हैं उसको गंगा
जी, गया जी, सेतुबंधरामेश्वर जी, काशी जी तथा पुष्कर जी की आवश्यकता नहीं॥
असुर सेन=गया तीर्थ। यह स्थान बिहार प्रान्त में है। ब्रह्मा जी ने सृष्टि उत्पन्न
करते समय गयासुर एक भारी दानव बनाया। इस दानव ने बड़ी तपस्या कर
विष्णु जी से यह वरदान पाया कि कोई भी प्राणी सुर असुर ऋषि मुनि आदि
जो मेरे शरीर को स्पर्श करे सो पवित्र हो कर मुक्त पा जावे। ब्रह्मा जी ने गयासुर की
पीठ पर धर्म शिला रख कर यज्ञ किया था इसी कारण यह तीर्थ 'गया' के नाम
से प्रसिद्ध हुआ। ब्रह्मदेव के यज्ञ में सम्पूर्ण देवता पधारे थे और सब तीर्थस्थान
भी रूप धारण कर आये थे। साक्षात् विष्णु जी गदा धारण कर यहाँ उपस्थित हुए
। यहाँ पर फल्गू नदी बहती है। इस नदी में स्नान करने से सम्पूर्ण तीर्थों में
... करने का फल होता है। यहाँ विष्णु पद पर पिंडदान करने से अगणित
... तर जाते हैं। इसी प्रकार गदाधर पद, रुद्रपद और ब्रह्मपद का भी भारी
...त्म्य है (देखो वायु पुराण अथवा गया माहात्म्य) ॥

† ...भारधर' का पाठान्तर 'विश्व भार भर' भी है।

०—*जमगन मुँह मसि जग जमुना सी । †जीवनमुक्ति हेतु जनु कासी ॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी । तुलसिदास हित हिय हुलसी सी ॥

शब्दार्थ—मसि = स्याही । हुलसी = तुलसीदास की माता का नाम, हुल्लास

अर्थ—यमदूतों के मुँह पर स्याही फेरने के लिये यमुना नदी के समान है (अर्थात् यमुना में नहाने से जिस प्रकार प्राणी मुक्त हो जाते हैं और यमदूत उन प्राणियों को देख कर अपना सा मुँह लिये रह जाते हैं इसी प्रकार रामकथा के सुनने से प्राणियों की मुक्ति हो जाती है और यमदूतों का काला मुँह हो जाता है) और जीवों के मुक्ति के लिए काशी जी के समान हैं ।

श्रीरामचन्द्र जी के विचार में तुलसी के समान पवित्र है और मुझ तुलसीदास के हित के लिये दयालु हुलसी माता के समान है ॥

दूसरा अर्थ—'तुलसिदास हित हिय हुलसी सी' का यह अर्थ भी हो सक्ता है कि तुलसीदास जी का हित करने के लिये उनके हृदय को हुल्लास रूपी हैं ॥

चौ०—शिवप्रिय‡मेकलशैलसुता सी । सकल सिद्धि सुख संपति रासी ॥
सद्गुण सुरगणअंब अदितिसी । रघुवरभक्ति प्रेम परमिति सी ॥

---

* जमगन मुँह मसि जग जमुना सी—राम तत्व बोधिनी से—

कवित्त-तुलसी प्रसाद हिय हुलसी श्री राम कृपा सोई भव सागर के पुलसी हु लसी है ।
जाकी कविताई अनरथ तरु टंगा सम गंगा की सी धार भक्त जन मन धसी है ॥
परम धरम मार्तंड उर व्योम उयो काम क्रोध लोभ मोह तम निशि नसी है ।
याही के प्रकाश यम गण मुँह मसिलाई अति सुख पाय जिय मेरे आय बसी है ॥

जमुना—विवस्वान सूर्य को संज्ञा नाम की पत्नी से एक जुड़ेलु बालकों का जन्म हुआ था । उन में एक कन्या और एक पुत्र था । कन्या का नाम जमुना और पुत्र का नाम जम । इस प्रकार जमुना जम की बहिन है और यही जमुना नदी की अधिष्ठात्री देवी समभी जाती है । इन का माहात्म्य यों है कि—

कवित्त—रवि की कुमारी जाके पीतम मुरारी सो तो इन्द्रादि मारिन में सन्दारि मारि है ।
जोई उरधारी ले हैं ताहि निस्तारि दें हैं प्रभु को सँभार्‌यो तैसे होहु पार पारि है ॥
कहै रघुनाथ नाहि नाव बिनुनाव नाके जाको वारि पावन को वारि वारि डारि हैं ।
जमना विसारि हैं सो जम ना बिसारि हैं जो जमना सँभारि हैं सो जम ना सँभारि हैं ॥

† जीवनमुक्ति हेतु जनु कासी—देखो किष्किन्धाकांड की श्री विनायकी टीका को टि० पृ० ४

‡ मेकलशैलसुता—जैसा कि अमर कोश में लिखा है—'रेवातु नर्मदा सोमोद्भवा मेकल कन्यका' अर्थात् रेवा, नर्मदा, सोमोद्भवा और मेकल कन्यका जिस्या

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के चरित्र सुन्दर चिंतामणि रत्न के समान हैं जो सज्जनों की बुद्धिरूपी स्त्री का सुन्दर आभूषण हैं। (अर्थात् जिस प्रकार चिंतामणि में (१) अंधकार नाशन (२) दारिद्र दूरी करन, (३) विघ्न विनाशन और (४) रोगदमन ये चार गुण हैं, इसी प्रकार रामकथारूपी मणि में भी हैं जैसा कि उत्तर कांड में लिखा है ' राम भक्ति चिंतामणि सुन्दर इत्यादि। चिंतामणि के गुण— (१) चौ०—परम प्रकाश रूप दिन राती, (२) मोह दरिद्र निकट नहिं आवहिं, (३) खल कामादि निकट नहिं जाहीं और (४) व्यापहिं मानस रोग न भारी) श्री रामचन्द्र जी के गुणानुवाद संसार में मंगल के दाता हैं और अर्थ धर्म काम मोक्ष के देने वाले हैं॥

चौ०—सद्गुरु ज्ञान विराग योग के। * विबुधवैद्य भव भीम रोग के॥
जननि जनक सिय राम प्रेम के। बीज सकल व्रत धर्म नेम के॥

शब्दार्थ—विबुध वैद्य (विबुध=देवता + वैद्य=)=देवताओं के वैद्य अर्थात् अश्विनी कुमार।

अर्थ—(ये राम गुण ग्राम) ज्ञान वैराग्य और योग के सच्चे गुरु हैं (अर्थात् ज्ञान वैराग्य और योग की शिक्षा राम चरित्रों से मिलती है)। संसार के बड़े भारी रोग (अर्थात् जन्म मरण) को ये अश्विनी कुमार के तुल्य हैं। ये सीता और राम के प्रेम के मानो माता पिता हैं (अर्थात् सीता राम जी के चरणों में प्रीति के उपजाने वाले हैं) और सम्पूर्ण व्रत धर्म उपासना के आदि कारण हैं॥

चौ०—शमन पाप संताप शोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के॥
सचिव सुभट भूपति विचार के। कुंभज लोभ उदधि अपार के॥

अर्थ—पाप, ताप और शोक के नाश कर्त्ता, तथा इस लोक और परलोक में भी प्रेम सहित पालने वाले हैं (भाव यह है कि ये संसार के पाप, त्रास और दुःखों को दूर कर इस लोक में सुख देते हैं और मोक्ष के भी दाता हैं)। उत्तम विचाररूपी

---

* विबुधवैद्य भव भीम रोग के - जैसा कि नारायण रहस्य में कहा है—

श्लोक—यथौषधं श्रेष्ठतमं महामुने, अज्ञानतोऽप्यात्मगुणं करोति हि।
प्रयोगतो राघव नाम मात्रात्, परंपदं याति जनःखलो ननु॥

अर्थात् हे महामुनि ! जिस प्रकार उत्तम औषधि का सेवन यदि बिना जाने ही किया जाये तो वह अपना असर करती ही है इसी प्रकार श्री रामचन्द्र जी का नाम लेने वाला प्राणी अवश्य मोक्ष को पाता है॥

. राजा के मंत्री और योद्धा भी हैं (अर्थात् सद विचारों को यु[द्ध]
में मंत्री की नाईं सहायता करते हैं) और कुविचारों को दबाने के लिये बड़े यो[द्धा]
बन कर सहायता करते हैं) सारांश यह है कि सुविचारों को बढ़ाते और कुवि[चारों]
को दबाते हैं, ऐसे ही अपार समुद्र रूपी लोभ को मिटाने के हेतु अगस्त्य [हैं]
(अर्थात् जिस प्रकार अगस्त्य ऋषि ने तीन ही आचमन से समुद्र को पी लिया
इसी प्रकार रामगुण लोभ को नाश कर संतोष प्रदान करते हैं। अगस्त्य ऋषि की
कथा आरण्य कांड की श्री विनायकी टीका में है)

चौ०—काम कोह कलिमल करिगण के। केहरि शावक जन मन बन के॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के॥

अर्थ—भक्तों के मनरूपी बन में काम क्रोध आदि कलियुग के पापरूपी हाथि[यों]
के समूह को नष्ट करने के हेतु सिंह के बच्चे के समान हैं। महादेव जी को प[रम]
ही प्यारे पाहुने के समान आदरणीय हैं और दरिद्ररूपी बन की अग्नि [को]
शांत करने के निमित्त इच्छानुसार देने वाले मेघ के समान हैं। (सारांश य[ह]
कि भक्तों के पापनाशक, शिव जी के परम प्रिय और सेवकों के दारिद्र नाश[क]
तथा कामना पूर्ण करने हारे हैं)॥

चौ०—मंत्रमहामणि विषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥
हरन मोहतम दिनकरकर से। सेवक शालि पाल जलधर से॥

अर्थ—विषयरूपी सर्प को महामंत्र तथा महामणि के सदृश हैं (अर्थात् जि[स]
प्रकार सर्प का विष मंत्र पढ़ने से अथवा विष उतारने वाली मणि के ल[गाने]
से दूर हो जाता है इसी प्रकार रामगुण से विषय वासना दूर भागती है) ये क[र्म]
के लिये हुए बुरे अंकों को मिटाते हैं (भाव यह है कि भाग्य के लिखे हुए

बुरे फलों के स्थान में उत्तम फलों की प्राप्ति करा सक्ते हैं)। मोहरूपी अंधकार को नाश करने के हेतु सूर्य की किरणों के समान हैं और भक्तिरूपी धान को पुष्ट करने के हेतु मेघ के समान हैं॥

चौ०—अभिमत दानि देवतरुवर से। सेवत सुलभ सुखद हरिहर से॥
सुकवि शरद नभ मन उडुगनसे। रामभक्त जन जीवनधन से॥

अर्थ—(ये) मनवांछित फल देने के निमित्त कल्पवृक्ष के समान हैं और सेवा करने पर शिव तथा विष्णु जी के समान सहज ही में सुख देने वाले हैं। श्रेष्ठ कवियों के शरद ऋतु के आकाशरूपी हृदय में तारागणों के समान हैं और रामभक्तों को जीवनधन के तुल्य हैं॥

चौ०—सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जगहित निरुपधि साधुलोक से॥
सेवकमनमानसमराल से। * पावन गंगतरंगमाल से॥

अर्थ—सम्पूर्ण सत्कर्मों के फलों के उपभोग के समान हैं और संसार का हित करने के हेतु छल रहित साधुओं के सदृश हैं। सेवकों के मनरूपी मानसरोवर में हंस के तुल्य और पवित्र करने में गंगा जी की लहरों की नाईं हैं॥

दो०— † कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दंभ पाखंड।
दहन रामगुणग्राम इमि, इंधन अनल प्रचंड॥

अर्थ—बुरे मार्ग से चलना, बुरे विचार रखना, बुरी चाल चलन, छल आडम्बर और पाखंड। इन कलियुग के इंधनरूपी सामग्री को श्रीरामचन्द्र जी के गुणानुवाद भारी अग्नि के समान भस्म करने वाले हैं॥

---

* पावन गंग तरंग माल से—
श्लोक—ये पठन्तीदमाख्यानं, भक्त्या शृण्वन्ति वा नराः।
गंगास्नानफलं पुण्यं, तेषां सञ्जायते नघम्॥
अर्थात् जो मनुष्य रामकथा को भक्ति पूर्वक पढ़ते अथवा सुनते हैं उन्हें गंगा स्नान का सर्वांग फल प्राप्त होता है॥

† कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दंभ पाखंड। दहन राम इत्यादि—

क० छं०—कूरे कलकी कलि कपटी कुचाली मूढ़, मातु भ्रातु [illegible] पटकि पछारौंगो।
तुलसी गोसाईं [illegible] बिना [illegible], दोहरा [illegible] [illegible]॥
[illegible] सोरठा के [illegible], [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible]॥

दो०—* रामचरित राकेशकर , सरिस सुखद सब काहु ।
सज्जन कुमुद चकोर चित , हित विशेष बड़ लाहु ॥३२॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्र जी के चरित्र पूर्णिमा के चन्द्र की किरणों के समान सब ही को सुख देने वाले हैं । परन्तु सज्जनरूपी कमोदिनी को तथा उन के चित्तरूपी चकोरों को विशेष हितकारी और बड़े लाभदायक हैं ॥

चौ०—कीन्ह प्रश्न जेहि भांति भवानी । जेहि विधि शंकर कहा बखानी ॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई । कथा प्रबंध विचित्र बनाई ॥

अर्थ—जिस प्रकार पार्वती जी ने प्रश्न किये और जिस प्रकार शिवजी ने के उत्तर विस्तार सहित कहे । मैं उसके कारण को कथा का प्रबंध अनूठा के कहूंगा ॥

चौ०—जेइ यह कथा सुनी नहिं होई । जनि आचरज करइ सुनि सोई ।
कथा अलौकिक सुनहिं जे ज्ञानी । नहिं आचरज करहिं असजानी ॥

अर्थ—जिसने यह कथा नहीं सुनी है वह सुनकर आश्चर्य न करै । जो ज्ञानवान पुरुष इस अद्भुत कथा को सुनते हैं वे ऐसा विचार कर अचरज नहीं करते क्योंकि-

चौ०—रामकथा कै मिति जग नाहीं । अस प्रतीति तिन के मन माहीं ॥
नाना भांति रामअवतारा । रामायण शतकोटि अपारा

अर्थ—उनके मन में यह निश्चय हो गया है कि संसार में श्री रामचन्द्र की कथा की हद नहीं है । श्री रामचन्द्र जी के अवतार अनेक प्रकार से हुए हैं और रामायण भी तो सौ करोड़ और अनन्त हैं (जैसा आगे कहा है)—

---

* रामचरित राकेशकर , सरिस सुखद सब काहु—
राग विहाग ताल त्योरा— छल तजि भजो दशरथ नन्द ।
परम परमावान जन हित जगन आनँद कन्द ॥
विषय विष तजि भरे भावन जानि कै मुख चन्द ।
छवि सुधा लहि हग चकोरन्ह देहु अति आनन्द ॥
पावरत भवतापता ये मन्द ते जे मन्द ।
कामद नाम नाम जपि के हरत भव के फन्द ॥
पतित पावन बानि सुनि कै दूरि कै दुख द्वन्द ।
शरण तकि 'बलानन्द' आयो भक्ति चहत अमन्द ॥

चौ०—*कल्प भेद हरिचरित सुहाये। भांति अनेक मुनीशन्ह गाये॥
करिय न संशय असउर आनी। सुनिय कथा सादर रति मानी॥

अर्थ—मुनि लोगों ने प्रत्येक कल्प में श्री रामचन्द्र जी के सुहावने चरित्रों को अनेक प्रकार से वर्णन किया है। हृदय में ऐसा विचार कर संदेह न करना चाहिये और आदरपूर्वक प्रेम से कथा सुनना चाहिये॥

दो०—† राम अनंत अनंत गुण, अमित कथा विस्तार।
सुनि आचरज न मानिहहिं, जिनके विमल विचार॥३३॥

अर्थ—राम जी पारावार रहित हैं, उनके गुण गिन्ती में नहीं आते। अतएव कथा का वर्णन भी अगणित प्रकार से है। यह सुन कर वे लोग आश्चर्य न करैंगे जिनके विचार शुद्ध हैं॥

चौ०—इहि विधि सब संशय कर दूरी। शिर धरि गुरुपदपंकज धूरी॥
पुनि सबही विनवउँ कर जोरी। करत कथा जेहि लाग न खोरी॥

अर्थ—इस प्रकार सब संदेहों को दूर कर गुरु जी के कमलस्वरूपी चरणों के पराग को शिर पर धारण करता हूं। फिर भी सब से हाथ जोड़ कर विनती करता हूं जिससे कथा के कहने में दोष न लगे॥

(११ कथा का आरम्भ)

चौ०—सादर शिवहिं नाइ अब माथा। बरनउँ विशद रामगुण गाथा॥
संवत सोरह सौ इकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा॥

अर्थ—अब श्री शंकर जी को आदर सहित शिर नवा कर श्री रामचन्द्र जी के निर्मल गुणानुवाद वर्णन करता हूं। (विक्रम) संवत् १६३१ में श्री रामचन्द्र जी के चरणों पर मस्तक नवाय मैं कथा का आरंभ करता हूं॥

---

* कल्प—चारों युगों की एक चौकड़ी और १००० चौकड़ी का एक कल्प होता है, इसी को ब्रह्मा का एक दिन कहा जाता है जैसा कहा है—
'चतुर्युगसहस्राणि दिनमेकं पितामहः'

† राम अनन्त अनन्त गुण, अमित कथा विस्तार। इत्यादि—
सवैया—जो जन आत्मविज्ञान को [illegible], [illegible] अनन्त [illegible]।
ज्यों पदमाकर [illegible] है बहु है वह पार [illegible]।
राम अनन्त अनन्त कहैं ते, कहै न रहै कहि कहि [illegible]।
राम की [illegible] कथा [illegible], [illegible] नाम [illegible]॥

चौ०— * नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥
†जेहि दिन रामजन्म श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं॥

अर्थ—नौमी तिथि मंगलवार चैत्र के महीने में अयोध्या नगर के मध्य इस राम चरित्र का आरंभ किया। इस दिन वेद के अनुसार श्री रामचन्द्र जी का जन्म वर्णन किया गया है (उस दिन) सम्पूर्ण तीर्थ अवधपुरी में आ जाते हैं॥

चौ०—असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक सेवा॥
जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम कल कीरति गाना॥

---

* नौमी भौमवार मधुमासा—इसमें यह प्रश्न हो सकता है कि नौमी तो रिक्ता तिथि है इसमें ग्रन्थ का आरंभ क्यों किया गया? इसका उत्तर यह है कि जिस तिथि को ईश्वर ने जन्म धारण किया। वह तो सर्व श्रेष्ठ और सकल मंगलदायक हो चुकी। उसमें दोष कहां रहे? और कहा भी है। यथा—'सुयोगे कुयोगोऽपि चेत्स्यात्तदानीम्, कुयोगं निहन्त्यैव सिद्धिं तनोति'।

अर्थात् सुयोग में जो कदाचित् कुयोग भी आपड़े तो वह सुयोग कुयोग का नाश कर के सिद्धि देता है। इसी प्रकार यद्यपि मंगलवार को कोई २ दूषित समझते हैं तो भी वह परमभक्त पवनपूत रामदूत का जन्म दिन है। इसके सिवाय इस वार को दिन के समय ग्रन्थ का आरम्भ किया गया, सो शुभ ही है, जैसा कहा है—

श्लोक—न वार दोषाः प्रभवन्ति रात्रौ, देवेज्यदैत्येज्य दिवाकराणाम्।
दिवा शशांकार्कज भूसुतानाम्, सर्वत्र निंद्यो बुधवार दोषः॥

अर्थात् गुरुवार, शुक्रवार और रविवार इनका रात्रि में दोष नहीं तथा दिन में सोमवार, शनिवार और मंगलवार का दोष नहीं होता, परन्तु बुधवार दिन तथा रात्रि में दूषित ही है।

तुलसीदास जी भी तो स्वतः लिखते हैं कि अवधपुरी में रामनौमी को इस ग्रन्थ का आरम्भ हुआ जिस समय वहां सब तीर्थ एकत्र होते हैं। निदान 'कर कंगन को आरसी ही क्या' सभी जानते हैं कि उक्त तिथि और वार का लिखा हुआ यह ग्रन्थ ऐसा जगत प्रसिद्ध हो रहा है कि 'न भूतो न भविष्यति'

मधुमास—जैसा कि अमर कोश में लिखा है 'स्याच्चैत्रे चैत्रिको मधुः' अर्थात् चैत्र महीने को चैत्रिक और मधु भी कहते हैं॥

† जेहि दिन रामजन्म श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं—

श्लोक—तत्रैव गंगा यमुना च तत्र गोदावरी सिंधु सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसंति तत्र, यत्राच्युतोदारकथाप्रसंगः॥

अर्थ—गंग यमुन गोदावरी, सिंधु सरस्वति संग।
सकल तीर्थ तहँ बसत हैं, जहँ हरिकथा प्रसंग॥

अर्थ—प्रह्लाद विभीषण आदि असुर, वासुकी आदि नाग, काकभुशुंडि गरुड़ आदि पक्षी, भक्तजन नारदादि मुनि, शिव ब्रह्मा आदि देवता, ये सब आकर श्री रामचन्द्र जी की सेवा करते हैं। ये सब ज्ञानी रामजन्म का बड़ा भारी उत्सव मनाते हैं और श्री रामचन्द्र जी का सुन्दर यश गाते हैं ॥

दो०– मज्जहिं सज्जन वृंद बहु , पावन सरजू नीर ।
जपहिं राम धरि ध्यान उर , सुन्दर श्याम शरीर ॥३४॥

अर्थ—सरयू नदी के पवित्र जल में सत्पुरुषों के झुंड के झुंड स्नान करते हैं और छबीले श्यामले शरीर वाले श्री राम जी का हृदय में ध्यान कर रामनाम का जाप करते हैं ॥

चौ०– दरस परस मज्जन अरु पाना। हरे पाप कह वेद पुराना ॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकै शारदा विमलमति ॥

अर्थ—वेद और पुराणों में कहा है कि सरयू नदी के दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपान पाप के हरने वाले हैं। इस पवित्र नदी के बड़े भारी माहात्म्य को शुद्ध चित्त वाली सरस्वती जी भी कह नहीं सकीं ॥

चौ०–रामधामदा पुरी सुहावनि । लोक समस्त विदित जग पावनि ॥
चारि खानि जगजीव अपारा। अवध तजे तनु नहिं संसारा ॥

शब्दार्थ—रामधामदा (रामधाम=वैकुंठ+दा=देने वाली)=वैकुंठ देने वाली। चारि खानि=चार [illegible] जीव यथा (१) पिंडज जैसे मनुष्य पशु आदि (२) अंडज [illegible] [illegible]ड़ खटमल आदि और (४) उद्भिज जैसे [illegible] पृ० ४६ की टिप्पणी)

[illegible] वाली है यह बात सब संसार में [illegible] है। संसार में अनंत जीव जिन के [illegible] यदि अयोध्या में प्राण त्याग करे तो वह

[illegible] द मंगल खानी॥
अरम्भा [illegible] दिं काम मद दंभा॥

([illegible] २)

(चौबोला)

अर्थ—यह जान कर कि अयोध्यापुरी सब प्रकार से रमणीय, सब सिद्धियों देनेवाली और सम्पूर्ण मंगलों से परिपूर्ण है। (यहाँ पर) पवित्र कथा का आरम्भ किया है जिसे सुनकर काम, मद और पाखंड नाश हो जाते हैं॥

(१२ रामचरितमानस फल वर्णन)

चौ०—रामचरितमानस इहि नामा। सुनत श्रवण पाइय विश्रामा॥
†मन कर विषय अनल बन जरई। होइ सुखी जो इहि सर परई॥

अर्थ—इस कथा का नाम 'रामचरितमानस' है, जिस को कान लगाकर से शान्ति मिलती है। मनरूपी हाथी जो विषयरूपी अग्नि से संसाररूपी वन में रहा है यदि इस तालाब में धसे तो वह आनंद को प्राप्त होवे (अर्थात् संसा दुःखों से पीड़ित मनुष्य यदि रामकथा श्रवण करे तो वह आनंद को प्राप्त होवे)

चौबोला-सरयू तीर सोहावन कोशल नगर बसत अति पावन।
निज छवि अमरावती लजावन सुरन मोद उपजावन॥
द्वादश योजन लंब मान तेहि योजन त्रय विस्तारा।
कनक कोट अति मोट छोट नहिं विमल विशाल बजारा॥
गली चारु चौड़ी अमली सब मन्दिर सुन्दर तुंगा।
अमित पताके लसत पताके मानहुँ रच्यो अनंगा॥
परम मनोहर राजगली मृदु फूलन ते छवि छाई।
लगी कनक नलिका तिनहीं के सलिल सुगंध सिंचाई॥
बसत चक्रवर्ती दशरथ जहँ जिमि दिवि देव अधीशा।
पालित प्रजा वृद्धि सुख पावत लहि प्रताप जगदीशा॥
बाट बाट बहु द्वार विराजत चामीकर महराबें।
हाटक ठाट कपाट टटे वर घाटन्ह घाट सुहावें॥
सरयूतीर हेम सोपानित सब थल करहिं प्रकाशा।
गुर्ज मेरु मन्दिर सम मंडित जेहि लखि दुवन निराशा॥
भिन्न भिन्न सब भौन भौन की गली न कछु संकेतू।
अति विचित्र वर कनक रजत के निरमित सकल निकेतू॥
दो०-ऊँची अटा घटान इव, छहर छटा छिनि छोर।
मनहुँ स्वर्ग सोपान की, अवली लसै करोर॥

† मन कर विषय अनल बन जरई– जैसा कि भामिनी विलास में लिखा है—
श्लोक—विशालविषयावलीवलयलग्नदावानल,—
प्रसृत्वरशिखावलीकवलितं मदीयं मनः।
अमन्दमिलदिन्दिरे निखिलमाधुरीमन्दिरे—
मुकुन्दमुखचन्दिरे चिरमिदं चकोरायताम्॥

अर्थात् विषय की बड़ी पंक्ति जो चक्राकार दावानल की नाईं प्रज्वलित हो ज्वालायें फैला रही है उस से मेरा मन व्याकुल हो रहा है। ऐसे मन को चाहिये कि वह विशेष प्रकाशयुक्त सम्पूर्ण मधुरता के भंडार मुकुन्द भगवान के मुखचन्द्र में चकोर की नाईं लग जावे॥

अर्थ—शिव जी की कृपा से हृदय में अच्छी बुद्धि का आविर्भाव हुआ तो रामचरितमानस का कवि मैं तुलसीदास हुआ । अपनी बुद्धि के अनुसार तो रुचि कर बनाता हूं, हे सत्पुरुषो ! आप शुद्धचित्त से उसे सुधार लीजिये । (मत यह कि जहां मुझ से न बने वहां आप लोग कृपापूर्वक उसे सुधार लें) ॥

चौ०—*सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुराण उदधि घन साधू॥
वर्षहिं राम सुयश वर वारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥

अर्थ—(अब रामचरितमानस की रचना कहते हैं) उत्तम बुद्धि यही भूमि है और हृदय गहरापन है, वेद और पुराण समुद्र हैं तथा सन्तजन मेघ हैं। वे श्री रामचन्द्र जी के सच्चरित्ररूपी उत्तम जल को बरसते हैं जो (जल) स्वादिष्ठ, सुहावना और मंगल देने हारा है (अर्थात् जिस प्रकार गहरे समुद्र से जल भाफ़द्वारा शुद्ध हो कर मेघ द्वारा बरसता है, उसी प्रकार वेद और पुराणों से सन्त लोग रामचरित्र चुन कर सुनाते हैं जो रामयश मेघ जल की नाईं सुनने में मधुर, समझने में मनोहर और लोक परलोक में मंगल करने वाला हो जाता है) ॥

चौ०—लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करै मल हानी॥
प्रेमभक्ति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता शीतलताई॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी की सगुणलीला (अर्थात् अवतार चरित्र) जो वर्णन किये जाते हैं, वही स्वच्छता है जो मैल को दूर करती है। प्रेम सहित भक्ति जिसका वर्णन नहीं हो सक्ता, वही मधुरता लिये हुए जल का ठंडापन है ॥ (सूचना)

कि अन्तिम दो स्थानों में कवि शब्द का यथार्थ अभिप्राय ग्रन्थ बनाने वाले का है, कवि के सम्पूर्ण गुणों से परिपूर्ण होने का दावा करने का नहीं है। इसके सिवाय दोनों अन्तिम स्थानों में महादेव पार्वती जी के प्रसाद से अपने को कवि अर्थात् रचयिता कहा है। जब तक उनकी कृपा का विश्वास उनके चित्त में न आया था, तब तक अपने को कवि कहने के योग्य न समझा। जैसे आरण्यकांड में सुतीक्ष्ण मुनि ने श्री रामचन्द्र जी से कहा था कि 'मैं पर कबहुँ न याँचा, परन्तु रामचन्द्र जी के प्रसाद से उन्हें ज्ञान हुआ तब कहने लगे कि 'प्रभु जो दीन्ह सो वर मैं पाया । अब सो देहु मोहि जो भाया' (देखो आरण्यकांड रामायण की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० ४३ आवृत्ति दूसरी)

* सुमति भूमिथल हृदय अगाधू । वेद पुराण उदधि घन साधू— सुमति अर्थात् सुबुद्धि के आठ गुण हैं. (देखो न्यायशास्त्र)

श्लोक—शुश्रूषा श्रवणं चैव, ग्रहणं धारणं तथा ।
ऊहापोहार्थविज्ञानं, तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः ॥

अर्थात् (१) सेवा (२) सुनना (३) सीखना (४) व्यवहार में लाना (५) तर्क (६) वितर्क (७) विज्ञान और (८) तत्त्वज्ञान, बुद्धि के ये आठ गुण हैं ॥

सूचना—प्रेम में मधुरता व शीतलता उस जल के साथ की मधुरता और शीतलता के साथ मिलाई गई है जो मेघ से गिरे हुए जल की है और यह मधुरता तथा शीतलता केवल स्वाद से जानी जाती है, कहने में नहीं आती । इसी प्रकार प्रेम और भक्ति कहने में नहीं आती ॥

चौ०—सो जल सुकृत शालिहित होई । रामभक्तजन जीवन सोई ॥
मेधा महिगत सो जल पावन । सकिलि श्रवण मग चलेउ सुहावन ॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना । सुखद शीत रुचि चारु चिराना ॥

अर्थ—वही जल सत्कर्मरूपी धान का बढ़ाने वाला होता है और वही श्री रामचन्द्र जी के भक्तों को जिलाने वाला हो जाता है (अर्थात् जिस प्रकार वर्षा का जल धान को बढ़ाता है और संसार के लिये जीवन देने वाला हो जाता है उसी प्रकार भक्ति से सुकृत बढ़ती है और भक्तों का जीवन होता है)। वही जल बुद्धिरूपी भूमि में पैठकर पवित्र हो जाता है और फिर वही मनोहर जल एकत्र हो कानरूपी मार्ग से चला और उत्तम मनरूपी योग्य स्थान को पाकर स्थिर हुआ और रुचिरूपी शरद को पाकर तथा पुराना होकर सुखदाई हुआ ॥

(भाव यह है कि जिस प्रकार पानी किसी जलाशय में भरकर स्थिर हो जाता और फिर बहुत समय का हो जाने के कारण सुखदाई, शीतल, रुचि कर और स्वच्छ हो जाता है इसी प्रकार श्री रामभक्ति भी उत्तम हृदयों में भर कर स्थिरतापूर्वक विचार करने से वासना रहित होकर मनन और निदिध्यास से सुखदाई, शान्ति देनेवाली, रुचिकर और निष्कपट हो जाती है) ॥

दो०—† सुठि सुन्दर संवाद वर, विरचे बुद्धि विचारि ।
तेइ इहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि ॥३६॥

अर्थ—बहुत ही सुन्दर श्रेष्ठ सम्वाद जो बुद्धि से विचार कर बनाये गये हैं वे ही इस पवित्र सुन्दर तालाब के सुहावने चार घाट हैं ॥

† सुठि सुन्दर संवाद वर......घाट मनोहर चारि—चारों सम्वाद जिन्हें गोसाईं जी मानसरोवर के चारों घाट कहते हैं। सो ये हैं—

(१) शिवजी और पार्वती जी का सम्वाद, जैसे

'शम्भु कीन्ह यह चरित सुहावा । बहुरि कृपा कर उमहिं सुनावा'

यह राजघाट के तुल्य है जहाँ पर संत और श्रेष्ठजन स्नान किया करते हैं, क्योंकि शिव पार्वती सम्वाद में यद्यपि सब रामचरित का वर्णन है तथापि इस में ज्ञान की चर्चा विशेष है, जैसे—

जेहि जाने जग जाइ हेराई । जागे यथा स्वप्न भ्रम जाई ॥
जासु सत्यता ते जड़ माया । भास सत्य इव मोह सहाया ॥ (दृष्टान्त)

चौ०—सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरखत मन [illegible]
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ वर वारि अगा[illegible]

अर्थ—सात काण्ड ही मानो उत्तम सात सीढ़ियां हैं जिन्हें ज्ञानरूपी नें[illegible]
देख कर मन प्रसन्न हो जाता है। श्रीरामचन्द्र जी के गुणों से परे और [illegible]
रहित जो महिमा है वही उस स्वच्छ पानी की गहराई वर्णन करता हूं ([illegible]
निर्गुण ब्रह्म की महिमा तालाब की अथाह गहराई है)॥

चौ०—रामसीय यश सलिल सुधा सम। उपमा बीचि विलास मन[illegible]
पुरइनि सघन चारु चौपाई। युक्ति मंजु मणि सीप सुह[illegible]

अर्थ—उस में सीता और श्री रामचन्द्र जी की लीला ही अमृत के समान [illegible]
है जिस में उपमा अलंकार मनोहर तरंगों का कल्लोल है। (उपमा अलंकार का [illegible]
उदाहरण सहित अयोध्या काण्ड रामायण की श्री वि० टी० की पुरौनी में है।)
सुन्दर चौपाइयां घनी पुरइन हैं और कविता की युक्तियां उज्ज्वल मोती की [illegible]

---

(२) याज्ञवल्क्य और भरद्वाज का संवाद। जैसे—
'याज्ञवल्क्य जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिवरहि सुनाई'
यह पंचायती घाट है जिसमें सर्वसाधारण लोग स्नान कर सकें। अर्थात् इस में कर्मकांड को श्रेष्ठता दी है। जैसे—सब मुनियों का मकर संक्र[illegible] के समय स्नानों के लिये एकत्र होना आदि।

(३) काकभुशुंडि और गरुड़ जी का संवाद। जैसे—
'कहा भुशुंडि बखानि, सुनो विहँगनायक गरुड़'
यह पनघट है जहां पर भक्ति की विवेचना की गई है और [illegible] भक्ति का सहल उपाय है, जो स्त्री, बालक आदि को भी सुलभ है।

(४) गोसाईं जी और सन्तजनों का संवाद। जैसे—'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा'॥
'सुमिरि भवानी शंकरहि, कह कवि कथा सुहाइ'।
यह भी घाट है जहां पर दोनों की भाषा गूढ़, [illegible] की रचना पर [illegible]

* [illegible]

है (अर्थात् जिस प्रकार पुरइन से पानी ढँका रहता है इसी प्रकार श्री रामायण कथा का प्रायः सम्पूर्ण भाग चौपाइयों ही से कथन किया गया है और युक्ति कथा भाग का वर्णन ही मोतियों से परिपूर्ण सीपियों की नाईं इसहेतु किया है कि वह बहुत ही मनोहर और चमत्कारी हैं) यथा (१) बहुरि गौरि कर ध्यान । भूप किशोर देख किन लेहू ॥ (२) पुनि आउब इहि बिरियां काली) ॥

*छन्द सोरठा सुन्दर दोहा । सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा ॥
अर्थ अनूप सुभाव सुभासा । सोइ पराग मकरन्द सुबासा ॥

अर्थ—छन्द, सोरठा और सुन्दर दोहा ये ही मानो रंग बिरंगे कमलों के समूह शोभायमान हैं। कविता का उपमा रहित अर्थ, सुन्दर भाव और ललित भाषा ही क्रमानुसार (कमल के फूलों का) पराग, रस और सुगन्धि है।

सुकृत पुंज मंजुल अलि माला । ज्ञान विराग विचार मराला ॥
[१]ध्वनि अवरेब कवित गुण जाती । मीन मनोहर ते बहु भाँती ॥

---

* छन्द सोरठा सुन्दर दोहा । सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा—सतोगुण का वर्णन जिन छन्दों, सोरठाओं व दोहों में है वे सफ़ेद रंग के कमल हैं और जिन में रजोगुण का वर्णन है, उन्हें लाल रंग के कमल समझो तथा तमोगुण वर्णन वाले नील कमल की नाईं जानो । इन की मनोहरता को कवि अम्बादत्त जी मनहर छन्द में यों वर्णन करते हैं

कवित्त—वेद और पुराणन के सार सों गढ़े से सुठि, श्रुति रीति नीलन्द के धारे जनु सोहरा ।
पढ़त सुनत जिन्हें पुलकि परसीजत हैं कवि अम्बादत्त बड़े बूढ़े अरु छोहरा ॥
अति ही कठिन अरु अति ही सहज कहैं, बरन बरन बीच आनन्द के पोहरा ।
रसन सों साने पिनै प्रेम सरसाने भक्ति, धारा बरसाने लसैं तुलसी के दोहरा ॥

१ ध्वनि अवरेब कवित गुण जाती । मीन मनोहर ते बहु भाँती—

(१) ध्वनि—जहाँ पर वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ से कुछ अधिक चमत्कार हो उसे ध्वनि कहते हैं । जैसे 'पुनि आउब इहि बिरियां काली'
(अर्थ की विशेषता इसी की टीका में दी है)

(२) अवरेब—जहाँ दूषण भी किसी कारण से भूषण समझा जावे । जैसे—'रामकथा अवरेब सुधारी । विबुध धारि भइ गुणद गुदारी (देखो अयोध्याकांड की श्री विनायकी टीका पृ. ४५५)

(३) गुण—अनुप्रास वाले काव्य की उत्तम रचना को गुण कहते हैं, वसके मुख्य तीन प्रकार हैं।

(१) 'माधुर्य' जैसे—रामचन्द्र मुख चन्द्र छवि, लोचन चारु चकोर ।
करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोद न थोर ॥

(२) 'ओज' जैसे—'भूप धर्मध्वज धंधक धोरी' ॥

अर्थ—सत्कर्मियों के समूह ही उत्तम भौंरों की पंक्तियां है, ज्ञान और वै
का विचार ये ही हंस हैं (अर्थात् सत्कर्मों के समूह भौंरों की नाईं इसकी
शोभा बढ़ा कर उसका मधुर रस पान करते हैं और ज्ञान वैराग्य का निर्णय हं
की नाईं किया जाता है । तात्पर्य यह है कि दूध का दूध और पानी का प
अलगा दिया जाता है)। ध्वनि, अवरेव, गुण और जाति ये कविता के चार
मानो सुन्दर अनेक प्रकार की मछलियां हैं ॥

चौ०— ⊙ अर्थ धर्म कामादिक चारी । कहब ज्ञान विज्ञान विचारी
नव रस जप तप योग विरागा । ते सब जलचर चारु तड़ागा ।

अर्थ—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, ज्ञान, विज्ञान का विचार, नौरस, ज
योग और वैराग्य इन सब सुन्दर तालाब के रहने वाले जलचारी जीवों का व
करूंगा ॥

सूचना—ऊपर ध्वनि, अवरेव, कवित्त, गुण, जाति इन सब को सुन्दर
मछलियां कह आये हैं और अब बत्तीस प्रकार के जलचर अलग बताते
मछलियों को तो केवल पानी का विशेष आधार है, उसके बिना इनका
हो ही नहीं सकता । इसी प्रकार ध्वनि, अवरेव आदि पूर्ण रूप से कविता के
ही हैं परन्तु शेष उन्नीस प्रकार के जलचर मगर, कछुए, घड़ियाल आदि के
हैं जो कभी जल में और कभी थल पर भी रह सकते हैं ॥

चौ०—सुकृती साधु नाम गुण गाना । ते विचित्र जल विहँग समाना ॥
सन्त सभा चहुँ दिशि अँवराई । श्रद्धा ऋतु बसन्त सम गाई ॥

---

(१) 'ध्वनि' [illegible] —[illegible] महामणि और [illegible], [illegible]
[illegible] पुस्तकों में मिलेगा ।

(२) [illegible] की भांति कहते हैं । [illegible]
[illegible]

अर्थ—सत्कर्मी साधुओं के द्वारा (अनेक प्रकार से) जो रामनाम के गुण गान हैं वे ही रंग विरंग के जलपक्षी हैं (जैसे वाल्मीकि जी और तुलसी दास जी आदि साधुओं के गुणों का वर्णन उनकी रामायणों में है)।

दूसरा अर्थ—धर्मात्मा साधुओं के नाम और गुणों का वर्णन यही नाना भांति के जल कुक्कुट हैं। जैसे शरभंग, विश्वामित्र आदि।

तीसरा अर्थ—(१) सत्कर्मियों के गुणों का वर्णन (२) साधुओं के गुणों का वर्णन और (३) नाम के गुणों का वर्णन ये तीनों भाँति भाँति के जलपक्षी हैं जैसे पनडुब्बी, बतख आदि। उदाहरण तीनों के क्रमानुसार (१) भरत के गुणों का वर्णन अयोध्याकांड में (२) साधुओं के गुणों का वर्णन विशेष कर बाल, आरण्य और उत्तर कांड में और (३) नामके गुणोंका वर्णन तो प्रायः प्रत्येक कांड में है ही, परन्तु विस्तार पूर्वक विशेष कर इसी कांड में है ॥

सज्जनों के समाज चारों ओर आम के बगीचे हैं, कथा में विश्वास रखना यह बसन्त ऋतु वर्णन की गई है।

चौ०—भक्ति निरूपण विविधि विधाना। क्षमा दया द्रुम लता विताना॥
*संयम नियम फूल फल ज्ञाना। हरिपद रति रस वेद बखाना॥

अर्थ—नाना प्रकार की भक्ति (अर्थात् नवधा, प्रेमा, परा आदि) का वर्णन करना ये ही अनेक वृक्ष हैं, क्षमा बेलि हैं और दया मानो चँदेवारूप हो रही है (अर्थात् जिस प्रकार वृक्षों पर लता फैल कर चँदेवारूप हो रहती है उसी प्रकार भक्ति के आधार से क्षमा दया से परिपूर्ण हो रहती है)। संयम, नियम ये सब फूल हैं और इन से जो ज्ञान की प्राप्ति है यही फल है तथा श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में प्रेम होना इसी को वेदों में रस माना है ॥

चौ०—औरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ शुक पिक बहु बरन विहंगा॥

अर्थ—समय समय पर जो अनेक दूसरी कथायें वर्णन की गई हैं वे ही तोता कोयल आदि अनेक रंग के पक्षी हैं॥

---

* संयम नियम—योग के आठ अंग ये हैं-(१) संयम अर्थात् यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा (७) ध्यान और (८) समाधि।

यम—यथा—'शरीर [illegible]' [illegible]

अर्थात् शरीर [illegible]
है [illegible]

दो०—७ पुलक वाटिका बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारु।
माली सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारु ॥२७॥

अर्थ— (कथा के कहने सुनने से) जो शरीर के रोम खड़े हो जाते हैं वे ही मानो फुलवगिया, बाग और उपवन हैं और आनंद ये ही सुन्दर पक्षियों के किलोलें हैं। उत्तम मन यही माली है जो सुन्दर नेत्रोंद्वारा स्नेहरूपी जल को सींचता है (अर्थात् जिस प्रकार माली बगिया आदि को सींच कर हरा भरा रखता है और उसमें सब प्रकार के पक्षी किलोलें करते हैं, इसी प्रकार भक्तों को कथा श्रवण से पूर्ण आनंद होकर रोमांच और अश्रुपात होने लगता है)

श्लोक—अहिंसा सत्यमस्तेयं, ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्।
क्षमा धृतिर्मिताहार, शौचं चैव यमा दश ॥

अर्थात् (१) हिंसा न करना, (२) सत्य बोलना, (३) चोरी न [illegible] (४) ब्रह्मचर्य से रहना, (५) दया करना, (६) नम्रता, (७) क्षमा, (८) [illegible] (९) थोड़ा भोजन करना, और (१०) शुद्धता, ये दश 'यम' हैं। कोई [illegible] से दश को 'यम' कहते हैं ॥

नियम—यथा—'[illegible]' अर्थात् नियम वह कर्म है जो बाहरी पदार्थों के सहारे से सिद्ध किया [illegible] ([illegible] कि जिस कार्य को सिद्धि जल, मिट्टी आदि की सहायता [illegible]) नियम भी दश हैं, यथा—

श्लोक—[illegible] दानं, [illegible] नियमाः।

चौ०—जे गावहिं यह चरित सँभारे। ते इहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहिं सादर नर नारी। ते सुर वर मानस अधिकारी॥

अर्थ—जो लोग इस रामचरित्र को चतुराई से (पूर्वा पर संदर्भ विचार कर वर्णन करते हैं वे ही लोग इस तालाब के चतुर रखवाले हैं। जो स्त्री पुरुष इस रामकथा) को सदैव आदर सहित सुना करते हैं वे ही. इस मानसरोवर पर देवता तुल्य अधिकार रखने वाले हैं॥

चौ०—अति खल जे विषयी बक कागा। इहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
* संबुक भेक सिवार समाना। इहाँ न विषय कथा रस नाना॥

शब्दार्थ—संबुक=घोंघा। भेक=मेंढक। सिवार (शैवाल)=हरी हरी काई सी चीज़ जो तालाबों के पेंदों में ऊगती है, चोई।

अर्थ—बड़े दुष्ट, विषय लंपट पुरुष जो बगुले और कौए के समान हैं वे भाग्यहीन इस तालाब के समीप ही नहीं जाते। क्योंकि इस में घोंघे, मेंढक और सिवार-रूपी भांति भांति की रस भरी कथायें नहीं हैं।

चौ०—†तेहि कारण आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बेचारे॥
आवत इहि सर अति कठिनाई। रामकृपा बिन आइ न जाई॥

अर्थ—इसी कारण से बिचारे काम के चेरे कौए और बगुले हृदय में हार मान लेते हैं।

दूसरा अर्थ—इसी कारण कौए और बगुले के समान कामातुर प्राणी यहां आकर बेचारे (अर्थात् बिना अपना चारा (भोजन) घोंघा, मेंढक आदि) पाये हुए

---

* सम्बुक भेक सिवार समाना — आदि विषयी लोगों का तालाब नीचे लिखे अनुसार है—

क०—सारस के नादन को नाद ना सुनात कहूं, नाहक ही बकवाद दादुर महा करै।
श्री पति सुकवि जहाँ ओज ना सरोजन को, फूलना फजूल जाहि चित्त दै चहा करै॥
बकन की बानी की बिराजत है राजधानी, काई सो कलित पानी देखत रहा करै।
घोंघन के जाल जामें नरई सिवार ब्याल, ऐसे पापी ताल को मराल लै कहा करै॥

† तेहि कारण आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बेचारे—

सवैया—पुत्र कलत्र सुमित्र चरित्र धरा धन धाम हैं बंधन जी को
बारहिबार विषै फल खात अघात न जात सुधारस फीको
[illegible] ज्ञान तजौं अभिमान घटी सुन 'बालह' [illegible]
[illegible]

हृदय में हार मान लेते हैं और फिर नहीं आते क्योंकि यहां पर विषय रस की कथायें तो हैं ही नहीं ॥

इस तालाब के समीप आने में अनेक अड़चनें हैं, क्योंकि यहां श्री रामचन्द्र जी की कृपा बिना आ ही नहीं सक्ते ॥

चौ०—कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिनके वचन बाघ हरि ब्याला ॥
* गृह कारज नाना जंजाला। तेइ अति दुर्गम शैल बिशाला ॥
वन बहु विषम मोहमद माना। नदी कुतर्क भयंकर नाना ॥

अर्थ—बुरी संगति ही यहां आने के लिये दुर्गम मार्ग है जिसमें दुष्टों के वचन ही बाघ, सिंह और सर्प की नाईं हैं (अर्थात् बुरी संगति और दुष्ट लोगों के कुतर्क से भरे हुए वचन लोगों को राम कथा के समीप तक जाने में बाधा डालते हैं)। गृहस्थी के काम और दूसरे झमेले ये ही मानो भारी पर्वत हैं जिन का उल्लंघन करना कठिन है। (भाव यह कि भोजनों का उपार्जन, गृहस्थी का निर्वाह आदि में फंसा हुआ मनुष्य राम कथा के पढ़ने सुनने के निमित्त अवकाश ही नहीं पाता)। भांति भांति के ममता, मोह और अभिमान ये ही घने जंगल हैं और अनेक भांति के बुरे विचार ही मानो भयावनी नदियां हैं (अर्थात् ममता, मोह, अभिमान और बुरे विचारों के कारण ही रामकथारूपीमानस तक पहुँचना दुर्लभ है)

दोहा—जे श्रद्धा शम्बल रहित, नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन कहँ मानस अगम अति, † जिनहिं न प्रिय रघुनाथ ॥

शब्दार्थ—शम्बल=राह खर्च।

अर्थ—जे लोग विश्वासरूपी राह खर्च से रहित हैं और जिन्हें सन्तों

---

* गृह कारज नाना जंजाला—
सवैया—जिन वेद पुरान पढ़े [illegible] बिगरे सब पेट उपारन में।
दिन रैन गई [illegible] मृषा [illegible] की अनुरागन में ॥
दिन [illegible] खुशामद [illegible] विगारन में।
तुलसी बिसराम लियो न कहूँ बिसराम है राम के पायन में ॥

† जिनहिं न प्रिय रघुनाथ—
सवैया—[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

संगति भी नहीं है तथा जिन्हें श्री रामचन्द्र जी प्यारे नहीं हैं तिन के लिये तालाव का मार्ग बहुत ही कठिन है (अर्थात् किसी भी स्थान में जाने के लिये राह खर्च और साथी तथा दृढ़ निश्चय न होने से पहुंचना हो ही नहीं सक्ता, इसी प्रकार कथा में विश्वास, सज्जनों की संगति और श्री रामचन्द्र जी की भक्ति जिन्हें नहीं है वे रामचरित-सुनने को कैसे जा सकेंगे)

चौ०—*जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नींद जुड़ाई होई॥
†जड़ता जाड़ विषम उर लागा। गयहु न मज्जन पाव अभागा॥

अर्थ-इतने पर भी जो कोई दुःख सहकर वहां जावे भी तो वहां पहुंचते ही उसे नींदरूपी ज्वर चढ़ आता है (अर्थात् कथा सुनने को किसी न किसी प्रकार पहुंच भी गये तो वहां जाकर नींद आजाती है फिर कथा कौन सुने) और हृदय में मूर्खतारूपी असह्य जाड़ा लगने लगता है जिससे वह अभागी वहां पहुंच कर भी स्नान नहीं कर पाता (अर्थात् ज्वर आने के पूर्व जो भारी जाड़ा लगने लगता है वही श्रोता के लिये मूर्खता है जिस के कारण कथा पर ध्यान न देने से नींदवश हो कथा नहीं सुन पाता जैसे ज्वर की ठंड के कारण लोग स्नान नहीं कर सक्ते)॥

चौ०—‡करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवै समेत अभिमाना॥

* जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नींद जुड़ाई होई—
प०—भवाम के संग [illegible] सको [illegible] यश सुनवे को गयो काहू प्राणी के।
सदां जाइ [illegible] दियो गाहक तराजू तौल पानी के॥
काशी र [illegible] दारयान चढ़ो चित्त अभिमानी के।
ल [illegible] टाली कह घाली दुष्ट पीठ में पुरानी के॥

† गयहु न मज्जन पाव अभागा—भाग्यहीन [illegible] सुनते [illegible] भीतो है—
[illegible]

‡ [illegible] अभिमाना—
[illegible] हां ज्ञान झलमाई।
[illegible] उठि धाई॥
[illegible] ज्यों मरमाई।
[illegible] दरम फिर लाई॥

जो बहोरि कोउ पूछन आवा। *सर निंदा कर ताहि बुझा[वा]॥

अर्थ—न तो तालाब के स्नान और न उस के पानी का पीना ही क[रता है]
वह घमंड के साथ लौट आता है। फिर जो कोई वहां का हाल पूछने को आ[ता है]
उसे तालाब की बुराई कर सुनाई॥

चौ०—सकल विघ्न व्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा विलोकहिं जे[ही]॥
सोइ सादर सर मज्जन करई। महाघोर त्रय ताप न [जरई]॥

अर्थ—जिसे श्री रामचन्द्र जी बड़ी कृपा से देखते हैं उसे कोई भ[ी]
बाधा नहीं कर सके। वही आदरपूर्वक तालाब में स्नान करता है और उसी को [ये]
बड़े भारी ताप भी नहीं सताते॥

चौ०—ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन के रामचरण भल भाउ॥
जो नहाइ चह इहि सर भाई। तौ सतसंग करौ मन लाई॥

अर्थ—वे लोग कभी भी इस मानसरोवर को नहीं छोड़ते जिनकी उत्त[म]
प्रीति श्री रामचन्द्र जी के चरणों में है। हे भाई! यदि आप लोग इस तालाब [में]
स्नान करना चाहें तो चित्त लगा कर सज्जनों की संगति करें॥

चौ०—अस मानस मानस चष चाही। भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही॥
भयउ हृदय आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू॥

---

* सर निंदा कर ताहि बुझावा—

[illegible]

अर्थ-ऐसे मान सरोवर को मन के नेत्रों से देख कर कवि की बुद्धि निर्मल और गंभीर हो गई। हृदय में आनंद की लहर उठी और प्रेम तथा आल्हाद की धारा उमड़ उठी॥

चौ०—*चली सुभग कविता सरिता सी। राम विमल यश जल भरिता सी
सरयू नाम सुमंगल मूला। † लोक वेद मत मंजुल कूला
नदी पुनीत सुमानस नंदिनि। कलिमल तृण तरु मूल निकंदिनि

अर्थ—उसमें से कवितारूपी सुंदर नदी वह निकली जिसमें श्री रामचंद्र जी की निर्मल कीर्तिरूपी जल भरा है। वही सरयू नाम की नदी सम्पूर्ण मंगलों की जड़ है और लोकमत तथा वेदमत उसके दोनों किनारे हैं। उस मानसरोवर से उत्पन्न हुई, यह पवित्र नदी कलियुग के पापरूपी तिनकाओं और वृक्षों की जड़ों को नाश करने वाली हुई॥

कई प्रकार से यह कथा सुनी तो इनके मानस तालाब में मानो वर्षा ऋतु को बहुत सा नवीन मेघ जल आकर भर गया और जब गोस्वामी जी ने इस पर विशेष विचार किया तो इनका हृदय उस राम कथा के जल से इतना परिपूर्ण हो गया कि यह रामायणरूपी कविता नदी द्वारा बह निकला। उत्तर रामचरित में लिखा है कि 'पूरोत्पीड़े तड़ागस्य परिवाहः प्रतिक्रिया' अर्थात् जल स्थान यदि पानी से विशेष भर जावे तो उसे बहा देना ही उत्तम उपाय है। सारांश यह है कि शिक्षा और संत कथन को सुनकर विचारपूर्वक गोस्वामी जी ने रामायण ग्रंथ का निर्माण किया॥

* चली सुभग कविता सरिता सी। राम विमल यश जल भरिता सी—

कवित्त-भनित विभारिन की नर घरनारिन की, कूढ़ कार बारिन को धर्मो सरसातो कौन।
कहैं कवि धम्यादत्त वृदन ते बालन लौं, राम जस हुलन सों हीय हरषातो कौन॥
भये मतवारे मतवारन के ज्ञान बाटि, कलिहू में रीति नीति प्रीति दरसातो कौन।
होतो जो न तुलसी गोसाइँ कविराज आज, रामायण परम पियूष बरसातो कौन॥

† लोक वेद मत मंजुल कूला—

जिस प्रकार सरयू नदी के दो किनारे हैं एक दाहिना, दूसरा बायाँ। इसी प्रकार कवितारूपी सरयू के भी दो किनारे हैं, एक वेद मत किनारा और दूसरा लोकमत किनारा। भाव यह कि कवितारूपी सरयू नदी वेदमत और लोकमत के भीतर ही है इन दोनों मतों का उल्लंघन इसमें नहीं है यदि है भी तो यह राक्षसों के अत्याचाररूपी अतिवृष्टि की बाढ़ समझनी चाहिये॥ बेनी कवि ने इसकी स्तुति यों उचारी है—

कवित्त—वेदमत सोधि सोधि सोध के पुरान सबै, संत औ असंतन को भेद को बतावतो।
कपटी कुराही कूर कलि के कुचाली जीव, कौन राम नाम हू की चरचा चलावतो॥
बेनी कवि कहैं मानो मानो हो प्रतीत यह, पाहन हिये में कौन प्रेम उपजावतो।
भारी भवसागर उतारतो कवन पार, जो पै यह रामायण तुलसी न गावतो॥

दो०—*श्रोता त्रिविधि समाज पुर, ग्राम नगर दुहुँ कूल।
सन्त सभा अनुपम अवध, सकल सुमंगल मूल॥ १

अर्थ—उत्तम, मध्यम और लघु ऐसे तीन प्रकार के श्रोताओं की समाज नदी के किनारे पर क्रमानुसार नगर, गाँव और पुर हैं तथा सज्जनों की सभा रहित अयोध्यापुरी के समान है जो सम्पूर्ण उत्तम मंगल की देने वाली है॥

सूचना—मिलान बड़ी बुद्धिमानी से किया है, उत्तम श्रोता बहुत कम हों सो नगर भी भूमि पर बहुत कम होते हैं, मध्यम श्रोता कुछ अधिक होते हैं सो भी नगरों से अधिक पाये जाते हैं और लघु श्रोता बहुत रहते हैं इसी प्रकार ग्राम बहुतायत से मिलते हैं॥

चौ०—रामभक्ति सुरसरि तहँ आई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम समर यश पावन। मिलेउ महानद सोन सुहावन॥

अर्थ—रामभक्ति रूपी गंगाजी में आन कर रामकीर्ति रूपी सुहावनी सरयू मिली।

सूचना—(१) रामभक्ति रूपी गंगा जो अन्यत्र से बहती आई है और जिसमें सरयू मिली है। उसका लक्ष्य १४४वें दोहे के आगे-'विधि हरि हर तप देखि अपार'

* श्रोता त्रिविधि—

(१) उत्तम श्रोता जो ध्यान लगा कर प्रेम से परमेश्वर के गुणानुवाद सुनकर हृदय में धारण कर लेते हैं। जैसे—

दो०—सूना ऐसी पाखुरा, भँवर चकोर मराल।
ये पद उत्तम जानिये, रस पावैं गोपाल॥

(२) मध्यम श्रोता जो व्यवहार पा कर कभी २ कुछ रामकथा सुन लिया करते हैं। (कभी मांगों के दबाव में और कभी दिखाने के हेतु) जैसे—

दो०—सुनिका चमकी चांदनी (सिवी), जैसा सागर पूर (भाटा)।
ये पद मध्यम जानिये, रस ना पावैं सूर॥

(३) लघु श्रोता के बारे में कहा है कि एक बहुत [illegible]

...ु समीप आये बहु बारा' ॥ आदि । इस में पूर्ण रामभक्ति दर्शाई गई है कि मनु ...तरूपा ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश के अनेक बार आने पर भी उनसे वर न मांगा, ...ी रामरूप को देख उन्हीं से वरदान मांगा ।

(२) रामकीर्ति का लक्ष्य—शिव जी के वाक्य पार्वती प्रति ११५वें दोहे के पश्चात्—'अगुणहिं सगुणहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुराण बुध बेदा' से लगा कर पूर्ण ३७ ...क्ति अर्थात् 'मुनि शिव के भ्रम भंजन बचना। मिटि गइ सब कुतर्क की रचना') तक॥

लक्ष्मण समेत श्री रामचन्द्र जी का युद्ध में यश प्राप्त करना यही सुहावना सोनभद्र नाम का बड़ा नद उन में आ मिला है ॥

चौ०—युग बिच भक्ति देवधुनि धारा। सोहत सहित सुबिरति बिचारा ॥
त्रिविधि ताप त्रासक तिमुहानी। रामसरूप सिन्धु समुहानी ॥

अर्थ—दोनों के बीच में गंगा जी कैसी शोभायमान लगती हैं जैसे ज्ञान और वैराग्य के बीच में भक्ति। इस प्रकार तीनों प्रकार के तापों को मिटाने वाली त्रय संगम वाली नदी श्रीरामचन्द्र जी के स्वरूपरूपी समुद्र की ओर बढ़ी ॥

चौ०—*मानसमूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करहीं ॥
†बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा ॥

अर्थ—इसका उद्गम स्थान रामचरितमानस है और संगम गंगा जी में है इसी हेतु यह सुनने वाले बुद्धिमानों के हृदय को पवित्र करती है (भाव यह कि जिसकी उत्पत्ति शुद्ध है और जिसके चरित्र अन्त तक शुद्ध रहते हैं वह दूसरों के आचरण सुधारने में सर्वथा समर्थ है) ॥

---

* मानसमूल मिली सुरसरिही—उत्तर रामचरित में कहा है—

श्लोक—उत्पत्तिः परिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः ।
तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः ॥

अर्थात् जिन सीता जी की उत्पत्ति ही पवित्र है उन्हें और कोई क्या पवित्र करेगा ? जैसे, गंगा आदि तीर्थस्थानों का जल और अग्नि इन्हें पवित्र करने वाला दूसरा कोई नहीं है ॥

† बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा । जनु सरि तीर तीर बन बागा— (क) कवितारूपी नदी के किनारे के बन अर्थात् विषम वार्तायुक्त कथाएं, जैसे—
(१) सती जी का मोह, (२) सती जी का तनत्याग, (३) नारद मोह, (४) राजा प्रतापभानु की कथा, (५) रावण आदि तीन भाइयों का जन्म वृत्तान्त और (६) रावण का पराक्रम

(ख) कवितारूपी नदी के किनारे बाग अर्थात् उत्तम वार्ताएं, जैसे—
(१) याज्ञवल्क्य और भरद्वाज मुनि का संवाद, (२) पार्वती जी का जन्म, (३) शिव पार्वती का विवाह, (४) शिव पार्वती का संवाद (५) स्वायम्भू और शतरूपा की कथा

दूसरा अर्थ—जो कथा शुद्ध मन से कही जाती है और जिसका परिणाम मुक्ति है। उसके सुनने ही से लोग सुजन (अर्थात् सदाचारी और शुद्ध चित्त वाले) हो जाते हैं॥

बीच बीच में जो अद्भुत कथाओं का प्रसंग है वही मानो नदी के किनारों पर के वन और बगीचे हैं॥

चौ०—उमा महेश विवाह बराती। ते जलचर अगणित बहु भांती॥
* रघुबर जन्म अनन्द बधाई। † भँवर तरंग मनोहरताई॥

अर्थ—शिव और पार्वती जी के विवाह समय के जो बराती थे वे ही मानो नाना प्रकार के हर एक जल जंतु हैं। श्री रामचन्द्र जी के जन्म दिन की जो आनंद बधाइयां हैं वे ही मानो मन हरण नदी के भँवर और लहरें हैं॥

दो०—बालचरित चहुँ बंधु के, बनज बिपुल बहुरंग।
नृपरानी परिजन सुकृत, मधुकर बारि बिहंग॥ ४०॥

अर्थ—चारों भाइयों के बालचरित्र ये ही मानो कविता नदी के बहुत से रंग बिरंगे कमल हैं और राजा, रानी तथा कुटुम्बी लोगों का पुण्य ये ही मानो भौंरे और जल पक्षी हैं॥

चौ०—सीयस्वयम्बर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छवि छाई॥
नदी नाव पटु प्रश्न अनेका। केवट कुशल उतर सविवेका॥

अर्थ—सीताजी के स्वयम्बर की जो मनोहर कथा है वही मानो उस मनोहर

---

* रघुबर जन्म अनन्द बधाई—

क०—बेलि फल गई कौशिला के कामना की कल, फैल्यो भाग नागनर सूरज सुमन को।
'लछिराम' जाग्यो दशरथ को अखंड ओज, मंडित भुवन दल्यो दावा दुशमन को॥
रामचन्द्र भरत लषन शत्रुहन चारु, ब्रह्म अवतार भार भूतल दमन को।
गाज्यो रघुबंश अवतंश अमरेश राज्यो, औधअंश ढेर में सुमेर त्रिभुवन को॥

† भँवर तरंग मनोहरताई—आनन्द बधाई की तुलना जो भँवर से की गई है उसका यह कारण है कि नदी में भँवर सुहावने दिखाई पड़ते हैं परन्तु उस में पड़ने वाला जीव उसी में डूब जाना है। इसी प्रकार श्रीराम जन्मोत्सव के आनन्द में लोग ऐसे मग्न हो गये थे कि उन्हें अपने तन बदन की भी सुध बुध भूल गई थी

दुहराते हैं) कीर्त्ति रूपी नदी छऊ ऋतुओं में भरी पूरी रहती है तौ भी समय समय पर विशेष सुहावनी और पवित्र हो जाती है। इस नदी में हेमन्त ऋतु मानो हिमाद्रि सुता पार्वती जी और शिव जी का विवाह है तथा श्री रामचन्द्र जी के जन्म का उत्सव सुख देने वाली शिशिर ऋतु है ॥

चौ०—बरनब राम विवाह समाजू। *सो मुद मंगलमय ऋतुराजू।
ग्रीषम दुसह रामबनगमनू। पंथ कथा खर आतप पवनू॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के विवाह के ठाट बाट का वर्णन यही मानो आनन्द मंगल की देनेवाली वसंत ऋतु है। (भाव यह कि जिस प्रकर वसंत ऋतु में प्रायः बहुतेरे रंग विरंग के वृक्ष फूलते फलते तथा हरे भरे रहते हैं। इसी प्रकार श्री रामचन्द्र जी के विवाह के समय सम्पूर्ण अयोध्या और जनकपुर निवासी तथा अन्य भक्तजन भी प्रसन्न चित्त तथा नये २ रंग विरंगे वस्त्र आभूषणों से सुशोभित हुए थे तथा उन्हों ने गली, कूचे समेत नगरों को भी सुसज्जित किया था)।

श्री रामचन्द्र जी का बनोवास ही दुःखदाई ग्रीष्म ऋतु है जिसमें मार्ग की कथा तेज धूप और हवा है॥ तात्पर्य यह है कि जैसे जेठ में इतनी कड़ी धूप पड़ती है कि जिससे सभी प्राणी व्याकुल हो जाते हैं उसी प्रकार श्री रामचन्द्र जी के वनगमन से अयोध्यावासी बहुत ही व्याकुल हुए और उनके लौटने तक व्याकुल बने रहे। कहा है ' देखि दुपहरी जेठकी, छाहौं चाहत छाँह '

चौ०—बर्षा घोर निशाचर रारी। सुरकुल शालि सुमंगलकारी॥
†रामराजसुखविनय बड़ाई। विशद सुखद सोइ शरद सुहाई।

अर्थ—भयंकर राक्षसों से तकरार यही वर्षा ऋतु है जो धानरूपी देववंश के लिये मंगल देने वाली है (अर्थात् असंख्य राक्षसों के मारे जाने से देवगणों के

---

* सो मुद मंगलमय ऋतुराजू—

राग बसंत—नवल रघुनाथ नव नवल श्री जानकी नवल ऋतुकंत बसंत आई।
नवल कुसुमावली फूल चहुं दिशि रहीं नवल मारुत नव सुगंध छाई।
नवल भूषण बसन पहन दोउ रँग भरे नवल पिया सखी निरखे सुहाई।
नवल गुण रूप यौवन जड़त निज भयो 'रतन हरी' देत सखियन बधाई॥

† रामराज सुख विनय बड़ाई—काव्य सरोज से—

कवित्त—फेन सो फटिक सो कलीश सो किरन फूलो सुयश तिहारो राम फूलो कुन्द पुष्प
तार सो तुषार सो तपोबल सो तीरथ सो मरालो नर्मदानि सो दुबिका सो सूत
श्रीपति सदा सुनीश मन सो मराल सो नगाश ज्ञान मान सो मनोज मद सूख
गौरी सो गिरा सो गज बदन गजाधर सो गंगा सो गरुड़ सो गंगधार सो गरूर॥

आनन्द प्राप्त हुआ) श्री रामचन्द्र जी के राज्य का सुख, नम्रता और बड़ाई यही सुख देने वाली स्वच्छ और सुहावनी शरद ऋतु है ॥

चौ०—*सतीशिरोमणि सियगुण गाथा। सोइ गुण अमल अनूपम पाथा॥
भरत सुभाव सुशीतलताई। सदा एक रस बरणि न जाई॥

अर्थ—पतिव्रताओं में श्रेष्ठ सीता जी के गुणानुवाद यही पानी के उपमा रहित और निर्मल गुण हैं। भरत जी का स्वभाव पानी की शीतलता है जो सदैव एक सी बनी रहती है और जिसका वर्णन नहीं हो सक्ता है॥

दो०—†अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परस्पर हास।
भायप भलि चहुँ बंधु की, जल माधुरी सुबास॥ ४२ ॥

अर्थ—चारों भाइयों का आपस में देखना, बोलना मिलना, हँसना और सुन्दर भाईपना यही जल की मिठास और सुगंधि है॥

चौ०—‡आरति विनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुवारि न थोरी॥
अद्भुत सलिल सुनत गुणकारी। आस पियास मनोमल हारी॥

---

* सती शिरोमणि सिय गुण गाथा—श्री सीताजी के गुणानुवाद अयोध्याकाण्ड तथा सुन्दर कांड रामायण की श्री विनायकी टीका और पुस्तकों में विस्तार सहित वर्णन किये गये हैं॥ तथापि पतिव्रताओं की दिनचर्या संक्षेप में यों है—

दो०—प्राग पान पांछू करत, सोवति पिछले छोर।
प्रान पियारे ते प्रथम, जगति भावती भोर॥

† अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परस्पर हास इत्यादि—सूर संगीत से—

राग बिलावल—धनुही बान लिये कर डोलत।
चारों बीर संग इक सोहत बचन मनोहर बोलत॥
लछिमन भरत शत्रुघन सुन्दर राजिवलोचन राम।
अति सुकुमार परम पुरुषारथ मुक्ति धर्म धन काम॥
कटि पटपीतपिछौरी बांधे काकपक्ष शिर सीस।
शर क्रीड़ा दिन देखन आवत नारद सुर मुनीस॥
शिव मन सोच इन्द्र मन आनँद सुख दुख प्रश्न समान।
दिति दुर्बल अति अदिति हृष्ट चित देखि सूर संधान॥

‡ आरति विनय दीनता मोरी—
क०—उदर समायो राम नाम को न गायो कछु कीन्हीं ना उपाय भवसिन्धु के तरन को।
[illegible] दिखैहौं हाय [illegible] ही सुख [illegible] को॥
[illegible] को।
[illegible] हौं [illegible] रघुनाथ के चरन को॥
[illegible]

अर्थ—मेरी घबराहट, नम्रता और गरीबी ही सुन्दर जल का हलकापन है कुछ दूषण नहीं । ये जल बड़ा अनोखा है कि जिस के सुनने ही से गुण होता है और जो आशारूपी प्यास तथा मन के दोषों को मिटाने वाला है ॥

चौ०—रामसुप्रेमहि पोषतपानी । हरत सकल कलिकलुष गलानी ॥
*भव श्रम शोषक तोषक तोषा । शमन दुरित दुख दारिद दोषा ॥

अर्थ—यह जल श्री रामचन्द्र जी के प्रेम को पुष्ट करता है और कलियुग के सम्पूर्ण पापों की घृणा को नाश करता है । यह जल संसार के आवागमन के श्रम को मिटाता है और संतोष को भी संतोष देने वाला है तथा घोर दुःख और दरिद्रता के दोषों को दूर कर देता है ॥

चौ०—काम कोह मद मोह नसावन । विमल विवेक विराग बढ़ावन ॥
सादर मज्जन पान किये तें । मिटहि पाप परिताप हिये तें ॥

अर्थ—काम, क्रोध, मद और मोह का नाश करने वाला तथा निर्मल विवेक और वैराग्य का बढ़ाने वाला है । यदि यह आदरपूर्वक नहाने और पीने के काम में लाया जावे तो हृदय के पाप और दुःख मिट जावें ॥

चौ०—†जिन इहि वारि न मानस धोये । ते कायर कलिकाल बिगोये ॥
‡तृषित निरखि रवि कर भव बारी । फिरहिं मृगा जिमि जीव दुखारी ॥

---

* भव श्रम शोषक तोषक तोषा । शमन दुरित दुख दारिद दोषा—जैसा कि महात्मा कपिंजल ने कहा है

श्लोक—रामेति कीर्तनं राजन् सर्वरोगविनाशनम् ।
प्रायश्चित्तं हि पापानां मुक्तिदं सर्व देहिनाम् ॥

अर्थात् हे राजन् ! 'राम' इस नाम का कीर्तन सकल रोगों का नाश करता है, यही सब पापों का प्रायश्चित्त है, और यही सम्पूर्ण प्राणियों को मुक्ति देने वाला है

† जिन इहि वारि न मानस धोये । ते कायर कलिकाल बिगोये—

क०—मानुष जनम [illegible] दीन्हों [illegible] रहै ।
[illegible] भूल्यो है [illegible] रहै ।
यौवन [illegible] रहै ।
राम सों न जोड़्यो 'विश्वनाथ' [illegible] रहै ॥

‡ तृषित निरखि रवि कर भव बारी—जैसा कि कहा है—

[[illegible]]

अर्थ—जिन्हों ने इस जल से अपने मन को पवित्र नहीं किया, उन कायरो को कलियुग ने नाश कर दिया है। प्राणी इस प्रकार से दुःखित होकर भटकते फिरते हैं जिस प्रकार प्यास का मारा हिरन सूर्य की किरणों से उत्पन्न भ्रमरूप पानी (अर्थात् मृगजल) को देखकर दौड़ता फिरता है ॥

दो०—मति अनुहारि सुबारि वर, गुन गन मन अन्हवाइ ।
सुमिरि भवानी शंकरहि, कह कवि कथा सुहाइ ॥

अर्थ—अपनी बुद्धि के अनुसार इस उत्तम जल के गुण समूहों में अपने मन को स्नान करा कर तथा शिव पार्वती जी का स्मरण कर मैं *तुलसीदास* सुन्दर कथा का वर्णन करता हूं ॥

सूचना—३५ वें दोहे से आरम्भ कर के *इसी* दोहे के अन्त तक के नौ दोहे श्री भवानी और शंकर जी के नाम से संपुटित हैं इसहेतु भक्तिपूर्वक इनका पाठ करने से अनेक मनोकामनायें सिद्ध हो सकती हैं ॥

दो०—*अब रघुपति पद पंकरुह, हिय धरि पाइ प्रसाद ।
कहौं युगल मुनिवर्य कर, मिलन सुभग †संवाद ॥४३॥

श्लोक—वासुदेवं परित्यज्य योऽन्य देव मुपासते ।
तृषितो जान्हवी तीरे कूपंखनति दुर्मतिः ॥

अर्थात् जो मनुष्य परमेश्वर को छोड़ कर दूसरे देव की उपासना करता है वह मूर्ख मानो प्यासा होने पर गंगा जी के किनारे कुआँ खोदता है ।

* अब रघुपति पद पंकरुह, हिय धरि पाइ प्रसाद—
भैरवी—हमन नहिं दूसरो दूजो द्वार ।
जाउँ कहाँ तजि दीन दयानिधि रघुपति की सरकार ॥
सुर नर नाग असुर किंनर मुनि अगनित जीव अपार ।
माया मोहित भ्रमत रहत सब का करिहैं उपकार ॥
वेद पुरान सुन्यो निज कानन्ह कह्यो अमित उपचार ।
मिटै न भवदुख घोर जानि मैं चित दृढ़ भये तुम्हार ॥
[illegible] दरबार ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] श्री [illegible] कुमार ॥

† किसी किसी प्रति में इस दोहे के पश्चात् और ऐसा दोहा मिलता है—
दो०—[illegible] सिर नाइ [illegible] ।
[illegible] कहिहौं हेतु [illegible] ॥

अर्थ—अब श्री रामचन्द्र जी के कमल स्वरूपी चरणों को हृदय में धारण कर और उनकी प्रसन्नता को पाकर दोनों श्रेष्ठ मुनियों की भेंट तथा मनोहर वार्तालाप कहता हूं ॥

चौ०—*भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिनहिं रामपद अति अनुरागा ॥
तापस शम दम दयानिधाना। परमारथ पथ परम सुजाना ॥

अर्थ—भरद्वाज मुनि जी प्रयाग में रहते थे, उनका बड़ा प्रेम श्री रामचन्द्र जी के चरणों में था। ये तपस्वी, शम, दम और कृपा से परिपूर्ण तथा मुक्ति के मार्ग दर्शाने में बड़े चतुर थे ॥

चौ०—†माघ मकर गत रवि जब होई। तीरथपतिहि आव सब कोई ॥
देव दनुज किन्नर नर श्रेणी। सादर मज्जहिं सकल त्रिवेणी ॥

शब्दार्थ—मकर=बारह राशियों में १० वीं राशि।

अर्थ—माघके महीने में जब सूर्य मकर राशि में आते हैं (अर्थात् जब मकर संक्रान्त लगती है) तब सब लोग प्रयाग में आते हैं। देवताओं, राक्षसों, किन्नरों और मनुष्यों के झुंड के झुंड त्रिवेणी में भक्ति पूर्वक स्नान करते हैं ॥

चौ०—पूजहिं ‡ माधवपदजलजाता। परसि अक्षयवट हर्षहिं गाता ॥
भरद्वाजआश्रम अतिपावन। परम रम्य मुनिवरमन भावन ॥

---

* भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा- देखो अयोध्याकांड रामायण की श्री विनायकी टीका की-टि० पृ० १५८।

† माघ मकर गत रवि जब होई—बारहों राशियों के नाम ये हैं—

दो०—मेष वृषभ अरु मिथुन पुनि, कर्क सिंह कन्याहिं।
तुल वृश्चिक धन मकर कुंभ, मीन राशि सब आहिं ॥

मकर अर्थात् १० वीं राशि से उत्तरायण सूर्य समझे जाते हैं।

माघ के महीने में बहुधा सूर्य मकर राशि पर आ जाते हैं और एक मास तक उस राशि पर रहते हैं। उसी संक्रान्त के समय प्रयाग में रह कर स्नान ध्यान आदि के करने से मनुष्य मुक्ति का भागी हो जाता है, जैसा कहा है—

दो०—माघ मास भर प्राग नर, करहिं वास असनान।
रह सुख लहि सुर लोक पुनि, जावहिं बैठि विमान ॥

‡ माधवपदजलजाता—माघ महीने में माधव नामधारी परमेश्वर का पूजन विशेष कर होता है क्योंकि वे उस महीने के स्वामी और पूज्य समझे जाते हैं उसका कारण यह है कि द्वादश महीने के माहात्म्य में परमेश्वर जिन नामों से पूज्य समझे गये हैं वे नीचे लिखे जाते हैं और महीनों का क्रम प्राचीन

[क्रमशः]

अर्थ—वहां पर (माघ महीने के स्वामी) वेनी माधो जी के कमलस्वरूपी चरणों का पूजन करते हैं और अक्षयवट को छू कर के प्रसन्न चित्त होते हैं। वहां पर बहुत ही रमणीक और अति पवित्र श्रेष्ठ मुनियों का भी मन मोहने वाला भरद्वाज मुनि का आश्रम था ॥

चौ०—तहां होइ मुनि ऋषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथराजा।
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परस्पर हरिगुनगाहा॥

अर्थ—वहां पर वे ऋषि मुनि गण जो प्रयाग में स्नान करने जाते हैं ठहर जाते हैं। बड़ी उमंग से सवेरे ही स्नान कर लेते हैं और आपस में रामचरित्र की कथायें कहा करते हैं ॥

दो०—❀ ब्रह्मनिरूपण धर्मविधि, वरनहिं तत्वविभाग।

पृथा के अनुसार अगहन महीने से आरम्भ होता था और यह बात 'अगहन' इस नाम ही से सिद्ध होती है। कारण अगहन शुद्ध रूप अग्रहायण (अग्र= पहिले + हायण = वर्ष) = वर्ष का पहिला महीना है। (१) अगहन में केशवनामधारी (२) पूस में नारायण, (३) माघ में माधव, (४) फागुन में गोविंद, (५) चैत में विष्णु, (६) वैसाख में मधुसूदन, (७) जेठ में त्रिविक्रम, (८) आसाढ़ में वामन (९) सावन में श्रीधर, (१०) भादों में हृषीकेश, (११) कुंवार में पद्मनाभ और (१२) कार्तिक में दामोदर का विशेष माहात्म्य समझा गया है ॥

(क) ब्रह्म निरूपण परब्रह्म परमात्मा के विषय में नाना प्रकार से जो कथन प्रयाग में हुआ करता था। उस का थोड़े में वर्णन करना तो अशक्य ही है तथापि बहुत ही संक्षेप में उदाहरण की रीति पर वेदान्त ज्ञान के मुख्य ग्रन्थ चन्द्रकान्त से कुछ उद्धृत किया जाता है—

श्लोक—सति सक्तो नरो याति, सद्भावं ह्येकनिष्ठया।
कीटको भ्रमरीं ध्यायन्, भ्रमरत्वाय कल्पते॥

अर्थात् एक निष्ठा से ब्रह्म का ध्यान धरने में रत पुरुष ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है जिस प्रकार भ्रमरी का ध्यान करते २ कीट भ्रमरत्व को प्राप्त होता है।

तुक सोचना चाहिये कि जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते २ इस दुर्लभ नर देह को पाता है। मनुष्य को चाहिये कि इस देह को सार्थक ही करे (अर्थात् रात दिन आत्मा का चिन्तन करके उस के स्वरूप को पहचाने)। इसमें यह प्रश्न उठता है कि मनुष्य को भोजन आच्छादन आदि की चिन्ता में लगे रहने से रात दिन आत्मा का चिन्तन कैसे हो सके? उसे एक दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं—

जिस प्रकार नये प्रसव हुए बछड़े का चित्त उसकी माता ही में समाया रहता है, (अर्थात् उसकी माता के दुग्ध पान ही से उसका सर्वथा पोषण होने वाला है) और इसी प्रकार गौ को भी अपने बछड़े पर अत्यन्त प्रीति होने से उसके बिना एक पल भी

(शेष)

कहहिं भक्ति भगवंत की, संयुत ज्ञान विराग ॥ ४४ ॥

चैन नहीं पड़ती, परन्तु गौ दिन भर अपने बछड़े के पास रह नहीं सकती, क्योंकि उसको वन में चारा चरने के लिये जाना पड़ता है। अथवा यों कहिये कि जैसे गौ सवेरे अपने बछड़े को दूध पिलाकर उसे घर पर छोड़ जाती है और आप वन में जाकर फिरती फिरती है, घास चरती है, पानी पीती है, अपने समूह में जा बैठती है, ठंडी छाया में विश्राम लेती है, तौ भी उस का चित्त उसके बछड़े ही में रहता है जिससे संध्या समय जब वह घर की ओर फिरती है तो बड़ी आतुरता से उत्कंठा पूर्वक बछड़े की ओर रम्हाती हुई आती है। फिर बछड़े को दूध पिलाती है। इसी प्रकार मनुष्य भी प्रातःकाल अपना नित्य नियम करके तिस पीछे दिन भर इधर उधर फिर कर आजीविका के अर्थ अनेक कार्य करता है, खाता है, पीता है, घर रूपी वृक्ष की छाया में निवास कारी स्त्री पुत्रादिक रूप अपने समूह में बैठ कर निश्चिन्तता से विश्राम लेता है तौ भी उसे चाहिये कि वह अपने मन को ईश्वर की ओर लगाये ही रहे और फिर संध्या समय होने पर तुरन्त तैयार हो कर अपना नित्य कृत्य करने में तत्पर हो जावे। इस प्रकार संसार के व्यवहारों में निरन्तर विचरते रहने पर भी गौ की नाईं जिस का चित्त परमेश्वर ही में लगा रहता है। वह मनुष्य महात्मा पुरुषों के पास से परब्रह्म स्वरूप के ज्ञान का श्रवण करके उसी का मनन करता रहता है और मनन करने के अनन्तर उसी के निदिध्यासन से परिणाम में भगवत्स्वरूप प्राप्त करता है। ऐसा जीव संसार के बंधनों से मुक्त हो जाता है और उसको माता पिता स्त्री पुत्र आदि पोष्य वर्ग को दुःख में तड़पते हुए छोड़ कर वैरागी होने तथा भस्म रमाने की आवश्यकता नहीं रहती है॥

सारांश यह है कि संसार के कार्य करते हुए भी मनुष्य को चाहिये कि वह अपना चित्त ईश्वर में इस प्रकार लगाये रहे जिस प्रकार पनिहारी अपने शिर पर पानी का घड़ा सम्हाले रहती है यद्यपि वह मार्ग में और स्त्रियों से बात चीत करती हुई चलती जाती है। जैसा कहा है—

'रसखानि गोविंदहु यों भजिये, ज्यों नागरि को चित गागरि में'

(घ) धर्म विधि—राजशिक्षा सोपान नाम की पुस्तक से—शास्त्रों के अनुसार धर्म की अनेक परिभाषायें हैं सो यों कि --

(१) वेद प्रणिहितं धर्म, धर्मस्तन्मंगलं परम् ।
अनिषिद्ध क्रिया साध्यः, सगुणोऽधर्म उच्यते ।

अर्थात् जो परममङ्गलकारी धर्म वेद विहित है वह "धर्म" और वेद में जिस का निषेध किया है वह 'अधर्म' कहाता है॥

(२) ... ं, मोक्षो धर्म वगयते ।
..., स धर्म इति कथ्यते ॥

...ोक्ष को प्राप्त होते हैं । पूज्यपाद

...

शब्दार्थ—निरूपण=निर्णय, विचार

अर्थ—वे लोग वहां पर निर्गुण ब्रह्म का निरूपण (अर्थात् वेदान्त) और

---

(३) सत्व वृद्धि करोयोऽत्र , पुरुषार्थोऽस्ति केवलः ।
धर्मं शीले तमेवाहु , धर्मं केचिन्महर्षयः ॥

अर्थात् जो पुरुषार्थ सत्वगुण को बढ़ाने वाला हो, कोई २ महर्षि उस को धर्म कहते हैं

(४) या बिभर्ति जगत्सर्वं , मीश्वरेच्छा ह्यलौकिकी।
सैव धर्मोहि सुभगे , नेह कश्चन संशयः ॥

अर्थात् जो अलौकिकी ईश्वरेच्छा इस जगत को धारण करती है वही धर्म है ॥ इन सब वचनों का तात्पर्य यह है कि जिन शारीरिक वाचनिक और मानसिक कर्मों के द्वारा सत्वगुण की वृद्धि हो उनको धर्म कहते हैं और जिनके द्वारा तमोगुण की वृद्धि हो उन्हें अधर्म कहते हैं यथा—

श्लोक—अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतत्सामासिकं धर्मं ; चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥

अर्थात् प्राणी मात्र पर दया, सत्य, चोरी न करना, शुद्धता और इन्द्रियों को अपने वश में रखना ये संक्षेप से चारों वर्ण के धर्म मनु जी ने कहे हैं ॥

(ग) तत्वविभाग—सांख्य दर्शन के अनुसार तत्त्व २५ हैं उनके विषय में ईश्वर कृष्ण की कारिका यों है कि—

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्नविकृतिः पुरुषः ॥

अर्थ — [१] मूल प्रकृति (जो किसी का विकार नहीं), महदादि सात (जैसे महत्तत्व अहंकार पंचतन्मात्रा अर्थात् (१) शब्द (२) स्पर्श (३) रूप (४) रस (५) गंध इनको तन्मात्रा जो प्रकृति और विकृति दोनों होती हैं, और १६ तत्त्व जो केवल विकार मात्र ही हैं जैसे पंचमहाभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और ग्यारह इन्द्रियां अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रिय जैसे चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वक् , और पांच कर्मेन्द्रिय जैसे मुख, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ और ग्यारहवां मन तथा पुरुष जो न प्रकृति है न विकृति है ये १+७+१६+१=२५ तत्त्व हुए

(घ) [illegible] , [illegible] —

[illegible] ([illegible]) —

[illegible]

[illegible]

धर्म का विधान (अर्थात् कर्मकांड) तथा तत्वों का भेद (अर्थात् सांख्य शास्त्र) वर्णन करते हैं और ज्ञान तथा वैराग्य सहित परमेश्वर की भक्ति का वर्णन करते हैं ॥

चौ०—इहि प्रकार भरि मकर नहाहीं। पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं॥
प्रति संवत अस होइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनि वृंदा॥

अर्थ—इस प्रकार से मकर संक्रांति भर (अर्थात् एक महीने तक) स्नान करते रहते हैं फिर सब लोग अपने अपने स्थान को लौट जाते हैं, हर साल इसी

स्त्री को विलाप करते हुए देखा जिसके पास दो आलस युक्त पुरुष चेष्टा हीन पड़े थे। मुनि जी के पूछने पर स्त्री बोली कि मैं भक्ति हूं और कलिकाल के कारण अचेत हुए ज्ञान और वैराग्य नाम वाले मेरे ये दोनों प्रिय पुत्र हैं। मेरा वृत्तान्त यों है कि मैं द्रविड़देश में उत्पन्न हो कर कर्णाटक देश में बढ़ी और महाराष्ट्र देश में कहीं २ थी, परन्तु गुजरात देश में जाते ही अति दुर्बल हो गई फिर यहां वृन्दावन में आते ही मैं तो ज्यों की त्यों हो गई (भाव यह है कि भक्ति का प्रचार द्रविड़ देश से आरंभ हो कर कर्णाटक में बढ़ा, महाराष्ट्र देश में साधारणतः रहा परन्तु गुजरात में बिलकुल क्षीण हो गया, वही फिर से वृन्दावन में विशेष रूप से हुआ,) परन्तु मेरे पुत्र अभी वैसे ही अचेत पड़े हैं इसका कारण कृपा कर समझाइये ? नारद मुनि ने कहा कि करालकलिकाल में १ सदाचार, २ योगमार्ग, और ३ तप का लोप हो गया है सकल लोक शठता और दुष्कर्म करने वाले हो कर पापात्मा दैत्यों के समान आचरण करने लगे हैं। सज्जन तो प्रायः दुःखित दिखाई देते हैं परन्तु पापात्मा पाखंडी पुरुष प्रसन्न दृष्टि पड़ते हैं। जो बुद्धिमान् धीरज धरता है वही इस लोक में धीर और पंडित कहलाता है इस समय ज्ञानी वैराग्यवान् तो कोई है ही नहीं, परन्तु भक्ति करने वाले भी कम मिलते हैं। इसी से तुम तीनों की ऐसी दशा हुई है। हां ! श्री वृन्दावन में भक्ति भावना विशेष होने के कारण तू चैतन्य और तरुण भी हो गई है तो भी यहां पर ज्ञान और वैराग्य की विशेष रुचि न होने से ये तेरे पुत्र चैतन्य नहीं होते। यद्यपि राजा परीक्षित ने कलियुग के पापों का विचार कर उसे रहने को स्थान तो बतादिया था परन्तु प्रभु कीर्तन के आधार से उसे यहां रहने दिया था। सम्पूर्ण [illegible] युग [illegible] लियुग के कारण लोगों के आचरण आदि उलट [illegible] ग, त्रेता और द्वापर में ज्ञान तथा वैराग्य [illegible] ग में भक्ति ही मुक्ति की देने वाली है। [illegible] [illegible] की उपेक्षा की। इस कारण यह तेरे पुत्र [illegible] तू जिला न सक। सनत्कुमार आदि महर्षियों का [illegible] से भक्ति ज्ञान और वैराग्य में बड़ा [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]

प्रकार का आनन्द हुआ करता है और मकर स्नान के पश्चात् मुनिगण चले जाते हैं ॥

चौ०—एक वार भरि मकर नहाये । सव मुनीश आश्रमनि सिधाये ॥
*याज्ञवल्क्य मुनि परम विवेकी । भरद्वाज राखेउ पद टेकी ॥

अर्थ—एक समय मकर संक्रांति भर स्नान कर जव सव मुनि गण अपने अपने आश्रम को जाने लगे । तव परम ज्ञानवान् याज्ञवल्क्य मुनि की चरण वंदना कर भरद्वाज मुनि ने उन्हें रख छोड़ा ॥

चौ०—सादर चरण सरोज पखारे । अति पुनीत आसन वैठारे ॥
करि पूजा मुनि सुयश वखानी । वोले अति पुनीत मृदुवानी ॥

---

* याज्ञवल्क्य—ये ऋषि वशिष्ठ जी के कुल में उत्पन्न यज्ञवल्क ऋषि के पुत्र थे । स्वायंभू व्यास के चारों वेद के पृथक् पृथक् शिष्यों में से यजुर्वेद पाठी वैशंपायन ऋषि के पास इन्होंने विद्या अध्ययन किया था । ये वैशंपायन के भानजे भी थे । यजुर्वेद की ८६ शाखाओं में से मुख्य तैत्तिरीय शाखा जो प्रायः सम्पूर्ण यजुर्वेद के तुल्य ही है । वैशंपायन ने याज्ञवल्क्य को पढ़ाई थी और वैशंपायन के क्रुद्ध हो जाने पर इन्होंने तपस्या कर सूर्य देव को प्रसन्न किया और उन से वाजसनी नाम की वेद शाखा तथा ब्रह्म विद्या पढ़ी । इन्होंने कात्यायनी और मैत्रेयी नाम की दो स्त्रियों से विवाह किया था। परन्तु मैत्रेयी ही को इन्हों ने ब्रह्मविद्या आपस में वात चीत की रीति पर पढ़ाई थी। (देखो आरण्यकांड रामायण की श्री विनायकी टीका की 'निगमनेति शिव ध्यान न पावा' पर टि० पृ० ६०) ।

इन्हों ने वाजसनी शाखा वहुत से शिष्यों को पढ़ाई थी परन्तु इससे उनकी प्रसिद्धि इतनी न हुई जितनी कि इनकी ब्रह्म विद्या से हुई ।

उस समय के जनक राज ने ब्रह्म विद्या उपार्जन के निमित्त याज्ञवल्क्य को बुलाया था ।

याज्ञवल्क्य ऋषि शुक्ल यजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण और वृहदारण्यक उपनिषद के द्रष्टा समझे जाते हैं । इन्हों ने एक स्मृति भी वनाई है, जो याज्ञवल्क्य स्मृति के नाम से प्रसिद्ध है । यह मनुस्मृति से कुछ कम समझी जाती है तो भी यह मिताक्षरा टीका के कारण सब हिन्दुस्थान भर में (ख़ास वंगाल को छोड़ कर) प्रचलित है। कहते हैं कि यह सन् ईस्वी के दूसरे शतक (या सदी) में वनाई गई थी । इसका उल्था अँगरेज़ी में और जर्मनी भाषा में भी हो गया है ।

इनका मत यह था कि धर्मानुसार एकान्त वास में परब्रह्म का ध्यान करना अवश्य है । इसी हेतु ये योगविद्या के आदि कारण समझे जाते हैं । इन्हीं ने रामतत्त्व की कथा कर के भरद्वाज मुनि प्रति वर्णन किया था ॥

अर्थ—आदर पूर्वक उनके कमलस्वरूपी चरणों को धो कर बहुत ही पवित्र आसन पर बिठलाया। फिर मुनि का पूजन कर उनकी उत्तम कीर्ति वर्णन की और फिर निष्कपट मधुर वचनों से प्रार्थना की॥

चौ०—नाथ एक संशय बड़ मोरे। * करतल वेद तत्त्व सब तोरे॥
कहत मोहि लागत भय लाजा। जो न कहउँ बड़ होइ अकाजा॥

शब्दार्थ—करतल वेद = हथेली पर वेद, यह मुहावरा है जिसका यह अर्थ है कि जिस प्रकार हथेली में रक्खी हुई वस्तु को मनुष्य भली भांति देखभाल कर जान लेता है उसी प्रकार वेद आप का भली भांति समझा हुआ है॥

अर्थ—हे प्रभु! वेदों का सार आप को भली भांति ज्ञात है और मुझे एक बड़ा भारी सन्देह है जिसके कहने में मुझे डर और लज्जा आती है और जो नहीं कहता हूं तो बड़ा अनर्थ होता है (भाव यह कि मैं पूछने में भय करता हूं कि कदाचित् आप यह न समझ बैठें कि मेरी परीक्षा लेना चाहते हैं और लाज इस बात की कि इतनी अवस्था वाले भी अभी तक ये बातें नहीं जानते)॥

दो०—सन्त कहहिं अस नीति प्रभु, श्रुति पुराण जो गाव।
‡ होइ न विमल विवेक उर, गुरुसन किये दुराव॥४५॥

---

* करतल वेद तत्त्व सब तोरे श्री मद्भागवत से—

श्लोक—नारायण परा विप्राः धर्मं गुह्यं परं विदुः।
करुणाखिलधयः शान्ता त्वद्विधा न तथा परे॥

अर्थात् जो ब्राह्मण भगवत्परायण होते हैं वे गुह्य परम धर्म को जानते हैं तो भी तुम्हारी नाईं दया सागर और शान्त दूसरे कोई नहीं हैं॥

‡ होइ न विमल विवेक उर, गुरुसन किये दुराव—रामरसायन रामायण में लिखा है कि—

दो०—सुनि सुयश बोले मधुर, हरि गुरु कृपा निधान।
कोटि जतन कोऊ करै, तऊ न दुरित नशाय॥
जो कोऊ गुरु विमुख हो, अथवा गुरु न कीन।
कृपा आस प्रभु की धरै, सोई है मति हीन॥

सवैया—हेर सुमेरु सो कंचन दान करै नित जाय कै सेव गुरू।
धेनु सलंकृत कोटिन देतन करत मोर कै कीन्हें गुरू॥
ज्ञान प्रमाण कहो रसिकेश कहूँ गुन आगम धर्म धुरू।
कंगहु राम न रीझत काहु कैसो लग जो लगे न गुरू॥

अर्थ—हे प्रभु ! सज्जन ऐसी ही नीति बतलाते हैं जैसी कि वेद और पुराण में कही हुई है (सो यों) कि गुरु से छिपाने से हृदय में शुद्ध विचार नहीं जमते (अर्थात् गुरु से छल रखने वाले की बुद्धि शुद्ध नहीं होती) ॥

चौ०—अस विचार प्रकटौं निज मोहू । हरहु नाथ करि जन पर छोहू ॥
*** राम नाम कर अमित प्रभावा । सन्त पुराण उपनिषद गावा ॥**

अर्थ—ऐसा समझ कर मैं अपना सन्देह कहता हूं, हे प्रभु ! मुझ अपने सेवक पर कृपा करके उस सन्देह को दूर कीजिये । राम नाम का भारी प्रताप सज्जनों, पुराणों और उपनिषदों ने वर्णन किया है ॥

चौ०—संतत जपत शंभु अविनाशी । शिव भगवान ज्ञान गुणराशी ॥
आकर चारि जीव जग अहहीं । काशी मरत परमपद लहहीं ॥

अर्थ—(जिस राम नाम को) नाश रहित, शंकर जी जो कल्याणदाता, षडैश्वर्ययुक्त और ज्ञान तथा गुणों से परिपूर्ण हैं सदैव भजते रहते हैं । संसार में जीव चार प्रकार के हैं उनमें से जो काशी जी में प्राण त्यागते हैं वे मुक्ति पा जाते हैं ॥

---

* राम नाम कर अमित प्रभावा—स्मरण रहे कि राम कथा यहीं से प्रश्न रूप में 'राम' इस शब्द से आरंभ हो कर उत्तरकांड के अन्त में 'प्रिय लागहु मोहि राम' तक कही गई है अतएव राम नाम से संपुटित होने के कारण मंगलीक है । किसी भी कार्य सिद्धि के हेतु लोग विश्वास पूर्वक यदि यहीं से पढ़ना आरम्भ कर अन्त तक पढ़ जावें तो अवश्य सफल मनोरथ होवें ।

राम नाम के प्रभाव के विषय में गिरधर कवि ने यों कहा है:—

राग जंगला —मेरे मन राम को नाम अधारा ॥

शिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक निशि दिन करत विचारा ।
[illegible] उतर जात भव पारा ॥
[illegible] प्रभु मारा ।
जिन जिन [illegible] में जिन को नाम पुकारा ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

चौ०—† सोपि राममहिमा मुनिराया। शिव उपदेश करत कर दाया॥
राम कवन प्रभु पूछहुँ तोहीं। कहिय बुझाइ कृपानिधि मोहीं॥

अर्थ—हेमुनिवर! शिवजी भी कृपा करके यही उपदेश करते हैं कि ये सब श्री रामचन्द्र जी की महिमा है। हे दयासागर प्रभु! मुझे समझा कर कहिये मैं आप से पूछता हूं कि वे राम कौन हैं?

चौ०—एक राम अवधेशकुमारा। तिन कर चरित विदित संसारा॥
नारि विरह दुख लहेउ अपारा। भयेउ रोष रण रावण मारा॥

अर्थ—एक रामचन्द्र जी तो अयोध्या नगरी के राजा दशरथ के लड़के हैं जिनका हाल सब संसार में प्रसिद्ध है कि उन्हों ने स्त्री के विछोह से बड़ा भारी कष्ट पाया और फिर जो क्रोध आया तो संग्राम में रावण को मार गिराया॥

दो०—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्वज्ञ तुम, कहहु विवेक विचारि॥२६॥

अर्थ—हे स्वामी! क्या ये वही राम हैं कि जिन्हें महादेव जी जपा करते हैं, आप सत्यवान् सब जाननहार हैं सो ज्ञान से विचार कर कहिये॥

चौ०—जैसे मिटइ मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ विस्तारी॥
याज्ञवल्क्य बोले मुसुकाई। तुमहिं विदित रघुपति प्रभुताई॥

अर्थ—जिससे मेरा भारी संदेह दूर होवे सो हे प्रभु! वही कथा व्योरेवार कहिये। तब याज्ञवल्क्य जी हँस कर कहने लगे कि तुम्हें श्री रामचन्द्र जी का प्रताप ज्ञात ही है॥

चौ०—राम [illegible] तुम मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी॥
[illegible]रे रामगुण गूढ़ा। कीन्हेउ प्रश्न मनहुँ अति मूढ़ा॥

---

† उपदेश करत कर दाया—जैसा कि हारीत [illegible]

[illegible]

अर्थ—तुम मनसा, वाचा, कर्मणा से श्री रामचन्द्र जी के भक्त हो। मैंने तुम्हारी चतुरता जान ली। तुम श्री रामचन्द्र जी के गुप्त चरित्रों को सुनना चाहते हो परन्तु प्रश्न इस रीति से करते हो कि मानो बड़े अज्ञानी हो॥

चौ०—तात सुनहु सादर मन लाई। कहहुँ राम की कथा सुहाई॥
महामोह महिषेश[*] विशाला। रामकथा कालिकाकराला॥

शब्दार्थ—महामोह = ईश्वर के चरित्रों में सन्देह होना।

अर्थ—हे भाई! आदर पूर्वक चित्त देकर सुनो मैं श्री रामचन्द्र जी की सुहावनी कथा कहता हूं। ईश्वर के चरित्रों में भारी अज्ञान विशाल महिषासुर के समान है (और उसके निमित्त) रामकथा भयंकर कालिका देवी है (अर्थात् जिस प्रकार काली देवी दुष्ट महिषासुर का वध करने में समर्थ हुई उसी प्रकार रामकथा प्राणियों के महामोह को नाश करने वाली है)॥

चौ०—रामकथा शशिकिरण समाना। संत चकोर करहिं तेहि पाना॥
ऐसेइ संशय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥

अर्थ—रामकथा चंद्रमा की किरण के समान है जिसे चकोररूपी सज्जन हृदय में धारण करते हैं। पार्वती जी ने भी इसी प्रकार का सन्देह किया था तब महादेव जी ने विस्तार सहित वर्णन किया था॥

दो०—कहहुँ सो मति अनुहारि अब, उमा शंभु संवाद।
भयउ समय जेहि हेतु यह, मुनि मुनि मिटहि विषाद॥ ४७॥

अर्थ—जिस समय में और जिस कारण से वह शिव पार्वती जी का संवाद हुआ था वह सब अपनी बुद्धि के अनुसार अब कहता हूं। हे मुनि! उस के सुनने से तुम्हारा सब भ्रम भाग जायगा॥

(१४ शिव पार्वती सम्वादरूपी रामकथा)

चौ०—एक बार त्रेतायुग माहीं। शम्भु गये कुम्भज ऋषि पाहीं॥
संग सती जग जननि भवानी। पूजे ऋषि अखिलेश्वर जानी॥

[*] महामोह महिषेश विशाला—देखो टि० पृ० ३०—
'शम्भु' [illegible] 'इतिहास' [illegible]।
[illegible]
[illegible]

शब्दार्थ—कुम्भज=अगस्त्य जी । अखिलेश्वर (अखिल=सब + ईश्वर=स्वामी) =सब के स्वामी ॥

अर्थ—त्रेतायुग में एक समय शिव जी अगस्त्य ऋषि के पास गये । उनके साथ में जगदम्बा शिवपत्नी सती जी भी थीं, अगस्त्य ऋषि ने सब के स्वामी जान उन (दोनों) का पूजन किया ॥

चौ०—रामकथा मुनिवर्य बखानी । सुनी महेश परम सुख मानी ॥
ऋषि पूछी हरिभक्ति सुहाई । ⊛कही शम्भु अधिकारी पाई ॥

अर्थ—श्रेष्ठ मुनि जी ने रामकथा का वर्णन किया, महादेव जी ने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक उसे सुना । फिर ऋषि जी ने ईश्वर की भक्ति के विषय में प्रश्न किया, शिव जी ने सुयोग्य श्रोता समझ भक्ति का कथन किया ॥

चौ०—कहत सुनत रघुपतिगुणगाथा । कछु दिन तहां रहे गिरिनाथा ॥
मुनि सन बिदा मांगि त्रिपुरारी । चले भवन सँग दक्षकुमारी ॥

शब्दार्थ—गिरिनाथ (गिरि=पर्वत + नाथ=स्वामी) =पर्वत के स्वामी अर्थात् शिव जी (योग रूढ़ि) । त्रिपुरारि (त्रिपुर=राक्षस का नाम + अरि=वैरी) =त्रिपुर नाम राक्षस के वैरी अर्थात् शिव जी, जिन्हों ने त्रिपुर नाम दैत्य का वध किया था । दक्षकुमारी=दक्ष ([illegible]) की पुत्री अर्थात् सती ।

अर्थ [illegible] के गुणानुवाद कहते सुनते शिव जी थोड़े [illegible] शम्भु शिव जी मुनि से विदा हो सती [illegible]

[illegible] भंज [illegible] । हरि रघुवंश [illegible] अवतारा ॥
[illegible] सी । [illegible] अविनासी ॥

[illegible] रघुवंश में अव- [illegible]

[illegible] के तौ [illegible] अध्याय में विष्णु [illegible]

[illegible] मित्र को सम भाव से [illegible] किसी जीव को हिंसा नहीं [illegible] हो कर दृढ़ हो गया हो, [illegible] (७) जो परमन और पर- [illegible] का अधिकारी जानों [illegible] उत्तर कांड के अन्त में

अर्थ—तुम मनसा, वाचा, कर्मणा से श्री रामचन्द्र जी के भक्त हो। मैं तुम्हारी चतुरता जान गी। तुम श्री रामचन्द्र जी के गुप्त चरित्रों को सुनना चाहते हो परन्तु प्रश्न इस रीति से करते हो कि मानो बड़े अज्ञानी हो॥

चौ०—तात सुनहु सादर मन लाई। कहहुँ राम की कथा सुहा
महामोह महिषेश० विशाला। रामकथा कालिकाकराल

शब्दार्थ—महामोह = ईश्वर के चरित्रों में सन्देह होना।

अर्थ—हे भाई! आदर पूर्वक चित्त देकर सुनो मैं श्री रामचन्द्र जी की सुहावनी कथा कहता हूं। ईश्वर के चरित्रों में भारी अज्ञान विशाल महिषासुर के समान है (और उसके निमित्त) रामकथा भयंकर कालिका देवी है (अर्थात् जिस प्रकार काली देवी दुष्ट महिषासुर का वध करने में समर्थ हुई उसी प्रकार रामकथा प्राणियों के महामोह को नाश करने वाली है)॥

चौ०—रामकथा शशिकिरण समाना। संत चकोर करहिंतेहि पाना।
ऐसेइ संशय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी

अर्थ—रामकथा चंद्रमा की किरण के समान है जिसे चकोररूपी संत हृदय में धारण करते हैं। पार्वती जी ने भी इसी प्रकार का सन्देह किया था महादेव जी ने विस्तार सहित वर्णन किया था॥

दो०—कहहुँ सो मति अनुहारि अब, उमा शंभु संवाद।
भयउ समय जेहि हेतु यह, सुनि मुनि मिटहि विषाद॥ ४३॥

अर्थ—जिस समय में और जिस कारण से वह शिव पार्वती जी का संवाद हुआ था वह सब अपनी बुद्धि के अनुसार अब कहता हूं। हे मुनि! उस के सुनने से तुम्हारा सब भ्रम भाग जायगा॥

(१४ शिव पार्वती सम्वादरूपी रामकथा)

चौ०—एक बार त्रेतायुग माहीं। †शम्भु गये कुम्भज ऋषि पाहीं
संग ‡सती जग जननि भवानी। पूजे ऋषि अखिलेश्वर जानी

० महामोह महिषेश विशाला टि०
† 'शम्भु'
‡ सती
सब

रहे हैं) यदि मैं (श्री रामचन्द्र जी से भेट करने को) न जाऊँ तो पछतावा घना रहेगा। इस प्रकार विचार तो कर रहे थे परन्तु कुछ निश्चय नहीं कर सके ॥

चौ०—इहि विधि भये सोच वश ईशा। तेही समय जाय दशशीशा ॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सो कपट कुरंगा ॥

अर्थ—इस प्रकार शिव जी सोच विचार में पड़ गये। इतने में (यहां क्या हुआ कि) रावण (समुद्र के पार आया) उस नीच ने मारीच राक्षस को अपने साथ ले लिया जो जल्दी से माया का मृग बन गया ॥

चौ०—करि छल मूढ़ हरी वैदेही। प्रभु प्रभाव तस विदित न तेही ॥
मृग वधि बन्धु सहित हरि आये। आश्रम देखि नयन जल छाये ॥

अर्थ—उस मूर्ख ने धोखा दे सीता जी का हरण किया। ईश्वर का जैसा प्रताप था वैसा वह न जान सका। जब श्री रामचन्द्र जी मृग को मार भाई के साथ लौटे तब पर्णकुटी को (सीता रहित) देख उन के नेत्रों में आंसू भर आये ॥

चौ०—विरह विकल नर इव रघुराई। खोजत विपिन फिरत दोउ भाई ॥
कबहुँ योग वियोग न जाके। देखा प्रकट विरह दुख ताके ॥

अर्थ—रघुकुल श्रेष्ठ दोनों भाई विरह से व्याकुल मनुष्य की नाईं बन में ढूँढ़ते फिरते थे। जिन्हें न तो मिलने से सुख और न बिछुरने से दुःख कभी होता है सो देखने में बिछोह का दुःख दर्शा रहे थे ॥

दो०— * अति विचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद विमोहवश, हृदय धरहिं कछु आन ॥४९॥

---

* अति विचित्र रघुपति चरित आदि—

राग धनाश्री अविगति गति जानी न परे ॥
मन बच अगम अगाध अगोचर केहि विधि बुधि संचरे।
अति प्रचंड पौरुष बल पावै केहरि भूख मरे ॥
बिनु उद्यम अजगर को देवै अजगर उदर भरे।
कबहुँक तृण बूड़त पानी में कबहुँक शिला तरे ॥
सागर से सागर कर राखे चहुँ दिश नीर भरे।
पाहन बीच कमल विकसावै जल में अग्नि जरे ॥
राजा रंक रंक ते राजा ले सिर छत्र धरे।
सूर पतित तर जात छिनक में जो प्रभु नेक ढरे ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के चरित्र अद्भुत हैं जो बड़े ज्ञानवान् हैं वे ही उ जानते हैं। जो मूर्ख हैं वे मोह के कारण मन में कुछ और ही विचारते हैं॥

चौ०—शम्भु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हिय अति हर्ष विसेखा॥
भरि लोचन छवि सिन्धु निहारी। कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी॥

अर्थ—महादेव जी ने श्री रामचन्द्र जी को उस समय देखा (जब कि वे सीता जी की खोज का नाट्य कर रहे थे) उनके हृदय में तो बड़ा ही विशेष आनन्द उत्पन्न हुआ। उन्हों ने अति छबीले श्री रामचन्द्र जी को नयन भर देखा तो सही परन्तु मिलने का ठीक अवसर न देख जान पहिचान न निकाली॥

चौ०—जय सच्चिदानन्द जगपावन। +अस कहि चलेउ मनोज नशावन
चले जात शिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकित कृपानिकेता

अर्थ—'जगत को पवित्र करने वाले सच्चिदानन्द प्रभु की जय' ऐसा कह कर कामदेव को भस्म करने वाले शिव जी चले। सती जी के संग मार्ग में जाते हुए कृपासिन्धु शिव जी बार बार रोमांचित हो उठते थे।

(१५ सती मोह)

चौ०—सती सो दशा शंभु की देखी। उर उपजा संदेह विसेखी॥
शंकर जगत वंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥

अर्थ—सती जी ने शिव जी की ऐसी दशा देखी तब तो उन के हृदय में भारी संदेह उत्पन्न हुआ (सो यों कि) शिव जी तो संसार से वंदना करने के योग्य हैं क्योंकि ये जगत् के स्वामी हैं और देवता मनुष्य मुनि आदि सब इन के आगे शिर झुकाते हैं।

चौ०—तिन नृप सुतहिं कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानन्द परधामा॥
भये मगन छवि तासु विलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहत न रोकी॥

+ अस कहि चलेउ मनोज नशावन—यहां पर यह संदेह हो सक्ता है कि शिव जी ने कामदेव को तो भस्म पार्वती जी के अवतार हो जाने के पश्चात् किया। अभी से यह विशेषण कैसे—उसका समाधान यह है कि अवतार अनेक कल्पों में हुआ करते हैं। जिनके चरित्र प्रायः एक ही से होते हैं। उन्हीं के अनुसंधान से महात्मा और भक्तजन प्रभु को ऐसे विशेषण दे देते हैं। (आरण्यकांड रामायण की श्री विनायकी टीका की टिप्पणी में 'खरारी' शब्द पर टिप्पणी देखो)

अर्थ—ऐसे शिव जी ने राजा के पुत्र को प्रणाम किया और कहा हे सचिदा हे परब्रह्म ! और उनकी छवि को देख ऐसे प्रेम में डूब गये कि वह प्रेम अभी उन के हृदय में नहीं समाता ।

दो०—ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, अकल अनीह अभेद ॥
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद ॥५०॥

शब्दार्थ—व्यापक=घट घट वासी । विरज=माया रहित । अज=जन्म र। अकल=कला रहित । अनीह=इच्छा रहित । अभेद=अखंड ।

अर्थ—(यदि मान लें कि ये ब्रह्म हैं तो) ब्रह्म तो घट घट वासी, माया र जन्म रहित, कला रहित, इच्छा रहित, अखंड है और उसे वेद भी नहीं जानते क्या देह धारण कर मनुष्य बनेंगे ? (अर्थात् यह विचार बांधा कि परब्रह्म को मनुष्य रूप धारण करेंगे)।

चौ०—विष्णु जो सुरहित नरतनु धारी । सोउ सर्वज्ञ यथा त्रिपु
खोजइ सोकि अज्ञ इव नारी । ज्ञानधाम श्री पति असु

अर्थ—(जो कहें कि) ये विष्णु जी हैं जिन्हों ने देवताओं के हेतु मनुष्य धारण किया है तो वे भी तो शिव जी के समान सर्वज्ञ है। वे क्या अज्ञानी की अपनी स्त्री को ढूंढ़ते फिरेंगे ? क्योंकि राक्षसों के वैरी तथा लक्ष्मी के पति वे तो से परिपूर्ण हैं।

चौ०—शंभुगिरा [illegible] मृषा न होई । शिवसर्वज्ञ जान सब
अस सं [illegible] होइ न हृदय प्रबोध प्र

[illegible] हो सकते काहे से कि सब
[illegible] मन में बड़ा भारी संदेह उठा, ह

[illegible] वो [illegible] सब जान
[illegible] रिय उर

[illegible] भी) है [illegible] ...वे,
! क्य [illegible] परन्तु घटघट वासी
लें) [illegible] वह तो तुम्हारा स्त्री

चौ०—जासु कथा कुंभज ऋषि गाई। भक्ति जासु मैं मुनहि सुनाई॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥

अर्थ—जिनकी कथा अगस्त्य ऋषि ने सुनाई थी और जिनकी भक्ति का वर्णन मैंने मुनि जी से किया था। वही श्री रामचन्द्र जी मेरे इष्टदेव हैं जिनकी सेवा बड़े २ धीरजवान् मुनि भी किया करते हैं।

छंद—*मुनिधीर योगी सिद्ध संतत विमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुराण आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ राम व्यापक ब्रह्मभुवननिकायपति मायाधनी।
अवतरेउ अपने भक्त हित †निज तंत्र नित रघुकुलमनी॥

अर्थ—धैर्यवान् मुनिगण (सनकादि) योगी जन (पतंजलि आदि) और सिद्ध (व्यासादि) जिनका शुद्ध चित से सदा ध्यान करते हैं और जिनके गुणानुवाद वेद पुराण और शास्त्र गाते २ कह देते हैं कि 'नेति नेति' (अर्थात् इनका अंत नहीं, इनका अंत नहीं) वे ही श्री रामचन्द्र जी घटघट वासी परमात्मा ब्रह्मांड समूहों के स्वामी माया के पति सदा स्वतंत्र अपने भक्त (मनु शतरूपा आदि) के हेतु रघुवंशियों में श्रेष्ठ अवतार ले कर आये हैं।

सो०—लाग न उर उपदेश, यदपि कहेउ शिव बार बहु।
बोले बिहँसि महेश, ‡हरि माया बल जानि जिय॥५१॥

---

* मुनिधीर योगी सिद्ध सन्तत विमल मन जेहि ध्यावहीं:—

सवैया—नाथ समाधि रहे ब्रह्मादिक योगी भये पर अन्त न पाये।
साँझ से भोरहिं भोर से साँझहिं शेषसदा नित नाम जपाये॥
ढूँढ़ फिरे त्रैलोकी में ज्ञानी नारद ले कर बीन बजाये॥
ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भर छाछ पै नाच नचाये॥

† निज तंत्र नित रघुकुलमनी—जैसा कि महाभारत में लिखा है:—

श्लोक—रुद्रं समाश्रिता देवा रुद्रो ब्रह्मसमाश्रितः।
ब्रह्मा ममाश्रितो नित्यं नाहं कञ्चिदुपाश्रितः॥

अर्थात्—संपूर्ण देवता तो शिवजी के आधीन हैं और शिव जी ब्रह्मा के आश्रित हैं तथा ब्रह्मा मेरे आधार में हैं परन्तु मैं किसी के आश्रय में नहीं हूं (अर्थात् स्वतंत्र हूं)।

‡ बल जानि जिय—

[राम गीरह]

अर्थ-यद्यपि शिवजी ने अनेक बार समझाया तो भी वह सिखापन सती के हृदय में न आया। तब तो महादेव जी रामजी की माया का प्रभाव मन से विचार मुसकराते हुए बोले॥

चौ०—जो तुम्हरे मन अति सन्देहू। तो किन जाय परीक्षा लेहू॥
तब लगि बैठ अहौं बट छाहीं। जब लगि तुम ऐहहु मोहि पाहीं॥

अर्थ-जो तुम्हारे मन में बड़ी शंका है तो जाकर परीक्षा क्यों नहीं कर लेतीं? जब तक तुम मेरे पास फिर आओगी तब तक मैं इस बड़ की छाया में बैठा हूं।

चौ०—जैसे जाय मोह भ्रम भारी। करहु सो यतन विवेक विचारी॥
चली सती शिव आयसु पाई। करइ विचार करौं का भाई॥

अर्थ—जिस प्रकार से तुम्हारा मोहरूपी भारी संदेह दूर होवे वही उपाय समझ बूझ कर करना। सती जी शिवजी की आज्ञा पाकर चलीं, वे यह सोचतीं जातीं थीं कि भाई, अब क्या करूं?

चौ०—इहां शंभु अस मन अनुमाना। दक्षसुता कर नहिं कल्याना॥
मोरेहु कहे न संशय जाहीं। विधि विपरीत भलाई नाहीं॥

अर्थ-यहां पर (वट वृक्ष के नीचे) शिवजी मन में अटकल बांधने लगे कि सतीजी की कुशल नहीं दीख पड़ती। मेरे कहने पर भी जब कि उनके संदेह नहीं मिटते तो (समझ पड़ता है कि) दैव ने पलटा खाया हुआ भला होने वाला नहीं है।

चौ०—*होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावहि शाखा॥
अस कहि लगे जपन हरि नामा। गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा॥

राग सोरठ—हरि की गति नहिं कोउ जाने।

योगी यती तपी पचहारे अरु बहु लोग सयाने॥
छिन में राव रंक को करहीं राव रंक कर डारे।
रीते भरे भरे ढरकावे यह ताको व्यवहारे॥
अपनी माया आप पसारे आपै देखन हारा।
नाना रूप धरे बहुरंगी सब से रहत नियारा॥
[illegible] अपार अलख निरंजन [illegible] सब जग भरमाया।
सकल भरम तज 'नानक' [illegible]॥

* होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै शाखा—

[illegible]

अर्थ—'वही होगा जो रामजी ने रच रक्खा है' इसमें तर्क वितर्क कर कल्पना बढ़ावे को बढ़ावे (अर्थात् होनहार अवश्य होगा इसकी उपेद सुन चुका है)। इतना कह के राम नाम जपने लगे। सती जी जहां पहुंची जहां आनन्द के स्थान श्री रामजी थे।

दो०—पुनि पुनि हृदय विचार करि, धरि सीता कर रूप।
आगे हुइ चलि पंथ तेहि, जेहि आवत नरभूप ॥५२॥

अर्थ—हृदय में बारम्बार विचार करके सती ने सीता जी का स्वरूप धारण किया और उसी मार्ग में आगे आगे चलने लगीं जिस मार्ग से नरश्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी आ रहे थे।

चौ०—लछमण दीख उमाकृत वेषा। *चकित भये भ्रम हृदय विशेषा॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभुप्रभाव जानत मतिधीरा॥

अर्थ—लछमण ने सती जी को सीता के बनावटी भेष में देखा, वे चकित हुए और उनके हृदय में भारी संदेह हो गया। बड़े गंभीर और धैर्यवान् तो थे ही श्री रामचन्द्र जी के प्रभाव को समझ कुछ कह न सके।

चौ०—सती कपट जानेउ सुरस्वामी। समदरशी सब अंतरयामी॥
सुमिरत जाहि मिटै अज्ञाना। सोइ सर्वज्ञ राम भगवाना॥

राग सारंग—भावी काहू सों न टरै।
कहँ वह राहु कहां वह रविशशि आनि सँयोग परै॥
मुनि वशिष्ठ पंडित अति ज्ञानी रचि पचि लग्न धरै।
तात मरन सिय हरन राम बन वपु धरि विपति भरै॥
रावण जीति कोटि तैंतीसो त्रिभुवन राज्य करै।
मृत्यु बाँधि कूप में राखै भावीवश सिगरै॥
अर्जुन के हरि हितू सारथी सोऊ बन निकरै।
द्रुपदसुता के राजसभा दुस्सासन चीर हरै॥
हरिश्चन्द्र सो को जगदाता सो घर नीच भरै।
गृह छाँड़ि देश बहु धावै तउ वह संग फिरै॥
भावी के वश तीन लोक हैं सुर नर देह धरै।
"सूरदास" प्रभु रची सु हुइहै को करि सोच मरै॥

* चकित भये भ्रम हृदय विशेषा—चकित होने का यह कारण समझ पड़ता है कि सीतारूप धारिणी कोई स्त्री विछोह दुःख से विशेष व्याकुल न होती हुई साधारण रीति से अकेली बन में विचर रही थी और इसी हेतु यह भ्रम भी हुआ कि, मिलाप रावणवध के पहिले कैसे संभवित हुआ।

अर्थ—देवताओं के स्वामी श्री रामचन्द्र जी ने सती जी के छल को जान लिया क्योंकि वे तो समान दृष्टि वाले घट घट वासी हैं जिनके स्मरण करने ही से अज्ञान मिट जाता है वही तो सब कुछ जानने वाले षडैश्वर्यशाली रामचन्द्र जी हैं ।

चौ०—सती कीन्ह चह तहहुँ दुराऊ । *देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ ॥
निज माया बल हृदय बखानी । बोले बिहँसि राम मृदु बानी ॥

अर्थ—सती जी वहां (ऐसे श्री रामचन्द्र जी से) भी छल करना चाहती थीं । स्त्री के स्वभाव की महिमा तो देखो ? अपनी माया का अधिकार मन ही मन सराहते हुए श्री रामचन्द्र जी हँस कर मीठी बानी बोले ।

चौ०—जोरि पाणि प्रभु कीन्ह प्रनामू । पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥
कहेउ बहोरि कहां †वृषकेतू । बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥

अर्थ—प्रभु ने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और कहा मैं दशरथ पुत्र रामचन्द्र हूं और फिर कहने लगे कि महादेव जी कहां हैं तथा तुम जंगल में अकेली क्यों फिरती हो ।

दो०—‡ रामवचन मृदु गूढ़ सुनि, उपजा अति संकोच ।
सती सभीत महेश पहँ, चली हृदय बड़ सोच ॥५३॥

---

* देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ—ब्रह्म वैवर्त्त पुराण गणेश खंड के ६४ वें अध्याय में लिखा है—

श्लोक—दुर्निवार्यश्च सर्वेषां स्त्री स्वभावश्च चापलः ।
दुस्त्याज्यं योगिभिः सिद्ध स्तमाभिश्च तपस्विभिः ॥

भाव यह कि स्त्रियों का स्वभाव चंचल होता है उस से किसी का बचाव नहीं होता इसे योगी, सिद्ध तथा हम सरीखे तपस्वी भी कठिनाई से त्याग सके हैं ।

† कहां वृषकेतू—इसमें यह ध्वनि निकलती है कि धर्म के पताका श्री शंकर जी जो तुम्हारे पति हैं सो इस समय कहां हैं ? (अर्थात् तुम ने उन्हें बट वृक्ष के नीचे क्यों छोड़ दिया)।

‡ रामवचन मृदु गूढ़ सुनि—मृदु का लक्षण यह कि उन्हों ने उन्हें परम पूज्य मान शिष्टाचार की रीति से हाथ जोड़कर अपना नाम पता बताने लिया का मान रखाया जैसा कि पूज्य पुरुषों के सामने करना उचित है । गूढ़ का लक्षण यह कि वृषकेतु (अर्थात् धर्म की मर्यादारूप शिवजी) कहां हैं ? इस से

[शेष आगे]

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के मधुर और गम्भीर वचनों को सुनकर हृदय में भारी लज्जा उत्पन्न हुई। तब सती जी डरतीं २ शिवजी के पास चलीं परन्तु हृदय में बड़ी चिन्ता लग रही थी। (सो सों कि)—

चौ०—मैं शंकर कर कहा न माना। निज अज्ञान राम पर आना॥
जाय उतर अब देहौं काहा। उर उपजा अति दारुण दाहा॥

अर्थ—मैंने शिवजी का सिखापन न माना और अपनी मूर्खता श्री रामचन्द्रजी के विषय में प्रकट की। अब मैं शिवजी को क्या उत्तर देऊंगी (ऐसे ही विचारों से) उनके हृदय में बड़ी भारी चिंता उत्पन्न हुई।

चौ०—जाना राम सती दुख पावा। निज प्रभाव कछु प्रकट जनावा॥
सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित सिय भ्राता॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी जान गये कि सती के चित्त में चिन्ता हुई इसहेतु उन्हों ने अपनी कुछ महिमा प्रकट दिखाई। मार्ग में चलते २ सती जी क्या देखतीं हैं? कि आगे रामचन्द्र जी सीता और लक्ष्मण समेत जा रहे हैं।

चौ०—फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुन्दर वेखा॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीश प्रवीना॥

अर्थ—जो लौट कर देखने लगीं तो पीछे भी रामचन्द्र जी को अपने भाई तथा सीता समेत सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण किये हुए देखा। जहां देखतीं थीं तहां रामचन्द्र जी आनंद से बैठे हुए और उनकी सेवा सिद्ध तथा चतुर मुनि-श्रेष्ठ करते हुए दिखाई देते थे।

चौ०—देखे शिव विधि विष्णु अनेका। अमित प्रभाव एक ते एका॥
वंदत चरण करत प्रभु सेवा। विविध वेष देखे सब देवा॥

यह सूचित किया कि हम तुम्हारे कपट भेष को पहिचान गये। तुम सीता नहीं हो सती हो और जंगल में अकेली क्यों फिरती हो? इसमें यह सूचित किया कि हमारे स्त्रीवियोग का कारण तो हमारी इच्छा अनुसार है तुमने तो पति के सिखापन पर विचार न कर जंगल में अकेली फिरना स्वीकार किया है जो कर्म पतिव्रता स्त्रियों को उचित नहीं है। नीतिशास्त्र में भी तो यों कहा है (श्लोक)—

श्लोक—भ्रमन् संपूज्यते राजा, भ्रमन्संपूज्यतेद्विजः।
भ्रमन् संपूज्यते योगी स्त्री भ्रमन्ती विनश्यति॥

अर्थात् भ्रमण करने वाले राजा, ब्राह्मण और योगी पूजित होते हैं परन्तु स्त्री घूमने से नष्ट हो जाती है॥

अर्थ—बहुतेरे शिव ब्रह्मा तथा विष्णु भी देखे जो एक से एक बढ़कर प्रताप
ी होने पर भी रामचन्द्र जी के चरणों की वंदना कर रहे थे और सम्पूर्ण
ताओं को भी नाना भेष धारण किये हुए प्रभु की सेवा में तत्पर देखा।

दो०—सती विधात्री इंदिरा, देखी अमित अनूप।
जेहि जेहि वेष अजादि सुर,तेहि तेहि तन अनुरूप॥५४॥

अर्थ—(अनेकन शिव ब्रह्मा और विष्णु आदि के अनुसार ही) अनेक
ी, ब्रह्माणी और लक्ष्मी अनूठीं २ देखीं (अर्थात् जिस अनूठे रूप से ब्रह्मा
दि त्रिदेव थे उसी उसी रूप के अनुसार देखीं)

ौ०—देखे जहँ तहँ रघुपति जेते। शक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते॥
जीव चराचर जो संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा॥

अर्थ—जिस स्थान में जितने रामचन्द्र जी दिखाई दिये उस स्थान में उतने ही
ता सब के सब अपनी अपनी शक्तियों समेत दृष्टि पड़े। (और भी) संसार के
तने जड़ चैतन्य जीव हैं सो सब नाना प्रकार के देखने में आये।

ौ०—पूजहिं प्रभुहिं देव बहु भेखा। राम रूप दूसर नहिं देखा।
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न वेष घनेरे॥

(अन्वय दूसरी लकीर का) बहुतेरे रघुपति सीता सहित अवलोके, वेष घनेरे
(अवलोके)

अर्थ—देवता तो अनेक भेष धारण किये हुए श्रीरामचन्द्र जी का पूजन करते
दिखाई पड़े परन्तु रामरूप एकही सा बना रहा दूसरे प्रकार का न दिखाई दिया।
(सो इस प्रकार कि) रामचन्द्र जी तो बहुत से देखे सो सब सीता सहित देखे परन्तु
उनका रूप अनेक भेष में न था (अर्थात् केवल शुद्ध एक ही प्रकार का वही रामरूप था)

चौ०—*सोइ रघुवर सोइ लछमन सीता। देखि सती अति भई सभीता।
हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूंदि बैठी मग माहीं॥

अर्थ—ये ही रामचन्द्र जी ये ही लक्ष्मण जी और यही सीता जी (तीनों का

---

* सोइ रघुवर सोइ लछमन सीता—यहाँ श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण और सीताजी तीनों का निरंतर अटल संबंध दर्शाया है कि ये तीनों सदैव एकत्र रहते हैं इनका परस्पर वियोग होता ही नहीं। दूसरे यहाँ पर गोस्वामी जी ने चतुराई से मनुष्यों के तीन प्रकार के मत भी दर्शाये हैं सो यों कि (१) विशिष्टाद्वैत जिस में जीव परमात्मा माया और जीव इन तीनों को सनातन सदैव रहने वाले मानते हैं, (२) द्वैत मत जिसमें केवल परमात्मा और माया (सीता) ऐसे भिन्न माने जाते हैं और (३) अद्वैत का शुद्ध केवल एक मत जिसमें केवल परमात्मा ही नित्य रहने वाला समझा जाता है और शेष सब कल्पित है॥

ज्यों का त्यों अटल सहचारी संयोग) देखते देखते सती जी बहुत ही डर गईं। हृदय कप उठा और शरीर की सुध न रही, तब तो वे नेत्र बंद कर मार्ग ही में बैठ गई।

चौ०—बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीख तहँ दक्षकुमारी॥
पुनि पुनि नाइ रामपद शीशा। चली तहाँ जहँ रहे गिरीशा॥

अर्थ—(चैतन्य होने पर) जब फिर आंख खोल कर देखा तो सती जी को वहां कुछ भी न दिखाई दिया। बारंबार श्रीरामचन्द्र जी के चरणों को शीस नवा कर वे उस ओर चलीं जहां शिवजी थे।

दो०—गई समीप महेश तब, हँसि पूछी कुशलात।
लीन्हि परीक्षा कवन विधि, कहहु सत्य सब बात॥५५॥

अर्थ—जब सती समीप आगई तब शिवजी ने हँस कर पूछा कि कुशल तो है? तुमने किस प्रकार जांच की? सब हाल ठीक ठीक कहो?

चौ०—सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भयवश शिव सन कीन्ह दुराऊ॥
कछु न परीक्षा लीन्ह गोसाईं। कीन्ह प्रणाम तुम्हारिहि नाईं॥

अर्थ—सतीजी ने श्री रामचन्द्र जी का प्रभाव समझ भय के कारण शिवजी से बात छिपानी चाही। हे स्वामी! मैंने कुछ भी परीक्षा नहीं ली, मैंने तो आप ही की तरह प्रणाम किया।

चौ०—जो तुम कहा सो मृषा न होई। मोरे मन प्रतीति अस सोई॥
तब शंकर देखेउ धरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सब जाना॥

अर्थ—जो आप ने कहा सो झूठ नहीं हो सक्ता, मेरे हृदय में भी ऐसा ही भरोसा है। (सतीजी की चेष्टा और बात चीत से शंकर जी के मन में शंका हुई इस हेतु) तब तो शिवजी ने ध्यान धर के देखा तो जो कुछ चरित्र सतीजी ने किये थे सो सब जान लिये।

चौ०—बहुरि राम मायहिं शिर नावा। प्रेरि सतिहिं जेहि झूठ कहावा॥
हरि *इच्छा भावी बलवाना। हृदय विचारत शंभु सुजाना॥

अर्थ—फिर शंकर जी ने श्री राम जी की माया को शिर नवाया जिसने साक्षात् सती से भी प्रेरणा करके झूठ कहलवाया। (निदान) ज्ञानवान शिव जी के हृदय में यह विचार आया कि ईश्वर की इच्छा जो होनहार रूप से दृष्टि पड़ती

* हरि इच्छा भावी बलवाना —

है वह बलवती है (अर्थात् मनुष्य के कर्म जो फलोन्मुख हो भविष्य में फल के देने हारे हैं उनके विषय में ईश्वर का कर्त्तव्य अमिट है)॥

चौ०—सती कीन्ह सीता कर वेषा। शिव उर भयउ विषाद विशेषा॥
जो अब करौं सती सन प्रीती। मिटै भक्तिपथ होइ अनीती॥

अर्थ—सती ने सीता का रूप धारण किया इस हेतु शिव जी के हृदय में विशेष दुःख हुआ। (वे विचारने लगे) कि जो अब सती पर पत्नी की नाईं प्रेम करूं तो भक्ति का मार्ग नष्ट हो जाय और अधर्म होवे।

सूचना—विशेष विषाद के कारण ये हैंः- (१) शिव जी के कहने पर विश्वास न करना (२) झूठ बोलना (३) सीता का भेष धारण करना। अंतिम कारण ऐसा विपरीत बन पड़ा कि जिन सीता के स्वरूप पर शंकर जी मातृभाव रखते थे, वही रूप जब सती धारण कर चुकीं तो उन पर स्त्रीभाव रखना अधर्म होगा ऐसा विचार शंकर जी का हुआ॥

दो०—*परम प्रेम नहिं जाइ तजि, किये प्रेम बड़ पाप।
प्रकट न कहत महेश कछु, हृदय अधिक संताप॥ ५६॥

राग रामकली—ऊधो कर्मन की गति न्यारी।
सब नदियाँ मीठा जल बहियाँ सागर किन विधि खारी॥
उज्ज्वल पंख दिये बगुला को कोयल किन गुन कारी।
सुन्दर नैन मृगा को दीन्हे बन बन फिरत उजारी॥
मूरख मूरख राज करत हैं पंडित फिरत भिखारी।
सूर श्याम मिलबे की आशा छिन छिन बीतत भारी॥
और भी—

श्लोक—[illegible]।
[illegible]॥

अर्थात् [illegible] के गुरु वशिष्ठ जी के विचार से श्री रामचन्द्र जी को युवराज होने के लिए जो मुहूर्त दिया था उसी मुहूर्त में श्री रामचन्द्र जी वनवासी हुए। (इससे प्रकट है कि) केवल ईश्वर इच्छा ही बलवती है।

* परम प्रेम नहिं जाइ तजि, किये प्रेम बड़ पाप—शिव जी की दशा उस समय ऐसी हो रही थी जैसी हितोपदेश के श्लोक में दर्शाई गई है।

श्लोक—[illegible]।
[illegible]॥

अर्थात् [illegible]॥

अर्थ—अधिक प्रेम का त्याग करते नहीं बनता था और इनके साथ स्त्रीप्रेम का निर्वाह भी बड़ा पाप था, इसहेतु शंकर जी कुछ स्पष्टरूप से नहीं कहते थे उनके हृदय में बड़ी चिंता हुई ॥

चौ०—तब शंकर प्रभुपद शिर नावा। सुमिरत राम हृदय अस आवा॥
इहि तनु सतिहि भेट मोहि नाहीं। शिव संकल्प कीन्ह मन माहीं॥

अर्थ—तब शिव जी ने अपने प्रभु श्री रामचन्द्र जी को शिर नवाया और उनका स्मरण करते ही इनके हृदय में ऐसा विचार उठा कि "इस सती के शरीर से अब मेरा संबंध न होगा" ऐसा दृढ़ निश्चय शिव जी ने अपने मन में ठान लिया ॥

चौ०—अस विचार शंकर मति धीरा। चले भवन सुमिरत रघुवीरा॥
चलत गगन भइ गिरा सुहाई। जय महेश भलि भक्ति दृढ़ाई॥
‡अस प्रण तुम बिन करै को आना। रामभक्त समरथ भगवाना॥

अर्थ—यह निश्चय कर बड़े धीरज वाले शंकर जी श्री रामचन्द्र जी का स्मरण करते हुए कैलाश की ओर बढ़े। चलते समय सुहावनी आकाश वाणी हुई कि "हे महादेव जी आप ने अपनी भक्ति भलीभाँति पुष्टि की आप की जय हो। आपके सिवाय, और कौन दूसरा ऐसा प्रण कर सक्ता है, हे षडैश्वर्य सम्पन्न! आप ही रामभक्तों में श्रेष्ठ हैं"॥

चौ०—सुनि नभ गिरा सती उर सोचू। पूछा शिवहि समेत सकोचू॥
कीन्ह कवन प्रण कहहु कृपाला। सत्यधाम प्रभु दीनदयाला॥
यदपि सती पूछा बहु भाँती। •तदपि न कहेउ त्रिपुरआराती॥

शब्दार्थ—त्रिपुरआराती = त्रिपुर नाम राक्षस के बैरी।

---

‡ अस प्रण तुम बिन करै को आना। रामभक्त समरथ भगवाना—

दो०—रा रिदै मुख भा धरन, त्रिपुटि धरे जेहि भाल।
तुलसी पूरन नाम बल, गहे काल के काल॥

भाव यह है कि हृदय और मुख से राम नाम को धारण कराये हुए शिव जी ऐसे [illegible] हुए हैं कि वे टेढ़े चंद्र को भी मस्तक में धारण कर उसे लोक वन्दनीय कर चुके हैं तथा काल को संहार करने वाले काल को भी संहार करने वाले हो गये हैं॥

• तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती—

श्लोक—सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः॥

[illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible]

चौ०—शंकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदय अकुलानी।
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपै अवा*इव उर अधिकाई।

शब्दार्थ—रुख = चेष्टा। अवा = कुम्हार की भट्टी जो भीतर ही भीतर धँधकती रहती है॥

अर्थ—सती जी ने शंकर जी का वर्तावा देख समझ लिया कि स्वामी ने मेरा परित्याग कर दिया है इसहेतु वे हृदय में बहुत ही घबड़ाईं। अपने अपराध का विचार कर कुछ कह तो सकीं हीं न थीं परन्तु हृदय में (कुम्हार के) अवा की नाईं अधिक ही अधिक संतप्त होतीं जातीं थीं॥

चौ०—सतिहि ससोच जानि वृषकेतू। कही कथा सुंदर सुखहेतू॥
बरनत पंथ विविध इतिहासा। विश्वनाथ पहुँचे कैलासा॥

अर्थ—धर्म की पताका वाले शिवजी सती को दुःखित जान (दया करके) उन्हें सुखी करने के हेतु सुन्दर कथा कहने लगे। मार्ग में अनेक कथा वार्ता करते कहते शिवजी कैलाश में जा पहुंचे।

चौ०—तहँ पुनि शंभु समुझि पण आपन। बैठे वट तर करि कमलासन॥
†शंकर सहज सरूप सँभारा। लागि समाधि अखंड अपारा॥

अर्थ—वहां पर महादेव जी अपने दृढ़ निश्चय के विचार से वट वृक्ष के नीचे

---

* तपै अवा इव उर अधिकाई—चिन्ता के कारण मनुष्य की जो दशा हो जाती है उसको गिरधर कविराय ने यों कहा है—

कुंडलिया—चिंता ज्वाल शरीर बन, दावा लगि लगि जाय।
प्रकट धुआँ नहिं देखिये, उर अंतर धुँधुआय॥
उर अन्तर धुँधुआय, जरै ज्यों काँच की भट्टी।
रक्त मांस जरि जाय, रहै पांजर की टट्टी॥
कहैं गिरधर कविराय, सुनो हे मेरे मिंता।
वे नर कैसे जियें, जिन्हैं तन व्यापै चिंता॥

† शंकर सहज स्वरूप सँभारा। लागि समाधि अखंड अपारा—कुमार [illegible] सर्ग ३ का

श्लोक—मनो नवद्वारनिषिद्धवृत्ति, हृदि व्यवस्थाप्य समाधिवश्यम्।
यमक्षरं क्षेत्रविदो विदुस्त, मात्मानमात्मन्यवलोकयन्तम्॥५०॥

अर्थात् मन की वृत्ति को शरीर के नव द्वारों से रोक कर और समाधि युक्त कर हृदय कमल में [illegible] ध्यान करते रहते हैं [illegible] स्वरूप को अपने स्वरूप ही में देखते थे॥

कमलासन लगा कर बैठ गये । शिवजी ने अपने स्वाभाविक स्वरूप का ध्यान बांधा तो अटूट और दीर्घकाल के लिये समाधि लग गई ।(अर्थात् सती का मन से परित्याग कर शिवजी पद्मासन बांध आत्मतत्व का विचार करते ही समाधि लगा बैठे)।

दो०—सती बसहिं कैलास तब, अधिक सोच मन माहिं ।
मर्म न कोऊ जान कछु, युग सम दिवस सिराहिं ॥ ५८ ॥

अर्थ—तब सतीजी कैलास में बनी रहीं परन्तु उनके हृदय में भारी सोच था । इसका भेद तो कोई कुछ भी न समझा एक एक दिन एक एक युग के समान बीतता था ॥

चौ०—नित नव सोच सती उर भारा । कब जैहौं दुखसागर पारा ॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना । पुनि पतिवचन मृषा करि जाना ॥

अर्थ—सतीजी के हृदय में दिनों दिन नया भारी सोच होता था (वे विचारती थीं कि) मैं कब इस दुःखरूपी समुद्र के पार जाऊंगी (अर्थात् मेरा दुःख कब दूर होगा) । जोमैंनेरामचन्द्रजी कानिरादरकियाऔरअपनेपतिकेवचनोंकोभीझूठ समझा ।

चौ०—सो फल मोहि विधाता दीन्हा । जो कछु उचित रहा सो कीन्हा ॥
अब विधि अस बूझिय नहिं तोही । शंकर विमुख जियावसि मोही ॥

अर्थ—उसका फल ब्रह्मा ने मुझे दिया सो जो कुछ योग्य था वही उसने किया । परन्तु हे विधाता ! अब तुम को ऐसा न चाहिये कि जो तुम मुझे शंकर जी के विमुख जिया रहे हो ।

चौ०—कहि न जाय कछु हृदय गलानी । मन महं रामहिं सुमिरि सयानी ॥
जो प्रभु दीनदयाल कहावा । आरति हरण वेद यश गावा ॥
तौ मैं विनय करौं कर जोरी । छूटै वेगि देह यह मोरी ॥

अर्थ—मन का खेद कुछ कहा नहीं जाता था तब तो चतुर सतीजी श्री रामचंद्र जी का स्मरण यों करने लगीं । हे प्रभु ! जब कि आप दीनदयाल कहलाते हो और वेद आप की बड़ाई "आरति हरण" कह कर गाते हैं । तब ही तो मैं हाथ जोड़ कर विनती करती हूं कि यह मेरा शरीर जल्दी से छूट जाय ।

चौ०—जो मेरे शिवचरण सनेहू । मन क्रम वचन सत्यव्रत एहू ॥

अर्थ—जो मेरा स्नेह शिवजी के चरणों में हो और मनसा वाचा कर्मणा मे यही व्रत सत्य होवे ।

दो०—तौ समदरशी सुनिय प्रभु करौ सो वेगि उपाय ।
होय मरण ज्यहि विनहिं श्रम, दुःसह विपत्ति विहाय ॥ ५६ ॥

अर्थ—तो सब को एक सा देखने वाले हे प्रभु ! वही उपाय जल्दी से कीजिये जिसमें बिना ही अड़चन के मेरी मृत्यु हो जाय और यह असह्य दुःख दूर होवे।

चौ०—इहि विधि दुखित प्रजेशकुमारी। अकथनीय दारुण दुख भारी॥
बीते संवत सहस सतासी। तजी समाधि शंभु अविनासी॥

अर्थ—इस प्रकार दक्ष प्रजापति की पुत्री (अर्थात् सतीजी) चिंतातुर रहतीं थीं उनको इतना भारी दुःख था कि उसका वर्णन नहीं हो सक्ता। जब सतासी हज़ार वर्ष बीत गये तब अविनाशी शंकर जी की समाधि खुली।

चौ०—राम नाम शिव सुमिरन लागे। जानेउ सती जगतपति जागे॥
जाय शम्भु पद वंदन कीन्हा। सन्मुख शंकर आसन दीन्हा॥

अर्थ—शिवजी राम नाम का उच्चारण करने लगे तब सती जी ने जान लिया कि जगत के स्वामी श्री शंकर जी की समाधि खुली। उन्हों ने जाकर शिवजी के चरणों की वंदना की और शंकर जी ने उन्हें अपने साम्हने बैठने के हेतु आसन दिया (स्मरण रहे कि सदाशिव जी ने सदा की नाईं उन्हें बाईं ओर न बिठलाया परन्तु सीता का भेप धारण करने के दोष से उन्हें अपने साम्हने बिठलाया जैसा किसी प्रतिष्ठित या पूज्य प्राणी को बिठलाते हैं)

(१६ दक्ष का यज्ञ)

चौ०—लगे कहन हरि कथा रसाला। *दक्ष प्रजेश भये तेहि काला॥
देखा विधि विचार सब लायक। दक्षहिं कीन्ह प्रजापति नायक॥

* दक्ष-ब्रह्मा के दश मानस पुत्रों में एक दक्ष जी थे। ये ब्रह्मदेव के दाहिने अंगूठे से उत्पन्न होने के कारण सम्पूर्ण प्रजापतियों के मुखिया थे। स्वायम्भुमनु ने प्रसूती नाम की अपनी कन्या इन्हें ब्याह दी। इस जोड़े से (१) श्रद्धा (२) मैत्री (३) दया (४) शांति (५) तुष्टि (६) पुष्टि (७) क्रिया (८) उन्नति (९) बुद्धि (१०) मेधा (११) तितिक्षा (१२) ह्री (१३) मूर्त्ति (१४) स्वाहा (१५) स्वधा और (१६) सती ये कन्यायें उत्पन्न हुईं। दक्ष के पुत्र और पुत्रियों का हाल अन्यत्र, दक्ष सुताह उपदेसेहु आदि की टिप्पणी में आगे मिलेगा. एक समय ब्रह्मा, शिव, मरीचि आदि महर्षि और संपूर्ण देवताओं की सभा में दक्षप्रजापति जा पहुंचे। उस समय ब्रह्मा और शिव जी के सिवाय सब ने उठ कर आदर से इन्हें प्रणाम किया। ब्रह्मा जी तो पितामह तथा दक्ष के उत्पन्नकर्त्ता थे, परन्तु शिवजी को अपना दामाद समझ उन से भी आदर न पाकर दक्ष जी ने क्रुद्ध हो उनसे अनेक दुर्वचन कहे और मन में उनसे बैर भी

अर्थ—वे श्री राम चन्द्र जी की माधुर्य रस से भरी हुई कथाएं कहने लगे, उसी समय दक्ष जी को प्रजापति का पद व अधिकार दिया गया (और फिर भी) जब ब्रह्मा ने विचार से देखा कि दक्ष जी सब प्रकार से योग्य हैं तब तो उन्हें प्रजापतियों का मुखिया बना दिया।

बड़ अधिकार दक्ष जब पावा। अति अभिमान हृदय तब आवा॥
नहिं कोउ अस जन्मेउ जग माहीं।*प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥

अर्थ—जब दक्ष जी को ऐसा बड़ा अधिकार मिला तब तो उनके हृदय में बड़ा घमंड आगया। (क्योंकि) संसार में ऐसा कोई भी प्राणी जन्म लेकर नहीं आया कि जिसे अधिकार मिलने पर घमंड न आ जाता हो।

दो०—दक्ष लिये मुनि बोलि सब, †करन लगे बड़ याग।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख भाग॥ ६०॥

ठान लिया। जिस समय दक्ष ने यज्ञ आरंभ किया उस समय इन्हों ने अपनी सब कन्याओं को तो बुलाया परन्तु शिव जी और सती को बुलावा तक न भेजा. सती शिवजी के बरजने पर भी बिना बुलाये यज्ञ में गईं परन्तु वहां पर दक्ष द्वारा शिवजी का अपमान और अपना निरादर देख ऐसी दुखी हुईं कि उन्होंने योगाग्नि से अपना शरीर भस्म कर दिया। इस समाचार के सुनते ही शिव जी क्रोधित हुए और उन्होंने अपनी जटा की फटकार से वीरभद्र नाम के बड़े पराक्रमी वीर को सहायक गणों समेत उत्पन्न किया. वीरभद्र ने आकर सब यज्ञ विध्वंस कर के अनेक देवताओं को भांति २ के दंड देकर वहां से भगा दिया और दक्ष का शिर काट कर अग्निकुंड में डाल दिया। पीछे से देवताओं की विनय सुन कर भोलानाथ जी प्रसन्न हुए और उन्होंने यज्ञस्थल में आकर दक्ष को जिलाना चाहा परन्तु उसका मस्तक तो भस्म हो गया था इस हेतु बकरे का शिर दक्ष के धड़ पर जमा कर उसे जीवित किया (कहते हैं कि जब बकरे की नाईं गिड़गिड़ा कर दक्ष ने शिव जी को प्रणाम किया तब उस बोली से शिव जी बहुत प्रसन्न हुए और यह वरदान दिया कि इसी प्रकार बकरे की नाईं ध्वनि करने वालों से मैं दक्षजी के विचार से सदैव प्रसन्न रहूंगा तभी से सब लोगों का ध्यान जम गया है कि वे शिवालय में आकर ऐसी ध्वनि करते हैं और कहते हैं कि गाल बजाने से भोलानाथ जी प्रसन्न होते हैं)॥

* प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं—ठीक ही कहा है कि—'कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितो विषयिणः कस्यापदोऽस्तं गताः' अर्थात् धन आदि ऐश्वर्य पा कर के किस को गर्व नहीं हुआ और किस विषयासक्त की आपत्तियां नहीं गईं (अर्थात् ऐश्वर्यवान् गर्व को और विषयी दुःख को प्राप्त होते ही हैं)

† करन लगे बड़ याग—श्री मद्भागवत् के चतुर्थ स्कन्ध के तीसरे अध्याय में लिखा है—

[श्लोक]

अर्थ—तौ सब को एक सा देखने वाले हे प्रभु! वही उपाय जल्दी से कीजि[illegible] जिसमें बिना ही अड़चन के मेरी मृत्यु हो जाय और यह असह्य दुःख दूर होवे।

चौ०—इहि विधि दुखित प्रजेशकुमारी। अकथनीय दारुण दुख भारी॥
बीते संवत सहस सतासी। तजी समाधि शंभु अविनासी॥

अर्थ—इस प्रकार दक्ष प्रजापति की पुत्री (अर्थात् सतीजी) चिंतातुर रह[illegible] थीं उनको इतना भारी दुःख था कि उसका वर्णन नहीं हो सक्ता। जब सतासी हज़ार वर्ष बीत गये तब अविनाशी शंकर जी की समाधि खुली।

चौ०—राम नाम शिव सुमिरन लागे। जानेउ सती जगतपति जागे॥
जाय शम्भु पद वंदन कीन्हा। सन्मुख शंकर आसन दीन्हा॥

अर्थ—शिवजी राम नाम का उच्चारण करने लगे तब सती जी ने जान लिय[illegible] कि जगत के स्वामी श्री शंकर जी की समाधि खुली। उन्हों ने जाकर शिवजी के चरणों की वंदना की और शंकर जी ने उन्हें अपने साम्हने बैठने के हेतु आसन दिया (स्मरण रहे कि सदाशिव जी ने सदा की नाईं उन्हें बाईं ओर न बिठलाया परन्तु सीता का भेष धारण करने के दोष से उन्हें अपने साम्हने बिठलाया [illegible] किसी प्रतिष्ठित या पूज्य प्राणी को बिठलाते हैं)

(१६ दक्ष का यज्ञ)

चौ०—लगे कहन हरि कथा रसाला। *दक्ष प्रजेश भये तेहि काला॥
देखा विधि विचार सब लायक। दक्षहिं कीन्ह प्रजापति नायक॥

* दक्ष-ब्रह्मा के दश मानस पुत्रों में एक दक्ष जी थे। ये ब्रह्मदेव के दाहिने अंगूठे से उत्पन्न होने के कारण सम्पूर्ण प्रजापतियों के मुखिया थे। स्वायम्भुव मनु ने प्रसूति नाम की अपनी कन्या इन्हें ब्याह दी। इस जोड़े से (१) श्रद्धा (२) मैत्री (३) [illegible] (४) शांति (५) तुष्टि (६) पुष्टि (७) क्रिया (८) उन्नति (९) बुद्धि (१०) [illegible] (११) तितिक्षा (१२) ह्री (१३) मूर्ति (१४) स्वाहा (१५) स्वधा और (१६) [illegible] कन्याएं उत्पन्न हुईं। इन के पुत्र और पुत्रियों का हाल भागवत, [illegible] [illegible] की टिप्पणी में आगे लिखेंगा।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

होना सुन कुछ प्रसन्न हुई। (और विचारने लगीं) जो शिव जी मुझे आज्ञा देवें तो इसी बहाने से कुछ दिन (मायके में) जा रहूं।

चौ०–पति परित्याग हृदय दुख भारी। कहै न निज अपराध विचारी॥
बोलीं सती मनोहर बानी। भय संकोच प्रेम रस सानी॥

अर्थ—पति से त्याग दिये जाने का हृदय में भारी दुःख था उसे अपना ही दोष समझ कर कहती न थी। (निदान पक्का जी करके) सती जी मनभावने वचन बोलीं, जिन में भय लज्जा और प्रेम झलक रहे थे।

दो०–पिताभवन उत्सव परम, जो प्रभु आयसु होय।
तौ मैं जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोय॥ ६१॥

अर्थ—हे कृपा के धाम (शिव जी) मेरे पिता जी के घर बड़ा उत्सव है जो आपकी आज्ञा पाऊं तो आदर सहित उसे देखने को जाऊं।

चौ०–कहेउ नीक मोरे मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा।
दक्ष सकल निज सुता बुलाई। हमरे बैर तुमहिं बिसराई॥

अर्थ—तुम ने अच्छा कहा और यह मेरे मन को भी अच्छा लगा परन्तु यह उचित नहीं किया जो (दक्ष ने) नेवता नहीं भेजा। (देखो) दक्ष ने अपनी और सब पुत्रियों को तो बुला भेजा परन्तु हम से बैर होने के कारण तुम्हें भुला दिया।

चौ०–ब्रह्मसभा हम सन दुख माना। तेहिते अजहुँ करहिं अपमाना।
जो बिन बोले जाहु भवानी। रहै न शील सनेह न कानी॥

शब्दार्थ—कानी=मर्यादा।

अर्थ—उन्हों ने ब्रह्मसभा में हम से बुराई मानी थी (देखो दक्ष का जीवन चरित्र) इसी से अभी तक हमारा अनादर करते हैं। हे सती! जो बिना बुलाये जाओगी तो न आदर न प्रेम और न मर्यादा रहेगी।

चौ०–यदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा। जाइय बिन बोले न सँदेहा।
*तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहां गये कल्याण न होई॥

---

* तदपि विरोध मान जहँ कोई। तहां गये कल्याण न होई—श्री मद्भागवत ४ स्कन्ध ३ अध्याय।

अर्थ—यद्यपि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाये जाना चाहिये इसमें कुछ सन्देह नहीं । तौ भी जहां इनमें से कोई भी वैर भाव रक्खे उसके घर जाने से भलाई नहीं होती ।

चौ०—भांति अनेक शंभु समुझावा । *भावीवश न ज्ञान उर आवा ॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बुलाये । नहिं भलि बात हमारे भाये ॥

अर्थ—शिवजी ने कई प्रकार से समझाया परन्तु होनहार के कारण हृदय में कुछ बोध न हुआ । तब तो प्रभु कहने लगे कि जो बिना बुलाये जाओगी तो मैं समझता हूं कि यह काम ठीक नहीं ।

दो०—कहि देखा हर यतन बहु, रहै न दक्ष कुमारि ।
दिये मुख्यगण संग तब, बिदा कीन्ह त्रिपुरारि ॥ ६२ ॥

अर्थ—शिवजी ने बहुत उपाय कर देखे परन्तु सती जी रहना नहीं चाहीं तब महादेव जी ने अपने कुछ प्रधान गणों के साथ उनकी बिदा करदी ।

चौ०—पिता भवन जब गईं भवानी । दक्ष त्रास काहु न सन्मानी ॥
†सादर भलेहि मिली इक माता । भगिनी मिलीं बहुत मुसकाता ॥

अर्थ—जब सतीजी अपने पिता के घर पहुंचीं तो दक्ष के डर के मारे किसी ने उनका आदर नहीं किया । हां ! केवल उनकी माता तो उनसे आदर सहित मिली परन्तु बहिनें तो बहुत कुछ मुसकाती २ मिलीं ॥

श्लोक—[illegible]
[illegible] ॥ ११ ॥
अर्थात् (शिव जी बोले) हे सती ! [illegible] बिना बुलाये भी जाने [illegible] के घर जाते हैं [illegible] परन्तु [illegible] उनके घर जाने से कल्याण न होगा ।

* [illegible] देखो [illegible] पृ० १३८, १३९

† [illegible]

चौ०—दच्छ न कछु पूछी कुशलाता। सतिहिं बिलोकि जरे सब गाता॥
सती जाय देखेउ तब यागा। कतहुँ न दीख शंभु कर भागा॥

शब्दार्थ—याग (यज्=पूजना)=यज्ञ, हवन ।

अर्थ—दक्ष ने कुशलप्रश्न तक न किया वरन सती को देखते ही उनका शरीर (क्रोध से) जल उठा। इतने में सती ने जाकर जो हवनस्थान को देखा सो वहां शिव जी के निमित्त कोई यज्ञभाग न दिखाई दिया॥

चौ०—तब चित चढ़ेउ जो शंकर कहेऊ। प्रभु अपमान समुझि उर दहेऊ।
पाछिल दुख न हृदय अस व्यापा। जस यह भयउ महा परितापा॥

अर्थ—तब उसी बात की सुध आगई जो शंकर जी ने कही थी (कि "तदपि विरोध मान जहँ कोई। तहाँ गये कल्याण न होई") इसके सिवाय पति का निरादर समझ हृदय में जलन उठी। (शिवद्वारा परित्याग किये जाने का) पहिला दुःख इतना न व्याँपा जितना कि ये दुःख अधिक व्यापा।

चौ०—यद्यपि जग दारुण दुख नाना। *सब ते कठिन जातिअपमाना॥
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा। बहु बिधि जननी कीन्ह प्रबोधा॥

अर्थ—यद्यपि संसार में बहुतेरे कठिन दुःख हैं तो भी अपने जाति भाइयों के द्वारा निरादर सब से कठिन है। यह समझ कर सती को और भी अधिक क्रोध हुआ (जिसे देख) माता ने अनेक प्रकार से समझाया।

दो०—शिवअपमान न जाय सहि, हृदय न होत प्रबोध।
सकल सभहिं हठि हटकि तब, †बोली बचन सक्रोध॥६३॥

अर्थ—शिवजी का अनादर सहा नहीं जाता था और इसी से हृदय में ज्ञान

---

* सब ते कठिन जातिअपमाना—जैसा कि श्री मद्भागवत में लिखा है—
'संभावितस्य स्वजनात्पराभवो यदा स सद्यो मरणाय कल्पते'
अर्थात् प्रतिष्ठित पुरुष का यदि उसके संबंधियों से अपमान हो जाय तो वह तत्काल उसके मरण का कारण हो जाता है॥

† बोली बचन सक्रोध—
श्लोक—पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥
अर्थात् निन्दकता, साहस, द्रोह, [illegible], ईर्षा, [illegible] [illegible] और [illegible] क्रोध के [illegible] हैं॥

चौ०—जगदातमा* महेश† पुरारी‡। जगतजनक** सब के हितकारी ॥
पिता मंदमति निंदत तेही। †† दच्छशुक्रसंभव यह देही ॥

शब्दार्थ—जगदातमा (जगत = संसार + आतमा = आधार) = संसार के आधार। शुक्र = वीर्य।

अर्थ—महादेव जी संसार के आधार और त्रिपुर राक्षस के मारने वाले, संसार के रचने वाले और सब का हित करने वाले हैं। ऐसे शिव जी का इस मति हीन पिता ने निरादर किया और जब कि यह मेरा शरीर इन्हीं दक्ष के वीर्य से उत्पन्न है ॥

चौ०—तजिहौं तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि ‡‡ चंद्रमौलि वृषकेतू ॥
‡‡‡ अस कहि योगअग्नि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा ॥

---

* जगदातमा—इस विशेषण से यह सूचित किया कि शिव जी ही संसार के आधार भूत हैं, कारण वे संहारकर्त्ता हैं।

† महेश—से सब देवताओं में महत्व वाले दर्शाये ॥

‡ पुरारी—से स्पष्ट जताया है कि बड़े प्रतापी त्रिपुर नाम रा[illegible] वधकर्त्ता हैं ॥

** जगत जनक से आदरणीय और [illegible] के हि[illegible] कर यह बतलाया कि दयालु और उदार [illegible] यहाँ तक कि 'आदिहु मेटि सकहिं त्रिपुरारी'

†† दच्छशुक्रसंभव यह देही। इत्यादि—श्रीमद्भागवत से—

श्लोक—अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं, न धारयिष्ये शितिकंठ गर्हिणः ।
जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धि मंधसो, जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ॥

अर्थात् इस कारण नीलकंठ शिव जी की निन्दा करने वाले तुझ से उत्पन्न हुए इस शरीर को अब मैं धारण नहीं करूंगी। क्योंकि भ्रम से भक्षण किये हुए अपवित्र अन्न को वमन करके निकाल देना ही पुरुष की शुद्धि का कारण कहा गया है ॥

‡‡ चंद्रमौलि—इस विशेषण से शीतलता देते हुए अमृत बरसाने वाले तथा 'वृषकेतु से' धर्म की मर्यादा रखने वाले प्रकट कर उन्हें हृदय में धारण कर पार्वती जी ने जो प्राण त्यागे सो तुरंत ही हिमाचल के यहाँ जन्म ले धर्म की मर्यादा से शिव जी के साथ ही विवाह कर उन से अमरकथा सुन कर अमरत्व को प्राप्त हुईं ॥

‡‡‡ अस कहि योगअग्नि तनु जारा—योगाग्नि को उत्पन्न कर अपने शरीर को भस्म करने की विधि जो श्री मद्भागवत में लिखी है उस का थोड़ा सा ब्योरा लिखा जाता है—

पीला वस्त्र धारण कर मौन हो उत्तर दिशा की ओर मुख करके आसन लगावे फिर नेत्र मूंद कर समाधि लगावे अर्थात् ऊर्ध्व गति प्राण वायु और अधोगति अपान वायु को नाभि चक्र में एक स्थान पर स्थिर करे। फिर उन दोनों प्रकार की वायु को

(१७ पार्वती की कथा)

चौ०—जब ते उमा शैलगृह आई। सकल सिद्धि सम्पति तहँ छाई॥
जहँ तहँ मुनिन सु आश्रम कीन्हें। उचित वास हिम भूधर दीन्हें॥

अर्थ—जिस समय से पार्वती हिमाचल के घर में जन्मी, तभी से वहाँ संपूर्ण सिद्धियां और ऐश्वर्य जा पहुंचे। ठौर ठौर पर मुनियों ने सुन्दर आश्रम बना लिये जिनके हेतु हिमाचल पर्वत ने यथायोग्य स्थान भी प्रदान किये थे॥

दो०—सदा सुमन फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति।
प्रकटीं सुन्दर शैल पर, मणिआकर बहु भांति॥ ६५॥

अर्थ—भांति भांति के नये वृक्ष सब के सब सदा फूलने फलने लगे और उस मनोहर पर्वत पर नाना प्रकार की मणियों की खदानें प्रकट हो गईं॥

चौ०—सरिता सब पुनीत जल बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं॥
सहज बैर सब जीवन त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा॥

अर्थ—(हिमालय से निकली हुई) सब नदियों में पवित्र जल बहने लगा और सम्पूर्ण पक्षी पशु और भौंरे आनंद से रहने लगे। सब जीवधारियों ने अपना स्वाभाविक बैर छोड़ दिया और सब हिल मिल कर पर्वत पर सुख चैन से रहने लगे॥

चौ०—सोह शैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन रामभक्ति के पाये॥
*नित नूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं यश जासू॥

शब्दार्थ—नूतन=नया

अर्थ—पार्वती जी के जन्म लेने से हिमाचल इस प्रकार शोभायुक्त हो गया जिस प्रकार प्राणी रामभक्ति पाने से हो जाता है। उनके घर दिनों दिन नये उत्सव होने लगे और ब्रह्मा आदि सब देव उनकी कीर्ति का [illegible] करने लगे॥

* [illegible]

चौ०—जगदातमा* महेश† पुरारी‡। जगतजनक** सब के हितकारी॥
पिता मंदमति निंदत तेही। †† दक्षशुक्रसंभव यह देही॥

शब्दार्थ—जगदातमा (जगत = संसार + आत्मा = आधार) = संसार के आधार। शुक्र = वीर्य।

अर्थ—महादेव जी संसार के आधार और त्रिपुर राक्षस के मारने वाले, संसार के रचने वाले और सब का हित करने वाले हैं। ऐसे शिव जी का इस मति हीन पिता ने निरादर किया और जब कि यह मेरा शरीर इन्हीं दक्ष के वीर्य से उत्पन्न है॥

चौ०—तजि हौं तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि ‡‡ चंद्रमौलिवृषकेतू॥
‡‡‡ अस कहि योगअग्नि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥

---

* जगदातमा—इस विशेषण से यह सूचित किया कि शिव जी ही संसार के आधार भूत हैं, कारण वे संहारकर्ता हैं।

† महेश—से सब देवताओं में महत्व वाले दर्शाये॥

‡ पुरारी—से स्पष्ट जताया है कि बड़े प्रतापी त्रिपुर नाम राक्ष[illegible]

** जगत जनक से आदरणीय और सब के हित[illegible] [illegible] जी से जब शिव [illegible] और [illegible] जटा फटकारी तो उस में से

†† दक्षशुक्रसंभव यह देही। इत्यादि—[illegible] उसका बड़ा भारी शरीर मेघ के समान [illegible] थे हुए सहस्र भुजा वाले इस पुरुष के
श्लोक—[illegible] [illegible] नेत्र थे। उसके गले में मुण्डमाल थी और [illegible] बड़ा ही घोरतथा तेजस्वी था।

‡‡ यह [illegible] सकल जग जागा। आदि—दक्ष यज्ञ की कथा श्री मद्भागवत के चौथे स्कंध [illegible] स्वामी जी ने लिखी है। उसका परिणाम पृ० १८० की टिप्पणी में दक्ष के जीवन चरित्र में लिखा है। श्री रामचन्द्र जी से 'सती समेत शिव जी का वन में भेंट तथा सतीमोह की कथा भागवत में नहीं है॥

‡‡‡ तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई। जन्मी पारवती तनु पाई—[illegible] [illegible]।

श्लोक—अथावमानेन पितुः प्रयुक्ता, दक्षस्य कन्या भवपूर्वपत्नी।
सतीसती योगविसृष्टदेहा, तां जन्मने शैलवधूं प्रपेदे॥२१॥

अर्थात् (विवाह होने के पश्चात्) दक्ष की कन्या शिव जी की पहिली स्त्री पतिव्रता सती नाम की थी ने पिताद्वारा पाये हुए अपमान के कारण योग-बल से देह त्याग कर हिमालय के यहाँ जन्म लिया॥

(१७ पार्वती की कथा)

चौ०—जब ते उमा शैलगृह आई। सकल सिद्धि सम्पति तहँ छाई।
जहँ तहँ मुनिन सु आश्रम कीन्हें। उचित वास हिम भूधर दीन्हें।

अर्थ—जिस समय से पार्वती हिमाचल के घर में जन्मी, तभी से वहाँ पर संपूर्ण सिद्धियां और ऐश्वर्य जा पहुंचे॥ ठौर ठौर पर मुनियों ने सुन्दर आश्रम बना लिये जिनके हेतु हिमाचल पर्वत ने यथायोग्य स्थान भी प्रदान किये थे॥

दो०—सदा सुमन फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति।
प्रकटीं सुन्दर शैल पर, मणिआकर बहु भांति ॥ ६५॥

अर्थ—भांति भांति के नये वृक्ष सब के सब सदा फूलने फलने लगे और इस मनोहर पर्वत पर नाना प्रकार की मणियों की खदानें प्रकट हो गईं॥

चौ०—सरिता सब पुनीत जल बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं।
सहज बैर सब जीवन त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा॥

अर्थ—(हिमालय से निकली हुई) सब नदियों में पवित्र जल बहने लगा और सम्पूर्ण पक्षी पशु और भौंरे आनंद से रहने लगे। सब जीवधारियों ने अपना स्वाभाविक बैर छोड़ दिया और सब हिल मिल कर पर्वत पर सुख चैन से रहने लगे।

चौ०—सोह शैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन रामभक्ति के पाये॥
नित नूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं यश जासू॥

शब्दार्थ—नूतन-नया

अर्थ—पार्वती जी के जन्म लेने से हिमाचल इस प्रकार शोभायुक्त हो गए जिस प्रकार प्राणी रामभक्ति पाने से हो जाता है। उनके घर दिनों दिन नये [illegible] होने लगे और ब्रह्मा आदि सब देव उनकी कीर्ति का वर्णन करने लगे।

चौ०—नारद समाचार सब पाये। कौतुक ही गिरिगेह सिधाये॥
शैलराज बड़ आदर कीन्हा। *पद पखारि वर आसन दीन्हा॥

अर्थ—जब नारद जी को यह हाल मालूम हुआ तब वे चित्त विनोद के लिये हिमाचल के महलों में पधारे। गिरिराज ने उनका बड़ा सत्कार किया उनके चरण धोये और उत्तम आसन बैठने को दिया।

चौ०—नारि सहित मुनिपद शिर नावा। †चरणसलिल सब भवन सिंचावा।
‡निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनिचरना॥

शब्दार्थ—सलिल=जल।

अर्थ—हिमवान् ने मैना रानी के साथ नारद जी के चरणों पर सीस नवाया और उनका चरणोदक अपने महलों में छिड़कवा दिया। पर्वतराज ने अपने भाग्य की बहुत बड़ाई की (सो यों कि धन्य हैं मेरे भाग्य कि देवऋषि जी ने आकर मेरे गृह को पवित्र किया और मुझे भी कृतार्थ किया) फिर उन्हों ने पार्वती को बुला मुनि जी के चरणों में डाल दिया॥

---

* पद पखारि वर आसन दीन्हा—ब्रह्म वैवर्त्त पुराण-गणेशखंड के चौथे अध्याय से—

श्लोक—आसनं स्वागतम् पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
मधुपर्कश्च स्नानीयं वस्त्राणि भूषणानि च॥
सुगन्धि पुष्प धूपं च दीप नैवेद्य चन्दनम्।
यज्ञसूत्रं च ताम्बूलं कर्पूरादि सुवासितम्॥
द्रव्याण्ये ते तानि पूजा याश्चांगरूपाणि सुन्दरि॥

अर्थात् हे सुन्दरी आदरपूर्वक आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्र, आभूषण, सुगंध, फूल, धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन, यज्ञोपवीत, मसालेदार पान, ये पदार्थ पूजा के निमित्त होना चाहिये॥

† चरणसलिल सब भवन सिंचावा—चाणक्य नीति में लिखा है—

श्लोक—न विप्र पादोदक कर्दमानि, न वेद शास्त्र ध्वनि गर्जितानि।
स्वाहा स्वधाकार विवर्जितानि, श्मशान तुल्यानि गृहाणि तानि॥

अर्थ—जिन घरों में ब्राह्मण के पावों के जल से कीचड़ न हुआ हो और न वेद शास्त्र के शब्द की ध्वनि हुई हो तथा जो गृह स्वाहा स्वधा से रहित हों उनको श्मशान के समान जानना चाहिये। भाव यह कि जिस घर में ब्राह्मण के चरण न पखारे जावें, जिसमें वेद का पठन न हो और जिसमें यज्ञ तथा श्राद्ध न किये जावें वे घर अपवित्र हैं॥

‡ निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना—कहावत प्रसिद्ध ही है कि 'धन्य वाके भाग जाके साधु आवें पाहुने'

दो०—त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम, गति सर्वत्र तुम्हारि ।
कहहु सुता के दोष गुण, मुनिवर हृदय विचारि ॥६६॥

शब्दार्थ—त्रिकालज्ञ (त्रि=तीन + काल=समय + ज्ञ=जानना)=तीनों काल (भूत भविष्यत वर्तमान) के जानने वाले,

अर्थ—हे श्रेष्ठ मुनि जी ! आप तीनों काल का हाल जानते हैं और सब बातें समझते हैं तथा आप सब स्थानों में विचरते हैं । इसहेतु मन में विचार कर पुत्री के गुण दोष कहिये ॥

चौ०—कह *मुनि विहँसि गूढ़ मृदु बानी । सुता तुम्हारि सकल गुणखानी ।
सुंदर सहज सुशील सयानी । नाम उमा अंबिका भवानी ॥

अर्थ—नारद मुनि हँसकर के गूढ़ और मधुर वचन बोले कि तुम्हारी पुत्री सब गुणों से परिपूर्ण है । रूपवती स्वभाव ही से शीलवती और सयानी है और इसके नाम उमा, अम्बिका तथा भवानी हैं ॥

चौ०—सब लक्षण संपन्न कुमारी । होइहि संतति पियहि पियारी ।
सदा अचल इहि कर अहिवाता । इहि ते †यश पैहहिं पितुमाता ॥

शब्दार्थ—अहिवात (सं० अस्तिपति=है पति जिस का)=सुहाग,

अर्थ—तुम्हारी सुता सब लक्षणों से युक्त है (इसहेतु) अपनें पति को सदा प्यारी रहैगी । इसका सुहाग सदा अटल रहैगा और माता पिता भी इस से यश पावैंगे ॥

चौ०—होइहि पूज्य सकल जगमाहीं । इहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं ॥
इहि कर नाम सुमिरि संसारा । तिय चढ़िहहिं पतिव्रत असिधारा ॥

---

* कह मुनि विहँसि गूढ़ मृदुबानी । सुता तुम्हारि सकल गुण खानी—
नारद जी के हँसने का यह कारण जँचता है कि हिमाचल ने पुत्री के गुण दोष साधारण पुत्री की भाँति पूछे परन्तु यह न जाना कि ये सम्पूर्ण सुलक्षणों से परिपूर्ण हैं इन में दोष नहीं हैं और गूढ़ मृदुबानी यह कि 'उमा' नाम से ब्रह्म स्वरूपिणी, 'अंबिका' नाम से जगत माता, और 'भवानी' नाम से शिवजी की पत्नी होगी ऐसा इंगित किया ॥

† इहि ते यश पैहहिं पितु माता—
दो०—नारी जनित प्रसून तें, कहत न लोकाचार ।
हिम गिरि [illegible] ॥

अर्थ—यह सब संसार में पूजनीय होगी और इसकी सेवा करने से कुछ भी दुर्लभ न रहेगा (अर्थात् सब कुछ मिल सकेगा)। इसका नाम स्मरण करके पतिव्रता स्त्रियाँ पतिव्रत-धर्मरूपी तलवार की धार पर चढ़ेंगी। (अर्थात् जो स्त्रियां पातिव्रत्य धर्म को धारण करना चाहेंगी जो कि ऐसा कठिन है कि मानो तलवार की धार पर चढ़ना है वे इन्हीं का नाम लेकर सफल मनोरथ होवेंगी) ॥

चौ०—शैल सुलक्षणि सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुण दुइचारी।
†अगुण अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संशय छीना ॥

अर्थ—हे गिरिराज ! तुम्हारी सुता सुलक्षणा है तौ भी अब जो दो चार दुर्गुण उस में हैं सो भी सुनो कि गुण रहित, मान रहित, मात पिता विहीन संसार-त्यागी और वे फ़िक्र।

दो०—योगी जटिल अकाम मन, नगन असंगलभेख।
*अस स्वामी इहि कहँ मिलिहि, परी हस्त अस रेख ॥ ६७ ॥

* अस स्वामी इहि कहँ मिलिहि आदि—इस कथन का नारद जी के अनुसार प्रत्यक्ष दूषित अर्थ और यथार्थ गूढ़ार्थ नीचे के कोष्टक से स्पष्ट होगा।

शब्द	नारद अनुसार देखने में दूषित अर्थ	गूढ़ आशय
१ †अगुण	गुण हीन ...	सत रज तम इन तीनों गुणों से परे अर्थात् निर्गुण ब्रह्म
२ अमान	मान रहित ...	बे प्रमाण ऐश्वर्य युक्त
३ मातु पितु हीना	माता पिता विहीन ...	सब के माता पिता अतएव माता पिता हीन क्योंकि अनादि हैं।
४ उदासीन	संसार त्यागी ...	शत्रु मित्र को एक सा समझने वाले अर्थात्

अर्थ—योगी वरागी, जटाधारी, बेकाम, वस्त्रहीन और अशुभ भेष धारी ऐसा पति इसको मिलेगा इसके हाथ में ऐसी ही रेखा पड़ी है ।

चौ०—सुनि मुनि गिरा सत्य जिय जानी। दुख दंपतहि उमा* हरषानी॥
नारद हू यह भेद न जाना। †दशा एक समुझब बिलगाना॥

अर्थ—मुनि जी के वचनों को सुन और उन्हें हृदय में सत्य समझ मातापिता को तो दुःख हुआ परन्तु पार्वती प्रसन्न हुईं। यह बात नारद जी भी न समझ सके कि सब सुनने वालों का देह विकार तो एक ही सा दिखाई दिया परन्तु उन में समझ का भेद था (अर्थात् सब के शरीर रोमांचित हुए और नेत्रों में आंसू भर आये परन्तु दंपति को तो दुःख के कारण ऐसा हुआ और पार्वती को सुख के कारण) इस दशा भेद को नारद जी भी न समझे ॥

चौ०—सकल सखी गिरिजा गिरि मयना। पुलक शरीर भरे जल नयना॥
होइ न मृषा देवऋषि भाखा। उमा सो वचन हृदय धरि राखा॥

अर्थ—सब सखियों के तथा पार्वती, हिमाचल और मयना के रोम खड़े हो आये और नेत्रों में आंसू भर आये। जो नारद मुनि जी ने कहा है सो झूठ नहीं हो सक्ता इस हेतु उन वचनों को पार्वती ने हृदय में रख लिया ॥

चौ०—उपजेउ शिवपदकमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू॥
जानि कुअवसर प्रीति दुराई। सखीउछंग बैठि पुनि जाई॥

शब्दार्थ—उछंग (सं० उत्संग) = गोदी।

अर्थ—शिव जी के कमलस्वरूपीचरणों में उनका प्रेम उत्पन्न हुआ परन्तु मन में यह संदेह हुआ कि शिव जी का मिलना कठिन है। कुअवसर जान कर प्रीति को छिपाया और फिर वे अपनी सखी की गोद में जा बैठीं ॥

* [illegible]

† [illegible]

चौ०—झूठ न होइ देवऋषि बानी। सोचहिं दंपति सखी सयानी॥
उर धरि धीर कहै गिरिराऊ। कहहु नाथ का करिय उपाऊ॥

अर्थ—नारद जी के वचन झूठे नहीं होते इस प्रकार राजा रानी और चतुर सखियां चिंता करने लगीं। फिर हिमवान धीरज धर कहने लगे हे स्वामी! कहिये हम क्या उपाय करें?

दो०—कह मुनीश हिमवंत सुन, जो विधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनहार॥६८॥

अर्थ—श्रेष्ठ मुनि कहने लगे कि हे गिरिराज! सुनिये, ब्रह्मा ने जो कुछ भाग्य लिख दिया है उसे देवता, राक्षस, मनुष्य, सर्प अथवा मुनि कोई भी मिटा नहीं सकता॥

चौ०—तदपि एक मैं कहौं उपाई। होइ करै जो दैव सहाई॥
जस वर मैं बरणेउ तुम पाहीं। मिलिहि उमहि कछु संशय नाहीं॥

अर्थ—तो भी मैं एक उपाय बतलाता हूं जो ईश्वर सहायता करे तो सिद्ध हो जाय। जैसे पति का मैं ने तुम से वर्णन किया है वैसा ही पार्वती को मिलेगा इसमें कुछ संदेह नहीं॥

चौ०—जे जे वर के दोष बखाने। ते सब शिव पहं मैं अनुमाने॥
जो विवाह शंकर सन होई। दोषौ गुण सम कह सब कोई॥

अर्थ—जितने वर के दोष वर्णन किये वे सब मैं ने शंकर जी में विचार किये

विधि लिखा लिलार।

हैं (इस हेतु कुमारी का) विवाह जो शंकर जी के साथ होवे तो सब लो[ग] दोषों को भी गुण कहने लगेंगे ॥

चौ०*जो अहिसेज शयन हरि करहीं। बुध कछु तिन कहँ दोष न ध[रहीं]।
भानु कृशानु सर्व रस खाहीं। तिन कहँ मन्द कहत कोउ नाहीं॥

अर्थ—जो विष्णु जी सर्प की शय्या पर सोते हैं तो बुद्धिमान लोग उनको [दोष] नहीं लगाते (अर्थात् निंदनीय विषहरे सर्प पर यदि कोई साधारण प्रा[णी सोता] तो लोग उसे दूषित ठहरावैं परन्तु सर्व शक्तिमान विष्णु जी का वही नाम [हो गया] हुए कहा करते हैं कि शेषशायीहिभगवान) सूर्य और अग्नि बुरे भले पदा[र्थों का] रस खींचते हैं तौभी लोग उन्हें बुरा नहीं कहते ॥

चौ०—शुभ अरु अशुभ सलिल सब वहहीं। सुरसरि कोउ अपुनीत न कह[हीं]।
†समरथ कहँ नहिं दोप गोसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं॥

अर्थ—सब प्रकार का भला बुरा पानी बहा करता है तौ भी गंगा जी को कोई अपवित्र नहीं कहता। हे पर्वताधिराज ! सामर्थ्यवान् को कोई दोष नहीं लग[ता] जिस प्रकार सूर्य अग्नि और गंगा जी (जिनके बारे में ऊपर कह आये हैं,

---

* जो अहिसेज शयन हरि करहीं। जैसा कहा है:—

श्लोक--नग्नत्वं नील कंठस्य महाऽहि शयनं हरेः।

अर्थात् शिवजी का दिगम्बर रूप से रहना और विष्णु जी का [शेष] की शय्या पर सोना। (दूषित नहीं समझा जाता)।

† समरथ कहँ नहिं दोष गोसाईं:--इस सोचना चाहिये कि थोड़ी सी [illegible] विद्या प्रभुता को पाकर लोग अपने को 'समर्थ' मान बैठते हैं और अनु[चित] कार्य कर डालते हैं तथा उन को बुद्धि में गोसाईं जी की यही उक्ति [illegible] है उनका यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि सदा सामर्थ्य तो और ही बात और वह सांचे की कसौटी से ज्ञात होता है—

चौ०—[illegible]

[illegible]

दो०—जो अस हिसिका करहिं नर, जड़ विवेक अभिमान ।
परहिं कल्प भरि नरक महँ, *जीव कि ईश समान ॥६६॥

शब्दार्थ—हिसिका (हिसका) = बराबरी,

अर्थ—जो मूर्ख मनुष्य बुद्धि के घमंड से सामर्थ्यवानों की बराबरी करते हैं वे कल्प चौयुगी तक नरक में पड़ते हैं क्या जीव ईश्वर के समान हो सक्ता है ? जैसा कहा है "परवश जीव स्ववश भगवन्ता"

चौ०—सुरसरि जलकृत वारुणि जाना। कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना ॥
सुरसरि मिले सुपावन जैसे । ईश अनीशहिं अन्तर तैसे ॥

अर्थ—गंगा जी के जल से बनाई हुई मदिरा को जान बूझ कर सन्तजन कभी न पियेंगे । वही मदिरा गंगा जी में मिलने से इस प्रकार पवित्र हो जाती है जिस प्रकार परमेश्वर और जीव में भेद है। (भाव यह कि जीव ईश्वर से जब तक अलग रहता है तब तक दूषित है जब उन में मिल जाता है तब जीव ईश्वर ही हो रहता है ॥

चौ०—शंभु सहज समरथ भगवाना। इहि विवाह सब विधि कल्याना ॥
दुराराध्य पै अहहिं महेशू । आशुतोष पुनि किये कलेशू ॥

शब्दार्थ—दुराराध्य (दुः = कठिनाई से + आराध्य = सेवा करने के योग्य) = कठिनाई से सेवा किये जाने के योग्य। आशुतोष(आशु = जल्दी + तोष प्रसन्नता) = जल्दी से प्रसन्न होने वाले ।

अर्थ—महादेव जी स्वभाव ही से सामर्थ्यवान् हैं और षडैश्वर्य शाली हैं उनके साथ विवाह होने से सब प्रकार से भला है। परन्तु शिव जी कठिनाई से मिल सक्ते हैं तो भी यदि कुछ कष्ट उठाया जाय तो प्रसन्न भी जल्दी हो जाते हैं ॥

चौ०—जो तप करै कुमारि तुम्हारी । †भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी ॥

---

* जीव कि ईश समान—मानस बालकांड रामायण की श्री विनायकी टीका देखो (पृष्ठ ॥ 'दोहा' 'माया ईश न आपु कहं' जान कहिय सो जीव। इत्यादि का अर्थ) ॥

† भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी—इसको उत्तम आशय विनय पत्रिका में गोसाईं जी ने भली भांति दर्शाई है ।

(बाकी)

र भक्तों के चित्त को प्रसन्न करने वाले हैं। शिव जी की सेवा किये बिना नगिनती योग साधना व तपस्या करने पर भी मन चाही सिद्धि मिल नहीं सक्ती।

दो०—अस कहि नारद सुमिरि हरि, गिरिजहिं दीन्ह अशीश।
होइहि सब कल्याण अब, संशय तजहु गिरीश ॥७०॥

अर्थ—इतना कह के नारद ने ईश्वर का स्मरण किया और पार्वती को आशीर्वाद दिया। (और बोले हे गिरिराज! अब सब प्रकार आनंद ही होगा आप चिंता न कीजिये।

चौ०—अस कहि ब्रह्मभवन मुनि गयऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ॥
पतिहि इकांत पाय कह मयना। नाथ न मैं समझिउं मुनिबयना॥

अर्थ—ऐसा कह कर मुनि जी ब्रह्मलोक को सिधारे अब आगे जो हाल हुआ सो सुनो। अपने पति को अकेला पाकर मयना रानी कहने लगीं हे स्वामी! मैं मुनि के वचनों को समझी नहीं।

चौ०—जो घर *वर कुल होइ अनूपा। करिय बिवाह सुता अनुरूपा॥
नतु कन्या वरु रहै कुमारी। कन्त उमा मम प्राणपियारी॥

अर्थ—जो घर दूल्हा और कुल उपमा रहित और पुत्री के योग्य हों तो विवाह करना उचित है। (काहे से) हे नाथ! उमा तो मुझे प्राणों की नाईं प्यारी है।

चौ०जो न मिलिहि वर गिरिजहि योगू। गिरि जड़ सहज कहहिं सब लोगू॥
सो †विचारि पति करहु विवाहू। जेहि न बहोरि होइ उर दाहू॥

अर्थ—जो वर पार्वती के योग्य न मिला तो सब लोग कहेंगे कि स्वभाव ही से जड़ पर्वत तो ठहरे। सो हे पति! यही सब विचार कर के विवाह करो

* जो घर वर कुल होइ अनूपा—
दो०—कन्या सुन्दर वर चहै, मातु चहै धन-धान।
पिता कीर्ति गुन स्वजन कुल, अपर लोग मिष्टान॥

† सो विचारि पति करहु विवाहू। जेहि न बहोरि होइ उर दाहू—
दो०—पहिले लखि के दोष गुन, फेर करिये काज।
जाते मन को हो न दुःख, लहो न जग में लाज॥

जससे फिर हृदय में जलन न हो ।

चौ०—अस कहि परी चरण धर शीशा । बोले सहित सनेह गिरीशा ॥
बरु पावक प्रगटे शशि माहीं । नारदवचन अन्यथा नाहीं ॥

अर्थ—इतना कहते कहते उन ने उनके चरणों पर मस्तक धर दिया तब तो पर्वताधिराज प्रेम सहित कहने लगे । चाहे चन्द्रमा में अग्नि उत्पन्न हो जाय परन्तु नारद के वचन झूठ नहीं हो सक्ते ?

दो०—*प्रिया सोच परिहरहु सब, सुमिरहु श्री भगवान ।
पारवतिहि जिन निर्मयउ, सो करिहहिं कल्यान ॥ ७१ ॥

अर्थ—हे प्यारी ! सब चिन्ता दूर करो और परमेश्वर का स्मरण करो, जिन्हों ने पार्वती को उत्पन्न किया है वेही सब भला करेंगे ।

चौ०—अब जो तुमहि सुता पर नेहू । तौ अस जाय सिखावन देहू ॥
करै सो तप जेहि मिलहिं महेशू । आन उपाय न मिटिहिं कलेशू ॥

अर्थ—अब जो तुम्हारा प्रेम पुत्री पर है तो जाकर उसे ऐसा सिखापन देओ । जिसमें वह ऐसी तपस्या करे कि महादेव मिल जावें और दूसरे उपाय से दुःख दूर न होगा ।

चौ०—नारदवचन सगर्भ सहेतू । सुन्दर सब गुण निधि वृषकेतू ॥
अस विचारि तुम तजहु अशंका । सबहि भांति शंकर अकलंका ॥

अर्थ—नारद जी के वचन अभिप्राय सहित और कारण युक्त हैं महादेव जी उत्तम और सब गुणों के निधान हैं । ऐसा विचार करके तुम अनुचित चिन्ता त्याग देओ क्योंकि शिव जी तो सब ही प्रकार से दोष रहित हैं ।

---

* प्रिया सोच परिहरहु सब, सुमिरहु श्री भगवान—
दो०—विधना बाकी होयगी, जासे जहँ जेहि ठाँव ।
बिन उपाय सो आपही, अवसि मिलैगो आय ॥

और भी (टीकाकार कृत)
लोग सोच कन्या विवाह का, वृथा हृदय में धरते हैं ।
सर्व शक्ति युत ईश कृपानिधि, जोड़ी निर्मित करते हैं ॥
भार्या वर को जन्म प्रथम दे, कन्या पीछे रचते हैं ।
हे रानी तुम सोच करो मत, विधि के अंक न पलते हैं ॥

चौ०—सुनि पतिवचन हर्ष मन माहीं। गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं ॥
उमहि विलोकि नयन भरि वारी। सहित सनेह गोद बैठारी ॥

अर्थ—पति के वचन सुनते ही (मैना रानी जी के) हृदय में आनन्द हुआ और वे जल्दी से पार्वती के पास गईं। उमा को देखते ही नेत्रों में आंसू भर आये और उन्हों ने बड़े प्रेम से उसे गोदी में बिठला लिया।

चौ०—वारहिंवार लेति उर लाई। गदगद कंठ न कछु कहि जाई ॥
जगत मातु सर्वज्ञ भवानी। मातु सुखद बोली मृदुबानी ॥

अर्थ—उसे अनेक बार अपने हृदय से लगाया तब तो उनका गला इस प्रकार से भर आया कि कुछ बोलते न बना। इतने में जगदंबा सब जानने वाली पार्वती अपनी माता को सुख उपजाने वाली मधुर वाणी बोलीं।

दो०—सुनहु मातु मैं दीख अस, स्वप्न सुनाऊं तोहि ॥
सुन्दर गौर सुविप्रवर, अस उपदेशेउ मोहि ॥७२॥

अर्थ—हे माता ! मैं ने ऐसा स्वप्न देखा सो तुम्हें सुनाती हूं कि उत्तम गौर वर्ण ब्राह्मणश्रेष्ठ ने मुझे ऐसा उपदेश दिया कि—

चौ०—करहु जाय तप शैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य विचारी ॥
मातपितहि पुनि यह मत भावा। तप सुखप्रद दुख दोष नसावा ॥

अर्थ—"हे गिरिनंदिनी ! जो कुछ नारद जी ने कहा है उसे सत्य समझ कर तपस्या जा करो"। फिर माता पिता को भी यह बात अच्छी लगी है क्योंकि तप सुख का देने वाला तथा दुःख और दोषों का नाश करने वाला है।

चौ०—*तपबल रचै प्रपंच विधाता। तपबल विष्णु सकलजगत्राता ॥
तपबल शंभु करहिं संहारा। तपबल शेष धरहि महिभारा ॥

---

* तपबल रचै प्रपंच विधाता। आदि—श्रीमद्भागवत के दूसरे स्कन्ध के नवें अध्याय में यों लिखा है :-

श्लोक—सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः ।
बिभर्मि तपसा विश्वं, वीर्यं मे दुश्चरं तपः ॥

अर्थात् (परमात्मा के वचन ब्रह्म देव प्रति) इस चराचर जगत् को मैं तपसे ही उत्पन्न करता हूं और तप से ही इसका संहार करता हूं, तथा तप से ही इस का पालन भी करता हूं कठिन तप ही मेरी शक्ति है। (भाव यह कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप से मैं क्रमानुसार सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार किया करता हूं

जससे फिर हृदय में जलन न हो ।

चौ०—अस कहि परी चरण धर शीशा । बोले सहित सनेह गि

वरु पावक प्रगटै शशि माहीं । नारदवचन अन्यथा

अर्थ—इतना कहते कहते उन ने उनके चरणों पर मस्तक धर दिया पर्वताधिराज प्रेम सहित कहने लगे । चाहे चन्द्रमा में अग्नि उत्पन्न हो जा नारद के वचन झूठ नहीं हो सक्ते ?

दो०—*प्रिया सोच परिहरहु सब, सुमिरहु श्री भगवान ।

पारवतिहि जिन निर्मयउ, सो करिहहिं कल्यान ॥

अर्थ—हे प्यारी ! सब चिन्ता दूर करो और परमेश्वर का स्मरण करे ने पार्वती को उत्पन्न किया है वेही सब भला करेंगे ।

चौ०—अब जो तुमहि सुता पर नेहू । तौ अस जाय सिखावन

करै सो तप जेहि मिलहिं महेशू । आन उपाय न मिटिहिं क

अर्थ—अब जो तुम्हारा प्रेम पुत्री पर है तो जाकर उसे ऐसा सिखापन जिसमें वह ऐसी तपस्या करे कि महादेव मिल जावें और दूसरे उपाय से न होगा ।

चौ०—नारदवचन सगर्भ सहेतू । सुन्दर सब गुण निधि वृष

अस विचारि तुम तजहु अशंका । सबहि भांति शंकर अकल

अर्थ—नारद जी के वचन अभिप्राय सहित और कारण युक्त हैं महा उत्तम और सब गुणों के निधान हैं । ऐसा विचार करके तुम अनुचित चिन्त देओ क्योंकि शिव जी तो सब ही प्रकार से दोष रहित हैं ।

* प्रिया सोच परिहरहु सब, सुमिरहु श्री भगवान

दो०—[illegible] होयगी, जाते [illegible]

[illegible]

और भी ([illegible])

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पने प्राणेश महेश जी के चरणों को हृदय में धारण कर
नें तपस्या करना आरम्भ कर दिया । शरीर अति ही
तपस्या के योग्य न था, तो भी उन्हों ने पति के चरणों
न विलास त्याग दिये ॥

रण उपज अनुरागा । बिसरी देह तपहि मनलागा ॥
मूल फल खाये । *शाक खाय शत वर्ष गँवाये ॥

चरणों में नई प्रीति उपजने लगी, शरीर का भान भूल गया
 चुभ गया । हज़ार वर्ष तक फल फूल खाकर रहीं और शाक
त किये ॥

न भोजन वारि बतासा । किये कठिन कछु दिन उपवासा ।
महि परेउ सुखाई । तीन सहस संवत सो खाई ॥

 वर्ष गँवाये—

—पत्रं पुष्पं फलं मालं कन्दं स्यं स्वेदजं तथा ॥
शाकं षड्विधमुद्दिष्टं गुरु विद्यायथोत्तरम् ॥

ह है कि शाक छः प्रकार के होते हैं अर्थात् (१) पत्ते, (२) फूल,
(४) डंठी, (५) कन्द और (६) नये नये अंकुर ॥

जन वारिबतासा । किये कठिन कछु दिन उपवासा—कुमार संभव
१)

—अयाचितोपस्थित मम्बुकेवलं, रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः ।
बभूवतस्याः किल पारणाविधिर्नवृक्ष वृत्तिव्यतिरिक्त साधनः ॥

त् आप ही आप प्राप्त हुआ केवल जल तथा रस से भरी हुई चन्द्रमा की
पार्वती जी के शरीर पोषण के पदार्थ थे । उनकी वृत्ति वृक्षों से कुछ
(भाव यह कि जिस प्रकार वृक्ष केवल वर्षा के पानी और चंद्र की शीतलता
हते हैं उसी प्रकार इन्हीं दोनों पदार्थों का आधार पार्वती जी को था) ॥

महि परेउ सुखाई । तीन सहस संवत सो खाई—

ह सोचना चाहिये कि पहिले एक हज़ार वर्ष तक मूल फल खाये फिर उसका
० वर्ष तक शाक खाई । फिर कदाचित् उसका भी दशांश दश वर्ष तक पानी
। फिर कदाचित् उसका भी दशांश एक वर्ष तक कठिन उपवास किये तो
या की सिद्धि न समझ पड़ी । तब फिर अधिक वर्षों तक का कठिन तप
किया । सोई कुमार संभव में लिखा है कि :

श्लोक—यदा फलं पूर्व तपःसमाधिना न तावता लभ्य ममंस्त कांक्षितम् ।
तदान पेक्ष्य स्वशरीर मार्दवं, तपो महत् सा चरितुं प्रचक्रमे ॥

जब पार्वती ने देखा कि मेरी इस तपस्या का मनमाना फल मिलने
में देरी है तब अपने शरीर की सुकुमारता का विचार न कर और
करनी आरम्भ की ॥

** वर्ष तक सूखा बेलपत्री खाकर रहीं और फिर उसको भी

अर्थ—ब्रह्मदेव तप ही के बल से सृष्टि की रचना करते हैं तप ही के बल विष्णु सब संसार की रक्षा करते हैं। महादेव जी तप ही के बल से संसार नाश करते हैं और तप ही के बल से शेषनाग पृथ्वी का बोझा सम्हालते हैं।

चौ०—तपअधार सब सृष्टि भवानी । करहु जाइ तप अस जिय जानी
सुनत वचन विस्मित महतारी । स्वप्न सुनायउ गिरिहिं हँकारी

अर्थ—(कहाँतक कहूं) हे भवानी ! सब संसार ही तपस्या के आसरे है इस प्रकार जी में विचार कर जाओ और तपस्या करो। इन वचनों को सु ही मैना रानी को बड़ा अचम्भा हुआ, उन्हों ने राजा जी को बुलाकर सपने हाल कह सुनाया॥

चौ०—मातुपितहि बहु विधि समझाई । चली उमा तप हित हरषाई
प्रिय परिवार पिता अरु माता । भये विकल मुख आव न बाता

अर्थ—माता पिता को अनेक प्रकार से समाधान कर पार्वती तपस्या के आनन्द से चल निकलीं। प्यारे कुटुम्बी, पिता और माता ऐसे व्याकुल हुए कि के मुख से बात भी न निकलती थी।

दो०—*वेदशिरा मुनि आइ तब, सबहि कहा समझाय ॥
पारवतीमहिमा सुनत, रहे प्रबोधहि पाय ॥ ७३ ॥

अर्थ—उसी समय वेदशिरा नाम के मुनि ने आकर सबसे समझा कर कह सो सब पार्वती के प्रभाव को ध्यान में धर उपदेश पाकर शान्तचित्त हो गये॥

चौ०—उर धरि उमा प्राणपतिचरना । जाइ विपिन लागी तप करना
† अति सुकुमार न तनु तप योगू । पतिपद सुमिरि तजेउ सब भोगू॥

* वेदशिरा—ये ऋषि भृगु ऋषि के लड़के विधाता नाम के पुत्र के नाती थे। इन पिता का नाम प्राण ऋषि था॥

† अति सुकुमार न तनु तप योगू। पतिपद सुमिरि तजेउ सब भोगू—(कुमार सम्भव सर्ग ५–१२)

श्लोक—महार्हशय्या परिवर्तनच्युतैः स्वकेश पुष्पै रपि यास्म दूयते।
अशेत सा बाहुलतोपधायिनी, निषेदुषी स्थण्डिल एव केवले॥

जो पार्वती जी बहुमूल्य की शय्या पर अपने बालों से झरे हुए फूलों

अर्थ—पार्वती जी अपने प्राणेश महेश जी के चरणों को हृदय में धारण कर वन में गईं और उन्हों ने तपस्या करना आरम्भ कर दिया। शरीर अति ही कोमल होने के कारण तपस्या के योग्य न था, तौ भी उन्हों ने पति के चरणों का ध्यान कर सब भोग विलास त्याग दिये॥

चौ०—नित नव चरण उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहि मन लागा॥
संवत सहस मूल फल खाये। *शाक खाय शत वर्ष गँवाये॥

अर्थ—प्रतिदिन चरणों में नई प्रीति उपजने लगी, शरीर का भान भूल गया और तपस्या में चित्त चुभ गया। हज़ार वर्ष तक फल फूल खाकर रहीं और शाक खाकर सौ वर्ष व्यतीत किये॥

चौ०—†कछु दिन भोजन बारि बतासा। किये कठिन कछु दिन उपवासा।
‡बेलपात महि परेउ सुखाई। तीन सहस संवत सो खाई॥

---

* शाक खाय शत वर्ष गँवाये—

श्लोक—पत्रं पुष्पं फलं नालं कन्दं स्वं स्वेदजं तथा।
शाकं षड्विधमुद्दिष्टं गुरु विद्याद्यथोत्तरम्॥

भाव यह है कि शाक छः प्रकार के होते हैं अर्थात् (१) पत्ते, (२) फूल, (३) फल, (४) डंडी, (५) कन्द और (६) नये नये अंकुर॥

† कछु दिन भोजन बारि बतासा। किये कठिन कछु दिन उपवासा—कुमार संभव (सर्ग ५-२२)

श्लोक—अयाचितोपस्थितमम्बु केवलं, रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः।
बभूव तस्याः किल पारणाविधिर्न वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः॥

अर्थात् आप ही आप प्राप्त हुआ केवल जल तथा रस से भरी हुई चन्द्रमा की किरणें ये ही पार्वती जी के शरीर पोषण के पदार्थ थे। उनकी वृत्ति वृक्षों से कुछ भिन्न न थी (भाव यह कि जिस प्रकार वृक्ष केवल वर्षा के पानी और चंद्र की शीतलता से जीवित रहते हैं उसी प्रकार इन्हीं दोनों पदार्थों का आधार पार्वती जी को था)॥

‡ बेलपात महि परेउ सुखाई। तीन सहस संवत सो खाई—

कुछ सोचना चाहिये कि पहिले एक हज़ार वर्ष तक मूल फल खाये फिर उसका दशांश १०० वर्ष तक शाक खाई। फिर कदाचित् उसका भी दशांश दश वर्ष तक पानी पीकर रहीं। फिर कदाचित् उसका भी दशांश एक वर्ष तक कठिन उपवास किये तौ भी तपस्या की सिद्धि न समझ पड़ी। तब फिर कथित वर्षों तक का कठिन तप आरम्भ किया। और कुमार संभव में लिखा है कि:

श्लोक—यदा फलं पूर्वतपःसमाधिना, न तावता लभ्यममंस्त काङ्क्षितम्।
तदानपेक्ष्य स्वशरीरमार्दवं, तपो महत् सा चरितुं प्रचक्रमे॥

अर्थात् जब पार्वती ने देखा कि मेरी इस तपस्या का मनमाना फल मिलने नहीं दिखता तबतो उन्हों ने अपने शरीर की सुकुमारता का विचार न कर और भी भारी तपस्या करनी आरम्भ की॥

या तो कि १००० वर्ष तक सूखा बेलपत्री खाकर रहीं और फिर उसको भी न खाया॥

अर्थ—कुछ दिन तक तो पानी के बलबूते ही खाकर रहीं (अर्थात् यों पानी के आधार से रहीं) और कुछ दिन कठिन निर्जल उपवास किये (जब पार्वती ने इतनी तपस्या का फल मिलते न देखा तब तो उन्होंने फिर से कठिन तपस्या आरंभ की सो यों कि) जो पृथ्वी पर गिरे हुए बेल के सूखे पत्ते थे, उन्हें खाकर तीन हज़ार वर्ष तक तपस्या की ॥

चौ०—*पुनि परिहरेउ सुखानेउ पर्णा। उमहि नाम तब भयो अपर्णा।
देखि उमहि तप खिन्न शरीरा। ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा।

अर्थ—फिर उन सूखे पत्तों का खाना भी छोड़ दिया, तब तो उमा का नाम अपर्णा पड़ा (अर्थात् अ=नहीं+पर्णा =पत्ते वाली=जो पत्ते बिना खाये ही रहे) पार्वती जी को तपस्या के कारण दुर्बल देख आकाश से गंभीर ब्रह्म-वाणी सुनाई दी ।

दो०—भयो मनोरथ सफल तव, सुनु गिरिराजकुमारि ।
परिहरु दुसह कलेश सब, अब मिलिहहिं त्रिपुरारि ॥ ७४ ॥

अर्थ—हे गिरीशनन्दिनी ! तुम्हारा मनोरथ अब सिद्ध हुआ । सम्पूर्ण असह्य कष्टों को छोड़ो अब शिव जी तुम्हें मिल जावेंगे ।

चौ०—†अस तप काहु न कीन्ह भवानी। भये अनेक धीर मुनि ज्ञानी॥
अब उर धरहु ब्रह्म वर बानी। सत्य सदा संतत सुचि जानी॥

अर्थ—हे भवानी ! बहुत से धीरजवान् और ज्ञानवान् मुनि हो गये हैं परन्तु ऐसी तपस्या किसी ने नहीं की । अब तुम इस श्रेष्ठ आकाश वाणी को सदैव सत्य और नित्य पवित्र जान कर अपने हृदय में धारण करो ।

* पुनि परिहरेउ सुखानेउ पर्णा। उमहि नाम तब भयो अपर्णा—पार्वती मंगल से—
बरवा—कन्द मूल फल असन, कबहुँ जल पवनहि
सूखे बेल के पात, खात दिन गवनहि
नाम अपर्णा भयो, पर्ण जब परिहरे ।
नवल धवल कल कीरति, सकल भुवन भरे ॥

† अस तप काहु न कीन्ह भवानी। भये अनेक धीर मुनि ज्ञानी॥
यही कालिदास कुमार संभव के ५ वें सर्ग के २८ वें श्लोक में लिखा है उसका भाव यह है। (टीकाकार कृत)
दो०—गिरि कुमारि सुकुमारि तन, तप अस दारुन कीन्ह ।
जेहि मनसिज के दहन पर, प्रभु पार्वति कर लीन्ह ॥

चौ०–आवहि पिता बुलावन जबही । हठ परिहरि घर जायहु तबही ॥
मिलहिं तुमहिं जब सप्तऋषीशा । जानेहु तब प्रमाण वागीशा ॥

शब्दार्थ—वागीशा (वाक्=वाणी + ईश=मालिक)=वाणी का मालिक, ब्रह्मा ।
अर्थ—जब तुम्हारे पिता जी बुलाने को आवें तब हठ को छोड़ घर लौट जाना
जिस समय तुम्हें सप्तऋषि मिलें उसी समय ब्रह्मवाणी की सत्यता का प्रमाण
लेना ।

सुनत गिरा विधि गगन बखानी । पुलकगात गिरिजा हरषानी ॥
उमा चरित में सुन्दर गावा । सुनहु शंभु कर चरित सुहावा ॥

अर्थ–आकाश से उत्पन्न हुई ब्रह्मवाणी को सुनते ही पार्वती जी प्रसन्न हुईं
उनके शरीर के रोम खड़े हो आये । मैं ने पार्वती जी का उत्तम चरित्र वर्णन
अब शंकर जी का सुहावना चरित्र सुनो ।

(१८ सती जी के देह त्याग के पश्चात् शिव चरित्र) ।

–जब ते सती जाइ तन त्यागा । तब ते शिव मन भयेउ विरागा ॥
जपहिं सदा रघुनायक नामा । जहँ तहँ सुनहिं रामगुणग्रामा ॥

अर्थ—जब से सती जी ने (पिता के घर) जाय शरीर त्याग दिया तब से
जी के मन में वैराग्य भर गया । वे दिन रात रामनाम जपा करते थे और
जहाँ राम गुण चर्चा होती थी तहाँ जाकर सुनते थे ।

–चिदानंद सुखधाम शिव, विगतमोहमदकाम ॥
विचरहिं महि धरि हृदय हरि, सकललोकअभिराम ॥७५॥

शब्दार्थ–अभिराम (अभि=सामने + रम्=खेलना)=प्यारा, मनोहर ।
अर्थ–चैतन्य और आनन्दरूप शिव जी जो सुख के देने वाले तथा ममता
और कामना रहित हैं सम्पूर्ण मनुष्यों को मनोहर ऐसे श्री हरि को अपने हृदय
धारण कर भूमि पर भ्रमण करने लगे ।

०–कबहुँ मुनिन्ह उपदेशहिं ज्ञाना । कबहुँ राम गुण करहिं बखाना ॥
यदपि अकाम तदपि भगवाना । भक्तविरह दुख दुखित सुजाना ॥

अर्थ–कहीं तो मुनियों को ज्ञान की शिक्षा करते थे और कहीं रामचन्द्र जी के
गुण गाते थे । यद्यपि कामना रहित और षड़ैश्वर्य सम्पन्न हैं तो भी ज्ञानी महादेव
अपने भक्त के विछोह रूपी दुःख से दुःख मानते हैं ।

चौ०—इहि विधि गयेउ काल बहु बीती। नित नव होय रामपद प्रीती॥
नेम प्रेम शंकर कर देखा। अविचल हृदय भक्ति की रेखा॥

अर्थ—इस प्रकार बहुत सा समय व्यतीत हो गया शिव जी का प्रेम राम जी के चरणों में दिन दिन बढ़ता ही गया। शिव जी का कठिन प्रण अपने ऊपर प्रेम देख तथा उनके हृदय में भक्ति का अटल विश्वास लख।

चौ०—प्रकटे राम कृतज्ञ कृपाला। रूपशीलनिधि तेज विशाला॥
बहु प्रकार शंकरहिं सराहा। तुम बिन अस व्रत को निरबाहा॥

अर्थ—किये हुए कर्मों को जानने वाले दयालु स्वरूपवान् शीलनिधान और प्रतापवान् श्री रामजी प्रकट हुए। उन्हों ने अनेक प्रकार से शिव जी की प्रशंसा की और कहा कि तुम्हारे सिवाय इस प्रकार की कठिन साधना कौन पूरी कर सक्ता है?

चौ०—बहु विधि राम शिवहि समझावा। पारबती कर जन्म सुनावा॥
अति पुनीत गिरिजा की करणी। विस्तर सहित कृपानिधि वर्णी॥

अर्थ—रामचन्द्र जी ने शिव जी को अनेक प्रकार की बातें सुझाईं और पार्वती जी का जन्म कह सुनाया। दयासागर श्री रामचन्द्र जी ने पार्वती जी की परम पवित्र करतूत को विस्तार सहित वर्णन किया।

दो०—अब बिनती मम सुनहु शिव, जो मो पर निज नेहु।
जाय बिवाहहु शैलजहिं, यह मोहि मांगे देहु॥ ७६॥

शब्दार्थ—शैलजहिं (सं० शैलजा) (शैल=पर्वत + जा=उत्पन्न)=पर्वत से उत्पन्न अर्थात् पार्वती (को)

अर्थ—हे शिव जी जो आप का प्रेम मुझ पर है तो मेरी यह विनय सुनिये कि जाकर पार्वती से विवाह कर लाइये यह मैं मांगता हूं सो मुझे दीजिये।

चौ०—कह शिव यदपि उचित अस नाहीं। नाथ वचन पुनि मेटि न जाहीं॥
शिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा॥

अर्थ–शिव जी बोले कि यद्यपि यह योग्य नहीं दिखता फिर भी आपके वचन मेटे नहीं जा सक्ते। हे स्वामी! यह हमारा बड़ा धर्म ही है कि आप की आज्ञा को शिर पर धारण कर मान्य करैं॥

चौ०–†मात पिता गुरु प्रभु की बानी। बिनहिं विचार करिय शुभजानी॥
तुम सब भाँति परम हितकारी। आज्ञा शिर पर नाथ तुम्हारी॥

अर्थ–माता पिता गुरु और मालिक के वचन लाभकारी समझ बिना ही विचारे मान लेना चाहिये। आप तो सब ही प्रकार मेरा हित चाहने वाले हो, हे प्रभु! आप की आज्ञा मैं अपने शिर पर धारण करता हूं।

चौ०–प्रभु तोषेउ सुन शंकरवचना। भक्ति विवेक धर्मयुत रचना॥
कह प्रभु हर तुम्हार प्रन रहेऊ। अब उर राखेउ जो हम कहेऊ॥

अर्थ–रामचन्द्र जी शंकर जी के वचनों को सुन कर संतुष्ट हुए काहे से उनमें भक्ति चतुराई और धर्म का सम्मेलन था। रामचन्द्र जी कहने लगे कि शंकर जी आप की टेक रह गई अब जो बात हमने कही उसे भी हृदय में रखिये।

न करेंगे काहे से कि कहा गया है कि 'भक्त विरह कातर करुणामय डोलत पाछे लागे। सूरदास ऐसे प्रभु को क्यों दीजत पीठ अभागे।' इस कारण 'कह शिव यद्यपि उचित अस नाहीं' से यही अभिप्राय जंचता है कि जो रामचन्द्र जी ने कहा था कि 'अब विनती मम सुनहु शिव, इस कथन को अनुचित कहा। शिव जी का विचार था कि रामचन्द्र जी मेरे स्वामी हैं। उन्हें चाहिये था कि वे मुझे आज्ञा करते न कि मुझ से विनती करते। भाव कि आज्ञा के देने के अधिकारी का विनती करना उचित नहीं। जैसा कि आगे कहा है—

† मात पिता गुरु प्रभु की बानी। बिनहिं विचार करिय शुभ जानी—कितनी उत्तम शिक्षा है. इन सब को चाहिये कि इस पर विशेषध्यान देवें। प्रायः देखने में आता है कि आज कल के लड़के यह मान लेते हैं कि माता पिता को बहुधा इतनी समझ नहीं कि वे हमें उपदेश करें, वे यह नहीं विचारते कि उनका अनुभव कितना अधिक रहता है इसके सिवाय वे बालकों के हित चाहने वाले होते हैं। इसहेतु उनकी आज्ञा अवश्य माननी चाहिये। हां, गुरु जी की आज्ञा तो कोई २ मानते भी हैं, नहीं तो दंड पावें और प्रभु को न मानें तो भी बरखास्त होवें। तात्पर्य यह है कि सब-बस आज्ञापालन कुछ उत्तम श्रेणी में नहीं है अपना धर्म तथा लाभ के विचार से माता पिता गुरु और प्रभु की आज्ञा पालन करना चाहिये। इसी को गोसाईं जी अयोध्याकांड में यों समझाते हैं—

चौ०–गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिय भलि जानी॥
उचित कि अनुचित किये विचारू। धरम जाइ सिर पातक भारू॥

इस प्रकार से कहे कि उनका भाव कुछ गुप्त था) ॥

चौ०—कहत मर्म मन अति सकुचाई। हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई॥
* मन हठ परा न सुनइ सिखावा। चहत वारि पर भीत उठावा॥

अर्थ—मन का भाव कहने में बड़ी लज्जा होती है आप लोग हमारी मूर्खता को सुन कर हँसोगे। मेरा मन हठ पकड़ गया है वह सिखापन को नहीं मानता, वह तो पानी पर भीत बनाना चाहता है (अर्थात् हठ के मारे मन असंभवित काम करना चाहता है) ॥

चौ०—नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिन पंखन हम चहहिं उड़ाना॥
देखहु मुनि अविवेक हमारा। चाहिय सदाशिवहि भरतारा॥

शब्दार्थ—सदाशिव=(१) शंकर जी, (२) सदा के लिये शंकर जी ॥

अर्थ—नारद जी ने जो कहा वही मैं ने सत्य मान लिया (सो मानो) बिना पंखों के मैं उड़ना चाहती हूं। हे मुनिगण! मेरा अज्ञान तो देखिये, मैं सदाशिव अर्थात् शंकर जी से पति संबंध चाहती हूं। अथवा शिव जी से सदा के लिये पति संबंध चाहती हूं (भाव यह कि सती की नाईं फिर देहत्याग आदि का कष्ट न सहना पड़े) ॥

दो०—सुनत बचन बिहँसे ऋषय, † गिरिसम्भव तव देह।
नारद कर उपदेश सुनि, कहहु बसेउ को गेह॥ ७८॥

---

* मन हठ परा न सुनइ सिखावा—

कवित्त—[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

† गिरि सम्भव तव देह—ऋषियों ने यह [illegible] पार्वती जी के सम्बन्ध में [illegible] [illegible] लिखा है, जैसे

कवित्त—[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अर्थ—वचनों को सुन कर ऋषिगण हँस उठे (और बोले) तुम्हारा शरीर तो पहाड़ से उत्पन्न है (भाव यह कि पहाड़ अथवा पत्थर से तो तुम उत्पन्न हो सो तुम्हारी मति भी पत्थर ही की नाईं जड़ अवश्य होनी चाहिये) भला नारद का सिखापन सुन कौन घर में रह सका ? (अर्थात् कोई नहीं, यह बात उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं) ॥

दो०—*दक्ष सुतन्ह उपदेशेउ जाई। तिन फिर भवन न देखा आई॥
† चित्रकेतु कर घर उन घाला। कनककशिपु कर पुनि अस हाला॥

* दक्ष सुतन्ह—दक्ष प्रजापति की दो स्त्रियां थीं। एक का नाम पांचजनी और दूसरी का वीरिणी था। दक्ष जी ने पहिली स्त्री से हर्यस्व आदि १० हज़ार पुत्र उत्पन्न करके सृष्टि का क्रम चलाना चाहा परन्तु नारदमुनि ने आकर उन पुत्रों को ब्रह्मज्ञान का उपदेश देकर गृहस्थ धर्म में प्रवृत्त न होने दिया। वे सबके सब कहां गये उनका पता भी न लगा। जब यह हाल दक्ष को विदित हुआ तब इन्होंने दूसरी स्त्री से शबल आदि १० हजार पुत्र फिर उत्पन्न किये। नारद ने आकर उनकी भी वही दशा की, तब दक्षने नारद को श्राप दिया कि तुम्हारा यह शरीर न रहे और फिर मानस पुत्र तो उत्पन्न न किये परन्तु मैथुन कर्म से ६० कन्या उत्पन्न कीं, इनमें से अदिति आदि १३ कश्यप को ब्याह दीं। मरुत्वती आदि १० कन्यायें धर्म को ब्याह दीं। अश्वनी आदि २७ चन्द्रमा को ब्याह दीं। चार अरिष्ट नेमि को। भृगु के भूत नामपुत्र को दो, कृशाश्व ऋषि को दो, दो आंगिरा ऋषि को। इस प्रकार दे करके उन कन्याओं के द्वारा मैथुनी सृष्टि की जड़ जमाई (मत्स्य पुराण अध्याय ५-२) ॥

† चित्रकेतु,कनकशिपु-चित्रकेतु शूरसेन देश का राजा था। कहते हैं कि इसकी एक करोड़ रानियां थीं कदाचित् इसी हेतु किसी का कोई सन्तान नहीं थी. निपुत्री होने के कारण राजा बहुत ही दुःखित रहता था एक बार अंगिरा ऋषि से इसने अपना दुख का सुनाया। ऋषि जी को दया आगई। उन्हों ने हवि सिद्ध करके राजा को दिया, जिसके खाने से कृति द्युति में पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। संपूर्ण सौतों ने डाह खा कर बेचारे बच्चे को विष दे कर मारडाला। कहा है—'सौतिया माटिहु की खोटी' राजा पुत्र शोक से बहुत विह्वल थे कि इतने में अंगिरा जी के साथ नारद मुनि आ पहुंचे। मुनि जी ने उस बालक को चैतन्य कर दिया परन्तु वह अपना माताओं तथा पिता को उपदेश करने लगा कि आप सब वृथा शोक करते हैं संसार का प्रबंध ऐसा ही है न कोई किसी का पुत्र है और न कोई किसी का पिता तथा इसके लिये किसी को दोष देना उचित नहीं यह सब भाग्य का खेल है. जैसे:—

ग़ज़ल—संसार सार सागर जलवा दिखा रहा है।
देखा है कोई कोई मरघट को जा रहा है॥
कोई अमीर देखा कोई फ़क़ीर देखा।
दुनियां का सिलसिला ये यों ही चला रहा है॥
हिर्सो हवास जहां की ये दिल तू छोड़ दे अब
सिर पर तेरे मकान बन [illegible] रहा

अर्थ—दक्षप्रजापति के २० हज़ार पुत्रों को (उन्हों ने) जाकर उपदेश दिया, उन पुत्रों ने फिर अपना घर न देख पाया (अर्थात् विरक्त हो जंगल में जा ब . फिर न लौटे) । चित्रकेतु का घर उन्हीं (नारद जी) ने नाश किया, हिरण्य-कश्यप का ऐसा ही हाल हुआ ॥

वैद्यो हकीम हू को हिकमत चले न वैद्यो ।
जो कोई बिगारै तन को चोई बना रहा है ॥
हैमी गिरैद बुराई ईश्वर को दोष देना ।
जो भाग का लिखा है बस वोई पा रहा है ॥

इस प्रकार उपदेश कर उस लड़के की आत्मा अंतर्ध्यान होगई। चित्रकेतु को इस प्रकार उसी के मृतक पुत्र द्वारा उपदेश कराकर नारदमुनि ने राजा का मति फेर दी कि वह इन्हीं मुनिजी से फिर उपदेश लेकर राज्य को त्याग बन में तपस्या के चला गया। इस प्रकार मानो नारदजी ने चित्रकेतु का घर छुड़वा दिया॥

कनककशिपु = हिरण्यकश्यप-यह कश्यप की स्त्री दिति से उत्पन्न हुआ था इसने ब्रह्मा की बहुत समय तक तपस्या कर यह वरदान मांगा था कि मैं (१) घर के भीतर न बाहर (२) न दिन को न रात्रि को (३) न मनुष्य से न पशु से (४) न अस्त्र से न शस्त्र से (५) और न जीते से न मरे से मृत्यु को प्राप्त होऊं। ब्रह्मदेव ने कहा ऐसा ही होवै। यह क्रम २ से सब लोगों को जीतकर देवताओं तथा मुनियों को बहुत त्रास देने लगा, फिर मुनि और ऋषियों के यज्ञों में भी बाधा डालने लगा। इस . प्याद जंभा सुर की कन्या कयाधु से हुआ था जिस से प्रहलाद अनुह्राद, संह्राद श . ह्राद ये चार पुत्र हुए थे। जब पहिला बालक प्रहलाद अपनी माता के गर्भ ही में था उस समय हिरण्यकश्यप तपस्या के हेतु बन में गया था। इतने में इन्द्र ने आकर बहुतेरे दैत्यों का नाश किया और कयाधु को लेकर स्वर्ग में जाने लगा। मार्ग में नारद से भेट हुई उन्हों ने इन्द्र से कहा कि इसके गर्भ में जो बालक है वह विष्णु के . से युक्त है, इस से वह तुम्हारा विरोधी नहीं है, इतना कहकर कयाधु को इन्द्र से छुड़ाकर भागीरथी के किनारे आश्रम बनाकर वहां रहने लगे। रहते २ इन्हों ने उ . ज्ञान का उपदेश किया। यह उपदेश प्रहलाद ने गर्भ ही में सुना था, इस हेतु य . बड़ा विष्णुभक्त उत्पन्न हुआ परन्तु स्त्री स्वभाव के कारण कयाधु यह उपदे . भूलगई। जब हिरण्यकश्यप बन से लौटा तब तुरंतही नारदमुनि कयाधु को उसे स . कर चलेगये। नारद के उपदेश का यही फल हुआ कि प्रहलाद विष्णुभक्त हो . अपने पिता के अनेकबार रोकने पर तथा इनके प्राणघात के उपाय करने पर भी विष्णु भक्त बने रहे। परिणाम यह हुआ कि विष्णु जी ने नृसिंहरूप धारण कर . . उपाय से हिरण्यकश्यप को मारा कि जिस से ब्रह्मा के वरदान का विरोध न हुआ यों कि (१) देहलीपर (२) संध्या के समय (३) नृसिंह रूप द्वारा (४) न . खों हथियार से और (५) नखों द्वारा, क्यों कि ये कुछ अंश में जीते हैं और कुछ अंश में मरे हैं॥

चौ०—नारद सिख जु सुनहिं नर नारी। अवशि भवन तजि होहिं भिखारी॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हो। आप सरिस सब ही चह कीन्हा॥

अर्थ—स्त्री पुरुष जो कोई नारद जी की सीख सुनते हैं सो अवश्य ही घर छोड़ के भिखारी हो जाते हैं। (उन नारद जी का) मन तो कपटी है परन्तु शरीर में सन्तों के चिन्ह दिखाई देते हैं वे अपने ही समान सब को बनाना चाहते हैं (अर्थात् वे स्वतः स्त्री पुत्र आदि रहित हैं कि 'जोरू न जांता खुदा से नाता')॥

चौ०—तेहि के वचन मानि विश्वासा। तुम चाहहु पति सहज उदासा॥
निर्गुण निलज कुवेष कपाली। अकुल अगेह दिगम्बर व्याली॥

अर्थ—उन (नारद) के वाक्यों पर भरोसा रखकर तुम ऐसा पति चाहती हो जो स्वभाव से उदासीन (प्रेम हीन) है, जो गुण हीन, निर्लज्ज कुरूप है, कपाली (अघोरी) कुलहीन घरहीन, नंगे अंग में भुजंग धारण किये है॥

चौ०—कहहु कवन सुख अस वर पाये। भल भूलिउ ठग के बौराये॥
पंच कहें शिव सती विवाही। पुनि अवडेरि मराइनि ताही॥

अर्थ—ऐसे पति को पाकर (तुम ही) कहो? कौन सुख (हो सक्ता है) अच्छी तुम भी ठगिया के बहकाने में भूली हो। पंचों के कहने से महादेव जी ने सती से विवाह किया था सो फिर उन्हें उलझन में डालकर मरवा डाला॥

दो०—अब सुख सोवत सोच नहिं, भीख मांगि भव खाहिं।
सहज एकाकिन्ह के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहिं॥ ७९॥

अर्थ—अब शिव जी भीख मांग कर खाते हैं, सुख से सोते हैं और उन्हें (मर्नी या दुःख) भी सोच नहीं है। जिन्हें अकेले रहने का स्वभाव हो पड़ गया है उनके घर भला कभी स्त्री रह सक्ती है? (भाव यह कि नारद का उपदेश तुमने वृथा स्वीकार किया और फिर जो जिनमें अनेक दुर्गुण भरे हैं विवाह करने के योग्य नहीं

ये सब बातें प्रेम परीक्षार्थ कही गई थीं, शिव जी में जो दोष बताये गये थे, वे ही गुण रूप हैं जैसा कि पीछे समझा आये हैं)॥

चौ०—अजहुँ मानहु कहा हमारा। हम तुम कहँ वर नीक विचारा॥
अति सुन्दर शुचि सुखद सुशीला। गावहिं वेद जासु यश लीला॥

अर्थ—अब भी हमारा कहना मान लो, हम ने तुम्हारे लिये बड़े अच्छे पति विचार किया है। वह पति बड़ा स्वरूपवान, पवित्र, सुखदेने वाला और शील न का है उसकी कीर्ति और लीला सम्पूर्ण वेद बखानते हैं॥

०—दूषण रहित सकल गुण राशी। श्रीपतिपुर वैकुंठ निवासी॥
अस वर तुमहिं मिलाउब आनी। सुनत विहँसि कह वचन भवानी॥

अर्थ—जिस में कोई दूषण नहीं है जो सम्पूर्ण गुण पूर्ण हैं जो लक्ष्मीवान् तथा ठ का रहने वाला है। ऐसा वर लाकर तुम्हारा संयोग मिलावेंगे, इतना ते ही पार्वती जी मुसकराकर कहने लगीं।

०—सत्य कहहु गिरिभव तनु एहा। हठ न छूट छूटै वरु देहा॥
कनकौ पुनि पषाण ते होई। जारेहु सहज न परिहर सोई॥

अर्थ—तुम ने सच कहा कि यह शरीर पर्वत से उत्पन्न है (इसीलिये) हठ छूटेगी, चाहे हमारा शरीर छूट जाय। स्वर्ण भी पत्थर से उत्पन्न होता है जलाने (अर्थात् बहुत ही तपाने) पर भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता॥

चौ०—नारद वचन न मैं परिहरऊं। बसौ भवन उजरौ नहिं डरऊं॥
गुरु के वचन [illegible] न जेही। सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही॥

अर्थ—नार[illegible] मैं न छोड़ंगी चाहे घर बसे या उजड़े मुझ [illegible] गुरु की [illegible] विश्वास नहीं होता उसे [illegible] न में [illegible] ी॥

[illegible] सकलगुण धाम।
[illegible] रम [illegible] तेहि तेही सन काम॥८०॥

[illegible]

(विराग)

अर्थ-शिव जी सम्पूर्ण अवगुणों के घर ही सही और विष्णु सब गुणों के भंडार बने रहें जिसका मन जिससे लगा है उसको उसी से काम है (दूसरे से नहीं) ॥

चौ०–जो तुम मिलतेउ प्रथम मुनीशा। सुनतिउँ सिख तुम्हारि धर शीशा॥
अब मैं जन्म शंभु हित हारा। को गुण दूषण करै विचारा॥

अर्थ–हे मुनिराज! जो तुम (नारद के मिलने से) पहिले मिले होते तो मैं तुम्हारी शिक्षा शिर के बल मानती। अब तो मैं ने अपना जन्म शिव जी के लिये लगा दिया है तो उनके गुण अवगुणों का विचार कौन करै॥

चौ०–जो तुम्हरे हठ हृदय विशेषी। रहि न जाइ बिन किये बरेषी॥
तौ कौतुकिअन्ह आलस नाहीं। बर कन्या अनेक जग माहीं॥

अर्थ–जो तुम्हारे मन में इस विषय की बड़ी हठ होवे और बिना वर देखी किये चैन न पड़ती हो (अर्थात् बिना यथा योग्य वर कन्या मिलाये न रहा जाता हो) तो तमाशबीनों को आलस कहां? तुम्हारे लिये संसार में बहुत से बर और और बहुत सी कन्यायें विद्यमान् हैं॥

चौ०–जन्म कोटि लग रगर हमारी। बरौं शंभु नतु रहौं कुमारी॥
तजौं न नारद कर उपदेशू। आप कहहिं शतबार महेशू॥

अर्थ–करोड़ों जन्म तक हमारी यही लगन लगी रहेगी कि ब्याह करूंगी तो महादेव जी के साथ, नहीं तो कुमारी ही रहूंगी। नारद जी के सिखापन को मैं छोड़ नहीं सक्ती चाहे स्वयम् शिव जी इस के लिये मुझ से सौवार कहें (अथवा) आप अपने मुख से सौबार 'शिव', शिव, कहें (क्योंकि) आप ने उन की निंदा की है॥

बिहाग—रँग जोद लागा सोई लागा॥
हंसा की गति हंसा जानै मर्म न जानै कागा॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो सोने में मिलत सुहागा॥

और भी—
क०–पूछौ उमगै क्यों सिंधु पूरण मयंक देखि पूछौ तौ कमोदिनी बिलोकि भानु क्यों लजै।
पूछौ तौ पपी है क्यों न पीवै नीर स्वाती बिन पूछौ तौ मलिंद क्यों न चाहै चम्पकी रजै॥
'रसिकबिहारी' चित्त रीति है अलक्ष जब पूछौ बहु ठौर तब शंका होय ते भजै।
[illegible] पतंग क्यों जरै है धाय दीपक में पूछौ बारि के बिहीन मीन जीव क्यों तजै॥

चौ०–मैं पा परौं कहे जगदम्बा। तुम गृह गवनहु भयउ बिलंबा ॥
देखि प्रेम बोले मुनि ज्ञानी। जय जय जय जगदंब भवानी ॥

अर्थ–जगत माता पार्वती जी कहने लगीं मैं तुम लोगों के पैर पड़ती हूँ अब बहुत देरी हुई तुम अपने घर जाओ। वे ज्ञानवान् मुनिराज ऐसी अविचल प्रीति देखकर बोल उठे, हे जगतमाता भवानी तुम्हारी 'जय होय, जय होय'।

दो०–तुम माया भगवान शिव, सकल जगत पितु मात।
नाइ चरण शिर मुनि चले, पुनि पुनि हर्षित गात ॥ ८१ ॥

अर्थ–सम्पूर्ण संसार के (उत्पादक) माता पिता स्वरूप तुम माया और शिव जी ईश्वर हैं। इतना कह पार्वती जी के चरणों में शिर नवा कर वे मुनि राज चित्त में बार२ प्रसन्न होते हुए वहां से चले गये।

चौ०–जाइ मुनिन्ह हिमवन्त पठाये। करि विनती गिरिजहिं गृह लाये ॥
बहुरि सप्त ऋषि शिव पहँ जाई। कथा उमा की सकल सुनाई ॥

अर्थ—मुनियों ने जाकर हिमाचल को भेजा जो पार्वती जी को समझा बुझा कर के अपने घर लिवा लाये। फिर सप्त ऋषियों ने शिव जी के पास जाकर उन्हें पार्वती जी की सब कथा कह सुनाई ॥

चौ०–भये मगन शिव सुनत सनेहा। हरषि सप्त ऋषि गवने गेहा ॥
मन थिर करि तब शम्भु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना ॥

अर्थ—शिव जी उस प्रीति को सुन कर मग्न हो गये और सप्तऋषि आनंद पूर्वक अपने घर गये। तब ज्ञानवान् महादेव जी चित्त स्थिर करके रामचन्द्र जी का ध्यान करने लगे ॥

चौ०–*तारक असुर भयउ तेहि काला। भुज प्रताप बल तेज विशाला ॥

अर्थ—उसी काल में बड़ा बलवान् प्रतापी और तेजस्वी तारकासुर हुआ।

---

* तारक असुर - वज्रांग दैत्य की वरांगी नाम स्त्री से तारक नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ था इस ने उग्र तपस्या कर ब्रह्मदेव को प्रसन्न किया और यह वरदान मांगा कि मैं अमर हो जाऊं। यह बात जब ब्रह्मदेव ने स्वीकार न की तब उस ने कहा कि भगवान शिव के लड़के को छोड़कर और किसी के हाथ से मैं न मरूं। यह वरदान देकर ब्रह्मा जी अंतर्धान हो गये। वरदान पाते ही इसने तीनों लोक के निवासियों को त्रास देना आरम्भ किया। इस के सेना के मुख्य २ अधिपतियों के ये नाम हैं— (१) जम्भ (२) कुजम्भ, (३) महिषासुर, (४) कुंजर, (५) मेघ, (६) कालनेमि,
(और भी)

तेहि सब लोक लोकपति जीते। भये देव सुख सम्पति रीते।

उसने सम्पूर्ण लोकों को उनके स्वामियों समेत जीत लिया कि जिससे सम्पूर्ण देवता सुख सम्पत्ति हीन हो गये ॥

चौ०—अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि विविध लराई॥
तब विरंचि सन जाय पुकारे। देखे विधि सब देव दुखारे॥

अर्थ—जरा हीन और अमर के समान वह राक्षस पराजित नहीं किया जा सक्ता था, सब देवता उससे अनेक प्रकार से युद्ध करने पर भी हार गये। तब सबों ने मिल कर ब्रह्मा के पास गुहार मचाई तो ब्रह्मा ने जान लिया कि सब देवता दुःखी हैं ॥

दो०—सब सन कहा बुझाय विधि, दनुज निधन तब होइ।
शंभुशुक्रसंभूत सुत, इहि जीते रण सोइ ॥८२॥

अर्थ—ब्रह्मा जी ने सब देवताओं को समझा कर कहा कि इस राक्षस का संहार तभी होगा कि जब शिव जी के वीर्य से उत्पन्न हुआ पुत्र इसे लड़ाई में जीते ॥

चौ०—मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईश्वर करिहि सहाई॥
सती जो तजी दक्षमख देहा। जनमी जाइ हिमाचल गेहा॥

अर्थ—मेरा कहना सुनकर तुम उपाय करो, ईश्वर सहायता करेगा और कार्य सिद्ध होगा। सती जिन्हों ने दक्ष प्रजापति के यज्ञ में अपना शरीर छोड़ दिया था अब हिमाचल के घर में जन्मी हैं ॥

चौ०—तेइ तप कीन्ह शंभु पति लागी। शिव समाधि बैठे सब त्यागी॥
यदपि अहै असमंजस भारी। तदपि बात इक सुनहु हमारी॥

अर्थ—उन्हीं सती जी ने तपस्या की है कि मुझे महादेव जी पति मिलें, यहाँ शिव जी सब छोड़ कर समाधि लगा बैठे हैं। सो यदि यह बड़ी दुविधा की बात है तो भी हमारी एक तदबीर सुनो ॥

(७) निमि मथन, (८) जंभन वीर (९) शुम्भ।

निदान जब इसने सब देवताओं को परास्त किया और उन्हें बहुत सा त्रास दिया तब कार्तिकेय नाम के शिव पुत्र ने जन्म से सातवें ही दिन इसे मारडाला। (मत्स्य पुराण अ. १४८-१५६)॥

चौ०—पठवहु काम जाइ शिव पाहीं । करै क्षोभ शंकर मन माहीं
† तब हम जाइ शिवहिं शिरनाई । करवाउब विवाह बरिआ

अर्थ—कामदेव को भेजो कि वह शिव जी के पास जावे और कल्याण
शु के चित्त को चलाय मान करे । तब हम जाकर शिव जी को सीस न
और जबरई से उनका विवाह करवावेंगे ॥

चौ०—इहि विधि भले देवहित होई । मत अति नीक कहेउ सब
अस्तुति सुरन कीन्हि अति हेतू । प्रकटेउ विषम बाण झषके

अर्थ—इस प्रकार तो देवताओं की भलाई भले ही हो सक्ती है । (यह
कर) सब लोग कह उठे बहुत अच्छा विचार है । बड़े प्रेम से देवता
कामदेव की प्रशंसा की तो पंचबाण धारी कामदेव प्रकट हुआ ॥

(१६ कामदेव दहन)

दोहा—सुरन्ह कही निज विपति सब, सुनि मन कीन्ह विच
शंभु विरोध न कुशल मोहि, बिहँसि कहेउ अस मार ॥८

अर्थ—देवताओं ने अपनी सम्पूर्ण आपत्तियां कह सुनाईं जिन्हें सुन
देव अपने मन में विचार कर हँसते हुए बोले कि शिव जी से वैर करने
कल्याण नहीं ॥

चौ०—तदपि करब मैं काज तुम्हारा । ‡ श्रुति कह परम धर्म उपका

---

† तब हम जाइ शिवहिं शिर नाई । करवाउब विवाह बरिआई—यही बात कुमार
के दूसरे सर्ग में लिखा है कि शिव जी का विवाह पार्वती से कराना चाहिये
संयोग से तारक असुर का मारने वाला उत्पन्न हो । यथा—

श्लोक—उमारूपेण ते यूयं, संयमस्तिमितं मनः
शम्भोर्यतध्वमाक्रष्टुं अयस्कान्तेन लोहवत् ॥

भाव यह कि (हे देव गण) तुम लोग समाधि लगाये हुए शिव जी के
को पार्वती के रूप पर किसी भी प्रकार से मोहित करा दो । जिस प्रकार लो
चुम्बक अपनी ओर आकर्षित करता है (फिर हम शिव जी से विवाह कर
प्रार्थना कर लेंगे)

‡ श्रुति कह परम धर्म उपकारा—

श्लोक—श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि, यदुक्तं शास्त्र कोटिभिः ।
परोपकारः पुण्याय, पापाय पर पीड़नम् ॥

अर्थात् आधे ही श्लोक में कहे देता हूं जो कुछ कि अनेक शास्त्रों में क
है सो यो कि दूसरे पर उपकार करना यही पुण्य है और दूसरे को दुःख दे
पाप है ॥

⊙ परहित लागि तजै जो देही । संतत संत प्रशंसहि तेही ॥

अर्थ—तौ भी मैं आप लोगों का काम करूंगा क्योंकि वेद में कहा है कि दूसरे का उपकार करना यही सब से उत्तम धर्म है। दूसरे की भलाई के लिये जो अपना शरीर छोड़े, साधु लोग उसकी सदा बड़ाई किया करते हैं॥

चौ०—अस कहि चलेउ सबहि शिर नाई। † सुमनधनुष कर सहित सहाई॥
चलत मार अस हृदय विचारा। शिव विरोध ध्रुव मरण हमारा॥

अर्थ-ऐसा कह सब को शिर नवा कर चला, उसने हाथों में फूलों का धनुष ले अपने सहायक वसंत अप्सरा आदि को साथ ले लिया। कामदेव ने चलते समय विचार किया कि शिव जी से बैर करने में मेरी मृत्यु अवश्य होवेगी॥

चौ०—तब आपन प्रभाव विस्तारा। निजवश कीन्ह सकल संसारा॥
कोपेउ जबहि वारिचरकेतू। क्षण महँ मिटेउ सकल श्रुतिसेतू॥

अर्थ—तब उसने अपनी ऐसी लीला फैलाई कि सब संसार को अपने वश में कर लिया। ज्यों ही कामदेव ने क्रोध किया त्यों क्षण भर ही में वेद की सब मर्यादा मिट गई॥

चौ०— ‡ ब्रह्मचर्य व्रत संयम नाना। धीरज धर्म ज्ञान विज्ञाना॥

सदाचार जप योग बिरागा। ७ सभय विवेक कटक सब भागा ॥

अर्थ—ब्रह्मचारी के नियम उपवास, कई प्रकार के संयम, धीरज, धर्म, ज्ञान और विचार। अच्छे आचरण, जप, योगसाधन और वैराग्य आदि विवेक की सेना भयभीत हो भागी ॥

छं०—भागेउ विवेक सहाइ सहित सो सुभट संयुग महि मुरे ।
सद्ग्रंथ पर्वत कंदरन्ह महँ जाइ तेहि अवसर दुरे ॥
होनिहार का करतार को रखवार जग खरभर परा ।
†दुइमाथ केहि रतिनाथ जेहि कहँ कोपि कर धनुशर धरा ॥

अर्थ—विवेक अपने सहायक वीरों समेत भागा क्योंकि वे वीर इस लड़ाई में पीठ दिखा गये। वेद, पुराण आदि अच्छे ग्रन्थ उस समय पहाड़ों की गुफाओं में जा छिपे (अर्थात् पोथियों में ही लिखे रह गये) उनके अनुसार आचरण न रहा, सब संसार में खलबल पड़ गई कि हे विधाता! अब क्या होने वाला है? इस समय रक्षक कौन है? व ऐसा दो शिर वाला कौन है कि जिसके लिये कामदेव ने क्रोध करके अपने हाथ में धनुषबाण उठाया है ॥

दो०—‡जे सजीव जग चर अचर, नारि पुरुष अस नाम ।

चौ०—* इनकी दशा न कहेउ बखानी । सदा काम के चेरे जानी ॥
सिद्ध विरक्त महा मुनि योगी । तेपि कामवश भये वियोगी ॥

अर्थ—इन की दशा का मैं ने वर्णन नहीं किया क्योंकि वे सदैव काम के वश में रहते हैं । परम ज्ञानी पूरे वैरागी व योगीश्वर बड़े २ मुनिराज वे भी काम के वश हो कर योग को छोड़ बैठे ॥

छन्द—भये कामवश योगीश तापस पामरन की को कहै ।
†देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे ॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जग पुरुष सब अबलामयं ।
दुइ दंड भर ब्रह्मांड भीतर कामकृतकौतुक अयं ॥

अर्थ—बड़े २ योगीश्वर और तपस्वी काम के वश हो गये फिर नीच प्राणियों की दशा कौन कह सक्ता है वे लोग सब संसार को स्त्रीरूप देखने लगे ॥ जो अपने ज्ञान के द्वारा उसे ब्रह्मरूप देखते थे । (संसार की) स्त्रियां सब संसार को पुरुषमय देखने लगीं और सब पुरुष संसार को स्त्रीरूप देखने लगे । सम्पूर्ण विश्व में दो घड़ी के लिये कामदेव ने यह खेल कर दिखाया ।

---

* इन की दशा न कहेउ बखानी । सदा काम के चेरे जानी (भर्तृहरि श० श०)

श्लोक—मत्तेभ कुम्भ दलने भुवि सन्ति शूराः ।
केचित्प्रचण्ड मृगराज वधेऽपि दक्षाः ॥
किंतु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य ।
कन्दर्पदर्प दलने विरला मनुष्याः ॥

अर्थात् इस पृथ्वी पर मस्त हाथी का मस्तक फाड़ने में समर्थ अनेक शूर हैं और अति बलवान् सिंह के मारने में कुशल भी अनेक योधा हैं परन्तु बलवानों के सामने हम हठ कर कह कहते हैं कि कामदेव के दर्प से बचने वाला कोई विरला ही मनुष्य होता है ॥

† देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे—

क०—भौन में प्यारी [illegible] में प्यारी [illegible] में प्यारी [illegible] में प्यारी है ।
[illegible] में प्यारी [illegible] में प्यारी [illegible] में प्यारी [illegible] में प्यारी है ॥
[illegible] में प्यारी [illegible] में प्यारी [illegible] में प्यारी [illegible] में प्यारी है ।
[illegible] में प्यारी और [illegible] में प्यारी [illegible] "[illegible] बिहारी" [illegible] में प्यारी है ॥

सो०—*धरा न काहु धीर, सब के मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर, ते उबरे तेहि काल महँ॥८५॥

अर्थ—उस समय कामदेव ने सब ही का मन हर लिया, किसी का धीरज न रहा, केवल वे ही इस से बचे कि जिनकी रक्षा रामचन्द्र जी ने की।

चौ०—उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जब लगि काम शंभु पहँ गयऊ॥
शिवहिं बिलोकि सशंकेउ मारू। भयेउ यथाथित सब संसारू॥

अर्थ—दो घड़ी तक ऐसा चमत्कार हुआ कि इतने में कामदेव महादेव जी के पास जा पहुँचा। शिव जी को देख कर कामदेव के मन में भय उत्पन्न हुआ तब सब संसार फिर अपनी यथार्थ दशा में हो गया।

चौ०—भये तुरत जग जीव सुखारे। जिमि मद उतर गये मतवारे॥
रुद्रहिं देखि मदन भय माना। दुराधर्ष दुर्गम भगवाना॥

शब्दार्थ—दुराधर्ष (दुर=कठिनाई से + धा + धृष्=दबाना) =कठिनाई से दबने के योग्य अर्थात् जो किसी से दबे नहीं॥

अर्थ—सब संसार के जीवधारी तुरन्त ही सुखी हो गये जैसे नशा करने वाले नशा के उतर जाने से हो जाते हैं। शत्रु से न दबने वाले, पहुँच के बाहिर और षडैश्वर्य युक्त रुद्र जी को देख कर कामदेव भयभीत हुआ॥

चौ०—फिरत लाज कछु कहि नहिं जाई। मरण ठानि मन रचेसि उपाई॥
†प्रकटेसि तुरत रुचिर ऋतुराजा। कुसुमित नव तरुराज बिराजा॥

---

* धरा न काहु धीर........ते उबरे तेहि काल महँ—यहाँ पर गोस्वामी जी ने भक्तजनों की श्रेष्ठता दर्शाई है सो यों कि ज्ञानी लोग जिन्हें अपना ही भरोसा था वे शीघ्र ही परास्त हुए (क्योंकि विवेकरूपी कटक तो भाग ही चुका था) [illegible] अरण्यकाण्ड में लिखा है कि—

तिन्हहि मोर बल निज बल ताही। दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आही॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पायहु ज्ञान भगति नहिं तजहीं॥

परन्तु भक्तजनों को परमेश्वर ने बचा लिया क्योंकि वे उन के सर्वदा रक्षक हैं ऐसा कहा है—

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करौं सदा तिन की रखवारी। जिमि बालकहि राख महतारी॥

† प्रकटेसि तुरत रुचिर ऋतुराजा। कुसुमित नव तरुराज बिराजा—

कवित्त—कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में क्यारिन में कलित कलीन किलकंत है।
कहै "पदमाकर" परागन में पौनहू में पातन में पिक में पलासन पगंत है।
द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में देखौ दीप दीपन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में बनन में बागन में बगरयो बसंत है॥

अर्थ—लौटने में उसे लज्जा मालूम होती थी, कुछ कहते नहीं बन पड़ता था,
ी मन में मरना विचार कर उसने उपाय किया । तुरन्त ही सुन्दर वसन्त ऋतु
त्पन्न कर दिया जिसमें पारिजात, आम आदि वृक्ष नये सिरे से फूल उठे ।

०—* बन उपबन वापिका तड़ागा । परम सुभग सब दिशा विभागा ॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा । देखि मुएहु मन मनसिज जागा ॥

अर्थ—जंगल, बगीचा, बावली, तालाब और सम्पूर्ण दिशाओं में जो कुछ था,
ही बहुत सुन्दर दिखने लगा । जहाँ तहाँ मानो प्रेम ही उमड़ा पड़ता था जिसे
कर गिरे दिल वालों को भी कामदेव ने सताया ॥

छं०—† जागै मनोभव मुएहु मन बन सुभगता न परै कही ।
शीतल सुगन्ध सुमन्द मारुत मदन अनल सखा सही ॥
‡ विकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा ।
कलहंस पिक शुक सरस रव करि गान नाचहिं अप्सरा ॥

---

* बन उपबन वापिका तड़ागा । परम सुभग सब दिशा विभागा—राम रसायन रामायण से—

कवित्त—बेलिन बसंत ज्यों नवेलिन बसन्त बन बागन बसंत रंग रागन बसन्त है ।
कुंजन बसन्त दिग पुंजन बसंत अलि गुंजन बसंत चहुँ ओरन बसन्त है ॥
ऐंठन बसन्त मद फैलन बसन्त दृग ऐंठन बसन्त बहु गैलन बसन्त है ।
'रसिक बिहारी' नैन सैनन बैनन में जितै नवलोगी तितै बरसै बसन्त है ॥

† जागै मनोभव मुएहु मन बन सुभगता न परै कही—लोलम्बराज से

श्लोक—ताम्बूलं मधु कुसुम स्रजो विचित्राः कान्तारं सुरतरु नरा विलास दत्तः
गीतानि श्रवण हराणि निर्भराणि, क्लीबानामपि जनयंति पंचबाणम्

अर्थात् पान, बसंत ऋतु, सुगंधित पुष्पों की मालायें, सघन बन, दिव्यपुरुष, नवयौवना स्त्री, कर्ण मधुर गीत, इत्यादि सब ये पदार्थ गिरे दिल वाले मनुष्यों को भी कामोद्दीपन करते हैं ॥

‡ विकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा……मनोज लतिका ग्रन्थ से

स०—कूकि उठी कोकिलान गूंजि उठी भौंर भीर, डोलि उठे सौरभ समीर सरसावने ।
फूलि उठीं लतिका लवंगन की लोनी लोनी, झूलि उठीं डालियाँ कदम्ब कुंज पावने ॥
चटकि चकोर उठे मोर बरि शोर उठे, टेर उठी सारिका विनोद उपजावने ।
चटकि गुलाब उठे लटकि सरोज पुंज, खटकि मराल अनुराग पुनि आवने ॥

अर्थ—जंगल की शोभा कही नहीं जाती कि जिससे गिरे दिल वालों के मन में भी काम उत्पन्न हुए। कामाग्नि की पूरी सहायक ठंडी धीमी और सुगन्ध हवा चलने लगी (अर्थात् शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन चलने लगी जो कामाग्नि बढ़ाने वाली है)। तालाब में बहुत से कमल खिल उठे और उन पर सुन्दर भौंरों के झुंड के झुंड गूंजने लगे। वहां राजहंस, सुआ और कोयल सुहावने शब्द करने लगे तथा गीत गा कर अप्सरायें नाचने लगीं॥

दो०— * सकल कला करि कोटि विधि, हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि शिव, कोपेउ हृदयनिकेत ॥८६॥

शब्दार्थ—हृदयनिकेत (हृदय=मन + निकेत=घर) =मन ही घर जिसका अर्थात् कामदेव।

अर्थ—हज़ारों तरह से मन उपाय करके जब कामदेव अपने सहायकों सहित हार गया और महादेव जी की अटूट तारी न खुली तब तो उसे क्रोध आ गया॥

चौ०—देखि रसाल विटप वर शाखा। तेहि पर चढ़ेउ मदन मन माखा॥
सुमन चाप निज शर संधाने। अति रिस ताकि श्रवण लग ताने॥

अर्थ—क्रोध का मारा कामदेव एक आम के झाड़ की सुन्दर डाल को देख कर उस पर जा चढ़ा और अपने फूलों के धनुष पर बाण लगा कर बड़े क्रोध से उन्हें कान तक खींच कर लक्ष्य बांधा॥

चौ०—छांड़े विषम विशिख उर लागे। छूटि समाधि शम्भु तब जागे॥
भयो ईश मन क्षोभ विशेखी। नयन उघारि सकल दिशि देखी॥

अर्थ—जो तीखे बाण छोड़े सो हृदय में लगते ही शिव जी का ध्यान छूट गया और वे सचेत हुए। शिव जी के मन में बड़ा उद्वेग उत्पन्न हुआ और उन्होंने आंखें खोल कर चारों ओर देखा॥

---

* सकल कला करि कोटि विधि······कोपेउ हृदयनिकेत—
यही कालिदास कुमार संभव में भी कहा गया है (सर्ग ३)
श्लोक—[illegible] , [illegible] ।
[illegible] ॥ [illegible]
अर्थ—उस समय (अर्थात् [illegible] होने आने पर) [illegible] [illegible] होने पर भी शिव जी [illegible] [illegible] [illegible]

अति प्रेम करि बिनती बिबिध बिधि जोरि कर सन्मुख रही ।
*प्रभु आशुतोष कृपाल शिव अबला निरखि बोले सही ॥

अर्थ—योगी लोग तो निर्विघ्न हुए और पति की दशा सुन कर रति को मूर्छा आई । वह बेचारी रोती पीटती और पति के गुण वर्णन करती तथा कई प्रकार दुःख करती हुई महादेव जी के पास गई । बड़े प्रेम सहित अनेक प्रकार से प्रार्थना कर के हाथ जोड़ कर साम्हने खड़ी हो रही । दयालु महादेव जी बड़ी जल्दी प्रसन्न होने वाले स्वामी हैं सो उस अबला को देख कर बोल उठे ॥

दो०—अब ते रति तव नाथ कर, होइहि नाम अनङ्ग ।
बिन बपु ब्यापिहि सबहि पुनि, सुनु निज मिलन प्रसङ्ग ॥८७॥

अर्थ—हे रति ! आज से तेरे पति का नाम अनंग (अर्थात् बे शरीर वाला) होवेगा । वह सब लोगों को बिना शरीर के ब्यापेगा, अब तू उससे फिर मिलने का अवसर सुन रख ॥

चौ०—जब यदुबंश कृष्णअवतारा । होइहि हरण महा महिभारा ॥
कृष्णतनय होइहि पति तोरा । बचन अन्यथा होइ न मोरा ॥

अर्थ—पृथ्वी का बड़ा भारी भार हरने के लिये जब यदुवंश में कृष्णावतार होगा, तब कृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न तेरा पति होगा, मेरा वाक्य झूठा नहीं होता ॥

* प्रभु आशुतोष कृपाल शिव अबला निरखि बोले सही ।—

शङ्का—[illegible]

[illegible]

अर्थ—परम कृपालु शिव जी बोले कहो, देवगण आप लोग किस कारण से आये ? ब्रह्मदेव बोले हे स्वामी ! आप तो अंतर की जानते हो तौ भी भक्ति वश प्रार्थना करता हूं ।

दो०—सकल सुरन्ह के हृदय अस, शंकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहहिं, नाथ तुम्हार विवाह ॥८८॥

अर्थ—हे शंकर जी ! सम्पूर्ण देवताओं के मन में ऐसा एक बड़ा उत्साह है कि वे अपनी आंखों से आप का विवाह देखा चाहते हैं ।

चौ०—यह उत्सव देखिय भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदनमदमोचन।
काम जारि रति कहँ वर दीन्हा। कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा।

अर्थ—हे कामदेव के मान भंग करने वाले ! आप वही कीजिये कि जिससे यह उत्साह हम लोग आंख भर के देख लेवें। हे दयासागर ! कामदेव को जलाकर रति को वरदान दिया यह आप ने बहुत ही अच्छा किया ॥

चौ०—सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन कर सहज सुभाऊ।
पारवती तप कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अंगीकारा।

अर्थ—हे नाथ ! स्वामियों का यह स्वभाव ही है कि वे पहिले दंड देकर फिर कृपा करते हैं। पार्वती जी ने बड़ी भारी तपस्या की है उन्हें अब स्वीकार कीजिये ।

चौ०—सुनि विधि विनय समझि प्रभुबानी। ऐसइ होउ कहा सुख मानी॥
तब देवन दुन्दुभी बजाई। बरषि सुमन जय जय सुरसाई ॥

अर्थ—ब्रह्मदेव की प्रार्थना सुन कर और अपने स्वामी रामचन्द्र जी के वाक्यों का स्मरण कर के बड़े सुखपूर्वक उन ने कहा ऐसा ही होवे । तब तो देवताओं ने "हे देवताओं के स्वामी तुम्हारी जय होय जय होय" ऐसा कहते हुए बाजे बजाये और फूल बरसाये ॥

चौ०—अवसर जानि सप्त ऋषि आये। तुरतहि विधि गिरिभवन पठाये ॥
प्रथम गये जहँ रहीं भवानी। बोले मधुर बचन छलसानी॥

अर्थ—समय देख कर सप्त ऋषि भी पहुंच गये, उन्हें ब्रह्मदेव ने तुरन्त ही हिमाचल के घर भेजा । वे लोग पहिले पार्वती जी के पास गये और कपट भरी [illegible] ।

—कहा हमार न सुनेहु तब, नारद के उपदेश।
अब भा झूठ तुम्हार प्रण, जारेउ काम महेश ॥८६॥

र्थ—उस समय तुम नारद के सिखापन में लगीं थीं सो हमारा कहना । अब तुम्हारा प्रण झूठा हुआ क्योंकि महादेव जी ने कामदेव को या।

सुनि बोलीं मुसकाय भवानी। उचित कहेहु मुनिवर विज्ञानी ॥
तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि शंभु रहे सविकारा ॥

र्थ—सुन करके पार्वती जी मुसकरानी और कहने लगीं—हे ज्ञानवान् त ! आप ने ठीक ही कहा आप की समझ में शिव जी ने कामदेव को अभी है और अब तक वे विकार सहित (अर्थात् सकाम) थे।

—हमरे जान सदा शिव योगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥
जो मैं शिव सेयउँ अस जानी। प्रीति समेत कर्म मन बानी ॥
तौ हमार प्रण सुनहु मुनीशा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईशा ॥

अर्थ—हमारी समझ में शिव जी सदा योगी हैं उनका कभी जन्म नहीं वाक्यों से उन का वर्णन नहीं हो सक्ता, काम का विकार उनमें है ही नहीं, की इच्छा उन्हें होती ही नहीं। जो मैं ने शिव जी को ऐसा जान कर प्रेम मनसा वाचा कर्मणा से उनकी सेवा की होगी, तो हे मुनीश्वर ! सुनो, कि वे सागर स्वामी हमारा प्रण सचा करेंगे।

—०तुम जो कहा हर जारेउ मारा। सो अति बड़ अविवेक तुम्हारा ॥
तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ ॥
गये समीप सो अवशि नसाई। अस मन्मथ महेश की नाईं ॥

तुम जो कहा हर जारेउ मारा। सो अति बड़ अविवेक तुम्हारा—कुमार संभव में—
श्लोक—उवाच चैनं परमार्थतो हरं, न वेत्सि नूनं यत एवमात्थ माम्।
अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं, द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ॥

अर्थ—पार्वती जी बोलीं कि जो तुम मुझ से इस प्रकार कह रहे हो सो र यथार्थ रूप से शिव जी को स्वरूप नहीं जानते। ठीक ही है अज्ञानी न महात्मा पुरुषों के चरित्रों की निन्दा किया करते हैं क्योंकि वे साधारण गों की समझ में नहीं आते और उनका कारण वे नहीं जान सक्ते (उन्हें थार्थ रूप से तो बुद्धिमान ही जान सक्ते हैं)।

दो०—लगे सँवारन सकल सुर, वाहन विविध विमान।
होहिं शकुन मंगल सुभग, करहिं अपसरा गान ॥ ६१ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण देवता कई प्रकार की सवारियाँ और विमान सजाने लगे, अप्सरायें गाने लगीं और सुन्दर शुभसूचक शकुन होने लगे।

चौ०—शिवहिं शंभुगण करहिं शृँगारा। जटा मुकुट अहि मौर सँवारा।
कुण्डल कंकण पहिरे व्याला। तनु विभूति पट केहरि छाला ॥

अर्थ—महादेव जी के गण उनका शृंगार करने लगे। उनकी बड़ी २ जटाओं का ही मुकुट बनाया जिस पर सर्पों का मौर सँभाल दिया। शिव जी सर्पों के ही कुंडल और कंकण पहिरे थे। शरीर में विभूति चढ़ी हुई थी और बाघम्बर ओढ़े थे।

चौ०—शशिललाट सुन्दर शिर गंगा। नयन तीनि उपवीत भुजंगा।
गरल कण्ठ उर नरशिरमाला। *अशिव वेष शिवधाम कृपाला॥

अर्थ—माथे पर सुन्दर चन्द्रमा और शिर पर गंगा जी थीं। तीन नेत्र और सर्प का जनेऊ। गले में हलाहल, हृदय पर मनुष्यों के मुंडों की माला थी। ऐसे दया-सागर अमंगल भेष होने पर भी सब मंगलों के घर हैं।

चौ०—कर त्रिशूल अरु डमरु विराजा। चले वृषभ चढ़ि बाजहिं बाजा।
देखि शिवहि सुरतिय मुसकाहीं। वर लायक दुलहिनि जग नाहीं॥

अर्थ—हाथों में त्रिशूल और डमरू शोभा देती थी, बैल पर चढ़ कर चले और बाजे बजने लगें। शिव जी को देख कर देवताओं की स्त्रियाँ हँसती थीं और कहतीं थीं कि ऐसे वर के योग्य संसार में कोई कन्या है ही नहीं।

---

* अशिव वेष शिवधाम कृपाला—

ताल इकताला — जय जय जय देव देव महादेव दानी ॥

अर्धचन्द्र तिलक भाल अंग भस्म अनुसंगार, धवल गंग धार जटा जूट में समानी ॥
शोभा कोउ सहन दिगम्बर महेश वेश, रहन कुण्डला बदन सोह है बखानी ॥
पहिरे उर मुंड माल कण्ठ देय अति कराल, व्याल जाल बाघम्बर [illegible] निशानी ॥
डमरू त्रिशूल हाथ भूत प्रेत प्रमथ साथ नाच नाच नाच नाच [illegible] बानी ॥
ध्यावैं मुनिवर सरोज पावैं सुख रोज रोज, 'हिंद कुमार' शोक मोक्ष देहु [illegible] ॥

चौ०—बिष्णु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा॥

अर्थ—ब्रह्मा विष्णु समेत सब देवताओं का समूह अपनी २ सवारियों पर चढ़ कर बरात में चला। देवमंडली सब प्रकार से अनूठी थी परन्तु दूल्हे योग्य बरात न थी।

दो०—बिष्णु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज॥[illegible]॥

अर्थ—तब विष्णु जी ने मुसका कर सम्पूर्ण दिक्पालों को बुला कर कहा कि अपनी अपनी समाज ले कर सब लोग अलग अलग चलो।

चौ०—बर अनुहार बरात न भाई। हँसी करइहउ परपुर जाई॥
बिष्णु बचन सुनि सुर मुसकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने॥

अर्थ—हे भाई! वर के योग्य बरात नहीं है क्या दूसरे के गाँव में जा कर अपनी हँसी करवाओगे। विष्णु के वाक्य सुन कर देवता मुसकाये और अपने २ समाज समेत अलग हो गये।

चौ०—मनहीं मन महेसु मुसकाहीं। हरि के बिंग बचन नहिं जाहीं॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृंगीहि प्रेरि सकल गन टेरे॥

अर्थ—[illegible]

चौ०—जस दूलह तस बनी बराता । कौतुक विविध होहिं मग जाता।

इहां हिमाचल रचेउ विताना । अति विचित्र नहिं जाइ बखाना।

अर्थ—जैसा दूलह था तैसी ही बरात बन गई, मार्ग में नाना प्रकार के वि
विलास होते जाते थे । इधर हिमाचल ने अच्छा मंडप बनाया था, जो बहुत
विचित्र था जिसका वर्णन नहीं हो सक्ता था ॥

चौ०—शैल सकल जहँ लगि जग माहीं । लघु विशाल नहिं बरणि सिराही

बन सागर सब नदी तलावा । हिमगिरि सब कहँ नेवत पठावा

अर्थ—संसार में जितने छोटे बड़े पहाड़ थे कि जिन का वर्णन नहीं हो सक्ता
उन सब को और सब जंगलों, नदियों, तालावों व समुद्रों को हिमालय ने निमंत्र
भेज कर बुलाया था ॥

सूचना—स्मरण रहे कि हिमालय का सकल पर्वतों नदियों, बन आदि
बुलवाना अथवा उन का आना कुछ यथार्थ पर्वतों आदि का आना न समझ
चाहिये । उस से तो उन सब के अधिष्ठाता देवताओं का आना जाना सूचित है

चौ०—*कामरूप सुन्दर तनुधारी । सहित समाज सोह बरनारी

आये सकल हिमाचल गेहा । गावहिं मंगल सहित सनेहा।

अर्थ—इच्छानुसार स्वरूप धारण करने की सामर्थ्य रखने वाले थे सब परिव
हुए मित्रों समेत हिमाचल के घर आये और प्रेम से शुभगीत गाने लगे ॥

चौ०—†प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराये । यथायोग्य जहँ तहँ सब छाये।

अर्थ—हिमाचल ने पहिले ही से बहुत से घर सजवा रक्खे थे, सो सब हं
अपनी २ योग्यता के अनुसार जहां तहां उन में रहने लगे ।

---

* कामरूप सुन्दर तनुधारी । सहित समाज सोह बरनारी—पार्वती मंगल से—

बरवै—गिरि बन सरित सिन्धु सर सुनइ जो पायउ ।
सब कहँ गिरिवर नायक नेवत पठायउ ॥
धरि धरि सुन्दर वेष चले हरषित हिये ।
चवँर चीर उपहार हार मनि गन लिये ॥

† प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराये—पार्वती मंगल से—

बरवै—कहेउ हरषि हिमवान वितान बनावन ।
हरषित लगीं सुआसिनि मंगल गावन ॥
तोरन कलस चँवर ध्वज विविध बनाइन्हि ।
हाट पटोरन्हि छाय सफल तरु लाइन्हि ॥

अर्थ—जिस ग्राम में स्वयम् जगतमाता ने अवतार लिया, क्या उसका वर्णन किया जा सक्ता है (अर्थात् नहीं) वहां ऋद्धि सिद्धि और सम्पूर्ण विभव नित नया बढ़ता था।

चौ०—नगर निकट बरात जब आई। पुर खरभर शोभा अधिकाई॥
करि बनाव सजि वाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना॥

अर्थ—गांव के समीप बरात आगई, यह खबर सुनते ही गांव में खलबली मच गई कि जिस से गांव की शोभा और भी बढ़ गई। सवारियां तैयार कर के पूरे ठाट बाट से अगवानी लोग आदरपूर्वक बरात को लेने चले।

चौ०—हिय हरषे सुरसेन निहारी। हरिहि देखि अति भये सुखारी॥
शिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले वाहन सब भागे॥

अर्थ—वे देवताओं की समाज देख कर मनमें प्रसन्न हुए और विष्णु को देख कर बहुत ही खुशी हुए। परन्तु जब महादेव जी के गणसमूह को देखने लगे तो सवारियां भाग खड़ी हुईं और समाज तितर बितर हो गया।

चौ०—धरि धीरज तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने॥
गये भवन पूछहिं पितु माता। कहहिं वचन भय कंपित गाता॥

अर्थ—वहां वृद्ध पुरुष धैर्य्य धारण किये ठहरे रहे परन्तु सब बालक प्राण ले कर भाग गये। जब वे घर पहुंचे और उनके माता पिता (बरात का हाल) पूछने लगे तो वे डरते हुए कांपते कांपते कहने थे।

चौ०—कहिय कहा कहिजाय न बाता। यम कर धार किधौं बरियाता॥
बर बौराह बरद असवारा। ब्याल कपाल विभूषण छारा॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

चौ०—भागि भवन पैठीं अति त्रासा। गये महेश जहां जनवासा
मैना हृदय भयउ दुख भारी। लीन्ही बोलि गिरीश कुमारी

अर्थ—भारी भय से भाग कर भामिनी भवनों में जा पैठीं और महादेव जनवासे को चले गये। मैना जी के हृदय में बड़ा दुःख हुआ, उन्हों ने पार्वती को बुला लिया।

चौ०—अधिक सनेह गोद बैठारी। श्याम सरोज नयन भरि वारी॥
जेहि विधि तुमहि रूप अस दीन्हा। तेहि जड़ वर बावर कस कीन्हा॥

अर्थ—बड़े प्यार से उसे अपनी गोदी में बिठलाया और श्यामले कमल के समान नेत्रों में आंसू भर के कहने लगीं। जिस विधाता ने तुम्हें ऐसा (सुन्दर) रूप दिया है उस बुद्धि हीन ने दूलह को पागल काहे को बनाया।

छंद—● कस कीन्ह वर बौराह विधि जेहि तुमहि सुन्दरता दई।
जो फल चहिय सुरतरुहि सो वर वश बबूरहि लागई॥
तुम सहित गिरि ते गिरौं पावक जरौं जलनिधि महँ परौं।
घर जाउ अपयश होइ जग जीवत विवाह न हौं करौं॥

अर्थ—जिसने तुम्हें सुन्दर रूप दिया उसी ब्रह्मा ने तुम्हारे वर को काहे को पागल बनाया। जो फल कल्पवृक्ष में लगने चाहिये था सो बराजोरी बबूल में लगा चाहता है (अर्थात् मेरी रूपवती कन्या का विवाह किसी स्वरूपवान् वर के साथ होना चाहिये था सो जानबूझ कर बावरे वर से हुआ जाता है)॥
तुम्हें लेकर चाहे पर्वत से गिर पड़ूं, अग्नि में जल मरूँ, समुद्र में डूब मरूँ। चाहे घर छूट जाय चाहे संसार में अपकीर्ति हो, परन्तु जीते जी मैं तो विवाह न करने दूंगी॥

दो०—भईं विकल अबला सकल, दुखित देखि गिरिनारि।
करि विलाप रोदति वदति, सुता सनेह सँभारि॥ ६६॥

● कस कीन्ह वर बौराह विधि जेहि तुमहिं सुन्दरता दई—
क०—हीरा जो विष्णुजी को तिलक महा शंभुजी को मथन [illegible] को जगत ओत प्यारी है।
अमृत को फल सब देवतन को [illegible] जग शोभा जग प्यारी है।
[illegible] 'कलन्व' [illegible] मूरति [illegible] की [illegible] है।
ऐसे चन्द्रमा के [illegible] [illegible] है।

अर्थ—माता को व्याकुल देख पार्वती ज्ञान से भरे हुए मधुर वचन बोलीं। हे माता ! "जो ब्रह्मा ने रच दिया है वह कभी मिटने का नहीं, ऐसा विचार कर सोच मत करो।

चौ०—कर्म लिखा जो बाउर नाहू । तौ कत दोष लगाइय काहू ।
*तुम सन मिटहिं कि विधि के अंका। मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका॥

अर्थ—जो भाग्य में बावला वर पदा होगा तो दूसरे को दोष क्यों लगावें। क्या तुम से विधाता के अंक मिट सक्ते हैं? हे माताजी। वृथा अपने ऊपर कलंक मत लेओ।

छन्द—जनि लेहु मात कलंक करुणा परिहरहु अवसर नहीं।
दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाव जहँ पाउब तहीं॥
सुनि उमावचन विनीत कोमल सकल अबला सोचहीं।
बहु भांति विधिहि लगाय दूषण नयन वारि विमोचहीं॥

अर्थ—हे माताजी ! तुम अपने ऊपर कलंक मत लेओ, दुःख दूर करो, उसका समय नहीं है। जो हमारे भाग्य में दुःख अथवा सुख लिखा है वह हम जहां जावेंगी तहीं पावेंगी ॥ पार्वती के नम्र कोमल वचनों को सुन सम्पूर्ण स्त्रियां चिन्ता करने लगीं और नाना भांति से ब्रह्मा को दोष लगा कर आंखों से आंसू बहाने लगीं ।

दो०—तेहि अवसर नारद सहित, अरु ऋषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिन गिरि, गवने तुरत निकेत ॥६७॥

अन्वय—तेहि अवसर समाचार सुनि तुहिन गिरि नारद सहित अरु सप्त ऋषि समेत तुरत निकेत गवने ।

अर्थ—उस समय इस समाचार को सुन हिमाचल नारद को साथ ले सप्त ऋषियों समेत झट पट महलों में सिधारे ।

चौ०—तब नारद सबही समझावा। पूरब कथा प्रसंग सुनावा॥
मैना सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तवसुता भवानी॥

---

*तुम सन मिटहिं कि विधि के अङ्का । मातु व्यर्थ जनि लेहु कलङ्का—
सवैया—जो हम को वर दीन्ह दयो विधि बावरो स्यानो जु है सोइ नीको ।
साधि नहीं तुम्ह जो तुम को कोई भांति है जा पै परे चाहै फीको ।
सोच विचारि विषाद तजौ अब ईन्व करौ सु लगै अति फीको ।
नाहिं मिटैं तुम सों विधि अङ्क तु लेहु न मातु कलङ्क को टीको ।

अर्थ—तब नारद जी ने सब को समझाया और पहिले की सब कथा का हाल कह सुनाया (और कहने लगे) हे मैना रानी ! मेरी सच्ची बानी सुनो, तुम्हारी पुत्री भवानी जगत की माता है ।

दो०—अजा अनादि शक्ति अविनाशिनि । *सदा शंभु अरधंग निवासिनि ॥
जगसंभवपालनलयकारिनि । निजइच्छालीलावपुधारिनि ॥

अर्थ—(ये) जन्म रहित, आदि रहित, शक्तिरूप तथा नाश रहित हैं और सदा सदाशिव जी के आधे शरीर ही में रहने वाली हैं । संसार की उत्पत्ति पालना और नाश करने वाली हैं तथा अपनी ही इच्छा से लीला करने के हेतु शरीर धारण करने हारी हैं ।

चौ०—जनमी प्रथम दच्छगृह-जाई । नाम सती सुन्दर तनु पाई ॥
तहउँ सती शंकरहि बिवाहीं । कथा प्रसिद्ध सकल जगमाहीं ॥

अर्थ—पहिले इन्हों ने दक्ष प्रजापति के यहां जन्म लिया था वहां ये रूपवती हो कर सती के नाम से प्रसिद्ध हुईं । वहां भी सती का विवाह शिव जी से हुआ सो कथा सब संसार में प्रसिद्ध ही है ।

चौ०—एक बार आवत शिव संगा । देखेउ रघुपति कमलपतंगा ॥
भयउ मोह शिव कहा न कीन्हा । भ्रमवश वेष सीय कर लीन्हा ॥

अर्थ—एक समय शिव जी के साथ आ रहीं थीं कि उन्हों ने कमलरूपी रघुकुल को सूर्य के समान श्री राम को देखा । (सीता के विरह में व्याकुल जान) संशय में पड़ शिव जी का कहा न माना और सन्देह के कारण सीता का रूप धारण कर लिया ॥

छंद—सिय वेष सती जो कीन्ह तेहि अपराध शंकर परिहरीं ।
हरविरह जाइ बहोरि पितु के यज्ञ योगानल जरीं ॥
अब जनमि तुम्हरे भवन निजपति लागि दारुण तप किया ।
अस जानि संशय तजहु गिरिजा सर्वदा शंकरप्रिया ॥

---

* सदा शंभु अरधंग निवासिनि—

छप्पय—गंग सीस पै धरे अंग अरधंग [illegible] ।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अर्थ—सती ने जो सीता का स्वरूप धारण किया था उसी अपराध से शंकर जी ने उनका त्याग किया । फिर शिव जी से विछोह के कारण उन्हों ने जाकर पितृ के यज्ञ के समय योगाग्नि से अपने शरीर को जला दिया । अब तुम्हारे यहां जन्म लेकर उन्हों ने अपने पति के लिये बड़ी तपस्या की । ऐसा समझ सब संदेह दूर करो, पार्वती सदैव सदाशिव जी की अर्द्धांगिनी रही हैं ॥

दो०—सुनि नारद के वचन तब, सब कर मिटा विषाद ।
छण महँ व्यापेउ सकल पुर, घर घर यह संवाद ॥ ६८ ॥

अर्थ—तब नारद के वचन सुन सबका दुःख दूर हुआ और यह चर्चा पल भर में सब नगर के प्रत्येक घर में फैल गई ॥

चौ०—तब मैना हिमवंत अनंदे । पुनि पुनि पारबतीपद बंदे ॥
नारि पुरुष शिशु युवा सयाने । नगर लोग सब अति हरषाने ॥

अर्थ—तब तो मैना और हिमाचल बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्हों ने बारंबार पार्वती के चरणों की वंदना की । स्त्री, पुरुष, बालक, जवान और बुड्ढे पुरजन भी बहुत सुखी हुए ।

चौ०—लगे होन पुर मंगल गाना । सजे सबहि हाटकघट नाना ॥
भाँति अनेक भई जेवनारा । सूपशास्त्र जस कछु व्यवहारा ॥

अर्थ—नगर में मंगल गीत होने लगे, सब लोगों ने नाना प्रकार के सोने के घट तैयार किये । भांति भांति के भोजन बनाये गये जो व्यंजनप्रकाश शास्त्र के अनुसार सिद्ध किये गये थे ।

चौ०—सो जेवनार कि जाइ बखानी । बसहिं भवन जेहि मातु भवानी ॥
सादरे बोले सकल बराती । विष्णु विरंचि देव सब जाती ॥

अर्थ—क्या उस रसोई का वर्णन हो सकता है ? जिस घर में जगदम्बा भवानी जी का निवास था (अर्थात् रसोई सदैव माता के हाथ की सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है सो यहां पर जगत की माता जब रसोई घर में स्वतः विद्यमान थीं तो वे पकवान सब लोगों को रुचिकर क्यों न होवें) । उन्हों ने विष्णु ब्रह्मदेव तथा दूसरे बराती देवगणों को भी आदर पूर्वक बुला लिया ।

चौ०—विविध भांति बैठी जेवनारा । लगेपरोसन निपुण सुआरा ॥
नारिवृंद सुर जेवत जानी । लगीं देन गारी मृदुबानी ॥

* बिबिध भाँति बैठी जेवनारा । लगे परोसन निपुन सुआरा ॥ (पाठभेद)

अर्थ—अनेक पंक्ति बांधकर लोग बिठलाये गये, तब चतुर रसोइया परोसने लगे। स्त्रियों ने देवताओं को भोजन करते देख मधुर स्वर से गालियां गाना आरंभ किया।

छंद—गारी मधुरस्वर देहिं सुन्दरि व्यंग वचन सुनावहीं।
*भोजन करहिं सुर अति बिलंब बिनोद सुनि सचुपावहीं॥
जेंवत जो बढ्यो अनंद सो मुख कोटिहू न परइ कह्यो।
अँचवाइ दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रह्यो॥

अर्थ—रूपवती स्त्रियां मधुर ध्वनि से गालियां गा रहीं थीं और व्यंग्य भरे वचन सुनाती थीं। देवता बहुत कुछ विलम्ब करते हुए भोजन करते थे और चुपचाप प्रेम भरे शब्दों को सुनते थे। भोजन करते समय जो कुछ आनंद बढ़ा सो करोड़ों मुख से कहा नहीं जा सक्ता। सब को अँचवाय जब पान दिये तब सब के सब अपने २ डेरा को गये।

सवैया—जन के समबोधन को निकसे नहँ रेशम आय धरे अँगना।
पुनि धोइ सरोजन सो परसे तहँ दुर्बारि आइ धरे जुगना॥
तरध्यामलि भाँति अनेक परी छुवितांत तिया निकसी नय ना।
मख अंग के संग सभी जुटगैं यह नीक सँयोग रच्यो विधना॥

शब्द। पर्यायी शब्द।
जन "समबोधन" — भोजन अर्थात् भोजनों को चले।
'रेशम' — पाट अर्थात् यहाँ आँगन में पीढ़ा विछाये।
'सरोजन' — कमल अर्थात् कमलरूपी हाथों से।
'दुर्बारि' — पतरी } अर्थात् पत्तल और दोना ला रक्खे।
'जुग' ना — दोना }
तर 'ध्यामलि' — तरकारी अर्थात् भाँति २ की तरकारी परोसी गई।
'छुवि' 'तांत' — छुवि के लिये 'भा' जिसके अंत में 'त'=भात
तिया — दार }
निकसी — कढ़ी } अर्थात् भात, दाल, कढ़ी और नमक।
'नय' ना — नोंन }
मखअंग — घी अर्थात् दाल भात में घी मिलाकर भोजन करते जाते थे और कहते थे कि विधाता ने यह संयोग अच्छा बनाया॥

* भोजन करहिं सुर अति बिलम्ब (आदि) ज्ञान भक्ति प्रकाश से संकलित—
पनवारे दोना जब माजे, सो सोने सींक लगाये जू।
रूपे गडुवा कनक कटोरा, सो गंगा जल भर ल्याये जू॥
चतुर सुआर खड़े भे जब ही, सो बरन बरन लिय व्यंजन जू।
तरकारी जब परसन लागे, सो मुरई तरोई सेमी जू॥
बरबर और बघेंड़ी सौंफी, सो केरा ढंढ़टि मेर्सी जू॥
(क्रिशी)

दो०—बहुरि मुनिन हिमवंत कहँ, लगन जनाई आय।
समय विलोकि विवाह कर, पठये देव बुलाय ॥ ९९ ॥

अर्थ—फिर सप्त ऋषियों ने हिमालय से आकर विवाह का समय सूचित किया और उन्हों ने विवाह का मुहूर्त जान सब देवगणों को बुलवा भेजा।

चौ०—बोलि सकल सुर सादर कीन्हें। सबहिं यथोचित आसन दीन्हें।
वेदी वेद विधान सँवारी। सुभग सुमंगल गावहिं नारी॥

अर्थ—सम्पूर्ण देवताओं को आदर सहित बुलवा लिया और सब को यथा योग्य आसन पर पधराया। वेद की रीति के अनुसार वेदिका बनाई गई और सौभाग्यवती स्त्रियां मंगल गीत गाने लगीं

गिडी ककड़ी और रतालू, सो आलू परम फिराये जू।
कुँदरू और करेला केला, सो मेथी मर्द मिलाये जू।
पुरी सुहारी कोरि मैदा की, सो मालपुआ जुग जोरी जू॥
पापर और बिजोरे गुजला. सो घृत में लोन निकारे जू।
लपसी खीर शरस बनाये सो मोहन भोग मलाई जू॥
फेनी सरस जलेबी परसी सो सोया खाँड़ मिलाये जू।
लाडू खाई पेड़ा बरफी, सो पूवे दालहिं हथाये जू॥
मोतीचूर मगद के लाडू, सो आगु गुलाब निहारे जू।
दूसर पाग चिरौंजी डाले सो घावर पुरी सिधारे जू॥
बड़नी पाद बरन बहु व्यंजन सो कंचन थार सजाये जू।

गावहिं नारी—

के शरणागत रहिहौं॥
ं न तंबूरा तन को रवाब सितार बजैहौं।
तिज शिव को नित सुरति की सुरति बनैहौं॥
ो पै धरिहौं॥ १॥
केशर को काजर लगार लगैहौं।
सनेह शील को चमड़ी पै बरतैहौं॥
बलि जैहौं॥ २॥
.... चरण ते निजमति लाहि मचैहौं।
निरखि शिव के मनमधुकर को लहिहौं॥
र जैहौं॥ ३॥
देव जन के कज तिनहि सामर्थ निहैहौं।
वारी वरि हरि त्रिभुवन के लहिहौं॥
जहै हौं॥ ४॥

अर्थ—मुनि जी की आज्ञा से महादेव व पार्वती ने गणपति जी का पूजन किया। इस बात को सुनकर किसी को सन्देह न करना चाहिये, क्योंकि देवता अनादि हैं, यह जी में जान रक्खो ॥

चौ०—जस विवाह की विधि श्रुति गाई । महा मुनिन सो सब करवाई ॥
*गहि गिरीश कुश कन्या पानी । भवहि समर्पी जानि भवानी ॥

अर्थ—वेद में जिस प्रकार से विवाह की पद्धति कही है श्रेष्ठ मुनियों ने वही सब रीति करवाई । फिर हिमाचल ने कन्या का हाथ और कुशा अपने हाथ में ले उसे भवानी (अर्थात् शिव जी की स्त्री) समझ शिव जी को सौंप दी ।

चौ०—पाणिग्रहण जब कीन्ह महेशा। हिय हरषे तब सकल सुरेशा ॥
वेदमंत्र मुनिवर उच्चरहीं । जय जय जय शंकर सुर करहीं ॥

अर्थ—जब महादेव जी ने पार्वती का पाणिग्रहण किया (अर्थात् उनके हाथ को अपने हाथ में पकड़ा) तब सम्पूर्ण देवता हृदय में प्रसन्न हुए । मुनिश्रेष्ठ तो वेदमंत्र पढ़ रहे थे और देवता कह रहे थे हे शंकर जी! आप की जय होय, जय होय, जय होय ।

चौ०—बाजहि बाजन विविध विधाना। सुमन वृष्टि नभ भइ विधिनाना ॥
हर गिरिजा कर भयउ विवाहू। सकल भुवन भर रहा उछाहू॥

अर्थ—नाना प्रकार के बाजे बजने लगे और आकाश से भी भांति २ के फूलों की वर्षा हुई । महादेव पार्वती जी का विवाह हुआ और सम्पूर्ण लोकों में आनन्द भर गया ।

---

* गहि गिरीश कुश कन्या पानी । भवहि समर्पी जानि भवानी —

[illegible]

वहीं माता भवानी गईं। वे अपने पति के कमलस्वरूपी चरणों को जहां पर उन का भौंरारूपी मन लगा था, लज्जा के कारण देख नहीं सक्तीं थीं ॥

दो०—*मुनि अनुशासन गणपतिहि, पूजेउ शम्भु भवानि।
कोउ सुनि संशय करै जनि, सुर अनादि जिय जानि ॥१००॥

* मुनि अनुशासन गणपतिहि, पूजेउ शम्भु भवानि। (आदि)— यहां पर हिन्दू धर्म के गूढ़ रहस्य के कुछ दिग्दर्शन करने की आवश्यकता है सो यों कि—भक्तजन अपनी २ रुचि के अनुसार विशेष गुण सम्पन्न देवता को इष्ट मान कर उस का पूजन सर्वोपरि बतलाते हैं ; परन्तु यथार्थ में ये सब उसी परब्रह्म परमात्मा के उपासक हैं-तुलसीदास जी ने तो सर्वरूप रूपी, सर्वशरीर शरीरी, सर्वनाम नामी राम ही को जान कर समस्त नामों से राम ही को वन्दन किया है-जैसा लिखा है—"सीय राम मय सब जग जानी। करौं प्रणाम जोरि युग पानी ॥" क्योंकि इन्हीं ने राम ही को परमात्मा रूप सिद्ध किया है ; यथा— "राम सो परमातमा भवानी"। इस का थोड़ा सा समाधान रामायण के पहिले ही श्लोक और पहिले सोरठे की टीका और टिप्पणी में करने का प्रयत्न किया है। श्री गणेश जी की प्रथम वन्दना तथा उन का प्रथम पूजन इस आधुनिक प्रथा को गोस्वामी जी ने कितनी उत्तम रीति से निर्वाहा है कि ग्रन्थ के आदि में वन्दना भी की तथा उन्हें राममय और राम ही के कारण पूज्यपद पाये हुए कह गये और सब से बढ़ कर श्रीमहादेव जी और पार्वती जी (जिन के कि ये सन्तान पुराणों में कहे गये हैं) उन्हीं के विवाह में उन का पूजन करवा कर उन्हें अनादि कह कर यही दर्शाया है कि ये भी परमात्मा रूप पूजनीय हैं।

पुराणों में दो पीठ प्रसिद्ध हैं-एक विष्णुपीठ जिसमें विष्वक्सेन प्रथम पूज्य हैं और दूसरा रुद्रपीठ जिस में गणेश प्रथम पूज्य हैं। बौद्ध, जैन, चार्वाक आदि पाखंड धर्म के बढ़ने पर श्री शंकर जी ने शंकराचार्य रूप से अवतार लेकर समस्त पाखंडियों को परास्त किया और वैदिक धर्म स्थापन किया। सम्पूर्ण पण्डित इन्हीं के अनुयायी हो गये और तभी से बहुधा लोगों की रुचि विष्णुपीठ की अपेक्षा रुद्रपीठ पर हुई। तभी से समस्त-मंगलकार्यों में गणेश जी का प्रथम पूजन होने लगा। प्राचीन ग्रन्थों में ऐसा नहीं किया गया है।

स्मरण रहे कि शंकर जी के उपासक लोग कभी २ विष्णु जी की विशेष निंदा करने लगे। उसे दबाने के लिये महात्मा जी ने अपनी रामायण में विष्णु और शिव की भक्ति का परस्पर मेल बड़ी उत्तमता से कर दिया है। तभी तो इन सम्पूर्ण बातों की चतुराई के कारण इन का ग्रन्थ परमपूज्य माना जा रहा है। परब्रह्मरूप गणेश जी का पूजन साक्षात् शिव जी तथा सम्पूर्ण देवगण करते हैं उस की पुष्टि में यह भजन विष्णुपदी रामायण से उद्धृत किया जाता है।

॥ प्रभाती ॥

वन्दौं श्री सिधि गणेश कर्ता मंगल सुवेश, हर्ता अघगुन कलेश गुण फणेश गावैं ॥टेक॥
ब्रह्मा हरि हर सुरेश वनिता अनल रवि दिनेश वरुण काल यम धनेश जेहि हमेश ध्यावैं ॥
नाद ब्रह्म प्रभु अनादि अविरत भुवन पूज्य आदि शुचि सुयन नारदादि नित समाधि लावैं।
सुमिरत भय विघन नाश करत पूर्ण सकल आस प्रणमत बलदेव दास अमित फल पावैं ॥

०—*बहु विधि शंभु सास समझाई । गवनी भवन चरण सिर नाई ।
जननी उमा बोलि तब लीन्ही । लेइ उछंग सुंदर सिख दीन्ही ।

अर्थ—महादेव जी ने अनेक प्रकार से अपनी सास का संबोधन किया और वे के चरणों में सीस निवाकर महलों में चली गई। माता ने तब पार्वती को लिया और उसे अपनी गोदी में बिठला कर उत्तम सिखापन दिया ।

१०—करेहु सदा शंकरपदपूजा । †नारिधर्म पति देव न दूजा ।
वचन कहत भरि लोचन बारी । बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी ।

अर्थ—सदैव शिवजी के चरणों की पूजा करती रहना स्त्री का धर्म दूसरा हीं है पति ही उनका देवता है । नेत्रों में आंसू भर कर वचन बोलीं और पुत्री को र अपने हृदय से लगा लिया ।

---

* बहु विधि शम्भु सास समझाई—शिव जी ने अपनी सास को अपने विचित्र वेश धारण करने का कारण समझाया जो पद्म पुराण में यों लिखा है:—

श्लोक—त्वञ्च रुद्र महाबाहो, मोहनार्थं सुरद्विषाम् ।
पाषण्डाचरणं धर्मं, कुरुष्व सुरसत्तम ॥
एवं देवहितार्थाय वृत्ति वेद विगर्हिताम् ।
विष्णो [illegible] धारणम् ॥
धारयिष्ये इदं देवी, मोहनार्थं सुरद्विषाम् ।
अन्तरे हृदये नित्यं ध्यायामि देवं जनार्दनम् ॥

अर्थात् (विष्णु जी बोले कि) हे महाबाहो सुरश्रेष्ठ रुद्र जी ! आप राक्षसों के मोहित करने के लिये ऐसे आचरण करते रहिये जो पाखंड रूप होवें ॥ इस प्रकार विष्णु जी की आज्ञा स्वीकार करके देवताओं के हित के लिये वेदों में निन्दित धर्म जैसे [illegible] आदि वृत्ति धारण कर ली है ॥ हे देवी ! राक्षसों के मोहने के लिये यह और केवल बाहिरी चिन्ह मात्र है, अन्तःकरण में तो मैं निरंतर विष्णु जी का ध्यान करता रहता हूं ॥

† नारिधर्म पति देव न दूजा—

[illegible]

[illegible]

चौ०—दासी दास तुरग रथ नागा। धेनु बसन मणि वस्तु विभागा॥
अन्न कनकभाजन भरि याना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना॥

अर्थ—सेवकनी और सेवक घोड़े रथ और हाथी गायें वस्त्र रत्न और भांति २ के पदार्थ। अन्न तथा सोने के बर्तन गाड़ियों में भर २ कर इतना दाइजा दिया, कि उसका वर्णन नहीं हो सक्ता।

छन्द—* दाइज दियो बहुभांति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो।
का देउँ पूरनकाम शंकर चरनपंकज गहि रह्यो॥
शिव कृपासागर ससुर कर संतोष सब भांतिहि कियो।
पुनि गहे पदपाथोज मैना प्रेमपरिपूरन हियो॥

अर्थ—नाना प्रकार का दाइजा दिया और फिर हाथ जोड़ कर हिमाचल बोले। हे शिव जी! मैं तुम्हें क्या दे सक्ता हूं? तुम तो पूर्ण काम हो, इतना कह उनके कमल स्वरूपी चरणों को पकड़ कर रह गये। दयासागर शिव जी ने अपने ससुर का सब प्रकार से समाधान किया। फिर प्रेम पूर्ण हृदय से मैना रानी ने भी कमलस्वरूपी चरणों को पकड़ा॥

दो०—नाथ उमा मम प्राण सम, गृहकिंकिरी करेहु।
† छमहु सकल अपराध अब, होइ प्रसन्न वर देहु॥१०१॥

अर्थ—हे प्रभु! पार्वती मुझे प्राणों के समान प्यारी है उसे अपने घर की टहलनी बनाइये। अब उसके सम्पूर्ण अपराध क्षमा कीजिये प्रसन्न हो कर यही वरदान दीजिये।

---

* दाइज दियो बहुभांति—
छन्द—दाइज बसन मणि धेनु धन हय गय सुसेवक सेवकी।
दीन्हीं मुदित गिरिराज जे गिरिजहि पियारी पेवकी॥
पेखेउ जनम फल मा बिबाह उछाह उमगहिं दश दिशा।
निशान गान प्रसून झरि 'तुलसी' सुहावनि सो निशा॥

† छमहु सकल अपराध अब—इन वचनों से एक आशय तो यह निकलता है कि आप मेरे सब अपराध क्षमा कीजिये जो मैं ने आप को बिना जाने अद्भुत बनाव देख अमंगलरूप समझ बरात आने के समय आप की आरती न उतार घर में भाग गई थी और दूसरा आशय यह निकलता है कि पार्वती के सब अपराध क्षमा कीजिये जो उसने हठ पकड़ कर सती रूप में आप के कहने पर विश्वास न कर रामचन्द्र जी की परीक्षा के हेतु सीता का रूप धारण कर लिया था। इत्यादि

ौ०—तुरत भवन आये गिरिराई। सकल शैल सर लिये बुलाई।
आदर दान विनय बहु माना। सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना॥

अर्थ—हिमाचल तुरन्त घर आये और उन्हों ने (देवरूपधारी) सब पर्वतों और ताओं को बुला लिया उन्हों ने किसी को आदर से, किसी को दान दे, किसी से नती कर और किसी का बहुत सनमान करके सब की बिदा की।

ौ०—जबहि शम्भु कैलासहि आये। सुर सब निज निज लोक सिधाये।
जगतमातुपितु शम्भु भवानी। तेहि शृंगार न कहौं बखानी॥

अर्थ—जब शिव जी कैलाश में पहुंचे तब सब देवता अपने २ लोक को चले ये। गौरी शंकर तो संसार के माता पिता हैं इस हेतु उनका विहार वर्णन रके नहीं कहता।

ौ०—करहिं विविध विधि भोग विलासा। गणन समेत बसहिं कैलासा।
हरगिरिजाविहार नित नयऊ। इहि विधि विपुल काल चलि गयऊ॥

अर्थ—वे अपने गणों के साथ कैलाश में रहते थे और नाना प्रकार सुखचैन भोगते थे। शिव पार्वती का भोग विलास दिनों दिन नये ढंग होता था, इस प्रकार बहुत सा समय व्यतीत हुआ॥

चौ०—तब जन्मेउ षटवदन कुमारा। तारक असुर समर जेहि मारा॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। *षटमुखजन्म कर्म जग जाना॥

---

* षटमुख—एक समय शिव जी का रेत वन में पतित हुआ। इसे कुछ समय तक गंगा जी ने धारण किया। फिर अग्नि ने धारण किया। अन्त में छः कृत्तिकाओं ने धारण किया। जिससे छः कृत्तिकाओं से एक मुख और दो हाथ वाले बालक आकार की उत्पत्ति हुई। इन छः खण्डों को एकत्र करने से एक बालक बना। जिसके छः मुख १२ नेत्र और १२ हाथ हुए। कहते हैं कि रेत के शर वन अर्थात् पतित होने से इन का नाम स्कन्द पड़ा। इसे गंगा जी ने धारण किया। इस हेतु गांगेय, अग्नि ने धारण किया इस हेतु अग्नि भू और कृत्तिकाओं ने धारण किया इस लिये कार्तिकेय इनका नाम पड़ा। छः मुख वाले होने से षण्मुख और षडानन कहलाये। देवताओं की सेना के अधिकारी होने से ये सेनानी कहलाये। कुछ दिन गुहा (गुफा) में रहने के कारण इन्हें गुह भी कहते हैं। इन्हों ने सात दिन की अवस्था में तारकासुर का वध करके देवताओं का दुःख दूर किया था।

चौ०—कत विधि सृजा नारि जग माहीं। ‡पराधीन सपनेहु सुख नाहीं
भइ अति प्रेम विकल महतारी। धीरज कीन्ह कुसमय विचारी

अर्थ—विधाता ने संसार में स्त्री को क्यों पैदा किया? कारण दूसरे की आधीनता में सुख सपने में भी नहीं। इस प्रकार माता प्रेम से व्याकुल हो गईं परन्तु दुःख का अवसर न जान उन्होंने धीरज रक्खा।

चौ०—पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेम कछु जाइ न वरना
सब नारिन मिल भेंट भवानी। जाइ जननिउर पुनि लपटानी॥

अर्थ—उनसे बारंबार भेंट करतीं थीं और उनके चरण पकड़ कर मिलती थीं उस समय का अधिक स्नेह वर्णन नहीं किया जा सक्ता। पार्वती जी सब स्त्रियों से मिल भेंट कर फिर भी अपनी माता के हृदय से जा लिपटीं।

छंद—जननी बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहू दईं।
फिरि फिरि विलोकति मातु तन तब सखी लै शिव पहँ गईं॥
याचक सकल संतोष शंकर उमा सह भवनहिं चले।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निशान नभ बाजहिं भले॥

अर्थ—पार्वती जी फिर भी अपनी माता से मिल कर चली और सब स्त्री पुरुषों ने यथोचित आशीर्वाद दिये। वे लौट २ कर माता की ओर निहारती थीं इस प्रकार सखियां उन्हें शिव जी के पास लिवा ले गईं। शिव जी ने सम्पूर्ण याचकों को संतुष्ट किया और वे पार्वती के साथ कैलाश की ओर चले। सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हुए, फूलों की वर्षा हुई और आकाश में नगाड़े भली भांति बजने लगे।

दो०—चले संग हिमवंत तब पहुँचावन अति हेतु।
विविध भांति परितोष करि विदा कीन्ह वृषकेतु॥१०२॥

अर्थ—तब हिमाचल अपने अति हितुआ महादेव जी को पहुँचाने चले और महादेव जी ने उन्हें नाना प्रकार से समझा बुझाकर लौटा दिया।

---

‡ पराधीन सपनेहु सुख नाहीं—हितोपदेश में लिखा है कि—

श्लोक—एतावज्जन्मसाफल्यं, यदनायत्तवृत्तिता।
ये पराधीनतां यातास्ते वै जीवन्ति के मृताः॥

अर्थात् जन्म का यही फल है कि किसी के आधीन न होना पड़े। जो पराधीन हैं उन्हें यदि जीते हुए मानें तो मरे हुए कौन कहावेंगे (भाव यह है कि जो पराधीन हैं वे ही मरे के तुल्य हैं)

अर्थ—मधुर और सुहावने शिव जी के चरित्रों को सुन कर भरद्वाज मुनि को बड़ा आनन्द हुआ। कथा में उनकी रुचि बहुत बढ़ गई, नेत्रों में आँसू भर आये और रोम खड़े हो गये॥

चौ०—प्रेमविवश मुख आव न बानी। दशा देखि हरषे मुनि ज्ञानी॥
अहो धन्य तव जन्म मुनीशा। तुमहि प्राण सम प्रिय गौरीशा॥

अर्थ—प्रेम में ऐसे मग्न होगये कि मुख से बोल नहीं सके थे, उन का ऐसा हाल देख ज्ञानवान याज्ञवल्क्य मुनि प्रसन्न हुए। (और कहने लगे) वाह मुनि श्रेष्ठ जी! आप के जन्म को धन्य है शंकर जी तो आपको प्राणों के समान प्रिय हैं॥

चौ०—शिवपदकमल जिनहिं रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सुहाहीं॥
‡ बिन छल विश्वनाथपद नेहू। रामभक्त कर लच्छण येहू॥

अर्थ—जिन का प्रेम शिव जी के कमलस्वरूपी चरणों में नहीं है वे लोग स्वप्न में भी श्री रामचन्द्र जी को नहीं सुहाते। "शंकर जी के चरणों में कपट रहित प्रीति रखना" यही चिन्ह श्री रामचन्द्र जी के भक्त का है (अर्थात् शिव जी का प्रेमी ही राम का दास समझा जाता है)

चौ०—*शिव सम को रघुपतिव्रतधारी। बिन अघ तजी सती अस नारी॥
प्रण करि रघुपतिभक्ति दृढ़ाई। को शिव सम रामहि प्रिय भाई॥

---

‡ बिन छल विश्वनाथपद नेहू। राम भक्त कर लच्छन येहू – जैसा कि उत्तरकांड के राम गीता भाग में श्री रामचन्द्र जी ने पुरवासियों को शिक्षा देते समय कहा है :—

दो०—औरउ एक गुप्त मत, सबहि कहउँ कर जोरि।
शंकर भजन बिना नर, भगति न पावै मोरि॥

* शिव सम को रघुपतिव्रतधारी। बिन अघ तजी सती अस नारी।—
[illegible]

[illegible]

[illegible] (क्रमशः)

अर्थ—तब षडानन कुमार का जन्म हुआ जिन्हों ने संग्राम में तारक राक्षस का वध किया। शास्त्र, वेद और पुराणों में यह कथा प्रसिद्ध है और षडानन का जन्म और पराक्रम सब संसार जानता है ॥

छन्द—जग जान षटमुख जन्म कर्म प्रताप पुरुषारथ महा ।
तेहि हेतु मैं वृषकेतु सुत कर चरित संक्षेपहि कहा ॥
यह उमाशम्भुविवाह जे नर नारि सुनहिं जे गावहीं ।
कल्याण काज विवाह मंगल सर्वदा सुख पावहीं ॥

अर्थ—षटवदन के जन्म कर्म्म प्रताप और बड़े २ कठिन कामों को संसार के लोग जानते हैं। तभी तो मैं ने शिव जी के पुत्र का चरित्र थोड़े में कह दिया इस शिव पार्वती के विवाह को जो स्त्री पुरुष सुनेंगे या गावेंगे। वे शुभ कामों में अथवा विवाह आदि मंगल के कामों में सदा सुख पावेंगे ॥

दो०—चरित सिन्धु गिरिजारमण, वेद न पावहिं पार।
वरणै तुलसीदास किमि, अतिमतिमन्द गँवार ॥१०३॥

अर्थ—पार्वती के पति शिव जी के समुद्ररूपी चरित्रों का वेदों को भी अन्त नहीं मिलता। फिर मैं अति मूर्ख मतिवाला गांव का रहने वाला तुलसीदास किस प्रकार उसका वर्णन कर सक्ता हूं ॥

सूचना—शिव जी के विवाह वर्णन में ११ छन्द आये हैं इस हेतु यह मानो एकादश रुद्र की रुद्री हुई और तभी तो यह विशेष मंगलदायक समझी गई।

चौ०—शम्भु चरित सुनि *सरस सुहावा। भरद्वाजमुनि अति सुख पावा॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयन नीर रोमावलि ठाढ़ी॥

---

* सरस सुहावा—साहित्य के नौ रसों का वर्णन जो पुस्तकों में है। यहां पर शिव जी के विवाह में गोस्वामी जी ने बड़ी चतुराई से नवों रस भरी कथा लिखी है, सो यों कि—

(१) विवाह में शृंगार रस, (२) बरात के वर्णन में हास्यरस (३) शिव और शिव गणों के भेष को देख कर मैना के सोच करने में करुणारस। (४) कामदेव के भस्म करने में रौद्ररस। (५) कामदेव के उपायों को निष्फल करने में वीर रस। (६) गणों समेत शिव जी का विकट भेष देख कर बालकों का भयानक रस। (७) शिव गणों का घिनौना रूप बीभत्स रस। (८) [illegible] है ऐसी बातें अद्भुत रस। और (९) शिव जी का [illegible] लेना यहां शान्त रस वर्णन किया है॥

चौ०—*रामचरित अति अमित मुनीशा। कहि न सकहिं शतकोटि अहीशा॥
तदपि यथा श्रुति कहौं बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनु पानी॥

अर्थ—हे मुनिवर! रामचरित्रों का पारावार नहीं, उन्हें सौ करोड़ शेष नाग भी नहीं कह सक्ते। तौ भी जैसा मैंने सुना है वैसा ही वाणी के प्रेरक धनुषधारी श्री अवधविहारी का स्मरण करके कहता हूं॥

चौ०—†शारद दारुनारि सम स्वामी। राम सूत्रधर अंतरयामी॥
जेहि पर कृपा करहिं जन जानी। कवि उर अजिर नचावहिं बानी॥

अर्थ—हे मुनिवर! शारदा तो कठपुतली के समान है और अन्तर्यामी राम सूत्रधार हैं। वे जिसको अपना भक्तजन जान कृपा करते हैं, उसी कवि के हृदयरूपी रंग भूमि में वाणी को नचाते हैं। (अर्थात् जिस पर भगवत्कृपा होती है, वही कवि हो कर प्रभु चरित्र वर्णन करने के योग्य हो जाता है)॥

---

* रामचरित अति अमित मुनीशा। कहि न सकहिं शत कोटि अहीशा—

छप्पय—चतुरानन सम बुद्धि विदित जो होहिं कोटि धर।
एक एक धर प्रतिन सीस जो होहिं कोटि वर॥
सीस सीस प्रति बदन कोटि करतार बनावहिं।
एक एक मुख माहिं रसन फिर कोटि लगावहिं॥
रसन रसन प्रति शारदा कोटि बैठि बानी भरहिं।
नहिं तउ 'रघुनाथ' के नाथ की महिमा तबहुँ कहि सकहिं॥

† शारद दारुनारि सम स्वामी। राम सूत्रधर अन्तरयामी—

भजन—धनि कारीगर करतार को, पुतली का खेल बनाया॥
बिना हुकुम नहिं हाथ उठावे, बैठी रहे नहिं पार बसावे।
हुकुम होय तो नाच नचावे अरु कान हिलावे तार को।
जिसने यह जगत रचाया॥१॥
जगदीश्वर तो कारीगर है पांचों तत्व की पुतली नर है।
नाचे कूदे नहीं बजार है, पुतली पर सरकार को।
बिन हाथ नजर नहिं आया॥२॥
उसके हाथ में सब की डोरी, जैसे नचावे नाचे गोरी।
किसी की नहिं चलती बरजोरी, सब है मुट्ठि विचार को।
नहिं पार किसी ने पाया॥३॥
[illegible] बड़ मसाला, फेर दूसरा रच दे बाला।
'रघुनाथ' की [illegible], है धन्यवाद [illegible] को।
घट में रूप समाया॥४॥

शब्दार्थ—अघ = (१) पाप, (२) दुःख ॥

अर्थ—निष्पाप शिव जी के समान श्री रामचन्द्र जी का व्रत धारण कर[illegible] वाला कौन है ? (अर्थात् कोई नहीं) कारण, जिन्हों ने सती ऐसी स्त्री का [illegible] त्याग (केवल सीता जी का रूप धारण करने के कारण) कर दिया । उन्हों[illegible] अपनी भक्ति को पक्का कर दिखाया, जब प्रण करलिया (कि इहि तनु स[illegible] भेट मोहि नाहीं) हे भाई ! शिव जी के समान श्री रामचन्द्र जी को कौन प्या[illegible] है (अर्थात् कोई नहीं) ॥

दो०—प्रथमहि मैं कहि शिवचरित, बूझा मर्म तुम्हार ।
शुचि सेवक तुम राम के, रहित समस्त विकार ॥१०४॥

अर्थ—मैं ने पहिले शिव जी के चरित्र कह कर तुम्हारे मन का प्रेम जान लिया तुम तो सम्पूर्ण विकारों से रहित श्री रामचन्द्र जी के सच्चे सेवक हो ॥

चौ०—मैं जाना तुम्हार गुण शीला । कहउँ सुनहु अब रघुपतिलीला ।
सुनु मुनि आज समागम तोरे । कहि न जाइ जस सुख मन मोरे ॥

अर्थ—मैं ने तुम्हारे गुण और शील स्वभाव को जान लिया, मैं श्री रामचन्द्र जी के चरित्रों को कहता हूं, सो सुनिये ! हे मुनि ! सुनो तो सही, तुम्हारे मिलाप से जो आज सुख मेरे मन में हुआ है सो कहा नहीं जाता ॥

इसहेतु 'बिन अघ को शिव जी का विशेषण मानने से ठीक अर्थ संघटित हो जाता है कि निष्पाप शिव जी के समान = जैसा अर्थ कर आये हैं ।

'बिन अघ' को 'तजी' का क्रियाविशेषण कर के 'अघ' का अर्थ 'दुःख' ऐसा करने से भी अर्थ बन जाता है कि बिना दुःख के सती का त्याग किया; परन्तु यहां यदि यह कहा जावे कि उत्तर कांड में तो शिव जी ने पार्वती जी से यों कहा है कि 'तब अति सोच भयउ मन मोरे । दुखी भयउँ वियोग प्रिय तोरे' सो यहां पर सती जी के तनःत्याग से भक्त का विरह न सह कर दुखी होना स्वाभाविक ही है । जैसा कहा है 'भक्त विरह कातर करुणा मय डोलत पाछे लागे' सती ने पहिले जो सीता का वेष धारण किया था । इस हेतु शिव जी ने अपनी विशेष भक्ति के हेतु सती जी का त्याग किया था, परन्तु दुखी न हुए थे । क्योंकि उन्हों ने सती को अपने पिता के घर बिना बुलाये जाने से रोका था । दुखी तो तब हुए जब सती जी ने अपना तन त्याग दिया ॥

चौ०—निज कर डासि नागरिपुछाला। बैठे सहजहिं शम्भु कृपाला।
कुन्दइन्दुदरगौरशरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा ॥

शब्दार्थ—डासि = बिछा कर। नागरिपुछाला (नाग=हाथी + रिपु=बैरी + छाला = चर्म)=हाथी के बैरी का चर्म अर्थात् बाघम्बर। दर = शंख। परिधन (परिधानं) = पहने हुए ॥

अर्थ—दयालु शंकर जी अपने हाथों से बाघम्बर बिछाकर सहज ही में बैठ गये। उन का शरीर कुन्द के फूल, चन्द्रमा और शंख की नाईं गोरा था, उन की भुजाएँ लम्बी थीं और वे मुनिवस्त्र (अर्थात् वलकल) धारण किये हुए थे।

चौ०—तरुण अरुण अंबुज सम चरना। नखद्युति भक्तहृदयतम हरना।
भुजगभूतिभूषण त्रिपुरारी। आनन शरदचन्द्रछविहारी ॥

अर्थ—फूले हुए लाल कमल के समान चरण थे जिन के नखों का प्रकाश भक्तों के हृदय के अंधकार का नाश करने वाला है। शिव जी सर्प और विभूति धारण किये हुए हैं उन का मुख शरद पूर्नो के चन्द्रमा की शोभा का हरने वाला है।

दो०—†जटामुकुट सुरसरित शिर, लोचन नलिन विशाल।
नीलकंठ लावण्यनिधि, सोह बालविधु भाल ॥१०६॥

शब्दार्थ—नलिन=कमल। लावण्यनिधि = सुन्दरता से परिपूर्ण। बाल-विधु = द्वितीया का चन्द्रमा।

अर्थ—सीस पर जटाओं को मुकुट की नाईं बांधे थे जिस में गंगा जी विद्यमान थीं और कमल की नाईं बड़े बड़े नेत्र थे, कंठ नीला सुन्दरता परिपूर्ण और उनके माथे पर द्वितीया का चन्द्रमा शोभा दे रहा था।

---

† जटा मुकुट सुरसरित शिर, लोचन नलिन विशाल। आदि—दोहा सारंग वृन्दावनी (दादरा) ताल कहरवा।

शिव शम्भु सदा सुखदाई हो ॥ (शिव शंभु०)
जटन माहँ इक गंग रंग की, कहिये कहा निकाई हो ॥ (शिव शंभु०)
चन्द्र भाल लाल लाल भाल की, शोभा वरणि न जाई हो ॥
नागभूषण कर कंठ विराजें, तन विभूति सुहाई हो ॥ (शिव शंभु०)
दीनदयाल दयानिधि दानी, कीरति जग में छाई हो ॥
शंकर शरण दास प्रभु ही की, है अंतर मन भाई हो ॥ (शिव शंभु०)

चौ०—प्रणवौं सोइ कृपालु रघुनाथा । वरणौं विशद तासु गुण गाथा
परमरम्य गिरिवर कैलासू । सदा जहां शिवउमानिवासू ॥

अर्थ—उन्हीं दयालु श्री रामचन्द्र जी को मैं प्रणाम करता हूं जिनके निर्मल गुणानुवादों का वर्णन करना चाहता हूं। कैलाश नाम का बड़ा मनोहर एक श्रेष्ठ पर्वत है। जहां सदैव शिव पार्वती जी का निवास है॥

दो०—सिद्ध तपोधन योगि जन, सुर किन्नर मुनि वृन्द।
वसहिं तहां सुकृती सकल, सेवहिं शिव सुखकन्द ॥१०५॥

अर्थ—वहां पर सिद्ध तपस्वी योगी देवता किन्नर मुनियों के समूह तथा सम्पूर्ण सत्कर्मी जीव रहा करते हैं और सुखधाम श्री शिव जी की सेवा किया करते हैं।

चौ०—हरिहरविमुख धर्म रति नाहीं। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं।
तेहि गिरि पर *वट विटप विशाला। नित नूतन सुंदर सब काला॥

अर्थ—जो प्राणी विष्णु और शिव के भक्त नहीं हैं और जिनकी प्रीति धर्म में नहीं है वे उस पर भूल कर के भी नहीं जाते। उस पर्वत पर एक बड़ा बड़ का वृक्ष है जो सदैव हरा भरा और सब ऋतुओं में सुहावना बना रहता है।

चौ०—त्रिविध समीर सुशीतल छाया। शिवविश्रामविटप श्रुति गाया।
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। तरु विलोकि उर अति सुख भयऊ॥

अर्थ—वेद में उसे शिव जी का विश्रामवृक्ष कहा है वहां पर शीतल मंद सुगन्ध तीनों प्रकार की वायु चलती रहती है। और उसकी छाया सदा सुन्दर शीतल रहती है। एक समय शिव जी उस बड़ के नीचे गये और उस वृक्ष को देख कर उनके हृदय में बड़ा आनन्द हुआ।

---

* वट—सृष्टि के अगणित चमत्कारी पदार्थों में से हिन्दुस्तान का वट वृक्ष भी एक पदार्थ है इसका बीज राई से छोटा होता है परन्तु वृक्ष का आकार बढ़ते २ बहुत से स्थान को घेर लेता है. इसकी डालियों में से जड़ें सी लटकने लग ती हैं. ये ही ज़मीन में पैठ कर नये वृक्षों की नाईं बढ़ने लगती हैं और इसी क्रम से दूसरी नवीन डालियों में से नवीन पाये बनते जाते हैं. उदाहरणार्थ :— गुजरात देश में नर्मदा के किनारे एक बड़ का वृक्ष है; उसके ३१०० से अधिक पाये हैं. उस की परिधि २००० फुट से भी अधिक है. इस पेड़ के नीचे पांच छः हज़ार आदमी बिना सङ्कोच के ठहर सकते हैं. इसके पत्ते साधारण बड़े और मोटे रहते हैं. इसकी छाया गर्मी में शीतल और शीतकाल में गर्म रहती है. यह वृक्ष अगणित वर्षों तक हरा भरा बना रह कर अपने विस्तार को बढ़ाता ही जाता है. मतो से कैलाश पर्वत पर शिव जी का वट वृक्ष और सुमेरु पर्वत के उत्तर में नील शैल पर काकभुशुंडि जी का वट वृक्ष तथा विष्णु का अक्षयवट प्रसिद्ध है. पुराणों में लिखा है कि अक्षयवट प्रलय के अन्त तक बना रहता है

चौ०–निज कर डासि नागरिपुछाला। बैठे सहजहिं शम्भु कृपाला।
कुन्दइन्दुदरगौरशरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा ॥

शब्दार्थ—डासि = बिछा कर। नागरिपुछाला (नाग=हाथी + रिपु=वैरी + छाला = चर्म)=हाथी के वैरी का चर्म अर्थात् बाघम्बर। दर=शंख। परिधन (परिधानं) = पहने हुए ॥

अर्थ—दयालु शंकर जी अपने हाथों से बाघम्बर बिछाकर सहज ही में बैठ गये। उन का शरीर कुन्द के फूल, चन्द्रमा और शंख की नाईं गोरा था, उन की भुजाएँ लम्बी थीं और वे मुनिवस्त्र (अर्थात् वल्कल) धारण किये हुए थे।

चौ०–तरुण अरुण अंबुज सम चरना। नखद्युति भक्तहृदयतम हरना।
भुजगभूतिभूषण त्रिपुरारी। आनन शरदचन्द्रछविहारी ॥

अर्थ—फूले हुए लाल कमल के समान चरण थे जिन के नखों का प्रकाश भक्तों के हृदय के अंधकार का नाश करने वाला है। शिव जी सर्प और विभूति धारण किये हुए हैं उन का मुख शरद पूनों के चन्द्रमा की शोभा का हरने वाला है।

दो०–†जटामुकुट सुरसरित शिर, लोचन नलिन विशाल।
नीलकंठ लावण्यनिधि, सोह बालविधु भाल ॥१०६॥

शब्दार्थ—नलिन=कमल। लावण्यनिधि = सुन्दरता से परिपूर्ण। बालविधु = द्वितीया का चन्द्रमा।

अर्थ—सीस पर जटाओं को मुकुट की नाईं बांधे थे जिस में गंगा जी विद्यमान थीं और कमल की नाईं बड़े बड़े नेत्र थे, कंठ नीला सुन्दरता परिपूर्ण और उनके माथे पर द्वितीया का चन्द्रमा शोभा दे रहा था।

(२१. कैलास पर्वत पर शिव पार्वती का सम्वाद)

चौ०—बैठे सोह कामरिपु कैसे। धरे शरीर शान्तरस जैसे।
पारवती भल अवसर जानी। गईं शम्भु पहँ मातु भवानी।

अर्थ—कामदेव के बैरी शिव जी बैठे हुए इस प्रकार शोभायमान थे कि मानं शान्तरस ही रूप धारण कर के बैठा हो। जगदम्बा शिवपत्नी पार्वती जी इसे अच्छा समय समझ महादेव जी के पास जा पहुँची ॥

चौ०—जानि प्रिया आदर अति कीन्हा। *वामभाग आसन हर दीन्हा॥
बैठीं शिव समीप हरषाई। पूरबजन्मकथा चित आई॥

अर्थ—शिव जी ने उन्हें अपनी प्यारी पत्नी जान बड़ा आदर दिया और अपनी बाईं ओर बैठने को आसन दिया। वे प्रसन्न हो कर प्रभु के पास बैठ गईं, इतने में उन के मन में पहिले जन्म की कथा का स्मरण हो आया॥

चौ०—पतिहियहेतु अधिक अनुमानी। विहँसि उमा बोलीं प्रियबानी
कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह शैलकुमारी

अर्थ—पति के हृदय में पहिले की अपेक्षा अधिक प्रेम के विचार से पार्वती जी मुसकुरा कर सुहावने वचन बोलीं। (तुलसीदास जी कहते हैं कि) पार्वती वही कथा पूछना चाहती हैं जिस से सम्पूर्ण प्राणियों का भला होवे ॥

चौ०—विश्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा विदित तुम्हारी
चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पदपंकजसेवा

अर्थ— हे शिव जी! आप संसार के स्वामी और मेरे पति हो आप की बड़ाई तीनों लोक में प्रसिद्ध है। चलने वाले और स्थिर जीव सर्प, मनुष्य और देवता सब आप के कमलस्वरूपी चरणों की सेवा करते हैं ॥

---

* वामभाग आसन हर दीन्हा· स्मरण रहे कि स्त्री अपने पति की अर्द्धांगिनी और वामांगी कहलाती है। इसी हेतु इस का स्थान पति के समीप बाईं ओर होना चाहिये और तभी तो इसे वामा भी कहते हैं। शिव जी ने इसी शास्त्र पद्धति के अनुसार पार्वती जी को बाईं ओर आसन दिया। परन्तु जिस समय सती अवतार में सीता का रूप धारण किया था उस समय शिव जी ने उन्हें सन्मुख बिठाया था। जैसा कह आये हैं कि 'सन्मुख शंकर आसन दीन्हा'

होने के कारण आप से न कह सुनाई। इतने पर भी इस अज्ञानी मन को ज्ञान न हुआ उस का फल भी मैंने यथोचित पा लिया ॥

चौ०—अजहुँ कछु संशय मन मोरे। करहु कृपा विनवउँ करजोरे॥
प्रभु तव मोहि बहु भाँति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा॥

अर्थ—अब भी कुछ सन्देह मेरे मन में रह गया है सो मैं हाथ जोड़ कर विनती करती हूं कि आप कृपा करेंगे। हे नाथ! उस समय आप ने मुझे कई प्रकार से समझाया था, उस बात का विचार कर के हे प्रभु! आप क्रोध न कीजिये॥

चौ०—तब कर अस विमोह अब नाहीं। रामकथा पर रुचि मन माहीं॥
कहहु पुनीत रामगुणगाथा। भुजगराजभूषण सुरनाथा॥

अर्थ—उस समय की नाईं विशेष सन्देह अब मुझे नहीं है और मेरे मन में रामकथा पर प्रेम भी है। इसहेतु हे देवताओं के स्वामी! सर्पों के आभूषणधारी त्रिपुरारी जी अवधविहारी जी के गुणानुवाद कहिये?

दो०—*बन्दौं पद धरि धरणि शिर, विनय करौं करजोरि।
वर्णहु रघुवर विशदयश, श्रुति सिद्धान्त निचोरि॥१०६॥

अर्थ—मैं आप के चरण गहकर पृथ्वी पर माथा टेक वन्दना करती हूं और हाथ जोड़कर विनती करती हूं, कि आप वेदों का सार छांट कर रामचन्द्र जी की निर्मल कीर्ति को वर्णन कीजिये।

चौ०—‡यदपि योषिता अनअधिकारी। दासी मन क्रम वचन तुम्हारी॥

---

* बन्दौं पद धरि धरणि शिर... श्रुति सिद्धान्त निचोरि—अध्यात्म रामायण से—
श्लोक—नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास सर्वात्म दृक् त्वं परमेश्वरोऽसि।
पृच्छामि तत्त्वं पुरुषोत्तमस्य सनातनं त्वंच सनातनोऽसि॥
अर्थात् हे महादेव जी! सब जगत के निवास स्थान आप को मेरा प्रणाम है, आप सब जीवधारियों के हृदय की जानने वाले तथा परमेश्वर रूप हैं। आप सत्य स्वरूप हैं, इसहेतु आप से सत्य स्वरूप वाले श्री रामचन्द्र जी के यथार्थ रूप के विषय में पूछती हूं॥

‡ यदपि योषिता अनअधिकारी। दासी मन क्रम वचन तुम्हारी—श्री मद्भगवद्गीता में लिखा है कि:—
श्लोक—मांहि पार्थ! व्यपाश्रित्य, येऽपिस्युः पाप योनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम्॥
अर्थात् (श्री कृष्ण जी कहते) हे अर्जुन! मेरा आश्रय लेने वाला कैसा ही पापी हो, चाहे स्त्री, वैश्य या शूद्र क्यों न हो। मोक्ष पाता है॥

अर्थ--जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे हो वह क्या कंगाली का दुःख स[illegible] अर्थात् कभी नहीं। हे चन्द्रमौलि प्रभु! ऐसा हृदय में विचार मेरे मन के [illegible] सन्देह को दूर कीजिये ॥

चौ०—प्रभु जे मुनि परमारथवादी। कहहिं राम कहँ ब्रह्म अनादी ॥
शेष शारदा वेद पुराना। सकल करहिं रघुपतिगुणगाना ॥

अर्थ—हे प्रभु! जो मुनीश्वर मुक्ति का सिखापन देने वाले हैं, वे रामचंद्र को अनादि ब्रह्म कहते हैं। शेषनाग, सरस्वती, वेद और पुराण भी सब के रामचंद्र जी के गुणानुवाद गाया करते हैं ॥

चौ०—तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंगअराती ॥
राम सो अवधनृपतिसुत सोई। की अज अगुण अलखगति कोई ॥

अर्थ—हे कामारि! आप भी तो दिन रात आदरपूर्वक राम राम जपा क[रते] हो। वही राम जी अयोध्या के राजा दशरथ के लड़के हैं अथवा कि कोई दूसरे, जन्म रहित और गुणों से परे तथा जिनकी गति समझ में नहीं आती, वे राम हैं ॥

दो०—जो नृपतनय तो ब्रह्म किमि, नारिविरह मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमित बुद्धि अति मोरि ॥ १०८ ॥

अर्थ--जो राजा के लड़के हैं तो ब्रह्म कैसे हो सकते हैं? क्योंकि उनकी [बुद्धि] तो स्त्री के विछोह में बेहाल हो गई थी। इस प्रकार उन के चरित्र देख और उन [की] बड़ा प्रताप सुन कर मेरी बुद्धि काम नहीं करती ॥

चौ०—जो अनीह व्यापक विभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ ॥
अज्ञ जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि विधि मोह मिटइ सोइ करहू ॥

शब्दार्थ—अनीह (अन=नहीं + ईह=इच्छा)=इच्छा रहित।

अर्थ—यदि इच्छा रहित [illegible] व्यापी समर्थ कोई दूसरा परमात्मा हो [तो] हे प्रभु! वह भी मुझ से समझा कर कहिये। मुझे बे समझ जान कर हृदय [में] क्रोध न कीजिये, वही उपाय कीजिये जिससे भ्रम दूर हो ॥

चौ०—मैं बन दीख रामप्रभुताई। अतिभय विकल न तुमहिं सुना[ई] ॥
तदपि मलिन मन बोध न आवा। सो फल भली भांति मैं पा[वा] ॥

[illegible]

होने के कारण आप से न कह सुनाई । इतने पर भी इस अज्ञानी मन को ज्ञान न हुआ उस का फल भी मैंने यथोचित पा लिया ॥

चौ०—अजहूँ कछु संशय मन मोरे । करहु कृपा विनवउँ करजोरे ॥
प्रभु तव मोहि बहु भाँति प्रबोधा । नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा ॥

अर्थ—अब भी कुछ सन्देह मेरे मन में रह गया है सो मैं हाथ जोड़ कर विनती करती हूं कि आप कृपा करेंगे । हे नाथ ! उस समय आप ने मुझे कई प्रकार से समझाया था, उस बात का विचार कर के हे प्रभु ! आप क्रोध न कीजिये ॥

चौ०—तब कर अस विमोह अब नाहीं । रामकथा पर रुचि मन माहीं ॥
कहहु पुनीत रामगुणगाथा । भुजगराजभूषण सुरनाथा ॥

अर्थ—उस समय की नाईं विशेष सन्देह अब मुझे नहीं है और मेरे मन में रामकथा पर प्रेम भी है । इसहेतु हे देवताओं के स्वामी ! सर्पों के आभूषणधारी त्रिपुरारी जी अवधविहारी जी के गुणानुवाद कहिये ॥

दो०—*बन्दौं पद धरि धरणि शिर, विनय करौं करजोरि ।
वर्णहु रघुवर विशदयश, श्रुति सिद्धान्त निचोरि ॥१०६॥

अर्थ—मैं आप के चरण गहकर पृथ्वी पर माथा टेक वन्दना करती हूं और हाथ जोड़ कर विनती करती हूं, कि आप वेदों का सार छांट कर रामचन्द्र जी की निर्मल कीर्ति का वर्णन कीजिये ।

चौ०—‡यदपि योपिता अनअधिकारी । दासी मन क्रम वचन तुम्हारी ॥

---

* बन्दौं पद धरि धरणि शिर... श्रुति सिद्धान्त निचोरि—अध्यात्म रामायण से—
श्लोक—नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास सर्वात्म दृक् त्वं परमेश्वरोऽसि ।
पृच्छामि तत्त्वं पुरुषोत्तमस्य सनातनं त्वं च सनातनोऽसि ॥
अर्थात् हे महादेव जी ! सब जगत के निवास स्थान आप को मेरा प्रणाम है, आप सब जीवधारियों के हृदय की जानने वाले तथा परमेश्वर रूप हैं । आप सत्य स्वरूप हैं, इसहेतु आप से सत्य स्वरूप वाले श्री रामचन्द्र जी के यथार्थ रूप के विषय में पूछती हूं ॥

‡ यदपि योपिता अनअधिकारी । दासी मन क्रम वचन तुम्हारी—श्री भगवद्गीता में लिखा है कि :—
श्लोक—मां हि पार्थ ! व्यपाश्रित्य, येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥
अर्थात् (श्री कृष्ण जी बोले) हे अर्जुन ! जो मनुष्य मेरे शरण होकर पापी हो, चाहे स्त्री, वैश्य या शूद्र क्यों न हो । मोक्ष पाता है ॥

अर्थ—फिर हे दयासागर! वह अद्भुत बात भी कहिये। जो रामचन्द्र जी ने की, कि रघुकुल में श्रेष्ठ रामचन्द्र जी सब अयोध्यावासियों समेत किस प्रकार साकेत लोक को पधारे।

चौ०—पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहि विज्ञान मगन मुनि ज्ञानी।
भक्ति ज्ञान विज्ञान विरागा। पुनि सब वर्णहु सहित विभागा।

अर्थ—हे प्रभु! पीछे से वह भागवत तत्त्व भी वर्णन कीजिये जिस के विचार में ज्ञानवान मुनि निमग्न रहते हैं। और भी भक्ति, ज्ञान, विज्ञान तथा वैराग्य इन सब का वर्णन अन्तर्गत भेदों सहित कहिये।

चौ०—अउरउ रामरहस्य अनेका। कहहु नाथ अतिविमल विवेका॥
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सो दयालु राखहु जनि गोई॥

अर्थ—हे प्रभु! रामचन्द्र जी के जो और भी गूढ़ चरित्र होवें उन्हें भी कहिये जिन के कारण मेरी विवेक शक्ति अत्यन्त निर्मल हो जावे। हे कृपालु प्रभु! जो कुछ मैंने पूछा न हो वह भी आप न छिपावें।

चौ०—तुम त्रिभुवनगुरु वेद बखाना। आन जीव पामर का जाना॥
प्रश्न उमा के सहज सुहाये। छलविहीन सुनि शिवमन भाये॥

अर्थ—वेद में कहा है कि आप तीन लोक के गुरु हैं, दूसरे नीच मनुष्य इस रहस्य को क्या जानें। इस प्रकार पार्वती जी के स्वभाव ही से सुहावने प्रश्न कपट रहित होने के कारण शिव जी के मन को अच्छे लगे।

चौ०—हरहिय रामचरित सब आये। प्रेम पुलक लोचन जल छाये।
श्री रघुनाथरूप उर आवा। परमानंद अमितसुख पावा॥

अर्थ—शंकर जी के हृदय में सम्पूर्ण रामचरित्र उमग उठे यहाँ तक कि प्रेम के कारण शरीर के रोम खड़े हो गये और नेत्रों में आंसू भर आये। श्री रामचन्द्र जी का ध्यान भी हृदय में आ गया और उन्हें विशेष आनंद और अनंत सुख प्राप्त हुआ।

दो०—मगन ध्यानरस दण्ड युग, पुनि मन बाहर कीन्ह।
रघुपतिचरित महेश तब, हर्षित वर्णै लीन्ह॥ १११॥

अर्थ-महादेव जी ध्यान के आनंद में दो घड़ी तक निमग्न रहे फिर चित्त को चैतन्य कर उन्हों ने सानन्दपूर्वक रामचंद्र जी के चरित्रों का वर्णन करना आरंभ किया।

अर्थ—उन्हीं रामचन्द्र जी के बालस्वरूप को मैं प्रणाम करता हूं जिन का नाम ही स्मरण करने से सम्पूर्ण सिद्धियां सुलभ हो जाती हैं। सब मंगलों के कर्त्ता और अशुभ कर्मों के हर्ता ऐसे दशरथ जी के आँगन में क्रीड़ा करते हुए श्री रामचन्द्र जी मुझ पर कृपा करें॥

चौ०—करि प्रणाम रामहि त्रिपुरारी। हर्षि सुधासम गिरा उचारी॥
धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम समान नहिं कोउ उपकारी॥

अर्थ—शिव जी ने श्री रामचन्द्र जी को प्रणाम किया और प्रसन्न हो कर अमृत के समान वचन कहे। हे शैलाधिराज तनये! तुम को धन्य है, तुम्हारे समान कोई दूसरा उपकार करने वाला नहीं है॥

चौ०—पूछेहु रघुपतिकथाप्रसंगा। *सकल लोकजगपावनि गंगा॥
तुम रघुवीरचरण अनुरागी। कीन्हेउ प्रश्न जगतहित लागी॥

अर्थ—तुमने रामचन्द्र जी की कथा का प्रसंग छेड़ा है यह कथा संसार को गंगा की नाईं पवित्र करने वाली है। तुम्हारा प्रेम रामचन्द्र जी के चरणों में है तुमने तो संसार के निमित्त प्रश्न किये हैं॥

दो०—रामकृपा ते पारवति, सपनेहु तव मन माहिं।
†शोक मोह सन्देह भ्रम, मम विचार कछु नाहिं॥११२॥

अर्थ—मेरी समझ में हे पार्वती! श्री रामचन्द्र जी की कृपा से स्वप्न में भी तुम्हारे चित्त में खेद, मोह, शंका और भ्रम कुछ भी नहीं है॥

श्लोक—मंगलं भगवान् विष्णु मंगलं गरुड़ध्वजः।
मंगलं पुंडरीकाक्ष मंगलायतनो हरिः॥

* सकल लोक जगपावनि गंगा—भाव यह कि जिस प्रकार गंगा जी तीनों लोकों में (अर्थात् स्वर्ग में मन्दाकिनी के नाम से, मृत्यु लोक में भागीरथी के नाम से और पाताल में भोगवती के नाम से) सब प्राणियों को पवित्र करने वाली हैं, उसी प्रकार रामकथा भी है॥

† शोक मोह सन्देह भ्रम—(१) प्राप्त वस्तु के खो जाने पर शोक होता है. पार्वती जी को सतीतन में जो अगस्त्य ऋषि के यहां रामकथा सुन कर रामतत्त्व मिला था वह मानो रामचन्द्र जी को सीतातुर भ्रमण करते हुए देख कर खो गया था. वह अब प्राप्त हुआ और होवेगा। इस से शोक नहीं है, ऐसा शिव जी का कथन है। इसी प्रकार (२) सत्पुरुषों के वचन पर विश्वास न कर अपनी बुद्धि को श्रेष्ठ मानना 'मोह' है सो यह भी शिव जी के वाक्यों पर जो अविश्वास था वह पार्वती मन में नहीं रहा, ऐसे ही (३) रामचन्द्र जी के सच्चिदानन्द रूप होने में सन्देह और (४) जो रामरूप में राजकुमार कर समझ लेने का जो भ्रम था सो सब दूर होगया और विशेष कर नष्ट होगा॥

चौ०—*झूठउ सत्य जाहि बिन जाने। जिमि भुजंग बिन रजु पहिचाने।
जेहि जाने जग जाइ हिराई। जागे यथा स्वप्नभ्रम जाई ॥

अर्थ—जिन रामचन्द्र जी के जाने बिना झूठा जगत सत्य के समान भासता है। जिस प्रकार रस्सी को ठीक २ समझे बिना सर्प का धोखा होता है और जिन के जान लेने से संसार रहता ही नहीं जैसे जाग उठने से स्वप्न के सब पदार्थों का भास मिट जाता है (भाव यह कि आत्म तत्त्व को न जानने से इस संसार के पदार्थ भिन्न २ विद्यमान प्रतीत होते हैं, और जब आत्म तत्त्व को पहिचान लिया तो ये ही सब पदार्थ आत्मा से भिन्न नहीं, यह ज्ञान हो जाने से जहां देखो, तहां आत्मस्वरूप ही बूझ पड़ता है। न कोई, न कोई दूसरी वस्तु थी और न वह फिर रह जाती है जैसा कि अज्ञान के कारण भासमान होती है) ॥

चौ०—†वन्दौं बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जेहि नामू ॥
‡मंगलभवन अमंगलहारी। द्रवौ सो दशरथअजिरबिहारी ॥

* झूठउ सत्य जाहि बिन जाने—भागवत में लिखा है कि—

श्लोक—तावद्रागादयस्स्तेना स्तावत्कारा गृहं गृहं।
तावन्मोहांघ्रि निगडं यावत्कृष्ण नतेजनाः ॥

अर्थात् हे श्री कृष्ण जी! जब तक मनुष्य आप के नहीं हो रहते तब तक उन्हें विषय वासना आदि चारों की नाईं, घर क़ैदख़ाना तथा मोह पाँव की बेड़ी की नाईं बने रहते हैं॥

† वंदौं बालरूप सोइ रामू—'बालरूप' इस रूप के वन्दन अथवा सेवन करने का यह अभिप्राय जान पड़ता है कि सभी जीवधारियों के छोटे स्वरूप और उन की क्रीड़ा सब ही को प्रिय लगती है, कागभुशुंडि जी ने भी बालरूप में रति मानी है और कौशल्या जी ने भी बाल क्रीड़ा का सुख मांगा था और प्राप्त भी किया था, जैसा कहा है॥

सोरठ—ह्वै हो लाल कबहिं बड़े बलि मैया।
राम लषन भावते भरत रिपुदमन चारु चारयो भैया॥
बाल विभूषण बसन मनोहर अंगनि बिरचि बनैहौं।
शोभा निरखि निछावरि कर उर लाय वारने जैहौं॥
छगन मगन अँगना खिलिहौ मिलि ठुमक ठुमक कब धैहौ।
कलबल बचन तोतरे मंजुल कहि मा मोहि बुलैहौ॥
पुरजन सचिव रायरानी सब सेवक सखा सहेली।
लैहैं लोचन लाहु सफल लखि ललित मनोरथ बेली॥
जा सुख की लालसा लटू शिव शुक सनकादि उदासी।
तुलसी तेहि सुखसिन्धु कौशिला मगन पै प्रेम पियासी॥

‡ मंगल भवन अमंगल हारी—(जैसा कि कहा है)

अर्थ—उन्हीं रामचन्द्र जी के बालस्वरूप को मैं प्रणाम करता हूं जिन का नाम ही स्मरण करने से सम्पूर्ण सिद्धियां सुलभ हो जाती हैं। सब मंगलों के कर्ता और अशुभ कर्मों के हर्ता ऐसे दशरथ जी के आँगन में क्रीड़ा करते हुए श्री रामचन्द्र जी मुझ पर कृपा करें॥

चौ०—करि प्रणाम रामहि त्रिपुरारी। हर्षि सुधासम गिरा उचारी॥
धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम समान नहिं कोउ उपकारी॥

अर्थ—शिव जी ने श्री रामचन्द्र जी को प्रणाम किया और प्रसन्न हो कर अमृत के समान वचन कहे। हे शैलाधिराज तनये! तुम को धन्य है, तुम्हारे समान कोई दूसरा उपकार करने वाला नहीं है॥

चौ०—पूछेहु रघुपतिकथाप्रसंगा। *सकल लोक जगपावनि गंगा॥
तुम रघुवीरचरण अनुरागी। कीन्हेउ प्रश्न जगतहित लागी॥

अर्थ—तुमने रामचन्द्र जी की कथा का प्रसंग छेड़ा है यह कथा संसार को गंगा की नाईं पवित्र करने वाली है। तुम्हारा प्रेम रामचन्द्र जी के चरणों में है तुमने तो संसार के निमित्त प्रश्न किये हैं॥

दो०—रामकृपा ते पारबति, सपनेहु तव मन माहिं।
† शोक मोह सन्देह भ्रम, मम विचार कछु नाहिं॥११२॥

अर्थ—मेरी समझ में हे पार्वती! श्री रामचन्द्र जी की कृपा से स्वप्न में भी तुम्हारे चित्त में खेद, मोह, शंका और भ्रम कुछ भी नहीं है॥

श्लोक—मंगलं भगवान् विष्णु मंगलं गरुड़ध्वजः।
मंगलं पुंडरीकाक्ष मंगलायतनो हरि॥

* सकल लोक जगपावनि गंगा—भाव यह कि जिस प्रकार गंगा जी तीनों लोकों में (अर्थात् स्वर्ग में मन्दाकिनी के नाम से, मृत्यु लोक में भागीरथी के नाम से और पाताल में भोगवती के नाम से) सब प्राणियों को पवित्र करने वाली है, इसी प्रकार रामकथा भी है॥

† शोक मोह सन्देह भ्रम—(१) प्यारी वस्तु के खो जाने पर शोक होता है, पार्वती जी को सतीतन में जो [illegible] के यहां रामकथा सुन कर [illegible] [illegible]

चौ०—तदपि अशंका कीन्हेउ सोई। कहत सुनत सब कर हित होई॥
जिन हरिकथा सुनी नहिं काना। *श्रवणरंध्र अहिभवन समाना॥

अर्थ—तो भी तुमने ऐसी शंका की है कि जिस के कहने सुनने से सब का भला होगा। (भाव यह कि यद्यपि यह शंका सी जान पड़ती है तो भी यह 'अशंका' है जो केवल लोगों के हित के लिये की गई है। कारण) जिन प्राणियों ने राम कथा अपने कानों से नहीं सुनी, उनके कानों के छिद्र मानो सर्प की बाँबी हैं॥

चौ०—†नयनन्ह सन्तदरश नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा॥
‡ते शिर कटु तूमर सम तूला। जे न नमत हरिगुरुपदमूला॥

अर्थ—जिन नेत्रों से सज्जनों के दर्शन नहीं किये गये, वे नेत्र मोरपंख के नेत्र चिन्हों (अर्थात् चन्द्रिका) के समान हैं और वे शिर जो ईश्वर तथा गुरु जी के चरणों के तलुओं के साम्हने झुकते नहीं, कड़ुवे तूँबे के समान हैं॥

---

* श्रवणरंध्र अहिभवन समाना—श्री मद्भागवत् स्कन्ध दूसरा अध्याय ३ रा

श्लोक—बिले बतोरुक्रम विक्रमान्ये, न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वाऽसती दार्दुरिकेव सूत, न चोपगायत्युरुगाय गाथाः॥ २०॥

अर्थात् परमेश्वर की लीला को श्रवण न करने वाले जो कान हैं वे केवल सर्प आदि के बिल के समान ही हैं और जो दुष्ट जीभ भगवान् की कथा का गान नहीं करती है वह मेंडक की जीभ के समान व्यर्थ बकवाद करने वाली है॥

† नयनन्ह सन्त दरश नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा—श्री मद्भागवत् स्कन्ध दूसरा अध्याय ३ रा

श्लोक—बर्हायिते ते नयने नराणां, लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये।
पादौ नृणां तौ द्रुम जन्म भाजौ, क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ॥ २२॥

अर्थात् मनुष्यों के जो नेत्र विष्णु भगवान् की मूर्ति का दर्शन नहीं करते हैं वे मोर के परों की चन्द्रिकाओं के समान निरर्थक हैं। मनुष्य के जो चरण परमेश्वर के क्षेत्रों में यात्रा के निमित्त नहीं जाते हैं वे केवल वृक्ष की जड़ के समान जन्म धारण किये हुए हैं॥

‡ ते शिर कटु तूमर सम तूला। जे न नमत हरिगुरुपदमूला—भर्तृहरि नीति शतक से

श्लोक—करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता,
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम्।
हृदि स्वच्छा वृत्तिः श्रुतमधिगतं च श्रवणयोः,
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम्॥

अर्थात् हाथ दान से, मस्तक बड़े लोगों के पैर छूने से, मुख सत्य बोलने से, [illegible] अतुल पराक्रम से, हृदय स्वच्छ वृत्ति से, कान शास्त्र श्रवण से [illegible] देता है और बिना ऐश्वर्य रहने से सज्जनों के भूषण हैं॥

चौ०—जिन हरिभक्ति हृदय नहिं आनी । जीवत शव समानते प्रानी ॥
जो नहिं करइ रामगुण गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ॥

अर्थ—जिन लोगों ने हृदय से ईश्वर का भजन नहीं किया, वे जीते रहने पर भी मरे के समान हैं । जो लोग रामचन्द्र जी के गुणों का वर्णन नहीं करते उन की जीभ मेंढ़े की जीभ के तुल्य है । (अर्थात् जिस प्रकार मेंढ़े की जीभ टर्र २ के सिवाय और कुछ नहीं कह सक्ती, उसी प्रकार अभक्तों की जीभ केवल बकवाद करने में लगी रहती है) ॥

चौ०—कुलिश कठोर निठुर सोइ छाती । सुनि हरिचरित न जो हरषाती
गिरिजा सुनहु राम की लीला । *सुरहित दनुजविमोहनशीला

अर्थ—वह हृदय कठोर वज्र के समान कड़ा है जो रामचन्द्र जी के चरित्रों को सुन कर प्रसन्न नहीं होता । हे पार्वती ! रामचन्द्र जी की लीला सुनो ? जो देवताओं को हित और राक्षसों को मोह करने में कुशल है ॥

दो०—रामकथा सुरधेनु सम, सेवत सब सुखदानि ।
सतसमाज सुरलोक सब, कोन सुने अस जानि ॥ ११३ ॥

अर्थ—रामकथा कामधेनु के समान सेवन करने वालों को सम्पूर्ण सुखों की देने वाली है । ऐसा समझ सज्जनों की सभा में और देवलोक में ऐसा कौन होगा जो उसे न सुने (अर्थात् सब ही सज्जन और देवता आदि उसे सुनते ही हैं)

चौ०—†रामकथा सुन्दर करतारी । संशय विहँग उड़ावनहारी ॥
रामकथा कलिविटपकुठारी । सादर सुन गिरिराजकुमारी ॥

अर्थ—रामकथा उत्तम करतलध्वनि की नाईं संशय रूपी पक्षी को उड़ा देने वाली है (अर्थात् जिस प्रकार हाथ की ताली बजाने से साधारण पक्षी उड़ जाते हैं

---

* सुरहित दनुज विमोहन शीला—श्री मद्भगवद्गीता अध्याय १६—
श्लो०—द्वौ भूत सर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च ॥ ६ ॥
अर्थात् संसार में दो प्रकृति के प्राणी हैं, एक देव प्रकृति और दूसरे आसुरी प्रकृति के ॥

† रामकथा सुन्दर करतारी । संशय विहँग उड़ावन हारी :—
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

चौ०—तदपि अशंका कीन्हेउ सोई। कहत सुनत सब कर हित होई॥
जिन हरिकथा सुनी नहिं काना। *श्रवणरंध्र अहिभवन समाना॥

अर्थ—तौ भी तुमने ऐसी शंका की है कि जिस के कहने सुनने से सब का भला होगा। (भाव यह कि यद्यपि यह शंका सी जान पड़ती है तौ भी यह 'अशंका' है जो केवल लोगों के हित के लिये की गई है। कारण) जिन प्राणियों ने राम यश अपने कानों से नहीं सुनी, उनके कानों के छिद्र मानो सर्प की बाँबी हैं॥

चौ०—†नयनन्ह सन्तदरश नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा॥
‡ते शिर कटु तूमर सम तूला। जे न नमत हरिगुरुपदमूला॥

अर्थ—जिन नेत्रों से सज्जनों के दर्शन नहीं किये गये, वे नेत्र मोरपंख के नेत्र चिन्हों (अर्थात् चन्द्रिका) के समान हैं और वे शिर जो ईश्वर तथा गुरु जी के चरणों के तलुओं के साम्हने झुकते नहीं, कड़ुवे तूँबे के समान हैं॥

---

* श्रवणरंध्र अहिभवन समाना—श्री मद्भागवत् स्कन्ध दूसरा अध्याय ३ रा

श्लोक—बिले बतोरुक्रम विक्रमान्ये, न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वाऽसती दार्दुरि केव सूत, न चोप गायत्युरुगाय गाथाः॥ २०॥

अर्थात् परमेश्वर की लीला को श्रवण न करने वाले जो कान हैं वे केवल सर्पादि के बिल की समान ही हैं और जो दुष्ट जीभ भगवान् की कथा का गान नहीं करती है वह मेंडक की जीभ के समान व्यर्थ बकवाद करने वाली है॥

† नयनन्ह सन्त दरश नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा—श्री मद्भागवत् स्कन्ध दूसरा अध्याय ३ रा

श्लोक—बर्हायिते ते नयने नराणां, लिंगानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये।
पादौ नृणां तौ द्रुम जन्म भाजौ, क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ॥ २२॥

अर्थात् मनुष्यों के जो नेत्र विष्णु भगवान् की मूर्त्ति का दर्शन नहीं करते हैं वे मोर के परों की चन्द्रिकाओं के समान निरर्थक हैं। मनुष्य के जो चरण परमेश्वर के क्षेत्रों में यात्रा के निमित्त नहीं जाते हैं वे केवल वृक्ष की जड़ के समान जन्म धारण किये हुए हैं॥

‡ ते शिर कटु तूमर सम तूला। जे न नमत हरिगुरुपदमूला—भर्तृहरि नीति शतक से

श्लोक—करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता,
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम्।
हृदि स्वच्छा वृत्तिः श्रुतमधिगतैकव्रतफलं,
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मंडनमिदम्॥

अर्थात् हाथ दान से, मस्तक बड़े लोगों के पैर पड़ने से, मुख सत्य बोलने से, दोनों भुजा अतुल पराक्रम से, हृदय स्वच्छ वृत्ति से, कान शास्त्र श्रवण से बड़ों के शोभित होते हैं और बिना ऐश्वर्य रहते ये सत्पुरुषों के भूषण हैं॥

(२२ शिव जी द्वारा यथार्थ रामरूप की निरूपना)

चौ०–*अज्ञ अकोविद अन्ध अभागी। काई विषय मुकुर मन लागी ॥
लम्पट कपटी कुटिल विशेखी । सपनेहु सन्तसभा नहिं देखी ॥
कहहिं ते वेद असम्मत बानी। जिन के सूझ लाभ नहिं हानी॥

शब्दार्थ–अकोविद (अ=नहीं+क=वेद+विद=जानना)=जो वेद न जाने अर्थात् अपंडित।

अर्थ–मूर्ख, अपंडित, ज्ञानांध, भाग्यहीन जिन के मन आईनारूपी मन में काईरूपी विषय लगे हुए हैं जो विशेष कर स्त्रियों में आसक्त छली कुटिल हैं और जिन्हों ने सपने में भी सज्जनों की सभा को नहीं देखा। और जिन्हें हानि लाभ कुछ भी दिखाई नहीं देता वे लोग इस प्रकार के वेद विरुद्ध वचन कहा करते हैं।

चौ०–‡मुकुर मलिन अरु नयन विहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना॥
जिन के अगुण न सगुण विवेका। जल्पहि कल्पित वचन अनेका ॥
हरिमायावश जगत भ्रमाहीं । तिनहिं कहत कछु अघटित नाहीं ॥

अर्थ–जिन का मनरूपी दर्पण मैला है और जिनके ज्ञानरूपी नेत्र हैं ही नहीं वे विचारे रामरूप को कैसे देख सक्ते हैं। जिन्हें निर्गुण और सगुण का भेद नहीं मालूम वे मन से गढ़े हुए बहुतेरे वचन कहा करते हैं। परमेश्वर की माया में जगत के लोग भूल रहे हैं तो उन्हें कुछ भी कहना अयोग्य नहीं।

---

* अज्ञ अकोविद अन्ध अभागी। इत्यादि—महारामायण से—

श्लो०—श्री रामे ये च विमुखाः खलमति निरता ब्रह्ममन्यद् वदंति ।
ते मूढा नास्तिकास्ते शुभगुण रहिता स्सर्वबुद्ध्यातिरिक्ताः ॥
पापिष्ठा धर्महीना गुरुजन विमुखा वेद शास्त्रे विरुद्धा ।
तेहित्वा गांगमंभा रवि किरणि जलं पातु मिच्छन्तिमन्ताः ॥

अर्थात् जो लोग श्री रामचन्द्र जी से विमुख हैं, जो दुष्टमति वाले हैं, और जो उन्हें परब्रह्म से दूसरा मानते हैं। वे मूर्ख हैं, नास्तिक हैं, और सद्गुणों से रहित हैं तथा सब प्रकार की बुद्धि से शून्य ॥ पापी धर्महीन, गुरुजनों से विमुख, वेद और शास्त्र के विरोधी हैं वे लोग प्यासे होने पर गङ्गाजल को छोड़ मृगजल पीने की इच्छा करते हैं॥

‡ मुकुर मलिन अरु नयन विहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना—हितोपदेश से—

श्लोक—अनेक संशयोच्छेदि, परोक्षार्थस्य दर्शकम ॥
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं, यस्य नास्त्यंध एवसः ॥

अर्थात् अनेक संशयों का मिटाने वाला और अनदेखी बातों का दिखाने वाला सब को लोचन शास्त्र है जिसे शास्त्र का ज्ञान नहीं सो अंधा ही है ॥

इसी प्रकार रामचन्द्र जी की कथा के उच्चारण से सब संशय दूर हो जा
गिरीशनंदिनी आदर से सुनो रामकथा कलियुगरूपी वृक्ष को कु
समान (काटने वाली) है।

चौ०–राम नाम गुण चरित सुहाये। जन्म कर्म अगणित श्रुति ग
यथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुण गा

अर्थ—रामचन्द्र जी के अनगिन्ती नाम, गुण और मनोहर लीलाएँ तथ
और कर्म वेदों में कहे गये हैं। जिस प्रकार षट् ऐश्वर्य युक्त रामचन्द्र जी अन
वैसे ही उनकी कथा कीर्ति और गुणानुवाद हैं।

चौ०–*तदपि यथाश्रुत जस मति मोरी। कहिहौं देखि प्रीति अति तो
उमा प्रश्न तव सहज सुहाई। सुखद सन्त सम्मत मोहि भा

अर्थ–तौ भी तुम्हारी अधिक प्रीति देख कर जो कुछ मैं ने सुना है उसे अ
बुद्धि के अनुसार वर्णन करूंगा। हे पार्वती! तुम्हारे प्रश्न स्वभाव ही
सुहावने सुखदाई और सज्जनों की मति के अनुसार हैं।

चौ०–एक बात नहिं मोहि सुहानी। यदपि मोहवश कहेहु भवानी।
तुम जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनिध्याना॥

अर्थ–हे पार्वती! यद्यपि तुमने मोह के कारण कही है तौ भी मुझे तुम्हारी एक
बात अच्छी नहीं लगी। जो तुमने कहा कि जिन का वेद में वर्णन है और जिन का
मुनि गण ध्यान करते हैं वे रामचन्द्र जी क्या दूसरे हैं?

दो०–कहहिं सुनहिं अस अधमनर, ग्रसे जे मोह पिशाच।
पाखंडी हरिपद विमुख, जानहिं झूठ न साँच॥११४॥

अर्थ–ऐसी बात वे नीच पुरुष कहते सुनते हैं जिन्हें मोहरूपी पिशाच की बाधा
होती है और जो पाखंडी हैं रामचन्द्र जी के चरणों से विमुख हैं और जो झूठ
तथा सत्य का विचार नहीं रखते।

---

* तदपि यथाश्रुति जस मति मोरी —

श्लो०—फणीन्द्रस्ते गुणान्वक्तुं लिखितुं हैहयाधिपः।
द्रष्टुं सा मंडलस्वामी नाम् कस्मैकः धन्ये गुणाः॥

अर्थात् (हे परमेश्वर!) आप के गुणानुवाद कथन करने को शेषनाग और
लिखने को सहस्रबाहु तथा देखने को साक्षात् सहस्राक्ष (इन्द्र) भी असमर्थ हैं फिर
मैं आप के गुण और कहां से सकेगा॥

चौ०—सगुणहिं अगुणहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा॥
*अगुण अरूप अलख अज जोई। भक्तप्रेमवश सगुण सो होई॥

अर्थ-निर्गुण और सगुण ब्रह्म में कुछ भेद नहीं है ऐसा मुनिगण, पुराण, बुद्धिमान् और वेद कहते हैं। जो निर्गुण निराकार अदृश्य और जन्म रहित है वही भक्तों के प्रेम के कारण सगुण हो जाता है॥

चौ०—जो गुण रहित सगुण सो कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥
†जासु नाम भ्रमतिमिरपतंगा। तेहि किमि कहिय बिमोह प्रसंगा॥

अर्थ—(जो तुम ने पूछा कि) जो गुण रहित ब्रह्म है वह सगुण कैसे होता है (सो यों) जैसे पानी और ओले में कुछ अन्तर नहीं। जिनका नाम ही संदेह-रूपी अंधकार को सूर्य के समान है उनके बारे में कैसे कहा जाय कि वे मोह-वश हुए॥

चौ०—‡राम सच्चिदानंद दिनेशा। नहिं तहँ मोहनिशालवलेशा॥
सहज प्रकाशरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि विज्ञान विहाना॥

---

* अगुण अरूप अलख अज जोई। भक्तप्रेमवश सगुण सो होई॥ अध्यात्म रामायण में लिखा है

श्लो० - सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराण एकः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः।
मायातनुं लोकविमोहनीयां धत्ते परानुग्रह एव रामः॥

अर्थात् ये राम माया से परे शुद्ध आत्मा ब्रह्म हैं और पहले राम पहिले भी नवीन रहे और सब के हृदय में शयन करने वाले अन्तर्यामी तथा स्वयं प्रकाशवान् हैं, अनंत हैं और सब के आदि कारण हैं। यही राम दूसरे लोगों पर कृपा कर मायारूपी शरीर धारण करते हैं॥

† जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिय विमोह प्रसंगा-अध्यात्म रामायण में—

श्लो०—यथा प्रकाशो न तु विद्यते रवौ ज्योतिःस्वभावे परमेश्वरे तथा।
विशुद्धविज्ञानघने रघूत्तमेऽविद्या कथं स्यात्परतः परात्मनि॥

अर्थात् जिस प्रकार सूर्य में कभी अंधकार का संशय नहीं उसी प्रकार विशुद्ध विज्ञान घन प्रकाश स्वरूप परमेश्वर श्री राम में अविद्या कैसे संभव हो सकती है क्योंकि अविद्या से परे ज्ञान [illegible] से भी परे रामचन्द्र हैं॥

‡ राम सच्चिदानंद दिनेशा। नहिं तहँ मोहनिशा लवलेशा—अध्यात्म रामायण में—

श्लो०—राम विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्॥

अर्थात् तुम रामचन्द्र जी को परब्रह्म जानो जो सत् चित् आनन्द स्वरूप और एक ही हैं। ये सम्पूर्ण उपाधियों से रहित हैं और सत्तामात्र में स्थित [illegible] इन्द्रियों को [illegible] हैं॥

ी राम जी हैं और ये ही मेरे प्रभु (इष्टदेव) हैं। इतना कहते ही शिव जी ने अपना माथा झुकाया (अर्थात् पुरुष सूक्त में जिसे पुरुष कहा है और जिस से सूर्य, चंद्र, अग्नि आदि प्रकाश उत्पन्न हुए बतलाये हैं। जो सब छोटे बड़े ब्रह्मांडों के स्वामी कथन किये गये हैं। ये ही आदि निराकार पुरुषोत्तम रघुवंश में रामरूपहुए हैं। वे ही मेरे इष्टदेव हैं जिन्हें मैं ने सीस नवाया था और अब फिर नवाता हूं)॥

चौ०—निज भ्रम नहिं समझहिं अज्ञानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़प्रानी॥
*यथा गगन घनपटल निहारी। झम्पेउ भानु कहैं कुविचारी॥

अर्थ—मूर्ख लोग अपने अज्ञान को तो समझते नहीं, परन्तु कहते हैं कि परमेश्वर को वियोग आदि का दुःख हुआ। जिस प्रकार आकाश में बादलों का पर्दा देख विचारहीन लोग कहते हैं कि सूर्य ढक गया (अर्थात् मूर्ख मनुष्य अज्ञानतावश अपने मोह को न विचार कर ईश्वर को मोहवश समझ लेते हैं जिस प्रकार बादलों से आप ही ढके रहकर कहते हैं कि सूर्य ढक गया है, सूर्य तो बादलों से बहुत ऊपर है, वह कैसे ढक सक्ता है)।

राग जंगला—भ्रातृगण यह उपदेश हमारा॥

वेद शास्त्र पुराण निगमागम सब मन्थन को सारा॥
रघुवर चरण शरण होय उतरो भवसागर से पारा॥
जाहि वेद कहैं शुद्ध ब्रह्म सो दशरथ राज दुलारा॥
सब व्यापी सब अन्तरयामी सर्व जगत आधारा॥
छोड़ो सकल कुतर्क कपट मन जो होवै निस्तारा॥
सत्य मान इक श्री रघुवर को मिथ्या सब संसारा॥
ध्रुव प्रहलाद आदि भक्तन हित होत रहत अवतारा॥
दीन दयाल स्वामि मम साईं भये मनुज अवतारा॥

* यथा गगन घनपटल निहारी—श्री मत् शंकराचार्य कृत हस्तामलक स्तोत्र से—
श्लोक—घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्कं, यथा निष्प्रभं मन्यते चातिमूढः।
तथा बद्धवद्भाति यो मूढदृष्टेः स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा॥

अर्थात् जो बड़े अज्ञानी हैं वे मेघों से ढकी हुई दृष्टि वाले होकर सूर्य को मेघों से ढका हुआ प्रकाश रहित समझते हैं। इसी प्रकार जो अज्ञान दृष्टि वाले को बंधन में पड़ा हुआ मालूम पड़ता है वही आत्मा मैं हूं जो नित्य प्राप्ति स्वरूप है।
और श्री कालिदास जी कुमार सम्भव के पहिले सर्ग के पांचवें श्लोक में स्पष्ट कहते हैं कि हिमालय में रहनेवाले सिद्ध लोग जब वहां मेघों से आच्छादित हो जाते हैं, तब वे उस पर्वत की ऊंचे पर गुफाओं में जा बैठते हैं, जहां से मेघ मंडल नीचे दिखाई देता है और जहां पर दिन भर सूर्य का प्रकाश सदैव वहां काम में भी आता रहता है। इस से स्पष्ट है कि सूर्य मेघों से आच्छादित नहीं होते।

चौ०—चितव जो लोचन अंगुलि लाये। प्रकट युगल शशि तेहि के भाये॥
उमा राम विपयक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥

अर्थ—जो लोग अपनी आंखों में अंगुली लगा कर चन्द्रमा को देखते हैं, उनके विचार में दो चन्द्रमा स्पष्ट दिखाई देते हैं। हे पार्वती! रामचन्द्र जी के विषय में मोह करना, इसी प्रकार से है जिस प्रकार आकाश का अन्धकार धुआँ अथवा धूल के कारण मानना है (अर्थात् यदि कोई आंख के साम्हने अँगुली रक्खे अथवा एक आंख की पुतली को अँगुली से कुछ नाक की ओर हटावे, तो उसे दो चन्द्रमा दिखाई देंगे। यह भ्रम उसी का है न कि चन्द्रमा का। इसी प्रकार रामचन्द्र जी के विषय में मोह का हाल है। आकाश में धुआँ अथवा धूल के पटल के कारण जो अन्धकार होता है सो अपना अन्धकार है न कि आकाश का)॥

चौ०—विपय करण सुर जीव समेता। सकल एक ते एक सचेता॥

शब्दार्थ—विषय=शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। करण (सं० कृ=करना)=करने का साधन अर्थात् इन्द्रियां जो दश हैं, उन में से ५ ज्ञानेन्द्रिय—(१) नेत्र इन्द्रिय, (२) कर्ण इन्द्रिय, (३) त्वचा इंद्रिय (४) रसना इंद्रिय और (५) घ्राण इन्द्रिय तथा ५ कर्मेन्द्रिय—(१) हाथ (२) पांव (३) मुख (४) लिङ्ग (५) गुदा॥

अर्थ—इन्द्रियन के विषय, इंद्रियां, उन के देवता, जीव ये सब क्रमानुसार एक दूसरे से चैतन्य होते हैं (अर्थात जीव से इंद्रियों के देवता, इंद्रियों के देवताओं से इन्द्रियां और इन्द्रियों से इंद्रियों के विषय चैतन्य होते हैं। जैसे मान लो कि वस्तु का रूप यह विषय है, उसका ज्ञान नेत्र इन्द्रिय से होता है, परन्तु नेत्र इन्द्रिय को ज्ञान उस के देवता सूर्य से होता है और सूर्य के प्रकाश का ज्ञान जीव से होता है। यदि नेत्र न हों, रूप न दिखे। यदि सूर्य या प्रकाश न हो, तो नेत्रों से न दिखे। यदि जीव न हो तो सूर्य का प्रकाश निरर्थक हो। यदि प्रकाशक ब्रह्म भीतर न हो तो जीव निरर्थक हो जाय। यह नीचे की लकीर से स्पष्ट होगा)॥

चौ०—*सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

अर्थ—इन सब को विशेष चैतन्य करने वाले रामचन्द्र जी हैं, जो अनादि ब्रह्म हैं और वे ही अयोध्या के राजा हैं (अर्थात् जीव के प्रकाशक परमात्मा भी राम हैं और अयोध्या के राजा भी वे ही राम हैं इन दोनों में भेद नहीं है)॥

---

* सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई—

गज़ल—जलवा दिखा रहा है मुझ को ज़हूर तेरा॥

व्यापक है तू जहाँ में, हाज़िर है हर जा में। सब में समा रहा है, निर्मल है नूर तेरा॥
क़ुर्बान तेरी कुदरत पर, बलिहार हूँ बहेदत पर। अमृत बरस रहा है, मुझको सरूर तेरा॥
तेरा ही नाम प्यारा, जगमा जहान सारा गुण तेरे गा रहा है, जन है ज़रूर तेरा॥
दर्दों से, दर दूर, खुद गरज़ों में। दिलग़म में आ रहा है, बन्दा हजूर तेरा॥

चौ०—जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू । मायाधीश ज्ञान गुणधामू ॥
*जासु सत्यता ते जड़ माया । भास सत्य इव मोह सहाया ॥

अर्थ—सब संसार तो प्रकाश पाने वाला है और रामचन्द्र जी प्रकाश करने वाले हैं, जो माया के स्वामी और ज्ञान तथा गुण के स्थान हैं । जिन रामचन्द्र जी की सत्यता से जड़ माया भी मोह के सहारे से सत्य की नाईं भासती है (जैसे चुम्बक के सहारे से जड़ लोहा भी चैतन्य सा भासने लगता है) ॥

दो०—†रजत सीप महँ भास जिमि, यथा भानु कर वारि ।
यदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकै कोउ टारि ॥११७॥

अर्थ—जिस प्रकार सीप में चांदी और सूर्य की किरणों में पानी (मृगजल) समझ पड़ता है । यद्यपि भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों काल में ये बातें असत्य हैं तौ भी इन के भ्रम को कोई मिटा नहीं सक्ता (अर्थात् न सीप में चांदी है और न मृगतृष्णा में पानी, तौ भी इन दोनों में चांदी और पानी का धोखा सदैव बना ही रहता है । इसी प्रकार परब्रह्म के सहारे से माया चैतन्य और सत्य सी भासती है; परन्तु वह यथार्थ में है नहीं, इसे अनिर्वचनीय कहना चाहिये) ॥

चौ०—‡इहि विधि जग हरि आश्रित रहई । यदपि असत्य देत दुख अहई ॥
ज्यों सपने शिर काटै कोई । बिन जागे दुख दूर न होई ॥

---

* जासु सत्यता ते जड़ माया । भास सत्य इव मोह सहाया—अध्यात्म रामायण में लिखा है:—

श्लो०—आत्मनः संसृतिर्नास्ति, बुद्धेर्ज्ञानं न जात्वति ।
अविवेकाद् द्वयं युक्त्वा संसारीति प्रवर्त्तते ॥

अर्थ—वास्तव में जन्म मरण आदि संसार असंग आत्मा में नहीं संभव होता और जड़ बुद्धि में ज्ञान कभी नहीं संभव होता । अविवेक से दोनों को मिला कर संसारी (अर्थात् मैं कर्त्ता हूं, मैं भोक्ता हूं ऐसा) व्यवहार संभव होता है (देखो वेदान्त ग्रन्थ) ॥

† रजत सीप महँ भास जिमि, यथा भानु कर वारि:—

कवित्त मन ही के भ्रम ते जगत यह देखियत मन ही के भ्रम गये जगत बिलात है ।
मन ही के भ्रम जेवरी में उपजत सांप मन के विचारे सांप जेवरी समात है ॥
मन ही के भ्रम तें मरीचिका को जल कहै मन ही के भ्रम सीप रूपा सो दिखात है ।
'सुन्दर' सकल यह दीसै मन ही के भ्रम मन ही के भ्रम गये ब्रह्म [illegible] है ॥

‡ इहि विधि जग हरि आश्रित रहई । यदपि असत्य देत दुख अहई—

कुंडलिया—[illegible] [illegible], झूठो सब संसार ।
बाजीगर को पेखनो, मिटत न लागत बार ॥
मिटत न लागत बार भूत की संपति जैसे ।
मेहरी मानी पूत पुत्र के सपने जैसे ॥
[illegible] ते सब [illegible] ।
झूठे पड़े [illegible] ॥

अर्थ—इस प्रकार से संसार परमेश्वर के आधीन है, यद्यपि झूठ है, तो भी दुःख देता ही है। जिस प्रकार सपने में कोई किसी का सिर काट डाले तो जागने के बिना उस का दुःख नहीं मिटता,

चौ०—*जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई॥
आदि अन्त कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा॥

अर्थ—जिस की कृपा से ऐसा भ्रम दूर होता है, हे पार्वती! वही कृपालु रामचन्द्र जी हैं। जिन का ओर छोर किसी को नहीं मिला, बुद्धि की तर्कना से वेद ने ऐसा वर्णन किया है॥

चौ०—†बिन पद चलै सुनै बिन काना। कर बिन कर्म करै विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिन वाणी वक्ता बड़ योगी॥

अर्थ—जो परमेश्वर विना पाँव के चलता है, विना कान के सुनता है और विना हाथों के नाना प्रकार के कर्म करता है। मुख के विना सब प्रकार के स्वादों को भोगता है विना जीभ के बड़ा बोलने वाला है॥

---

* जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई॥

माधो मोह फाँस क्यों टूटे।
बाहिर कोटि उपाय करिय अभिअन्तर ग्रन्थि न छूटे॥
घृत पूरण कराह अन्तरगत शशि प्रतिबिम्ब दिखावै।
ईंधन अनल लगाय कल्पशत औटत नाश न पावै॥
तरु कोटर महँ बस विहंग तरु काटे मरे न जैसे।
साधन करिय विचारि हीन मन शुद्ध होइ नहिं तैसे॥
अन्तर मलिन विषय मन अति तन पावन करिय पखारे।
मरै न उरग अनेक यतन बलमीक विविध विधि मारे॥
तुलसिदास हरि गुरु करुणा बिन विमल विवेक न होई।
बिन विवेक संसार घोर निधि पार न पावै कोई॥

† बिनपद चलै सुनै बिनकाना। कर बिन कर्म करै विधिनाना—जैसा कि श्वेताश्वतरोपनिषद् के तीसरे अध्याय में कहा है—

श्लोक—अपाणिपादो जवनो ग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता, तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥ १९॥

[illegible]

चौ०—*तन बिन परस नयन बिन देखा । ग्रहै घ्राण बिन बास असेखा ॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥

अर्थ—शरीर के बिना स्पर्श करता है, बिना नेत्रों के देखता है और सूँघने की इन्द्रिय बिना सब प्रकार की बास लेता है। ऐसी सब प्रकार से लोक विरुद्ध जिस की कार्यवाही है, उस के महत्व का वर्णन नहीं हो सक्ता ॥

दो०—†जेहि इमि गावहिं वेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोइ दशरथसुत भक्तहित, कोशलपति भगवान ॥ ११८ ॥

अर्थ—जिस को वेद और बुद्धिवान् लोग पूर्वोक्त रीति से वर्णन करते हैं और जिस का मुनि गण ध्यान करते रहते हैं। सोई परमेश्वर भक्तों के हित कोशलाधीश दशरथ जी के पुत्र हुए हैं।

चौ०—काशी मरत जन्तु अवलोकी । जासु नाम बल करौं विशोकी ॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी । ‡रघुवर सब उर अन्तरयामी ॥

अर्थ—जिन के नाम के प्रभाव से काशी में मरने वाले प्राणियों को मैं संसार के दुःख से छुड़ाता हूं (अर्थात् मोक्ष देता हूं)। वे ही चल और स्थिर जीवों के स्वामी घट घट वासी रामचन्द्र जी मेरे प्रभु हैं ॥

चौ०—विवशहु जासु नाम नर कहहीं । जन्म अनेक रचित अघ दहहीं ॥
§सादर सुमिरण जे नर करहीं । भव वारिधि गोपद इव तरहीं ॥

---

* तन बिन परस नयन बिन देखा । ग्रहै घ्राण बिन बास असेखा—वैराग्य सन्दीपिनी से—

दो०—सुनत लखत श्रुति नयन बिन, रसना बिन रस लेत ।
बास नासिका बिन लहै, परसै बिना निकेत ॥

† जेहि इमि गावहिं वेद बुध, जाहि धर[illegible]नि ध्यान—वैराग्य सन्दीपिनी से—

सोरठा—अज [illegible] र जो गुण रहित ।
[illegible] हैन[illegible] धरेउ ॥

‡ रघुवर सब [illegible]

[illegible] पि दृश्यते ।
[illegible] स्पर्द सदा ॥
[illegible] देता है। इसी प्रकार सदैव सब

[illegible] मचन्द्र
[illegible] मूर्ति
[illegible] करने से मनुष्य

अर्थ—जिस के नाम को मनुष्य यदि जबरई से भी लेलेवें तो वे अपने अ
जन्म के संचित पापों से छुटकारा पाजाते हैं जैसे अजमील और गणिका आदि
परन्तु जो पुरुष आदर पूर्वक उसका भजन करते हैं वे संसाररूपी समुद्र को गाय
खुरचिन्ह में भरे हुए पानी की नाईं लाँघ जाते हैं ।

चौ०—*राम सो परमातमा भवानी । तहँ भ्रम अति अविहित तव बान
अस संशय आनत उरमाहीं । ज्ञान विराग सकल गुण जाहीं

अर्थ—हे पार्वती ! जो राम हैं सोई परमात्मा हैं उनके विषय में संदेह युक्त
तुम्हारे वचन बहुत ही अयोग्य हैं । क्योंकि हृदय में ऐसा संदेह लाने ही मात्र से
ज्ञान वैराग्य आदि सम्पूर्ण गुण नष्ट हो जाते हैं ।

चौ०—सुनि शिव के भ्रमभंजन वचना । मिटि गइ सब कुतर्क की रचना
भइ रघुपतिपदप्रीति प्रतीती । दारुण असंभावना बीती

अर्थ—संदेह मिटाने वाले शिव जी के वचनों को सुनने से पार्वती जी के सब
संदेह दूर हो गये । रामचन्द्र जी के चरणों में उन का प्रेम और विश्वास जम
गया तथा बुरे तर्क वितर्क जाते रहे ।

दो०—पुनि पुनि प्रभुपदकमल गहि, जोरि पंकरुहपानि ।
बोलीं गिरिजा वचन वर, मनहुँ प्रेमरस सानि ॥११६॥

अर्थ—बारंबार प्रभु के कमलस्वरूपी चरणों को वंदन कर अपने कमलस्वरू
हाथों को जोड़ कर पार्वती जी ऐसे सुहावने वचन बोलीं कि मानो वे प्रेम रस
परिपूर्ण हों ।

चौ०—शशिकर सम सुनि गिरा तुम्हारी । मिटा मोह शरदातप भारी
†तुम कृपाल सब संशय हरेऊ । ‡रामस्वरूप जानि मोहि परेऊ

---

* राम सो परमातमा भवानी—योग वाशिष्ठ में कहा है:—

श्लो०—रमन्ते योगिनो यत्र, सत्यानन्दे चिदात्मके ।
इति रामपदे नासौ, परब्रह्म विधीयते ॥

अर्थात् जिस सत्यरूप आनन्द स्वरूप चिदात्मा में योगी जन रमते हैं इस कारण
राम पद से परब्रह्म ही समझा जाता है ॥

† तुम कृपाल सब संशय हरेऊ ॥

श्लो० धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि, कृतार्थास्मि जगत्प्रभो ।
विच्छिन्नोमेति संदेह ग्रंथि भवदनुग्रहात् ॥

अर्थात्—(पार्वती जी महादेव जी से कहने लगीं कि) हे संसार के स्वामी ! मैं धन्य हूँ
आप ने [illegible] करके मुझे कृतार्थ किया और आप की कृपा से मेरे हृदय का संदेह दूर हो गया ।

‡ [illegible] जानि मोहि परेऊ—पाठक गण विचार कर देखिये—श्री शंकर जी के वचन

अर्थ—आप की चन्द्र किरण के समान वाणी सुनकर के शरद ऋतु की तपन के समान मेरा सन्देह मिट गया। हे दयालु ! आपने मेरा सब सन्देह दूर किया, अब मैं श्री रामचन्द्र जी के रूप को समझ गई।

चौ०—नाथकृपा अब गयेउ विषादा। सुखी भइउँ प्रभुचरणप्रसादा॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी। यदपि सहज जड़ नारि अयानी॥

अर्थ—आप की कृपा से मेरा दुःख दूर हुआ और आप के चरणों के अनुग्रह से मैं आनन्दित हो गई। यद्यपि स्त्रियां स्वभाव ही से कठोर और मूर्ख होती हैं तौ भी अब आप मुझे अपनी दासी समझ कर...... ...

चौ०—प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। जो मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू॥
राम ब्रह्म चिन्मय अविनाशी। सर्व रहित सबउरपुरवासी॥

अर्थ—हे प्रभु ! जो आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो जो कि मैंने पहिले पूछा था वही कहिये। रामचन्द्र जी तो परब्रह्म चैतन्यस्वरूप नाशरहित सब से भिन्न और सब के घट घट में निवास करते हैं।

चौ०—नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू। मोहि समुझाय कहहु वृषकेतू॥
उमावचन सुनि परम विनीता। रामकथा पर प्रीति पुनीता॥

अर्थ हे स्वामी ! उन्हों ने किस हेतु मनुष्य का शरीर धारण किया। सो हे धर्मधुरीन ! आप मुझे समझा कर कहिये। पार्वती के अति नम्रता भरे हुए वचन सुन तथा राम कथा पर निष्कपट प्रेम देख ....

दो०—हिय हरषे कामारि तब, शंकर सहज सुजान।
बहु विधि उमहिं प्रशंसि पुनि, बोले कृपानिधान॥

अर्थ—कामदेव के वैरी स्वभाव ही से ज्ञानवान् दयासागर शिव जी हृदय में बहुत प्रसन्न हुए और पार्वती जी की नाना प्रकार से बड़ाई कर कहने लगे।

सो०—सुनु शुभ कथा भवानि, रामचरित मानस विमल।
कहा भुशुंडि बखानि, सुना विहँगनायक गरुड़॥

[illegible]

अर्थ—हे पार्वती ! रामचरित्रमानस की पवित्र कथा सुनो जिसे काकभुशुण्ड ने वर्णन की थी और पक्षीराज गरुड़ ने सुनी थी ।

सो०—सोइ सम्वाद उदार, जेहि विधि भा आगे कहब ।
सुनहु रामअवतार, चरित परम सुन्दर अनघ ॥

अर्थ—वही गम्भीर सम्भाषण जिस प्रकार से हुआ सो आगे कहूंगा (अभी) अति सुन्दर पापनाशक, रामचन्द्र जी के अवतार के चरित्र सुनो ।

सो०—हरिगुण नाम अपार, कथारूप अगणित अमित ।
मैं निजमतिअनुसार, कहौं उमा सादर सुनहु ॥ १२० ॥

अर्थ—परमेश्वर के गुण और नामों की गिन्ती नहीं, इसी प्रकार उनकी कथा का पारावार नहीं और रूप भी अनगिन्ती हैं तौ भी हे उमा ! तुम आदर पूर्वक सुनो, मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूं ।

(२३ अवतारों के कारण)

चौ०—सुन गिरिजा हरिचरित सुहाये । विपुल विशद निगमागम गाये
हरिअवतार हेतु जेहि होई । इदमित्थं कहि जाइ न सोई ॥

शब्दार्थ—इदमित्थं (इदम्=यह + इत्थं=इस प्रकार)=यह इसी प्रकार है ॥

अर्थ—हे पार्वती हरि के मनोहर चरित्रों को सुनो ! जो बहुत से हैं; पवित्र हैं और जिनका वर्णन वेद और शास्त्रों में है । जिस निमित्त से परमेश्वर का अवतार होता है "वह ठीक इसी प्रकार से है" ऐसा कोई नहीं कह सक्ता ।

चौ०—राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी । मत हमार अस सुनहु सयानी ॥
तदपि संत मुनि वेद पुराना । जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना ॥
तस मैं सुमुखि सुनावहुँ तोही । समझि परै जस कारण मोही ॥

अर्थ—हे चतुर पार्वती सुनो ! हमारा विचार तो यों है कि रामचंद्र जी मन वाणी और बुद्धि से भी समझ में नहीं आ सक्ते । तौ भी संत मुनि वेद पुराण जो कुछ अपनी २ समझ के अनुसार कहते हैं । सो हे सुंदर वदने ! उन्हीं के कथनानुसार जो कुछ कारण मुझे समझ पड़ते हैं सो मैं तुम्हें सुनाये देता हूं ॥

चौ०—*जब जब होइ धर्म की हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

शब्दार्थ—सीदहिं (सं०, सद् = त्रास देना) = त्रास देते, सताते हैं॥

अर्थ—जिस समय पर धर्म घट जाता है और नीच घमंडी राक्षस बढ़ जाते हैं तथा अन्याय करने लगते हैं कि जिनका वर्णन नहीं हो सक्ता है, वे ब्राह्मण गौ देवता और पृथ्वी को सताने लगते हैं। उसी समय परमदयालु नारायण नानारूप धारण करके सज्जनों का दुःख दूर करते हैं॥

दो०—असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निजश्रुतिसेतु।
‡जग विस्तारहिं विशद यश, रामजन्म कर हेतु॥१२१॥

अर्थ—राक्षसों को मार देवताओं की रक्षा करते हैं अपनी वेद मर्यादा का पालन कर संसार में पवित्र कीर्त्ति फैलाते हैं यह राम जन्म का कारण भी हो सक्ता है॥

चौ०—सोइ यश गाइ भक्त भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥
रामजन्म के हेतु अनेका। परम विचित्र एक ते एका॥

अर्थ—दयासागर प्रभु भक्तों के हेतु शरीर धारण करते हैं, उन्हीं की कीर्त्ति का वर्णन कर, भक्तजन संसार से तर जाते हैं। रामजन्म के अनेक कारण हैं और वे एक से एक बढ़ बढ़ कर अद्भुत हैं॥

---

* जब जब होइ धर्म की हानी। इत्यादि—रामरत्नाकर रामायण से—
चौ०—राम अनादि एक अविनाशी। अकल अगोचर अखिल प्रकाशी॥
भक्त हेतु निर्गुण प्रभु जोई। इच्छा रूप सगुण सो होई॥
जब जब धर्म होइ निर्मूला। प्रगटे असुर धर्म प्रतिकूला॥
तब तब हरि धरि रूप अनेका। राखैं धर्म नीति अविवेका॥
जो जो हरि लीला अनुसारी। गाय गाय संतत नर तरही॥

‡ जग विस्तारहिं विशद यश, रामजन्म कर हेतु—
छप्पय—[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]॥
[illegible]।
[illegible]॥

चौ०–जन्म एक दुइ कहौं बखानी। सावधान सुन सुमति भवानी॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। *जय अरु विजय जान सब कोऊ॥

अर्थ—हे सुमुखि पार्वती जी! चित्त लगाकर सुनो, मैं अवतार धारण करने के दो एक निमित्त कहता हूं। सब लोग जानते हैं कि परमेश्वर के प्यारे दो ड्योढ़ीदार जय और विजय नाम के हैं।

चौ०–विप्रशाप ते दोनौं भाई। तामस असुर देह तिन पाई॥
कनककशिपु अरु हाटकलोचन। जगत विदित सुरपतिमदमोचन॥

शब्दार्थ—कनककशिपु (कनक के लिये दूसरा शब्द हिरण्य+कशिपु शुद्ध रूप कश्यप) = हिरण्यकश्यप। हाटकलोचन (हाटक के लिये हिरण्य+लोचन के लिये अक्ष) = हिरण्याक्ष॥

अर्थ—दोनों भाई (सनकादिक के) शाप से तामसी रूप राक्षसी शरीर पाकर हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष नामधारी दैत्य हुए, जो जगत में प्रसिद्धि पाकर इन्द्र का अभिमान घटाने वाले हुए॥

चौ०–विजयी समर वीर विख्याता। धरि वराह वपु एक निपाता॥
होइ नरहरि वपु दूसर मारा। जन प्रह्लाद सुयश विस्तारा॥

अर्थ—दोनों विजयी तथा लड़ाई में बड़े योधा प्रसिद्ध थे। (परमेश्वर ने) वाराहरूप धारण कर एक अर्थात् हिरण्याक्ष को मार डाला और नृसिंह रूप धारण कर दूसरे अर्थात् हिरण्यकश्यप का वध कर अपने भक्त प्रह्लाद की कीर्त्ति फैलाई॥

दो०–भये निशाचर जाइ ते, महावीर बलवान।
कुम्भकरण रावण सुभट, सुरविजयी जग जान॥ १२२॥

---

* जय और विजय ये दोनों विष्णु जी के द्वारपाल हैं जिन्हें सनकादि मुनियों के शाप से कुछ काल के लिये राक्षस योनि में जन्म लेना पड़ा था, जैसा कि श्री मद्भागवत स्कंध ३ अ० १६ में कहा है—

श्लोक—तौ तु गीर्वाणऋषभौ, दुस्तराद्धरिलोकतः।
हतश्रियौ ब्रह्मशापात् अभूतां विगतस्मयौ॥ ३३॥

अर्थात् देवों में श्रेष्ठ, ब्राह्मणों के शाप से श्रीहीन, गर्वरहित ये दोनों जय और विजय परमेश्वर के सर्वोत्तम बैकुण्ठ धाम से गिरे॥

अर्थ—वे ही दोनों जाकर बड़े पराक्रमी बलवान् राक्षस योधा हुए। जो देवताओं को जीतने वाले, बड़े योधा जगत प्रसिद्ध कुम्भकरण और रावण नामधारी हुए॥

चौ०—*मुक्त न भये हते भगवाना। तीन जन्म द्विजवचन प्रमाना॥
एक बार तिन के हित लागी। धरेउ शरीर भक्तअनुरागी॥

अर्थ—यद्यपि भगवान ने उन्हें अपने हाथ से वध किया तौ भी सनत्कुमार के वचनों के अनुसार तीन जन्म तक उन्हों ने मुक्ति नहीं पाई। भक्तों पर प्रेम करने वाले परमेश्वर ने एक बार उन के हेतु शरीर धारण किया था॥

चौ०—कश्यप अदिति तहां पितु माता। दशरथ कौशल्या विख्याता॥
एक कल्प इहि विधि अवतारा। चरित पवित्र किये संसारा॥

---

* मुक्त न भये हते भगवाना। तीन जन्म द्विजवचन प्रमाना – विष्णुपदी रामायण से—

भजन—एक समय हरि के दरशन को सनकादिक बैकुंठ सिधारे।
तहँ जय विजय पार्षद दोनों रोकि दिये तेहि बाहर द्वारे॥
करि अभिमान जानि तिनके मन विप्र क्रोध करि वचन उचारे।
तीन जन्म जग होहु निशाचर होइहहु मुक्त कृष्ण के मारे॥
सो सुनि प्रगट भये कश्यप गृह दिति के गर्भ दैत्य तनु धारे।
हिरणकशिपु अरु हाटकलोचन तेहि नरहरि वाराह सँहारे॥
ते पुनि भये केकसी के सुत रावण कुम्भकरण बल भारे।
राम लखन अरु भरत शत्रुहन बालचरित किय ललित अपारे॥
यामहु कुँवर ब्याहि घर आये आर विपिन भुव भार उतारे।
[illegible]

अर्थ—वहां पर कश्यप मुनि और अदिति ये ही पिता माता अर्थात् संसार में प्रसिद्ध दशरथ और कौशल्या के नाम से हुए। एक कल्प में इस प्रकार अवतार ले (नारायण ने) अपने चरित्रों से संसार को पवित्र किया॥

दूसरी लकीर का दूसरा अर्थ—एक कल्प में इस प्रकार अवतार धारण कर ईश्वर ने संसार में अपनी पवित्र लीला विस्तारी॥

चौ०—एक कलप सुर देखि दुखारे। *समर जलन्धर सन सब हारे॥
शम्भु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरै न मारा॥
परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी॥

अर्थ—एक कल्प संग्राम में जलन्धर राक्षस से हार मान जब सम्पूर्ण देवताओं को दुःखित देखा तब महादेव जी ने उस से बड़ा भारी युद्ध किया परन्तु वह बड़ा बलवान् राक्षस मारे नहीं मरता था। कारण उस असुरराज की स्त्री बड़ी पतिव्रता थी। उसी के प्रभाव से त्रिपुर राक्षस के शत्रु शिव जी उसे जीत नहीं सक्ते थे।

और उन की आज्ञानुसार महात्मा अगस्त्य जी के पास पहुँचे। जिन्हों ने समुद्र को पी लिया और उस के साथ कालकेयों को भी पीकर पचा गये।

(५) दनायु—इस से विक्षर, बल, वृत्र और वीर ये चार पुत्र हुए।

(६) सिंहिका को प्रथमार्थक से उत्पन्न हुए लड़के सैंहिके कहलाये।

(७) क्रोधा—इस का दूसरा नाम क्रोधवशा भी था, इस को क्रोधवश नाम के दस पुत्र और ९ कन्यायें थीं।

(८) प्राधा ये अप्सराओं और गन्धर्वों की माता थीं। इनकी नामावली अन्यत्र देखो।

(९) इला—इस का दूसरा नाम इरा भी है।

(१०) विनता—इस से अरुण (अर्थात् सूर्य का सारथी), गरुड़ (विष्णु जी का वाहन), अरुणि, वारुणि ये चार पुत्र और सौदामिनी नाम की एक कन्या हुई थी। इस के पश्चात् सात पुत्र और हुए।

(११) कपिला—यद्यपि यह [illegible] नहीं।

(१२) मुनी—इन से १६ गन्धर्व उत्पन्न हुए (अन्यत्र देखो)

(१३) कद्रू (सुरसा)—यह सम्पूर्ण नागों की जननी है इन में से प्रसिद्ध नाग ये हैं शेष, वासुकि, कर्कोटक, तक्षक, धनंजय इत्यादि। [illegible] कश्यप मुनि की [illegible] प्रसिद्ध [illegible] हैं—[illegible]

* जलंधर की कथा—[illegible] की भी [illegible] टीका में देखो (" [illegible] " [illegible] में)

दो०—छल कर टरेउ तासु व्रत, प्रभु सुरकारज कीन्ह।
जब तेहि जानेउ मर्म सब, शाप कोप कर दीन्ह ॥१२३॥

अर्थ—परमेश्वर ने चतुराई से उस का पातिव्रत्य भंग कर देवताओं का काम सिद्ध किया (अर्थात् जलन्धर को शिव जी के हाथ से मरवा डाला)। जब उस वृन्दा को सब भेद समझ पड़ा तब तो उसने क्रोधित हो परमेश्वर को श्राप दिया।

चौ०—तासु शाप हरि कीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना॥
तहां जलन्धर रावण भयऊ। रण हति राम परमपद दयऊ॥

अर्थ—परमेश्वर ने उस का श्राप स्वीकार कर लिया, कारण वे बड़े लहरी दयालु और षडैश्वर्य संपन्न हैं। उस कल्प में जलन्धर रावण हुआ जिसे श्री राम ने संग्राम में मार कर मुक्ति दी।

चौ०—एक जन्म कर कारण येहा। जेहि लगि राम धरी नरदेहा॥
प्रति अवतार कथाप्रभु केरी। सुन मुनि वरणी कविन घनेरी॥

अर्थ—एक बार जन्म लेने का पूर्वोक्त कारण है जिससे रामचन्द्र जी ने मनुष्य रूप धारण किया। हे पार्वती सुनो! प्रभु की हर एक अवतार की कथा मुनियों और कवियों ने नाना प्रकार से कही है।

चौ०—नारद शाप दीन्ह इक बारा। कल्प एक तेहि लगि अवतारा॥
गिरिजा चकित भई सुनि बानी। नारद विष्णुभक्त मुनि ज्ञानी॥

अर्थ—एक समय नारद मुनि ने श्राप दिया था तब एक कल्प में उसी के हेतु अवतार हुआ था। इन वचनों को सुन कर पार्वती जी अचंभे में पड़ीं (और बोलीं कि) नारद मुनि तो बड़े ज्ञानवान् हरिभक्त हैं।

चौ०—कारण कौन शाप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी॥

अर्थ—मुनि जी ने किस कारण से श्राप दिया था? लक्ष्मीपति भगवान् ने कौन सा अपराध किया था? हे शिव जी! यह वार्ता मुझे सुनाइये। मुनि जी के मन में मोह उत्पन्न होवै, यह बड़े अचरज की बात है।

दो०—बोले बिहँसि महेश तब, ज्ञानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छण होइ॥

अर्थ—तब महादेव जी मुसकरा कर कहने लगे कि न कोई ज्ञानी है और न मूर्ख। जिस को जब रामचन्द्र जी जैसा करना चाहें वह उस समय वैसा ही हो जाता है (अर्थात् ईश्वर चाहे जिसे ज्ञानी और चाहे जिसे मूर्ख बना सक्ते हैं)॥

दूसरा अर्थ—तब महादेव जी हँस कर कहने लगे कि ज्ञानी पुरुष बहुधा मूर्खता नहीं करते परन्तु (उनके सुधार आदि के निमित्त) ईश्वर जब जिस को जैसा चाहें उसे उसी क्षण वैसा बना सक्ते हैं। भाव यह कि वे यदि चाहें तो ज्ञानी से मूर्खता का और मूर्ख से ज्ञान का काम करा सक्ते हैं॥

सो०—कहौं रामगुणगाथ, भरद्वाज सादर सुनहु।
भवभंजन रघुनाथ, भज तुलसी तजि मोह मद ॥१२४॥

अर्थ—(याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि) हे भरद्वाज जी! आदरपूर्वक सुनिये, मैं रामचन्द्र जी के गुणानुवाद कहता हूं। तुलसीदास जी कहते हैं कि रामचन्द्र जी संसार के आवागमन से छुड़ाने वाले हैं। इसहेतु ममता और घमंड को छोड़ कर उन का भजन करो॥

(२४ नारद का मोह और श्राप)

चौ०–हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि॥
आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवऋषि मन अति भावा॥

अर्थ–हिमालय पर्वत की एक अति पवित्र गुफा थी, जिस के समीप सुन्दर गंगा जी बह रहीं थीं। वह ऐसा अति पवित्र और रमणीय स्थान था कि देखते ही नारदमुनि के चित्त में चढ़ गया॥

चौ०–निरखि शैल सर विपिन विभागा। भयउ रमापतिपद अनुरागा॥
सुमिरत हरिहि *श्वास गति बाँधी। सहज विमल मन लागि समाधी॥

अर्थ–पर्वत, नदी और जङ्गल का भाग (सब ही समाधि योग्य) देख लक्ष्मीपति भगवान के चरणों में प्रेम लग गया। वे परमेश्वर का स्मरण करते २ प्राणायाम लगाए हुए और स्वभाव ही से शुद्धचित्त होने के कारण समाधि लगा बैठे॥

* [illegible]

चौ०—मुनिगति देखि सुरेश डराना । *कामहिं बोलि कीन्ह सनमाना ॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू । चलेउ हरषि हिय जलचरकेतू ॥

अर्थ—मुनि की समाधि देख देवराज इन्द्र डर गये और उन्हों ने कामदेव को बुलाकर उस का आदर किया (और बोले) तुम अपने सहाय (वसन्तऋतु अप्सरा आदि) को लेकर मेरे कार्य के लिये जाओ (वचन सुनते ही) कामदेव प्रसन्न होता हुआ चला ॥

चौ०—सुनासीर मन महँ अति त्रासा । चहत देवऋषि मम पुर वासा ॥
जे कामी लोलुप जग माहीं । †कुटिल काक इव सबहि डराहीं ॥

अर्थ—इन्द्र के मन में बड़ा डर यह था कि नारद मुनि मेरे लोक का अधिकार चाहते हैं । संसार में जो काम के वशीभूत अथवा लालची होते हैं । वे कपटी कौए की नाईं सब ही से डरते रहते हैं ॥

दो०—‡सूख हाड़ ले भाग शठ, श्वान निरखि गजराज ।
छीन लेइ जनि जानि जड़, तिमि सुरपतिहि न लाज ॥१२५॥

अर्थ–जिस प्रकार धूर्त कुत्ता सूखी हड्डी लेकर भागते समय सिंह को देख ले । तो वह मूर्ख समझता है कि सिंह कहीं मेरी हड्डी न छीन ले ? उसी प्रकार राजा इन्द्र को भी लज्जा न आई । (अर्थात् जैसे सिंह सूखी हड्डी की ओर देखता ही नहीं, वैसे ही ब्रह्मनिष्ठ महर्षियों को राज्य आदि ऐश्वर्यों से कुछ प्रयोजन नहीं रहता "ज्यों निस्नेही जीव को, तृण समान सुरनाह" परंतु इन्द्र ने समझा कि नारद मुनि मेरा राज्य न छीन लें । जैसे कुत्ता समझे कि शेर मेरी हड्डी को न छीन ले) ॥

---

* कामहिं बोलि कीन्ह सनमाना—जैसा कि कुमार संभव के तीसरे सर्ग में लिखा है—

श्लो०—अवैमि ते सारमतः खलु त्वां कार्ये गुरुण्यात्मसमं नियोक्ष्ये ।
व्यादिश्यते भूधरतामवेक्ष्य कृष्णेन देहोद्वहनाय शेषः ॥१३॥

अर्थात् (इन्द्र कामदेव से कहते हैं कि) मैं तुम्हारे पराक्रम को जानता हूं इसी से तुम्हें अपने तुल्य मान बड़े भारी कार्य में लगाता हूं (देखो) विष्णु भगवान ने शेष जी को पृथ्वी धारण करने की शक्ति जान अपने शरीर धारण करने की आज्ञा दी (तभी से वे भगवान् शेषशायी हुए) ॥

† कुटिल काक इव सबहि डराहीं - यही भाव अयोध्याकांड में आया है । यथा 'सरिस स्वान मघवान जुवानू' देखो दो० ३०२ की टि० पृ० ४४६

‡ सूख हाड़ ले भाग शठ— [illegible]

दो०—श्वान लेइ सोवै सदहि, नाहर बदन न हेर ॥
[illegible]

चौ०-*देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच विधि नाना॥
†कामकला कछु मुनिहि न व्यापी। निज भय डरेउ मनोभव पापी॥
सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥

अर्थ—कामदेव अपने सहायकों को देख कर प्रसन्न हुआ और फिर उस ने भांति भांति के नटखट रचे। (इतने पर भी) कामदेव का प्रभाव नारद मुनि पर कुछ भी न पड़ा। तब तो पापी कामदेव अपनी ही करतूति के कारण भयभीत हुआ। जिसके राखनहार समर्थ रमापति हैं भला, उसके पास तक भी कोई पहुँच सक्ता है?

दो०—सहित सहाय सभीत अति, मानि हारि मन मैन।
गहेसि जाइ मुनिचरण तब, कहि सुठि आरत बैन॥ १२६॥

अर्थ-कामदेव अपने सहायकों समेत मन से हार मान गया तब उसने डरते २ नारद मुनि के चरण गहे और मधुर वचनों से विनती की (कि हे मुनि वर्य! मेरा अपराध क्षमा कीजिये, मैं ने आपका प्रभाव नहीं जाना था)॥

चौ०-भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय वचन काम परितोषा
नाइ चरण शिर आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित सहाई॥

अर्थ-नारद के चित्त में कुछ क्रोध न हुआ, उन्हों ने मधुर वचनों से कामदेव का मन भर दिया। कामदेव उन्हें शिर नवाकर और आशीर्वाद पा अपने सहायकों समेत चला गया।

चौ०—मुनि सुशीलता आपनि करनी। सुरपति सभा जाइ तिन बरनी॥
सुनि सब के मन अचरज आवा। मुनिहि प्रशंसि हरिहि शिर नावा॥

---

* देखि सहाय मदन हरषाना—

कवित्त – [illegible] को बितान [illegible] को पिछौना मंजु मदन निकुंज है प्रमोद बनराज को।
आगे दरबार भरो भौंरन की भीर बैठी मदन दिवान [illegible] काम काज को॥
'पण्डित प्रवीण' [illegible] गुमान [illegible] हाजिर हुजूर सुनि कोकिल [illegible] को।
चोपदार [illegible] बिरद बदि बोलैं दर दौलत [illegible] महाराज ऋतुराज को॥

† कामकला कछु मुनिहि न व्यापी—

क०—[illegible] काम [illegible], कोकिल [illegible] न सजावैंगे।
[illegible] विविध [illegible] भरी [illegible] न बजावैंगे॥
[illegible], [illegible] गावैंगे।
[illegible] है [illegible]॥

अर्थ—कामदेव ने मुनि की सुयोग्यता और अपनी कार्यवाही सब ही इन्द्र की सभा में जाकर वर्णन की। सबके सब उसे सुनकर अचरज में पड़े और उन्होंने मुनि की बड़ाई कर परमेश्वर को नमन किया ॥

चौ०—तब नारद गवने शिव पाहीं। जीति काम अहमिति मन माहीं॥
मारचरित शंकरहि सुनावा। अतिप्रिय जानि महेश सिखावा॥

अर्थ—फिर नारद मुनि शिव जी के पास गये "मैंने काम को जीत लिया" यह अहङ्कार मन में भरा था। कामदेव का सब चरित्र महादेव जी से कह सुनाया और महादेव जी ने उन्हें अपना प्रेमी समझ सिखापन दिया।

चौ०—बार बार बिनवउँ मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥
तिमि जनि हरिहि सुनायहु कबहूँ। चलेहु प्रसंग दुरायउ तबहूँ॥

अर्थ—हे मुनि जी! मैं बारम्बार तुम से निवेदन करता हूं कि जिस प्रकार तुमने यह कथा मुझे सुनाई। उसी प्रकार विष्णु जी से कभी मत कहना, जो कदाचित् चर्चा चल उठे तौ भी उसे दबाये रहना।

दो०—शम्भु दीन्ह उपदेशहित, नहिं नारदहि सुहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु, हरिइच्छा बलवान॥ १२७॥

अर्थ—महादेव जी ने तो भलाई विचार कर सिखापन दिया था परन्तु वह नारद को अच्छा न लगा। याज्ञवल्क्य मुनि बोले हे भरद्वाज! अब दिल्लगी सुनो, परमेश्वर की इच्छा प्रबल है।

चौ०—राम कीन्ह चाहैं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥
शम्भुवचन मुनि मनहिं न भाये। तब बिरंचि के लोक सिधाये॥

अर्थ—रामचन्द्र जी जो करना चाहते हैं वही होता है, ऐसा कोई नहीं है जो उसे मेट सके। (देखो) शिव जी का सिखापन नारद के मन में न जँचा, वे ब्रह्मलोक को चले गये॥

चौ०—एक बार करतल बर बीणा। *गावत हरिगुण गानप्रवीणा।

* गावत हरिगुन गानप्रवीना—
[illegible]

क्षीरसिन्धु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्री निवास श्रुतिमाथा ॥

अर्थ—एक समय मुनि श्रेष्ठ नारद जी हाथ में उत्तम बीन बाजा लिये चतुराई साथ रामचन्द्र जी के गुण गाते हुए क्षीर समुद्र में पहुँचे, जहां वेदों के मस्तक रूप (अर्थात् सर्वोत्तम) लक्ष्मीधर भगवान् रहते थे ॥

चौ०—हर्षि मिले उठि रमानिकेता। बैठे आसन ऋषिहि समेता

बोले बिहँसि चराचरराया। बहुत दिनन कीन्ही मुनि दाया।

अर्थ—लक्ष्मीनिवास भगवान् उठकर प्रसन्नता से मिले और सिंहासन पर नारद समेत बैठे। फिर चल और अचल जीवों के स्वामी हँस कर कहने लगे कि हे मुनि जी! आप ने बहुत दिनों में कृपा की ॥

चौ०—कामचरित नारद सब भाखे। यद्यपि प्रथम बरजि शिव राखे ॥

अतिप्रचंड रघुपति की माया। जेहि न मोह अस को जग जाया॥

तू है अजर अमर, तुझे किसी का न डर, सब से परे तर,
तू है ईश्वर, सर्व विश्व का तू है अधार॥ तेरी० ॥
तू है अभेद, तू है, अछेद, तुझे गावैं वेद, तेरा मालक अमेद,
सुन बन्धु मात नहिं तेरी नार॥ तेरी० ॥
सर्व शक्तिमान, करुणानिधान, सब को हर आन,
तू ही देता दान, हर पल खुला तेरा भंडार॥तेरी० ॥
तू है सातों का आद सब तेरे गया, अपना हाला,
तेरे दर पै खड़ा, भरनो न जात लीला अपार॥ तेरी० ॥
[illegible]

अर्थ—यद्यपि शिव जी ने पहिले ही से रोक रक्खा था तौभी
कामदेव के चरित्रों का वर्णन कर ही दिया। रघुनाथ जी की माया बड़ी
संसार में ऐसा कौन उत्पन्न हुआ है कि जिसे उसने मोहित न किया हो (
सब को किया है) ॥

दो०–रूख वदन करि वचन मृदु, बोले श्री भगवान।
तुम्हरे सुमिरण ते मिटहिं, मोह मार मद मान ॥ १

अर्थ—श्री कौतुक नाथ जी चिहरे का रंग बदल कर मीठे वचनों से कहने
तुम्हारे भजन करते ही ममता, कामदेव का मद, और मान मिट जाते हैं॥

सूचना—इस वाक्य में श्लेष है सो ऐसा कि (१) मुनि जी ने सम
परमेश्वर ने कहा है कि हे नारद मुनि स्वतः तुम्हारे ही नाममात्र का स्मरण
से और प्राणियों के मोह काम मद मान आदि छूट जाते हैं क्योंकि तुम महात्म
(२) नारायण ने यह सुझाया कि "तुम्हरे सुमिरण ते" अर्थात् जब तुम और
करोगे तब तुम्हारा यह मोह मार मद मान छूटेगा अभी नहीं छूटा है (इसका
करण आगे होगा जहां प्रभु ने कहा है "जपहु जाइ शंकर शत नामा")

चौ०–सुन मुनि मोह होइ मन ताके। ज्ञान विराग हृदय नहिं जा
ब्रह्मचर्यव्रतरत मति धीरा। तुमहि कि करै मनोभव पी

अर्थ—हे मुनि सुनो ! जिस के हृदय में ज्ञान और वैराग्य नहीं है मोह
के मन में होता है (अर्थात् तुम्हारे मन में मोह नहीं है ऐसा नारद मुनि ने
लिया, परन्तु ईश्वर का सांकेतिक अर्थ यह था कि जिसे ज्ञान और विराग
उसी के मन में मोह होता है जैसे तुम्हें हुआ जो अहंकार के वश नहीं
मनोसा अपने ही मुँह से करते फिरते हो)। ब्रह्मचारी के मन में
बुद्धि से धीरजवान हो, क्या तुम्हें कामदेव सता सकता है ? (अर्थात् तुम्हें

हीं सता सक्ता) ऐसा अर्थ मुनि जी ने मान लिया। परमेश्वर का अभिप्राय यह था कि तुम्हें मनोभव पीरा करहि तब ब्रह्मचर्य व्रत रत मति धीरा होओगे (अर्थात् जभी तुम्हें कामदेव सतावेगा तब कहीं ब्रह्मचर्यव्रत में पक्के धीरजवान होओगे) अभी धीरज है ही नहीं और न कामदेव का अच्छा सपाटा लगा है।

चौ०—नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥
करुणानिधि मन दीख बिचारी। * उर अंकुरेउ गर्वतरु भारी॥

अर्थ—नारद जी अभिमान से कहने लगे कि हे भगवान्! सब आप ही की कृपा है। दयासागर प्रभु ने मन से विचार लिया कि इन के हृदय में भारी गर्व का अंकुर जमा है।

चौ०—बेगि सो मैं डारिहौं उपारी। प्रण हमार सेवकहितकारी॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवशि उपाय करब मैं सोई॥

अर्थ—उसे मैं तुरन्त ही उखाड़ डालूंगा "भक्तों का हित करना" यही मेरा प्रण है। जिसमें मुनि का भला हो और मेरा खेल हो, ऐसा ही उपाय मैं अवश्य करूँगा।

चौ०—तब नारद हरिपद शिर नाई। चले हृदय अहमिति अधिकाई॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी॥

अर्थ—तब नारद मुनि परमेश्वर के चरणों में शीस नवाय हृदय में यह विचार करते चले कि "वाहरे हम"। लक्ष्मीपति ने तब अपनी माया को चलाया सो उस की बेढब करतूति तो सुनो।

दो०—विरचेउ मग महँ नगर तेहि, शतयोजन विस्तार।
† श्री निवासपुर ते अधिक, रचना विविध प्रकार॥ १२९॥

---

* उर अंकुरेउ गर्वतरु भारी। (बेगि सो मैं डारिहौं उपारी)—
दो०—जो पादप अबहीं लख्यो, यह उखरै छिन माहिं।
जो यह बहु-समया बसै, मूली नालहि आहि॥
प्रथम अरम के छिद्र को, मूंद सकै इक चोंच।
भरत भरत भारी परै, फिरत पार द्रुम पोंच॥

† श्री निवासपुर ते अधिक, रचना विविध प्रकार—रामचन्द्रिका से—
नाराच छन्द—रची विरंचि वास सी निवास राजिता भली।
जहाँ सदा विमानने बने घने घनी थली॥
वितान स्वेत स्याम पीत लाल नीलका रँगे।
कनें धुर्रे दिवान के समान दिव्य से लगे॥

अर्थ—माया ने मार्ग में चार सौ कोस विस्तार का एक नगर रच दिया जिसकी भांति भांति की शोभा बैकुंठ से भी बढ़ कर थी।

चौ०—बसहिं नगर सुन्दर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनु धारी॥
तेहि पुर बसै शीलनिधि राजा। अगणित हय गय सेन समाजा॥

अर्थ—उस नगर में सुन्दर स्त्री पुरुष बस गये मानो बहुत सी रति और कामदेव ने रूप धारण कर लिया हो। उस नगर में शीलनिधि राजा रहता था जिसके अनगिन्ती हाथी, घोड़े और सेना थी॥

चौ०—शत सुरेश सम विभव विलासा। रूप तेज बल नीति निवासा॥
विश्वमोहिनी तासु कुमारी। श्री विमोह जेहि रूप निहारी॥

अर्थ—उन का ऐश्वर्य और सुख चैन सौ इन्द्र के समान था और वह रूपवान् प्रतापवान् बलवान् और नीतिमान् था। उस की लड़की का नाम विश्वमोहिनी था जिसके सौंदर्य को देख लक्ष्मी जी भी छक जावें।

चौ०—सो हरि माया सब गुण खानी। शोभा तासु कि जाइ बखानी॥
करै स्वयम्बर सो नृपबाला। आये तहँ अगणित महिपाला॥

अर्थ—वही सब गुणों से भरी हुई नारायण की माया थी भला! क्या उस की शोभा का वर्णन हो सकता है? वही राजकन्या स्वयम्बर कर रही थी, इसी से वहाँ बहुत से राजा जमा थे।

चौ०—मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। पुरबासिन सन पूछत भयऊ॥
सुनि सब चरित भूपगृह आये। करि पूजा नृप मुनि बैठाये॥

अर्थ—तमाशे के रसिया मुनि भी उसी नगर में जा पहुँचे और नगर के निवासियों से सब हाल पूछने लगे। सब हाल सुन कर राजा के घर आये, राजा ने उन की पूजा करके बिठाया।

दो०—आनि दिखाई नारदहि, भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुण दोष सब, एहि कर हृदय विचारि॥१३०॥

अर्थ—[illegible] दिखाई और कहा कि हे स्वामी! [illegible]

०—*देखि रूप मुनि बिरति बिसारी । बड़ी बार लगि रहे निहारी ॥
लच्छण तासु विलोकि भुलाने । हृदय हर्ष नहिं प्रकट बखाने ॥

अर्थ—रूप को देखते ही मुनि जी का वैराग्य भूल गया और बहुत समय तक न्या को देखते ही रह गये । उस के लक्षण देख कर भूल गये, हृदय में तो द था परन्तु स्पष्ट कुछ न बोले ।

०—जो इहि बरइ अमर सो होई । समरभूमि तेहि जीत न कोई ॥
सेवहिं सकल चराचर ताही । बरइ शीलनिधि कन्या जाही ॥

अर्थ—जो इस के साथ विवाह करे, वह अमर होना चाहिये और उसे संग्राम में ई जीत न सकेगा । जिसे सम्पूर्ण चल और अचल प्राणी सेवा करते हों, उसी शीलनिधि राजा की कन्या पति बनावेगी ॥

सूचना—नारद मुनि ने मायावश ऊपर के कहे हुए लक्षणों का यह आशय मझ लिया कि जो इस के साथ विवाह करेगा, वह अमर हो जावेगा और फिर ग्राम में उसे कोई जीत न सकेगा । सब चराचर जीव उस की सेवा करने लगेंगे, स के साथ शीलनिधि राजा की कन्या विवाह कर लेगी ॥

भाव यह कि नारदमुनि ने सब लक्षण उस कन्या ही में समझे कि जिन के रण उस का पति ऐसा अद्भुत प्रभावशाली हो जायगा । यथार्थ भाव तो यह था क ऐसे प्रभावशाली वर अर्थात् परमात्मा के साथ इस कन्या का विवाह होगा न कि सी साधारण मुनि, राजा आदि के साथ ॥

चौ०—लच्छण सब बिचारि उर राखे । कछुक बनाय भूप सन भाखे ॥
सुता सुलच्छणि कहि नृप पाहीं । नारद चले सोच मन माहीं ॥

अर्थ—इन लक्षणों को विचार कर (मुनि जी ने) मन ही में रख छोड़ा और थोड़े से लक्षण अपने मन ही से बना कर राजा से कह सुनाये । फिर राजा से यह कह कर कि तुम्हारी राजकुमारी के लक्षण अच्छे हैं, नारद जी बड़ी चिन्ता करते हुए चले ॥

---

* देखि रूप मुनि बिरति बिसारी—
दो०—मृगनयनी के नयन से, [illegible] काम की [illegible] ।
और भी— [illegible] मुनि, [illegible] ज्ञान वैराग ॥
सवैया—जो मन [illegible] ।
जो मन [illegible] ।
जो मन [illegible] ।
'[illegible]' जो मन [illegible] ॥

चौ०—करौं जाइ सोइ यतन विचारी । जेहि प्रकार मोहि वरइ कु[illegible]
जप तप कछु न होइ इहि काला । ‡हे विधि मिलै कवन विधि बा[illegible]

अर्थ—(मन में सोचते जाते थे कि) मैं जाकर विचार के साथ वही [illegible] करूंगा कि जिस से राजकुमारी मेरे साथ विवाह कर लेवै। इस समय ज[illegible] कुछ भी नहीं हो सक्ता, हे विधाता ! यह नवयौवना मुझे कैसे मिल जाय ?

दो०—इहि अवसर चाहिय परम, शोभा रूप विशाल ।
जो विलोकि रीझै कुअँरि, तब मेलै जयमाल ॥१३॥

अर्थ—इस समय तो बड़ी सुन्दरता और पूरा रूप चाहिये । जिसे देखते ही बाला रीझ जावे, तब तो जयमाला पहिरावे (भाव यह कि 'कन्या वरयते [illegible]' अर्थात् कन्या तो रूपवान् पति के साथ विवाह करना चाहती है) और यहां स्वयंवर हो रहा है ।

चौ०—हरि सन मांगौं सुन्दरताई । होइहि जात गहरु अति भाई
मोरे हित हरि सम नहिं कोऊ । इहि अवसर सहाय सो होऊ

अर्थ—जा कर भगवान् से सुन्दरता मांगूं परन्तु अरे ! भाई जाने में तो बड़ी दे[र] होगी । मेरी भलाई चाहने वाला भगवान् के सिवाय और कोई नहीं है वेही [illegible] इस समय पर सहायता करें ।

चौ०—बहु विधि विनय कीन्ह तेहि काला । प्रकटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला
प्रभु विलोकि मुनिनयन जुड़ाने । होइहि काज हिये हरषाने ।

अर्थ—उस समय भांति भांति से प्रार्थना की तो दयालु कौतुकी प्रभु दिख[लाई] पड़े । भगवान् को देखते [ही] मुनि जी के नेत्र ठंडे पड़े और वे मन में प्रसन्न हुए [कि] अब कार्य सिद्ध होगा ।

---

‡ हे विधि मिलै कवन विधि बाला – सुन्दर स्त्री के देखने ही लोगों का चित्त डांवाडोल हो जाता है, जैसा कहा है—

श्लोक—[illegible] ।
[illegible] ॥

अर्थात् [illegible] ([illegible]) देखा कौन होगा जिस का चित्त [illegible] न हो (भाव यह कि [illegible] के लिये [illegible] का [illegible] होता है ।)

ौ०—अति आरत कहि कथा सुनाई। करहु कृपा प्रभु होहु सहाई।
ापन रूप देहु प्रभु मोही। आन भांति नहिं पावउँ ओही।

अर्थ—बड़ी दीनता से सब हाल कह सुनाया और बोले-हे प्रभु! कृपा कीजिये ार सहायता दीजिये। हे स्वामी! आप मुझे अपना ही रूप दे दीजिये मैं उसे दूसरे पाय से न पा सकूंगा।

ौ०—जेहि विधि नाथ होइ हित मोरा। करौ सो वेगि दास मैं तोरा॥
निज मायाबल देखि विशाला। हिय हँसि बोले दीनदयाला॥

अर्थ—हे प्रभु! जिस उपाय से मेरी भलाई हो वही झटपट कीजिये मैं तो आप का दास हूं। अपनी माया का भारी प्रभाव देख दीनों पर दया करने वाले भगवान मन ही मन मुसकराकर बोले।

दो०—*जेहि विधि होइहि परमहित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, वचन न मृषा हमार॥ १३२॥

अर्थ—हे नारद जी! सुनो, जिस प्रकार से तुम्हारी पूरी भलाई होवे वही उपाय हम करेंगे दूसरा नहीं। हमारा कहना झूठ नहीं हो सक्ता (भाव यह कि हम तुम्हारी भलाई करेंगे और वह तो तुम्हें विवाह न करने देने ही से होगी नहीं तो ब्रह्मचर्य खंडित होकर तुम काम के चेरे समझे जाओगे। यह गूढ़ भाव नारद जी ने न समझा)।

चौ०—†कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनियोगी।
इहि विधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अन्तरहित प्रभु भयऊ॥

* जेहि विधि होइहि परमहित, नारद सुनहु तुम्हार। इत्यादि—

सवैया—सुचि भोजन है कहूँ नेकौ कहीं यह देखत है सबही गति सारैं।
यह भूलि न जानियो जी में कहीं तुम करैं हम काम सु कोउ न भारैं॥
'रसिकेश' कहौं कछु ऐसी करी तोहि में तिल हू न घटै न हजारैं।
हम वैसेहि हेत निहारैं सदा है हां हरि के घर होत विचारैं॥

† कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनियोगी॥ हितोपदेश—

श्लो०—अप्रियस्यापि पथ्यस्य परिणामः सुखावहः।
वक्ता श्रोता च यत्रास्ति रमन्ते तत्र संपदः॥

अर्थात् अप्रिय तथापि हितकारक उपाय का कहने सुनने वाला जहां होता है वहां पर परिणाम सुखदायक होता है और वहीं सम्पत्तियां रहती हैं॥

अर्थ—हे योगशील मुनि सुनिये ! व्याधि से पीड़ित रोगी मनुष्य खाने के लिये जो कुपथ्य माँगे तो वैद्य उसे नहीं देता । इसी प्रकार मैंने तुम्हारी भलाई विचारी है। इतना कह कर भगवान अन्तर्ध्यान हो गये ।

सारांश यह कि जैसे वैद्य रोगी को कुपथ नहीं देता इसी प्रकार मैं भी तुम्हें विवाह न करने दूंगा क्योंकि "ये सब रामभक्ति के बाधक हैं"

चौ०—मायाविवश भये मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरिगिरा निगूढ़ा॥
गवने तुरत तहां ऋषिराई। जहां स्वयम्वरभूमि बनाई॥

अर्थ—मुनि तो माया के मारे ऐसे मूर्ख हो रहे थे कि उन्हों ने भगवान के गूढ़ आशय को न समझा। मुनिवर जल्दी से वहीं जा पहुँचे जहां पर स्वयम्वर की भूमि बनी थी।

चौ०—निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा॥
मुनि मन हर्ष रूप अति मोरे। मोहि तजि आनहि वरिहि न भोरे॥

अर्थ—राजा लोग अपने अपने आसनों पर समाज समेत बन ठन कर बैठे थे। नारद के मन में इस बात से प्रसन्नता थी कि मुझ में बड़ी सुन्दरता है वह मुझे छोड़ भूल से भी दूसरे को न ब्याहेगी।

चौ०—मुनिहित कारण कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना॥
सो चरित्र लखि काहु न पावा। नारद जानि सबहि शिर नावा॥

अर्थ—दया के धाम भगवान ने मुनि के हित के लिये उन की ऐसी बुरी सूरत दी थी कि जिसका वर्णन नहीं हो सक्ता। यह भेद किसी को न समझ पड़ा, सब ने उन्हें नारद समझ कर प्रणाम किया।

दो०—रहे तहां दुइ रुद्रगण, ते जानहिं सब भेउ।
विप्रवेष देखत फिरहिं, परम कौतुकी तेउ॥ १३३॥

अर्थ—वहां पर महादेव जी के दो गण थे जो सब भेद जानते थे, वह भिखारी ब्राह्मण के रूप में सब चरित्र देखते फिरते थे।

ो०—करहिं कूट नारदहिं सुनाई । *नीक दीन्हि हरि सुन्दरताई ।
. रीझहि राजकुँवरि छवि देखी । इनहिं बरिहि हरि जानि विशेखी ॥

अर्थ—नारद को सुना सुना कर नकलें उड़ाते थे "हरि ने अच्छी सुन्दरता दी ।" (अन्तर्गत भाव यह था कि अच्छी हरि अर्थात् बंदर की स्वरूपता दी है । भाव : कि भगवान ने नारद को बंदर का सा बुरा चिहरा बना दिया था । वह केवल जकुमारी और रुद्र गणों को दिखता था और लोगों को तो नारद ही का वहरा दिखाई देता था)

इन की छवि देख राजपुत्री मोहित हो जावेगी और विशेष करके विष्णु ान इनके साथ विवाह कर लेगी (कूट यह था कि राजपुत्री इनकी मूरत देख क्या ीझेगी ? नहीं, वह तो इन्हें हरि जान विशेषी बरिहि अर्थात् बन्दर समझकर विशेष रलेगी)

चौ०—मुनिहि मोह मन हाथ पराये । हँसहिं शंभुगण अति सचुपाये ।
यदपि सुनहिं मुनि अटपट बानी । समझि न परै बुद्धिभ्रमसानी ॥

अर्थ—नारद मुनि मोह में फँसे थे, इसीहेतु उनका मन दूसरे के स्वाधीन था । महादेव के गण चुपचाप दिल्लगी कर रहे थे । यद्यपि मुनि जी उनकी अटपट बाणी सुनते थे, तोभी उसे समझते न थे, क्योंकि बुद्धि में भ्रम हो गया था ।

चौ०—काहु न लखा सो चरित विशेखा । सो स्वरूप नृपकन्या देखा ॥
मर्कटबदन भयंकर देही । देखत हृदय क्रोध भा तेही ॥

अर्थ—इस अद्भुत चरित्र को किसी ने न जाना जो स्वरूप राजकुमारी को दिखाई पड़ा । (वो यों कि) बंदर का सा मुँह और डरावना शरीर था, जिन्हें देखते ही कन्या के हृदय में क्रोध आया ।

---

* नीक दीन्हि हरि सुन्दरताई—'हरि' शब्द का अर्थ (१) विष्णु जैसा हरि ने नीक सुन्दरताई दीन्ह (२) बन्दर जैसा (अ) नीक हरि सुन्दरताई अर्थात् बंदर की सुन्दरता दीन्ह (ब) यह प्रभु सुन सुग्रीव हरीसा (देखो किष्किन्धा कांड)। (३) घोड़ा, जैसे 'हरि' हित सहित राम जब जोहे । रमासमेत रमापति मोहे । यहां पर हरि शब्द का अर्थ घोड़ा है (देखो बालकांड की [illegible] टीका)। (४) सिंह, जैसे इसी कांड के [illegible] पृष्ठ में [illegible] । तिन के वचन [illegible] हरि [illegible] । (५) हरण करने वाला, जैसा ([illegible] कांड के प्रारंभीय श्लोक में) रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिम् (६) हरण करना यथा--[illegible] हरी [illegible] (किष्किन्धा कांड)। इत्यादि

दो०—सखी संग लै कुँवरि तब, चलि जनु राजमराल ।
　　देखत फिरै महीप सब, करसरोज जयमाल ॥ १३४ ॥

अर्थ—तब राजकुमारी अपने कमलस्वरूपी हाथों में जयमाल लिये हु[illegible] सखियों के साथ ऐसी चाल से सब राजाओं को देखती फिरती थी मानो राजहंसि[illegible] होवे ॥

चौ०—†जेहि दिशि बैठे नारद फूली। सो दिशि तेहि न विलोकी भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दशा हरगण मुसकाहीं॥

अर्थ—जिस ओर नारद मुनि रूप के घमंड में अकड़े बैठे थे, उस ओर कन्[illegible] ने भूल कर भी न देखा। मुनि जो बारंबार उचकते और तड़पड़ाते थे, उनकी [illegible] दशा देखकर रुद्रगण मुसकरा रहे थे ।

चौ०—धरि नृपतनु तहँ गयउ कृपाला। कुँवरि हर्षि मेली जयमाला॥
दुलहिन लै गये लक्ष्मिनिवासा। नृपसमाज सब भयउ निरासा॥

अर्थ—दयालु परमेश्वर राजा का रूप धारण कर वहां आये तो राजकुमारी ने प्रसन्नता पूर्वक उनके गले में जयमाल डाल दी (इस प्रकार जब) लक्ष्मीपति भगवान दुलहिन को ले गये, तब सभा के सब राजाओं की आशा टूट गई।

चौ०—मुनि अति विकल मोह मति नाठी। मणि गिर गई छूटि जनु गांठी॥
तब हरगण बोले मुसकाई। निज मुख मुकुर विलोकहु जाई॥

अर्थ—मुनि जी की मति मोह के कारण नष्ट हो गई, इसहेतु वे ऐसे अधिक व्याकुल हुए कि मानो गांठ में बँधा हुआ रत्न छूट कर खो गया हो। तब रुद्रगण मुसका-कर कहने लगे कि तुम जाकर अपना मुख दर्पण में तो देखो ।

चौ०—अस कहि दोउ भागे भय भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी॥
वेष विलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिनहिं शाप दीन्हा अति गाढ़ा॥

---

† जेहि दिशि बैठे नारद फूली—[illegible]

भाव यह कि जैसा बायन मनुष्य दूसरे को देता है उसके बदले में वैसा ही पाता है। तुमने मुझे धोखा दे कुरूप कर स्त्री विरह दुःख आदि दिया है वैसाही तुम्हें भोगना पड़ेगा)। मेरा यह श्राप है कि जिस मनुष्य रूप को धारण करके तुमने मुझे धोखा दिया है वही रूप तुम्हें धारण करना पड़ेगा ।

चौ०—कपिआकृति तुम कीन्ह हमारी । करिहैं कीश सहाय तुम्हारी ॥
मम अपकार कीन्ह अति भारी । नारि विरह तुम होउ दुखारी ॥

अर्थ—जो तुमने मुझे बन्दर का रूप दिया सोई बन्दर तुम्हारी सहायता करेंगे। तुमने मुझ को बहुत सी हानि पहुँचाई (अर्थात् मुझे स्त्रीवियोग दुःख पहुँचाया) इस हेतु तुम भी स्त्री के वियोग का दुःख सहोगे ।

दो०—शाप शीस धरि हर्षि हिय, प्रभु सुर कारज कीन्ह ।
निज माया की प्रबलता, करषि कृपानिधि लीन्ह ॥ १३७ ॥

अर्थ—परमेश्वर ने हृदय में प्रसन्न हो श्राप को स्वीकार कर देवताओं का कार्य सिद्धि किया (अर्थात् महाबली दैत्यों से छुड़ाकर देवताओं को स्वर्ग का राज्य दे उनके दुःख दूर करने का उपाय इसी श्राप से सिद्ध समझ उसे प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया)। फिर दयासागर भगवान ने अपनी माया के प्रभाव को खींच लिया ।

चौ०—जब हरिमाया दूर निवारी । नहिं तहँ रमा न राजकुमारी ॥
*तब मुनि अति सभीत हरिचरणा । गहे पाहि प्रणतारति हरणा॥

* तब मुनि अति सभीत हरिचरणा । गहे पाहि प्रणतारति हरणा—माया के दूर होते ही नारद मुनि को स्मरण हो आया कि मेरा मन कहां तो पहिले परमेश्वर में लीन होगया था। फिर राजकुमारी पर आसक्त हो मोह में फंस गया यहाँ तक कि क्रोधवश हो परमेश्वर को श्राप ही दे डाला, इस हेतु गिड़गिड़ा कर यों विनती करने लगे कि—
संगीत रत्न प्रकाश, द्वितीय भाग से—

ग़ज़ल—हुई है हालत बुरी हमारी, बचाओ स्वामिन् बचाओ स्वामिन् ।
कुकर्म हमने किये हैं भारी, बचाओ स्वामिन् बचाओ स्वामिन् ॥
न ध्यान माया का हमको आया, विषयों में ही अपना दिल फँसाया ।
जगत में फंस कर तुझे भुलाया, किया जो हमने वह आगे आया ।
करें हैं अब पश्चात्ताप भारी, बचाओ स्वामिन् बचाओ स्वामिन् ॥
किये पै अपने नज़र जो डालें, तो शर्म मारी से मुँह छिपालें ।
सदा से उलटी चली हैं चालें, बताओ कैसे यह बाज़ी पालें ॥
है जन्म की जीती बाज़ी हारी । बचाओ स्वामिन् बचाओ स्वामिन् ॥
तुम्हारा ही हमको आसरा है, तुम्हारे बिन देखा कौन सा है ।
जो दुश्मनों से हमें बचावे, यही हमारी प्रार्थना है ।
हैं पांच शत्रु हमारे भारी । बचाओ स्वामिन् बचाओ स्वामिन् ॥

दो०—असुर सुरा विष शंकरहि, आप रमा मणि चारु ।
स्वारथ साधक कुटिल तुम, सदा कपट व्यौहार ॥ १३६ ॥

अर्थ—राक्षसों को मदिरा, शिव जी को विष देकर आपने लक्ष्मी और कौस्तुभ मणि ले लिया । तुम अपना मतलब साधने वाले छलिया हो, सदा कपट के काम किया करते हो ॥

चौ०—*परम स्वतंत्र न शिर पर कोई । भावै मनहिं करहु तुम सोई ॥
भलेहि मन्द मंदेहि भल करहू । विस्मय हर्ष न हिय कछु धरहू ॥

अर्थ—तुम बहुत ही स्वतंत्र हो तुम पर अधिकार रखने वाला कोई दूसरा नहीं, जो मन में आता है वही करते हो । भले को बुरा, बुरे को भला कर देते हो और बात की बुराई भलाई कुछ हृदय में नहीं विचारते ।

चौ०—डहकि डहकि परचेहु सब काहू । अति अशंक मन सदा उछाहू ॥
कर्म शुभाशुभ तुमहि न बाधा । अब लगि तुमहिं न काहु साधा ॥

शब्दार्थ—डहकि (डहकना=ठगना)=ठग करके । परचेहु=परीक्षा ली । साधा (साधना=ठीकठाक करना)=ठीक ठाक किया ।

अर्थ—तुमने ठगठग कर सब की जांच कर डाली, बड़े निडर हो मन में बड़ी उमंग भरे रहते हो । भले बुरे कर्मों का तुम्हें दुःख होता ही नहीं और अभी तक किसी ने तुम्हें ठीक ठीक नहीं किया ॥

चौ०—भले भवन अब बायन दीन्हा । पावहुगे फल आपन कीन्हा ॥
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा । सोइ तनु धरहु शाप मम येहा ॥

शब्दार्थ—बायन (सं० वायन)=दान किम्वा व्यवहार की रीति पर आत्मीय अथवा सम्बन्धियों को जो मिष्टान्न दिया जाता है ।

अर्थ—तुमने अब अच्छे घर में बायन दिया है सो अपने किये का फल पाओगे

* परम स्वतंत्र न शिर पर कोई—यद्यपि नारद जी ने ये वचन माया के वश [illegible] कहे थे तो भी ये यथार्थ ही निकल पड़े । जैसा कि कुमार संभव के दूसरे सर्ग में कहा है

श्लोक—[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible]

अर्थ-परमेश्वर ने नारद मुनि को कई प्रकार से समाधान किया और फिर अन्तर्ध्यान हो गये। तब नारद मुनि रामचन्द्र जी के गुणानुवाद गाते हुए सत्य-लोक को सिधारे।

चौ०-हरगण मुनिहि जात पथ देखी। विगत मोह मन हर्ष विशेखी॥
अतिसभीत नारद पहँ आये। गहि पद आरत वचन सुनाये॥

अर्थ-शिव जी के गणों ने नारद मुनि को मोह रहित अति प्रसन्न मन से मार्ग में जाते हुए देखा। बहुत ही डरते २ उन के पास आये और उन के चरण छू कर दीन वचन बोले।

चौ०-हरगण हम न विप्र मुनिराया। बड़ अपराध कीन्ह फल पाया॥
शाप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीनदयाला॥

अर्थ-हे मुनीश! हम तो महादेव जी के गण हैं कुछ ब्राह्मण नहीं हैं जो भारी दोष हम से हुआ उसका फल मिला (अर्थात् जो आप की हँसी की उसी से आप ने हमें शाप दिया)। हे दयालु! अब आप शाप से उद्धार कीजिये (यह सुन) दीनों पर दया करने वाले नारद मुनि बोले।

चौ०-निशिचर जाइ होउ तुम दोऊ। वैभव विपुल तेज बल होऊ।
भुजबल विश्व जितब तुम जहिया। धरिहैं विष्णु मनुज तनु तहिया।

अर्थ-तुम दोनों जाकर राक्षस तो होओहोगे परन्तु तुम्हारा ऐश्वर्य, प्रताप और बल बहुत होगा। जब तुम अपनी भुजाओं के बल से संसार को जीत लोगे तब परमेश्वर मनुष्यरूप धारण करेंगे।

चौ०-समर मरण हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुक्त न पुनि संसारा॥
चले युगल मुनिपद शिर नाई। भये निशाचर कालहि पाई॥

अर्थ-तब तुम लड़ाई में परमेश्वर के हाथ से मर कर मुक्त होओगे और फिर संसार से छूट जाओगे। दोनों मुनि जी के चरणों में शीस नवा के चले गये, वे थोड़े ही समय में राक्षस हुए।

दो०-एक कल्प इहि हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज अवतार।
सुररंजन सज्जनसुखद, हरि भंजनभुविभार॥१३९॥

अर्थ-एक कल्प में देवताओं को सुख देने वाले, सत्पुरुषों को आनन्द देने वाले और पृथ्वी का भार उतारने वाले प्रभु हरि ने इस कारण से मनुष्य अवतार धारण किया।

अर्थ—जब भगवान ने अपनी माया को दूर हटा दिया तब वहां न तो लक्ष्मी और न शीलनिधि की कन्या रही । तब मुनि ने बहुत ही भयभीत हो प्रभु के चरण गहे और कहा हे शरणागत के दुःख दूर करने वाले परमेश्वर ! मेरी रक्षा कीजिये ?

चौ०—मृषा होउ मम श्राप कृपाला । मम इच्छा कह दीनदयाला ॥
मैं दुर्वचन कहे बहुतेरे । कह मुनि पाप मिटहिं किमि मेरे ॥

अर्थ—हे कृपालु ! मेरा श्राप झूठ हो जावे, सुनते ही दीनानाथ प्रभु बोले, नहीं यह तो मेरी ही इच्छा है। मुनि जी बोले मैं ने बहुत से कुवचन आप से कहे सो मेरे ये पाप कैसे मिटेंगे ।

चौ०—जपहु जाइ शंकरशत नामा । होइहि हृदय तुरत विश्रामा ॥
कोउ नहिं शिव समान प्रिय मोरे । अस परतीति तजहु जनि भोरे ॥

अर्थ—(विष्णु जी कहने लगे कि) तुम जाकर शंकर जी के शत नाम जपो तब तुरंत तुम्हारे हृदय को शान्ति मिलेगी । शंकर जी के समान मुझे कोई भी प्यारा नहीं है ऐसा विश्वास तुम भूल कर के भी न त्यागना ॥

चौ०—जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी । सो न पाव मुनि भक्ति हमारी ॥
अस उर धरि महि विचरहु जाई । अब न तुमहिं माया नियराई ॥

अर्थ—हे मुनि जी ! जिस पर महादेव जी कृपा नहीं करते, उसे मेरी भक्ति नहीं मिलती । ऐसा मन में विचार पृथ्वी पर भ्रमण किया करो । अब माया तुम्हारे पास तक न आवेगी ।

दो०—बहु विधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु, तब भे अन्तर्ध्यान ।
सत्यलोक नारद चले, करत *रामगुण गान ॥ १३८ ॥

* करत राम गुण गान—
ग़ज़ल—तेरा नूर सब में समाया हुआ है । कुल आलम तेरा ही बनाया हुआ है ॥
रमा है तू हर गुल में मानिन्द बू के । जहान में तुही जगमगाया हुआ है ॥
[illegible] है दुनिया में जो चीज़ [illegible] । तेरे से ही [illegible] पाया हुआ है ॥
कहीं [illegible] देखे तू सब के । नहीं छिपता तुझ से छिपाया हुआ है ॥
[illegible] तू ही देता है सब को । [illegible] सिर पे [illegible] हुआ है ॥
[illegible] । [illegible] में सब [illegible] बनाया हुआ है ॥
तू है सब का मालिक [illegible] । [illegible] तेरा ही [illegible] हुआ है ॥
[illegible] है [illegible] है मैं । [illegible] तुझ से [illegible] हुआ है ॥
[illegible] । [illegible] हुआ है ॥

चौ०—इहि विधि जन्म कर्म हरि केरे। सुन्दर सुखद विचित्र घनेरे॥
कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना विधि करहीं॥

अर्थ—इस प्रकार नारायण के सुन्दर सुखदाई और अद्भुत अनेकन जन्म और लीलाएँ हुआ करती हैं। प्रत्येक कल्प में परमेश्वर अवतार लेते हैं और भाँति भाँति की उत्तम लीला करते हैं।

चौ०—तब तब कथा मुनीशन्ह गाई। परम विचित्र प्रबन्ध बनाई॥
विविध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आश्चर्य सयाने॥

अर्थ—तब ही तब मुनि लोगों ने बहुत ही अद्भुत प्रबन्ध रचकर कथा वर्णन की है। उस में भांति २ के उपमा रहित प्रसंगों का वर्णन किया गया है जिन्हें सुनकर चतुर मनुष्य कुछ अचरज नहीं मानते।

चौ०—हरि अनंत हरिकथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहु विधि सब सन्ता॥
रामचन्द्र के चरित सुहाये। कल्प कोटि लगि जाहिं न गाये॥

अर्थ—परमेश्वर का पारावार नहीं और न उनकी कथाओं का अन्त है उन्हें सब संत लोग नाना प्रकार से कहते सुनते हैं। रघुनाथ जी के मनभावने चरित्रों का वर्णन करोड़ों कल्प तक करने से भी पूरा नहीं होगा।

चौ०—यह प्रसंग मैं कहा भवानी। हरिमाया मोहहिं मुनिज्ञानी॥
प्रभु कौतुकी प्रणतहितकारी। सेवत सुलभ सकल दुखहारी॥

अर्थ—हे पार्वती! मैं ने यह प्रसंग वर्णन किया कि परमेश्वर की माया से ज्ञानवान मुनि भी मोह में पड़ जाते हैं। परमेश्वर तो कौतुकी हैं परन्तु शरणागत का हित करने वाले हैं। (अर्थात् तमाशा देखने के ढंग से वे नारद की नाईं मुनियों को मोह में डालते हैं, परन्तु केवल उन का अहंकार आदि दोष मिटा कर भक्ति पुष्ट करने के हेतु ही ऐसा करते हैं) वे सेवा करने से सहज ही में मिल जाते हैं और सब दुःखों के दूर करने वाले हैं।

सो०—*सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहि न मोह माया प्रबल।
अस विचारि मन माहि, भजिय महामायापतिहि ॥ १४० ॥

अर्थ—देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी ऐसा नहीं है कि जिसे बलवती माया मोह में न डाले (अर्थात् वह सबही को मोह में डाल सक्ती है)। मन में ऐसा विचार कर उस प्रबल माया के स्वामी परमेश्वर का भजन करना चाहिये।

चौ०—अपर हेतु सुनु शैलकुमारी। कहउँ विचित्र कथा विस्तारी॥
जेहि कारण अज अगुण अनूपा। ब्रह्म भयउ कोशलपुरभूपा॥

अर्थ-(महादेव जी बोले) हे गिरिकन्यके! वह दूसरा कारण सुनो, मैं उस अद्भुत कथा को विस्तार सहित कहता हूं। जिस निमित्त से जन्म रहित, गुणरहित, और उपमा रहित ब्रह्म, कोशलपुर के राजा हुए।

चौ०—जो प्रभु विपिन फिरत तुम देखा। बंधु समेत किये मुनि बेखा॥
†जासु चरित अवलोकि भवानी। सती शरीर रहिउ बौरानी।

अर्थ-जिन परमेश्वर को तुमने लक्ष्मण जी के साथ मुनियों का भेष धारण किये हुए वन में विचरते देखा था। हे पार्वती! जिनकी लीला को देख तुम सतीरूप में बावली सी हो गईं थीं।

---

* सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहि न मोह माया प्रबल। इत्यादि—

लावनी—हरि माया भठियारी ने क्या अजब सराय बनाई है।
जिसमें आकर बसते हैं सब जग की मति बौराई है॥
दोके मुसाफ़िर सब ने जिस में घर की मेव जमाई है।
भाँग पड़ी कूए में जिसने पिया नशा सौदाई है॥
सौदा बना [illegible] का लड्डू देखत मति ललचाई है।
माया जिस में यह पशुमाया पड़ी भी अजब मिठाई है॥
एक एक घर छोड़ रहे हैं निज निज ठौर लड़ाई है।
जो बचे सो नहीं सोचते इन की सदा [illegible] है॥
अजब भँवर है जिस में पड़ कर सब दुनियाँ चकराई है।
'हरीचन्द' भगवान भजन बिन इस से नहीं रिहाई है॥

† जासु चरित अवलोकि भवानी। सती शरीर रहिहु बौरानी।

सवैया—हा जो हम बारंबार कहैं तुम मानो न मोह की फाँस कड़ी है।
[illegible]
[illegible]
[illegible]

चौ०--अजहुँ न छाया मिटत तुम्हारी। तासु चरित सुन भ्रमरुजहा[illegible]
लीला कीन्हि जो तेहि अवतारा। सो सब कहिहउँ मति अनुसा[illegible]

अर्थ--अब भी उस की लहर तुम्हारे चित्त से नहीं गई, इसहेतु उनके वे [illegible] सुनो जो भ्रमरूपी रोग के नाश करने वाले हैं। उन्हों ने उस अवतार में जो [illegible] किये उन सब का वर्णन अपनी बुद्धि के अनुसार करूंगा।

चौ०--भरद्वाज सुनि शंकरबानी। *सकुचि सप्रेम उमा मुसकानी[illegible]
लगे बहुरि बरनै वृषकेतू। सो अवतार भयउ जेहि हेतू[illegible]

अर्थ--(याज्ञवल्क्य जी कहते हैं) हे भरद्वाज ! महादेव जी के वचनों को सुन[illegible] पार्वती जी पहिले तो संकोच में पड़ीं, फिर प्रेम पूरित हो गईं। तत्पश्चात् मुस[illegible] लगीं, फिर महादेव जी वही कथा वर्णन करने लगे कि जिसके कारण अ[illegible] हुआ था॥

दो०--सो मैं तुमसन कहौं सब, सुन मुनीश मन लाय।
रामकथा कलिमलहरनि, मंगल करनि सुहाय॥ १४१[illegible]

अर्थ--हे मुनीश्वर ! वह सब मैं तुम से कहता हूं, मन लगा कर सुनिये, राम[illegible] जी की कथा कलियुग के पापों की नाश करने वाली, शुभ देने वाली और सुहा[illegible] है॥

(२५ स्वायम्भूमनु और शतरूपा की कथा)

चौ०--†स्वायम्भूमनु अरु शतरूपा। जिन ते भइ नरसृष्टि अनूपा॥
दम्पति धर्म आचरण नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिनकी लीका॥

* सकुचि सप्रेम उमा मुसकानी--संकोच इस बात का कि [illegible] "अजहुँ न छाया मिटत तुम्हारी" और प्रेम तथा आनन्द यह सुन कर हुआ कि [illegible] चरित सुन भ्रमरुज हारी' भाव यह कि अब रामचरित सुनने को मिलेगा।

† स्वायम्भूमनु अरु शतरूपा--स्वयम्भू [illegible] [illegible]

अर्थ-स्वायम्भू मनु अपनी स्त्री शतरूपा सहित हो गये हैं, जिन से मनुष्यों की उपमा रहित सृष्टि हुई है। इन दोनों स्त्री पुरुषों के धर्म निर्वाह तथा आचरण उत्तम थे कि वेद भी अभी तक उनकी बड़ाई करते हैं।

चौ०-*नृप उत्तानपाद सुत जासू। ध्रुव हरिभक्त भयेउ सुत तासू॥
लघुसुत नाम प्रियव्रत जाही। वेद पुराण प्रशंसत ताही॥

अर्थ-उन का लड़का उत्तानपाद नाम राजा हुआ, जिस का पुत्र ध्रुव ईश्वरभक्त हुआ। (स्वायम्भू मनु के) छोटे लड़के का नाम प्रियव्रत था जिस की बड़ाई वेद और पुराणों में गाई है।

चौ०-देवहुती पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम की प्रियनारी॥
आदि देव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहि †कपिल कृपाला॥

अर्थ-मनु जी की पुत्री का नाम देवहूती था जो कर्दम मुनि की बड़ी प्यारी स्त्री थी। जिन के गर्भ से आदि-देव दीनदयाल भगवान ने कपिलदेव का रूप धारण कर जन्म लिया।

चौ०-सांख्य शास्त्र जिन प्रकट बखाना। तत्त्व विचार निपुण भगवाना॥
तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब विधि प्रतिपाला॥

अर्थ—इन महात्मा कपिल देव ने जो तत्त्वज्ञान में बड़े प्रवीण थे, सांख्यशास्त्र का स्पष्ट रूप से वर्णन किया है। उन मनुजी ने बहुत समय तक राज्य किया, जिस में उन्हों ने सब प्रकार से परमेश्वर की आज्ञा का पालन किया।

---

* नृप उत्तानपाद सुत जासू – उत्तानपाद और प्रियव्रत ये दोनों स्वायम्भू मनु के पुत्र थे। ये दोनों बड़े प्रतापी और धर्मात्मा हो गये हैं. उत्तानपाद से ध्रुव की उत्पत्ति हुई, जिन की कथा प्रसिद्ध लिख चुके हैं. छोटे पुत्र प्रियव्रत ऐसे प्रतापी हुए हैं कि जिन के रथ के पहियों से सात समुद्र हो गये और इन्हीं के वंश में ऋषभ देव हुए हैं.

† कपिल – कर्दम प्रजापति और देवहूती से इनकी उत्पत्ति हुई थी। इन्हें वासुदेव भी कहते हैं और इन की गणना सिद्ध देवताओं में है ये सांख्य शास्त्र के निर्माण कर्त्ता हैं और इन्हों ने अपनी माता देवहूती को ब्रह्मज्ञान का ज्ञान बताया था. सगर के ६० हजार पुत्र इन्हीं की क्रोध दृष्टि से भस्म हो गये थे।

चौ०—करहिं अहार शाक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सचि
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। वारि अधार मूलफल

अर्थ—पत्ते फल और मूल खाकर रहते थे और सच्चिदानंद ब्रह्म
करते थे। फिर नारायण निमित्त तपस्या करने लगे जिसमें कंद और फ
पानी ही के आधार से रहने लगे।

चौ०—उर अभिलाष निरंतर होई। देखिय नयन परम प्रभु
अगुण अखंड अनंत अनादी। जेहि चिन्तहिं

अर्थ—हृदय में लगातार यही इच्छा रहती थी कि उस परमात्मा को
से देखें। गुणरहित, खंडरहित, अन्त रहित और आदिरहित जिस प्रभु
वेत्ता लोग ध्यान किया करते हैं।

चौ०—नेति नेति जेहि वेद निरूपा। चिदानंद निरुपाधि अ
शम्भु विरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंश ते ना

अर्थ—जिस के विषय में वेदों ने केवल नेति नेति कह कर निरूप
(अर्थात् वह ब्रह्म क्या है जिसके विषय में अनेक पदार्थों को ये ब्रह्म नहीं
नहीं है, ऐसा कह २ कर अंत में सिद्ध किया है) जो चैतन्य रूप और
उपाधिरहित तथा उपमारहित है और जिस भगवान के अंशमात्र से अनेक
ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न होते रहते हैं।

चौ०—ऐसेउ प्रभु सेवक वश अहई। भक्तहेतु लीला तनु
जो यह वचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाष

अर्थ—"ऐसे (शक्तिवाला) परमेश्वर भी अपने भक्तों के वश में रहते
[illegible] ही शरीर धारण कर लेते हैं। यदि यह वचन वेद ने कहा

। शोभा देते थे कि मानो ज्ञान और भक्ति ने शरीर धारण कर लिया हो
न के स्थान में मनु जी और भक्ति के स्थान में शतरूपा थीं) ॥

०—पहुँचे जाइ *धेनुमति तीरा । हरषि नहाने निर्मल नीरा ।
आये मिलन सिद्ध मुनि ज्ञानी । धर्मधुरंधर नृपऋषि जानी ॥

अर्थ—जब गोमती के किनारे जा पहुंचे तब उस के स्वच्छ जल में आनन्द से
न करने लगे । ज्ञानी सिद्ध और मुनिगण उन्हें धर्म्मधुरीण राजऋषि जान
मिलने को आये ।

चौ०—जहँ जहँ तीरथ रहे सुहाये । मुनिन सकल सादर करवाये ।
कृश शरीर मुनि पट परिधाना । सत समाज नित सुनहिं पुराना ॥

अर्थ—जिन २ स्थानों में सुहावने तीर्थस्थान थे, मुनियों ने उन्हें वहीं २ दर्शन
ाये । उनकी देह दूबरी होगई थी और वे मुनियों के चीर (अर्थात् वल्कल) धारण
ये थे तथा सज्जनों की मंडली में प्रतिदिन पुराण सुना करते थे ।

दो०—द्वादस अच्छर मन्त्र वर, जपहिं सहित अनुराग ।
‡ वासुदेवपदपंकरुह, दम्पतिमन अति लाग ॥ १४३ ॥

अर्थ—दोनों स्त्री पुरुष श्रेष्ठ बारह अक्षर का मंत्र बड़े प्रेम से जपा करते थे
(अर्थात् ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय) सो वासुदेव भगवान के कमलस्वरूपी
चरणों में उन दोनों का मन लग गया ।

---

* धेनुमती=गोमती नदी

देखी महिमा नैमिषार की जिन के द्वारे पंच प्रयाग ।
चक्रतीर्थ में जो डुबकी लेय ताके सकल पाप कटि जायं ॥
दहिने ओरी हैं भैरों जी ऊपर धर्मध्वजा फहराय ।
शौनकादि ऋषि करी तपस्या तीरे बही गोमती जाय ॥

‡ वासुदेवपद पंकरुह—

श्लोक—सर्वं वसति वै यस्मिन् सर्वेस्मिन्वसते यतः ।
तस्माद्वासुदेवं च योगिनस्तत्वदर्शिनः ॥

अर्थात् जिस में निश्चय करके सब प्राणियों का निवास है और जो सब के
भीतर बस रहा है उसी को तत्त्व जानने वाले मुनि 'वासुदेव' कहते हैं ॥

चौ०-करहिं अहार शाक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंद[illegible]
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूलफल त्या[illegible]

अर्थ-पत्ते फल और मूल खाकर रहते थे और सच्चिदानंद ब्रह्म का [illegible] करते थे। फिर नारायण निमित्त तपस्या करने लगे जिसमें कंद और फल भी [illegible] पानी ही के आधार से रहने लगे।

चौ०-उर अभिलाष निरंतर होई। देखिय नयन परम प्रभु सो[illegible]
अगुण अखंड अनंत अनादी। जेहि चिन्तहिं परमारथवादी[illegible]

अर्थ-हृदय में लगातार यही इच्छा रहती थी कि उस परमात्मा को आँखें से देखें। गुणरहित, खंडरहित, अन्त रहित और आदिरहित जिस प्रभु का [illegible] वेत्ता लोग ध्यान किया करते हैं।

चौ०-नेति नेति जेहि वेद निरूपा। चिदानंद निरुपाधि अनूपा[illegible]
*शम्भु विरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंश ते नाना[illegible]

अर्थ-जिस के विषय में वेदों ने केवल नेति नेति कह कर निर्णय कि[illegible] (अर्थात् वह ब्रह्म क्या है जिसके विषय में अनेक पदार्थों को ये ब्रह्म नहीं है, ये नहीं है, ऐसा कह २ कर अंत में सिद्ध किया है) जो चैतन्य रूप और आनन्दम[illegible] उपाधिरहित तथा उपमारहित है और जिस भगवान के अंशमात्र से अनेक म[illegible] ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न होते रहते हैं।

चौ०-ऐसेउ प्रभु सेवक वश अहई। भक्तहेतु लीला तनु गहई[illegible]
जो यह वचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा[illegible]

अर्थ—"ऐसे (शक्तिशाली) परमेश्वर भी अपने भक्तों के वश में रहते हैं" [illegible] उन्हीं के हेतु कोई भी शरीर धारण कर लेते हैं। यदि यह कथन वेद ने सत्य [illegible] है तो हमारी इच्छा भी अवश्य पूरी होवेगी।

दो०-इहि विधि बीते वर्ष षट, सहस बारि आहार।
संबत सप्त सहस्र पुनि, रहे समीर अधार ॥ १४४ ॥

अर्थ-इस प्रकार छः हजार वर्ष पानी पी २ कर बिताये और सात हजार [illegible] तक केवल हवा के आधार से रहे।

* [illegible]

ौ०—वर्ष सहस दश त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एकपद दोऊ॥
विधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा॥

अर्थ—दश हज़ार वर्ष तक वायु का आधार भी छोड़ कर दोनों एक एक पांव
। खड़े रहे। ब्रह्मा विष्णु और महादेव इस बड़ी भारी तपस्या को देख मनु जी के
ास कई बार आये।

चौ०—*माँगहु वर बहु भाँति लुभाये। परम धीर नहिं चलहिं चलाये।
अस्थिमात्र होइ रहे शरीरा। तदपि मनाक मनहिं नहिं पीरा॥

शब्दार्थ—मनाक (मनाक्)=स्वल्प, थोड़ी ही।

अर्थ—अनेक प्रकार से लोभ दिया कि वर माँगो, परन्तु वे बड़े धीरजवान थे
उन के डिगाने से न डिगे। दोनों की देह में केवल हड्डियां ही रह गईं थीं (अर्थात्
रक्त मांस सब सूख गया था) तौ भी उन के मन में थोड़ा भी दुःख न था।

चौ०—प्रभु सर्वज्ञ दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी।
माँग माँग वर भइ नभ बानी। परम गँभीर कृपामृतसानी॥

अर्थ—सब ही कुछ जानने वाले परमेश्वर ने उन्हें अपना दास जाना, कारण
उन तपस्वी राजा रानी की अनन्य भक्ति थी (अर्थात् इन्हों ने सब कुछ त्याग अपने
चित्त को सच्चिदानंद प्रभु ही में लगा रक्खा था)। बहुत ही गंभीर स्वर की कृपारूपी
अमृत से भरी आकाश वाणी हुई कि वरदान माँगो! माँगो!

चौ०—मृतकजिआवनि गिरा सुहाई। श्रवणरंध्र होइ उर जब आई॥
हृष्ट पुष्ट तन भये सुहाये। मानहुँ अबहिं भवन ते आये॥

अर्थ—वह सुहावनी वाणी जो मरे को भी जिलाने वाली थी जब कानों के
छिद्रोंद्वारा हृदय में पहुंची। तो उनके शरीर ऐसे मोटे ताज़े हो गये कि मानो अपने
राजभवन से अभी आये हों॥

---

* माँगहु वर बहु भाँति लुभाये। परम धीर नहिं चलहिं चलाये—इन की दृढ़ निष्ठा सियराम रूप ही में थी, जैसा तुलसीदास जी ने कहा है:—

दो०—(१) स्वारथ परमारथ सुलभ, सकल एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता, उचित न तुलसी तोर॥
(२) स्वारथ सीताराम है, परमारथ सियराम।
तुलसी तेरो दूसरे, द्वार कहा है काम॥

दो०—श्रवणसुधासम वचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात
बोले मनु करि दण्डवत, प्रेम न हृदय समात ॥ १४५॥

अर्थ—कानों की अमृत के समान वाणी सुनते ही मनु जी प्रेम के मारे रोमांचि हो दण्डवत कर बोल उठे, परन्तु प्रेम उनके हृदय में नहीं समाता था ॥

चौ०—सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। विधिहरिहर वंदित पदरेनू।
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रणतपाल सचराचर नायक।

अर्थ—हे दासों के कल्पवृक्ष और कामधेनु! (अर्थात् भक्तों की मनोकामना पूर्ण करने के निमित्त कल्पवृक्ष और सुरधेनु के समान) प्रभु! आपकी चरणरज की वंदना ब्रह्मा विष्णु और महेश किया करते हैं। आप सेवन करने से सहज ही में मिल जाते हैं और सम्पूर्ण सुखों के दाता हैं, आप शरणागत पालक और जड़ चेतन जीवों के मालिक हैं ॥

चौ०—जो अनाथहित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह वर देहू॥
जो स्वरूप बस शिव मन माहीं। जेहि कारण मुनि यतन कराहीं॥
जो भुशुण्डिमन मानसहंसा। सगुण अगुण जेहि निगम प्रशंसा।
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रणतारति मोचन।

अर्थ—हे दीनानाथ! जो हम पर आप का प्रेम है तो प्रसन्न होकर यह वरदान दीजिये कि "जो सुन्दररूप शंकर जी के मन में भरा है और जिस के निमित्त मुनि गण उपाय किया करते हैं, जो काकभुशुण्डि जी के मानसरोवररूपी मन में हंस की नाईं बना रहता है और जिसकी कीर्त्ति वेद में साकार और निराकार वर्णन की गई है। उस रूप को हम अपने नेत्रों से अघा कर देखें, सो हे शरणागत के दुःख दूर करने वाले! ऐसी कृपा आप कीजिये ॥

चौ०—दंपतिवचन परम प्रिय लागे। मृदुल विनीत प्रेमरसपागे॥
भक्तवच्छल प्रभु कृपानिधाना। विश्ववास प्रगटे भगवाना।

अर्थ—राजा रानी के शब्द जो मधुर नम्र और प्रेम रस से परिपूर्ण थे, प्रभु को सुहावने लगे। इसहेतु भक्तों पर प्यार करने वाले दयासागर जगतव्यापी षडैश्वर्य युक्त परमेश्वर प्रगट हुए ॥

दो०—नीलसरोरुह नीलमणि, नीलनीरधर श्याम।
लाजहिं तनुशोभा निरखि, कोटि कोटि शत काम ॥ १४६ ॥

अर्थ—नीले कमल, नील मणि तथा सघन बादलों के समान श्यामल शरीर को देख सौ करोड़ कामदेव के समूहों के समूह लज्जित होते थे।

अर्थ—सीसपर मुकुट शोभायमान था तथा कानों में मकर के आकार के कुण्डल और घूँघर वाले काले भौंरों की माल की नाईं थे। हृदय में श्रीवत्स नाम की बालों की भौंरी थी और वे मनोहर वनमाला, हीरों का हार तथा हीरों के अगणित भूषण धारण किये थे।

चौ०—केहरि कन्धर चारु जनेऊ। बाहु विभूषण सुन्दर तेऊ॥
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर शर कोदण्डा॥

अर्थ—सिंह के समान कंधे, उत्तम जनेऊ और हाथों के अलंकार सो भी सुन्दर थे। हाथी की सूंड़ के समान सुडौल भुजदंड, कमर में तर्कस और हाथ में धनुष बाण लिये हुए थे॥

दो०—तड़ित विनिन्दक पीतपट, उदर रेख वर तीनि।
*नाभि मनोहर, लेति जनु, यमुन भँवर छवि छीनि॥१४७॥

अर्थ—बिजली को मात करने वाला पीताम्बर और उदर पर तीन उत्तम रेखायें पड़ती थीं (अर्थात् पेट में तीन सलें पड़ती थीं) और नाभि तो इतनी मनोहारिणी थी कि मानो यमुना की भँवर की छटा हरे लेती हो॥

चौ०—†पदराजीव वरणि नहिं जाहीं। मुनि-मन मधुप वसहिं जिनमाहीं॥
वाम भाग शोभित अनुकूला। आदि शक्ति छविनिधि जगमूला॥

---

* नाभि मनोहर लेति जनु, यमुन भँवर छवि छीन—नाभि की उपमा बहुधा नीचे लिखे अनुसार दी जाती है

दो०—मैन [illegible] विधि, कुंड [illegible] सार।
भँवर [illegible], [illegible] मुक्ता[illegible]॥

अर्थात् कामदेव की [illegible], ब्रह्मा की [illegible], [illegible] का कुंड, [illegible] की [illegible], [illegible] और शृंगार की गुफा से नाभि की तुलना की जाती है, यथा—

दो०—[illegible]॥
[illegible] भँवर [illegible]॥

† [illegible] मधुप बसहिं जिन माहीं—[illegible]

[illegible]

[illegible]

अर्थ—उनके कमलस्वरूपी चरणों का वर्णन नहीं किया जा सक्ता जिनमें मुनियों भौंरारूपी मन बसते थे। जिन की बाईं ओर सुन्दरता की खानि, जगत की कारण,सुन्दर आदि शक्ति शोभायमान थीं।

चौ०—*जासु अंश उपजहिं गुणखानी। अगणित उमा रमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि विलास जासु जग होई। रामवामदिशि सीता सोई॥

अर्थ—जिस के अंश से गुणों की खदान अनेकन पार्वती, लक्ष्मी और ब्रह्माणी उपजती हैं और जिसकी भृकुटी की लीलामात्र ही से संसार उत्पन्न हो जाता है सो सीता जी रामचन्द्रजी की बाईं ओर थीं।

चौ०—छवि समुद्र हरिरूप विलोकी। इकटक रहे नयनपट रोकी॥
†चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु शतरूपा॥

अर्थ—(राजा रानी) सुन्दरता की खानि भगवान के रूप को देखकर ऐसी टकटकी बाँध कर देखते रह गये कि नेत्रों के पलकों का व्यापार बंद हो गया। मनु और शतरूपा जी उस उपमा रहित छवि को आदरपूर्वक देखते देखते भी संतोष को न प्राप्त होते थे।

चौ०—हर्ष विवश तनु दशा भुलानी। परे दण्डइव गहि पद पानी॥
शिर परसे प्रभु निजकरकंजा। तुरत उठाये करुणापुंजा॥

अर्थ-प्रेम के मारे शरीर की सुध भूल गये, उन के चरणों को अपने हाथों से पकड़ लठिया की नाईं पृथ्वी पर जा पड़े। दयासागर परमेश्वर ने उनके सीस पर अपने हस्तकमलों से स्पर्श कर उन्हें शीघ्र ही उठा लिया।

दो०—बोले कृपानिधान पुनि, अति प्रसन्न मोहि जानि।
माँगहु वर जोइ भाव मन, महादानि अनुमानि॥१४८॥

---

* जासु अंश उपजहिं गुणखानी। आदि—देखो टि० पृ० ७

† चितवहिं सादर रूप अनूपा—

क०—गुणखानि [illegible] विलोकनि मधुर [illegible] सुधा [illegible] मन में न मावही।
• बदन विलोकन चरण [illegible] देखि कंज इन्दु मीन मृग समता न पावही॥
[illegible] दाड़िम न मावही।
[illegible] कवि कहावही॥

(दोहा)

अर्थ-फिर दयासागर प्रभु बोले कि तुम मुझे बहुत प्रसन्न जान कर दाता विचार कर अपनी इच्छा अनुसार वरदान मांग लेओ ॥

चौ०—सुनि प्रभुवचन जोरि युग पानी । धरि धीरज बोले मृदुबानी ॥
नाथ देखि पदकमल तुम्हारे । अब पूरे सब काम हमारे ॥

अर्थ-(मनु जी) परमेश्वर के वचनों को सुन दोनों हाथ जोड़ कर धीरज धर के मधुर वचन बोले । हे प्रभु ! आप के कमलस्वरूपी चरणों को देख हमारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हुए ।

चौ०—एक लालसा बड़ि मनमाहीं । सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं ॥
तुमहिं देत अति सुगम गोसाईं । अगम लाग मोहि निज कृपणाई ॥

अर्थ-हमारे मन में एक भारी इच्छा है जो सुगम और अगम दोनों है इसीहेतु कहते नहीं बनती । हे गोस्वामी जी ! आप को तो उसे पूर्ण करना सुगम है परन्तु मुझे अपनी कृपणता के कारण अगम समझ पड़ती है ।

चौ०—यथा दरिद्र विबुधतरु पाई । बहु संपति माँगत सकुचाई ॥
तासु प्रभाव जान नहिं सोई । तथा हृदय मम संशय होई ॥

अर्थ-जैसे (कोई) दरिद्री कल्पवृक्ष के नीचे जावे और बहुत सा धन मांगने में संकोच करे । क्योंकि वह उसकी महिमा को नहीं जानता, ऐसे ही मेरे मन में दुविधा उठती है (अर्थात् दरिद्री ने अधिक धन तो देखा ही नहीं, इस हेतु वह कल्पवृक्ष से, जो चाहे जितना धन दे सक्ता है, अधिक द्रव्य मांगने में डरता है । इसी प्रकार आप तो सब कुछ दे सक्ते हैं परन्तु मैं, अपने दरिद्र स्वभाव के कारण मांगने में डरता हूं कि कदाचित् आप देवें या न देवें) ।

चौ०—सो तुम जानहु अंतरयामी । पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी ॥
सकुच विहाइ माँग नृप मोही । मोरे नहिं अदेय कछु तोही ॥

अर्थ-सो हे घटघट वासी प्रभु ! आप सब जानते हो, हे नाथ ! मेरी मनोकामना पूरी कीजिये । हे राजन ! तुम संकोच छोड़ कर मुझ से मांगो ऐसी कोई वस्तु मेरे पास

दो०—सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरण सनेहु
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, मोहि कृपा करि देहु ॥१५०

अर्थ—हे प्रभु! वही आनंद, वही गति, वही भक्ति और वही आप के चरणों प्रीति, वही ज्ञान और वही वर्त्ताव (जो आप का अनन्य भक्तों के साथ रहा करा है वही) कृपा कर के मुझे दीजिये।

चौ०—सुनि मृदु गूढ़ रुचिर वच रचना। कृपासिंधु बोले मृदुवचना।
जो कछु रुचि तुम्हरे मनमाहीं। मैं सो दीन्ह सब संशय नाहीं।

अर्थ—नम्र गूढ़ और मनोहर वचनचातुरी सुन कर दयासागर परमेश्वर भी मधु वचन बोले। जो कुछ इच्छा तुम्हारे मन में है वह सब मैंने तुम्हें दी इसमें संदेह नहीं

चौ०—मातु विवेक अलौकिक तोरे। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे।
वन्दि चरण मनु कहेउ बहोरी। और एक विनती प्रभु मोरी।

अर्थ—हे माता! मेरी कृपा से तुम्हारा अनोखा विवेक कभी न मिटेगा। मनुने चरणों की वंदना करके फिर से कहने लगे हे नाथ! मेरी एक प्रार्थना और भी है

चौ०—सुत विषयिक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहइ किन कोऊ॥
मणिबिन फणिजिमि जल*बिनमीना। मम जीवन तिमि तुमहिं अधीना॥

अर्थ—आप के चरणों में मेरी प्रीति पुत्र के भाव से रहे (अर्थात् मैं आप को अपना पुत्र समझते हुए भी आप के चरणों में प्रीति रक्खूं चाहे कोई मुझे बड़ा मूर्ख क्यों न कहे परन्तु मेरा जीना तुम्हारे आधार से रहे। जैसे मणि के आधार से सर्प और जल के आधार से मछली जीती रहती है।

---

* जल बिन मीना—स्मरण रहे कि पुत्र भाव रखते हुए दशरथ जी ने श्री राम चन्द्र जी के चरणों में अटल प्रीति रक्खी जो लोकव्यवहार की दृष्टि से अनुचित सी दीख पड़ती है परन्तु इन्हों ने उसे पूर्णरूप से निबाहा जिस का उदाहरण गोस्वामी जी ने यथा योग्य दर्शाया है कि—

दो०—मीन काटि जल धोइये, खाये अधिक पियास।
तुलसी प्रीति सराहिये, मुयहु मीत की आस।

दशरथ जी का ठीक ऐसा ही हाल हुआ, उन्हों ने रामचन्द्र जी के वनवासी होते ही प्राण त्याग दिये, फिर भी मुक्त न हो स्वर्ग में निवास किये रहे। निदान रावण वध के बाद फिर आकर श्री रामचन्द्र जी के दर्शन कर मुक्त हुए। इस प्रकार से उन्हों ने प्रीति निबाही [illegible] ही पुत्ररूप से अवतरे थे॥

चौ०—अस वर मांगि चरण गहि रहेऊ । एवमस्तु करुणानिधि कहेऊ ॥
अब तुम मम अनुशासन मानी । बसहु जाइ सुरपतिरजधानी ॥

अर्थ—ऐसा वरदान मांग चरण पकड़ के रह गये, तब दयासागर रामचन्द्र जी बोले कि ऐसा ही होवे । अब तुम मेरी आज्ञा मान कर इन्द्रलोक में जा बसो ।

सो०—तहँ करि भोग विशाल, तात गये कछु काल पुनि ।
होइहहु अवध भुआल, तब मैं होब तुम्हार सुत ॥ १५१ ॥

अर्थ—वहां पर भारी आनन्द भोग कर हे प्यारे ! कुछ समय बीत जाने पर तुम अयोध्या के राजा होओगे, उस समय मैं तुम्हारा पुत्र होऊंगा ।

चौ०—इच्छामय नरवेश सँवारे । होइहौं प्रकट निकेत तुम्हारे ॥
*अंशन सहित देह धरि ताता । करिहौं चरित भक्तसुखदाता ॥

अर्थ—अपनी इच्छा अनुसार मनुष्य का रूप धारण कर तुम्हारे महलों में प्रकट होऊंगा । हे प्यारे ! मैं अपने अंशों समेत (अर्थात् लक्ष्मण भरत आदि के रूप से) ऐसी लीला करूंगा कि जिस से भक्तों को आनन्द प्राप्त हो ।

चौ०—जेहि सुनि सादर नर बड़ भागी । भव तरिहहिं ममता मद त्यागी ॥
आदिशक्ति जेहि जग उपजाया । सोउ अवतरहि मोरि यह माया ॥

अर्थ—जिन्हें बड़े भाग्यवान् मनुष्य आदर से सुन कर ममता और मोह को छोड़ संसार से छूट हो जावेंगे । मेरी माया जो आदिशक्ति है और जिसने सब संसार को उत्पन्न किया है, वह भी अवतार लेवेगी ।

चौ०—पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा । सत्य सत्य प्रण सत्य हमारा ॥
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना । अन्तरध्यान भये भगवाना ॥

अर्थ—मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा, सत्य है ! सत्य है ! हमारा प्रण सत्य है । (तीन बार किसी बात को कहने से मनुष्य को निश्चय हो जाता है) । दयासागर परमेश्वर [illegible] बार बार कर अन्तर्ध्यान हो गये ।

---

*भक्तसुखदाता—
[illegible] हैं वो चार सिद्ध किया करते हैं क्यों कि (१) जिस प्रकार से पृथ्वी को [illegible] कर है, (२) [illegible] जिस से पृथ्वी का [illegible] जिस अंश से [illegible] का नाश [illegible] किया था ।

चौ०—दम्पति उर धरि भक्ति कृपाला। तेहि आश्रमनि बसे कछु काला॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति बासा॥

अर्थ—राजा रानी दयासागर भगवान् की भक्ति को हृदय में धारण कर [illegible] स्थान में कुछ दिन रहते रहे। समय आते ही दोनों बिना क्लेश के शरीर [illegible] इन्द्रपुरी में जा बसे॥

दो०—यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कहा वृषकेतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, रामजन्म कर हेतु॥ १५२॥

अर्थ—यह बहुत ही पवित्र कथा शिव जी ने पार्वती से कही। (याज्ञ[illegible] मुनि बोले कि) हे भरद्वाज! अब रामचन्द्र जी के अवतार का दूसरा कारण सुनो [illegible]

(२६ प्रतापभानु राजा और कपटी मुनि की कथा)

चौ०—सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति शम्भु बखानी॥
विश्वविदित इक कैकय देशू। सत्यकेतु तहँ बसै नरेशू॥

अर्थ—हे मुनि जी! वह पवित्र पुरानी कथा सुनो, जो महादेव जी ने पार्[illegible] से कही थी। संसार में प्रसिद्ध एक कैकय नाम देश है वहां पर सत्यकेतु [illegible] राजा रहता था॥

चौ०—धर्म धुरन्धर नीति निधाना। तेज प्रताप शील बलवाना॥
तेहि के भये युगल सुतवीरा। *सब गुणधाम महारण धीर[illegible]

अर्थ—वह धर्म में श्रेष्ठ, नीति में परिपूर्ण, तेजवान, प्रतापी, शीलवान [illegible] बली था। उस के दो पुत्र हुए जो बलवान सब गुणों से भरे हुए बड़े योद्धा [illegible]

चौ०—राजधानि जेठे सुत आही। नाम †प्रतापभानु अस ताही॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुज बल अतुल अचल संग्राम[illegible]

---

* [illegible]

† [illegible]

अर्थ—राजगद्दी का अधिकारी तो जेठा पुत्र था, जिस का नाम प्रतापभानु । दूसरे लड़के का नाम अरिमर्दन था जिस के भुज दंडों का प्रताप भारी था र वह संग्राम में स्थिर रहने वाला था ॥

ौ०—भाइहि भाइहि परम सुप्रीती । सकल दोष छल वर्जित प्रीती ॥
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा । हरि हित आप गवन वन कीन्हा ॥

अर्थ—भाई २ में बड़ी सुमति थी और उन का प्रेम सब प्रकार से द्वेष तथा लहीन था। राजा ने जेठे लड़के को सिंहासन सौंपा और आप परमेश्वर के मित्त (अर्थात् भजन करने के लिये) वन में चले गये ॥

दो०—जब प्रतापरवि भयउ नृप, फिरी दोहाई देश ।
प्रजापाल अतिवेद विधि, कतहुँ नहीं अघलेश ॥१५३॥

अर्थ—जब प्रतापभानु राजा हुए तो उन का प्रबंध देश भर में हो गया । वे वेद के विधान से प्रजा की रक्षा करने लगे, पाप तो कहीं ढूँढ़ने को भी न था ॥

चौ०—*नृप हितकारक सचिव सयाना । नाम धर्मरुचि शुक्र समाना ॥
सचिव सयान बन्धु बलवीरा । आप प्रतापपुंज रणधीरा ॥

अर्थ—राजा का हितकारी एक चतुर मंत्री था, जिस का नाम धर्मरुचि था,

---

प्रताप नामी राजा होकर बड़े बलवान् होओगे और सम्पूर्ण राजाओं को अपने वश में करोगे, फिर ब्राह्मणों के शाप से तुम बड़े प्रतापी राक्षस रावण के नाम से प्रसिद्ध होओगे । तब हम से युद्ध करके मुक्त होजाओगे । यह माया मैं तुम्हें अपनी लीला के निमित्त करता हूं ।

स्मरण रहे कि इस धर्मात्मा महाप्रतापी भानुप्रताप राजा को जो निष्कारण ब्राह्मणों का शाप हुआ । उस में केवल ईश्वर की इच्छा और माया ही मुख्य कारण है । विस्तार पूर्वक हाल महा रामायण में मिलेगा ॥

* नृपहितकारक सचिव सयाना — रामचन्द्रिका में मंदोदर ने रावण से शुक्राचार्य की नीति के अनुसार चार प्रकार के मंत्री उदाहरण सहित यों कहे हैं—

छप्पय—एक राज के काज हतैं निज कारज काजै ।
जैसे सुरथ निकारि सबै मंत्री सुख साजै ॥
एक राज के काज आपने काज बिगारत ।
जैसे लोचन हानि सही कवि बलिहि निवारत ॥
इक प्रभु समेत अपनो भलो करत दाशरथि दूत ज्यों ।
इक अपनो प्रभु को बुरो करत रावरे दूत ज्यों ॥

यह शुक्राचार्य के समान (नीति का जानने वाला) था। (इस प्रकार) चतुर, भाई पराक्रमी और आप स्वतः तेजस्वी तथा योद्धा था ॥

चौ०—*सेन संग चतुरंग अपारा । अमित सुभट सब समर जुझारा ॥
सेन बिलोकि राउ हरषाना । अरु बाजे गहगहे निशाना ॥

अर्थ—साथ में अनगिन्ती चतुरंगिनी सेना थी, जिस में हज़ारों योद्धा रण... थे। सेना को देख कर राजा जी प्रसन्न हुए, इतने में घोरध्वनि से जुझाऊ भी बजने लगे ॥

चौ०—बिजय हेतु कटकई बनाई । सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई ॥
जहँ तहँ परी अनेक लराई । †जीते सकल भूप बरिआई ॥

अर्थ—दिग्विजय करने के निमित्त सेना तैयार की और अच्छा दिन देख डंका बजा कर चला। अनेक स्थानों में युद्ध हुए। (परन्तु राजा ने) ज़बर... सम्पूर्ण राजाओं को परास्त किया ॥

चौ०—‡सप्त द्वीप भुजबल बश कीन्हे । लै लै दंड छांड़ि नृप दीन्हे ॥
सकल अवनिमंडल तेहि काला । एक प्रतापभानु महिपाला ॥

अर्थ—अपने बाहुबल से सातों द्वीपों को अपने आधीन कर लिया। 'कर' लेकर राजाओं को छोड़ दिया। उस समय सम्पूर्ण भूमंडल में केवल ए... महाराजा प्रतापभानु सुनाई पड़ते थे।

दो०—स्वबश बिश्व करि बाहुबल, निज पुर कीन्ह प्रवेश ।
अर्थ धर्म कामादि सुख, सेव समय नरेश ॥१५

* सेन संग चतुरंग अपारा—चतुरंगिनी सेना के चार मुख्य अंग ये हैं (१) गज... (२) अश्वपति, (३) रथी और (४) पैदल ।

† जीते सकल भूप बरिआई—

कुंडलिया—साईं हरि ऐसो करी, बलि के द्वारे जाय ।
पहिले हाथ पसारि कै, बहुरि पसार्‍यो पाय ॥
बहुरि पसार्‍यो पाय, मिलो राजा न बनायो ।
भूमि लयो हरि सबै, बांधि पाताल पठायो ॥
कह गिरधर कविराय, गाय राजन के नाहीं ।
छल बल करि पर भूमि लेत, यो नृपतो नाहीं ॥

‡ सात द्वीप—यथा (१) जम्बू द्वीप [illegible] के भीतर भारतवर्ष है जैसा कि संकल्प... समय कहा जाता है "जम्बू द्वीपे भरतखंडे" आदि (२) कुशद्वीप, (३) प्लक्ष, (४) [illegible] (५) [illegible] (६) [illegible] और (७) पुष्कर

अर्थ—भुजबल से सब संसार को अपने आधीन कर महाराजा अपने नगर में आगये। जहाँ वे अर्थ, धर्म, काम आदि सुखों का समय समय पर उपभोग लेने लगे।

चौ०—भूप प्रतापभानु बल पाई। कामधेनु भइ भूमि सुहाई॥
सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धर्मशील सुन्दर नर नारी॥

अर्थ—महाराजा प्रतापभानु के अधिकार में पृथ्वी कामधेनु के समान इच्छित पदार्थों को देने वाली अतएव हरी भरी हो गई। (यथा 'राजा तथा प्रजा' इस न्याय से) प्रजा के लोग क्लेशों से रहित सुख भोगने लगे, तथा क्या स्त्री, क्या पुरुष सब के सब धर्म्मात्मा और रूपवान् होने लगे।

चौ०—सचिव धर्मरुचि हरिपद प्रीती। नृपहितहेतु सिखव नित नीती॥
गुरु सुर संत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सब की सेवा॥

अर्थ—धर्मरुचि मंत्री की ईश्वर के चरणों में प्रीति थी (इस हेतु वह) ऐसी नीति सिखलाता था कि जिस में राजा की भलाई हो। जेठे बड़े, देवता, सज्जन पितर और ब्राह्मण इन सबकी सेवा महाराजा सदा किया करते थे।

चौ०—*भूपधर्म्म जे वेद बखाने। सकल करै सादर सुख माने॥
दिन प्रति देइ विविध विधि दाना। सुनइ शास्त्र वर वेद पुराना॥

अर्थ—वेदों में जो राजाओं के धर्म वर्णन किये गये हैं उन्हें महाराजा आदर सहित सुख मान कर किया करते थे॥ वे प्रतिदिन, नाना प्रकार से दान देते थे और उत्तम शास्त्र वेद और पुराणों को सुना करते थे।

चौ०—†नाना वापी कूप तड़ागा। सुमनवाटिका सुन्दर बागा॥
विप्र भवन सुरभवन सुहाये। सब तीरथन्ह विचित्र बनाये॥

---

* भूपधर्म जे वेद बखाने—

[illegible]

[illegible]

† [illegible]

(हुलास)

अर्थ—अनेक बावलियां, कूप, तालाब, फुलबगियां और सुन्दर बगीचे, ब्राह्मणों के लिये घर और देवताओं के मनोहर मंदिर सब तीर्थस्थानों में भांति भांति के बनवाये।

दो०—जहँ लगि कहे पुराण श्रुति, एक एक सब याग॥
बार सहस्र सहस्र नृप, किये सहित अनुराग॥ १५५॥

अर्थ—वेदों तथा पुराणों में जितने यज्ञ कहे हैं प्रत्येक को महाराज ने अनेकों बार बड़े प्रेम से किया॥

चौ०—हृदय न कछु फल अनुसंधाना। भूप विवेकी परम सुजाना॥
***करै जे धर्म कर्म मन बानी। वासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी॥**

सुराज्य में प्रजा के हित और आराम के लिये बहुतेरे उत्तम काम राजा प्रताप भानु ने किये थे। साम्प्रत अंग्रेज़ी राज्य के उपयोगी तथा लाभकारी प्रशंसनीय काम नीचे की कविता में दर्शाये गये हैं:—

नृप भगति करहु मन लाई, सब सज्जन यह बतलाते॥ टेक॥
है ब्रिटिश राज्य सुखदाई, रैय्यत की बहुत भलाई।
अति लाभ कहे नहिं जाई, कछु मति अनुसार सुनाते॥
जिन घाट बाट सुधराई, अरु तार डाक बनवाई।
बुधि बल से रेल चलाई, भारतवासी गुण गाते॥
सरितन्ह में सेतु बँधाई, सागर में नाव चलाई।
करि बड़ा नहर खुदवाई, अति शीघ्र खेत सिंच जाते॥
जिन अस्पताल करि जारी, उपकार किये हैं भारी।
जहँ मिलत दवा सुखकारी, बहु रोग दूर हुइ जाते॥
विस्फोटक की बीमारी, अरु प्लेग महा भयकारी।
टीका की रीति निकारी, आबाल वृद्ध बच जाते॥
लघु दीर्घ अदालत जारी, जहँ न्याय करत अधिकारी।
करि दान दीन बहु भारी, [illegible] सुनाते॥
पुनि भई अनेकन शाला, जहँ पढ़ैं बाल करि चाला।
[illegible] जहँ [illegible], ईश्वर सों यही मनाते॥
[illegible] [illegible] है [illegible] [illegible]।
[illegible] बहु आनन्द गीत गाते॥

* करै जे धर्म कर्म मन बानी। वासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी॥—श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय में भी लिखा है:—

[illegible]

अर्थ—बड़े ज्ञानी और चतुर महाराजा ने (इन यज्ञों का) मन से कुछ फल प्राप्ति का विचार नहीं किया (अर्थात् सम्पूर्ण यज्ञ निष्काम किये)। वे ज्ञानवान् महाराज जो कुछ धर्म, मनसे, वाणी से अथवा क्रिया से करते थे वे सब कृष्ण हेतु समर्पण किया करते थे (जैसा कहा है आरण्यकांड में "हरिहि समर्पे बिन सतकर्मा...... किये श्रम फल)।

चौ०—चढ़ि वर वाजि बार इक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा ॥
विंध्याचल गँभीर वन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ ॥

अर्थ—एक समय प्रतापभानु आखेट की सब तैयारी कर उत्तम घोड़े पर सवार हो। विंध्याचल पर्वत के घने जंगल में गये (वहाँ पर) उन्होंने बहुत से पवित्र पशुओं की मृगया की।

चौ०—फिरत विपिन नृप दीख वराहू। जनु वन दुरेउ शशिहि ग्रसि राहू ॥
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं। मनहुँ क्रोधवश उगिलत नाहीं ॥

अर्थ—वन में भ्रमण करते हुए महाराज ने एक शूकर देखा, मानो राहु राक्षस चन्द्रमा को मुख में दबा कर छिप रहा हो। वह चन्द्रमा बड़ा होने के कारण मुख में नहीं समाता था, तो भी वराह क्रोध के मारे उसे उगलता नहीं था ॥

सूचना—कवि ने कैसी चतुराई के साथ वराह की टेढ़ी सफ़ेद और स्वच्छ खीसों की उपमा मुँह में से निकले हुए चन्द्रमा की छोटी कला से दी है, सो यों कि वराह मानो चन्द्रमा को मुख में दबाये हुए हो। चन्द्रमा बड़ा था, इस हेतु उस का कुछ भाग मुँह के बाहर दीख पड़ता था ॥

चौ०—कोलकरालदशन छवि गाई। तनु विशाल पीवर अधिकाई ॥
घुरघुरात हय आरव पाये। चकित विलोकत कान उठाये ॥

शब्दार्थ-पीवर=स्थूलता। आरव=आहट।

अर्थ—शूकर की भयंकर खीसों की शोभा ऊपर कही गई है उसका शरीर भी बड़ा तथा भारी स्थूलता लिये था। वह घोड़े की आहट पाकर घुरांता था और कानों को उठाकर चौंकता सा देखता था ॥

दो०—नीलमहीधरशिखर सम, देखि विशाल वराह।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप, हाँकि न होइ निबाह ॥१५६॥

अर्थ—नीले पर्वत की शिखर समान भारी शूकर को देखते ही महाराज ने यों ललकारा कि बस न बच सकेगा और तुरन्त घोड़े को ऐंड़ दे चाबुक से दबकाया।

चौ०—आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ वराह मरुत गति भाजी॥
तुरत कीन्ह नृप शर संधाना। महि मिलि गयउ विलोकत वाना॥

अर्थ—घोड़े को धड़े, सपाटे से आता देख शूकर भी वायुवेग से भागा। महाराज ने झटपट बाण छोड़ा, बाण को आते देख वह शूकर धरती से चिपक गया।

चौ०—तकि तकि तीर महीश चलावा। करि छल सुअर शरीर बचावा॥
प्रगटत दुरत जाय मृग भागा। *रिसवश भूप चलेउ सँग लागा॥

अर्थ—महाराज ने ताक २ कर बाण चलाये परन्तु वराह ने छलबल से दाव से अपने को बचाया। वह पशु कभी दिखाई देता हुआ और कभी छिपा भागता जाता था और महाराजा भी हठ पकड़े, पीछे ही लगे चले जाते थे।

चौ०—गयउ दूरि घन गहन वराहू। जहँ नाहिंन गज वाजि निवाहू॥
अति अकेल वन विपुल कलेशू। तदपि न मृगमग तजइ नरेशू॥

शब्दार्थ—गहन = वन। जैसा अमरकोप में लिखा है "अटव्यरण्यं विपिनं गहनम् काननम् वनम्"।

अर्थ—शूकर दूर ऐसे घने जंगल में जा पहुंचा, जहां हाथी घोड़े आदि का निवाह कठिनाई से थी। एक तो महाराजा (साथियों रहित) निपट अकेले थे, दूसरे वन का विकट संकट था तौ भी महाराज ने उस पशु का पीछा न छोड़ा॥

चौ०—कोल विलोकि भूप रणधीरा। भागि पैठि गिरि गुहा गँभीरा॥
अगम देखि नृप अति पछताई। फिरेउ महावन परेउ भुलाई॥

अर्थ—वराह तो महाराज को मृगया में परम प्रवीण जान भाग कर पहाड़ की गहरी गुफा में घुस गया। (उस स्थान को) महाराज अपनी पहुंच से बाहर देख बहुत ही पछताने लगे और ज्यों हीं लौटे त्यों हीं सघन वन में भूल गये।

---

*रिसवश भूप, चलेउ सँग लागा—कामन्दकीय नीतिसार में लिखा है कि—
श्लोक—मृगयाऽक्षास्तथा पानं, गर्हितानि महीभुजाम्।
दृष्टास्तेभ्यस्तु विपदः पाण्डुनैषध वृष्णिषु॥
अर्थात् शिकार, [illegible] खेलना, मद्य पान करना निन्दित है [illegible] पाण्डवों, नल और यदुवंशियों पर [illegible] देखी गई है॥

दो०—खेद खिन्न छुद्धित तृषित, राजा बाजिसमेत।
खोजत व्याकुल सरित सर, जल बिन भयउ अचेत ॥१५७॥

अर्थ—थकावट का मारा भूखा प्यासा राजा घोड़ा समेत, व्याकुलता से नदी [illegible] ढूंढ़ते २ बिना पानी के घबड़ा उठा।

चौ०—फिरत बिपिन आश्रम इक देखा। तहँ बस नृपतिकपटमुनिवेखा॥
*जासु देश नृप लीन्ह छुड़ाई। समर सेन तजि गयउ पराई॥

अर्थ—वन में घूमते २ एक आश्रम दिखाई दिया जहां पर एक राजा कपट [मु]नि के भेष में रहता था। जिसके राज्य को प्रताप भानु ने छीन लिया था सो [सं]ग्राम में अपनी सेना को छोड़ भाग आया था।

चौ०—‡समय प्रताप भानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी॥

अर्थ—यह प्रतापभानु के सुदिन समझ और अपने अदिन जान मन में बहुत [ही] दुःखित हुआ इस हेतु वह अपने घर न गया और बड़ा अभिमानी होने के कारण [उ]सने राजा से मेल भी न किया।

चौ०—†रिस उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसइ तापस के साजा॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रतापरबि तेहि तब चीन्हा॥

अर्थ—वह राजा क्रोध को हृदय में दबाये हुए दरिद्री की नाईं तपसी के भेष से वन में रहा करता था। उसी के समीप राजा जा पहुंचा उसने झट से पहिचान लिया कि ये राजा प्रतापभानु हैं।

---

* जासु देस नृप लीन्ह छुड़ाई। समर सेन तजि गयउ पराई—चाणक्य नीति में लिखा है—

श्लो०—उपसर्गेऽन्यचक्रे च, दुर्भिक्षे च भयावहे।
असाधुजनसम्पर्के, पलायति स जीवति॥

अर्थात् उपद्रव उठने पर, शत्रु के आक्रमण करने पर, भयानक अकाल पड़ने पर और दुष्ट जन के साथ पर जो भागता है वह जीता रहता है॥

‡ समय प्रताप भानु कर जाना। आपन अति असमय अनुमानी—

दो०—अब रहीम चुप हुइ रहौ, समुझि दिनन को फेर।
जब दिन नीके आइ हैं, बनत न लागे देर॥

† रिस उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसै तापस के साजा॥

दो०—[illegible]।
[illegible]॥

चौ०—राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुवेष महामुनि जाना
उतरि तुरग ते कीन्ह प्रणामा। परम चतुर न कहेउ निजनामा

अर्थ—प्यास से पीड़ित प्रतापभानु ने उसे न पहिचाना और उसके साधु वे उसे बड़ा मुनि मान लिया। घोड़े से उतर कर उसको प्रणाम किया परन्तु चतुराई के कारण अपना नाम न बतलाया।

दो०—भूपति तृषित विलोकि तेहि, सरवर दीन्ह दिखाइ।
मज्जन पान समेत हय, कीन्ह नृपति हरषाइ॥१५

अर्थ—उसने राजा को प्यासा देख तालाब दिखा दिया जहाँ पर प्रताप ने प्रसन्न हो घोड़े को अपने साथ ही साथ स्नान और जल पान कराया।

चौ०—गइ श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आश्रम तापस लेइ गयउ
आसन दीन्ह अस्त रवि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी

अर्थ—सब थकावट दूर हुई और राजा प्रसन्न हुआ तब तपस्वी उसे अपने आ में लिवा लाया। उसे बैठने को आसन दिया सूर्य को अस्त हुआ समझ, तपस्वी फिर मधुर वचनों से कहने लगा।

चौ०—को तुम कस बन फिरहु अकेले। सुन्दर युवा जीव पर हेले
चक्रवर्त्ति के लक्षण तोरे। देखत दया लागि अति मोरे

शब्दार्थ—हेले=अनादर किये।

अर्थ—तुम कौन हो? और वन में अकेले क्यों फिरते हो? रूपवान और जवान होकर जी पर क्यों खेल रहे हो। भाव यह कि तुम में न कोई रोग दिखा है और न तुम वृद्ध हो कि जिस के कारण तुम प्राणों का अनादर किये फिरते। तुम में चक्रवर्ती राजा के लक्षण देखने से मुझे बड़ी दया लागई।

चौ०—नाम प्रताप भानु अवनीशा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीशा।
फिरत अहेरे परेउँ भुलाई। बड़े भाग्य देखेउँ पद आई॥

अर्थ-हे मुनि राज! सुनिये प्रतापभानु [illegible]

[illegible]

—हम कहँ दुर्लभ दरश तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनि हारा॥
कह मुनि तात भयउ अँधियारा। योजन सत्तर नगर तुम्हारा॥

अर्थ—मुझको आपके दर्शन कठिन थे मैं समझता हूं कि अब कुछ भला होने वाला मुनिजी कहने लगे हे प्यारे! अब रात हो गई है और तुम्हारा नगर यहां से गैं अस्सी कोस है।

दो०—निशा घोर गंभीर वन, पंथ न सूझ सुजान।
बसहु आज असि जानि तुम, जायहु होत विहान॥

अर्थ—बहुत ही अंधेरी रात है और जंगल भी घना है। ऐसे समय में नचकार भी मार्ग नहीं देख सक्ता। ऐसा समझ आज यहीं टिक रहो और रा होते ही चले जाना।

दो०—*तुलसी जसि भवितव्यता, तैसी मिलइ सहाय।
आपन आवे ताहि पहँ, ताहि तहां लेइ जाय॥१५६॥

अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि जैसी होनहार होती है वैसी ही सहायता मल जाती है या तो आपही स्वतः उसके पास आ जाती है अथवा उसे वहां ले जाती है यहाँ पर प्रतापभानु की होनहार ही उसे पूर्व जन्म के संस्कार वश कपटी मुनि के पास लिवा ले गई जिससे राजा का सर्व नाश हुआ॥

चौ०—भलेहि नाथ आयसु धरि शीशा। बांधि तुरँग तरु बैठ महीशा॥
नृप बहु भांति प्रशंसेउ ताही। चरण वंदि निज भाग्य सराही॥

अर्थ—हे स्वामी! ठीक है ऐसा कह राजा घोड़े को वृक्ष से बांध कर

---

* तुलसी जस भवितव्यता, तैसी मिलै सहाय, इत्यादि—यह कथन तो नीति शास्त्र के अनुसार ही है जैसे—

श्लो०—तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोपि तादृशः।
सहायास्तादृशा एव या दृशी भवितव्यता॥

अर्थात् वैसी ही बुद्धि उत्पन्न होती है वैसा ही उद्योग बन जाता है और सहायता भी वैसी ही मिल जाती है जैसी होनहार होती है।

* कवित्त—लाभ और हानि हाथ जीवन अजीवन हू, योगहू वियोगहू संयोग हू अपार है
कहै 'पदमाकर' इतै पै और केते कहौं, जिन को लिख्यौ ना देह में निरधार है
जानियत याते रघुराय की कला को कहूँ, कोउ पार पावै कोउ पावत न पार है
कौन दिन कौन छिन कौन घरी कौन ठौर, कौन जाने कौन को कहाँ धौं होनहार है

कुम्हार के आवाँ के समान भीतर ही भीतर धँधकता रहता था। राजा के वचनों को कानों से सुन कर अपने वैर की सुधि कर मन ही मन प्रसन्न हुआ।

दो०—कपट बोरि बानी मृदुल, बोलेउ युक्ति समेत ॥
नाम हमार भिखारि अब, निरधन रहित निकेत ॥१६०॥

अर्थ—छल लपेटी कोमल बानी बड़े ढंग से कहने लगा कि अब तो धनहीन रहित हमारा भिखारी नाम है। (अर्थात् पहिले कभी धनाढ्य घर द्वार सहित राजा रहे यह अर्थ गर्भित है)।

चौ०—कह नृप जे विज्ञान निधाना। तुम सारिखे गलित अभिमाना॥
रहहिं अपनपौ सदा दुराये। सब विधि कुशल कुवेष बनाये॥

अर्थ—राजा कहने लगा जो लोग तुम्हारे नाईं अहंकारशून्य और ज्ञान सम्पन्न हैं। वे सदा अपने को छिपाये रहते हैं कारण बिगड़ी धुन से रहने में सब प्रकार की भलाई है।

चौ०—तेहि ते कहहि संत श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे॥
तुम सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि शिवहिं संदेहा॥

अर्थ—इसी से सज्जन तथा वेद पुकार कहते हैं कि बड़े दरिद्री (भक्त) परमेश्वर के प्यारे होते हैं। तुम्हारे समान निर्धन भिखारी और घर गृहस्थी से अलग [illegible] शिव जी को भी [illegible] होता है (राजा का अभिप्राय तो यह था कि ऐसे साधु महात्मा से ब्रह्मा और शिव जी भी शंकित होते हैं कि इन का प्रभाव हम से भी बढ़ कर है दूसरा गूढ़ अर्थ यह हो सकता है कि ब्रह्मा और शिव सरीखे साधुओं को ऐसे साधुओं के विषय में सन्देह होता है कि ये झूठे हैं)। ऐसे सांकेतिक [illegible] अकस्मात ही [illegible] ईश्वर की प्रेरणा से [illegible] है।

चौ०—सोसि सोसि तव चरण नमामी। मोपर कृपा करिय अब स्वामी॥
सहज प्रीति भूपति कै देखा। आप विषय विश्वास विशेखी॥

अर्थ—[illegible] तुम्हारे चरणों की वंदना करते हैं [illegible] हम पर [illegible]

चौ०—*सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह ज[illegible]
सुनु सति भाव कहउँ महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु का[illegible]

अर्थ—सब भांति राजा को अपने आधीन कर तपसी (कपटी) [illegible] दर्शाता हुआ कहने लगा। हे राजा! सुनो मैं यथार्थ कहता हूं कि [illegible] रहते रहते बहुत समय व्यतीत हुआ है।

दो०—अब लगि मोंहि न मिलेउ कोउ, मैं न जनायउँ काहु[illegible]
लोकमान्यता अनलसम, करि तपकानन दाहु[illegible]

अर्थ—न कोई मुझे अभी तक मिला और न मैंने किसी से कहा। [illegible] संसार में प्रतिष्ठा अग्नि के समान है जो तपरूपी जंगल को जला डालती है(यह कि जो साधु अपने उत्तम गुणों की प्रशंसा आप ही अपने मुंह से क[illegible] तपस्या का नाश हो जाता है)।

सो०—तुलसी देखि सुवेष, भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
†सुन्दर केकिहि पेख, वचन सुधा सम असन अहि॥१६१॥

अर्थ—तुलसी दास जी कहते हैं कि सुन्दर वेष देख कर मूर्ख धोखा[illegible] जाते हैं न कि चतुर मनुष्य। जिस प्रकार सुन्दर मोर को देख लोग उसकी [illegible] समान बोली (सुन) धोखा खा जाते हैं वे यह नहीं जानते कि इसका भोजन स[illegible]

दूसरा अर्थ—तुलसी दास जी कहते हैं कि सुन्दर सजावट को देख कर के[illegible] मूर्ख ही नहीं बरन चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते हैं जिस प्रकार सुन्दर मोर [illegible] देख…। देखो चतुर प्रतापभानु भी धोखा खा गया।

चौ०—तातें गुपुत रहौं जग माहीं। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं[illegible]
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाये। कहहु कवन सिधि लोक रिझाये[illegible]

---

* [illegible]

† [illegible]

अर्थ—(कपटी मुनि कह रहा है) इसी से मैं संसार से छिप कर रहता हूँ [illegible]श्वर को छोड़ मुझे (दूसरे से) कुछ भी मतलब नहीं। परमेश्वर तो सब कुछ [illegible]ा ही कहे सुने जानता है फिर संसार को प्रसन्न करने से क्या लाभ।

[illegible]०—तुम शुचि सुमति परम प्रिय मोरे। प्रीत प्रतीति मोंहि पर तोरे॥
अब जो तात दुरावों तोहीं। दारुण दोष घटइ अति मोहीं॥

अर्थ—तुम शुद्ध चित्त और सुबुद्ध होने के कारण मुझे बहुत ही प्यारे लगते [illegible] और तुम्हारा प्रेम तथा विश्वास भी मुझ पर है। हे प्यारे! इतने पर भी मैं [illegible] से छल रक्खूं तो मुझे बहुत ही बड़ा पातक लगेगा (अर्थात् नीति है कि [illegible]पट प्रेमी तथा श्रद्धावान पुरुष से, छल करने वाला महा पातकी समझा जाता है)।

[illegible]०—जिमि जिमि तापस कथइ उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज विश्वासा॥
देखा स्ववश कर्म मन बानी। तब बोला तापस बकध्यानी॥

तुम शुचि सुमति परम प्रिय मोरे। आदि—

श्लोक—उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम्।
असत्य संधं तं जनम् भगवति वसुधे कथं वहसि॥

अर्थात् जिसने उपकार किया है, अपने पर विश्वास रखता है ऐसे शुद्ध बुद्धि वाले प्राणी के साथ जो छल करता है ऐसे अविश्वासी पुरुष को हे भगवती पृथ्वी! तुम कैसे धारण करती हो?

तब बोला तापस बकध्यानी—हितोपदेश में:—

दूरादुच्छ्रितपाणिरार्द्रनयनः प्रोत्सारितार्धासनो।
गाढालिङ्गनतत्परः प्रियकथा प्रश्नेषु दत्तादरः॥
अन्तर्भूत विषो बहिर्मधुमयश्चातीव मायापटुः।
को नामायमपूर्व नाटक विधिः यः शिक्षितो धूर्तकैः॥

भाव यह है कि दूर ही से प्रणाम करता है आँखों में आँसू भर लाता है, आदर से अपने आसन पर बिठलाता है, बड़े प्रेम से मिलता है, मीठी २ बातें करता है, प्रश्नों को आदर पूर्वक सुनता है और हृदय में कपट रखकर ऊपर से मीठी २ बातें करता है इस प्रकार की कपट चातुरी का अपूर्व चरित्र धूर्त लोग रचते हैं।

शब्दार्थ—उदासा (उदासीन)—विरक्त होकर, या उपरामी हो। बकध्यानी (बक—बगुला + ध्यानी—ध्यान लगाने वाला)—बगुला के समान ध्यान लगाने वाला [illegible]

अर्थ—ज्यों ज्यों तपसी विरक्तता की बातें करता था त्यों त्यों [illegible] भरोसा उस पर जमता जाता था। बगुला भगत तपस्वी ने जब देखा कि [illegible] अपने चित्त से वचनों से तथा कार्यों से मेरे आधीन होगया है तब तो वह [illegible]

चौ०—नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिर [illegible]

कहहु नाम कर अर्थ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जा[illegible]

अर्थ—हे भाई ! मेरा नाम "एकतनु" है यह सुन कर राजा [illegible] नवाकर कहने लगा। मुझे अपना परम दास समझ कर अपने नाम [illegible] समझा कर कहिये।

दो०—आदि सृष्टि उपजी जबै, तब उत्पति भइ मोरि॥
नाम एकतनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि॥१६[illegible]

अर्थ—जब संसार की पहिले ही पहल रचना की गई थी उस समय [illegible] हुआ था। इसी कारण से मेरा नाम एकतनु हुआ क्योंकि मैंने [illegible] दुबारा शरीर धारण नहीं किया (अर्थात् जो मेरा शरीर सृष्टि की आदि [illegible] वही अब है) इसी हेतु मुझे एक तनु कहते हैं (और प्राणियों ने [illegible] बार देह छोड़ी और धारण की)।

चौ०—जनि आश्चर्य करहु मनमाहीं। सुत तपते दुर्लभ कछु नाहीं॥

तप बल ते जग सृजै विधाता। तप बल विष्णु भये परित्रा[illegible]

अर्थ—तुम अपने मन में कुछ आश्चर्य न करो हे पुत्र ! तपस्या करने से कोई [illegible] वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती। तपस्या ही के बल से ब्रह्मा संसार को [illegible] है तपस्या ही के बल से विष्णु जी संसार की रक्षा करने वाले हुए।

चौ०—[illegible] [illegible] करहिं संहारा। [illegible] [illegible] न कछु संसारा॥

भयउ नृपहि सुनि [illegible] अनुरागा। [illegible] पुरातन कहै सो [illegible]

अर्थ—तपस्या के प्रभाव ही से शिव जी संसार का नाश करते हैं (निदान)
र में ऐसा कुछ भी नहीं है जो तपस्या से न मिले। यह सुन कर राजा का
विशेष बढ़ा और तपसी प्राचीन कथा कहने लगा।

०—कर्म धर्म इतिहास अनेका। करै निरूपण विरति विवेका॥
उद्भव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आश्चर्य बखानी॥

अर्थ—उसने कर्मकांड की वार्त्ता, धर्म निरूपण के अनेक इतिहास कहे तथा
ग्य और ज्ञान का भी निरूपण किया। संसार की उत्पत्ति, उसकी विद्यमानता
र संहार की बहुतेरी कहानियां अचम्भों से भरी हुई कहीं।

०—सुनि महीश तापस वश भयऊ। आपन नाम कहन तब लयऊ॥
कह तापस नृप जानउँ तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही॥

अर्थ—(बातें) सुनकर के राजा तपसी के आधीन हो गया और फिर अपना
प उसे कह सुनाया। तपसी बोला हे राजा! मैं तुझे जानता हूं, जो तुम ने
किया सो मुझे अच्छा लगा।

सो०—सुन महीश अस नीति, जहँ तहँ नाम न कहहिँ नृप॥
मोहि तोहि पर प्रीति, परम चतुरता निरखि तव॥१६३॥

अर्थ—हे राजा! नीति भी ऐसी है कि राजा लोग सब ही जगह अपना नाम
हीं बतलाते। तुम्हारी विशेष चतुराई देख मेरा प्रेम तुम पर लग गया।

चौ०—नाम तुम्हार प्रतापदिनेशा। सत्यकेतु तव पिता नरेशा॥
गुरुप्रसाद सब जानिय राजा। कहिय न आपन जानि अकाजा॥

अर्थ—हे राजा! तुम्हारा नाम प्रताप भानु है और तुम्हारे पिता का नाम सत्य
तु। हे राजा! मैं ये सब बातें अपने गुरु की कृपा से जानता हूं, अपनी हानि
समझ कर इन बातों को नहीं कहता।

चौ०—देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुणाई॥
उपजि परी ममता मन मोरे। कहेउँ कथा निज पूछे तोरे॥

अर्थ—हे प्यारे! तुम्हारे स्वाभाविक सीधेपन को देख तथा तुम्हारा प्रेम भरोसा
और न्याय चातुरी देख। मेरे चित्त में प्रेम उमड़ आया इसीलिए तुम्हारे पूछने
पर अपनी सब कथा कह सुनाई।

चौ०—अब प्रसन्न मैं संशय नाहीं। माँग जो भूप भाव मन माहीं॥
सुनि सुवचन भूपति हरषाना। गहि पद विनय कीन्हि विधि नाना॥

अर्थ—ज्यों ज्यों तपसी विरक्तता की बातें करता था त्यों त्यों भरोसा उस पर जमता जाता था। बगुला भगत तपस्वी ने जब देखा [illegible] अपने चित्त से वचनों से तथा कार्यों से मेरे आधीन होगया है तब तो वह [illegible]

चौ०—नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि शिर नाई॥
कहहु नाम कर अर्थ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी॥

अर्थ—हे भाई! मेरा नाम "एकतनु" है यह सुन कर राजा फिर सीस नवाकर कहने लगा। मुझे अपना परम दास समझ कर अपने नाम का [illegible] समझा कर कहिये।

दो०—*आदि सृष्टि उपजी जबै, तब उतपति भइ मोरि॥
नाम एकतनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि॥१६२॥

अर्थ—जब संसार की पहिले ही पहल रचना की गई थी उस समय मैं [illegible] हुआ था। इसी कारण से मेरा नाम एकतनु हुआ क्योंकि मैंने तब से [illegible] दुबारा शरीर धारण नहीं किया (अर्थात् जो मेरा शरीर सृष्टि की आदि में [illegible] वही अब है) इसी हेतु मुझे एक तनु कहते हैं (और प्राणियों ने तब से [illegible] बार देह छोड़ी और धारण की)।

चौ०—जनि आश्चर्य करहु मनमाँहीं। सुत तपते दुर्लभ कछु नाहीं॥
तप बल ते जग सृजै विधाता। तप बल विष्णु भये परित्राता॥

अर्थ—तुम अपने मन में कुछ अचरज न करो हे बेटा! तपस्या करने से कोई वस्तु दुरमिल नहीं रह सकती। तपस्या ही के बल से ब्रह्मा संसार को [illegible] है तपस्या ही के बल से विष्णु जी संसार की रक्षा करने वाले हुए।

चौ०—†तप बल शम्भु करहिं संहारा। तपते अगम न कछु संसारा॥
भयउ नृपहिं सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहँ सो लागा॥

---

* आदि सृष्टि उपजी जबै..........[illegible]

† [illegible]

अर्थ—तपस्या के प्रभाव ही से शिव जी संसार का नाश करते हैं (निदान) ार में ऐसा कुछ भी नहीं है जो तपस्या से न मिले। यह सुन कर राजा का ा विशेष बढ़ा और तपसी प्राचीन कथा कहने लगा।

ौ०—कर्म धर्म इतिहास अनेका। करै निरूपण विरति विवेका॥
उद्भव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आश्चर्य बखानी॥

अर्थ—उसने कर्मकांड की वार्त्ता, धर्म निरूपण के अनेक इतिहास कहे तथा ाग्य और ज्ञान का भी निरूपण किया। संसार की उत्पत्ति, उसकी विद्यमानता ौर संहार की बहुतेरी कहानियां अचम्भों से भरी हुईं कहीं।

ौ०—सुनि महीश तापस वश भयऊ। आपन नाम कहन तब लयऊ॥
कह तापस नृप जानउँ तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही॥

अर्थ—(बातें) सुनकर के राजा तपसी के आधीन हो गया और फिर अपना ाम उसे कह सुनाया। तपसी बोला हे राजा! मैं तुझे जानता हूं, जो तुम ने ल किया सो मुझे अच्छा लगा।

सो०—सुन महीश अस नीति, जहँ तहँ नाम न कहहिँ नृप॥
मोहि तोहि पर प्रीति, परम चतुरता निरखि तव॥१६३॥

अर्थ—हे राजा! नीति भी ऐसी है कि राजा लोग सब ही जगह अपना नाम नहीं बतलाते। तुम्हारी विशेष चतुराई देख मेरा प्रेम तुम पर लग गया।

चौ०—नाम तुम्हार प्रतापदिनेशा। सत्यकेतु तव पिता नरेशा॥
गुरुप्रसाद सब जानिय राजा। कहिय न आपन जानि अकाजा॥

अर्थ—हे राजा! तुम्हारा नाम प्रताप भानु है और तुम्हारे पिता का नाम सत्य केतु। हे राजा! मैं ये सब बातें अपने गुरु की कृपा से जानता हूं, अपनी हानि समझ कर इन बातों को नहीं कहता।

चौ०—देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुणाई॥
उपजि परी ममता मन मोरे। कहउँ कथा निज पूछे तोरे॥

अर्थ—हे प्यारे! तुम्हारे स्वाभाविक सीधेपन को देख तथा तुम्हारा प्रेम भरोसा और न्याय चातुरी देख। मेरे चित्त में प्रेम उमड़ आया इसलिए तुम्हारे पूछने पर अपनी सब कथा कह सुनाई।

चौ०—अब प्रसन्न मैं संशय नाहीं। माँग जो भूप भाव मन माहीं॥
सुनि सुवचन भूपति हरषाना। गहि पद विनय कीन्हि विधि नाना॥

अर्थ—ज्यों ज्यों तपसी विरक्तता की बातें करता था त्यों त्यों रा
रोसा उस पर जमता जाता था। बगुला भगत तपस्वी ने जब देखा
पने चित्त से वचनों से तथा कार्यों से मेरे आधीन होगया है तब तो वह अपन

चौ०—नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि शिर न
कहहु नाम कर अर्थ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जा

अर्थ—हे भाई! मेरा नाम "एकतनु" है यह सुन कर राजा फिर म
ाकर कहने लगा। मुझे अपना परम दास समझ कर अपने नाम क
ाझा कर कहिये।

दो०—*आदि सृष्टि उपजी जबै, तब उत्पति भइ मोरि॥
नाम एकतनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि॥१६

अर्थ—जब संसार की पहिले ही पहल रचना की गई थी उस समय मैं
ा था। इसी कारण से मेरा नाम एकतनु हुआ क्योंकि मैंने तब
ारा शरीर धारण नहीं किया (अर्थात् जो मेरा शरीर सृष्टि की आदि
अब है) इसी हेतु मुझे एक तनु कहते हैं (और प्राणियों ने तब से
देह छोड़ी और धारण की)।

०—जनि आश्चर्य करहु मनमाँहीं। सुत तपते दुलर्भ कछु नाह
तप बल ते जग सृजै विधाता। तप बल विष्णु भये परित्रात

अर्थ—तुम अपने मन में कुछ अचरज न करो हे बेटा! तपस्या करने से
दुरमिल नहीं रह सक्ती। तपस्या ही के बल से ब्रह्मा संसार को
पस्या ही के बल से विष्णु जी संसार की रक्षा करने वाले हुए।

०—†तप बल शम्भु करहिं संहारा। तपते अगम नकछु संसार
भयउ नृपहिं सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लाग

---

*आदि सृष्टि उपजी जबै............तपसी का आशय यथार्थ में यह है कि मैं
ाता पिता का पहिला ही बालक हूं यही आदि सृष्टि का अभिप्राय है—और '
'का अर्थ स्पष्ट ही है कि तब से मैं अभी तक जीवित हूं दूसरा शरीर धा
ोर न रूप पलटने की शक्ति है:—

†करै संहारा—[देखो टिप्पणी ७२ दोहे के बाद पृष्ठ २०१ पूर्वार्द्ध]
...ंकर करहिं महि भारा। तप अधार सब सृष्टि भवारा॥

...त विप्र सदा बरिआरा । तिन के कोप न कोउ रखवारा ।
...न्ह वश करहु नरेशा । तौ तव वश विधि विष्णु महेशा ॥
...स्या के बल से ब्राह्मण सदा बरजोर रहते हैं, उनके क्रोध करने पर ...वाला नहीं । हे राजा ! जो तुम ब्राह्मणों को अपने वश में ...ब्रह्मा विष्णु और शिव भी तुम्हारे आधीन हो जावेंगे ।

...न ब्रह्मकुल सन बरिआई । सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई ।
...विप्रशाप बिन सुन महिपाला । तोर नाश नहिं कवनेहुँ काला ॥
...विप्र के वंश से बराजोरी नहीं चलती मैं अपनी दोनों भुजाओं को ...र कहता हूं (अर्थात् मैं निरचय पूर्वक कहता हूं आप इसे सत्य मानिये ।) ...सुन, ब्राह्मण के शाप बिना तेरा नाश किसी काल में भी न होगा ।

...दउ राउ वचन सुनि तासू । नाथ न होइ मोर अब नासू ।
...तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना । मो कहँ सर्वकाल कल्याना ॥
...—उसके वचन सुन कर राजा प्रसन्न हुआ और कहने लगा हे स्वामी ! ...नाश नहीं हो सकता । हे कृपासागर ! आप की कृपा से मुझे तीनों ...भलाई ही है ।

दो०—एवमस्तु कहि कपट मुनि, बोला कुटिल बहोरि ।
मिलब हमार भुलाब निज, कहहु त हमहिं न खोरि ॥१६५॥

अर्थ—ऐसा ही हो, इतना कह कर वह दुष्ट कपटी मुनि फिर बोला । (जंगल ... अपने भूलने के समय मेरे साथ मिलने का हाल जो किसी से कहोगे तो मुझे ... न देना ।

तप बल विप्र सदा बरिआरा । तिन के कोप न कोउ रखवारा — [illegible]

[illegible]

अर्थ—अब मैं तुझ पर प्रसन्न हूं इस में कुछ संदेह नहीं, हे राजन! ... जो कुछ इच्छा हो सो माँगो। ऐसे मनोहर वचनों को सुनकर राजा ... तपसी के चरण गहकर नाना प्रकार से विनती की।

चौ०—कृपासिंधु मुनि दरशन तोरे। चारि पदारथ करतल मोरे॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न विलोकी। माँगि अगम वर होउँ विशोकी॥

अर्थ—हे दया सागर मुनि जी! आप की कृपा से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चारों पदार्थ मुझे सुलभ हैं। तौभी आप को प्रसन्न जान मैं एक कठिन वरदान माँग कर शोक रहित होना चाहता हूं।

दो०—*जरा मरण दुख रहित तनु, समर न जीतै कोउ।
एकछत्र रिपुहीन महि, राज कल्प शत होउ॥१६४॥

अर्थ—मेरा शरीर बुढ़ापे और मृत्यु के दुःख से बचा रहे, मुझे कोई संग्राम में न जीत सकै। मैं चक्रवर्ती होऊं मेरे शत्रु नाश को प्राप्त होवें और मेरा राज्य सौ कल्प तक बना रहे।

चौ०—कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारण एक कठिन सुन सोऊ।
कालउ तव पद नाइहि शीशा। एक विप्र कुल छाँड़ि महीशा॥

अर्थ—तपस्वी कहने लगा हे राजा! ऐसा ही होगा परन्तु इस में एक बात की अड़चन है। हे राजा! केवल ब्राह्मणों को छोड़ काल भी तुम्हारे चरणों पर सीस नवावेगा।

---

*जरा मरण दुख रहित तनु..........राज कल्प शत होउ—मनुष्य की इच्छायें कभी पूरी नहीं हो सकतीं, कारण एक इच्छा पूर्ण होने पर और दूसरी इच्छा तैयार हो जाती है। जैसे प्रतापभानु राजा ने बहुतेरे राजाओं को जीत कर के भी संतोष न मान कैसा असंभव वरदान माँगा (और उसी के कारण नष्ट भ्रष्ट हुआ) कहा है किसी कवि ने

श्लोक—मनोरथानामगतिर्नविद्यते, यथांबुधौ नास्ति तरंग [illegible]।
पूर्णेषु पूर्णेषु पुनर्नवानां, उत्पत्तयः सन्ति मनोरथानाम्॥

अर्थात् इच्छाओं की पूर्णता होती ही नहीं, इस प्रकार किया करोड़ों वर्ष क्यों न [illegible] जावें। क्यों कि पहले मनोरथ पूर्ण होने ही फिर से नये २ मनोरथ उठ खड़े होते हैं।

ौ०—*तप बल विप्र सदा बरिआरा । तिन के कोप न कोउ रखवारा ।
जो विप्रन्ह बश करहु नरेशा । तौ तव बश विधि विष्णु महेशा ॥

अर्थ—तपस्या के बल से ब्राह्मण सदा बरजोर रहते हैं, उनके क्रोध करने पर ोई भी बचाने वाला नहीं । हे राजा ! जो तुम ब्राह्मणों को अपने वश में र लेओ तो ब्रह्मा विष्णु और शिव भी तुम्हारे आधीन हो जावेंगे ।

ौ०—चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई । सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई ।
†विप्रशाप बिन सुन महिपाला । तोर नाश नहिं कवनेहुँ काला ॥

अर्थ—विप्र के वंश से बरजोरी नहीं चलती मैं अपनी दोनों भुजाओं को ा कर सत्य कहता हूं (अर्थात् मैं निश्चय पूर्वक कहता हूं आप इसे सत्य मानिये ।) राजा ! सुन, ब्राह्मण के शाप बिना तेरा नाश किसी काल में भी न होगा ।

चौ०—हरषेउ राउ वचन सुनि तासू । नाथ न होइ मोर अब नासू ।
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना । मो कहँ सर्वकाल कल्याना ॥

अर्थ—उसके वचन सुन कर राजा प्रसन्न हुआ और कहने लगा हे स्वामी ! अब मेरा नाश नहीं हो सक्ता । हे कृपासागर ! आप की कृपा से मुझे तीनों काल में भलाई ही है ।

दो०—एवमस्तु कहि कपट मुनि, बोला कुटिल बहोरि ।
मिलब हमार भुलाव निज, कहहु त हमहिं न खोरि ॥१६५॥

अर्थ—ऐसा ही हो, इतना कह कर वह दुष्ट कपटी मुनि फिर बोला । (जंगल में) अपने भूलने के समय मेरे साथ मिलने का हाल जो किसी से कहोगे तो मुझे दोष न देना ।

● तप बल विप्र सदा बरिआरा । तिन के कोप न कोउ रखवारा—प्रेम सागर से
चौ०—विप्र दोष जिन कोई करौ । मत कोउ अंश विप्र को हरौ ॥
मन संकल्प कियो जिन राखो । सत्य वचन विप्रहि सन भाखो ॥
विप्रहि दियो फेर जो लेई । नासो इष्ट रहे यम देई ॥
कहा शारद विप्र के महिमा । सब अपराध विप्र के सहिमा ॥
विप्रहि मारे सो मोहि मारे । विप्र मोहि फेर वहि डारे ॥

† विप्र शाप बिन सुन महिपाल—
दो०—विप्र कोप न विरोध कर, कहो सबहि यह टाप ।
चाहे सुजन पडुरक्त हो, तो दरस में जाय ॥

चौ०—ता ते मैं तोहि बरजउँ राजा। कहे कथा तव [illegible]
छठे*श्रवण यह परत कहानी। नाश तुम्हार सत्य मम [illegible]

अर्थ—हे राजा! मैं तुझे इसी कारण से रोकता हूं कि इस कथा [illegible] से तुझे हानि होगी और जो यह वार्त्ता (हमारे तुम्हारे सिवाय) [illegible] सुन पावेगा तो मैं सत्य कहे देता हूं कि तुम मिट जावोगे।

चौ०—यह प्रकटे अथवा द्विजशापा। नाश तोर [illegible]
आन उपाय निधन तव नाहीं। जो हरि हर कोपहिं मन [illegible]

अर्थ—हे भानु प्रताप! सुन, इस भेद के खुलने से अथवा ब्राह्मण [illegible] से तुम्हारा नाश हो सकेगा। दूसरे उपाय से तुम्हारा मरण नहीं हो [illegible] विष्णु चाहे शिव भी मन में क्रोधित हो उठें।

चौ०—सत्य नाथ पद गहि नृप भाखा। द्विज गुरु कोप कहहु को [illegible]
†राखै गुरु जो कोप विधाता। गुरुविरोध नहिं कोउ जग[illegible]

---

* छठे श्रवण यह परत कहानी—हितोपदेश में लिखा है कि—

श्लोक—षट्कर्णो भिद्यते मंत्रः तथा प्राप्तश्च वार्त्तया।
इत्यात्मना द्वितीयेन मंत्रः कार्यो महीभृता॥

अर्थात् छः कानों में सलाह पड़ने से वह गुप्त नहीं रहती, इसी प्रकार [illegible] भी है इस हेतु राजाओं को चाहिये कि वह सलाह केवल एक ही के साथ करे [illegible] यह है कि दो मनुष्य मिल कर सलाह करें तो वह बात मानो चार कानों में [illegible] यदि तीसरा मनुष्य उसे सुन पावे तो वह छः कानों में पड़ कर प्रकट हो जा[illegible]

† राखै गुरु जो कोप विधाता। गुरु विरोध नहिं कोउ जगत्राता—

उत्तर कांड में जिस समय शूद्ररूपी काकभुशुंड जी के पूर्व ज[illegible] श्री शंकर जी ने क्रोध कर शाप दिया था। उस समय उसके गुरु जी ने [illegible] शिव जी को प्रसन्न कर के यह वरदान माँगा था कि—

दो०—शंकर दीन दयाल अब, इहि पर होहु कृपाल।
श्राप अनुग्रह होइ जेहि, नाथ थोर ही काल॥१०८॥

चौ०—इहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना॥
विप्रगिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु इति भइ नभ बानी॥

[illegible]

[illegible]

अर्थ—राजा मुनि के चरणों को छूकर कहने लगा हे स्वामी ! ठीक तो है ए और गुरु के क्रोध से बचिये तो कौन बचा सक्ता है (अर्थात् कोई नहीं)। विधाता क्रोध करें तो गुरु जी संभाल लेवें परन्तु जो गुरु जी क्रोध करें तो ार में कोई भी बचाने वाला नहीं।

०—जो न चलब हम कहे तुम्हारे। होउ नाश नहिं सोच हमारे।
एकहि डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेवशाप अति घोरा॥

अर्थ—जो मैं आप के कहने के अनुसार न चलूं तो नाश भले ही होओ की मुझे चिन्ता नहीं। परन्तु एकही डर से मेरा जी कप उठता है कि हे स्वामी ! ाह्मणों का शाप बड़ा ही कठिन होता है।

दो०—होहि विप्रवश कवन विधि, कहहु कृपा करि सोउ।
तुम तजि दीनदयाल निज, हितू न देखों कोउ ॥१६६॥

अर्थ—ब्राह्मण किस प्रकार से वश में आवें यह बात कृपा कर कहिये। हे ीनों पर दया करने वाले ! तुम्हारे सिवाय अपना हितकारी मैं किसी दूसरे ो नहीं समझता।

चौ०—सुन नृप विविध जतन जग माहीं। कष्ट साध्य पुनि होहिं कि नाहीं
अहै एक अति सुगम उपाई। तहां परन्तु एक कठिनाई॥

अर्थ-हे राजा सुन ! संसार में बहुतेरे उपाय हैं सो कठिनाई से होने वाले हैं होवें गा न होवें। एक बहुत ही सहल उपाय है परन्तु उसमें भी कुछ अड़चन है।

चौ०—मम आधीन युक्ति नृप सोई। मोर जाब तव नगर न होई।
आज लगे अरु जबते भयऊँ। काहू के गृह ग्राम न गयऊँ॥

अर्थ-हे राजन ! उसका उपाय मेरे आधीन है परन्तु मेरा जाना तुम्हारे गांव में नहीं हो सक्ता। मैंने जब से जन्म लिया है तब से आज तक किसी के गांव अथवा घर में पैर नहीं रक्खा।

चौ०—जो न जाउँ तब होइ अकाजू। बना आय असमंजस आजू।
सुनि महीश बोले मृदुबानी। नाथ निगम अस नीति बखानी॥

अर्थ—जो मैं नहीं चलता तो काम बिगड़ता है इस समय बड़ी दुबिधा में आ पड़ा हूं। सुनके ही राजा नरमी से कहने लगा हे स्वामी ! वेद में ऐसा न्याय वर्णन किया है।

अर्थ—मैं तुम्हारा काम अवश्य ही पूरा करूंगा क्योंकि तुम मन से, शरीर से वाणी से मेरे भक्त हो। योग उपाय, तपस्या और मंत्र इनका प्रभाव तो तब ही होता है जब कि इन्हें गुप्त रक्खे।

चौ०—जो नरेश मैं करउँ रसोई। तुम परसहु मोहि जान न कोई॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई॥

अर्थ—हे राजा! यदि मैं भोजन बनाऊं और तुम उसे परसो तथा मुझे कोई जानने न पावे। तो जो जो प्राणी उस अन्न को खावेंगे वे सब तुम्हारी आज्ञा में होंगे।

चौ०—पुनि तिनके गृह जेवै जोऊ। तव बश होइ भूप सुन सोऊ॥
जाय उपाय रचहु नृप येहू। संवत भरि संकल्प करेहू॥

अर्थ—हे राजा! यह भी सुनो, फिर जितने मनुष्य उनके घर में भोजन करेंगे वे भी तुम्हारे वश में हो जायँगे। हे राजा! तुम जाकर यही उपाय करो और इस प्रकार ब्रह्मभोज का संकल्प साल भर के लिये करो।

दो०—नित नूतन द्विज सहस शत, बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकल्प लगि, दिनहिं करब जेवनार॥१६८॥

अर्थ—प्रतिदिन नये नये एक लाख ब्राह्मणों को कुटुम्ब समेत न्योता दिया करो। मैं संकल्प पूर्ण होने तक उन्हें दिनही के समय जिमा दिया करूंगा (अर्थात् एक लाख सपरिवार ब्राह्मणों का भोजन तैयार कर मैं उन सब को प्रति दिन सूर्य अस्त होने के पूर्व ही भोजन करा कर निश्चिन्त कर दूंगा।

चौ०—इहि विधि भूप कष्ट अति थोरे। होइहिं सकल विप्र वश तोरे॥
करिहहिं विप्र होम मख सेवा। तेहि प्रसंग सहजहिं वश देवा॥

---

१ इहि विधि भूप कष्ट अति थोरे। होइहिं सकल विप्र बस तोरे-हितोपदेश में लिखा है-
श्लोक—अनुचित कार्यारंभः स्वजन विरोधो बलीयसा स्पर्धा।
प्रमदाजन विश्वासो मृत्योर्द्वाराणि चत्वारि॥
अर्थात् (१) अयोग्य काम का आरंभ, (२) संबंधियों से वैर, (३) बलवानों से डाह और (४) स्त्रियों पर विश्वास, ये चारों मृत्यु के मानो दरवाज़े ही हैं (अर्थात् मौत के उपाय हैं)।
यहाँ पर सकुटुम्ब एक लाख ब्राह्मणों को भोजन बना कर प्रतिदिन खिलाना और उन से सौ वर्ष तक जीने के लिये आशीर्वाद की इच्छा रखना यह ही अयोग्य कामों का विचार और आरंभ था॥

अर्थ—इस प्रकार हे राजा! थोड़े ही कष्ट से सब ब्राह्मण तुम्हारे ... जावेंगे। ब्राह्मण लोग हवन यज्ञ पूजन आदि करेंगे जिनके कारण देव... ही में प्रसन्न हो जावेंगे।

चौ०—और एक तोहि कहउँ लखाऊ। मैं इहिं बेष न आउब ...
तुम्हरे उपरोहित कहँ राया। हरि आनब मैं करि निज ...

अर्थ—मैं तुम्हें एक बात और भी जताये देता हूं कि मैं कभी इस तरह... न आऊंगा। हे राजा! मैं अपनी माया के बल से तुम्हारे ... उठा लाऊंगा।

चौ०—तपबल तेहि करि आप समाना। रखिहउँ इहां बर्ष परमाना॥
मैं धरि तासु बेष सुनु राजा। सब बिधि तोर सम्हारब काजा॥

अर्थ—तपस्या के प्रभाव से उसे अपने समान बना कर यहाँ पर एक ... रक्खूंगा। हे राजा सुन! मैं उस का रूप धारण कर सब प्रकार से तुम्हारा ... सिद्ध करूंगा।

चौ०—गइ निशि बहुत शयन अब कीजे। मोहि तोहि भूप भेंट दिन ...
मैं तपबल तोहि तुरग समेता। पहुँचैहौं सोवतहि निकेता॥

अर्थ—हे राजा! रात बहुत बीत गई अब सो जाओ! हमारी तुम्हारी भेंट ... दिन होवेगी। मैं अपनी तपस्या के प्रताप से घोड़े समेत तुझे सोते ... तुम्हारे घर पर पहुंचा दूंगा।

दो०—मैं आउब सोइ बेष धरि, पहिचानेउ तब मोहि।
जब एकांत बुलाइ सब, कथा सुनावउँ तोहि॥ १६६॥

अर्थ—मैं उसी पुरोहित के रूप में आऊंगा, तुम मुझे तब ही जानोगे जब कि मैं अकेले में बुला कर तुम से यह सब कथा कह सुनाऊं।

चौ०—शयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आसन जाय बैठ छलज्ञानी॥
*श्रमित भूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई॥

* निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई—... ... टीका की टिप्पणी पृष्ठ ८० (आवृत्ति दूसरी)

अर्थ—आज्ञा माँग कर राजा तो जा लेटा परन्तु कपटी तपस्वी अपने आसन पर [illegible]। थके हुए राजा को तो गहरी नींद लगगई परन्तु वह जिसे भारी सोच लगा [illegible]से सो सक्ता था।

[illegible]—कालकेतु निशिचर तहँ आवा। जेहि शूकर होइ नृपहि भुलावा॥
परममित्र तापसनृप केरा। जानइ सो अति कपट घनेरा॥

अर्थ—इतने ही में कालकेतु नाम का राक्षस वहां पहुंचा जिसने सूअर बन राजा को (वन में) भुलाया था। वह तो बड़ा भारी मायावी था और [illegible] राजा का बड़ा मित्र था।

[illegible]०—तेहि के शत सुत अरु दश भाई। खल अति अजय देवदुखदाई॥
प्रथमहि भूप समर सब मारे। विप्र संत सुर देखि दुखारे॥

अर्थ—इस के सौ लड़के और दश भाई जो दुष्ट बड़े दुजेयी और देवताओं को दुःख देने वाले थे। इन सब को प्रतापभानु ने लड़ाई में पहिले ही मार डाला क्योंकि राजा ने सब ब्राह्मण और सज्जनों को दुःखी देखा था।

[illegible]०—तेहि खल पाछिल बैर सँभारा। तापस नृप मिलि मंत्र विचारा॥
जेहि रिपुक्षय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावीवश न जान कछु राऊ॥

अर्थ—उस दुष्ट ने अपने पिछले बैर की सुध की और कपटी राजा से मिलकर [illegible]लाह की। जिसमें बैरी का नाश हो वही युक्ति रची, प्रतापभानु ने होनहार [illegible] आधीन होकर कुछ न समझा।

दो०—*रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिय न ताहु।
अजहुँ देत दुख रवि शशिहि, शिर अवशेषित राहु॥१७०॥

अर्थ—प्रतापवान शत्रु चाहे अकेला क्यों न हो उसे छोटा न समझ लेना चाहिये। देखो राहु जिसका शिर अलग हो रहा है वह भी अभी तक सूर्य और चंद्रमा को ग्रहण लगाता है।

चौ०—तापस नृप निज सखहि निहारी। हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। यातुधान बोला सुखपाई॥

अर्थ—तपसीराजा अपने मित्र को देख प्रसन्नता पूर्वक उठके मिला और हर्षित हुआ। उसने मित्र से सब हाल कह सुनाया, वह राक्षस भी सुखी होकहने लगा।

---

* रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिय न ताहु।
[illegible]
[illegible]

अर्थ—इस प्रकार हे राजा ! थोड़े ही काल में सब ब्राह्मण तुम्हारे ... जावेंगे। ब्राह्मण लोग हवन पूजन आदि करेंगे जिनके कारण ... ही में प्रसन्न हो जावेंगे।

चौ०—और एक तोहि कहउँ लखाऊ। मैं इहि वेप न आउब ...
तुम्हरे उपरोहित कहँ राया। हरि आनब मैं करि निज ...

अर्थ—मैं तुम्हें एक बात और भी जताये देता हूं कि मैं कभी इस रूप में न आऊंगा। हे राजा ! मैं अपनी माया के बल से तुम्हारे ... उठा लाऊंगा।

चौ०—तपबल तेहि करि आप समाना। रखिहउँ इहां वर्ष प...
मैं धरि तासु वेप सुन राजा। सब बिधि तोर सम्हारब ...

अर्थ—तपस्या के प्रभाव से उसे अपने समान बना कर यहाँ पर ... रक्खूंगा। हे राजा सुन ! मैं उस का रूप धारण कर सब प्रकार से तुम्हारे ... सिद्ध करूंगा।

चौ०—गइ निशि बहुत शयन अब कीजे। मोहि तोहि भूप भेंट दिन ...
मैं तपबल तोहि तुरग समेता। पहुंचैहौं सोवतहि निके...

अर्थ—हे राजा ! रात बहुत बीत गई अब सो जावो ! हमारी तुम्हारी भेंट ... दिन होवेगी। मैं अपनी तपस्या के प्रताप से घोड़े सहित तुझे सोते ... तुम्हारे घर पर पहुंचा दूंगा।

दो०—मैं आउब सोइ वेप धरि, पहिचानेउ तब मोहि।
जब एकांत बुलाइ सब, कथा सुनावउँ तोहि ॥ १...

अर्थ—मैं उसी पुरोहित के रूप में आऊंगा, तुम मुझे तब ही जान... जब कि मैं अकेले में बुला कर तुम से यह सब कथा कह सुनाऊं।

चौ०—शयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आस...
*श्रमित भूप निद्रा अति आई ...

---

* श्रमित भूप निद्रा अति आई। सो ...
रामायण की श्री विनायकी टीका ...

—और आप उपरोहित का रूप बनाकर उसकी उत्तम सेज पर जा सोया।
े के पूर्व ही राजा जाग उठा और अपना महल देख बड़े अचंभे में पड़ा।

ुनिमहिमा मन महँ अनुमानी। उठेउ गवहिं जेहि जान न रानी॥
ानन गयउ बाजि चढ़ि तेही। पुर नर नारि न जानेउ केही॥

—तपसीमुनि के प्रभाव को मन ही मन समझ ऐसे सम्हाल के उठा कि
ानी न जानें। फिर उसी घोड़े पर चढ़कर जंगल की ओर गया। यह
र के किसी भी स्त्री पुरुष ने न जानी।

गये यामयुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा।
उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोकि सुमिरि सोइ काजा॥

—दो पहर के समय राजा आगये तब तो प्रत्येक घर में आनन्द बधाई होने
अर्थात् जंगल में भूले हुए महाराजा के लौट आने से सब नगरनिवासी
में मग्न हो गये)। जब राजा ने उपरोहित को देखा तब तो वह अक-
र देखने लगा और उसे उसी कार्य का स्मरण आगया।

-युग सम नृपहि गये दिन तीनी। कपटी मुनिपद रहि मति लीनी।
समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समझावा॥

र्थ—राजा के तीन दिन युग के समान बीते, उसका चित्त कपटीमुनि के
में लगा रहा। अवसर देखकर उपरोहित आया और उसने राजा से सब
की बातें कह सुनाईं।

दो०—नृप हरषेउ पहिचान गुरु, भ्रमवश रहा न चेत।
बरे तुरत शतसहस्र वर, विप्र कुटुम्ब समेत॥ १७२॥

अर्थ—राजा अपने गुरु को पहिचान प्रसन्न हुआ। धोखा खाजाने से उसे
र न रहा और उसने तुरन्त एक लाख उत्तम ब्राह्मणों का कुटुम्ब समेत निमंत्रण
।।

०—उपरोहित जेवनार बनाई। छरसचारि बिधि जसि श्रुति गाई।
मायामय तेहि कीन्ह रसोई। व्यंजन बहु गनि सकै न कोई॥

अर्थ—उपरोहित ने छह रस तथा चारों प्रकार के भोजन तैयार किये जिस
र कि वेद में लिखा है। उसने माया से ऐसे ऐसे भोजन तैयार किये कि जिन
ार कोई गिन नहीं सकता था।

चौ०—विविध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महँ विप्र मांस खल साँधा॥
भोजन कहँ सब विप्र बोलाये। पद पखारि सादर बैठाये॥

अर्थ—अनेक प्रकार के मृगों का मांस बनाया जिसमें उस दुष्ट ने ब्राह्मणों का मांस मिला दिया। सब ब्राह्मणों को भोजन के लिये बुलाया और पाँव धोकर उन्हें आदरपूर्वक बिठलाया।

चौ०—परुसन जबहि लाग महिपाला। भइ अकाशबाणी तेहि काला॥
विप्र वृंद उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥

अर्थ—जिस समय राजा परोसने लगा उसी समय आकाशवाणी हुई। ब्राह्मणो! उठ २ कर अपने २ घर जाओ यह अन्न मत खाओ बड़ा दोष होगा।

चौ०—भयउ रसोई भूसुरमांसू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू॥
भूप विकल मति मोह भुलानी। भावीवश न आव मुख बानी॥

अर्थ—रसोई में ब्राह्मणों का मांस राँधा गया है सब ब्राह्मण विश्वास कर उठ खड़े हुए। राजा घबड़ा गया मोह से बुद्धि भ्रम में पड़गई और होनहार वश में होने से कुछ बोलते न बना।

दो०—बोले विप्र सकोप तब, नहिं कछु कीन्ह विचार॥
जाय निशाचर होहु नृप, मूढ़ सहित परिवार॥१७३॥

अर्थ—तब ब्राह्मणों ने कुछ विचार न किया क्रोधित होकर कहने लगे। मूर्ख राजा! तू अपने कुटुम्ब समेत राक्षस हो जा।

चौ०—क्षत्रबन्धु तैं विप्र बुलाई। घालै लिये सहित समुदाई॥
ईश्वर राखा धर्म हमारा। जैहसि तैं समेत परिवारा॥

अर्थ—हे क्षत्रियाधम! ब्राह्मणों को परिवार समेत नष्ट करने के हेतु बुलाया था। भगवान ने हमारा धर्म बचा लिया तू तेरे परिवार समेत नष्ट हो जायगा।

चौ०—सम्बत मध्य नाश तव होऊ। जल दाता न रहिहि कुल कोऊ॥
नृप सुनि शाप विकल अति त्रासा। भइ बहोरि वर गिरा अकासा॥

अर्थ—एक वर्ष के भीतर तेरा नाश हो जायगा और कुटुम्ब में कोई भी [illegible] देने वाला न रहेगा। राजा शाप को सुन कर डर के मारे व्याकुल हो गया [illegible]

इतने में फिरसे उत्तम आकाश वाणी हुई।

चौ०—विप्रहु शाप विचारि न दीन्हा। नहिँ अपराध भूप कछु कीन्हा॥
चकित विप्र सब सुनि नभ बानी। भूप गयो जहँ भोजन खानी॥

अर्थ—हे ब्राह्मणों! तुम लोगों ने भी विचार से शाप नहीं दिया राजा ने कुछ भी अपराध नहीं किया। आकाश वाणी सुनते ही सब ब्राह्मण अचंभे में पड़ गये और राजा वहां गया जहां पर रसोई घर था।

चौ०—तहँ न अशन नहि विप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा॥
सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनी अकुलाई॥

अर्थ—वहां न तो भोजन सामग्री थी और न रसोई का विप्र था राजा लौट आया (स्मरण रहे कि मायावी कालकेतु राक्षस वहां से चला गया था और उसकी माया से रची हुई रसोई भी वहां न रही) परन्तु उसके मन में भारी चिन्ता थी। उसने सब हाल ब्राह्मणों को सुना दिया और डर से घबड़ाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा।

दो०—●भूपति भावी मिटइ नहिं, यदपि न दूषण तोर॥
किये अन्यथा होय नहिं, विप्रशाप अति घोर॥१७४॥

अर्थ—हे राजा! यद्यपि इस में तुम्हारा अपराध नहीं है तो भी होनहार अमिट है। ब्राह्मणों का शाप बड़ा कठिन है वह अब पलट नहीं सकता।

● भूपति भावी मिटइ नहिं यदपि न दूषण तोर—

राग कालिंगड़ा— सब दिन होत न एक समान।
एक दिन राजा हरिश्चन्द्र गृह सम्पति मेरु समान।
एक दिन जाय श्वपच गृह सेवत अम्बर हरत मसान॥
एक दिन दुलह बनत बराती चहुँ दिशि गाजत निशान।
एक दिन डेरा होत जंगल में कर सूधे पग तान॥
एक दिन सीता रुदन करत हैं महा विपिन उद्यान।
एक दिन रामचन्द्र मिल दोउ विचरत पुष्प विमान॥
एक दिन राजा राज युधिष्ठिर अनुचर श्री भगवान।
एक दिन द्रुपद सुता त्रास देत है चीर दुशासन तान॥
प्रगट है पूरब की करनी तज मन सोच अजान।
सूरदास गुण कहँ लग बरनों विधि के अंक प्रमान॥

इस दोहे के पश्चात् १० सतरों का क्षेपक पुस्तकों में मिलेगा

चौ०—अस कहि सब महिदेव सिधाये। समाचार पुर लोगन पाये
*सोचहिं दूषण दैवहि देहीं। बिचरत हंस काग किय जेहीं

अर्थ—ऐसा कहकर सब ब्राह्मण चले गये, ये वार्त्ता सब नगर निवासि
मालूम हुई। वे लोग चिन्ता में पड़े और विधाता को दोष लगाने लगे कि
हंस बनाते बनाते कौआ बना डाला (भाव यह कि शुद्ध आचरण का
राजा राक्षस बनाया गया)।

चौ०—उपरोहितहि भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबरि जना
तेहि खल जहँ तहँ पत्र पठाये। सजि सजि सेन भूप सब धा

अर्थ—कालकेतु ने उपरोहित को घर पहुँचा दिया और फिर कपटी
को सब समाचार जा सुनाये। उस दुष्ट ने जहाँ तहाँ पत्र भेजे (समाचा
ही) सब राजा अपनी अपनी सेना सजाकर आ पहुँचे।

चौ०घेरेन्हि नगर निशान बजाई। विविध भाँति नित होइ ल
†जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप ध

अर्थ—उन्होंने डंका बजाकर नगर को घेर लिया दिन प्रतिदिन नाना
से लड़ाई होने लगी। सम्पूर्ण योद्धा शूरता से लड़ते लड़ते मरे और र
अपने भाई समेत मारा गया।

---

* सोचहिं दूषण दैवहि देहीं बिचरत हंस काग किय जेहीं—

कवित्त—[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

† जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

०—सत्यकेतुकुल कोउ न बाँचा। विप्रशाप किमि होय असाँचा॥
ॐरिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय यश पाई॥

अर्थ—सत्यकेतु के घराने में कोई भी जीता न बचा, ब्राह्मणों का शाप झूठा हो सक्ता है। सब राजा शत्रु को जीत और नगर को आबाद कर विजय का यश प्राप्त करके अपने अपने नगर को लौट गये।

दो०—†भरद्वाज सुन जाहि जब, होइ विधाता वाम॥
धूरि मेरु सम जनक यम, ताहि व्याल सम दाम॥१७५॥

शब्दार्थ—वाम=विपरीत, टेढ़ा। दाम=माला

अर्थ—(याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि) हे भरद्वाज! सुनो जब जिस को विधाता परीत होता है (अर्थात् जब जिस समय जिसका भाग्य पलटा खाता है) सब धूल मेरु पर्वत के समान, पिता यमराज के तुल्य और रत्नमाला सर्प के सदृश जाती है। भाव यह कि दुर्भाग्य आते ही राज्य हीन अकेला कालकेतु पहाड़ नाई भारी शत्रु बन गया, पिता के तुल्य मानो कपटमुनि ने यमराज का काम किया और रत्नतुल्य ब्राह्मणमंडली ने सर्प सदृश हो राजा प्रतापभानु का सर्व नाश कर डाला।

ॐ रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय यश पाई—मयंक मंजरी से

क०—धनिक उपाय नर करै धाय धाय तऊ जाके आदि करम लिख्यो है सोई पाय है।
दान दया धरम करम बिन खोय दीयो, पाप मैं रहत रत अधिक भुलायो है॥
आज जोई करै दाल पाइहू मिलै पै अब कपट करै नहीं कि काल कब खाय है।
दुनियाँ अजब अलबेली है सराय जाय, कहीं खुशी होय कहीं हाय हाय हाय है॥

नगर अर्थात् पुराना केकय देश है जिसे आज कल हिरात कहते हैं जो अफगानिस्तान देश में है।

† भरद्वाज सुनु जाहि जब, होइ बिधाता बाम। आदि—श्रीमान् ठाकुर बलभद्र सिंह पँवार स्थान देवड़ा जिला [illegible] कृत—

कवित्त—दिनन के फेर ते दुरतमान दौलत है दिनन के फेर दुख दारिद लै पाटी है।
दिनन के फेर भाई बन्धु में विरोध होत भाव 'बलभद्र' होत वानिज में घाटी है॥
दिनन के फेर छूटैं धाम धाम ग्राम आदि दिनन के फेर होत मित्र से उचाटी है।
मेरु हू ते ह्वै होत सोना हुए लोह होत दिनन के फेर ते सुमेर होत माटी है॥

और भी श्रीयुत [illegible] श्रीमती चन्द्रकला बाई (बूँदी) कृतः—

कवित्त—सम्पत्ति सुहृद [illegible] सब [illegible] महा घोर घाटी है।
[illegible] होत [illegible] होत [illegible] समान [illegible] होत हिम पाटी है॥
चन्द्रकला [illegible] होत [illegible] के [illegible] टारी है।
[illegible] दिनन के फेर से सुमेर होत माटी है॥

(२७ रावण आदि की उत्पत्ति)

चौ०—काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निशाचर सहित समाजा॥
*दश शिर ताहि बीस भुजदंडा। रावण नाम वीर बरिबंडा॥

अर्थ—हे भरद्वाज जी! समय पाकर वही (प्रताप भानु) राजा अपने साथियों समेत राक्षस हुआ। उसके दश मस्तक और बीस बाहु थे, वह वीरों में बलवान् रावण नाम का था॥

चौ०—भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुम्भ*करण बलधामा॥

---

* दश शिर ताहि बीस भुज दंडा—रावण का जीवन चरित्र विस्तार सहित लिखने की आवश्यकता जान यहां पर स्थान का संकोच मान पुरौनी में लिख दिया है॥

* कुम्भकर्ण—यह रावण का मझला भाई था। उत्पन्न होने पर इसकी आकृति आप(?) पर्वत के तुल्य थी। यह ऐसा भयंकर था कि पैदा होते ही इसने एक हज़ार प्राणी खा डाले। यह देख इन्द्र अपने हाथी ऐरावत पर सवार होकर आये और उन्हों ने इसे अपना वज्र मारा। उसने वह चोट तो सहन करली; परन्तु ऐरावत का एक दांत उखाड़ कर उसी दांत से ऐसा धमाका हाथी के जमाया कि इन्द्र वहां से भाग गये। यह सब समाचार इन्द्र ने ज्यों ही महादेव को सुनाया त्योंही उन्हों ने उसे शाप दिया कि तुझे नींद बहुत होवे। इस पर रावण की प्रार्थना सुन महादेव ने शाप का यह उद्धार किया कि छः महीने में एक दिन जागृत रहा करेगा। रावण के साथ इस ने दश हज़ार वर्ष तक घोर तपस्या की थी; परन्तु जब महादेव इसे वर देना चाहते थे, तब देवताओं ने इस के उत्पात कह सुनाये कि इस ने सात अप्सराएँ, दश देवदूत और असंख्य ऋषि खा डाले हैं इस पर से ब्रह्मा जी ने सरस्वती को प्रेरणा कर के इस की बुद्धि पलट दी। तब से इस ने वैसा ही वरदान माँगा जैसा कि ब्रह्मा का शाप हो चुका था। जब यह सोता रहा तब राजा बलि ने अपनी दौहित्री (लड़की की लड़की) वज्र ज्वाला नाम की इसे ब्याह दी। वज्र ज्वाला का दूसरा नाम वृत्रज्वाला था। रावण ने इसके सोने के निमित्त दो योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा महल बनवा दिया था। छः महीने में एक बार जाग कर यह बहुत सा अन्न व बहुत सा मांस खा और मदिरा पीकर स्त्री प्रेम में लिप्त रहा करता था तथा कभी कभी रावण की सभा में भी जा बैठता था। जब हनुमान जी लङ्का जला कर चले गये थे। उस समय रावण की सभा में यह भी उपस्थित था। वहां पर विचार हो रहा था कि यदि राम ने चढ़ाई की तो क्या उपाय करना चाहिये। कुम्भकर्ण ने कहा था कि सीता को लौटा दो, परन्तु रावण क्रोधित हो उठा, इस से उस के फिर से यह कहा कि घबराओ नहीं मैं राम की सब सेना को खा डालूंगा, ऐसा कह कर यह सो गया। लड़ाई के समय जब [illegible] मारे गये। तब रावण ने कुम्भकर्ण को जगाने का बड़ा भारी प्रयत्न किया। उसके ऊपर से हाथी चलाये, कानों में [illegible] बजाये, तब यह जागा। [illegible] लड़ाई में [illegible] विस्तार सहित दिया हुआ है। [illegible]

सचिव जो रहा धर्मरुचि जासू। भयउ*विमात्रबन्धु लघु तासू॥

अर्थ—राजा का छोटा भाई जिसका अरिमर्दन नाम था, बड़ा बलवान् कुम्भकर्ण था। उसका मंत्री जिस का नाम धर्मरुचि था, उस का सौतेला छोटा भाई था।

चौ०—नाम विभीषण जेहि जग जाना। विष्णुभक्त विज्ञाननिधाना॥

रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भये निशाचर घोर घनेरे॥

अर्थ—संसार के लोग जानते हैं कि उसका नाम विभीषण था, वह विष्णु जी का भक्त और परम ज्ञानवान् था। राजा के जो और लड़के तथा नौकर थे, वे सब बड़े दुष्ट राक्षस हुए।

चौ०—कामरूप खल जटिल कुभेका। कुटिल भयंकर विगतविवेका॥

कृपारहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाइँ विश्वपरितापी॥

अर्थ—वे दुष्ट इच्छानुसार रूपधारी बड़ी बड़ी जटाओं वाले कुरूप थे, तथा कपटी, डरावने और विवेक रहित थे। सब के सब दयाहीन, हत्यारे और पापी थे, ऐसे संसार के दुःख देने वालों का वर्णन नहीं किया जा सकता।

---

* विमात्र बन्धु = सौतेला भाई; अर्थात् विभीषण।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अर्थ—ऐसा ही हो तुमने बड़ी तपस्या की है (इस प्रकार से शिवजी बोले कि) और ब्रह्मा दोनों ने मिलकर उसे वरदान दिया था। फिर ब्रह्मदेव कुम्भकर्ण के पास गये जिसको देख कर उनके मन में बड़ा आश्चर्य हुआ सो यों कि :—

चौ०—जो इहि खल नित करब अहारा। होइहि सब उजारि संसारा ॥
शारद प्रेरि तासु मति फेरी। माँगेसि नींद मास षट केरी ॥

अर्थ—जो यह दुष्ट प्रतिदिन भोजन करता रहेगा तो सब संसार ही उजड़ जायगा (क्योंकि इस का बड़ा भारी शरीर और बहुत सा आहार था देखो लंका कांड)। सरस्वती को उकसाकर कुम्भकर्ण की मति को पलट दिया जिस हेतु उसने छः महीने की नींद मांगी (अन्य कथाओं से प्रकट है कि कुम्भकर्ण इंद्रपद मांगना चाहता था सो सरस्वती की प्रेरणा से उसने निद्रापद कह कर वरदान मांगा)।

दो०—गये विभीषण पास पुनि, कहेउ पुत्र वर मांग ॥
*तेहि माँगेउ भगवंतपद, कमल, अमल अनुराग ॥१७७॥

अर्थ—फिर ब्रह्मा जी विभीषण के पास जाकर कहने लगे कि हे बेटा! वरदान मांगो? उसने भगवान् के स्वच्छ कमलस्वरूपी चरणों में अटल प्रेम मांग लिया।

चौ०—तिनहिं देइ वर ब्रह्म सिधाये। हरषित ते अपने गृह आये ॥
मयतनुजा मंदोदरि नामा। परमसुन्दरी नारिललामा ॥

शब्दार्थ—ललामा=स्त्रियों में भूषण।

अर्थ—तीनों को वरदान देकर ब्रह्मा जी चले गये और वे आनन्दपूर्वक अपने घर पहुंचे। मय नाम राक्षस की लड़की, जिसका नाम मंदोदरी था, बहुत ही रूपवती स्त्रियों में भूषण की नाईं थी।

चौ०—सोइ मय दीन्ह रावनहिं आनी। होइहि जातुधानपति रानी ॥
हरषित भयउ नारि भलि पाई। ‡पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई ॥

---

* तेहि माँगेउ भगवंतपद कमल अमल अनुराग—सुमति [illegible] —

[illegible]

‡ [illegible] :—

([illegible])

दो०—उपजे यदपि [1]पुलस्त्यकुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर शापवश, भये सकल अघरूप ॥१७७॥

अर्थ—यद्यपि इन्होंने पुलस्त्य ऋषि के पवित्र शुद्ध अनुपम ... लिया था। तो भी ब्राह्मणों के शाप से ये सब के सब पापरूप हो गये।

चौ०—कीन्ह विविध तप तीनिउँ भाई। परम उग्र नहिं बरनि ...
गयउ निकट तप देखि विधाता। माँगहु वर प्रसन्न मैं ...

अर्थ—तीनों भाइयों ने नाना प्रकार से ऐसी कठिन तपस्या की ... वर्णन नहीं हो सक्ता। तपस्या देख ब्रह्मा जी उन के निकट आये और ... हे प्यारे! मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूं, वरदान माँगो?

चौ०—करि विनती पद गहि दशसीसा। बोलेउ वचन सुनहु ...
*हम काहू के मरहिं न मारे। वानर मनुज जाति दुइ ...

अर्थ—रावण विनती कर तथा उनके पाँवों को छूकर कहने लगा हे स्वामी सुनिये! हम किसी के मारने से न मरें। बन्दर और मनुष्य इन दो प्रा... प्राणियों को छोड़कर (भाव यह है कि जब रावण ने वर माँगा कि हम कि... मारे न मरें, तो ब्रह्मा जी ने कहा कि ऐसा नहीं हो सक्ता। हम किसी ... छोड़ कर वरदान मांगो जब रावण ने ये सोचा कि मनुष्य और बंदर तो ... खाद्य हैं इसहेतु उन्हें छोड़ कर और किसी के हाथ से न मरूं, ऐसा वरदान ...

चौ०—एवमस्तु तुम बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्मा मिलि तेहि वर दीन्हा।
पुनि प्रभु कुम्भकरण पहँ गयऊ। तेहि विलोकि मन ...

[1] पुलस्त्य—पहिले मन्वन्तर में महादेव के शाप से मरे हुए पुलस्त्य नामी ... पुत्र को ब्रह्मदेव ने फिर से इस वैवस्वत मन्वन्तर के आरम्भ में सजीव किया। इसे ब्र... ने यज्ञअग्नि के पिंगल रंगके बालों से उत्पन्न किया था। ये ऋषि जी सत्ययुग ... पर्वत के समीप पहले ही से तपस्या करते थे। वहीं पर गंधर्व आदि की ... तान छेड़ा करतीं थीं। उस से इन की तपस्या में विघ्न पड़ता था। उस पर से ... ने यह शाप दे रक्खा था कि जो कन्या मेरे सन्मुख आवेगी, वह गर्भिणी हो ... एक समय तृणविन्दु राजा की कन्या शाप का हाल न जान कर वहां गई, तो ... हो गई। तब तो तृणविन्दु ने पुलस्त्य ही के गले उसे मढ़ दिया। इस से ... उत्पन्न हुआ। उसका नाम विश्रवा रक्खा गया॥ विश्रवा से कुवेर, रावण, ... विभीषण, शूर्पनखा, खर और दूषण आदि उत्पन्न हुए थे (देखो आरण्यकांड ... की श्री विनायकी टीका की टिप्पणियां)।

* हम काहू के मरहिं न मारे—सुमति मन रंजन नाटक से—

दो०—मरौं न काहू हाथ सों, जीति लेउँ संसार।
नर वानर को त्यागि के, जे मम सदा अहार॥

दो०—खाईं सिंधु गँभीर अति, चारिउ दिशि फिरि आव ॥
कनककोटि मणिखचित, दृढ़ बरनि न जाइ बनाव ॥

अर्थ—जिसके चारों ओर बड़ा गहरा समुद्र ही खाई के रूप से है तथा पक्का किरकोटा सोने का बना हुआ था जिसमें ऐसे रत्न जड़े थे कि उसकी रचना का वर्णन नहीं हो सक्ता।

दो०—हरिप्रेरित जेहि कल्प जोइ, यातुधानपति होइ ॥
सूर प्रतापी अतुलबल, दलसमेत बस सोइ ॥१७८॥

अर्थ—ईश्वर की इच्छा से जिस कल्प में जो राक्षसों का राजा होता है वह योद्धा प्रतापवान और बड़ा बलवान उसी स्थान में आ करके निवास करता है।

चौ०—रहे तहां निशिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर संहारे ॥
अब तहँ रहहिं शक्र के प्रेरे। रक्षक कोटि यक्षपति केरे ॥

अर्थ—वहां पर जो राक्षसों के बड़े भारी योद्धा रहते थे उन सब को देवताओं ने संग्राम में मार डाला था। रावण के समय वहां पर इन्द्र की आज्ञानुसार यक्षपति के करोड़ों यक्ष रहते थे।

चौ०—दशमुख कतहुँ खबरि असपाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई ॥
देखि विकट भट बड़ि कटकाई। यक्ष जीव ले गये पराई ॥

अर्थ—जब रावण ने कहीं से यह समाचार पा लिये (कि लंकापुरी राक्षसों के राजा के हेतु निर्माण की गई है) तब तो उसने बड़े योद्धाओं और भारी सेना को तैयार कर लंका गढ़ को जा घेरा। जब यक्षों ने बड़े बड़े योधा और भारी सेना को देखा तब तो वे अपना जीव लेकर भाग गये।

चौ०—फिरि सब नगर दशानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ विशेषा ॥
सुन्दर सहज अगम अनुमानी। कीन्ह तहां रावण रजधानी ॥

अर्थ—जब रावण ने सब नगर को घूम कर देखा तब उसका सोच दूर हुआ और उसे बड़ा आनन्द हुआ। रावण ने उसे सुन्दर और स्वभाव ही से (शत्रु की) पहुंच के बाहर समझ कर अपनी राजधानी बना ली।

चौ०—जेहि जस योग बांटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे ॥

अर्थ—जिसको जैसा योग्य था वैसा घर दे दिया इस प्रकार सब राक्षसों को सुखी किया।

—सुख संपति सुत सेन सहाई । जयप्रताप बल बुद्धि बड़ाई ॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई ।*जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई ॥

र्थ—सुख, धन, लड़के, सेना और सहायक तथा विजय, तेज, बल, बुद्धि इप्पन । दिनों दिन सब अधिक ही अधिक होते जाते थे जिस प्रकार लाभ लोभ बढ़ता जाता है ।

—अति बलकुम्भकरण अस भ्राता । जेहि कहँ नहिँ प्रतिभटजगजाता॥
करइ पान सोवै षटमासा । जागत होय तिहूँ पुर त्रासा ॥

अर्थ—इसका बड़ा बलवान् कुम्भकर्ण नाम का भाई था जिसकी बराबरी का संसार में उत्पन्न ही नहीं हुआ । वह मदिरा पीकर छः महीने तक सोया था और जब जागता था तो तीनों लोक में त्रास होता था ।

—जो दिन प्रति अहार कर सोई । विश्व वेगि सब चौपट होई ॥
समर धीर नहिं जाइ बखाना । तेहि सम अमित वीर बलवाना ॥

अर्थ—यदि वह प्रतिदिन पेट भर भोजन करता तो सब संसार शीघ्रही चौपट ता । वह लड़ाई में ऐसा साहसी था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सका के समान बलवान् योधा कोई न था ।

०—†वारिदनाद जेठ सुत तासू । भट महँ प्रथम लीक जगजासू ॥
जेहि न होइ रण सन्मुख कोई । सुरपुर नितहि परावन होई ॥

शब्दार्थ—वारिदनाद (वारि=पानी + दा=देनेवाला + नाद=शब्द)= नी का देने वाला जो मेघ है, उसी के सदृश जिस का शब्द हो र्थात् मेघनाद । प्रथम लीक=पहिली लकीर अर्थात् पहिला नम्बर । रावन (शुद्ध शब्द पलायन) = भागा भाग, भगदड़ ।

---

*जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई जैसा कहा है

श्लो०—शतेषु निःस्वो [illegible] सहस्री लक्षमीहते ।
लक्षाधिपस्तथा राज्यं राज्यस्थः स्वर्गमीहते ॥

अर्थात् जिस के पास (किसी भाँति) सौ रुपये रहते हैं वह हजार रुपये की इच्छा करता है, हजार वाला लखपती होना चाहता है लखपति, राज्य की इच्छा करता है और राजा स्वर्ग की कामना करता है ॥

† वारिदनाद (वारिद—मेघ + नाद = शब्द)—

रावण की मन्दोदरी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था । जिसने [illegible]

एक बार*कुबेर पर धावा। †पुष्पकयान जीति लै आ[illegible]

अर्थ—एक समय वह कुबेर पर चढ़ दौड़ा और उसके पास से [illegible] विमान छीन लाया।

दो०—‡कौतुक ही कैलाश पुनि, लीन्हेसि जाय उठाय।
मनहुँ तौलि निज बाहु बल, चला बहुत सुख पाय॥१७९॥

अर्थ—फिर एक बार रावणने खिलवाड़ की रीति पर कैलास पर्वत को उठा[illegible] मानो उसने अपने भुजदंडों का पराक्रम जाँचा हो फिर वह बहुत प्रसन्न होता हुआ लौ[illegible]

---

* कुबेर आदि—

ब्रह्मा के सुत पुलस्त्य ऋषि के पुत्र का नाम विश्रवा था। इनकी पहिली स्त्री [का] नाम देववर्णिनी था, जो भरद्वाज ऋषि की पुत्री थी। इस सम्बन्ध से केवल एक हुआ उस का नाम वैश्रवण था जिसका प्रचलित नाम कुबेर है विश्रवा की दूसरी कैकसी नाम की राक्षस कन्या थी. जिस से रावण, कुम्भकर्ण विभीषण सूर्पनखा ये चार संतान हुए। तीन और राक्षस कन्या ये भी विश्रवा की [स्त्री] थीं। इन में से पुष्पोत्कटा नाम की स्त्री से महोदर, महापार्श्व, प्रहस्त और कुंभी[नसी] ये चार संतान हुए थे। राका से खर नाम राक्षस हुआ था और [illegible] त्रिशिरा, दूषण और विद्युज्जिह्व आदि राक्षस हुए थे॥

† पुष्पकयान जीति लै आवा—विजय दोहावली से—

दो०—कीन्ह यज्ञ जब रघु नृपति, दीन्हो अद्भुत दान।
वाच्यो आइ कुबेर तब, दीन्हों पुहुपविमान॥
गुण समस्त बहु समझि के, दान दीन्ह परसन्ध।
सो वर याही जाय के, छीन लीन्ह दशकन्ध॥
कीन्ही अरज कुबेर तब, सुनौ अवध अवनीश।
आपन दीन्ही दक्षिणा, छीन लीन्ह दशशीश॥
कीन्ह क्रोध तब रघुनृपति, दशहुशर सन्धान।
ठाढ़ भये सोइ कोट पर, हरौं दशौं के प्रान॥
[illegible] समझायो, सुनहु अवध अवनीश।
[illegible] ये शर धरौं, तब मरि है दशशीश॥
[illegible] के बचन तब, धरि राख्यो महिपाल।
[illegible] हुए हैं वंश में, तब हनि हैं दश भाल॥
[illegible] अवनीश तब, लिखि राखी यहि पान।
[illegible] इबेर को, महाराज हनुमान॥

[illegible] जी ने पुष्पक विमान को लेकर अयोध्या में पहुँचे [illegible] [illegible] ([illegible]) ॥

‡ [illegible] कैलाश उठाने की कथा [illegible]
[illegible]

अर्थ—वे इच्छानुसार रूप धारण कर लेते थे क्योंकि वे सब माया जानते थे और दया तथा धर्म तो स्वप्न में भी न जानते थे। एक समय रावण ने सभा में बैठ कर अपने बड़े परिवार को देखा।

चौ०—सुत समूह जन परिजन नाती। गनइ कोपार निशाचरजाती॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी॥

अर्थ—पुत्रों का झुण्ड, सेवक, परिवार के लोग, नाती आदि राक्षसों के भेदों को कौन गिन सक्ता था। सेना को देख स्वभाव ही से अहंकारी रावण क्रोध और मस्ती के भरे हुए वचन कहने लगा।

चौ०—सुनहु सकल रजनीचर यूथा। हमरे बैरी बिबुधबरूथा॥
ते सन्मुख नहिं करत लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई॥

अर्थ—हे सम्पूर्ण राक्षसगण! सुनो, हम लोगों के वैरी देवगण हैं। वे साम्हना करके तो लड़ते ही नहीं, शत्रु को बलवान् देख भाग जाते हैं।

चौ०—तिन कर मरण एक बिधि होई। कहौं बुझाइ सुनहु अब सोई॥
द्विजभोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम बाधा॥

अर्थ—उनका मरना एक उपाय से होगा, मैं समझाकर कहता हूं, अब तुम लोग उसे सुनो। ब्राह्मणभोजन, यज्ञ, हवन और श्राद्ध इन सब में तुम लोग जाकर बाधा डालो।

दो०—*क्षुधाक्षीण बलहीन सुर, सहजहिं मिलिहहिं आय।
तब मारिहउँ कि छाँड़िहौं, भली भाँति अपनाय॥१८१॥

* क्षुधाक्षीण बलहीन सुर—हिरण्यकशिपु दैत्य ने भी प्रायः इसी प्रकार का अधर्म मचा रक्खा था। वह देवताओं के हविर्भाग को आपही लेने लगा था, जिससे देवता केवल वायु भक्षण करके रहते थे। यथा—श्री मद्भागवत के सातवें स्कन्ध के चौथे अध्याय की नीचे लिखी हुई पंक्तियों से स्पष्ट होगा—

श्लो०—स एव वर्णाश्रमिभिः क्रतुभिर्भूरि दक्षिणैः
इज्य मानो हविर्भागा नग्रहीत्स्वेन तेजसा॥१५॥

× × × × × ×

उपतस्थु हृषीकेशं विनिद्रा वायुभोजनाः॥२१॥

अर्थ यह कि हिरण्यकशिपु आश्रमी लोगों से दिये हुए देवताओं के हविर्भाग को आप ही लेने लगा। × × × × तभी तो सब देवताओं ने जो निद्रा त्याग चुके थे और जो केवल वायु भक्षण कर रहे थे। इसीसे भगवान से उस के मारने की प्रार्थना की और उन्हों ने ऐसा करने की प्रतिज्ञा की॥

अर्थ—उसका बड़ा लड़का मेघनाद था जो संसार में योद्धाओं का ई गिना जाता था। उसके साम्हने लड़ाई में कोई भी खड़ा न होता था (यहाँ कि) स्वर्ग लोक में तो भागा भाग मच जाती थी (जब वह वहांपर जा पहुंचता)

दो०—कुमुख अकंपन कुलिश रद, धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय॥१८०

शब्दार्थ—कुमुख, शुद्ध नाम दुरमुख। कुलिशरद प्रचलित नाम वज्रदंत।

अर्थ—दुरमुख, अकम्पन, वज्रदंत, धूमकेतु, और अतिकाय नाम के योद्धा थे कि इनमें से कोई भी अकेला ही सब संसार को जीत सकता था। (ऐसे) योद्धाओं के (अनेक समूह थे)

चौ०—कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिन के धर्म न दाया।
दशमुख बैठ सभा इक बारा। देखि अमित आपन परिवारा।

से बड़े २ यज्ञ कर लिये थे। और शिवजी को प्रसन्न कर दिव्य रथ, धनुष बा[illegible] और तामसी माया प्राप्त कर ली थी। रावण एकबार मेघनाद को साथ लेकर लड़ने गया। वहां पर इन्द्र के नाना सुमाली के मारे जाने से राक्षसों की हार [illegible] मेघनाद आगे बढ़ा। इसने इन्द्र के लड़के जयन्त को परास्त कर इन्द्र से भी युद्ध [illegible] और गुप्त होकर अपने अस्त्र शस्त्रों से इन्द्र को जर्जरित करके पकड़ कर लंका को ले गया। इसका पराक्रम देखकर रावण बहुत प्रसन्न हुआ। इन्द्र के पकड़े [illegible] देवता ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्मा ने मेघनाद के पास आकर इन्द्र के छोड़[illegible] कहा। मेघनाद ने कहा तुम मुझे अमर कर देओ? ब्रह्मा ने कहा कि तुम [illegible] करो और [illegible]। मेघनाद बोला कि जब २ मैं [illegible] [illegible]

अर्थ—भूख से दुर्बल और बल से हीन देवता सहज ही में मुझ से भ
तब उन्हें या तो मार ही डालूंगा या उन्हें अपने आधीन करके छोडूँगा।

चौ०—मेघनाद कहँ पुनि हँकरावा। दीन्ह सीख बल बै
जे सुर समरधीर बलवाना। जिनके लरिबे कर अभि
तिनहिं जीत रण आनेसु बाँधी। उठ सुत पितु अनुशासन

शब्दार्थ—बल = सेना। काँधी = अंगीकार की।

अर्थ—फिर उसने मेघनाद को बुलाया और उसे सिखापन, तथा
बैर के लिये उत्तेजना दी और कहा—जो देवता लड़ाई में स्थिर रहते हैं
वान् हैं और जिन को लड़ने का घमंड है। लड़ाई में जीतकर उन
बांध लाओ? पिता की आज्ञा अंगीकार कर इन्द्रजीत उठ खड़ा हुआ
पितु अनुशासन काँधी" का दूसरा अर्थ यह भी हो सक्ता है कि हे
और अपने पिता की आज्ञा स्वीकार करो—

चौ०—इहि विधि सबहीं आज्ञा दीन्ही। आपुन चलेउ गदा कर
चलत दशानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिं सु

अर्थ—ऊपर कहे अनुसार सब को आज्ञा दी और आप अपने
लेकर चला। रावण के चलते समय पृथ्वी डगमगाने लगी और उस
से देवताओं की स्त्रियों के गर्भ गिरने लगे।

चौ०—रावण आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरुगि
दिगपालन्ह के लोक सुहाये। सूने सकल दशान

अर्थ—रावण को क्रोध सहित आते हुए सुन कर देवगण मेरु के
जा छिपे। रावण को दिग्पालों के सुन्दर लोक भी सूने मिले (अ
निवासी भी भाग गये थे।)

चौ०—पुनि पुनि सिंहनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि
⊙रणमदमत्त फिरै जग धावा। प्रतिभटखोजतकत

अर्थ—बारम्बार सिंह की नाईं गर्जना करके ललकार के साथ

* रण मद मत्त फिरै जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पाव
इसके पश्चात् बहुधा रामायणों में कई क्षेपकों का संपुट है जो पुरानी

आपुन उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीसा ॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिय नहिं काना ।
तेहि बहु विधि त्रासै देश निकासै जो कह वेद पुराना ॥

शब्दार्थ—खीसा (शुद्ध शब्द खीस) = नाश ।

अर्थ—रावण जहां कहीं जप योग का अभ्यास वैराग्य अथवा तपस्या और यज्ञ का कोई भी कर्म सुन पाता था। वहां आपही दौड़ जाता था, उसे होने नहीं देता था और सब को नाश कर डालता था। इस रीति से सब संसार के प्राणी आचार हीन होगये और धर्म तो कहीं भी सुनाई तक न देता था। और जो कोई वेद अथवा पुराण पढ़ता था उसे बहुत प्रकार से कष्ट देकर देश से निकाल देता था।

दो०—*बरनि न जाइ अनीति, घोर निशाचर जो करहिं ।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन के पापहिं कवनि मिति ॥१८३

अर्थ—दुष्ट राक्षस जो जो अत्याचार करते थे उनका वर्णन नहीं हो सक्ता। जिनका प्रेम हत्या ही में रहता है उनके अधर्मों का क्या ठिकाना है !

चौ०—बाढ़े खल बहु चोर जुआरा । जे लंपट परधन परदारा ॥
मानहिं मात पिता नहिं देवा । साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिनके ये आचरण भवानी । ते जानहु निशिचर सम प्रानी ॥

अर्थ—बहुत से चोर जुआरी तथा दूसरे का धन और स्त्री के चाहने वाले दुष्ट प्राणी बढ़ गये। वे माता पिता और देवता किसी को नहीं मानते थे। वरन साधुओं से अपनी टहल करवाते थे। महादेव जी कहते हैं कि हे पार्वती ! जिन लोगों के काम ऊपर कहे अनुसार हैं उन्हें राक्षसों ही के समान मानो।

चौ०—अतिशय देखि धर्म की हानी । परम सभीत धरा अकुलानी ।
गिरि सरि सिन्धु भार नहिं मोही । †जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ॥

---

* बरनि न जाइ अनीति, घोर निशाचर जो करहिं—ऐसा कि कहा है 'विद्या विवादाय धनं मदाय, शक्तिः परेषाम् परिपीड़नाय' अर्थात् विद्या पढ़ कर विवाद करना, धन पाकर मद मस्त होना तथा बल पाकर दूसरों को दुःख देना यहीं (दुष्टों के लक्षण हैं)।

† जस मोहि गरुअ एक परद्रोही—

(दोहा)

अर्थ—उसने देवता, यक्ष, स्वर्ग के गवैयों, मनुष्य, किन्नरों और नागों की तथा बहुतेरी सुन्दर सुन्दर स्त्रियां अपने पराक्रम से जीत कर ब्याह लीं।

चौ०—इन्द्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहि[illegible]

प्रथमहिं जिन कहँ आयसु दीन्हा। [illegible]

अर्थ—मेघनाद से जो कुछ रावण ने कहा था वह तो सब उसने पहले ही कर रक्खा था। (अर्थात् इन्द्र को जीतकर लंका में पकड़ लाया था ही से इसका नाम इन्द्रजीत हुआ था। इत्यादि) और जिन्हें पहिले [illegible] उन्होंने जो कुछ चरित्र किये सो सुनो।

चौ०—देखत भीमरूप सब पापी। निशिचरनिकर देवपरि[illegible]

करहिं उपद्रव असुरनिकाया। नानारूप धरहिं करि[illegible]

शब्दार्थ—भीम=भयंकर। परितापी= दुःख दाई।

अर्थ—सब राक्षस देखने में भयंकर रूपवाले और पापी तथा [illegible] दुःखदाई थे। राक्षसों के झुंड उपद्रव किया करते थे और माया से [illegible] रूप धारण कर लेते थे।

चौ०—जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं वेदप्र[illegible]

जेहिजेहि देश धेनु द्विज पावहिं। नगर गाँव पुर आग ल[illegible]

अर्थ—जिन से धर्म का नाश हो वैसे ही वेद विरुद्ध काम किया [illegible] जिस २ प्रांत में गौओं और ब्राह्मणों को देख पाते थे, वहीं शहर हो, गांव [illegible] खेड़ा हो, सबही में आग लगा देते थे।

चौ०—शुभ आचरण कतहुँ नहिं होई। देव विप्र गुरु मान [illegible]

नहिं हरिभक्ति यज्ञ जप दाना। सपनेहु सुनिय न वेद[illegible]

अर्थ—भले काम तो कहीं भी न होते थे और देवता ब्राह्मण [illegible] कोई भी न मानता था। न तो ईश्वर की भक्ति, न हवन, न जाप [illegible] होते थे तथा वेद और पुराण तो कभी सुनने में भी न आते थे।

छंद—*जप योग विरागा तप मखभागा श्रवण सुनै दससी[illegible]

---

* जप जोग विरागा तप मखभागा श्रवण सुनइ दससीसा..........

[illegible]

***ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मेरो कछु न बसाई।**
जा करि तैं दासी सो अविनाशी हमरउ तोर सहाई॥

अर्थ—ब्रह्मा सब समझ गये उन्होंने मन में विचार किया कि इसमें मेरा कुछ उपाय नहीं चलता (क्योंकि वरदान तो मैं ही दे चुका हूं)। जिसकी तुम दासी हो वही नाश रहित परमात्मा हमारा और तुम्हारा सहायक है।

अर्थात् एक समय रावण आदि राक्षसों के पाप भार से दुःखित हुई पृथ्वी गौ रूप धारण कर तथा सम्पूर्ण देवताओं और मुनीश्वरों को साथ ले के ब्रह्मलोक में गई और रो रो कर अपना सब दुःख सुनाने लगी। ब्रह्मदेव तो सब के हृदय की जानने वाले हैं क्षण भर तक ध्यान करते ही सब हाल जान गये॥

* ब्रह्मा—सृष्टि का उत्पत्ति कारण भूत जो रजोगुण उसके मूर्तिमान् देव ब्रह्माजी हैं। रजोगुण से सतोगुण और तमोगुण की मध्यमस्थिति समझी जाती है अथवा निमित्त कारण और विवर्तोपादान कारण की मध्यम अवस्था यही रजोगुण है, इसी कारण से यद्यपि ब्रह्मदेव में सतोगुण के साथ किंचित् मलीनता मिलेहुए रजोगुण की उपाधि विशिष्ट है और इसी हिसाब से इन में कुछ जीवत्व दशा है तौभी ये व्यष्टि जीवके समान एक देशीय जीवधारी नहीं है ये तो समष्टी के जीव हैं। भाव यह है कि ब्रह्मांडों के जितने जीव हैं उन सब के ये आधार भूत जीव हैं अर्थात् सब जीवों के ईश्वर हैं, इन्हों ने जो रूपधारण किया वह अपनी ही इच्छानुसार किया है, इसी से इनके नाम स्वयंभू, आत्मभू, आदि हुए हैं। उपवेदों सहित चारों वेदों के यही उत्पत्तिस्थान हैं. इसी से इन्हें चतुर्मुख, चतुरानन आदि कहते हैं। इनकी मूर्ति केवल ज्योतिरूप है। इनका निवास स्थान सत्यलोक है, इन्हों ने संकल्पमात्र से सब सृष्टि की रचना की है. इसी से इनके निद्राकाल में सृष्टिका लय हो जाता है. जब ये निद्रा से उठते हैं तब जीवधारी फिर उत्पन्न हो जाते हैं परन्तु जिस समय ये मुक्त हो जाते हैं उस समय सब जीव भी मुक्त नहीं हो जाते कारण मोक्ष तो विचार साध्य है। संपूर्ण देव, ऋषि प्रजापति आदि के उत्पन्न करने वाले ये ही हैं, इसी से इनके नाम धाता और विश्वसृट् आदि अर्थ युक्त हैं। इन्हों ने कुछ सृष्टि अपने पुत्रों द्वारा करवाई है इस हेतु इन्हें पितामह भी कहते हैं (देखो भारत आदि पर्व अ० ६५ शांति पर्व अ० ३३६)। ४३२०००० वर्ष की एक चौकड़ी होती है ऐसी १००० चौकड़ी हो जाने पर इनका एक दिन होता है और इतने ही वर्षों की रात्रि जानो. इस एक दिन रात की अवधि को कल्प कहते हैं. इनके प्रत्येक कल्प में पृथ्वी पर १४ मनु और स्वर्ग में १४ इन्द्र होजाते हैं, ऐसे ३६० कल्पकी इनकी एकवर्ष होती है. इस प्रकार इनकी सौ वर्ष की आयु है उस में से ५० वर्ष तो हो चुके हैं ये ५१ वां वर्ष प्रारंभ है। उसमें ६ मन्वन्तर हो गये हैं, सातवें मन्वंतर की अट्ठाईसवीं चौकड़ी का यह श्वेत वाराह नाम का कल्प है। इस कल्प के कलियुग की ५०१४ वर्षों से अधिक हो चुकी है। यह न समझना चाहिये कि प्रत्येक कल्प के प्रारंभ में ब्रह्मा जी को नये सिरे से सृष्टि उत्पन्न करनी पड़ती है क्योंकि लिखा है 'यथा पूर्वमकल्पयत्' इस से सृष्टि का क्रम पूर्व ही के अनुसार ज्यों का त्यों प्रारंभ हो जाता है इसमें जो कुछ न्यूनाधिक हो जाता है वही संभाल लिया जाता है।

अर्थ—धर्म की बहुत ही गिरी दशा देख पृथ्वी अत्यंत भयभीत हे उठी। (और कहने लगी) मुझे पर्वत, तालाब और समुद्र का इतना भा व्यापता। जितना कि दूसरे से छल करने वाला मुझे बोझिल जान

चौ०—सकल धर्म देखे विपरीता। कहि न सकइ रावण भय

धेनुरूप धरि हृदयविचारी। गई तहां जहँ सुर मुनि

*निज संतापसुनायसि रोई। काहू ते कछु काज न हो

अर्थ—उसने सम्पूर्ण धर्म उलटेही देखे परन्तु रावण के डर के मारे वह कु नहीं सक्ती थी। हृदय में विचार कर गौ रूप धारण किया और उस स्थान जहां पर देवताओं और मुनियों की समाज थी। उनसे अपना दुःख रो र सुनाया और बोली कि किसी से कुछ भी करतूति नहीं बन सक्ती।

छंद—सुर †मुनि गंधर्वा मिलि करि सर्वा गे विरंचि के लोका

सँग गोतनुधारी भूमि विचारी परम विकल भय शोका

अर्थ—देवता मुनि गंधर्व सब के सब मिल कर ब्रह्मा के लोक को गये। विचारी पृथ्वी गौ का रूप धारण किये हुए दुःख से बहुत ही व्याकुल थी।

दो०—सात द्वीप सरि सिन्धु सब, मन्दर मेरु पहार।
मोहि इतो नहिं भार है, परद्रोही जित भार॥

* निज संताप सुनायसि रोई। काहू ते कछु काज न होई—सीता स्वयम्वर से—ह हरिये दुख दीनदयाल जाल जग छायो। अब दुराचारि निशिचारिन अधम प्रचा नृप त्यागि नीति परतीति प्रजा निघटे हैं। सत रीत मीत तजि मीत भीत प्रक सब धर्मपंथ सद्ग्रंथ प्रमाण कटे हैं। छल छंद फंद, नित द्वन्द्व व्याधि लपटे कपटी शठ दुष्ट लबार भारि दरशायो॥ अब॥ १॥
कच लंपट चोर चवाव भाव उलटे हैं। कुल धर्म भागि नर नारि भये कुल पर पंच पँच को न्याव सत्य पलटे हैं। मर्याद मान सन्मान ज्ञान विघटे बढ़िगो बहु पाप पहार भार गरुआयो॥ अब॥ २॥
नहिं रह्यो पुण्य को अंश धर्म सब नाश्यो। अधरम अकर्म बेशर्म भर्म परका ठग का मग्न काम तमाम मोह मद फांस्यो। हिंसारत मारत जीव जीव को आर धन माँगे देत न आप आय गोहरायो॥अब॥३॥
सब रहीं भई विपरीत वर्ण सब गोये। नशिगो मख दान सुमान ज्ञान गुण म कोउ पुजत देव न भेव भक्ति मगरोये। लखि दुखित दासि अविनाशि कहां तुम दिन दिन अधर्म अधिकात न जात गनायो। अब दुराचारि निशिचारिन अधम प्रचा
† सुर मुनि गंधर्वा ....

श्लो०—भूमिर्भारेण मग्ना दशवदनमुखा शेष रक्षो गणान्त,
भूत्वा गोरूपमार्दारि विज मुनिजनैः साकमब्जा सनस्य।
गत्वा लोकम् रुदन्ती व्यसनमुपगतम् ब्रह्मणे प्राहसर्वं,
ब्रह्मा ध्यात्वा मुहूर्त्तं सकल मपि हृदा वेद शेषात्मकत्वात्॥

(क्र

-अग (अ=नहीं + गम्=चलना)=जो चले नहीं अर्थात् पर्वत वृक्ष पदार्थ। जग=बार २ चलने वाले अर्थात् जंगम या चलने वाले रागी (वि=नहीं + रागी=सनाहुआ)=जो माया में सना हुआ नहीं है रहित।

रमेश्वर स्थिर और चलने वाले सब पदार्थों में भरा है और सब से ग रहित है, परंतु प्रेम के कारण इस रीति से प्रकट होता है जैसे आग कि यद्यपि परमेश्वर सब में व्याप्त है तौभी सब से अलग है परंतु प्रेम के ट हो जाता है जैसे काठ में अग्नि रहती है परंतु वह उसमें छिपी हुई रहती लकड़ियों का संघर्षण हुआ तो उन्हीं में से निकल पड़ती है)। ऐसा ऐो भाया और ब्रह्मा जी कह उठे सत्य है, सत्य है।

सुनि विरंचि मन हर्ष अति, पुलकि नयन भरि नीर।
कर जोरे अस्तुति करत, सावधान मति धीर ॥१८५॥

—(मेरे वचन) सुनते ही ब्रह्मा जी के हृदय में बड़ा आनंद हुआ, उनके हो आये और नेत्रों में आंसू भर गये। फिर वे अपनी बुद्धि को स्थिर कर र हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे।

जय जय सुरनायक जनसुखदायक प्रणतपाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुताप्रियकंता॥
पालन सुर धरणी अदभुत करणी मर्म न जानै कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करहु अनुग्रह सोई॥

ग़ज़ल—जो प्रभु को मन से ध्याते हैं, उसी के गीत गाते हैं।
वे बैकुंठों में जाते हैं, अटल पदवी को पाते हैं॥
वही साकार सगुन है, वही का नाम निर्गुन है।
[illegible] कोई भी उस बिन है, [illegible] बिन है॥
जहाँ पर उसको ध्याया है, वहीं मौजूद पाया है।
[illegible] 'मदन' भी गाता है, वही सब जी में आया है॥

(जय जय सुरनायक जन सुखदायक ……करहु अनुग्रह सोई—श्री [illegible]
[illegible] की स्तुति [illegible] द्वारा करते हैं यथा—
छंद—जय जय [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अर्थ—धर्म की बहुत ही गिरी दशा देख पृथ्वी अत्यंत ...
उठी। (और कहने लगी) मुझे पर्वत, तालाब और समुद्र का इतना
व्यापता। जितना कि दूसरे से छल करने वाला मुझे बोझिल

चौ०—सकल धर्म देखे विपरीता। कहि न सकइ रावण ...
धेनुरूप धरि हृदयविचारी। गई तहां जहँ सुर मुनि ...
*निज संतापसुनायसि रोई। काहू ते कछु काज न ...

अर्थ—उसने सम्पूर्ण धर्म उलटेही देखे परन्तु रावण के डर के ...
नहीं सक्ती थी। हृदय में विचार कर गौ रूप धारण किया और उस ...
जहां पर देवताओं और मुनियों की समाज थी। उनसे अपना दुःख रो ...
सुनाया और बोली कि किसी से कुछ भी करतूति नहीं बन सक्ती।

छंद—सुर †मुनि गंधर्वा मिलि करि सर्वा गे विरंचि के लोका।
सँग गातनुधारी भूमि विचारी परम विकल भय शोका।

अर्थ—देवता मुनि गंधर्व सब के सब मिल कर ब्रह्मा के लोक को गये।
विचारी पृथ्वी गौ का रूप धारण किये हुए दुःख से बहुत ही व्याकुल थी।

दो०—सात द्वीप सरि सिन्धु सब, मन्दर मेरु पहार।
मोहि इतो नहिं भार है, परद्रोही जित भार॥

* निज संताप सुनायसि रोई। काहू ते कछु काज न होई—सोना स्वयम्वर से
हरिये दुख दीनदयाल जाल जग छायो। अब दुराचारि निशिचारिन अधम मचा...
नृप त्यागि नीति परतीति प्रजा निघटे हैं। सत रीत मीत तजि प्रीत भीत भई...
सब धर्मपंथ सद्ग्रंथ प्रमाण कटे हैं। छल छंद फंद, नित द्वन्द्व व्याधि बाढ़ी...
कपटी शठ दुष्ट लबार झारि दरशायो॥ अब॥ १॥
कच लंपट चोर चवाव भाव उलटे हैं। कुल धर्म मारि नर नारि ...
पर पंच पँच को न्याव सत्य पलटे हैं। मर्याद मान सन्मान ...
बढ़िगो बहु पाप पहार भार गरुआयो॥ अब॥ २॥
नहिं रह्यो पुण्य को अंश धर्म सब नाश्यो। अधरम अकर्म ...
ठग का मग्र काम तमाम मोह मद फांस्यो। हिंसारत मारत ...
धन माँगि देत न आप आय गोहरायो॥ अब॥ ३॥
सब सृष्टि भई विपरीत वर्ण सब गोये। नशिगो मन्त्र दान ...
कोउ पूजन देव न सेव भक्ति मगरोये। लखि दुखित दासि ...
दिन दिन अधर्म अधिकात न जात गनायो। अब दुराचारि नि...
† सुर मुनि गंधर्वा ....

श्लो०—भूमिर्भारेण मग्ना दशवदनमुखा शेष रक्षो...
भूत्वा गोरूपमार्द्रा हि द्विज मुनिजनैः साकम्...
गत्वा लोकम् रुदन्ती व्यसनमुपगतम् ...
ब्रह्मा ध्यात्वा मुहूर्तं सकल मपि हरा ये... ...याम्॥

त्याग बड़ी ही प्रीति से वैराग्ययुक्त मुनियों के समूह रात दिन ध्यान लगाते हैं : गुणानुवाद गाते रहते हैं ऐसी सच्चिदानंद मूर्ति की जय होवे।

न्द–जेहि सृष्टि उपाई त्रिविधि बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करहु अघारी चिन्त हमारी जानिय भक्ति न पूजा॥
जो भवभयभंजन मुनिमनरंजन खंडन विपतिबरूथा।
मन वच क्रम बाणी छांड़ि सयानी शरण सकलसुरयूथा॥

शब्दार्थ—उपाई = उपजाई। अघारी (अघ = पाप + अरि = शत्रु) = पाप शत्रु अर्थात् पापनाशक। भव = संसार। बरूथा = समूह। सयानी = तुराई।

अर्थ–जिस ने विना किसी दूसरे की सहायता के सत, रज, तम मय तीन प्रकार से ष्टि की रचना की है सो हे पापनाशक प्रभु, हमें न भूलिये। हम आप की भक्ति ार पूजा कुछ भी नहीं जानते हैं। जो संसार के डर से छुड़ाने वाले भक्तों के न के प्रसन्न करनेवाले तथा आपत्ति के समूहों को नाश करने वाले हो। सो नसा वाचा कर्मणा से चतुराई का त्याग सम्पूर्ण देवगण आप की शरण में आये हैं।

छन्द–शारद श्रुति शेषा ऋषय अशेषा जा कहँ कोउ नहिं जाना।
जेहि दीन पियारे वेद पुकारे द्रवहु सो श्री भगवाना॥
भववारिधिमन्दर सब विधि सुन्दर गुनमंदिर सुखपुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा॥

अर्थ—जिन्हें सरस्वती, वेद, शेषनाग और सम्पूर्ण ऋषिगण कोई भी नहीं जानते। और जिन्हें वेद पुकार कर कहते हैं कि अनाथ जिस को प्रिय हैं ऐसे श्री भगवान् हमारे ऊपर कृपा करो। आप संसाररूपी समुद्र को मंदराचल के समान, सब प्रकार से सुन्दर गुणों के स्थान और सुख से परिपूर्ण हैं सो हे प्रभु! मुनिगण, सिद्ध और सम्पूर्ण देवता अति भयभीत हो आप के कमलस्वरूपी चरणों को प्रणाम करते हैं।

दो०–जानि सभय सुर भूमि मुनि, बचन समेत सनेह।
गगनगिरा गंभीर भइ, हरणि शोक सन्देह॥१८६॥

अर्थ-देवताओं, पृथ्वी तथा मुनियों को भयभीत जान के स्नेह भरे वचनों से दुःख और भय को भगाने वाली गंभीर आकाशवाणी हुई।

शब्दार्थ-प्रणतपाल (प्रणत=शरणागत+पाल=रक्षा करने शरणागत की रक्षा करने वाला। सिंधुसुता (सिंधु=समुद्र+सु समुद्र की पुत्री अर्थात् लक्ष्मी जी।

अर्थ—हे देवताओं के स्वामी! भक्तों के सुख देने वाले, शर षडैश्वर्य सम्पन्न आप की जय होय जय होय! हे गौ ब्राह्मण के उपकारी शत्रु और लक्ष्मी जी के प्यारे पति आप की जय होय। देवताओं रक्षा करने से अद्भुत शक्ति दिखाने वाले आप का भेद भी कोई न जो स्वभाव ही से दयालु गरीबों पर कृपा करने वाले ऐसे आप हैं सो ह कीजिये.

छन्द-जय जय अविनाशी सबघटवासी व्यापक पर
अविगत गोतीतं चरितपुनीतं माया रहित मु
जेहि लागि विरागी अति अनुरागी विगतमोह मु
निशिवासर ध्यावहिं गुणगण गावहिं जयति सच्चिद

शब्दार्थ—अविगत=सब जगह मौजूद। गोतीत (गो=इन्द्रि परे)=इन्द्रियों से परे। मुकुन्द (मुक्=मुक्ति+दा=देना)=मुक्ति अर्थात् परमेश्वर।

अर्थ—हे नाश रहित घट घट में निवास करने वाले सब जगत में विशेष आनन्द स्वरूप आप की जय होवे। आप सब जगह रहने वाले, हो, चरित पवित्र वाले, माया रहित और मोक्ष के दाता हो। जिनके

रिहौं सकलभूमि गरुआई । निर्भय होहु देवसमुदाई ॥

अर्थ—उनके घर रघुकुल में श्रेष्ठ चारों भाइयों के रूप से आकर प्रकट होऊंगा। ी के शाप को सब सचा कर दिखाऊंगा, इसहेतु महा माया के साथ अवतार । पृथ्वी का सब बोझ दूर करदूंगा, हे देवताओ ! अब निडर होजाव ?

—गगन ब्रह्मवाणी सुनि काना । तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ।
*तब ब्रह्मा धरणिहि समझावा । अभय भई भरोस जिय आवा ॥

अर्थ—आकाश से ब्रह्मवाणी को कानों में ध्वनि पड़तेही देवताओं के हृदय हुए, इसहेतु वे जल्दी से लौट पड़े। फिर ब्रह्मदेव ने पृथ्वी को बोध किया, यह भी निडर हो गई और उसके हृदय में ढाढ़स बँध गया।

ो०—गे विरंचि निजलोक तब, देवन्ह इहै सिखाय ।
वानरतनु धरि धरणि महँ, हरिपद सेवहु जाय ॥ १८७॥

अन्वय—तब विरंचि निज लोक (में) देवन्ह इहै सिखाय गये (कि तुम) णि महँ जाय बानर तनु धरि हरिपद सेवहु ।

अर्थ—तब ब्रह्मदेव अपने लोक में आये हुए देवताओं को यही शिक्षा देकर ते गये कि तुम सब देवगण मृत्युलोक में जाकर बानरों का शरीर धारण करके मेश्वर के चरणों की सेवा करो ॥

दूसरा अर्थ—तब ब्रह्मदेव सब देवताओं को यह सिखापन देकर अपने लोक ो चले गये कि तुम बानर रूप धारण कर पृथ्वी पर परमेश्वर के चरणों की सेवा रो ॥

सूचना—स्मरण रहे कि यहां पर गोरूप धारिणी पृथ्वी तथा सब देवगण ो ब्रह्मलोक को गये ही थे फिर वहां से ब्रह्मा जी अपने लोक को गये। इस े यह भाव निकलता है कि कदाचित् सब देवगण सुमेरु पर्वत पर के ब्रह्मलोक में आये होंगे जहां से ब्रह्मा जी अपने स्वर्गीय ब्रह्मलोक को पधारे ॥

चौ०—गये देव सब निज निज धामा । भूमिसहित मन कहँ विश्रामा ।
†जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा । हर्षे देव विलम्ब न कीन्हा ॥

---

* तब ब्रह्मा धरणिहि समझावा—हनुमान मन रंजन नाटक से
दो०—तुमहुं भूमि धारज धरौ, लै प्रभु नर अवतार ।
धर्मि उद्धार करता करन, दूरि करहिं तव भार ॥

† जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा । हर्षे देव विलंब न कीन्हा—रामरत्नाकर रामायण से—(चौपाई)

चौ०—*जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेशा। तुमहि लागि धरिहौं नरवेशा॥
अंशन्ह सहित मनुजअवतारा। लैहौं दिनकरवंश उदारा॥

अर्थ—हे मुनि, सिद्ध और श्रेष्ठ देवगण डरो मत। मैं तुम्हारे हेतु मनुष्य धारण करूंगा। मैं पुण्यात्मा सूर्यकुल में अपने अंशों समेत अवतार लूंगा।

चौ०—†कश्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन कहँ मैं पूरब वर दीन्हा॥
ते दशरथ कौशल्या रूपा। कोशलपुरी प्रकट नरभूपा॥

अर्थ—कश्यप ऋषि और उन की स्त्री अदिति ने बड़ी भारी तपस्या की उन्हें मैं पहिलेही वरदान देचुका हूं। वे दशरथ और कौशल्या होकर अवध में नरराज हुए हैं॥

चौ०—तिन के गृह अवतरिहौं जाई। रघुकुलतिलक सो चारिउ भाई॥
नारदवचन सत्य सब करिहौं। परमशक्तिसमेत अवतरिहौं॥

---

* जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेशा। तुमहि लागि धरिहौं नरवेशा—काव्यप्रभाकर से।

स०—भो वसुधातल पाप महा सव, धाइ धरा गइ देवसभा जहँ
आरत नाद पुकार करी सुनि, [illegible] भई नभ धीर धरो तहँ॥
लै नर देह हरौं [illegible] पुंजनि, [illegible] नयनंप मही गई।
यों कहि चार भुजा हरि मात्र, किरीट धरे जनमे [illegible]॥

† कश्यप अदिति महातप कीन्हा ....परम शक्ति समेत अवतरिहौं—अध्यात्म रामायण से:—

श्लो०—कश्यपस्य वरो दत्तस्तपसा तोषितेन मे।
याचितः पुत्रभावाय तथेत्यङ्गीकृतं मया॥१॥
स इदानीं दशरथो भूत्वा तिष्ठति भूतले।
तस्याहं पुत्रतामेत्य कौसल्यायां शुभे दिने॥२॥
चतुर्धात्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक्।
योगमायापि सीतेति जनकस्य गृहे तदा॥३॥
उत्पत्स्यते तया सार्धं सर्वं सम्पादयाम्यहम्।

[illegible] कश्यप ने तपस्या करके मुझे सन्तुष्ट किया था, और मुझे [illegible] पुत्र [illegible] पुत्र होना [illegible] था। वे कश्यप इस समय [illegible] [illegible] के पुत्र [illegible] कौशल्या [illegible] [illegible]

[illegible]

हरिहौं सकलभूमि गरुआई । निर्भय होहु देवसमुदाई ॥

अर्थ—उनके घर रघुकुल में श्रेष्ठ चारों भाइयों के रूप से आकर प्रकट होऊंगा। [ना]रदजी के शाप को सब सच्चा कर दिखाऊंगा, इसहेतु महा माया के साथ अवतार [लू]ंगा। पृथ्वी का सब बोझ दूर करदूंगा, हे देवताओं! अब निडर होजाव!

[चौ]०—गगन ब्रह्मवाणी सुनि काना । तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ।
*तब ब्रह्मा धरणिहि समझावा । अभय भई भरोस जिय आवा ॥

अर्थ—आकाश से ब्रह्मवाणी को कानों में ध्वनि पड़तेही देवताओं के हृदय [शा]ंत हुए, इसहेतु वे जल्दी से लौट पड़े। फिर ब्रह्मदेव ने पृथ्वी को बोध किया, [जिस]से वह भी निडर हो गई और उसके हृदय में ढाढ़स बँध गया।

दो०—गे विरंचि निजलोक तब, देवन्ह इहै सिखाय ।
बानरतनु धरि धरणि महं, हरिपद सेवहु जाय ॥१८७॥

अन्वय—तब विरंचि निज लोक (में) देवन्ह इहै सिखाय गये (कि तुम) धरणि महं जाय बानर तनु धरि हरिपद सेवहु ।

अर्थ—तब ब्रह्मदेव अपने लोक में आये हुए देवताओं को यही शिक्षा देकर चले गये कि तुम सब देवगण मृत्युलोक में जाकर वानरों का शरीर धारण करके परमेश्वर के चरणों की सेवा करो ॥

दूसरा अर्थ—तब ब्रह्मदेव सब देवताओं को यह सिखापन देकर अपने लोक को चले गये कि तुम वानर रूप धारण कर पृथ्वी पर परमेश्वर के चरणों की सेवा करो ॥

सूचना—स्मरण रहे कि यहां पर गोरूप धारिणी पृथ्वी तथा सब देवगण जो ब्रह्मलोक को गये ही थे फिर वहां से ब्रह्मा जी अपने लोक को गये। इस से यह भाव निकलता है कि कदाचित् सब देवगण सुमेरु पर्वत पर के ब्रह्मलोक में आये होंगे वहां से ब्रह्मा जी अपने स्वर्गीय ब्रह्मलोक को पधारे ॥

चौ०—गये देव सब निज निज धामा । भूमिसहित मन कहँ बिश्रामा ।
†जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा । हर्षे देव विलम्ब न कीन्हा ॥

---

* तब ब्रह्मा धरणिहि समझावा—मुद्रित [illegible] से
दो०—[illegible]
[illegible]

† जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा । हरषे देव बिलम्ब न कीन्हा—[illegible]

चौ०-*जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेशा। तुमहि लागि धरिहौं न
अंशन्ह सहित मनुजअवतारा। लैहौं दिनकरवंश उ

अर्थ—हे मुनि, सिद्ध और श्रेष्ठ देवगण डरो मत। मैं तुम्हारे लि
धारण करूंगा। मैं पुण्यात्मा सूर्यकुल में अपने अंशों समेत अवतार लूंगा

चौ०-†कश्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन कहँ मैं पूरब व
ते दशरथ कौशल्या रूपा। कोशलपुरी प्रकट नरभू

अर्थ—कश्यप ऋषि और उन की स्त्री अदिति ने बड़ी भारी तपस्या
उन्हें मैं पहिलेही वरदान देचुकाहूं। वे दशरथ और कौशल्या होकर
में नरराज हुए हैं॥

चौ०-तिन के गृह अवतरिहौं जाई। रघुकुलतिलक सो चारि
नारदवचन सत्य सब करिहौं। परमशक्तिसमेत अवतरि

---

* जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेशा। तुमहि लागि धरिहौं नरवेशा—काव्यप्रभाक
स०-भा वसुधातल पाप महा तब, धार धरा गइ देवसभा जहँ
आरत नाद पुकार करी सुनि, वाणि भई नभ धीर धरो तहँ॥
लै नर देह हतौं खल पुंजनि, थापहुँगो नयपंथ मही महँ।
यों कहि चार भुजा हरि नाथ, किरीट धरे जनमे पुहुमी महँ॥

† कश्यप अदिति महातप कीन्हा ....परम शक्ति समेत अवतरिहैं
रामायण से:—

श्लो०-कश्यपस्य वरोदत्तस्तपसा तोषिते मने।
याचितः पुत्र भावाय तथेत्यंगी कृतंमया॥१॥
सइदानीं दशरथो भूत्वातिष्ठतिभूतले।
तस्याहं पुत्र तामेत्य कौशल्या-यांशुभेदिने॥२॥
चतुर्द्धात्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक्।
योगमायापिसीतेति जनकस्य गृहेतदा॥३॥
उत्पत्स्यतेतया सार्द्धं सर्वंसपादयाम्यहम्।

अर्थात् कश्यप नें तपस्या करके मुझे संतुष्ट किया था, और मुझे अपना
चाहा था तब मैं ने पुत्र होना अंगीकार करलिया था। वे कश्यप इस समय
होकर पृथ्वी पर विद्यमान् हैं उनका मैं पुत्र होकर कौशल्या आदि की कोखि से
में पृथक् पृथक् चार पुत्रों के रूप सें अवतार लेऊंगा। और मेरी योग
भी उसी समय सीता के रूप में जनक के घर उत्पन्न होगी उनके साथ मैं
सिद्ध करूंगा॥

स्मरण रहे कि यह एक कल्प की कथा है और मनु शतरूपा को दूसरे
की कथा है॥

अर्थ—देवता अपने अपने स्थानों को सिधारे और पृथ्वी समेत सबों के में चैन पड़ी। जो कुछ आज्ञा ब्रह्मा जी ने दी सो देवताओं ने आनन्दपूर्वक के करने में देरी न लगाई। (अर्थात् झटपट बन्दर बन कर बन में फि लगे)॥

चौ०—बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन पा
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीर

अर्थ—उन्हों ने पृथ्वी पर बनपशु की देह धारण की, उनमें बड़ा भारी और तेज था। सब योद्धाओं के हथियार पर्वत, वृक्ष और नख थे तथा वे बुद्धि भगवान् का मार्ग देखने लगे॥

चौ०—*गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी। रह निज निज अनेक रचि
यह सब रुचिर चरित मैं भाखा। अब सो सुनहु जो बीचहि रा

अर्थ—पर्वत और बन जहां देखो वहां अपनी अपनी उत्तम सेना रचकर लगे। यह सब मनोहर कथा मैं ने कही, अब जो बीच ही में छोड़ दी थी, उसे सुने (वह उत्तरार्द्ध में है)

यहां बालकांड का पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ।

दो०—राम चरित मानस कथा, पूर्व अर्ध को सार।
'नायक' संक्षेपहि कहत, लघुमति के अनुसार॥

किरीट छंद—देवन, सज्जन, दुर्जन, संतन, शंकर, श्री दशस्यन्दन वन्दन।
नाम महत्तम, मानस वर्णन, मोहसती, शिवब्याह सनंदन॥
ब्रह्मनिरूपण, जन्महु कारण, नारदमोह परे भवफन्दन।
'नायक' भानुप्रताप कथारस जन्म कह्यो पुनि कौशलिनंदन॥

चौ०—सुनि विधि वचन मान सब लीन्हे। निज निज अंश प्रगट तन कीन्हे॥
ब्रह्मा जामवंत उपजाये। रवि सुरेश सों वानर जाये॥
रवि के अंश भये सुग्रीवा। इन्द्र अंश बाली बल सींवा॥
तार नाम कपि सुरगुरु जायो। धनद गंधमादन उपजायो॥
विश्वकर्मा सुत नल कपि जैसो। पावक अंश नील कपि तैसो॥
जे सुर वैद्य अश्विनी जाये। द्विविद मैंद कपि सुत सुत पाये॥
वरुण धर्म के सुवन सुषेणा। [illegible]॥
[illegible]॥
पवनपूत हनुमान कहावें। जिन की कीर्ति प्रताप जग जानें॥
इतर देव जे जे कहलावें। ते सब कपि न जात गनावें॥

* गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी। रह निज निज अनीक रचि रूरी—[illegible]
[illegible] (क्षेपक)

॥ श्री विनायकी टीका ॥

(अयोध्या और राजा दशरथ)

—*अवधपुरी रघुकुल मणिराऊ। वेदविदित तेहि +दशरथ नाऊ॥

---

* अवधपुरी—इस पुरी का विस्तार सहित वर्णन अनेक स्थानों में समय समय पर हुआ है। तौभी यहां पर लछिरामजी की कविता देखिये—

सवैया—कानन कुंज प्रमोद वितान भरे फल फूल सुगन्ध विधानै।
माधवी के अरविन्दन पै मकरन्द मलिन्द लगे सुभ गानै॥
त्यों 'लछिराम' तरंगन तैं सरजू के चढ़े सुर साजि विमानै।
औधपुरी महिमा यों दिनै अमरावति की हम क्यों सनमानै॥

\+ दशरथ—राम स्वयंवर रामायण से—

चौ०—कछु दिन गये इन्दुमति रानी। कियो गर्भ धारन सुखमानी॥
गत दस मास एक सुत जायो। अभिनन्दन लख अति सुख पायो॥
दशरथ नाम काम सम रूपा। ताहि देख प्रमुदित अज भूपा॥
एक वर्ष के दशरथ भये। तब पितु मातु स्वर्ग पुर गये॥
[illegible] सुत की जानी। गृह में गये वसिष्ठ सुज्ञानी॥
सकल शास्त्र अध्ययन कराये। वर्ष पांच मैं नृप गुन पाये॥
नृप आसन वसिष्ठ बैठाये। [illegible]
[illegible] देव सिखायो। [illegible]
[illegible]
[illegible] सुत सुख के वियोग में प्राण छोड़ेंगे [illegible]
[illegible] होगा सब सो इससे [illegible] होगा।

दोहा—लग्यो तपस्या करन ठानि, बिन अहार बिनवारि ।
विधि लखि तप तेहि असुर कर, बोले बचन सम्हारि ॥

चौ०—तुम माँगु मोसों बरदाना । जो तेरे चित महँ अनुमाना ॥
रावण तब बोला मुसक्याई । देहु मोहि बरदान सुहाई ॥
दशरथ अंश नाहिं सुत होई । धाता तुम राखहु जनि गोई ॥
तब ब्रह्मा निज मन दुख पावा । एवमस्तु कह ताहि सुनावा ॥
हुइ प्रसन्न रावण गृह आवा । कोशलपुर कहँ पुनि किय धावा ॥
पहुँच तहाँ बहु कीन्ह उपाई । कौशल्या कहँ लीन्ह चुराई ॥
गयो सिंधु पहँ मच्छ बुलायो । सौंपि ताहि निज घर पुनि आयो ॥
विधि रचि देह तुरत रावण कर । कन्या जाय लीन्ह तिहि ते बर ॥

दोहा—मञ्जूषा में बन्दकरि, गे विरंचि निज लोक ।
रोदन इमि कन्या करै, जिमि बन कूकै कोक ॥

चौ०—तब सुमंत बन में चलि आवा । रोदन शब्द सुना तेहि ठाँवा ॥
निज कर खोलेसि जाय किवारी । कौशल्या यह गिरा उचारी ॥
मोहि ले चलहु पिता के धामा । तब सुमन्त लै गयउ ललामा ॥
देख सुमंतहि नृपति उचारे । को हौ तुम कहु भेद दुलारे ॥
अवधपुरी दशरथ भूपाला । मंत्री तिनकर हौं भूआला ॥
सुनि दशरथहि नृपति बुलवायो । कन्या दे निज मन सुख पायो ॥

॥ इति क्षेपक ॥
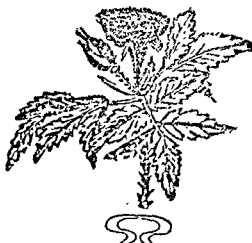
दोहा–तब अदृश्य पावक भये, सकल सभहिं समुझाय।
परमानंद सुमगन नृप, हर्ष न हृदय समाय॥ १८९॥

अर्थ—फिर सब समाज को समझा बुझा कर अग्निदेव अंतर्ध्यान हुए और राजा तो आनंद में ऐसे निमग्न हुए कि फूले नहीं समाते थे॥

चौ०–तबहि राय प्रियनारि बुलाई। कौशल्यादि तहां चलि आईं॥
‡अर्ध भाग कौशल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा॥

अर्थ—तब राजा जी ने अपनी प्यारी रानियों को बुलवाया तो कौशल्या आदि तीनों रानियां वहां आ पहुँची। राजा जी ने (हव्य का) आधा हिस्सा कौशल्या जी को दिया जो आधा बचा उसके दो भाग किये॥

चौ०–कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रहेउ सो उभय भाग पुनि भयऊ॥
कौशल्या कैकई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि॥

अर्थ—राजा ने वह चौथाई हिस्सा, कैकेई को दिया जो बचा उसके भी दो भाग किये और एक एक भाग को कौशल्या तथा कैकेई के हाथ में रख कर उन्हीं की प्रसन्नता से सुमित्रा को दिला दिया॥

चौ०–इहि विधि गर्भ सहित सब नारी। भई हृदय हर्षित सुख भारी।
जादिन ते, हरि गर्भहि आये। सकल लोक सुख संपति छाये॥

अर्थ—इस प्रकार सब रानियां गर्भवती हुईं और हृदय में आनंद हुआ तथा भारी प्रसन्नता हुई। जिस दिन से ईश्वर गर्भ में आये (उसी दिन से) संपूर्ण लोकों में सुख और धन धान्य भर गया॥

चौ०–†मंदिर महँ सब राजहिं रानी। शोभा शील तेज की खानी॥
सुखयुतकछुककाल चलि गयऊ। जेहि प्रभु प्रकट सो अवसर भयऊ

‡ अर्ध भाग कौशल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा॥ कुंडलिया रामायण से
कुंडलिया—पुत्र यज्ञ नृप कीन्ह जोरि मुनि भेए द्विज कुलवर।
कह वशिष्ठ भे सिद्ध दीन्ह हवि लै प्रसाद कर॥
लै प्रसाद कर दीन्ह देहु भामिन नृप जाई।
सुनि दशरथ मन हर्ष तबहिं प्रिय नारि बुलाई॥
नारि बुलाई कौशल्या कैकेयी पुनि भाग कर।
अर्ध अर्ध दोउ रानी मेटि दीन्ह सुमित्रहि हाथ धरि॥
† मन्दिर मह सब राजहिं रानी। शोभा शील तेज की खानी।— (मह बात)

चौ०—*शृङ्गी ऋषिहि वशिष्ठ बुलावा। पुत्रकाम शुभ यज्ञ करावा॥
भक्ति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रकटे अग्नि चरू कर लीन्हें॥

शब्दार्थ—पुत्रकाम यज्ञ = एक प्रकार का यज्ञ जो पुत्र होने की इच्छा से करते हैं।

अर्थ—वशिष्ठ जी ने शृङ्गीऋषि को बुलवाया और उनके द्वारा पुत्रेष्टि करवाया ज्योंहीं भक्ति पूर्वक शृङ्गी ऋषि जी ने पूर्णाहुति दी त्योंहीं अग्निदेव यज्ञ की खीर लेकर प्रकट हुए।

चौ०—जो वशिष्ठ कछु हृदय विचारा। सकल काज भा सिद्ध तुम्हारा॥
यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। यथा योग्य जेहि भाग बनाई॥

अर्थ—(अग्निदेव दशरथ से कहने लगे) जो वशिष्ठ जी ने अपने मन में विचारा था वह सब तुम्हारा कार्य आज सफल हुआ, हे राजन्! इस हव्य को जैसे तुम जानो वैसे भाग बना कर (अपनी स्त्रियों को) बांट देओ।

---

* शृङ्गीऋषि—चाणक्य नीति में ऋषि की परिभाषा यों लिखी है:—

श्लोक—अकृष्ट फल मूलानि वनवास रतिः सदा।
कुरुतेऽहरहः श्राद्धमृषि विप्रः स उच्यते॥

अर्थात् बिना जोती भूमि से उत्पन्न फल व मूल को खाकर सदा वनवास करता और प्रति दिन श्राद्ध करे ऐसा ब्राह्मण ऋषि कहलाता है।

ऋषि सात प्रकार के कहे गये हैं—

[१] श्रुतर्षि—जो वेद के द्रष्टा होवें जैसे अंगिरा आदि।
[२] काण्डर्षि—जो वेद का कोई भाग सिखलाता हो।
[३] परमर्षि—अर्थात् बड़े श्रेष्ठ ऋषि।
[४] महर्षि—जिसमें व्यास आदि हैं।
[५] राजर्षि—जैसे विश्वामित्र आदि।
[६] ब्रह्मर्षि—जैसे वशिष्ठ आदि।
[७] देवर्षि—जैसे नारद आदि।

शृङ्गीऋषि—ये [illegible]

दो०—*शीतल मंद सुरभि बह बाऊ। हर्षित सुर संतन मन चाऊ॥
बनकुसुमितगिरिगणमणियारा। स्रवहिं सकल सरितामृतधारा॥

अर्थ—जबकि शीतल मन्द सुगन्ध वायु चलने लगी थी, देवता प्रसन्न थे और सन्तों के मन में उत्साह बढ़ रहा था। बन के वृक्ष फूल उठे और पहाड़ों में रत्न उत्पन्न हुए, सम्पूर्ण नदियां अमृतरूपी जल बहाने लगीं॥

दो०—सो अवसर विरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि विमाना॥
गगन विमल संकुल सुरयूथा। †गावहिं गुण गंधर्व बरूथा॥
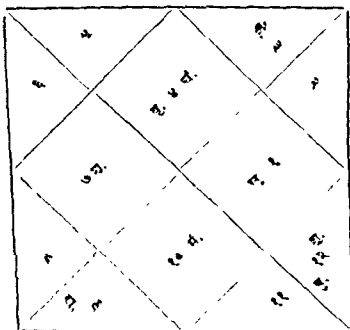
तेहि क्षण प्रकट भये भगवंता। सुरन सुखद हरि कमलाकंता॥

जन्म कुंडली

* शीतल मन्द सुरभि बह बाऊ।

कवित्त—[illegible]

† [illegible]

अर्थ—महलों में संपूर्ण रानियाँ कांतिमती, शीलवती और दीप्ति
सुशोभित हो रही थीं। इस प्रकार कुछ समय सुख से व्यतीत हुआ तब
आ पहुँचा जब कि परमात्मा अवतार लेने वाले थे ॥

[श्री रामचन्द्र आदि चारों भाइयों का जन्म और बाल लीला]

दोहा—*योग लग्न ग्रह वार तिथि, सकल भये अनुकूल।
चर अरु अचर सुहर्षयुत, रामजन्म सुखमूल ॥

अर्थ—योग, लग्न, ग्रह, दिन, तिथि सब शुभ होगये और चलने वाले
स्थिर जीव सुखी हुए, कारण रामचन्द्र जी का जन्म ही सुख की जड़ है।

चौ०—नवमी तिथि मधु मास पुनीता। शुक्ल पक्ष अभिजित हरिप्रीता॥
मध्य दिवस अति शीत न घामा। पावन काल लोक[illegible] ॥

अर्थ—पवित्र चैत्र महीने के शुक्ल पक्ष की नौमी तिथि को ईश्वर के
अभिजित नक्षत्र में दो पहर के समय जबकि न अधिक ठंड थी न धूप ऐसे
काल में लोगों को शांति देने वाले (मुहूर्त में) ....

यह बात प्रसिद्ध ही है कि गर्भवती होने पर स्त्री की शोभा बहुधा बढ़ जाती
परन्तु तेजवंत पुरुष के गर्भ में आजाने से तो यही सौन्दर्य बहुत ही विशेष बढ़ जाता है—
सा राम रसायन रामायण में कहा है :—

चौ०—जब तें भई सगर्भ अनूपा। तब ते प्रतिदिन बढ़त सुरूपा॥
पुरवासी सब मगन अपारा। घर घर होत मंगलाचारा॥
सुखसम्पतिनिशिदिनअधिकाई। राजमहल शोभा सरसाई॥
राम जन्म औसर नियरायो। तिहुँ लोक आनँद उमगायो॥
लंका त्यागि और सब काहू। अङ्ग चेतन तनु रोम उछाहू॥

* योग लग्न ग्रहवार तिथि——————राम रत्नाकर रामायण से—

दोहा—मध्य दिवस आतप सुखद, नवमी तिथि मधु मास।
शुक्ल पक्ष अभिजित समद, प्रकटे रमानिवास॥

चौ०—नक्षत्र पुनर्वसु अंत मझारो। कर्क लग्न तहँ शुभ रवि जानो॥
भानु मेष गत मीन मकर के। रवि सुत तुला उच्च शुभ घरके॥
धन के राहु मिथुन के केतू। पंच उच्च ग्रह सब शुभ हेतू॥
चन्द्र सुवन कर गुरुवर भौमा। इहि विधि सकल योग सुखसीमा॥ (शेष)

अर्थ—कृपालु, दीनों पर दया करने वाले तथा कौशल्या जी के हित करने प्रकट हुए। मुनियों के मनचुराने वाले उनके अनोखे स्वरूप को देखकर माता जी [illegible] हुईं, (स्वरूप में) सुंदर नेत्र, शरीर मेघ के समान श्यामता और चारों [illegible]ओं में अपना २ हथियार (अर्थात् शंख, चक्र, गदा, पद्म) धारण किये हुए [illegible]ाला से सुशोभित, बड़े बड़े नेत्रवाले रूपसागर और खर नाम राक्षस के शत्रु हैं॥

[illegible]द—कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करउँ अनंता।
माया गुण ज्ञानातीत अमाना वेद पुराण भनंता॥
करुणासुख सागर सब गुण आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रकट श्रीकंता॥

अर्थ—दोनों हाथ जोड़ कहने लगीं कि हे पारावार रहित भगवन्! मैं तुम्हारी [illegible]ति किस प्रकार से करूं क्योंकि वेद और पुराणों में कहागया है कि तुम माया [illegible]ण ज्ञान से परे तथा परिमाण रहित हो। जिसे वेद और संतजन दया और [illegible]नंद के सिंधु सब उत्तम लक्षणों से परिपूर्ण कहते हैं सो भक्तों पर प्रेम करने वाले [illegible]क्ष्मीपति तुम मेरी भलाई के लिये प्रकट हुए हो॥

छन्द—‡ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै।

श्लोक—तमद्भुतं बालकमम्बुजे क्षणम्, चतुर्भुजं शंख गदाद्युदायुधं।
श्रीवत्स लक्ष्मंगलशोभि कौस्तुभम्, पीताम्बरं सान्द्रपयोद सौभगम्॥ ९
महार्हवैदूर्य किरीट कुंडलत्विषा, परिष्वक्त सहस्र कुंतलम्।
उद्दाम कांच्यंगद कंकणा दिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत॥ १०॥

अर्थात् जिसके कमल के समान सुन्दर नेत्र थे, जिसकी चार भुजायें थीं, जो शंख गदा चक्र तथा पद्म धारण किये हुए था, जो वक्षस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह और कंठ में शोभायमान कौस्तुभमणि धारण किये हुए, पीताम्बर पहिने था और जो जल भरे हुए काले मेघ मंडल के समान सुन्दर श्याम वर्ण था। जिसके केश बहुमूल्य के वैदूर्य रत्नों करके जटित किरीट की और कानों के कुंडलों की कांति से प्रकाशित हो रहे थे और जो सुन्दर करधनी बाजूबंद तथा कड़े आदि भूषणों से शोभायमान होरहा था ऐसे उस अद्भुत बालक का वसुदेव जी ने दर्शन किया॥ ९॥ १०॥

‡ ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै—ठीक यही आशय अध्यात्म रामायण में कहा है—

श्लोक—जठरे तव दृश्यन्ते, ब्रह्मांडाः परमाणवः।
त्वं ममोदर सम्भूत, इति लोकान्विडम्बसे॥

दो०—*विप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मिततनू, माया, गुण गोपार॥ १९२॥

अर्थ—जो माया, गुण और इन्द्रियों से परे हैं तथा जो अपनी इच्छा से शरीर धारण करते हैं ऐसे प्रभु ने ब्राह्मण, गौ, देवता और संतों की भलाई के लिये मनुष्य अवतार लिया॥

चौ०—सुनि शिशु रुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी॥
हर्षित जहँ तहँ ‡धाईं दासी। आनँद मगन सकल पुरवासी॥

शब्दार्थ—संभ्रम = उतावली, घबराहट।

अर्थ—बालक के रोने की बड़ी प्यारी वाणी सुनकर सब रानियां उतावली आगईं। दासियां प्रसन्न होकर इधर उधर दौड़गईं और सब अयोध्यावासी आनंद मग्न हो गये॥

चौ०—+दशरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानन्द समाना॥
परम प्रेम मन पुलक शरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा॥

---

* विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार—कुंडलिया रामायण से—

कुंडलिया—भूसुर सुर गो धरनि सन्त सज्जन के काजे।
प्रभु धार्‍यो तनु मनुज दनुज सुनि विकल सुलाजे॥
लाजे खलगण मलिन नलिन द्विज उदय भानुकर।
भय उलूक छिप गये तेज अहिपुर सुरपुर घर॥
सुरपुर धुनि कुसुमावली जयति राम रघुवंश जय।
जय दशरथ कुल कलश अवध नर नारि कहत भय॥

‡ हर्षित जहँ तहँ धाईं दासी—कौशल्याजी की अनेक दासियों में से एक सुचार नाम की दासी ने यह शुभ समाचार महाराजा दशरथ जी को जा सुनाया था, कि—

दोहा—महाराज रघुवंश मणि, देत बधाई भूप।
सुत पटरानी कौशिला, जायो पूत अनूप॥

+ दशरथ पुत्र जन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना—राम रसायन रामायण से—

छंद—तेहि समय दशरथ राज हियरो हर्षित सुख को कहि सकै।
है सहस फनि न जाहि बरनत शारदा रसना थकै॥
जेहि भाग्य प्रभुता हेरि लघु लागत विरंच सुरराज को।
तिहुँ लोकपति सो पुत्र भो महराज तन है काज को॥

मम उर सो वासी यह उपहासी सुनत धीर मति
उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत विधि
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत

अर्थ—वेद कहते हैं कि माया से बने हुए ब्रह्मांडों के समूह तु
हैं। 'ऐसे प्रभु तुम मेरे पेट में रहे' ऐसी हँसी की बात सुनकर
ी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती (अर्थात् बुद्धि चकरा जाती है कि य
ारित्र है)। (जब कौशल्या जी को यह) ज्ञान हुआ तब प्रभु मुस
हुत चरित्र करना चाहते थे। (भाव यह कि प्रभु के मुसकराने ही
जससे ज्ञानी मोह जाता है,) फिर मनभावनी यह (पुरानी वरदा
ह कर माता को समझाया कि जिससे वे अपना पुत्र समझ ममता क

छन्द–× माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात
कीजिय शिशुलीला अति प्रियशीला यह सुख पर
सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं

अर्थ—जब वह ज्ञान की मति पलटी तो माता कहने लगी कि हे
यागो और अत्यन्त प्रेम से भरी हुई बाललीला करो यही बड़ा भा
ुख है। ऐसा वचन सुन चतुर और देवताओं के स्वामी बालरूप हो
स चरित्र को जो वर्णन करेंगे वे भगवान् के चरणों को प्राप्त होवेंगे
ए में नहीं गिरेंगे (अर्थात् ईश्वर भक्त होकर सांसारिक दुःख से छूट

× माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा—प्रम
उद्धृत—

श्लोक—[illegible] मनो माया तव विश्व विमोहिनी।
उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्॥
दर्शयस्व महानंद बालभावं सुकोमलम्।
ललितालिंग नालापैस्तरिष्याम्युत्कटं तमः॥

अर्थात् हे प्रभु! संसार को मोहित करने वाली आप की माया [illegible]
हे संसार के आत्मा रूप ईश्वर! आप अपने इस अलौकिक रूप को छिपा
[illegible] बाल [illegible] . जिस [illegible] संसारूप
[illegible]

अर्थ—तब वहां राजाने नांदीमुख श्राद्ध कर सब जातकर्म किये और सोना, ..., कपड़े और मणि ब्राह्मणों को दिये ॥

...तामह से और पहिले तीन पितरों का श्राद्ध होता है। उन पितरों को 'नांदीमुख' (...सते हुए चेहरे वाले) कहते हैं। इसी से इस श्राद्ध का नाम 'नांदीमुख श्राद्ध' हुआ (...खो गोभिल्य) दोनों श्राद्धों की विधि बहुत कुछ एक दूसरे के विरुद्ध है। जैसे एक दो ...र के बाद होता है, दूसरा दो पहर के पहले, एक में यज्ञोपवीत की प्राचीनावीति होती (अर्थात् बाईं तरफ़ जनेऊ पहिना जाता है), दूसरे में दाहिनी तरफ़। ऐसे ही कुश की ...गह दूर्वा और 'स्वधा' शब्द के प्रयोग की जगह 'स्वाहा' का प्रयोग होता है (...धर्म सिन्धु)। 'नांदीमुख श्राद्ध' गर्भाधान आदि संस्कारों का अंगीभूत है। दशरथ जी ...श्री रामजन्म के समय जातकर्म संस्कार का अंगीभूत नांदीमुख श्राद्ध किया था ॥

स्पष्ट षोड़स संस्कार और श्राद्ध का प्रचार तथा उसका उपयोग आदि पुरौनी में संस्कार और श्राद्ध शीर्षक लेख में मिलेगा ॥

जात कर्म—द्विजातियों (अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यों) में गर्भाधान से जो षोड़स संस्कार होते हैं उन में से जातकर्म चौथा संस्कार है इन शरीर संस्कारों का प्रयोजन इस लोकमें वेदाध्ययन के वास्ते और परलोक में यज्ञादिकों के कार्य के वास्ते है—

> वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादि द्विजन्म नाम्।
> कार्यः शरीर संस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥ मनु अ. २। २६ ॥

जात कर्मादि संस्कारों से बीज दोषादि पाप और गार्भिक पाप दूर होते हैं बिना संस्कार किया हुआ द्विज प्रायश्चित का भागी होता है जिन पुत्र या कन्याओं का यह संस्कार नहीं होता है उनके विवाह समय में प्रायश्चित होता है बहुत ही प्राचीन काल से इन संस्कारों का प्रचार इस देश में है। इनका वर्णन और विधि आश्वलायन गृह्य सूत्र मनुस्मृति आदि पुराने ग्रन्थों में है। पुराने काल में तो कन्याओं का भी जातकर्म होता था (देखो आश्व लायन गृह्य सूत्र १—१४—१२ और १—१५—१) मनु जी का वचन है कि जाति कर्मादि स्त्रियों का बिना वेद मंत्रों के करे (अमंत्रिकातु कार्येयं स्त्री णामा वृद शेषतः) नाल छेदन के पूर्व जात कर्म संस्कार होता है इसमें अपने २ गृह्यसूत्र के मंत्रों करके बालक को मधु, घृत, सुवर्ण से प्राशन कराया जाता है। सुवर्ण से युक्त पानी से माता के दाहिने स्तन को धोकर बालक को दूध पिलाया जाता है. जातकर्म के समय पिता को बालक के मुख देखने की विधि है। तदुपरान्त स्नान करना पड़ता है, यदि बालक मूल, ज्येष्ठा, व्यतीपात आदि अशुभ काल में जन्मा हो तो पिता को बालक का मुख देखे बिना ही स्नान करना पड़ता है (देखो धर्म सिंधु तृतीय परिच्छेद) पुण्याह वाचन, मातृका पूजन, नांदीमुख श्राद्धादि

अर्थ—दशरथ जी के कानों में जब पुत्र जन्म की ध्वनि पड़ी तो वे
र मानो ब्रह्मसुख का अनुभव कर रहे हों, मनमें अधिक प्रेम के
मांचित होगया, उठना चाहते थे और बुद्धि से धैर्य धारण कर रहे थे।

ौ०—× जाकर नाम सुनत शुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बुलाइ बजावहु

अर्थ—(मनमें यह विचार कियाकि) मेरे यहां उन्हीं प्रभु ने अवता
नका नाममात्र सुनने से कल्याण होता है। राजा जी बहुत ही आनंद
कर कहने लगे कि बाजंतरियों को बुलाकर बाजे बजवाओ॥

ौ०—गुरु वशिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। आये द्विजन्ह सहित नृप
अनुपम बालक देखिनि जाई। रूप राशि गुण कहि न

अर्थ—गुरु वशिष्ठ जी को बुलावा गया तो वे ब्रह्म मंडली को साथ ले
आये। सब ने जाकर उस उपमा रहित बालक को देखा जिसका उत्तम
गुण कहने में नहीं आते॥

दोहा—* तब नांदीमुख श्राद्ध करि, जातकर्म सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मणि, नृप विप्रन कहँ दीन्ह॥

× जाकर नाम सुनत शुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई॥ सीता स्वयं
सवैया—मच्छहु स्वच्छ श्रुती उधर्‌यो अरु कच्छहु है मंथन सिंधु कर्‌यो
सूकर है श्रुचि लोय धर्‌यो नर केहरि दास व्यथा विहर्‌यो
बामन है सुर काज कर्‌यो भृगुराम है क्षत्रिन गर्व हर्‌यो
रामस्वरूप अनूप धरे अब भूप के कौन में आप पर्‌यो

* तब नांदीमुख श्राद्ध करि, जातकर्म सब कीन्ह—

नांदीमुख श्राद्ध—पितरों के नाम पर श्रद्धा से जो कुछ दिया जावे
हते हैं। यह दान पानी, दूध फल से लगाकर सोना, मोती, जवाहरात तक होत
प्रकार का है एक तो पिता आदि के मरण तिथि के दिन होता है और दूसरा
भ कार्य के समय किया जाता है जिसे 'नांदी मुखश्राद्ध' कहते हैं। नांदी
र्भाधान, जन्म काल, व्रतबंध, विवाहादि संस्कारों में, बावड़ी, देवता की प्रतिष्ठा,
और गृह प्रवेश तक में आवश्यक है।

मरण तिथि में पिता, पितामह और प्रपितामह का विशेषतः श्राद्ध होत
न पितरों को 'अश्रुमुख' (रोते हुए चेहरे वाले) कहते हैं, और शुभ कार्य के

र्थ—ध्वजा, पताका और बंदनवार नगर भरमें इस प्रकार लगाये गये थे कि
ोभा का वर्णन नहीं किया जा सक्ता। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी और
ग पड़े आनंद में मग्न होरहे थे॥

-वृन्द वृन्द मिलि चलीं लुगाईं। सहज सिंगार किये उठिधाईं॥
*कनक कलश मंगल भरिथारा। +गावत पैठहिं भूप दुआरा॥

प्रर्थ—स्त्रियां साधारण वस्त्र आभूषण धारण किये हुए उठ दौड़ीं और झुंड के
मेलकर चल खड़ी हुईं। वे सोने के कलश और मंगल द्रव्यों से भरे थार
हुए गीत गाती हुईं राजमहलों में पैठने लगीं॥

---

* कनक कलश मंगल भरिथारा—राम रसायन रामायण से—

स—नीर भरे विशद् विचित्र कुंभ कंचन के शोभित सपल्लव सदीप शीश धारे हैं।
थार थर धानिक जड़ाऊ मणि माणिक के लीन्हें साज मंगल जे पूरित सँवारे हैं॥
रसिक विहारी सुख दैनी गुण ऐनी तीय नख शिख अंग शुचि सकल सिंगारे हैं।
मंजु मृगनैनी पिकबैनी कल गान कीन्हें वृंद वृंद आवें नित कौशिला के द्वारे हैं॥

\+ गावत पैठहिं भूप दुआरा—

गीत—कौशल्या मैया चिरजीवे तेरो छौना।
राज समाज सकल सुख संपति अधिक अधिक नित होना॥
मुनिजन ध्यान धरत निशिवासर अमित अगमधर मौना।
'रतन हरी' प्रभु त्रिभुवन नायक तैं कर लियो खिलौना॥

और भी—कौशिल्या सुत जायो महल में मंदिर बेगि चलो रे॥ टेक॥
चले आय महलन के अन्दर ऊँची कनकी शाला रे।
द्वारे में बंदाम बंधे हैं बीच बाम को पौरा रे॥
पहली पौर गजराज बँधे हैं दूजी तुरँग खड़े रे।
तीजी पौर बिसकर्मा रानी रतन जड़ाव जड़े रे॥
मारग पांजन देत महावर घर घर फिरत दुलाई रे।
कोइ लहँगी कोइ लाल कपरवा कोइ आई लरकौरी रे॥
कोलो बोली कोरे आई कनटोली कठुनेरी रे।
हमरे माम सहावे मारी मोहरन कांटो तमोल रे॥
पूत हुए हरदी पर चन्दन दूबी गगरत लोरी रे।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन को बहुतक जतन करौ रे॥

चौ०—‡ध्वज पताक तोरण पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति [illegible]
†सुमन वृष्टि आकाश ते होई। ब्रह्मानन्द मगन सब [illegible]

पंचकर्म जातकर्म के भी अंगी भूत हैं। यह नालच्छेदन के पूर्व होने से [illegible] रीति के अनुसार मुहूर्त्त ढूंढ़ने का अवसर नहीं है। यदि इस काल का अतिक्रम [illegible] अवश्य शुभ वेला ढूंढ़नी पड़ती है॥

‡ ध्वज पताक तोरणपुर छावा। कहि न जाय जेहि भाँति बनावा:—

छन्द—निज काज सजत सँवारि पुर नर नारि रचना अनुगनी।
गृह अजिर अटनि बजार बीथिन चारु चौके बिधि घनी॥
चामर पताक बितान तोरण कलश दीपावलि बनी।
सुख सुकृत शोभा मय पुरी बिधि सुमति जननी जनु जनी॥

† सुमन वृष्टि आकाश ते होई। ब्रह्मानन्द मगन सब कोई॥ कुंडलिया [illegible]

कुंडलिया—गृह गृह बजत बधाव नारि नर अवध अनंदित।
चौक कलश अति द्वार लसत सुरतिय गण बंदित॥
बंदत सुर गण सुमुख बंदि गण विप्र वेद धुनि।
भरि भरि मुक्ता थार देखि सुत भाग अधिक गुनि॥
अधिक गान सोहत भवन राम जन्म मंगल सजत।
नर नारि वारितन धनलयै सुरपुर जय दुंदुभि बजत॥ और भी—

कवित्त—प्रफुलित भये हैं अवध पुर वासी सब प्रफुलित सरयू की शोभा सरसी।
गावैं नर नारि अति आनँद अपार भये, पूरन निशान सुलोचन सुबरसी।
देवता विमानन्ह ते फूलन्ह की वृष्टि करैं बन्दी अरु मागध अनेक विधि बरसी।
कलि क्यों न देखो आली राम को जनम भयो दशरथ द्वार बाजे आनँद बरसी।

वाह! क्या कहिये, यथार्थ तो यों है —

भजन—अयोध्या आज बधाव भई।
अति आनन्द के मद्य मचे हैं सरयू निकट बही॥
रामचन्द्र अवतार लिये हैं [illegible] की [illegible] भई।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अर्थ—ध्वजा, पताका और बंदनवार नगर भरमें इस प्रकार लगाये गये थे कि शोभा का वर्णन नहीं किया जा सक्ता। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी और लोग बड़े आनंद में मग्न होरहे थे॥

—वृन्द वृन्द मिलि चलीं लुगाईं। सहज सिंगार किये उठिधाईं॥
* कनक कलश मंगल भरिथारा। + गावत पैठहिं भूप दुआरा॥

अर्थ—स्त्रियां साधारण वस्त्र आभूषण धारण किये हुए उठ दौड़ीं और झुंड के मिलकर चल खड़ी हुईं। वे सोने के कलश और मंगल द्रव्यों से भरे थार हुए गीत गाती हुईं राजमहलों में पैठने लगीं॥

---

* कनक कलश मंगल भरिथारा—राम रसायन रामायण से—

—नीर भरे विशद विचित्र कुंभ कंचन के शोभित सपल्लव सदीप शीश धारे हैं।
थार पर थारिक जड़ाऊ मणि माणिक के लीन्हें साज मंगल जे पूरित सँवारे हैं॥
रसिक विहारी सुख दैनी गुण ऐनी तीय नख शिख अंग शुचि सकल सिंगारे हैं।
मंजु मृगनैनी पिकबैनी कल गान कीन्हें वृंद वृंद आवैं नित कौशिला के द्वारे हैं॥

+ गावत पैठहिं भूप दुआरा—

गीत—कौशल्या मैया चिरजीवे तेरो छौना।
राज समाज सकल सुख संपति अधिक अधिक नित होना॥
मुनिजन ध्यान धरत ... सर- अमित अज्मधर मौना।
'रतन हरी' ... लियो खिलौना॥

और भी ... देखि चली रे॥ टेक॥
... या उनकी आला रे।
... श्याम को ... ॥

... रे।
... री रे॥
... री रे।
... रस रे॥
... गोरी रे।
... री रे॥

चौ०—करि ‡ आरती निछावर करहीं । बार बार शिशु चरणन्ह परहीं
+ मागध सूत बंदि गुण गायक । पावन गुण गावहिं रघुनायक

अर्थ—आरती करके निछावर करती थीं और बारम्बार बालक के पैर . पौराणिक, पौराणिक भाट सूत बंदी और गवैये ये रघुवंशी महाराजाओं के पवित्र वर्णन करते थे ॥

चौ०—सर्वस ×दान दीन्ह सब काहू । जेहि पावा राखा नहिं ताहू।

‡ करि आरती निछावर करहीं । बार बार शिशु चरणन्ह परहीं ॥

सोचने का स्थान है कि जब किसी के यहां बालक उत्पन्न होता है तो वहां क्या स्त्रियां उसकी आरती कर पैर पड़ती हैं ? कदापि नहीं ! पर गोस्वामीजी ने लिखा है उसका कारण एक तो—श्री रामचन्द्रजी का अवतारिक होना समझ पड़ता है इसमें यह संदेह उठता है कि सब लोग इस बात को नहीं जानते थे और न बहुतेरों का इस पर विश्वास था । तो दूसरा कारण यह है—कि किसी भी राजा महाराजा का होनहार राजा ही होता है इसलिये यह ईश्वर का अंश समझा जाता है और इसी से . होता है । जैसा कहा है (मनु संहिता के ७ वें अध्याय में)—

श्लोक—बालोऽपि नाव मन्तव्यो, मनुष्य इति भूमिपः ।
महती देवता ह्येषा, नर रूपेण तिष्ठति ॥ ८ ॥

अर्थ—यह बालक है और मनुष्य है ऐसा जानकर राजा का अपमान न करना चा (मान करना चाहिये) क्योंकि यह कोई बड़ा देवता है जो मनुष्य के रूप से विराजता है।

+ मागध सूत बन्दि गुण गायक । पावन गुण गावहिं रघुनायक—

रघुवंशी राजाओं की प्रशंसा जो मागध सूत आदि करते थे सो यों कि " ... धनेश, विघ्न घन हनन गणेश, भूमिभर धरन शेश, भव विभव धनेश, स्वजन . पालक दिनेश, मीनकेतन सुवेश, द्युति निशेश, कलेश, हर महाराजा अवध की जय होय " ॥

× सर्वस दान दीन्ह सब काहू । जेहि पावा राखा नहिं ताहू—इसका अर्थ समझ लेते हैं कि जिन्हों ने पाया उन्हों ने दूसरे को दे दिया और इस पाने वाले ने . को दे दिया इसी तरह अंत में यह वस्तु किसके पास रही ? यह शंका करते हैं सो इसका ठीक २ अर्थ जो लिख आये हैं उस पर विचार किया जाय तो यही सिद्ध होता है कि जिन्हों ने पहिली बार पाया उन्हों ने उसे लुटा दिया बस यहीं तक देने की हद हो गई लूटने वालों ने दूसरों को नहीं दिया क्योंकि गोसाईं जी का कथन है कि ' राखा नहिं ताहू ' अर्थात् उसे रक्खा नहीं कछु यह नहीं कहा कि दूसरों को सौंप दिया (२) दूसरी रीति से

अर्थ (पहिला)—सब को सब प्रकार का दान दिया गया और जिन को (पहिली) मिला उनने भी अपने पास नहीं रक्खा। भाव यह कि 'सब काहू को, अर्थात् लोग वहां उपस्थित थे। महाराजा ने 'सर्वस' अर्थात् सब कुछ जैसे धन, वस्त्र, भूषण आदि दिये और जिन्हों ने ये वस्तुयें पाईं उन वस्तुओं को उन्हीं ने अपने पास रक्खा अर्थात् लुटा दिया सो जिस के जी में जो आया वह उसी को ले गया। सा राम रसायन रामायण से स्पष्ट होता है:—

रेगीतिका छन्द—नृप नारि सब आनन्द अति मुखचन्द लखि रघुनन्द को।
मणि बसन भूषण वारि परसहिं अङ्ग सुत सुखकन्द को॥
दासी जु खासी दासि दासी तेउ सुवन निहार कै।
'पावैं सु आँगहु वारि डारैं' वित्त वित्त बिसारि कै॥

दूसरा अर्थ—पहिले जितने मनुष्य आये थे उनको अनेक वस्तुयें दीं परन्तु वे आनंद के कारण वहां बैठे ही रहे इतने में जो और बहुत से लोग आये उनके साथ पहिले आये हुए लोगों को फिर से और वस्तुयें दे दीं उन्हें 'राखा नहिं' अर्थात् दुबारा देने में संकोच न रक्खा॥

तीसरा अर्थ—महाराज ने सब आये हुए लोगों को बहुत कुछ दान दिया यहां तक कि जिन्हें वह दान मिला उनके पास यह बात न रह गई कि जिसके लिये दान दिया जाता है अर्थात् उनके पास दरिद्र न रहा। भाव यह कि दान पाने वालों का दरिद्र दूर हो गया जैसा कहा है:—

दोहा—दशरथ नृप आनँद मगन, लखि मुख राम मयंक।
दान दियो पूरण सबहि, 'धनद तुल्य भे रंक'॥

चौ०—मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन बिच बीचा॥

अर्थ—कस्तूरी चंदन और कुंकुम से गलियां ऐसी सिचाईं गईं कि कीचड़ मच गया॥

समाधान यह है कि देवता नाग आदि जो मनुष्यरूप धारण कर अवध वासियों में आ मिले थे। उन्हें तथा अवध वासियों को जो कुछ आनंद की उमंग में मिला था। वह सब उन्होंने भी द्वार पर आये हुए याचकों को लुटा दिया कुछ याचकों ने लोगों को नहीं देखा तो इस प्रकार हाथों हाथ वस्तु चली जाये जैसी कि गंगा की लहरी है:

दोहा—गृह गृह बाज बधाव शुभ, प्रकटेउ सुखमा कन्द।
हर्षवंत सब जहँ तहाँ, नगर नारि नर वृन्द॥

अर्थ—शोभा की खानि भगवान ने जब जन्म लिया तो (अर्थात्
सब बधाइयाँ होने लगीं और नगर भर के स्त्री पुरुष अपने २ स्थानों में
लगे ॥

चौ०—कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुन्दर सुत जन्मत भईं
वह सुख संपति समय समाजा। कहि न सकइ शारद

अर्थ—कैकेयी और सुमित्रा इन दोनों को भी सुन्दर पुत्र हुए। उस सम
और संपत्ति की समाज को सरस्वती और सर्पराज (वासुकी) भी नहीं कह

चौ०—अवधपुरी सोहइ इहि भांती। प्रभुहि मिलन आई जनु
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनु

अर्थ—अयोध्या नगरी इस प्रकार शोभा दे रही थी कि मानो
जी से मिलने को आई हो। वहां पर (रामरूपी) सूर्य को देख कर मन
... ऐसा भासने लगा कि मानो संध्या बन गई हो॥

चौ०—अगर धूप बहु जनु अँधियारी। उड़इ अबीर मनहुँ अरुणारी॥
मंदिर मणि समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इंदु उदारा॥

अर्थ—अगर का जो धुआं हो रहा था वही मानो अँधेरा था, जो अबीर उड़ रहा था वही मानो (सांझ की) लाली थी। महलों में जो (जगह जगह) मणि के समूह थे वे ही मानो तारे थे और राजमहल का (सुनहला) कलश मानो पूर्ण चन्द्रमा था॥

चौ०—भवन वेद धुनि अति मृदुबानी। जनु खग मुखर समय अनुमानी।
* कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइ जात न जाना॥

अर्थ—महलों में जो वेदध्वनि हो रही थी वह मानो संध्या का समय जान पक्षियों के (बसेरा करने के समय के) शब्द थे। इस आनंद उत्सव को देख कर सूर्य भी ऐसी भूल में पड़ गये कि उन्हें एक महीना व्यतीत होते न समझ पड़ा॥

दोहा—+ मास दिवस कर दिवस भा, मर्म न जानइ कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ, निशा कवन विधि होइ॥ १६५॥

---

* कौतुक देखि पतङ्ग भुलाना। एक मास तेइ जात न जाना॥ कुण्डलिया रामायण से—

कुण्डलिया—मास भयो शुभ वार योग वर नखत विराजत।
निधि नभ जल महि विमल दिशा विदिशा सब भ्राजत॥
भ्राजत सरयू अवध देवगण जय उचारत।
बर्षत सुमन प्रशंस हंस निज वंश निहारत॥
हारत खलगण मन मलिन प्रकट भये सुख दुख गयो।
'तुलसी' रघुवर प्रकट भे मास एक को दिन भयो॥

\+ मास दिवस कर दिवस भा, मर्म न जानइ कोइ—मध्यान्ह समय में जब सूर्य देव ने अपने कुल में श्री रामचन्द्र जी का प्रकट होना देखा, तब तो वे आनन्द में ऐसे मग्न हो गये कि अपने रथ की गति रोक गगन मण्डल में स्थिर हो कर एक मास तक बने रहे। यह भेद कोई न जान सका, यहां तक कि ज्योतिषी लोग बहुत समय तक मध्यान्ह ही मध्यान्ह देखकर जब कभी 'शंकु' खड़ा कर सूर्य की छाया नापते थे तब मध्यान्ह ही समझ पड़ता था इस से भी कुछ भेद न जान सके। जैसा कि रसिक बिहारी ने कहा है॥

क०—छहरे अनूप दुव बाटि अवधेश जू के जै जै कार जोर चहुँओर शोर है उमंगु।
आरती औ धूप द्वार भवन भंडार खुले दान को अपार कोऊ जग में रहो न रंकु॥
दिवस भयो सो एक मास को अनूप हेरि रसिक बिहारी सुरी सदन गने हैं अंकु।
देखहु न पाई भेद कविन कथंन जानि हेरि हेरि भानु फेरि फेरि के निरखै संकु॥

अर्थ — एक दिन ही एक महीने का होगया परंतु यह भेद किसी के ... न आया। जबकि रथ सहित सूर्य देव ही थक रहे तो रात्रि किस प्रकार हो सक्ती थी।

चौ० — यह रहस्य काहू नहिं जाना। दिनमणि चले करत गुण गान॥
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन वर्णत निज भागा॥

शब्दार्थ — दिन मणि (दिन + मणि) = सूर्य।

अर्थ — यह भेद किसी ने न समझा. सूर्य देव प्रभु के गुण गाते हुए चल दिए। इस बड़े भारी उत्सव को देखने के पश्चात् देवता, मुनीश्वर और नाग अपने अपने भाग्य की बड़ाई करते हुए निज स्थान को लौटे (भाव यह कि सूर्य देव इस बात से प्रसन्न थे कि परमेश्वर ने अवतार ले हमारे वंश को उजागर किया और मुनि तथा देवगण आदि कहते थे कि धन्य हमारे भाग्य कि हमने अपने नेत्रों से परमात्मा के जन्मोत्सव को देखा)॥

चौ० — अउरउ एक कहउँ निज चोरी। सुनु गिरजा अति दृढ़ मति तोरी॥
काकभुशुंडि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ॥
परमानन्द प्रेम सुख फूले। वीथिन फिरहिं मगन मन भूले॥
यह शुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई॥

अर्थ — (महादेव जी कहने लगे कि) हे पार्वती ! सुनिये, तुम्हारे चित्त में पूर्ण विश्वास जम गया है इस हेतु मैं और भी अपनी एक गुप्त बात कहता हूँ सो सुनो! मैं और कागभुशुंडि दोनों साथ साथ मनुष्यरूप धारण किये हुए गुप्त रूप से अत्यन्त आनंद और प्रेम के सुख से फूले हुए मन की उमंग में भूले हुए गलियों में घूमते फिरते थे। इस उत्तम चरित्र को वही जान सक्ता है जिस पर रघुनाथ जी की कृपा होती है॥

सूचना — यह ऐसी वार्ता है जो शिवजी ने पार्वती के उस कथन के अनुसार कही है जिस में उन्हों ने कहा था :—
" जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखहु जनि गोई "

चौ० — तेहि*अवसर जो जेहि विधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मनभावा॥
गज रथ तुरँग हेम गो हीरा। दीन्हें नृप नाना विधि चीरा॥

* तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा॥ सूरसंजोग ... के आँगन भीर। (क्षेपक)

आर राग कान्हरा—

अर्थ—उस समय जो जिस प्रकार से आया और उसके मन में जो अच्छा [लगा] वही महाराजा ने उसको दिया। हाथी, रथ, घोड़े, सोना, गायें और मणि कई प्रकार के वस्त्र राजा ने दिये॥

दोहा—×मन संतोषे सबनि के, जहँ तहँ देहि अशीस।
सकल तनय चिरजीवहू, तुलसिदास के ईस॥ १९६॥

अर्थ—राजा ने सब के मन संतुष्ट किये इस हेतु वे सब जहां तहां आशीर्वाद [देने] लगे कि सब पुत्र चिरंजीव रहें जो तुलसीदास के स्वामी हैं॥

[१]०—कछुक दिवस बीते इहि भांती, जात न जानिय दिन अरु राती।
+नामकरण कर अवसर जानी, भूप बोलि पठये मुनिज्ञानी॥

आये भवभार उतारन कारन प्रगटे श्याम शरीर॥
फूले फिरत अयोध्यावासी गनत न त्यागत चीर।
परिरम्भन हँसि देत परस्पर आनँद नैननि नीर॥
त्रिदश नृपति ऋषि व्योम विमानन्ह देखत रहे न धीर।
त्रिभुवन नाथ दयालु दरश दे हरी सबन की पीर॥
देत दान राख्यो न भूप कछु महा बड़े नग हीर।
भये निहाल सूर सब याचक जे याचे रघुवीर॥

× मन संतोषे सबनि के, जहँ तहँ देहि अशीस—
राग कान्हरा—रघुकुल प्रकटे हैं रघुवीर।
देश देश ते टीका आयो रतन कनक मणि हीर॥
घर घर मङ्गल होत बधाई अति पुर वासिन भीर।
आनँद मगन भये सब डोलत कछु न शोध शरीर॥
मागध बन्दी सूत लुटावैं गौ गयन्द हय चीर।
देत अशीस सूर चिरजीवो रामचन्द्र रघु बीर॥

+ नाम करण—यह पांचवां संस्कार जातकर्म संस्कार के पश्चात् होता है। मनुजी का वचन है कि बालक का नाम जन्म से दशवें या बारहवें दिन रक्खे। कदाचित् इन दिनों में न हो सके तो शुभवार नक्षत्र आदि देख कर नाम रक्खे। मुहूर्त्त [illegible] ग्यारहवें और बारहवें दिवस नाम रखने को कहते हैं। मुहूर्त्तमार्तण्ड का मत है कि [illegible] का नाम करण ११ वें दिन, [illegible] २० वें [illegible] दिन [illegible] [illegible] है। [illegible] है कि [illegible] दिवस हो, वहां मुहूर्त्त नहीं देखा जाता। [illegible]

अर्थ – एक दिन ही एक महीने का होगया परंतु यह भेद किसी के
न आया जबकि रथ सहित सूर्य देव ही थक रहे तो रात्रि किस प्रकार॥

चौ०—यह रहस्य काहू नहिं जाना। दिनमणि चले करत गुण
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन वर्णत निज

शब्दार्थ—दिन मणि (दिन+मणि)=सूर्य।

अर्थ – यह भेद किसी ने न समझा. सूर्य देव प्रभु के गुण गाते
हुए। इस बड़े भारी उत्सव को देखने के पश्चात् देवता, मुनीश्वर और नाग
अपने भाग्य की बड़ाई करते हुए निज स्थान को लौटे (भाव यह कि सूर्य
बात से प्रसन्न थे कि परमेश्वर ने अवतार ले हमारे वंश को उजागर कि
प तथा देवगण आदि कहते थे कि धन्य हमारे भाग्य कि हमने अपने नेत्रों से
जन्मोत्सव को देखा) ॥

चौ०—अउरउ एक कहउँ निज चोरी। सुनु गिरजा अति दृढ़ मति
काकभुशुंडि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानइ नहिं
परमानन्द प्रेम सुख फूले। वीथिन फिरहिं मगन मन
यह शुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर

अर्थ – (महादेव जी कहने लगे कि) हे पार्वती ! सुनिये, तुम्हारे वि
श्वास जम गया है इस हेतु मैं और भी अपनी एक गुप्त बात कहता हूँ
और कागभुशुंडि दोनों साथ साथ मनुष्यरूप धारण किये हुए
त्यन्त आनंद और प्रेम के सुख से फूले हुए मन की उमंग में भूले हुए
लते फिरते थे। इस उत्तम चरित्र को वही जान सक्ता है जिस पर रघुना
कृपा होती है ॥

सूचना—यह ऐसी वार्ता है जो शिवजी ने पार्वती के उस कथन
ाई है जिस में उन्हों ने कहा था :—

" जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखहु जनि "

०—तेहि*अवसर जो जेहि विधि आवा। दीन्ह भूप जो
गज रथ तुरँग हेम गो हीरा। दीन्हें नृप नाना

* तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा। दीन्ह भूप जो
र राग कान्हरा— आज दशरथ के आँगन भीर।

—सीकर = जलकण अर्थात् थोड़ी ही।

ो आनन्द के समुद्र और सुख के समूह हैं तथा जिन की थोड़ी ही दया में सुख हो जाता है। ऐसे सुख के स्थान का नाम 'राम' है जो को आराम देने वाला है॥

भरण पोषण कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।
सुमिरन ते रिपु नाशा। नाम शत्रुहन वेद प्रकाशा॥

ो संसार का पालन पोषण करने वाले हैं उन का नाम 'भरत' ऐसा स्मरण करने से शत्रुओं का नाश होता है उनका नाम 'शत्रुहन' जगत

लक्षण धाम सु राम प्रिय, सकल जगत आधार।
रु वशिष्ठ तेहि राखेऊ, लक्ष्मण नाम उदार॥ १९७॥

ा सब लक्षणों से परिपूर्ण, रामचन्द्र जी के प्यारे और संपूर्ण संसार के वशिष्ठ जी ने उनका उदार चित्त 'लक्ष्मण' नाम रक्खा॥

यद्यपि बुध बय रूप शील गुण सम ये चारु चारों भाई।
तदपि लोक लोचन चकोर शशि भरत परम सुखदाई॥
सुरनर मुनि करि अभय दनुज हनि हरणि धरणि गरुआई।
कीरति विमल विश्व अघ मोचनि रहहि सकल जग छाई॥
जाके चरण सरोज कपट तजि जो भजि है मन लाई।
सो कुल युगल सहित तरि है भव यह न कछु अधिकाई॥
सुनि गुरु वचन पुलकि तन दंपति हरष न हृदय समाई।
तुलसिदास अवलोकि मातु मुख प्रभु मन में मुसकाई॥

धाम सु राम प्रिय सकल जगत आधार—

यह शंका हो सकती है कि शत्रुघ्न सब से छोटे और लक्ष्मण उन से बड़े हैं का नाम बताकर पीछे से लक्ष्मण का नाम क्यों रक्खा, उस का समाधान यह यों का एक एक गुण लक्ष्मण जी में बतलाया है. जैसे श्री रामचन्द्र जी में ,'आराम देना' भरत जी में संसार का पालन पोषण करना और शत्रुघ्न में करना, ये तीनों गुण लक्ष्मण जी में बतलाना था सो 'लक्षण धाम' इस ।दिया, इस के सिवाय ये श्री रामचन्द्र जी के प्रिय और विशेष सेवकी ये अपना छोटे में वर्णन करना गोसाईं जी ने योग्य समझा॥

चौ०—धरेउ नाम गुरु हृदय विचारी । वेद तत्त्व नृप तव सुतचा[illegible]
मुनि धन जन सर्वस शिव प्राना । बाल केलिरस तेहिं सुख मान[illegible]

अर्थ—गुरु वशिष्ठ जी ने हृदय से विचार कर नाम रक्खे और कहा है रा[illegible] तुम्हारे चारों पुत्र वेद के तत्त्व हैं (अर्थात् ओंकारात्मक हैं) । मुनियों के धन [illegible] भक्तों के सब कुछ और शिव जी के प्राण हैं जो शिव जी बाललीला के लि[illegible] आनन्द मानते हैं ॥

चौ०—+ बारेहि ते निज हित पति जानी । लछिमन रामचरण रतिमानी[illegible]
भरत शत्रुहन दोनों भाई । प्रभु सेवक जस प्रीति बढ़ा[illegible]

अर्थ—छुटपन ही से लक्ष्मण ने रामचन्द्र जी को अपना हितकारी और स[illegible] समझ कर उनके चरणों में प्रेम लगाया । भरत और शत्रुहन इन दोनों भाइयों ने [illegible] प्रकार से प्रेम बढ़ाया जिस प्रकार स्वामी और सेवक का प्रेम होता है ॥

चौ०—श्यामगौर सुन्दर दोउ जोरी । निरखहिं छबि जननी तृण तोरी[illegible]
चारिउ शील रूप गुण धामा । * तदपि अधिक सुखसागर रामा[illegible]

अर्थ—श्यामली और गोरी ऐसी सुन्दर युगल जोड़ी की शोभा देख माता [illegible] तोड़ती थीं (इस अभिप्राय से कि इन्हें किसी की दीठ न लगे) (यद्यपि) चारों [illegible]

+ बारेहि ते निज हित पति जानी ... ... प्रभु सेवक जस प्रीति बढ़ाई—[illegible] रामायण से

श्लोक—लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च ।
द्वन्द्वी भूय चरंतौ तौ पायसांशानुसारतः ॥

अर्थात् पायसरूप यज्ञ के भाग के अनुसार लक्ष्मण श्री रामचंद्र जी के संग [illegible] शत्रुघ्न भरत के साथ परस्पर दो दो मिल के रहते थे ॥

भाव यह कि पायस का शेष चौथा भाग जो बचा था उसे कौशल्या और कैकेयी [illegible] हाथों से पृथक् २ सुमित्रा को दिलाया था । इस हेतु कौशल्या के हाथ से दिये हुए भा[illegible] उत्पन्न लक्ष्मण श्री रामचन्द्र जी के साथी हुए और कैकेयी के हाथ से दिये हुए भा[illegible] उत्पन्न शत्रुघ्न भरत जी के साथ रहे ।

* तदपि अधिक सुखसागर रामा—

सवैया—[illegible] किये ।
[illegible] किये ॥
[illegible] किये ।
[illegible] किये ॥

(अ)र्थ—उनकी लम्बी भुजायें बहुतेरे आभूषणों से शोभित थीं और हृदय में (बघन)ा की छटा निराली ही थी। हृदय पर रत्नों की माला मध्य मणि से शोभायमान (औ)र वहीं पर भृगुलता का चिन्ह देखने से मन लुभाय जाता था॥

—कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छवि छाई॥
‡दुइ दुइ दशन अधर अरुणारे। नासा तिलक को बरनै पारे॥

अर्थ—शंख के समान कंठ और ठोढ़ी अधिक सुहावनी लगती थी तथा मुख (अ)नगिन्ती कामदेव की शोभा झलकती थी। लाल लाल ओंठ और दो दो (दँत)ियां थीं तथा नाक के ऊपर के तिलक का कौन वर्णन कर पार पासक्ता है॥

०—सुंदर श्रवण सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥
नीलजलजदोउनयनविशाला। विकट भृकुटि लटकनि वरभाला॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥

अर्थ—सुन्दर कान, मनोहर गाल और अत्यंत प्यारी मीठी तोतली वाणी, (नील) कमल के समान बड़े २ दोनों नेत्र, टेढ़ी भौंहें और सुन्दर कपाल पर बाल (लटक)ते थे। गर्भ ही के चिकने घूंघरवाले बालों को माता ने सब प्रकार से ऊंच सँभाल दिया था॥

०—×पीत झँगुलिया तनु पहिराई। जानु पाणि विचरनि मोहि भाई॥

उनकी छाती में पद प्रहार किया तो वे बहुत ही लज्जित होकर उठ बैठे। उन्हों ने मेरा (पैर) मींज कर कहा कि हे ब्राह्मण देवता! मेरे कठोर हृदय के कारण आप के चरण में चोट (लगी) होगी क्षमा कीजिये! धन्य है मेरा भाग्य कि आप के चरणों का संस्कार मेरे शरीर पर (हुआ)। आप के इस पदचिन्ह को मैं अपने वक्षस्थल पर बनाये रहूंगा। जब भृगु जी ने देखा (तो) तब सब ऋषिगण एक स्वर से कह उठे। धन्य है! श्री विष्णु जी को, येही आज से (पर)म पूज्य होचुके।

‡ दुइ दुइ दशन अधर अरुणारे—

सवैया—तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कंज कि मंजुलताईं हरै।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे छवि भूरि अनंग कि दूरि धरैं॥
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों किलकैं कल बाल बिनोद करैं।
अवधेश के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में बिहरैं॥

× पीत भँगुलिया तनु पहिराई—राम स्वयंवर रामायण से—

दोहा—पीत भँगुलिया श्याम तन, मणि मय भूषण अंग।
जनु घेरे घन दामिनी, [illegible]॥

अर्थ—सुख के स्थान, अज्ञान से दूर, ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से परे परमेश्वर
ा माता के अत्यन्त प्रेम के कारण पवित्र बाल लीला कर रहे थे ॥

ौ०—इहि विधि राम जगत पितु माता । कोशलपुर बासिन्ह सुखदाता ॥
*जिन रघुनाथ चरण रति मानी । तिनकी यह गति प्रकट भवानी ॥

अर्थ—इस प्रकार जगत के माता पिता श्री रामचन्द्र जी अयोध्यावासियों को
व देने लगे । (महादेव जी कहते हैं कि) हे पार्वती ! जिन्हों ने श्री रामचन्द्र जी के
रणों में प्रेम लगाया है, उनकी ऐसी ही गति प्रसिद्ध है (अर्थात् श्री रामचन्द्र जी
चरणों में प्रेम रखने वालों को ऐसा ही सुख चैन मिलता है जैसा राजा दशरथ
ौर कौशल्या जी को मिला था) ॥

ौ०—‡ रघुपति विमुख जतन कर कोरी । कवन सकै भवबंधन छोरी ॥
जीव चराचर बश करि राखे । सो माया प्रभु सों भय भाखे ॥

---

* जिन रघुनाथ चरण रति मानी । तिन की यह गति प्रकट भवानी ॥ सूर संगीत सार
राग बिलावल—करतल शोभित बान धनुहियां ।

खेलत फिरत कनकमय आँगन पहिरे लाल पनहियां ॥
दशरथ कौशल्या के आगे लसत सुमन की छहियां ।
मानो चार हंस सरवर ते बैठे आय सदहियां ॥
रघुकुल कुमुद चन्द्र चिन्तामणि प्रगटे भूतल महियां ।
यहै दैन आये रघुकुल को आनँदनिधि सब नहियां ॥
ये सुख तीन लोक में नाहीं जो पाये प्रभु पहियां ।
सूरदास हरि बोलि भगत को निरबाहत दै बहियां ॥

‡ रघुपति विमुख जतन कर कोरी । कवन सकै भवबंधन छोरी ॥
राग झिंझोटी—तातें बहु समुझि परे रघुराया ।

बिनु तुव कृपा दयालु दास हित मोह न छूटै माया ॥
वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई ।
निशि गृह मध्य दीप की बातनि तम निवृत्त नहिं होई ॥
जैसे कोइ इक दीन दुखित अति असन हीन दुख पावै ।
चित्र कलपतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नसावै ॥
षटरस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैन बखानै ।
बिनु बोले संतोष जनित सुख खाइ सोइ पै जानै ॥
जबलगि नहिं निज हृदि प्रकास अरु विषय आस मन माहीं ।
तुलसीदास तब लगि जग जोनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं ॥

* रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति शेषा। सो जानहिं सपनेहुँ

अर्थ—शरीर में पीली झँगुलिया पहिराई गई थी, घुटनों और हाथों चलना मुझे सुहावना लगता था। उनकी शोभा को वेद और शेषनाग कह सकते हैं उसे वे ही जान सक्ते हैं जिन्हों ने उन्हें स्वप्न में भी देखा हो॥

दो०—+सुख सन्दोह विमोह पर, ज्ञान गिरा गोतीत।
सो दंपति अति प्रेमवश, कर शिशुचरितपुनीत॥ १९९॥

---

* रूप सकहिं नहिं, कहि श्रुति, शेषा। सो जानहिं सपनेहुँ जिन देखा॥ गी०-रामायण से (ललित राग में)

सादर सुमुखि विलोकि राम शिशु रूप अनूप भूप लिय कनियां।
सुन्दर श्याम सरोज बरण तन सब अँग सुभग सकल सुखदनियां॥
अरुण चरण नख जोति जगमगति रुनु झुनु करति पाँय पैजनियां।
कनक रतन मणि जड़ित रचित कटि किंकिणि कलित पीत पटतनियां॥
पहुँची करनि पदिक हरि नख उर कठुला कंठ मंजु गजमनियां।
रुचिर चिबुक रद अधर मनोहर ललित नासिका लसति नथुनियां॥
विकट भृकुटि सुखमानिधि आनन कल कपोल कानन्ह नगफनियां।
भाल तिलक मसि बिन्दु विराजत सोहति सीस लाल चौतनियां॥
मन मोहनी तोतरी बोलनि मुनि मन हरणि हँसनि किलकनियां।
बाल सुभाय बिलोल विलोचन चोरति चितहि चारु चितवनियां॥
सुनि कुल बधू झरोखनि झांकति रामचन्द्र छवि चंद्र बदनियां।
तुलसिदास प्रभु देखि मगन भईं प्रेम विवश कछु सुधि न अपनियां॥

+ सुख सन्दोह विमोह पर, ज्ञान गिरा, गोतीत ... ... कर शिशु चरित पुनीत॥

विष्णुपदी रामायण से —

राग कान्हड़ा—रघुवर मेरे बालक को पाये।

कोटि कोटि ब्रह्मांड रोम प्रति अगणित [illegible]॥
[illegible] सुख लखि ललित [illegible]।
[illegible] [illegible]॥
[illegible] [illegible] पर बाहन [illegible]।
[illegible] [illegible]॥
[illegible] [illegible]।

ई—कौशल्या जी प्रेम में इस प्रकार मग्न थीं कि उन्हें रात दिन जाते हुए ऋ पड़ता था, इसी प्रकार सब माताएँ पुत्रों के प्रेम में पगी हुई उन की ला का वर्णन करती रहती थीं ॥

एक बार जननी अन्हवाये। करि सिंगार पलना पौढ़ाये॥
निजकुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह असनाना॥

र्थ—एक समय माता कौशल्या ने रामचन्द्र जी को नहलाया और शृङ्गार कर ालने में लिटा दिया। फिर उन्हों ने भी अपने इष्ट देव (श्री रंग नाथ) की पूजा करने के निमित्त स्नान किये॥

-करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा। आप गई जहँ पाक बनावा॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत दीख सुत जाई॥

र्थ—पूजा करके उन्हें नैवेद्य दिखाया और फिर आप रसोई घर में गईं। ता लौट कर वहीं आई तो देखा कि बालक भोजन कर रहा है॥

-गइ जननी शिशु पहँ भयभीता। देखा बाल तहां पुनि सूता॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदय कंप मन धीर न होई॥

अर्थ—माता डरती डरती बच्चे के पास (पालने के समीप) गई तो वहां लक को सोया हुआ देखा। फिर जो लौट कर आईं तो उसी लड़के को न करते हुए पाया) तो हृदय में कपकपी उठी और मन में धीरज नहीं था॥

-इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मति भ्रम मोर कि आन बिसेखा॥
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसकानी॥

अर्थ—दोनों स्थानों में दो बालकों को देखा तो विचारने लगीं कि मेरी समझ भूल है कि कोई दूसरा कारण है। जब श्री रामचन्द्र जी ने देखा कि माता घबड़ा हैं तब तो उन्हों ने मुसकराकर हँस दिया॥

घुटवो बजावति मचावति कौशल्यामाता बालकेलि गावति मल्हावति सुप्रेमभर।
किलकि किलकि हँसै द्वै द्वै दँतुरियां लसै तुलसी के मन बसै तोतरे वचनवा

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी से विमुख हो करोड़ों यत्न करने पर भी
फंदे से छुड़ा सक्ता है ? (देखो जिस माया ने) चलने वाले और
अपने आधीन कर रक्खा है वह माया भी श्री रामचन्द्र जी के सा
गिड़गिड़ाती है ॥

चौ०—भृकुटि विलास नचावइ ताही । अस ...
मन क्रम वचन छाँड़ि चतुराई । भजत कृपा करि है

अर्थ—ईश्वर माया को अपनी दृष्टि के संकेत मात्र ही से न
परमेश्वर को छोड़ कर कहो किसका भजन करें ? अपनी चालाकी
मनसा वाचा कर्मणा से ईश्वर का भजन करने से वे कृपा करते हैं ॥

चौ०—इहिविधि शिशुविनोद प्रभुकीन्हा। सकलनगरवासिन्ह
लै उछंग कबहुँक हलराव । कबहुँ पालने घालि

अर्थ—इस रीति से रामचन्द्र जी बाल लीला करते थे जिससे स
निवासियों को आनंद मिलता था। माता कभी कभी गोदी में लेकर
और कभी कभी पालने में लिटा कर झुलाती थीं ॥

दो०—प्रेम मगन कौशल्यही, निशि दिन जात न जान
सुत सनेहवश मात सब, बालचरित कर गान ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी से विमुख हो करोड़ों यत्न करने पर भी जीव भवसं
ट फंदे से छूट सकता है ? (जैसे जिस माया ने) चराचर वाले और स्थिर
तो अपने आधीन कर रक्खा है वह माया भी श्री रामचन्द्र जी के सामने डर
गड़गिड़ाती है ॥

चौ०—भृकुटि बिलास नचावइ ताही । अस प्रभु छाँड़ि भजिय कहु काहि
*मन क्रम बचन छाँड़ि चतुराई । भजत कृपा करिहैं रघुराई
अर्थ—ईश्वर माया को अपनी दृष्टि के संकेत मात्र ही से नचाता है
परमेश्वर को छोड़ कर कहो किसका भजन करें ? अपनी चालाकी को छोड़
मनसा वाचा कर्मणा से ईश्वर का भजन करने से वे कृपा करते हैं ॥

चौ०—इहिबिधि शिशुबिनोद प्रभु कीन्हा । सकल नगरबासिन्ह सुख दीन्ह
लै उछंग कबहुँक हलरावै । कबहुँ पालने घालि झुलावै
अर्थ—इस रीति से रामचन्द्र जी बाल लीला करते थे जिससे सम्पूर्ण नग
निवासियों को आनंद मिलता था । माता कभी कभी गोदी में लेकर झुलाती
और कभी कभी पालने में लिटा कर झुलाती थीं ॥

दो०—‡ प्रेम मगन कौशल्यहौ, निशि दिन जात न जान ।
सुत सनेहवश मात सब, बालचरित कर गान ॥२००॥

---

* मन क्रम बचन छाँड़ि चतुराई । भजत कृपा करि हैं रघुराई ॥ काव्य निर्णय से—
सवैया—राम को दास कहाये सवै जग 'दासहु' राखते काम निहारे ।
भारी भरोसो हिये सब ऊपर द्वै है मनोरथ सिद्ध हमारे ॥
राम सनेहिन के कुल घाले भयो रहो देवन को रखवारो ।
दारिद घालियो दीन को पालियो रामको नामहै काम तिहारो ॥

अर्थ—शरीर के रोम खड़े हो गये और मुँह से कुछ कहते न बना निदान आँखें बन्द कर उनके चरणों को प्रणाम किया। माता को घबराई हुई देख कर रामचन्द्र जी फिर से बालरूप बन गये ॥

चौ०—अस्तुति करि न जाइ भय माना। जगतपिता मैं सुत करि जाना॥
हरि जननी बहु विधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई॥

अर्थ—वे इतनी डर गई कि उन से स्तुति करते न बनी और बोलीं कि मैंने संसार के उत्पन्न करने वाले को अपना पुत्र माना। तब तो श्री रामचन्द्र जी ने माता को बहुत प्रकार से समझाया और कहा कि हे माता! इसकी चर्चा कहीं न करना॥

दो०—*बारम्बार सुकौशिला, विनय करै कर जोरि।
अब जनि कबहूँ व्यापई, प्रभु मोहि माया तोरि॥ २०२॥

अर्थ—कौशल्या जी हाथ जोड़ कर बारंबार विनती करने लगीं कि हे प्रभु तुम्हारी माया मुझे अब कभी न सतावे॥

चौ०—बालचरित हरि बहुविधि कीन्हा। अति आनँद दासन्ह कहँ दीन्हा॥
कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भये परिजन सुखदाई॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने भाँति भाँति से बाल लीला की और अपने भक्तों को बड़ा आनंद दिया। कुछ समय के पश्चात् वे सब भाई बड़े हुए और अपने कुटुम्बियों को सुख देने लगे॥

चौ०—[1]चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। विप्रन बहुत दक्षिणा पाई।

---

* बारम्बार सु कौशिला विनय करै कर जोरि। आदि—
भजन—जगत में लाज रहे न रहे।
हरि भूषण पहिरो उर अन्तर कोऊ कछु कहै॥
श्रीपति चरण कमल में उरझो मो मन बहु न गहै
द हरि दरशमतम् और चित सुम तजि कछु न लहै॥
मरक मिलै या सुरग पदारथ मन कछु चिपति लहै।
परिहरि चरण शरण मति छूटै दिन दिन अधिक बढ़ै॥
प्रेमसिन्धु में मगन रहूँ नित आँखों नीर बहै।
'श्यामा' श्याम रहूँ इक उन्नति और समाज रहै॥

[1] चूड़ा करन कीन्ह गुरु जाई। विप्रन बहुत दक्षिणा पाई॥ रामस्वयम्बर में—चौपाई

दो०—*दिखरावा माताहि निज, अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति राजहीं, कोटि कोटि ब्रह्मंड॥ २०१॥

अर्थ—उन्हों ने माता को अपना अनोखा विराट रूप दिखलाया जिसके एक रोम में करोड़ों ब्रह्मांड सुशोभित थे॥

चौ०—अगणितरविशशिशिवचतुरानन। बहुगिरिसरितसिंधुमहिकानन।
काल कर्म गुण ज्ञान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ॥

अर्थ—(उसी रूप में) अनगिनती सूर्य, चन्द्र, शिव, ब्रह्मा देखे तथा बहुत पहाड़, नदी, समुद्र, पृथ्वी और वन देखे। काल, कर्म, उनके गुण और स्वभाव समेत देखे तथा वे बातें भी देखीं जो किसी ने सुनी भी न होंगी॥

चौ०—देखी माया सब विधि गाढ़ी। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी॥
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भक्ति जो छोरै ताही॥

अर्थ—सब प्रकार से प्रबल जो माया है उसे डरती हुई, हाथ जोड़े खड़ी देखी। उस जीव को भी देखा जिसे माया नचाती है और वह भक्ति भी दिखाई दी जो जीव को छुटकारा दे देती है॥

चौ०—तन पुलकित मुख वचन न आवा। नयन मूँदि चरणन शिर नावा॥
विस्मयवंत देखि महतारी। भये बहुरि शिशुरूप खरारी॥

---

* दिखरावा माताहि निज, अद्भुत रूप अखंड।　　राम स्वयंवर से—

चौबोला—चकित जानि जननी जिय रघुपति वपु विराट दरशायो।
कोटि स्वयंभु शंभु शक्रादिक बहु सुर कौन गनायो॥
वदन हजारन चरण हजारन नैन हजारन सोहैं।
गिरि कानन सर सरित सिंधु युत महिमंडल वन मोहैं॥
रोम रोम प्रति कोटि कोटि ब्रह्मांड निहारयो माता।
कालहु कर्म सुभाउ प्रकृति जिय माया अति अवदाता॥
देखि विराट रूप सुत को तब नारायण जिय जानी।
अस्तुति करन लगी कौशल्या जोरि जलज युग पानी॥

दोहा—वात्सल्य रस हानि लखि, हरि लीन्हों हरि ज्ञान।
पुनि पलना सोवन लगे, प्राकृत बाल समान॥

चौ०—मन क्रम वचन अगोचरजोई। दशरथ अजिर विचर प्रभु सोई॥
+भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥

अर्थ—जो प्रभु मनसा वाचा कर्मणा से भी पहुँच के बाहर हैं वे ही दशरथ जी के आंगन में खेल रहे थे। भोजनों के समय जब राजा जी उन को बुलाते थे तो वे बाल मंडली को छोड़ कर नहीं आते थे॥

इसमु कर्म का काल (जैसे हर पांचवें दिवस करायें या कब) निर्णय किया है जिसका संबंध शरीर पर उसका असर पड़ने का ज्ञात होता है। इस कर्म में यह एक विशेषता है कि विवाह, व्रतबंध आदि शुभ कार्य अपने कुल में तीन पीढ़ी से किसी के यहां हुए हों तो चूड़ाकर्म उस कुल में ६ माह तक नहीं हो सक्ता है ऐसा ही अश्रुमुख श्राद्ध के विषय में है। इससे इस कर्म का कुछ कुछ अशुभ माने जाने का भास होता है। आज कल भी मुंडित शिर से शुभ के प्रत्युत अशुभ का विचार मन में विशेष उठता है॥

इस कर्म में तीर्थक्षेत्र पर, मनाये हुए स्थल पर या अपने देश में बालक का मुंडन वेद मंत्रों से उसके शिर पर कुश, गोमय रख कर नापित से कराने की विधि है दूसरे संस्कारों के समान यह संस्कार भी लोप होगया है। यज्ञोपवीत केसमय प्रायश्चित्त विधान से अलबत्ता कर दिया जाता है॥

आश्वलायन गृह्य सूत्र १—१७, १८ (आवृतैव कुमार्यै) से स्पष्ट है कि कन्याओं का चूड़ाकर्म पहिले होता था परन्तु विना वेद मंत्रों के उच्चार के। ऐसा ही मनु जी ने कहा है (देखो अध्याय २—६६) कालान्तर से कुमारियों का चौल संस्कार बहुतसी जातियों में लोप हो गया, कुछ जातियों में अभी भी जब तक लड़की के पेट के बालों का मुंडन एक दफे कर नहीं देवेंगे तब तक शिर पर बाल सर्वदा के लिये नहीं रखते। फिर इन बालों का मुंडन कराना या काटना सौभाग्यवतियों के लिये अशुभ गिनाजाताहै। सुधारकों में यहभी नहीं माना जाता। धर्म सिन्धुकार पं. काशीनाथ लिखते हैं कि—"इदानीं शिष्टेषु स्त्रीणां चूडादि संस्कार करणं न दृश्यते। विवाह काले चूडादि लोप प्रायश्चित्त मात्रं कुर्वन्ति" अर्थात् शिष्ट सम्प्रदाय में स्त्रियों का चूड़ाकर्म उनके समय (शाके १७१२) में नहीं होता था, न अब होता है। धर्म लोप हो जाने के डर से उसका प्रायश्चित्त मात्र अवश्य लड़की के विवाह के समय करते हैं॥

×भोजन करत बोल जब राजा। आदि......यही सब भाष्य प्रायः अध्यात्म रामायण से मिलता है, यथा—

श्लोक—भोक्ष्यमाणो दशरथो राममेहीतिचा सकृत्।
आह्वयत्यतिहार्देन प्रेम्णा नायाति क्रीडया॥
आनयेति च कौशल्या माहसा स्मिता शुभम्।
धावत्यपि न शक्नोति स्प्रष्टुं योगि मनोगतिम्॥ (प्रहसन)—

परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुम

अर्थ—गुरुजी ने आकर (चारों भाइयों का) मुंडन संस्कार कराया और समय ब्राह्मणों को बहुत सा द्रव्य मिला। चारों सुकुमार राज कुमार अनगिनती ही मन भावन चरित्र करते फिरते थे॥

चौबोला—चूडाकरन करन वेधन को जिय आयो दिन सोई।
खैर भैर माच्यो कौशलपुर प्रजा सुखी सब कोई॥
गुरु वशिष्ठ अवसर विचारि तहँ चारिउ कुँवर बुलाये।
गौरि गणेश पूजि पुण्याह सुवाचन सविधि कराये॥
कोउ गावैं कोउ बाज बजाव कोउ नाचहिं दै तारी।
राजभवन महँ महा मोद गुणि कौशल प्रजा सुखारी॥
भूपति कह्यो मिठाई दैहैं लालन कान छेदाये।
अति विचित्र भूषण पुनि दैहैं शिर मुंडन करवाये॥
परम मनोहर काकपक्षयुत शिखा राखि शिर दीन्ही।
करनवेध पुनि कियो सुतन्ह कर रंगनाथ नति कीन्ही॥
सम्पति अगनित दियो भिखारिन्ह कीन्हेउ दारिद दूरी।
बजे नगारे गगन अपारे पुहुपवृष्टि भै भूरी॥

चूड़ाकरन—चौलकर्म चूड़ाकर्म, और मुंडन ये पर्याय वाचक शब्द हैं यह षष्ठ संस्कार है। चूड़ाकर्म का काल 'तृतीये वर्षे चौलं यथा कुल धर्मं वा' ऐसा आश्वलायन गृह्य सूत्र में लिखा है। ज्योतिष के ग्रन्थों में और धर्मशास्त्रों में जन्म से अथवा गर्भ से तीसरे या पांचवें वर्ष में, चूड़ा कर्म का काल कहा है। मनुस्मृति में पहिले वर्ष भी चूड़ाकर्म की आज्ञा दी है। गृह्यसूत्र में विशेष ज़ोर मुंडन कराने पर ही दिया है। मुंडन के पश्चात् चोटी या बाल शिर पर कैसे रखवाना यह कुलधर्म पर छोड़ दिया गया है। जैसा कि 'यथा कुलधर्मं केशवेशान्कारयेत्' इस सूत्र से प्रतीत होगा। आधुनिक काल में पूरा शिर मुंडाना यही कुल धर्म होगया है॥

चूड़ाकर्म दक्षिणायन में वर्जित है। वैसे ही यदि संस्कार्य की माता गर्भवती हो तो भी वर्जित है। चूड़ाकर्म का अति काल साधारणतः पाँच वर्ष के बाद माना गया है। यों तो उपनयन संस्कार के साथ में भी चूड़ाकर्म होता है। शुभ वार नक्षत्र विहित हों, परंतु [illegible], शतभिषा नक्षत्र ज्येष्ठा भी इस कर्म के लिये शुभ माना गया है। अशुभ काल में यह कर्म होने से रोग, ज्वर मृत्यु तक होती है। ऐसा ज्योतिष के ग्रन्थों का मत है। इसका [illegible] से भी संबंध दिखता है, कारण कि ज्वर से पीड़ित बालक का चूड़ाकर्म [illegible] के [illegible] में वर्जित किया है और वैद्यक तथा ज्योतिष के ग्रन्थों, तथा धर्मशास्त्रों के भी ग्रन्थों में

चौ०—मन क्रम वचन अगोचरजोई। दशरथ अजिर विचर प्रभु सोई॥
+भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥

अर्थ—जो प्रभु मनसा वाचा कर्मणा से भी पहुँच के बाहर हैं वे ही दशरथ जी के आंगन में खेल रहे थे। भोजनों के समय जब राजा जी उन को बुलाते थे तो वे बाल मंडली को छोड़ कर नहीं आते थे॥

इमश्रु कर्म का काल (जैसे हर पांचवें दिवस करावें या कब) निर्णय किया है जिसका संबंध शरीर पर उसका असर पड़ने का ज्ञात होता है। इस कर्म में यह एक विशेषता है कि विवाह व्रतबंध आदि शुभ कार्य अपने कुल में तीन पीढ़ी से किसी के यहां हुए हों तो चूड़ाकर्म उस कुल में ६ माह तक नहीं हो सक्ता है ऐसा ही अश्रुमुख श्राद्ध के विषय में है। इससे इस कर्म का कुछ कुछ अशुभ माने जाने का भास होता है। आज कल भी मुंडित शिर से शुभ के प्रत्युत अशुभ का विचार मन में विशेष उठता है॥

इस कर्म में तीर्थक्षेत्र पर, मनाये हुए स्थल पर या अपने देश में बालक का मुंडन वेद मंत्रों से उसके शिर पर कुश, गोमय रख कर नापित से कराने की विधि है दूसरे संस्कारों के समान यह संस्कार भी लोप होगया है। यज्ञोपवीत केसमय प्रायश्चित्त विधान से अलबत्ता कर दिया जाता है॥

आश्वलायन गृह्य सूत्र १—१७, १८ (आवृतैव कुमार्यै) सो स्पष्ट है कि कन्याओं का चूड़ाकर्म पहिले होता था परन्तु बिना वेद मंत्रों के उच्चार के। ऐसा ही मनु जी ने कहा है (देखो अध्याय २—६६) कालान्तर से कुमारियों का चौल संस्कार बहुतसी जातियों में लोप हो गया, कुछ जातियों में अभी भी जब तक लड़की के पेट के बालों का मुंडन एक दफे कर नहीं देवेंगे तब तक शिर पर बाल सर्वदा के लिये नहीं रखते। फिर इन बालो का मुंडन कराना या काटना सौभाग्यवतियों के लिये अशुभ गिनाजाताहै। सुधारकों में यहभी नहीं माना जाता। धर्म सिन्धुकार पं. काशीनाथ लिखते हैं कि—"इदानीं शिष्टेषु स्त्रीणां चूड़ादि संस्कार करणं न दृश्यते। विवाह काले चूड़ादि लोप प्रायश्चित्त मात्रं कुर्वन्ति" अर्थात् शिष्ट सम्प्रदाय में स्त्रियों का चूड़ाकर्म उनके समय (शाके १७१२) में नहीं होता था, न अब होता है। धर्म लोप हो जाने के डर से उसका प्रायश्चित्त मात्र अवश्य लड़की के विवाह के समय करते हैं॥

×भोजन करत बोल जब राजा। आदि......यही सब भाव्य प्रायः अध्यात्म रामायण से मिलता है, यथा—

श्लोक—भोक्ष्यमाणो दशरथो राममेहीति चा सकृत्।
आह्वयत्यतिहार्देन प्रेम्णा नायाति क्रीडया॥
आनयेति च कौशल्या माहसा्गस्मिता शुभम्।
धावन्नपि न शक्नोति स्प्रष्टुं योगि मनोगतिम्॥ (प्रहसन)

परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ

अर्थ—गुरुजी ने जाकर (चारों भाइयों का) मुंडन संस्कार कराय[illegible] समय ब्राह्मणों को बहुत सा द्रव्य मिला। चारों सुकुमार राजकुमार [illegible] ही मन भावन चरित्र करते फिरते थे॥

चौबोला—चूड़ाकरन करन बेधन को जब आयो दिन सोई।
कीर भीर माच्यो कौशलपुर प्रजा सुखी सब कोई॥
गुरु वशिष्ठ अवसर विचारि तहँ चारिहु कुँवर बुलाये।
गौरि गणेश पूजि पुण्याह सुवाचन सविधि कराये॥
कोउ गावैं कोउ बाज बजावैं कोउ नाचहिं दै तारी।
राजभवन महँ महामोद सुणि कौशल प्रजा सुखारी॥
भूपति कह्यो मिठाई दैहैं लालन कान छेदाये।
अति विचित्र भूषण पुनि दैहैं शिर मुंडन करवाये॥
परम मनोहर काकपक्षयुत शिखा राखि शिर दीन्ही।
करनवेध पुनि कियो सुतन्ह कर रंगनाथ नति कीन्ही॥
सम्पति अगनित दियो भिखारिन्ह कीन्हेउ दारिद दूरी।
बजे नगारे गगन अपारे पुहुपवृष्टि भै भूरी॥

चूड़ाकरन—चौलकर्म चूड़ाकर्म, और मुंडन ये पर्याय वाचक शब्द हैं, [illegible] संस्कार है। चूड़ाकर्म का काल 'तृतीये वर्षे चौलं यथा कुल धर्म वा' ऐसा [illegible] गृह्य सूत्र में लिखा है। ज्योतिष के ग्रन्थों में और धर्मशास्त्रों में जन्म से [illegible] तीसरे या पाँचवें वर्ष में चूड़ा कर्म का काल कहा है। मनुस्मृति में पहिले वर्ष [illegible] की आज्ञा दी है। [illegible] में विशेष जोर मुंडन कराने पर ही दिया है। मुंडन [illegible] शिखा का काल शिर पर कैसे रखवाना यह कुलधर्म पर छोड़ दिया गया है। [illegible] कुलधर्मं [illegible] इस सूत्र से प्रमाण हाथ। आधुनिक काल में [illegible] कही कुल धर्म [illegible] है।

चूड़ाकर्म [illegible] में वर्णित है। [illegible]

चौ०–भये कुमार जबहिं सब भ्राता। ×दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥

×दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता—जनेऊ पहिनाना इसे उपनयन संस्कार कहते हैं ब्रह्म तेज की कामना वाले ब्राह्मण का उपनयन संस्कार गर्भ से पांचवें वर्ष होना चाहिये, साधारण ८वें वर्ष परन्तु १६ वर्ष के भीतर हो सका है. बल की इच्छा वाले क्षत्रिय का छठवें वर्ष, साधारण ११वें वर्ष परन्तु बीस वर्ष के भीतर ही हो सक्ता है और धन शाली वैश्य का आठवें वर्ष में साधारण बारहवें वर्ष, परन्तु चौबीसवां वर्ष न बीतने पावे इस बात पर ध्यान बना रहे; क्योंकि अति काल होने से तीनों द्विजाति भ्रष्ट होकर निन्दनीय समझे जाते हैं. जनेऊ तिहरे सूत से तीन तागे वाला कमर तक रहे। ब्रह्मचारी पहिले पहिल अपनी माता, बहिन आदि सम्बन्धियों से भिक्षा मांग कर भोजन करे. भोजन को आदर से ग्रहण करे अन्न की निन्दा न करे, तथा उसे प्रमाण से प्रसन्नता पूर्वक पावे, ऐसा करने से वीर्य और सामर्थ्य की वृद्धि होती है उपनयन संस्कार होने के पश्चात् गुरु का कर्त्तव्य है कि शिष्य को शौचविधि, आचार अग्निहोत्र और सन्ध्योपासना भी सिखावे तत्पश्चात् वेदाध्ययन कराना उत्तम होगा। दोनों संध्याओं के समय जो द्विज गायत्री का जाप करता है वह तेजस्वी, प्रतापी, प्रतिष्ठित, ऐश्वर्यवान् दीर्घायु होता है। मन जो पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय का मानो आत्मा स्वरूप है उसे क्रम२ से वश में करने से सम्पूर्ण इन्द्रियां वश में हो जाती हैं और मनुष्य सत्य शील, तथा ज्ञानी होकर परमात्मा को पहिचानने लगता है।

विवाह संस्कार ही स्त्रियों का वैदिक उपनयन संस्कार है इन के लिये पति की सेवा ही गुरुकुल में वास के तुल्य है इसी प्रकार गृहकार्य ही संध्या सवेरे की होमरूपी अग्नि परिचर्या जानो (देखो मनुसंहिता अध्याय दूसरा)।

और भी विष्णुरदी रामायण से—

बदवा—चारि कुंअर दशरथ जी के बने बरुआ सुहावन हो॥ टेक॥
कंचन रतन खड़ाऊं सौ सोहैं छोटे छोटे पाँयन हो।
कुमर कोपीन औ करधन बटुरूप जनावन हो॥
कांध में पियर जनेऊ पहिरे अति पावन हो।
हाथ कनक मणि कंकण लिए दोना सुहावन हो॥
गर गजरा दृग काजर तीनों लोक रिझावन हो।
भाल रुचिर पट बांधे मानो ठाढ़े हैं बावन हो॥
जानि समय सब कामिनि लागीं मंगल गावन हो।
पहिली भीख दीन्ही दुरगा दूजी बानी दयावन हो॥
तीसरि दीन्ह अरुन्धति चौथी माया अपावन हो।
यदि विधि सुर नर मुनि त्रिय कीन्ही सब तहँ आवन हो॥
दीन्हीं कनक मणि भिक्षा कहँ लगि नाम गनावन हो।
यह बरुवेष को गावे पावे फल मनभावन हो॥

चौ०—कौशल्या जब बोलन जाई। * ठुमकि ठुमकि प्रभु चलहिं पराई॥
निगम नेति शिव अंत न पावा। ताहि धरइ जननी हठि धावा॥
धूसर धूरि भरे तनु आये। भूपति विहँसि गोद बैठाये॥

अर्थ—जब कौशल्या जी उन्हें बुलाने को जाती थीं, तो रामचन्द्र जी ठुमकि ठुमकि भागते थे। जिस के विषय में वेद 'नेति,' कहते हैं और जिनका शिवजी ने नहीं पाया उन्हीं को माता जबरई से पकड़ लेती थीं। जब रामचन्द्र जी शरीर मैली कुचैली रेत भरे हुए आते थे तो दशरथ जी हँस कर गोदी में बैठा लेते थे॥

दोहा—चपल चित्त भोजन करत, इत उत अवसर पाय।
भाजि चले किलकात मुख, दधि ओदन लपटाय॥२०३॥

अर्थ—भोजन करते समय भी उनका चित्त चंचल रहता था वे समय पाकर मुंह में दही भात लगाये हुए भी किलकारी मार कर इधर उधर भाग जाते थे॥

चौ०—बालचरित अति सरल सुहाये। शारद शेष शंभु श्रुति गाये॥
जिन कर मन इन सन नहिं राता। ते जन वंचित किये विधाता॥

अर्थ—ईश्वर के बहुत ही सीधे और सुहावने बाल चरित्रों को सरस्वती, शेषनाग, शिवजी और वेदों ने वर्णन किया है। जिन लोगों का मन इन के प्रेम में नहीं रँगा है उन मनुष्यों को ब्रह्मा ने वृथा बनाया है॥

महसन्स्वयमायाति कर्दमाङ्कित पाणिना।
किंचिद् गृहीत्वा कवलं पुनरेव पलायते॥

अर्थात् जब दशरथ जी भोजन करने को बैठते थे तब अति स्नेह से राम को 'आओ' ऐसा शब्द कह के बुलाते थे। जब खेल में मग्न रहने के कारण नहीं आते थे तब उन्हें कौशल्या जी के द्वारा बुलवाते थे॥ रामचंद्र कौशल्या को देख भाग जाते थे, कौशल्याजी भी योगियों के मन में भी न आने वाले श्रीराम को पकड़ने दौड़ती थीं तौ वे और भागते थे परंतु कभी २ अपने ही मन से आकर धूल भरे हाथों से दशरथ जी की थाली में से कौर उठाकर भाग जाते थे॥

* ठुमकि ठुमकि प्रभु चलहिं पराई—
प्रभाती—ठुमकि चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियाँ।
किलकि किलकि उठत धाय गिरत भूमि लटपटाय, धाय मातु गोद लेत दशरथ की रनियाँ
अंचल रज अंग झारि विविध भांति सों दुलारि, तन मन धन वारि वारि कहत मृदु बचनियाँ
विद्रुम से अरुण अधर बोलत मुख मधुर मधुर सुभग, नासिका में चारु लटकत लटकनियाँ
तुलसिदास अति आनंद देखि कै मुखारविंद, रघुवर छवि के समान रघुवर छवि बनियाँ

—भये कुमार जबहिं सब भ्राता। ×दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥

×दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता—जनेऊ पहिनाना इसे उपनयन संस्कार कहते हैं ब्रह्म
ी कामना वाले ब्राह्मण का उपनयन संस्कार गर्भ से पांचवें वर्ष होना चाहिये, साधारण ८वें
रन्तु १६ वर्ष के भीतर हो सका है. बल की इच्छा वाले क्षत्रिय का छठवें वर्ष, साधारण
वर्ष परन्तु बीस वर्ष के भीतर ही हो सक्ता है और धन शाली वैश्य का आठवें वर्ष में साधा
ारहवें वर्ष, परन्तु चौबीसवां वर्ष न बीतने पावे इस बात पर ध्यान बना रहे; क्योंकि अति
होने से तीनों द्विजाति भ्रष्ट होकर निन्दनीय समझे जाते हैं. जनेऊ तिहरे सूत से
तागे वाला कमर तक रहे। ब्रह्मचारी पहिले पहिल अपनी माता, बहिन आदि सम्बन्धियों
भिक्षा मांग कर भोजन करे. भोजन को आदर से ग्रहण करे अन्न की निन्दा न करे, तथा उसे
ा से प्रसन्नता पूर्वक पावे, ऐसा करने से वीर्य और सामर्थ्य की वृद्धि होती है उपनयन
ार होने के पश्चात् गुरु का कर्त्तव्य है कि शिष्य को शौचविधि, आचार अग्निहोत्र और
ध्योपासना भी सिखावे तत्पश्चात् वेदाध्ययन कराना उत्तम होगा। दोनों संध्याओं के समय
द्विज गायत्री का जाप करता है वह तेजस्वी, प्रतापी, प्रतिष्ठित, ऐश्वर्यवान् दीर्घायु
ा है। मन जो पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय का मानो आत्मा स्वरूप है उसे
र से वश में करने से सम्पूर्ण इन्द्रियां वश में हो जाती हैं और मनुष्य सत्य शील, तथा
ी होकर परमात्मा को पहिचानने लगता है।

विवाह संस्कार ही स्त्रियों का वैदिक उपनयन संस्कार है इस के लिये पति की सेवा ही
कुल में वास के तुल्य है इसी प्रकार गृहकार्य ही संध्या सबेरे की होमरूपी अग्नि
चर्या जानो (देखो मनुसंहिता अध्याय दूसरा)।

और भी विष्णुपदी रामायण से—

बरवा—चारि कुंअर दशरथ जी के बने बरवा सुहावन हो॥ टेक॥
कंचन रतन जड़ाऊं सो सोहैं छोटे छोटे पांवन हो।
कुमर कोपीन सो कटधन बटुरूप जमावन हो॥
कांध में पियर जनेऊ पहिरे अति पावन हो।
हाथ कनक मनि कंकण लिय दोना सुहावन हो॥
गर गजरा दृग काजर तीनों लोक रिझावन हो।
माल रुचिर पट बांधे मानो ठाढ़े हैं बावन हो॥
आदि समय सब भामिनि लागीं मंगल गावन हो।
पहिली भीख दीन्ही दुरगा बूढ़ी बानी दृगावन हो॥
तीसरि दीन्ह अरुन्धति चौथी माता अनावन हो।
आदि विधि गुरु कर मुनि विप्र कीन्ही सब तहँ आवन हो॥
दीन्ही कनक मनि भिक्षा कहँ अति काम दनावन हो।
बर बकरेव को आबे बावे कब मनभावन हो॥

+गुरुगृह गये पढ़न रघुराई । ‡अल्प काल विद्या

अर्थ—जब सब भाई उपनयन के योग्य हुए तो माता पिता, उन्हें जनेऊ पहिनाये । जब श्रीरामचन्द्र जी गुरुजी के घर पढ़ने गये तो उन्हों ने सब विद्या प्राप्त करली ॥

+गुरु गृह गये पढ़न रघुराई—रामचन्द्र जी के गुरु वशिष्ठ जी का ब्रह्मदेव से जो दश मानस प्रजापति हुए थे उन में से एक वशिष्ठ जी की प्राण वायु से उत्पन्न हुए थे। कर्दम प्रजापति ने अपनी नौ कन्याओं में से आठवीं कन्या इन्हें व्याह दी थी। कहते हैं कि वशिष्ठ की दूसरी स्त्री ऊर्जा नाम इन्हें चित्रकेतु आदि सात पुत्र हुए थे। जेठी स्त्री अरुंधती से भी इन्हें इन्द्र हुए थे। इनके सिवाय सुकाली नाम के पितर भी इन्हीं के लड़के थे (भागवत ४ के ब्रह्म मानसपुत्र महादेव के श्राप से भस्म होगये थे। उनमें से वशिष्ठ को ब्रह्म मध्य भाग्य में से फिर उत्पन्न कर लिया था इस प्रचलित मन्वंतर में वशिष्ठ जी इक्ष्वाकु राजा के कुलगुरु हुए फिर कालांतर में निमि के श्राप से मरकर तीसरी वशिष्ठ नाम से मित्रावरुण के वीर्य से पैदा हुए (देखो निमि की कथा)। तीसरे स्त्री का नाम अरुंधती ही था जिस से शक्ति आदि सौ पुत्र हुए। शक्ति से पराशर और पराशर से कृष्ण द्वैपायन व्यास उनसे शुकदेव की उत्पत्ति हुई। वशिष्ठ को ऋषि इनके कुल में मंत्रद्रष्टा हुए इनके कुल की चार वंश माला हैं:—

१ वशिष्ठ २ कुंडनि ३ उपमन्यु और ४ पराशर

१ वशिष्ठ—का वाशिष्ठ.

२ कुंडनि—वाशिष्ठ, मैत्रावरुण, कौंडिन्य.

३ उपमन्यु—वाशिष्ठ, ऐन्द्रप्रमति, भरद्वसव्य.

४ पराशर—वाशिष्ठ, शाक्त्य पाराशर्य.

इनके पास कामधेनु नाम की एक गाय थी जो इनकी संपूर्ण इच्छाओं की थी इसी के कारण विश्वामित्र जी से विरोध आदि की कथा विश्वामित्र की कथा सप्तऋषियों में इनकी गणना है॥

‡ अल्पकाल विद्या सब पाई—राम स्वयंवर से—

सो०—सुदिन सुमुहूर्त सुभाय, भेज्यो भवन वशिष्ठ के।
विद्यारंभ कराय, लगे परीक्षा लेन नित॥

छंद—थोरे ही दिन तें सब अक्षर [illegible] प्रभु जो धाये।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥

-*जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥
विद्या विनय निपुण गुण शीला। खेलहिं खेल सकल नृपलीला॥

अर्थ—जिनकी स्वाभाविक सांस से ही चारों वेद प्रकट हुए वे ही भगवान ... यह बड़ा अचंभा है। जब कि वे विद्या और नम्रता से सपन्न तथा गुणों से ... हुए तो वे राजाओं के सब खेल खेलने लगे॥

—+करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥
†जिन बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई॥

अर्थ—(उन के) हाथों में धनुष बाण शोभायमान थे जिनके रूप को देख कर

जौन पढ़ैं गुरुभवन सुवन सब सो नित पितहि सुनावैं।
सुनत सराहत सकल सभा जन जननि जनक सुख पावैं॥

* जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥ वृहदारण्यक निषद् में लिखा है कि—

एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसित मे तद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस ...हासः पुराण श्लोको व्याख्यानान्यनुमानानि प्रमाण भूतानि।

अर्थात् इस महान् ईश्वर की सहज स्वाभाविक श्वास ही से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, श्लोक, व्याख्यान, और अनुमान सब प्रमाणी भूत हैं (भाव यह ... ईश्वर की श्वास से ये सब प्रकट हुए हैं. ऐसे प्रभु नर नाट्यलीला करते हुए गुरु के घर ... ने लगे यह ... कौतुक मात्र ही है।)

... बान ... ति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा—इस समय की छटा ... वि ... ने।

... टे कटे कटेटे धनुष करेटे सर टेटे।
... र बघनेटे ... लपेटे शिर फेटे॥
... टेटे ... ो पकेटे धरनेटे।
... ' समेटे ... र कर भेंटे सौरेटे॥

... हरहिं सब ... हिं सब लोग लुगाई—
... में ... र दर्शाया गया है जिसका यह अभिप्राय
... त में यह भाव ही वर्णन किया गया है
... लोग लुगाई थकित होते थे। यहाँ छटा
... की ...

चल और अचल जीव मोहित हो जाते थे। जिन गलियों में चारों भाई फिरते थे वहां के स्त्री पुरुष उन्हें देख कर दंग हो जाते थे। (भाव यह है कि जिन जिन स्थानों में चारों भाई बाल क्रीड़ा करते थे वहां के स्त्री पुरुष उनके रूप और चरित्रों को देख कर टकटकी बांध कर रह जाते थे)॥

दो०—*कोशलपुर बासीन्ह नर, नारि वृद्ध अरु बाल।
प्राणहुँ तें प्रिय लागहीं, सब कहँ राम कृपाल॥ २०४॥

अर्थ—अयोध्या के रहने वाले स्त्री, पुरुष बूढ़े बारे सब ही को दयालु श्री रामचंद्र जी प्राणों से प्यारे लगते थे॥

चौ०—+बंधु सखा सँग लेहिं बुलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥
पावन मृग मारहिं जिय जानी। दिन प्रति नृपहिं दिखावहिं आनी॥

शब्दार्थ—पावन = अपने पूर्व जन्म के पापों के कारण मृग आदि पशुओं की देह धारण करने वाले तथा मुक्ति के योग्य॥

अर्थ—श्री रामचंद्र जी अपने भाइयों और साथ के मित्रों को बुलाकर बन में प्रति दिन शिकार खेलने जाते थे। हृदय में विचार कर मारने योग्य पशुओं को मारते थे और उन्हें लाकर प्रति दिन राजा जी को दिखलाते थे॥

चौ०—जे मृग रामबाण के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे॥
अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं॥

अर्थ—श्री रामचंद्रजी के बाण से जो पशु मारे जाते थे वे शरीर छोड़ते ही देव लोक को चले जाते थे। श्री रामचंद्र जी अपने छोटे भाई और सखाओं के साथ भोजन करते थे, और माता पिता की आज्ञा के अनुसार चलते थे॥

---

* कोशलपुर बासीन्ह नर, नारि वृद्ध अरु बाल ... ... के पश्चात् [illegible] [illegible] में है।

+ बन्धु सखा सँग लेहिं बुलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई—[illegible]

[illegible]

चौ०–जेहि विधि सुखी होहिं पुर लोगा । करहिं कृपानिधि सोइ संयोगा ॥
†वेद पुराण सुनहिं मन लाई । आप कहहिं अनुजन्ह समझाई ॥

अर्थ—कृपालु रामचंद्र जी वही काम करते थे जिससे नगर निवासी सुख पावें। वे चित्त लगाकर वेदों और पुराणों को सुनते थे तथा आप अपने छोटे भाइयों को समझा कर कहते थे ॥

चौ०–‡प्रातकाल उठि कै रघुनाथा । मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥
आयसु मांगि करहिं पुर काजा । देखि चरित हरषहिं मन राजा ॥

अर्थ—श्रीरामचंद्र जी सवेरे ही उठ कर माता, पिता और गुरु जी को प्रणाम करते थे और उन से आज्ञा ले कर गांव की देख रेख किया करते थे। इन की कार्रवाइयों को देख कर दशरथ जी मनहीं मन प्रसन्न होते थे ॥

दो०–व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुण नाम न रूप ।
भक्त हेतु नाना विधिहि, करत चरित्र अनूप ॥ २०५ ॥

अर्थ—परमात्मा जो घट घट वासी, कला रहित, इच्छा रहित, जन्म रहित गुणों से परे, नाम रूप विहीन हैं वे ही भक्तों के निमित्त नाना प्रकार की उपमा रहित लीलायें करते हैं ॥

---

† वेद पुराण सुनहिं मन लाई—अध्यात्म रामायण में लिखा है कि 'धर्म शास्त्र रहस्यानि शृणोतिव्या करोतिच' अर्थात् धर्मशास्त्र की गुप्त बातों को (रामचन्द्र जी) सुनते थे और दूसरों को समझाते भी थे ॥

‡ प्रातकाल उठि कै रघुनाथा......आयसु माँगि करहिं पुर काजा । रागविनोद से—
राग भैरवी – जागत दीनबन्धु रघुराई ।

गुरु पितु मातु चरण पंकज में शीस नवावत प्रतिदिन जाई ॥
शौचक्रिया करि के पुनि मज्जन अंग अंगोछि सबै सुखदाई ।
धारत बसन नवीन अनूपम करत सिंगार अंग हरषाई ॥
आनंदित नगर पुरवासी भूसुरन बुलाई ।
[illegible] धेनु सुवरन मणि दान देत हित सो मन भाई ॥
पुनि मातन सो बहु पकवान [illegible] पाई ।
[illegible] आप पुनि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

(विश्वामित्र जी के साथ राम लक्ष्मण का गमन और ताड़का, सुबाहु का वध)

चौ०—यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मन लाई॥
*विश्वामित्र महामुनि ज्ञानी। बसहिं विपिन शुभ आश्रम जानी॥

अर्थ—मैंने यह सब लीला वर्णन की, अब मन लगाकर आगे का हाल सुनो (यहां पार्वती जी के तीसरे प्रश्न का उत्तर हुआ)। ज्ञानवान मुनीश्वर विश्वामित्र जी वन में शुभ स्थान खोज कर रहते थे (यह आश्रम अयोध्या से ६४ कोस पूर्व दिशा में गंगा नदी के किनारे पर है॥

चौ०—जहँ जप यज्ञ योग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं॥
देखत यज्ञ निशाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं॥

---

* विश्वामित्र—सोमवंशी पुरुरवा के कुल में कुशाम्बु राजा का पुत्र गाधि राजा था। गाधि राजा के पुत्र का नाम विश्वामित्र था। ये तपस्या के बल से राजऋषि होकर फिर ब्रह्मऋषि होगये। इनकी कथा यों है कि एक बार विश्वामित्र राजा अपनी सेना साज बन में शिकार खेलने गये। मार्ग में वशिष्ठ ऋषि का आश्रम देखकर ये वहां गये। वशिष्ठ जी ने इनका आदर सत्कार किया और अपनी कामधेनु की सहायता से ससैन्य विश्वामित्र जी को मिष्टान्न भोजन कराये। जिस से संतुष्ट होकर विश्वामित्र ने वशिष्ठजी से काम धेनु मांगी, परन्तु वशिष्ठ ने कामधेनु का देना स्वीकार नहीं किया। ये उसे जबरई से ले जाने लगे। इस में ये निष्फल हुए। फिर घर जाकर बड़ी सेना लेकर अपने सौ पुत्रों के साथ वशिष्ठ जी के आश्रम में आये। वशिष्ठ जी ने हुंकार की, जिससे उनके निन्नानवे पुत्र भस्म हो गये। केवल एक पुत्र जैसे तैसे बच रहा। इससे विश्वामित्र को बड़ा दुःख हुआ और वे अपने नगर को लौट गये। उन्होंने अपने पुत्र को राज देकर हिमालय पर्वत पर जाकर बड़ी तपस्या आरंभ की। उसके प्रभाव से उन्होंने बहुत से अस्त्र शस्त्र पाये और फिर वशिष्ठ जी के आश्रम पर आकर अस्त्र शस्त्रों की वर्षा करने लगे। जब वशिष्ठ जी ने ये देखा तब उन्हों ने अपना ब्रह्मदंड हाथ में ले लिया और विश्वामित्र के साम्हने खड़ा कर दिया। जो जो मार शस्त्र उन्हों ने चलाये उन सब का भक्षण उस ब्रह्मदंड ने कर लिया। उस दिन से विश्वामित्र को इच्छा हुई कि मैं ब्रह्मत्व संपादन करूं (देखो वाल्मीकीय रामायण बालकांड स० ..) फिर इन्हों ने अनेक वर्षों तक बहुत कठिन तपस्या की। उस में देवताओं ने अनेक [illegible] डाले तौभी इन्होंने यत्न प्रयत्न से बाधाओं को टाल कर तपस्या पूरी कर ही डाली देवताओं ने इन्हें ब्रह्मर्षि कहा परन्तु विश्वामित्र ने इनसे प्रार्थना की कि जब वशिष्ठ जी ब्रह्मर्षि कहें तब तो मैं अपने को ब्रह्मऋषि मानूंगा। देवताओं ने कहा [illegible] ऐसा ही होगा (बा० स० ६५)। इनके अनेक पुत्र हुए और ययाति की मानी

अर्थ—उस स्थान पर मुनि जी जप, योग और यज्ञ करते थे, परन्तु मारीच और सुबाहु राक्षसों से बहुत डरते थे। (क्योंकि) राक्षस लोग यज्ञ को देखते ही दौड़ आते थे और ऐसे उत्पात करते थे कि जिनसे मुनियों को दुःख होता था॥

चौ०—†गाधितनय मन चिंता व्यापी। हरि बिन मरिहिं न निशिचर पापी॥
तब मुनिवर मन कीन्ह विचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महिभारा॥

कन्या से अष्टक नाम का पुत्र हुआ था। तपस्या के समय जब अकाल पड़ा था उस समय त्रिशंकु राजा ने विश्वामित्र की स्त्री और उनके पुत्रों की रक्षा की थी। और सत्यव्रत राजा (त्रिशंकु) सदेह स्वर्गवास चाहता था इस हेतु विश्वामित्र ने उसके यहां की उपरोहिती करना स्वीकार किया। विश्वामित्र ने त्रिशंकु को सदेह स्वर्ग भेजा, परन्तु इन्द्र ने उसे वहां जाने न दिया। विश्वामित्र ने उसे अधर ही रक्खा। ऐसे अनेक यत्न करने पर भी वशिष्ठ जी ने उन्हें ब्रह्मर्षि न कहा। जो २ बात वशिष्ठ जी कहते थे उस से विपरीति कार्यवाही करने से इन दोनों का द्वेष परस्पर बढ़ता ही गया। इसी प्रकार से जब वशिष्ठ जी ने इंद्रकी सभा में राजा हरिश्चन्द्र के सत्यव्रत का कथन किया तो उसे झूठ ठहराने के लिये विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र को बहुत छला सो कथा प्रसिद्ध ही है। इस में हरिश्चन्द्र ने अपना सत्यव्रत नहीं छोड़ा। एक बार विश्वामित्र ने राक्षसद्वारा वशिष्ठ के सौ पुत्रों का भक्षण करा लिया, परन्तु वशिष्ठ जी ने कुछ भी न कहा। निदान लज्जित हो विश्वामित्र को पश्चाताप हुआ और उन पर इनकी पूज्य दृष्टि हो गई। इस की जांच यमराज ने वशिष्ठ रूप धारण करके करली और विश्वामित्र को महर्षि कहा। तब से दोनों का परस्पर स्नेह भी अधिक बढ़ने लगा। इनके कुल में इन को मिलाकर तेरह ऋषि मंत्रद्रष्टा हो गये हैं उन के नाम ये हैं विश्वामित्र, देवरात, (शुनः शेप) मधुच्छन्द, अघमर्षण, अष्टक, लोहित (रोहित), भूतकील, मांबुधि, देवश्रवा, देवरत, धनञ्जय, शिशिर, शालंकायन (मत्स्य पुराण अध्याय १४४) इनकी गणना सप्तर्षियों में है॥

† गाधितनय मन चिन्ता व्यापी। हरि बिन मरिहिं न निशिचर पापी॥

इस में कोई कोई यह शंका कर बैठते हैं कि विश्वामित्र जी तो बड़े तपस्वी और प्रतापी थे उन्हों ने शाप आदि से ताड़का, मारीच, सुबाहु आदि का वध साधन क्यों नहीं किया—उसके दो कारण हैं एक तो तुलसीदास जी ने रामायण ही में कहा है सो गीतावली से तथा दूसरा राम रक्षावर रामायण से उद्धृत किया जाता है।

(१) गीतावली से—आजु मैं सकल सुकृत फल पाइ हौं।

सुख की सींव अवधि आनँद की अवध बिलोकन जाइ हौं॥ १॥
सुतन्ह सहित दशरथहि देखि हौं प्रेम पुलकि उर लाइ हौं। (गीतावली)

अर्थ—विश्वामित्र जी के मन में बड़ी चिंता हुई (उन्हों ने सोचा) कि बिना भगवान के ये पापी राक्षस न मरेंगे। तब श्रेष्ठमुनि जी ने विचार किया कि परमात्मा ने पृथ्वी का भार उतारने के हेतु अवतार लिया है॥

चौ०—एहु मिस देखउँ पद जाई। करि बिनती आनउँ दोउ भाई॥
+ज्ञानबिरागसकलगुणअयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना॥

अर्थ—इसी बहाने से उनके चरणों का दर्शन करूंगा और बिनती करके दोनों भाइयों को लिवा लाऊंगा। जो स्वामी ज्ञान, वैराग्य और सब गुणोंकी खानि हैं उनको अपने नेत्रों से भली भांति देखूंगा॥

दोहा—करत मनोरथ बहुत विधि, जात न लागी बार।
करि मज्जन सरजू सलिल, ⊛ गये भूप दरबार॥ २०६॥

रामचन्द्रमुखचन्द्र सुधा छबि नयन चकोरन प्याइ हीं॥ २॥
सादर समाचार नृप बूझि हैं हौं सब कथा सुनाइ हौं।
तुलसी हुइ कृत कृत्य आश्रमहि राम लषन लै आइ हौं॥ ३॥

(२) राम रत्नाकर रामायण से—

चौ०—प्रबल ताड़कानंदन योधा। हम तन विघ्न करत नहिं क्रोधा॥
करत क्रोध तप तुरत नसावै। यहै धर्म सद्ग्रंथ बतावै॥

+ ज्ञान बिराग सकल गुण अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना॥ कुंडलिया रामायणसे-

कुंडलिया—विश्वामित्र महाऋषय विपिन बसैं मुनि संग।
योग यज्ञ होमादि व्रत करत दनुज खल भङ्ग॥
करत दनुज खल भंग हृदय मुनि मंत्र विचार्‌यो।
हरि अवतरे सुअवध हरण महि भारन भार्‌यो॥
भार्‌यो सुखउपजाय कै हरि होई नयननि बिषय।
सरयू सरि असनान करि गे दरबार महाऋषय॥

⊛ गये भूप दरबार—भूप दरबार का कुछ वर्णन—

कवित्त—कौशलाधिराज सोहैं सहित समाज साज राजैं द्विज राज दोऊ विधि से महेश से।
मंत्री वसु बेसु देश देश के नरेश चहुँ लसत निदेश देश शोभित सुरेश से॥
रसिक बिहारी हैं धनेश से धनेश कोऊ शेष शेष रोष तोष कारक जलेश से।
दशरथ राज महाराज की सभा में भूप भ्राजत धनेश से गनेश से दिनेश से॥

—इसका अर्थ यही जँचता है कि विश्वामित्र की राज दरबार की ओर

अर्थ—नाना प्रकार के विचार बाँधते हुए उन्हें अयोध्या तक पहुंचने में देरी न लगी, वहां पर सरयू जल में स्नान कर वे राजसभा की ओर बढ़े ॥

चौ०–मुनि आगमन सुना जब राजा । मिलन गयउ लै बिप्रसमाजा ॥
करि दंडवत मुनिहिं सनमानी । निज आसन बैठारेन्हि आनी ॥

अर्थ—जब दशरथ जी ने (द्वारपालों के द्वारा) विश्वामित्र जी का आना सुना तब वे कुछ ब्राह्मणों को साथ ले उन से मिलने को आये। दंडवत कर मुनि जी का स्वागत किया और उन्हें सिंहासन पर बिठाया ॥

चौ०–चरण पखारि कीन्हि अति पूजा । *मो सम आज धन्य नहिं दूजा ॥
विविध भांति भोजन करवावा । मुनिवर हृदय हर्ष अति पावा ॥

अर्थ—उनके चरण पखार कर बहुत पूजा की (और कहने लगे कि) मेरे समान आज दूसरा कोई भाग्यवान् नहीं है। नाना प्रकार के भोजन करवाये जिससे श्रेष्ठ मुनिजी हृदय में बड़े प्रसन्न हुए ॥

चौ०–पुनि चरणन्हि मेले सुतचारी । राम देखि मुनि ‡देह बिसारी ॥
भये मगन देखत मुख शोभा । जनु चकोर पूरणशशि लोभा ॥

चले। वहां पर जब द्वारपालों के द्वारा दशरथजी को विश्वामित्रजी के आने की सूचना मिली तब वे मुनि मंडली सहित उनसे मिलने को द्वार पर आये और फिर उन्हें दरबार में ले आये। सरयू नदी में स्नान कर सीधे सभा में चले गये ऐसी शंका करना ठीक नहीं, कारण यह बात नियम विरुद्ध है। इसके सिवाय दूसरी ही पंक्ति में तो स्वामी जी उसे स्पष्ट कर देते हैं कि महाराज आकर उन्हें लिवालेगये। वाल्मीकीय रामायण में भी लिखा है कि—दशरथजी ने जब सुना कि महा तेजस्वी विश्वामित्र मुनि जी आये हैं तब वे उनके दर्शनों के अभिलाषी हो अपने द्वारपालों से बोले इत्यादि। इससे भी स्पष्ट है कि द्वारपालों के द्वारा दशरथ जी को मुनि जी के आगमन का संदेशा मिला था ॥

* मो सम आज धन्य नहिं दूजा—सुमति मनरंजन नाटक से—

सवैया—कौन सखै मम भाग सराहि, भली विधि है सुनि आनँद दीन्हों।
आजुहि तौ जगतीतल आय कै, एकहि लाभ बड़ो यह लीन्हों ॥
कैसे कहैं 'ललित' निज भाग को, दास हमैं अपनो करि चीन्हों।
धन्य मैं हैं भयो जग में मुनि, आइ कै आप कृतारथ कीन्हों ॥

‡ 'देह बिसारी' का पाठान्तर 'दिरम बिसारी' भी है।

अर्थ—फिर चारों पुत्रों से मुनिजी के चरण छुवाये, रामचन्द्र जी को देखते ही मुनि जी देह की सुध भूल गये। वे उन की मुख छबि देखते ही ऐसे प्रसन्न हुए जैसे चकोर पूर्णचन्द्र को देख कर लुभाय जाता है॥

चौ०—तब मन हर्षि वचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हेहु काऊ॥
केहिकारण*आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउँ बारा॥

अर्थ—तब मन में प्रसन्न हो राजा जी कहने लगे कि हे मुनि जी! आपने ऐसी कृपा और कभी नहीं की। आप का पधारना किस हेतु हुआ? आप जो कहेंगे मैं उसे पूरा करने में विलम्ब न करूंगा॥

चौ०—×असुर समूह सतावहिं मोही। मैं याचन आयउँ नृप तोही॥
+अनुज समेत देहु रघुनाथा। निशिचर बध मैं होब सनाथा॥

अर्थ—राक्षसों के झुंड के झुंड मुझे त्रास देते हैं इस हेतु हे राजन्! मैं तुम से यह मांगने को आया हूं। कि रामचन्द्र जी को लक्ष्मण समेत मुझे दीजिये जिससे

---

* केहि कारण आगमन तुम्हारा। सीतास्वयंवर से—

दोहा—धन्य भाग दर्शन दिये, किये सफल दृग आय।
कौन काज आगमन को, मुनिवर कहिय बुझाय॥

× असुर समूह सतावहिं मोही। मैं याचन आयउँ नृप तोही—सीतास्वयंवर से—

सवैया—श्री भृगुनाथ गये जब ते बन छाँड़ि कहूं तप हेत सिधाये।
तादिन ते दुख दानव देत रहैं उतपात घने नित छाये॥
आपन ताप करैं ऋषि देव सशोक भये गिरि खोह छिपाये।
रामकुमारहि देहु हमैं मख राखन को नृप माँगन आये॥

+ अनुज समेत देहु रघुनाथा—विश्वामित्र जी के कथन को पं० शिवशंकर लाल वाजपेयी जी राग विलावल में यों अलापते हैं—

राजन राम लखन जो पाऊं।
सकल भुवन में भूप मुकुट मणि यश रावरो बढ़ाऊं॥
नाम सुकेतु तासु की दुहिता प्रबल ताड़का गाऊं।
ताके तनय मरीच सुबाहु-सनि दुष्ट कहाँ लगि गाऊं॥
करन न देत यज्ञ हैं मोको चलत न नेक उपाऊं।
करत विघ्न अति आय पाप के करहुँ यज्ञ केहि ठाऊं॥
वे बलवान मारिहैं राघव है जग विदित प्रभाऊं।
'शंकर' वाणि शिरोमणि तुम तजि अंत कहाँ चलि जाऊं॥

राक्षसों का नाश होवे और हम सनाथ होवें ॥

दो०—[1]देहु भूप मन हर्ष करि, तजहु मोह अज्ञान।
धर्म सुयश नृप तुमहुँ कहँ, इन कहँ अति कल्यान ॥ २०७ ॥

अर्थ—हे राजा ! तुम प्रसन्न चित्त से ममता और अज्ञान को छोड़ कर इन्हें हम को देदो जिसमें हे राजन् आपको भी धर्म और कीर्ति का लाभ हो और इनकी बहुत भलाई हो ॥

चौ०—सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख द्युति कुम्हिलानी॥
चौथेपन पायउँ सुतचारी। विप्र वचन नहिं कहेउ विचारी॥

अर्थ— जब राजा ने ऐसे अनचाहे वचन सुने तो उन की देह कांप उठी और मुख सूख गया (वे कहने लगे) मैंने बुढ़ापे में चार पुत्र पाये हैं, हे देव ! आपने विचार कर वचन न कहे ॥

चौ०—*माँगहु भूमि धेनु धन कोषा। सर्बस देउँ आज सहरोषा॥
देह प्राण ते प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष इकमाहीं॥

अर्थ—यदि आप धरती, गौ, धन, खजाना मांगें तो मैं सब कुछ उत्साह के साथ दे दूंगा। हे मुनि ! शरीर और प्राणों से बढ़ कर कुछ भी प्यारा नहीं होता उन्हें भी मैं एक पल भर में दे डालूंगा ॥

---

[1] देहु भूप मन हर्ष करि, तजहु मोह अज्ञान... ...इन कहँ अति कल्यान—कुंडलिया रामायण से—

कुंडलिया—सुनि भूपति द्विज मित्र गाय महि सोच निवारन।
मम आश्रम खल दनुज करत उतपात अपारन॥
पार न पावहि मुनि विकल रैन दिवस संकट परे।
धर्म ज्ञान श्रुति सेतु सबल बल खल हरे॥
हरैं विपति दारुण अबै राम लखन जो देहु मति।
तुम कहँ यश इन को सुफल सुनहु न मन गुनि भूमिपति॥

* माँगहु भूमि धेनु धन कोषा। सर्बस देहुँ आज सह रोषा—सीता स्वयंवर से॥

सवैया—माँगिय राज समाज सबै सुख साजहु दै सुख भूरि भरौंगो।
धाम अराम धरा धन धाम न देत न नेक विलंब करौंगो॥
'दीन' कहौं कहि मैं सब स्यन्दन चन्दन स्यन्दन संग करौंगो।
होत दरौं न डरौं तन दे तब कोटिन, कोट न राम करौंगो॥

चौ०–*सब सुत प्रीय प्राण की नाइ। राम देत नहिं बनै गोसाई
†कहँ निशिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुंदर सुत परमकिशोरा

अर्थ—हे गोस्वामी चारों बालक मुझे प्राण के समान प्यारे हैं परन्तु राम तो नहीं बनता। (क्योंकि ये सुकुमार कुमार मेरे प्राणों के आधार हैं। कोई २ लोग इस से यह ध्वनि निकालते हैं कि रामचन्द्र तो परब्रह्म हैं उन पर हमारा क्या अधि है। कोई २ यों भी अर्थ करते हैं कि रामचन्द्र जी को मैं तुम्हें सौंपता हूं परन्तु गोसाईं न बने अर्थात् ये भी मुनि भेष धारी न हो जावें) कहां तो बड़े बड़े भयं कर राक्षस और कहां मेरे सुंदर बहुत छोटी अवस्था वाले बालक।

चौ०–सुनि नृपगिरा प्रेमरससानी। हृदय हर्ष माना मुनि ज्ञानी
‡तब वशिष्ठ बहु विधि समझावा। नृप संदेह नाश कहँ पावा

अर्थ—राजा के ऐसे प्रीति रससे भरे हुए वचनों को सुन कर ज्ञानवा विश्वामित्र जी ने हृदय में आनद मनाया। तब वशिष्ठ जी ने भली भांति समझाया तो राजा का सन्देह दूर हुआ॥

---

* सब सुत प्रीय प्राण की नाईं। राम देत नहि बनै गोसाईं—सीता स्वयंवर से॥

सवैया—नाथ यथारथ बात कही द्विज बंदि असाँसु न आप के बैना।
सूरजवंश कि रीति यही पर काहु करौं कछु चित्त रुचै ना॥
पुत्र वियोग ते भागति धीरता आगति धीरता धीर धरै ना।
हारहि देह सनेह पहारहि राम कुमारहि देत बनै ना॥

† कहँ निशिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुन्दर सुत परम किशोरा—

कवित्त—मैं हौं साजि सैन चलौं साथ मुनिनाथ जू के संग लै के शूर जेते सगर कुमार हैं
राक्षस प्रबल कहां इन्द्रसो उमाग जिन्हें कहा ये [illegible] सुकुमार हैं
सुख हौं बिचारि देखो 'ललित' दिनै से [illegible] बारे मार हैं
सौंपिये सँभार कर बार बार नहीं [illegible] राम हौ कुमार मेरे प्राण के अधार हैं॥

‡ तब वशिष्ठ बहु विधि समुझावा—

राग पटपद—हमरी के [illegible] को [illegible] हैं।
हमरी के [illegible]
हमरी के [illegible]
हमरी के [illegible]
[illegible]
[illegible]

चौ०—अति आदर दोउ तनय बुलाये। हृदय लाय बहु भाँति सिखाये॥
मेरे प्राणनाथ सुत दोऊ। †तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥

अर्थ—बड़े प्रेम से दोनों पुत्रों को बुलाया और हृदय से लगा कर भली भांति सिखापन दिया। दशरथ जी बोले कि हे स्वामी! मेरे दोनों पूत प्राण के समान हैं हे मुनि जी! आप कोई दूसरे नहीं हो पिता ही के तुल्य हौ॥

दो०—सौंपे भूपति ऋषिहिं सुत, बहु विधि देइ अशीस।
+ जननीभवन गये प्रभु, चले नाइ पद शीस॥

अर्थ—बहुत बहुत आशीर्वाद देकर दशरथ जी ने पुत्रों को विश्वामित्र जी को सौंप दिया, तब रामचन्द्र जी माता के महलों में गये और उनके चरणों में शिर नवा कर लौट पड़े॥

---

† तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ—चाणक्य नीति में लिखा है कि—

श्लोक—जनिता चोपनेता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता, पंचैते पितरः स्मृतः॥

अर्थात् जन्म देनेवाला, ... संस्कार कराने वाला, विद्या देने वाला, अन्न देने वाला, भय से बचाने वाला ये ... गिने ...

और भी—दशरथ जी ...

राग सोरठ—अब मुनि ...

... सिख के।
... दिन के।
... दिन के।
... सब ...

+ ...

... मुनि जी के ... चरण से)—

दो०–×आयुध सर्व समर्पि कै, प्रभु निज आश्रम आनि।
कंद मूल फल भोजनहिं, दीन्ह भक्तहित जानि ॥ २०६ ॥

अर्थ—प्रभु को सब अस्त्र शस्त्र देकर अपने स्थान पर ले आये और उन्हें भक्तों का हितकारी समझ कंद मूल फल भोजनों के निमित्त दिये॥

चौ०–प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय यज्ञ करहु तुम जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आप रहे मख की रखवारी॥

अर्थ—सवेरा होते ही श्री रामचंद्र जी ने विश्वामित्र जी से कहा कि आप निधड़क यज्ञ करें। सब मुनि गणों ने यज्ञ का आरंभ किया और आप स्वतः यज्ञ की रक्षा करने लगे॥

चौ०–सुनि मारीच निशाचर कोही। लेइ सहाय धावा मुनिद्रोही॥
बिन *फर बान राम तेहि मारा। शत योजन गा सागर पारा॥

× आयुध सर्व समर्पि कै—सीता स्वयम्वर से—

षट्पद—विधि सुरेश पवि अशनि अनल यम प्रबल प्रचंडन।
पवन गवन घन काल व्याल सरिता सर खंडन॥
अरि दल खल बल दलन मलन तम तेज दिवाकर।
चंद मंदगति करन हरन दानव मद सागर॥
कवि 'चंदि' अनंदित कर नये अति भासित द्युति दर्शिये।
सुख धाम! राम ये अमर शर समर करन कर पर्शिये॥

* बिन फर बान राम तेहि मारा। शत योजन गा सागर पारा॥

यहां यह शंका हो सकी है कि रामचन्द्रजी ने ताड़का और सुबाहु को तो मार डाला था परन्तु मारीच को क्यों जीता छोड़ दिया, उसका समाधान राम रत्नाकर रामायण की नीचे लिखी हुई कविता से स्पष्ट होगा :—

चौ०—धीर धुरीण राम बलधाना। जलधर सम बरसाये बाना॥
देख देव गण करत बिचारा। खल मारीच जाय नहिं मारा॥
बिन मारीच न सीता हरणा। तेहिबिन दशकंधानन मरणा॥
राम देवं मन की गति जानी। वज्र बाण लीन्हो तब त्यानी॥
छोड़ो अति प्रचंड शर ज्यों हीं। लगो जाय मारीचहि त्यों हीं॥
दो०—लगत वज्र शर के हृदय, उड़न लगो मारीच।
फिरत भटाई सम उड़ो, पुनि पुनि रण बीच॥ (क्रिमि)

अर्थ—(यज्ञ) सुन कर मुनियों का वैरी क्रोधी मारीच राक्षस अपनी से लेकर चढ़ आया। श्री रामचंद्र जी ने बिना गांसी का बाण मारा तो वह चार कोस की दूरी पर समुद्र के किनारे जा गिरा॥

चौ०—पावक शर सुबाहु पुनि मारा। +अनुज निशाचर कटक सँहारा॥
मारि असुर द्विज निर्भय कारी। †अस्तुति करहिं देव मुनि भारी॥

अर्थ—फिर अग्नि बाण से सुबाहु को मार डाला और लक्ष्मण जी ने राक्षसों की सेना का नाश किया। राक्षसों को मार कर ब्राह्मणों के निर्भय करने वाले की स्तुति सब देव और मुनिगण करने लगे॥

चौ०—तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्ह विप्रन पर दाया॥
भक्ति हेतु बहु कथा पुराना। कहहिं विप्र यद्यपि प्रभु जाना॥

अर्थ—फिर श्री रामचंद्र जी वहां पर कुछ दिन तक ठहरे रहे और ऐसा करने से ब्राह्मणों पर कृपा दर्शाई। यद्यपि श्री रामचंद्र जी सब जानते थे तौ भी भक्ति जताने के हेतु ब्राह्मणों द्वारा पुराणों की बहुतेरी कथायें सुना करते थे॥

चौ०—जिमि विहंग बिन पंख बिहाला। गिरतो जाय चलो तेहि काला॥
गिरत उठत मारीच सशंका। दिवस सात महँ पहुँचो लंका॥
तज संसार वासना सारी। भयो मुनी संन्यासहिं धारी॥
वलकल वसन जटा शिर धारे। जागत सोवत राम निहारे॥
देख एक वट वृक्ष विशाला। तेहि तर बैठ तपत सब काला॥
बैर भाव उर ते सब भागा। केवल राम ध्यान मन लागा॥
मुख ते जपत सदा हरि नामा। राम नाम तज अपर न कामा॥

+ अनुज निशाचर कटक संहारा—राम स्वयंवर से

सवैया—धाये तुरंत तमीचर औरहु ताकि तिन्हें लखणो ललकारयो।
मारयो शरासन में शर पूरन बारहिंबार प्रचार प्रचारयो॥
श्री रघुराज कह्यो रण [illegible] भाँति भगे रिपु गैन [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥

+ अस्तुति करहिं देव मुनि भारी—राम स्वयंवर से।

क०-अस्तुति करत मुनि वृंद ठाढ़े चारों ओर [illegible] [illegible] बधैया को।
[illegible] [illegible] [illegible]॥
[illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] को।
[illegible] [illegible] [illegible] मय [illegible] को॥

चौ०—तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिय जाई॥
*धनुषयज्ञ सुनि रघुकुलनाथा। हर्षि चले मुनिवर के साथा॥

अर्थ—तब मुनि जी ने आदर सहित कहा कि हे रामचन्द्रजी (जनकपुर में) एक चरित्र चलकर देखिये। रघुकुल में श्रेष्ठ रामचन्द्रजी धनुष यज्ञ का हाल सुनकर श्रेष्ठ मुनि जी के साथ प्रसन्नता पूर्वक चले॥

चौ०—आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं॥
‡पूछा मुनिहि शिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कही बिसेखी॥

अर्थ—रास्ते में एक ऐसा स्थान देखा कि जहां पशु पक्षी आदि कोई भी जीव जंतु नहीं थे। जब श्री रामचंद्रजी ने (स्त्री के आकार की) एक शिला देखी तब उन्हों ने विश्वामित्रजी से पूछा जिन ने सब कथा विस्तार पूर्वक कह सुनाई॥

दो०—+गोतमनारी श्रापवश, उपल देह धरि धीर।
चरणकमल रज चाहती, कृपा करहु रघुवीर॥ २१०॥

---

* धनुषयज्ञ सुनि रघुकुलनाथा। हर्षि चले मुनिवर के साथा—राम रत्नाकर रामायणसे
चौ०—गाधि सुवन कह सुन रघुवीरा। मिथिलापुरी चलिय रणधीरा॥
दो०—जहां जनक प्रण कीन्ह जो, शिव धनु तोरे आय।
'ताहि सुता निज जानकी, ब्याहि देहुं सुख पाय'॥
चौ०—तहां अनेक भूप चल आये। निज निज बल पौरुष अजमाये॥
सके न टारि शंभु धनु भारी। निज निज देश गये सब हारी॥
राम लखन धनुशर गह हाथा। चले जनकपुर मुनि गण साथा॥

‡ पूछा मुनिहि शिला प्रभु देखी—
सवैया—वेद पढ़ैं न कहूं द्विज वृंद कलो यह कैसी पढ़ावन भै थी।
सूखे रसाल तमालन के तरु जानि परै कछु बात अदैसी॥
कूजें नहीं खग गुंजें न भौंर लखौ 'ललिते' नहि काहु लौं पेखी।
पोंछे कृपा कहिये मुनिनाथ जू आश्रम माहि शिला यह देखी॥

+ गौतम नारी श्रापवश—महाभारत में कथा है कि इन्द्र ने गौतम की स्त्री अहल्या का सतभंग किया था इस से गौतम जी ने इन्द्र को श्राप दिया था कि तुम्हारे अंग में सहस्र भग हों परन्तु पाछे से क्षमा कर इन्हें सहस्र नेत्र चिन्ह कर दिये, तभी से इन्द्र का नाम सहस्राक्ष हुआ और अहल्या को श्राप दे शिला बनाई थी उसका उद्धार श्री रामचन्द्र जी के चरण रज के स्पर्श से हुआ॥ (गौतम)

छन्द—मुनि शाप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहै लाभ शंकर जाना॥
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न वर मांगौं आना।
‡पदकमलपरागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना॥

अर्थ—मुनिजी ने जो मुझे शाप दिया सो बहुत अच्छा किया मैंने उसे बड़ा उपकार ही समझा है क्योंकि मैंने अपने नेत्रों भर संसार के (आवागमन से) छुड़ाने वाले परमेश्वर के दर्शन पाये इसी दर्शन के लाभ को शंकरजी भलीभाँति जानते हैं हे परमेश्वर! मैं साधारण बुद्धि वाली कोई दूसरा वरदान न मांगकर केवल यही विनती करती हूं कि आप के कमलस्वरूपीचरणों के परागरस में मेरा मन भौंरे की नाईं प्रेम करै। (अर्थात् मुझे आपके चरणों की भक्ति प्राप्त हो)॥

छन्द—जेहि पद सुरसरिता परमपुनीता प्रगट भई शिव शीस धरी।
सोई पदपंकज जेहि पूजत अज मम शिर धरेउ कृपाल हरी॥
इहि भाँति सिधारी गोतमनारी बार बार हरिचरण परी।
जो अति मन भावा सो वर पावा *गइ पतिलोक अनंद भरी॥

---

‡ पदकमलपरागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना—प्रेम पीयूष धारा से मधु मातंग—हे प्रभु अब तो लेहु अपनाई।

मैं सेवक तुम स्वामि शिरोमणि तजहु तो कहां बसाई॥
मोहि न चहै सम्पदा जग की, नहिं चह नाम बड़ाई।
सुगतिहुँ नाहि कृपानिधि चाहौं सुमतिहु नाहि सुहाई॥
'मोहनि दास' यही बर मांगत, सुनहु बिनय चित लाई।
तव पदकमल मोर मन मधुकर, निशि दिन रहै लुभाई॥

* गइ पतिलोक अनंद भरी—गीतावली रामायण से।

राग सूहो—भूरि भाग भाजन भई।

रूप राशि अवलोकि बंधु दोउ प्रेम सुरंग रई॥
कहा कहै केहि भाँति सराहै नहिं करतूति नई।
बिन कारण करुणाकर रघुबर केहि केहि गति न दई॥
करि बहु बिनय राखि उर मूरति मंगल मोद मई।
तुलसी ह्वै बिशोक पतिलोकहि प्रभुगुण गनत गई॥

अर्थ—जिन चरणों से परम पवित्र गंगा जी निकलीं जिन्हें शिव जी ने अ मस्तक पर धारण कर लिया और जिन कमलस्वरूपीचरणों को ब्रह्मा जी पूजते उन्हीं चरणों को हे दयालु रामचन्द्र जी! आप ने मेरे शिर पर रक्खा इस प्रकार गौ की स्त्री (अहल्या) बारंबार भागवान् के चरणों की वंदना करके चली और बहुत मनमाना वरदान पाकर आनंद में मग्न होती हुई पतिलोक को गई॥

दो०—अस प्रभु दीनबन्धु हरि, कारण रहित दयाल।
तुलसिदास शठताहिभजु, छाड़िकपट जंजाल॥ २११॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि रे मूर्ख मन! ऐसे दीन हितकारी अवधविहा प्रभु जी को जो बिना स्वार्थ के दया करने वाले हैं सब छल छिद्र छोड़ कर भज॥

चौ०—चले राम लछिमन मुनि संगा। गये +जहां जगपावनि गंगा॥
गाधिसुवन सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥

अर्थ—मुनिजी के साथ श्री रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी आगे बढ़े तथा वहां जा पहुंचे जहां संसार को पवित्र करने वाली गंगाजी थीं। विश्वामित्रजी ने गंगा जी के पृथ्वी पर आने का सम्पूर्ण हाल कह सुनाया॥

चौ०—तब प्रभु ऋषिन्ह समेत नहाये। विविध दान महिदेवन पाये
हरषि चले मुनिवृंद सहाया। वेगि †विदेहनगर नियराया।

+ गये जहां जगपावनि गंगा—

राग काफी—धन धन धन मात गंग चाहत मुनि जन प्रसंग,
प्रगटी रघुनाथ चरण करन सुख विहारी॥
दीन्ही विधि बूंद डार अरिमनंग शीस धार,
आई मृत मध्य लोक, सन्तन को प्यारी॥
पर्वत द्रुम लता तोर, स्वर्ग औ पताल फोर,
भागीरथ करन धार, सगरतनय तारी॥
अमित वारि अति उतंग, चाहत अति रूप रंग,
दरश परश मज्जन कर, पाप पुंज हारी॥
माता मैं यार्चा तोहि, रामभक्ति देहु मोहि,
शरण गहीं तुलसिदास, दीन हो पुकारी॥

इसके आगे का प्रेरक जिसमें गंगा जी की कथा है पुरोमी में है॥

† विदेह नगर—एक स्थान का नाम है जो मगध देश के ईशान कोण में है। इसकी राजधानी मिथिला है जिसे जनकपुर भी कहते हैं और यह मधुवना के उत्तर की ओर

अर्थ—तब श्री रामचंद्रजी ने ऋषियों के साथ स्नानकिया और कई प्रकार का दान ब्राह्मणों को दिया। फिर प्रसन्न होकर मुनिगणों के साथ जो चले तो जनकपुर के समीप आ पहुंचे॥

चौ०—पुर रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिसेखी॥
वापी कूप सरित सर नाना। सलिल सुधा सम मणि सोपाना॥

अर्थ—जब श्री रामचंद्र जी ने जनकपुर की शोभा देखी तो वे लक्ष्मण सहित विशेष आनंद को प्राप्त हुए। वहां अनेक बावली, कुए, नदी और तालाब (देखे) जिनमें जल अमृत के समान था और सीढ़ियां मणिजटित थीं॥

चौ०—गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा। कूजत कल बहु बरन बिहंगा॥
बरन बरन बिकसे बनजाता। त्रिविध समीर सदा सुखदाता॥

अर्थ—पुष्परस पीकर मस्त हुए भौंरे मधुर मधुर गुंजार रहे थे और नाना रंग के पक्षी मीठी बोलियां बोल रहे थे। रंग बिरंगे कमल फूल रहे थे और तीनों प्रकार की वायु (शीतल, मंद, सुगंध) सदैव सुख उपजाती थी॥

दो०—*सुमन वाटिका बाग बन, विपुल विहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवित, सोहत पुर चहुँपास॥ २१२॥

अर्थ—फुलवारी, बाग और बन बहुतेरे पक्षियों के बसेरा करने के स्थान थे और वे (क्रमानुसार) फूल, फल तथा पत्तों से नगर के चारों ओर शोभा दे रहे थे (अर्थात् फुलवारी फूलों से, बाग फलों से और बन नये हरे पत्तों से सुशोभित थे)॥

नेपाल में है प्राचीन समय में विदेह के अन्तर्गत ये सब स्थान थे जैसे नेपाल का कुछ भाग सीता मढ़ी, सीताकुंड अथवा पुराने तिरहुत ज़िले का उत्तरीय भाग और चम्पारन के वायव्य कोन का प्रदेश।

* सुमन वाटिका— — — —

कवित्त—[illegible]

चौ०-मंगलमय मन्दिर सब केरे। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे ॥
पुरनर नारि सुभग शुचि संता। धर्मशील ज्ञानी गुणवंता ॥

अर्थ—सब के घर मंगलीक द्रव्यों से सुशोभित थे तथा उन में सुन्दर चित्र बने हुए थे मानो कामदेव ही चित्र बनाने वाला हो। नगर के निवासी स्त्री पुरुष रूपवान् पवित्र और सज्जन, धर्मात्मा, ज्ञानवान् और गुणवान् थे ॥

चौ०—अति अनूप जहँ *जनकनिवासू। विथकहिं विबुध विलोकि विलासू ॥
होत चकित चित कोट विलोकी। सकल भुवन शोभा जनुरोकी ॥

अर्थ—वहां पर जनक जी का राजमहल बहुत ही उपमा रहित था जिस का भोग विलास देख कर देवता भी मोहित हो जाते थे। परकोटे को देख कर चित्त चकित हो जाता था जो मानो संपूर्ण लोकों की शोभा को रोक बैठा था ॥

दोहा—+धवलधाम मणिपुरटपट, सुघटित नाना भाँति।
‡ सियनिवास सुन्दर सदन, शोभा किमि कहि जात ॥२१३॥

---

* जनक—विदेह वंशी प्रत्येक राजा का साधारण नाम जनक होता है, इसका कारण यह है कि इनके आदि पुरुष केवल पिता ही की देह से उत्पन्न हुए थे (स्त्री संसर्ग से नहीं) इसकी कथा यों है कि वैवस्वतमनु का जेठा लड़का इक्ष्वाकु था। इक्ष्वाकु के सौ पुत्रों में से दूसरा लड़का 'निमि' नाम का राजा हुआ। वशिष्ठ के श्राप से इनकी देह पात हुई। तब ब्राह्मणों ने उस देह का मथन किया। उस में से एक पुरुष उत्पन्न हुआ उसका नाम मिथि जनक रक्खा। तदनंतर प्रत्येक का जनक नाम होता आया है। मथन करने से उत्पन्न होने के कारण मिथिलापति भी कहते हैं ॥

+ धवलधाम मणिपुरटपट सुघटित नाना भांति। आदि, आल्हखंड से—
रतन जटित सोने के खंभा दोनों ओर पंच की लाग ॥
हंस हिलोरैं जहँ सरवर में अरु छज्जन पर नाचैं मोर।
कटी खिरकियां मलियागिर की जहँ झुरवन में आवै बयार ॥
सोने कँगूरा द्वारन झलकैं औ मोतिन की बंदनवार।
कहँ लग बरनौं मैं महलन को जिनकी शोभा न बरनी जाय ॥

‡ सिय—हृस्वध्वज जनक के पुत्र रथध्वज के दो पुत्र थे एक धर्मध्वज दूसरा कुशध्वज था, कुशध्वज की लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न मालावती नाम स्त्री से एक कन्या उत्पन्न हुई उसने जन्म लेते ही अपने मुख से वेदध्वनि निकाली थी, इस हेतु इसका नाम वेदवती पड़ा, कुशध्वज

[illegible]—[illegible] और मणियों से जड़े हुए किवाड़ भांति भांति से [illegible] [illegible], [illegible] सीता जी के रहने के सुंदर महलों की शोभा कैसे कही जा सकती है॥

चौ०—सुभग द्वार सब कुलिश कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा॥
बनी बिशाल बाजि गजशाला। हय गय रथ संकुल सब काला॥

अर्थ—दर्शनीय राजद्वारों के सब किवाड़े वज्र के समान मजबूत थे, द्वार पर राजाओं, नटों, बंदीगणों और भाटों की भीड़ लगी रहती थी। जो बड़ी बड़ी घुड़सारें और हथसारें बनी थीं वे सदैव घोड़ों, हाथियों और रथों से भरी रहती थीं॥

चौ०—शूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृप गृह सरिस सदन सब केरे॥
पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा॥

अर्थ—अनेक योधा, मंत्री और सेनापतियों के महल भी राजमहलों की नाईं बने थे। नगर के बाहर तालाब और नदी के किनारे जहां तहां बहुत से राजा डेरा [illegible] पड़े थे॥

चौ०—देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई॥
कौशिक कहेउ मोर मन माना। इहाँ रहिय रघुबीर सुजाना॥

[illegible] ठान लियो था कि इसका विवाह विष्णु से करूंगा इसहेतु जो कोई राजा इसे ब्याह में [illegible] था उसे वह कह देता था कि नहीं। एक बार शंभ नाम राक्षस ने इस से ब्याह करना [illegible] कुशध्वज ने नाहीं कर दी। इस हेतु वह कुशध्वज का वध कर भाग गया। कुशध्वज की स्त्री [illegible] अपने पति के साथ सती हो गई। वेदवती बिचारी निराधार हो पुष्कर तीर्थ में जाकर [illegible] करने लगी। कुछ दिनों के पश्चात् आकाश वाणी हुई कि तुझे दूसरे जन्म में विष्णु पति [illegible] से संतोष हुआ और वह गंधमादन पर्वत पर आ बसी। एक समय रावण [illegible] वेदवती ने इसका उचित अतिथिसत्कार किया, तब रावण के पूछने [illegible] कह सुनाया, रावण बोला कि तुम मेरे साथ ब्याह करलो, इसने [illegible] तब रावण इसे जबरई से खींचने लगा। इसने उसे वहीं मंत्र बल से [illegible] दिया कि तू कालान्तर में मेरे ही हरण के कारण कुटुंब सहित [illegible] रावण लंका को लौट गया और वेदवती ने अपना शरीर योगाग्नि [illegible] दूसरे जन्म में सीता होकर जन्मी और राम की स्त्री हुई, इन्हीं के हरण [illegible] होगया.

अर्थ—विश्वामित्र जी एक उपमारहित आमों का बगीचा सब प्रकार से सुहावना और सुभीते का देख कर कहने लगे कि यह स्थान मेरे मन में भर गया है। हे चतुर रामचंद्र जी ! यहीं ठहर जाइये ॥

चौ॰—भलेहि नाथ कहि कृपानिकेता। उतरे तहँ मुनिवृंद समेता॥
विश्वामित्र महामुनि आये। समाचार+मिथिलापति पाये॥

अर्थ—कृपानिधान श्री राम बोले कि हे गुरु महाराज ! ठीक है और मुनिगणों समेत वहां पर ठहर गये। मिथिलेश जी को यह समाचार मिला कि मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र जी पधारे हैं ॥

दोहा—संग सचिव शुचि भूरि भट, भूसुर वर गुरु ज्ञाति।
चले मिलन मुनि नायकहि, मुदित राउ इहि भांति॥ २१४ ॥

अर्थ—राजा जनक प्रसन्न होकर श्रेष्ठ मुनि विश्वामित्र जी से इस प्रकार मिलने को चले कि उन्हों ने उत्तम मंत्री, बड़े योधा, श्रेष्ठ ब्राह्मण और गुरुजनों को अपने साथ में ले लिया ॥

+ मिथिलापति—ह्रस्वरोमा नाम जनक राजा के दो पुत्र थे। उन में बड़े का नाम सीरध्वज और छोटे का कुशध्वज। एक बार किसी किसान को हल चलाते समय पृथ्वी में से एक संदूक मिली उसने उसे सीरध्वज राजा को दी संदूक खोलते ही उस में से एक सुंदर कन्या निकली। जमीन जोतते समय पृथ्वी में जो कूंड पड़ता है उसे संस्कृत में सीता कहते हैं इसी हेतु कूंड व सीता में से निकली हुई पुत्री को सीता कहने लगे। जनक ने इसे अपनी पुत्री के समान पाला। सीरध्वज की एक स्त्री का नाम सुनेधा था जिस से एक कन्या हुई थी उसका नाम उर्मिला था। जनक के धनुष तोड़ने वाले प्रण को सब जानते हैं। जनक ने सब राजाओं को धनुष यज्ञ में आने के लिये पत्र भेजे थे। उस समय दशरथ जी को पत्र भेजा गया था, परन्तु विश्वामित्र राम लक्ष्मण को लिवा ले गये थे। इस हेतु दशरथजी पत्र में न आये थे, परन्तु विश्वामित्र के साथ राम लक्ष्मण धनुष यज्ञ में पहुंच ही गये थे। धनुष तोड़ने का वृत्तान्त रामायण में विस्तार से है। विवाह के समय जनकपुर में कुशध्वज भी अपने कुटुम्ब सहित उपस्थित थे इन्हों ने सीरध्वज अपने बड़े भाई से सलाह की और इनके साथ जाकर बरात में दशरथ जी से भेंट करके उर्मिला, मांडवी और श्रुतिकीर्ति के विवाह का सम्बन्ध कर लिया था। तत्पश्चात् एक ही मुहूर्त में चारों का विवाह हुआ और बरात को विदा होने तक कुछ दिन बारात जनकपुर में रहे (देखो वाल्मीकीय रामायण सर्ग ७१ से ७४ तक [illegible])।

चौ०—कीन्ह प्रणाम चरण धरि माथा । दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा ॥
विप्रवृंद सब सादर वंदे । जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे ॥

अर्थ—जनक जी ने विश्वामित्र जी के चरणों पर मस्तक रखकर प्रणाम किया सब मुनिवर जी ने प्रसन्न चित्त से आशीर्वाद दिया । फिर राजा ने सब ब्राह्मणों को आदर सहित प्रणाम किया और अपने भाग्य को बड़ा समझ आनंदित हुए ॥

चौ०—कुशल प्रश्न कहि बारहिंबारा । विश्वामित्र नृपहि बैठारा ॥
तेहि अवसर आये दोउ भाई । गये रहे देखन फुलवाई ॥

अर्थ—विश्वामित्र जी ने राजा को अनेक बार कुशलप्रश्न कर बिठलाया । उसी समय दोनों भाई (राम लक्ष्मण) जो फुलवारी देखने गये थे आ पहुँचे ॥

चौ०—श्याम गौर मृदु वयस किशोरा । ‡लोचन सुखद विश्वचितचोरा ॥
उठे†सकल जब रघुपति आये । विश्वामित्र निकट बैठाये ॥

अर्थ—श्यामले और गोरे मृदु अङ्ग वाले, किशोर अवस्था के नेत्रों को सुख देने वाले और संसार के चित्त को चुराने वाले थे । ज्योंहीं रघुनाथ जी आये त्योंहीं सब लोग उठ खड़े हुए और विश्वामित्र जी ने उन्हें अपने पास बिठला लिया ॥

चौ०—भे सब सुखी देखि दोउ भ्राता । वारि विलोचन पुलकित गाता ॥
मूरति मधुर मनोहर देखी । भयउ विदेह विदेह बिसेखी ॥

---

‡ लोचन सुखद विश्वचित चोरा—काव्य निर्णय से—

कवित्त—कुवलय जीतिबे को वीर बरिबंड राजैं करन पै जाइबे को जाचक निहारे हैं ।
सितासित अरुणारे पानिप के राखिबे को तीरथ के पति हैं अलेख लखि हारे हैं ॥
बेधिबे को सर मार डारिबे को महाविष मीन कहिबे को दास मानस विहारे हैं ।
देखत ही सुबरन हीरा हरिबे को पश्यतोहर मनोहर ये लोचन तिहारे हैं ॥

† उठे सकल जब रघुपति आये—कुमार संभव के ५ वें सर्ग में लिखा है 'न धर्म वृद्धेषु वयः समीक्ष्यते' अर्थात् जो धर्म कर्म में श्रेष्ठ है उस की अवस्था पर विचार नहीं किया जाता । भाव यह कि यदि छोटी अवस्था वाला भी धर्म शील हो तो उसे बड़ी अवस्था वाले भी आदर देते हैं इसी कारण श्री रामचंद्र जी को देख कर सब लोग खड़े हो गये और रघुवंश के तीसरे सर्ग के ६२ वें श्लोक में यों लिखा है—'पदंहि सर्वत्र गुणैर्निधीयते' अर्थात् सभी स्थानों में सद्गुणों का आदर होता ही है ॥

—सब लोग दोनों भाइयों को देख ऐसे प्रसन्न हुए कि उन के रोम खड़े और नेत्रों में (प्रेम के) आंसू भर आये। सुन्दर मन भावनी (राम जी की) कर विदेह जी यथार्थ में देह की सुध भूल गये ॥

—प्रेममगन मन जानि नृप, करि विवेक धरि धीर।
‡बोलेउ मुनि पद नायशिर, गद गद गिरा गँभीर ॥ २१५ ॥

—राजा ने अपने मन को प्रेम से परिपूर्ण देख ज्ञान बल से धीरज धारण कर वे विश्वामित्र जी के चरणों में सीस नवाकर गद्गद कंठ हो गंभीर स्वर से

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनि कुल तिलक कि नृप कुल पालक॥
जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि की सोइ आवा ॥

र्थ—हे प्रभु ! कहिये ये दोनों सुन्दर बालक मुनि वंश के भूषण हैं, राजवंश के रक्षक हैं अथवा ये ब्रह्म स्वरूप हैं जिसे वेद 'नेति नेति' कर जो-दो रूप धारण कर आये हैं ॥

—†सहज विराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
तातें प्रभु पूछउँ सति भाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ

‡ बोलेउ मुनिपद नाइ सिर, गद्गद गिरा गंभीर—गीतावली रामायण से—
—ये कौन कहाँ ते आये।

नील पीत पाथोज बरण मनहरण सुभाय सुहाये॥
मुनि सुत किधौं भूप बालक किधौं ब्रह्म जीव जग जाये।
रूप जलधि के रतन सुछबि तिय लोचन ललित ललाये॥
किधौं रवि सुवन मदन ऋतुपति किधौं हरिहर वेष बनाये।
किधौं आपने सुकृत सुर तरु के सुफल रावरेहि पाये॥
भये विदेह विदेह नेहबस देह दशा बिसराये।
पुलक गात न समात हरष हिय सलिल सुलोचन छाये॥
जनक बचन मृदु मंजु मधुर [illegible]
तुलसी [illegible] आनन्द उमगि उर राम लखन सुख पाये॥

† सहज विराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥ कुंडलिया रामायण से
कुंडलिया—सदा काल वैराग्य सों [illegible] मन मोर।
[illegible]
[illegible]
[illegible] (४८)

अर्थ—स्वभाव ही से वैराग्य में लगा हुआ मेरा मन इन्हें देखकर इस प्रकार शिथिल हो जाता है जैसे चकोर चन्द्रमा को देखकर हो जाता है। इस हेतु मैं सद्भाव से पूछता हूं हे महाराज! छिपाइये नहीं, बतला दीजिये॥

चौ०—*इनहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा॥
कह मुनि बिहँसि कहेउ नृप नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका॥

अर्थ—इनको देखते ही बड़े प्रेम के कारण मेरा मन जबरई से ब्रह्म के सुख को छोड़े देता है। मुनि जी हँसकर कहने लगे कि हे राजन! आपने ठीक कहा। आपका वचन झूठ नहीं हो सक्ता?

चौ०—ये प्रिय सबहि जहां लगि प्रानी। मन मुसुकाहिं राम सुनि बानी॥
†रघुकुल मणि दशरथ के जाये। ममहित लागि नरेश पठाये॥

अर्थ—संसार में जितनेप्राणी हैं उन सबको ये प्यारे हैं ऐसे वचनों को सुन कर रामचन्द्र जी मन में मुसकराते थे। रघुकुल में श्रेष्ठ दशरथ जी के ये पुत्र हैं जी ने हमारे उपकार के निमित्त इन्हें भेजा है॥

जात न जानो ब्रह्म सुख छक्यो प्रेम अनुराग सो।
सो मन इनके वश रह्यो लख्यो ज्ञान विराग सो॥

* इनहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा—राम स्वयम्बर

सवैया—हैं धौं उभै मुनि के कुल पालक की धौं महीपति बालक कोई।
देखत रूप अनूप सुनौं मुनि मेरी दशा छवि कै अस होई॥
भूलो विराग विज्ञान सरूप इन्हैं तजि और दिखात न कोई।
ब्रह्म को आनँद बाद भयो उपज्यो उर आनँद, जो इन जोई॥

† रघुकुल मणि दशरथ के जाये। मम हित लागि नरेश पठाये—

राग टोड़ी—ये दोऊ दशरथ के बारे।
नाम राम घनश्याम लखन लघु नखशिख अँग उज्यारे॥
निज हित लागि माँगि आने मैं धर्म सेतु रखवारे।
धीर वीर विरुदैत बाँकुरे महा बाहु बल भारे॥
एक तीर तकि हती ताड़का किये सुर साधु सुखारे।
यज्ञ राखि जग साखि लोखि ऋषि निदरि निशाचर मारे॥
मुनि तिय तारि स्वयम्बर पेखन आये सुनि बचन तिहारे।
इक्षाकुल भरि नयन आजु तुलसी के प्राण पियारे॥

दोहा—†राम लषन दोउ बंधु वर, रूप शील बल धाम ।
मख राखेउ सब साखि जग, जिते असुर संग्राम ॥ २१६ ॥

अर्थ—रूपवंत, शीलवंत और बलवंत दोनों मनोहर भाई श्रीरामचन्द्र और
क्ष्मण ने लड़ाई में राक्षसों को हराकर यज्ञ की रक्षा की इस बात को सब संसार
नता है ॥

चौ०—‡मुनि तव चरण देखि कह राऊ। कहि न सकौं निज पुण्य प्रभाऊ॥
सुंदर श्याम गौर दोउ भ्राता । *आनँद हू के आनँद दाता ॥

अर्थ—जनक जी कहने लगे कि हे मुनि जी ! आपके चरणों के दर्शनों से मैं अपने
ण्य की बड़ाई नहीं कर सक्ता । श्यामले और गोरे छबीले दोनों भाई आनंद को भी
ानंद देने वाले हैं (अर्थात् यदि आनंद मूर्त्तिमान् आवे तो वह भी इनको देखकर
सन्न होवे । भाव यह कि ये परमानंद मय हैं) ॥

चौ०—इन की प्रीति परस्पर पावनि । कहि न जाइ मन भाव सुहावनि॥
सुनहु नाथ कह मुदित विदेहू । ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू ॥

---

† राम लषन दोउ बंधुवर, रूप शील बलधाम—सीता स्वयम्बर से—
सवैया—निज दास चकोरन चन्द अनंद अनन्दक भूसुर वृन्दन ये ।
सुर सन्तन शीतल चन्दन 'बन्दि' दिवाकर के कुल मंडन ये ॥
जग वंदन आरत कंदन दुष्ट गयंदन केर निकन्दन ये ।
छलछन्दन फन्दन नन्दन ये दश स्यंदन भूप के नन्दन ये ॥

‡ मुनि तव चरण देखि कह राऊ । कहि न सकौं निज पुण्य प्रभाऊ-काव्य निर्णय से—
सवैया—आज बड़े सुकृतो हमहीं भयो पातक हानि हमारो घरानें ।
पूरब ह्वै कियो पुन्य बड़ोई भयो प्रभु को पद धारियो वानें ॥
आगम है सब भाँति भलोई विचारिये दास जू पत्नी छपानें ।
श्री ऋषिराज निहारे मिले हमैं आनि परी निहुँकाल की बानें ॥

* आनँद हू के आनँद दाता—इस संसार में तीन तरह के मनुष्य होते हैं अर्थात्
विषयी, मुमुक्षु और जीवन मुक्त । श्री रामचन्द्र जी तीनों प्रकार के मनुष्यों को आनन्द देने
वाले हैं सो यों कि विषयी पुरुषों को अपना रूप सौंदर्य दिखाकर, मुमुक्षुओं को दर्शन देकर
संसार के बन्धन से मुक्त करके और जीवन मुक्तों को ब्रह्म सुख इकट्ठा कर जो आनन्द होता है
उस आनन्द को भी आनन्द देने वाले श्री रामचन्द्र जी हैं ॥

अर्थ—इन दोनों भाइयों की आपस में निष्कपट प्रीति है जो इतनी मनमोहनी और सुहावनी है कि उस का वर्णन नहीं हो सक्ता। जनक जी प्रसन्नता से कहते ही गये। कि हे प्रभु जी! इनका स्वाभाविक प्रेम ऐसा है जैसा कि ब्रह्म और जीव का (सो सत्य ही था महात्मा रूप और स्वभाव ही से सहज ही में यथार्थ बात जान लेते हैं रामचन्द्र जी ब्रह्म का अवतार और लक्ष्मण शेष किंवा जीव हैं)॥

चौ०—पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू॥
मुनिहि प्रशंस नाइ पद सीसा। चलेउ लिवाइ नगर अवनीसा॥

अर्थ—जनक जी वारंवार रामचन्द्र जी की ओर देखते थे, उनका शरीर रोमांचित हो गया और हृदय में भारी उत्साह भर गया। निदान मुनि जी की बड़ाई कर और उनके चरणों पर शिर नवाकर राजा उन्हें अपने नगर की ओर लिवा चले॥

चौ०सुंदर सदन सुखद सब काला। तहाँ वास लेइ दीन्ह भुआला॥
करि पूजा सब विधि सेवकाई। गयउ राउ गृह बिदा कराई॥

अर्थ—जो सब ऋतुओं में सुखदायक था ऐसे एक उत्तम महल में राजा ने मुनिजी को ठहरा दिया। सब प्रकार से उनका आदर सन्मान और सरबराही करके मुनि जी से आज्ञा मांग राजा जी अपने महलों में जा पहुंचे॥

दोहा—ऋषय संग रघुवंस मणि, करि भोजन विश्राम।
बैठे प्रभु भ्राता सहित, दिवस रहा भरि याम॥ २१७॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी अपने भाई और ऋषियों के साथ भोजन कर तथा विश्राम ले जब बैठे उस समय पहर भर दिन रह गया था॥

चौ०—*लषन हृदय लालसा बिसेखी। जाइ जनकपुर आइय देखी॥
प्रभुभय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं। प्रकट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं॥

अर्थ—लक्ष्मण जी के हृदय में बड़ी इच्छा थी कि जाकर जनकपुर देख आवें। परन्तु एक तो रामचन्द्र जी का भय और दूसरे मुनिजी का संकोच था, इस हेतु प्रकट नहीं कहते थे मनहीं मन मुसका रहे थे॥

---

* लखन हृदय लालसा बिसेखी [illegible]—
दोहा—[illegible]
[illegible]

अनुज मनकी गति जानी । भक्त बछलता हिय हुलसानी ॥
विनीत सकुचि मुसुकाई । बोले गुरु अनुशासन पाई ॥
रामचन्द्र जी लक्ष्मण के मनोरथ समझ गये इस हेतु भक्तों पर प्रेम
ण हृदय में उमग आया बहुत ही नम्रता से सकुचते हुए मुसकरा कर
ाज्ञा ले बोले ॥

ाथ लषनपुर देखन चहहीं । प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं ॥
राउर आयसु में पाऊं । नगर दिखाइ तुरत ले आऊं ॥
-हे स्वामी ! लक्ष्मण जनकपुर देखना चाहते हैं परन्तु आपके संकोच
: कारण कहते नहीं । जो मुझे आप की आज्ञा मिले तो मैं इन्हें नगर
तुरन्त ही लौटा लाऊं ॥

ने मुनीश कह बचन सप्रीती । कस न राम राखहु तुम नीती ॥
सेतु पालक तुम ताता । प्रेम विवश सेवक सुख दाता ॥
-सुनते ही विश्वामित्र जी प्रेम पूर्वक कहने लगे कि हे राम ! तुम ही
पालन क्यों न करोगे अर्थात् (तुम अवश्य करोगे) । हे प्यारे तुम तो धर्म
पालने वाले हो जो प्रेम के कारण सेवकों को सुख दिया करते हो ॥
-×जाइ देखि आवहु नगर, सुख निधान दोउ भाइ ।
करहु सुफल सब के नयन, सुन्दर बदन दिखाइ ॥ २१८ ॥

अर्थ—हे सुख के धाम दोनों भाइयो जाकर नगर देख आओ (और ऐसा करने से) अपने सुन्दर मुँह का दर्शन करा कर सब के नेत्रों को सफल कर आओ॥

चौ०—मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोक लोचन सुखदाता॥
बालक बृंद देखि अति शोभा। लगे संग लोचन मन लोभा॥

अर्थ—संसार भर के नेत्रों को सुख देने वाले दोनों भाई मुनिजी के कमल रूपी चरणों की वंदना करके चले उनकी सुन्दरता को देख कर बालकों के झुंड के झुंड संग हो चले कारण उनके नेत्र और मन लुभाय रहे थे॥

चौ०—पीत बसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप शर सोहत हाथा॥
तनु अनुहरत सुचंदन खोरी। श्यामल गौर मनोहर जोरी॥

अर्थ—पीताम्बर पहने हुए, कमर में तरकस कसे हुए थे और हाथों में सुन्दर धनुष बाण शोभायमान थे। सांवले और गोरे रंग की मनोहर जोड़ी ऐसे चंदन की खौर लगाये हुए थे जो दोनों को फबे (अर्थात् दोनों भाई लाल रंग के चंदन की खौर दिये हुए थ, जैसा कि बाल्मीकि जी ने लिखा है)॥

चौ०—केहरि कंधर बाहु विशाला। उर अति रुचिर नाग मणि माला॥
सुभग+सोन सरसीरुह लोचन। *वदन मयंक ताप त्रयमोचन॥

अर्थ—सिंह के समान कंधे, लम्बी भुजाएं और हृदय पर सुन्दर गजमुक्तों की माला पहिने थे। सुन्दर लाल कमल के समान नेत्र और चन्द्रमा रूपी मुख तीनों प्रकार के ताप (दैहिक, दैविक और मानसिक) को शांत करने वाला था॥

जाहु चला कपटी सब छैपुर देखहु पै न कियो लरिकाई।
राखो नहीं तुम जो मर्याद कही मुनि दीन यहाँ कहुँ जाई॥

+ सोन (सं० शोण) = लाल, जैसा कि अमरकोश में लिखा है—'शोणः कोकनदच्छविः' अर्थात् लाल कमल की भाँई छवि को शोण किम्बा सोन कहते हैं॥

* वदन मयंक ताप त्रय मोचन—कवि बिहारी लाल का कवित्त है—

—अधर मधुर जिहि चंद्र [illegible] मृदु [illegible] वचन मेंह बिहसन कला इन्दु।
मार मुरझानि [illegible] छवि सुधा बिन्दु॥
बरसत [illegible] 'बिहारी' [illegible] कहैं कविन्दु।
[illegible] रामचन्द्र को मुखारविन्दु॥

चौ०—कानन्ह कनक फूल छवि देहीं। चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं॥
चितवनि चारु भृकुटि वर बाँकी। तिलक रेख शोभा जनु चाकी॥

अर्थ—कानों में सोने के फूल शोभा दे रहे थे, और वे देखते ही मानो चित्त को चुरा लेते थे। सुन्दर चितवन, टेढ़ी उत्तम भौंहें, और तिलक की रेखा ने मानो शोभा की सीमा बाँध दी थी॥

दो०—रुचिर चौतनी सुभग शिर, +मेचक कुंचित केश।
नखशिख सुन्दर बंधु दोउ, शोभा सकल सुदेश॥ २१९॥

अर्थ—सुडौल मस्तक पर सुन्दर चौगोशिया टोपी लगी थी और काले घुँघर वाले बाल थे। दोनों श्रेष्ठ भाई पैर से सिर तक अंग प्रत्यंग से सुशोभित थे॥

चौ०—देखन नगर भूप सुत आये। समाचार पुर वासिन पाये॥
‡धाये धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥

अर्थ—जब नगर निवासियों को यह खबर लगी कि राजकुमार नगर देखने को आये हैं। तब तो सब के सब घर का काम छोड़ कर ऐसे दौड़े जैसे कंगाल धन लूटने को दौड़ पड़ें॥

चौ०—×निरखि सहज सुन्दर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई॥

+ मेचक कुंचित केश—कवि बिहारीलाल कृत नखसिख से—

छन्द—रेशम के लच्छ कैधौं पच्छ हैं मतङ्ग तङ्ग कुंचित कुटिल काम सर के सिवार हैं।
कालिन्दी से कारे शुद्ध रङ्ग ते रँगारे और भौंर भौंर भूरियारे धार तम कैसे तार हैं।
काम ही सँभारे अति चीकने चिलक वारे परम सुगंधित फुलेल फुहकार हैं।
सरस सिंगार सार सुखमा के अवतार कथत बिहारी रामचन्द्र जी के बार हैं॥

‡ धाये धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी—

क०—कोऊ धाय हेरैं कोऊ काहू कहँ टेरैं कोऊ आय लखैं नेरैं कोऊ दूरि ते सिधारैं हैं।
कोऊ काहू पूछैं कोऊ काहू ते कहैं कोउ काहू हँट भूलैं कोउ काहू को निवारै हैं॥
कोऊ द्वार कोऊ हैं दिवार कोऊ छज्जन पै कोऊ तो अटारी नर नारी यों निहारैं हैं।
'रसिक बिहारी' सुखकारी धनुधारी दोउ पुर अवलोकैं मंद मंद ही पधारे हैं॥

× निरखि सहज सुन्दर दोउ भाई—स्वाभाविक सुन्दरता सदैव सराहनीय है क्योंकि उसमें शृंगार की आवश्यकता नहीं रहती अतएव उर्दू में कहा है:—

नहीं मोहताज ज़ेवर का, जिसे खूबी खुदा ने दी।
कि जैसे खुशनुमा लगता है देखो, चाँद बे गहने॥

+युवती भवन झरोखन लागीं । निरखहिं राम रूप

अर्थ —(सब लोग) स्वभाव ही से सुन्दर दोनों भाइयों को देख कर पाकर प्रसन्न होते थे । स्त्रियां महलों की झंझरियों से झांकती हुईं बड़े प्रेम से रामचन्द्र जी के स्वरूप को देखती थीं ॥

चौ०—⊙कहहिं परस्पर वचन सप्रीती । सखि इन कोटि काम छवि

सुर नर असुर नाग मुनि माहीं । शोभा असि कहुं सुनियति

अर्थ—आपस में प्रेम भरे वचन बोल रही थीं, हे सखी इन्हों ने तो करोड़ों कामदेव की शोभा को जीत लिया है (अर्थात् जो कामदेव की शोभा सुनी है उससे बहुत ही बढ़ चढ़ कर सुन्दर हैं) । देवता, मनुष्य, राक्षस, सर्प और मुनियों में ऐसी शोभा किसी की नहीं सुनी ।

सूचना—कवि की चतुराई सराहनीय है कि उन्हों ने घर में रहने वाली स्त्रियों से रामचन्द्र जी की शोभा वर्णन कराते समय इस मर्याद का निर्वाह कराया कि वे औरों की शोभा ऐसी नहीं ' सुनी ' कहकर यह दरशाती हैं कि घर में रहने वाली स्त्रियां दूसरे पुरुषों की शोभा बहुधा सुना ही करती हैं न कि देखती फिरतीं हैं ॥

चौ०—विष्णु चारि भुज विधि मुख चारी । विकट वेष मुख पंच पुरारी

अपर देव अस कोउ न आही । यह छवि सखि पटतरिये जाही

+ युवती भवन झरोखन लागीं । निरखहिं रामरूप अनुरागी—

१०—नृपति किशोर श्याम गौर द्वै अनूप रूप पर अवलोकिवे को आये हैं बजार में।
छायो शोर भारी चहुँ ओर नर नारी भीर सुरति न काहू देह गेह की सम्हार में।
' रसिक विहारी ' घर धाम जे सुधाम सबै आई धाय आँगन अटारी कोउ द्वार में।
फिरैं फिरकी सी भौन थिरकी रहैं ना नेक कोउ खिरकी में कोउ छिरकी किवार में।

* कहहिं परस्पर वचन सप्रीती । सखि इन कोटि काम छवि जीती ॥ गीतावली रामायण से—

राग गोरी—नेक सुमुखि चित लाइ चितौरी ।

राज कुंवर मूरति रचिवे की रुचि सु विरंचि श्रम कियो है कितौरी ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अर्थ—क्योंकि विष्णु के चार हाथ हैं, ब्रह्मा के चार मुँह हैं और पांच मुँह वाले शिव भयंकर रूप धारण किये रहते हैं। और दूसरा देवता ऐसा कोई नहीं है कि जिस के साथ इन की शोभा की उपमा देव ॥

दो०—‡वय किशोर सुखमा सदन, श्याम गौर सुखधाम ।
अंग अंग पर वारियहि, कोटि कोटि शतकाम ॥ २२० ॥

शब्दार्थ—सुखमा = शोभा । किशोर (किम् = कुछ + शूर = वीर) = कुछ बल प्राप्त अर्थात् १० वर्ष से १५ वर्ष तक की अवस्था वाला ।

अर्थ—किशोर अवस्था वाले बहुत शोभा युक्त श्यामले और गोरे अंग वाले आनंदस्वरूप इन के प्रत्येक अंग पर करोड़ों कामदेव न्यौछावर हैं ॥

चौ०—×कहहु सखी अस को तनुधारी । जो न मोह अस रूप निहारी ॥
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी । *जो मैं सुना सो सुनहु सयानी ॥

---

‡ वय किशोर सुखमा सदन ... ... कोटि कोटि शत काम—

राग कान्हरा—देखो री छबि राम बदन की ।
कोटि कोटि दामिनि दर्पण द्युति निंदित कांति कपोल रदन की ॥
नासा मृदु मुसुक्यानि माधुरी मन्द करी अति मदहि मदन की ।
फबि रही मौर मुकुट अलकन पर मनो फाँस दृग मीन फसन की ॥
चोरत चित भृकुटी दृग शोभा कुण्डल झलक और चन्दन की ।
'राम सखे' छबि कहि न आत जब सुधि न रहत कछु बदन बसन की ॥

× कहहु सखी अस को तनु धारी । जो न मोह अस रूप निहारी ॥ प्रेम पीयूष धारा से—

रेखता—इक ओर लखो सांवला अवधेश लाल है ।
गलियों के बीच झूलता मस्तान चाल है ॥
नैना दोऊ नुकीले मुख मन्द हास है ।
अधरन पै पान लाली सुन्दर य गाल है ॥
अलकैं भ्रमर भरी हुई इत उत बिखर रहीं ।
मानो दिया फँसाइबे को काम जाल है ॥
देखो अली री आशिक पैदा है यह वही ।
जिस की निहार 'मोहनी' रहना बिहार है ॥

* जो मैं सुना सो सुनहु सयानी—राम रसायन से

सवैया—दूसर दोऊ सुबंधु रघुराज कहैं अवधेश नरेश के ढोटे ।
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अर्थ—हे सखी! कहो तो सही ऐसा कौन प्राणी होगा जो देखे रूप को मोहित न हो जावे। उन में से एक नेम सहित मीठी वाणी से कहने लगी कि जो कुछ मैं ने सुना है सो सुनो॥

चौ०—ये दोऊ दशरथ के ढोटा। बालमरालन के कल ...
मुनिकौशिकमख के रखवारे। जिन † रण अजिर निशाचर ...

शब्दार्थ—रणअजिर = रण भूमि

अर्थ—ये दोनों दशरथ जी के पुत्र हैं मानो सुन्दर छोटे राजहंसों की जो... ये विश्वामित्र मुनि जी के यज्ञ की रक्षा करने वाले हैं जिन्हों ने रणभूमि में ... को मारा है॥

चौ०—श्यामगात कल कंजविलोचन। जो मारीचसुभुजमदमोच...
‡ कौशल्यासुत सो सुख खानी। नाम राम धनुशायक पा...

शब्दार्थ—सुभुज (भुज का पर्यायी शब्द बाहु) = सुबाहु, राक्षस का नाम

अर्थ—जिनका श्यामला शरीर और सुंदर कमल के समान नेत्र हैं तथ... मारीच तथा सुबाहु राक्षसों के घमंड का नाश करने वाले हैं। वे कौशल्या के पुत्र ... राम हैं उनका नाम राम है और वे धनुष बाण हाथ में लिये हैं॥

चौ०—गौर किशोर वेष वर काछे। कर शर चाप राम के पाछे...
लछिमन नाम रामलघुभ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रा मात...

---

† 'रणअजिर निशाचर' का पाठान्तर 'रण अजय निशाचर' है अर्थात् लड़ाई ... अजीत राक्षसों को।

‡ कौशल्यासुत सो सुख खानी। नाम राम धनुशायक पानी—रामरत्नाकर रामायण ...

दो०—दीरघ उर दीरघ धनुष, दीरघ नैन सु माथ।
दीरघ भाल सुचाल तन, यथा योग सम साथ॥
सागर सम गंभीर जेहि, दुख सुख एक समान।
प्रिय दर्शन सुखप्रद सदा, कौशल्यासुत मान॥

और भी—प्रेम पीयूष धारा से—

खेमटा—मुनिसंग पावक का के सखीरी।
सुन्दर रूप मनोहर नैना, चितवन में रस जाके ... री॥
जाकी दृष्टि बदन पर जांहि, सो ...
मोहनिदास विरंचि पद ...

अर्थ—जो गोरे रंग वाले छोटी अवस्था के सुंदर भेष बनाये हैं और हाथ में धनुष बाण लिये रामचन्द्र जी के पीछे हैं। वे रामचन्द्र जी के छोटे भाई लक्ष्मण नाम के हैं हे सखी सुनो! उनकी माता सुमित्रा जी हैं॥

दो०-× विप्रकाज करि बंधु दोउ, मग मुनिवधू उधारि।
आये देखन चापमख, सुनि हरषीं सब नारि॥२२१॥

अर्थ—दोनों भाई विश्वामित्र जी का कार्य सिद्ध करके और रास्ते में गोतम मुनि की स्त्री अहल्या का उद्धार कर धनुषयज्ञ देखने आये हैं इतना सुनकर सब स्त्रियां प्रसन्न हुईं॥

चौ०-देखि राम छवि कोई इक कहई। +जोग जानकी यह वर अहई॥
जो सखि इनहिं देख नरनाहू। प्रण परिहरि हठि करै विवाहू॥

अर्थ—रामचन्द्र जी की छवि देखकर एक सखी कह उठी कि यह वर तो जानकी जी के योग्य है। हे सखी! जो राजा जी इन को देख लेवैं तो प्रण को त्याग कर अवश्य ही ब्याह कर देवैंगे॥

× विप्रकाज करि बन्धु दोउ, मग मुनि वधू उधारि—

राग टोड़ी—येई राम लषन जे मुनि सँग आये हैं।
चौतनी चोलना काछे सखि सोहैं आगे पाछे आछे आछे भाय भाये हैं॥
सांवले गोरे शरीर महाबाहु महावीर कटि तूण तीर धरे धनुष सुहाये हैं।
देखत कोमल कल अतुल विपुल बल कौशिक कोदंड कला कलित सिखाये हैं॥
इन हीं ताड़का मारी गोतम की तिय तारी भारी भारी भूरि भट रण बिचलाये हैं।
ऋषिमख रखवारे दशरथ के दुलारे रङ्गभूमि पगुधारे जनक बुलाये हैं॥
इनके विमल गुण गणत पुलकित तनु सतानन्द कौशिक नरेशहि सुनाये हैं।
प्रभुपद मन दिये सो समाज चित्त किये हुलसि हुलसि हिय तुलसिहु गाये हैं॥

+ जोग जानकी यह वर अहई—

क०—जैसी यह ललित लड़ैतो मिथिलेश जू की तैसो अवधेश को दुलारो रस भीना है।
याहि देखि आज रति होति है विकल मति याहि तो बिलोकि पंचबानहु अधीना है॥
जन धों 'मुरारि' यों विदेहपुर नारि कहैं यह तो संयोग विधि कर लिख दीना है।
धनु धनु टूटे या न टूटे करो कोटी जतन सिया लोने की अंगूठी राम छंवरो नगीना है॥

चौ०—कोउ कह ये भूपति पहिचाने। मुनिसमेत सादर सनमाने॥
*सखि परंतु प्रण राउ न तजई। विधिवश हठि अविवेकहि भजई॥

अर्थ—दूसरी बोल उठी कि अरे! इन्हें राजा जी जान तो गये हैं तभी तो इनका आदर भी मुनि जी के साथ किया है। परंतु हे सखी! राजा जी अपना प्रण नहीं छोड़ते, होनहार के कारण हठ पकड़े हुए अज्ञानता को ही धारण किये हैं॥

चौ०—कोउ कह जो भल अहै विधाता। सब कहँ सुनिय उचितफलदाता॥
तौ जानकिहिं मिलहि वर येहू। नाहिंन आलि इहां सन्देहू॥

अर्थ—एक यों कहने लगी कि जो विधाता की कृपा है और जो सुनने में आता है कि वह सब को यथा योग्य फल देता है। तो जानकी जी को यही पति मिलेगा हे सखी! इस में कोई सन्देह नहीं है॥

चौ०—†जो विधिवश अस बनै सँयोगू। तौ कृतकृत्य होहिं सब लोगू॥
सखि हमरे अति आरति ताते। कबहुँक ये आवहिं यहि नाते॥

अर्थ—भाग्यवश यदि ऐसा योग जुड़ जाय तो सब लोगों की मनोकामनाएँ सिद्ध हो जावेंगी। हे आली! इसी हेतु हमें व्याकुलता हो रही है कि भला ये कभी इसी नाते से तो आवैं॥

दो०—नाहिं त हम कहँ सुनहु सखि, इन कर दरशन दूरि।
यह संघट तब होइ जब, पुण्य पुराकृत भूरि॥ २२२॥

अर्थ—नहीं तो हे आली! सुनो इन के दर्शन हमें दुर्लभ हैं, यह संयोग तो तभी बने जब पूर्व जन्म की बड़ी पुण्याई हो॥

---

* सखि परन्तु प्रण राउ न तजई—

सवैया—कोई कह्यो रघुराज सुनो दुख होत अरी छण हीं छण ही मन।
भूप विदेह प्रतिज्ञा करी तुम जानति हौ सिगरी सजनी जन॥
सो तजि हैं किमि चित्त कठोर चितै चित चोर किशोरन के तन।
जो न कियो धरनै धन पेलि पषाण परैं पुहमी पति के पन॥

† जो विधिवश अस बनै सँयोगू—

क०—सुन्दर अनूप रूप सांवरे किशोर [लोनो देखि देखि मिथिलानियाभी हुलसावहीं।
सब नर नारी एक एक ते कहैं हैं रुचि जोरैं भनु ये ही तो अपार सुख छावहीं॥
जनक किशोरी मिलि जोरी स्याम गोरी भलि विधिहि निहोरी कर जोरी यों मनावहीं।
'रसिक बिहारी' हितकारी बात होवै वेगि छटक बिचारी धन्य वे ही यश पावहीं॥

चौ०—बोली अपर कहेहु सखि नीका । यह विवाह अति हित सबही का ॥
कोउ कह शंकरचाप कठोरा । ये श्यामल मृदुगात किशोरा ॥

अर्थ—दूसरी सखी कहने लगी कि हे आली ! तुमने अच्छा कहा, इस विवाह से सभी का बड़ा हित होगा । कोई और सखी कहने लगी कि शिव जी का धनुष कठोर है और ये श्यामले शरीर वाले कोमल किशोर अवस्था के हैं ॥

चौ०—सब असमंजस अहै सयानी । यह सुनि अपर कहै मृदुबानी ॥
‡सखि इन कहँ कोउ कोउ अस कहहीं । बड़ प्रभाव देखत लघु अहहीं ॥

अर्थ—हे चतुरे ! सबसे बड़ी अड़चन तो यही है ? ऐसा सुनकर दूसरी सखी मीठे वचनों से कहने लगी । हे आली ! इन्हें कोई कोई तो ऐसा कहते हैं कि ये देखने में छोटे हैं परन्तु इनका प्रताप बड़ा है ॥

चौ०—परसि जासु पदपंकजधूरी । तरी अहल्या कृतअघभूरी ॥
सो कि रहहिँ बिन शिवधनु तोरे । यह प्रतीति परिहरिय न भोरे ॥

अर्थ—जिनके कमलस्वरूपी चरणों की रज के छूते ही बड़ी पापिनी अहल्या भी तर गई । वे क्या शिवजी का धनुष तोड़े बिना रहेंगे (कभी नहीं) ऐसा विश्वास भूल करके भी न त्यागना ॥

चौ०—जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी । तेहि श्यामल वर रचेउ बिचारी ॥
तासु वचन सुनि सब हरषानी । ऐसइ होउ कहहिं मृदुबानी ॥

अर्थ—जिस ब्रह्मा ने सीता को संभाल कर बनाया है उसी ने विचार के साथ इस श्यामले वर को भी बनाया है । उस की बात सुन कर सब स्त्रियां प्रसन्न हुईं और नम्र वचनों से कहने लगीं कि ऐसा ही होवे ॥

---

‡ सखि इन कहँ कोउ कोउ अस कहहीं । बड़ प्रभाव देखत लघु अहहीं—
राग बिलावल—देखु सखी दुवि राज दुलारे ।

श्यामल गौर किशोर चोर चित ये दो भ्रात हमारे ।
अति अभिराम कामसद गंजन गुण मद रूप निधि उजियारे ।
लछिमन राम नाम दोउन को कोमल करन बान धनु धारे ।
रविकुल के मुनि मख रक्षा कर अब मारीच सुबाहु पछारे ।
गौतम नारि उधारि बाट में आये मिथिला नगर मझारे ।
जो शिव धनुष तोरि डारें ये सिय जयमाल इनके गल डारें ।
'मनोहर' होय आनंद सब देखो सुखद चरण निहारें ।

गाहि जहां जहं बन्धु दोउ, तहं तहं परमानन्द ॥ २

अर्थ—सुन्दर मुखवाली तथा सुन्दर नेत्रवाली स्त्रियों के झुंड के झुंड प्रसन्न होकर फूल बरसाते थे, इस प्रकार दोनों भाई जहां जहां जाते थे, बड़ा आनन्द होता था ॥

दूसरा अर्थ—सुलोचनि अर्थात् अपने नेत्रों से पराये सुलक्षण ही देखने तथा सुमुखि अर्थात् अपने मुख से दूसरों के शुभ लक्षण आदि वर्णन करने स्त्रियां हृदय से प्रसन्न हो कर वर्षहिं सुमन अर्थात् अपने उत्तम हृदय के को आपस में प्रकट कर रही थीं। इसी भाँति जहां जहां राम लक्ष्मण वहीं २ उन्हें मानों पूर्ण आनन्द भरा हुआ ही दिखाई देता था (भाव यह सरल हृदय वाली सुलक्षणा स्त्रियां श्री रामचन्द्र जी के सौन्दर्य सुलक्षणों आ प्रसन्न होकर आपस में जो उनके विवाह आदि की शुभ कांक्षा कर रही थीं। चर्चा से दोनों भाइयों को नगर की शोभा से जो आनन्द हुआ था उस बढ़ कर आनन्द हुआ) ॥

सूचना—फूल बरसाने के अनेक कारणों में से मुख्य ये हैं— (१) या महात्मा के शुभागमन समय आनन्द प्रदर्शित करने के हेतु (२) श्री रामचन्द्र जी अपनी स्वाभाविक रीति से नगर की शोभा देखते जा रहे थे। उनकी दृष्टि अपनी ओर खींच कर उनके मुखारविन्द की पूर्ण शोभा निरखने के निमित्त (स्त्रियां चाहती थीं कि इन का यहां पर आना इन्हें मंगल दायक होवे अर्थात् इन विवाह जानकी जी से हो जावे ॥

× हिय हर्षहिं वर्षहिं सुमन ... ... तहँ तहँ परमानंद—प्रेम पीयूष धारा से—

रचता—मन लेलिया रँगीले सुन्दर सुजान ने।

बे सुध किया सबों को भृकुटी कमान ने॥
वह सॉवली सी सूरत हिय में समा गई।
यों बावरी किया है मृदु मुसकान ने॥
मिथिलापुरी में कहर मचो आलियों के बीच।
घायल किया जिन्हों को उनके कमान ने॥
कहते बने छाकर यों न देखते बने।
बस मोहनो को कर लिया नैनों की बान ने॥

चौ०—पुर पूरब दिशि गे दोउ भाई । +जहां धनुपमखभूमि बनाई ॥
अति विस्तार चारु गच ढारी । विमलवेदिका रुचिर सँवारी ॥

अर्थ—फिर दोनों भाई नगर की पूर्व दिशा में गये जहां पर धनुष यज्ञ के लिये स्थान बनाया गया था । बड़े फैलाव से सुन्दर गच बना हुआ था जिस पर स्वच्छ वेदी बड़ी रुचि के साथ बनाई गई थी ॥

चौ०—⊛चहुँ दिशि कंचन मंच विशाला । रचे जहां बैठहिं महिपाला ॥
तेहि पाछे समीप चहुँ पासा । अपर मंचमंडली बिलासा ॥

अर्थ—चारों ओर सोबरन के सिंहासन राजाओं के बैठने के लिये बनाये गये थे । उन्हीं के पीछे पास ही पास चारों ओर और भी मंच बने थे जिन पर राजाओं के सहचारी आदि बैठने वाले थे ॥

चौ०—कछुक ऊँच सब भाँति सुहाई । बैठहिं नगर लोग जहँ जाई ॥
तिनके निकट विशाल सुहाये । धवलधाम बहुबरन बनाये ॥

अर्थ—कुछ ऊंचाई पर सब प्रकार से सुहावना स्थान बना था जहां पर नगर के मनुष्य जाकर बैठेंगे । उनके पास ही बड़े और सुहावने स्वच्छ स्थान रंगबिरंग के बनाये थे ॥

चौ०—जहँ बैठी देखहिं पुरनारी । यथा योग निजकुल अनुहारी ॥
पुरबालक कहि कहि मृदुवचना । सादर प्रभुहि दिखावहिं रचना ॥

+ जहां धनुपमख भूमि बनाई । जानकी मंगल से—

छन्द—पण धरेउ शिव धनु रचि स्वयंवर अति रुचिर रचना बनी ।
जनु प्रकटि चतुरानन दिखाई चतुरता सब आपनी ॥
पुनि देश देश सँदेश पठयउ भूप सुनि सुख पावहीं ।
सब साजि साजि समाज राजा जनक नगरहि आवहीं ॥

⊛ चहुँ दिशि कंचन मंच विशाला । रचे जहां बैठहिं महिपाला—

सवैया—सो हैं जड़े मणि जालन सो बहु लालन सों छबि पुंज सने हैं ।
कैसे कहै 'ललिते' मुख सो सहसानन सों नहिं जात भने हैं ॥
राजित मैन विलोकिये तो प्रतिबिंबन में प्रतिबिंब गने हैं ।
बैठिबे को महिपालन के हित कंचन मंच विशाल बने हैं ॥

अर्थ—जहां पर नगर की कुलीन स्त्रियां अपनी अपनी योग्यता के अनुसार बैठ कर देखेंगी। नगर के बालक मीठे वचन बोल कर आदर पूर्वक रामचन्द्र जी रंग भूमि की रचना दिखा रहे थे॥

दो०—† सब शिशु यहि मिस प्रेमवश, परसि मनोहर गात।
तनु पुलकहिं अति हरप हिय, देखि देखि दोउ भ्रात॥ २२४॥

अर्थ—सब बालक इसी बहाने से प्रेमवश हो उनके शरीर को छूते थे और दोनों भाइयों को देख देख कर बड़ी प्रसन्नता के कारण रोमांचित हो जाते थे॥

चौ०—‡ शिशु सब राम प्रेमवश जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने॥
निज निज रुचि सब लेहिं बुलाई। सहित सनेह जाहिं दोउभाई॥

अर्थ—रामचन्द्र जी ने सब बालकों को प्रेम के आधीन जान लिया तब प्रभु ने उनके घरों की बड़ाई की। सब बालक अपनी अपनी इच्छानुसार अपने घरों में लिवा ले जाते थे तो दोनों भाई प्रेमपूर्वक जाते थे॥

चौ०—राम दिखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर वचना॥
× लवनिमेष महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुशासन माया॥
भक्त हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुषमखशाला॥

---

† सब शिशु यहि मिस प्रेमवश, परसि मनोहर गात—
कवित्त—अंग अंग परसैं सुढंग रंग रंग रचैं सहित उमंग संग संग चहुँ ओरी हैं।
कोऊ इतरावैं सनधावैं औरिसावैं कोऊ कोऊ बतरावैं कोऊ करत कलोलैं हैं।
रसिक बिहारी नेहवश रघुलाल तिन्हैं करत निहाल प्रीति रीति अनमोली है।
कोऊ देत गारी कोऊ देत करतारी कोउ करैं मनुहारी कोउ बाल हँसि बोली है॥
‡ शिशु सब राम प्रेमवश जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने—
क०—कोऊ पै प्रवीन [illegible] सनेही [illegible] निरखि अनूप [illegible] अधिक [illegible] हैं।
[illegible] रसिक बिहारी [illegible] हैं।
[illegible] हैं।
[illegible] हैं।
× लवनिमेष महँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुशासन माया। [illegible]
[illegible] हैं।
[illegible] ([illegible])

अर्थ—श्रीरामचन्द्र जी नम्र, मीठे और सुहावने वचन कह कह कर लक्ष्मण को यज्ञशाला आदि की रचना दिखाते थे। जिस की आज्ञा से माया एक पल भर में अनंत ब्रह्माण्ड समूहों को बनाती है। वे ही गरीबों पर दया करने वाले प्रभु भक्तों के हेतु धनुषयज्ञ की रचना चकित होकर देखते थे॥

चौ०—कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि विलंब त्रास मन माहीं॥
†जासु त्रास डर कहँ डर होई। भजन प्रभाव दिखावत सोई॥
कहि बातें मृदु मधुर सुहाई। किये बिदा बालक बरियाई॥

महा अंध घोर से जल पर पृथ्वी का रचा मंडल।
कमल से ब्रह्मा पैदा करके चारों वेद उचारे हैं॥
कहीं जल औ कहीं खुश्की कहीं पहाड़ों को कायम कर।
जुदा हर द्वीप औ चश्मे जो धरती पर सिंगारे हैं॥
सतूं बिन अर्श कायम कर लगाया रंग कुदरत का।
जमाया चांद सूरज को सजाये क्या सितारे हैं॥
बना कर पेड़ फूलों के किये तकसीम गुलशन में।
अयां कुदरत है हर गुल से अजब तेरे नजारे हैं॥
हुई कायम व जब हस्ती फना की भी दी तब शक्ती।
किसी का बस नहीं चलता जो रावन जैसे मारे हैं॥
किसे ताकत दुनीचंद उसकी लीला जो करे वर्णन।
ऋषीश्वर सब मुनीश्वर और योगीश्वर पुकारे हैं॥

† जासु त्रास ... हँ डर होई। भजन प्रभाव दिखावत सोई—

अर्थ—रचना देखकर गुरु जी के पास चले परन्तु जब जाना कि देरी हुई तो मन में डरने लगे। जिस के डर से डर को डर होता है वे ही भगवान भजन का प्रताप दिखा रहे हैं। (भाव यह कि डर भी यदि शरीर धारण करले तो वह भी परमेश्वर से डरता रहे)। श्रीरामचन्द्र जी किसी से डरने वाले नहीं परन्तु उन्होंने विश्वामित्र का भय माना, सो यह दर्शाया कि भक्ति के कारण प्राणी कैसा प्रभावशाली हो जाता है कि सब से बड़ा परमात्मा भी उस से शंकित होता है। प्रभु ने नम्र, मीठी और सुहावनी बातें कह कर बालकों को बरजोरी से विदा किया ॥

दो०—सभय सप्रेम विनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ।
गुरुपदपंकज नाय शिर, बैठे आयसु पाइ ॥ २२५ ॥

अर्थ—दोनों भाइयों ने प्रेम के कारण डरते हुए नम्रता से सकुचते हुए गुरु जी के कमलस्वरूपी चरणों पर शिर नवाया और वे उनकी आज्ञा पाकर बैठ गये ॥

चौ०—निशि प्रवेश मुनि आयसु दीन्हा। सब ही संध्या वंदन कीन्हा ॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि युग याम सिरानी ॥

अर्थ—रात्रि का आरंभ देख मुनि जी ने आज्ञा दी तो सब ने संध्यावन्दन किया। प्राचीन कथा और इतिहास कहते कहते दो पहर चांदनी रात बीत गई ॥

चौ०—मुनि वर शयन कीन्ह तब जाई। लगे चरण चापन दोउ भाई ॥
जिनके चरण सरोरुह लागी। करत विविध जप योग विरागी ॥

अर्थ—मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र जी जाकर लेट रहे तो दोनों भाई उन के पैर दाबने लगे। जिन के कमलस्वरूपी चरणों के लिये विरागी लोग नाना प्रकार के जाप और योग साधनायें किया करते हैं ॥

चौ०—‡ते दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुरुपदकमल पलोटत प्रीते ॥
बार बार मुनि आज्ञा दीन्ही। रघुवर जाइ शयन तब कीन्ही ॥

शब्दार्थ—प्रीते (प्रियतम) = प्यारे।

---

‡ ते दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुरुपदकमल पलोटत प्रीते—

क०—जाकी पद रेनु चित्त चाहि कै स्वयंभु शंभु, शिर में धरन हेत नेति नेति ठाने हैं।
जोगी जन जनम अनेकन बितायें नहिं, पायें करि जोग याग जुक्ति बहु माने हैं॥
भने 'रघुराज' जाकहुं लों अंत पावै नाहिं, नेति नेति वेद औ पुराण हू बखाने हैं।
सोई प्रभु विप्र पाद चापत चरण निज, कोमल करन पाय धन्य भगवाने हैं॥

अर्थ—वे दोनों भाई मानो प्रेम के आधीन हो अपने प्यारे गुरु जी के कमल-रूपी चरणों को दाब रहे थे। जब कई बार मुनि जी ने कहा तब रामचन्द्र जी जाकर [सो] गये ॥

चौ०—चापत चरण लषन उर लाये। सभय सप्रेम परम सचुपाये ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पदजलजाता ॥

अर्थ—लक्ष्मण जी डरते हुए बड़े प्रेम के साथ चुपचाप मन लगाकर (रामचन्द्र जी [के] पैर) दाबने लगे। जब रामचन्द्र जी ने वारम्वार कहा कि हे भाई! अब सोओ, तब वे [उ]नके कमल-स्वरूपी चरणों का हृदय में ध्यानधर सो रहे ॥

दो०—उठे लषन निशि विगत सुनि, अरुणशिखा धुनि कान।
*गुरु ते पहिले जगतपति, जागे राम सुजान ॥ २२६ ॥

शब्दार्थ—अरुणशिखा (अरुण = लाल + शिखा = चोटी) = लाल चोटी [वा]ला, मुर्गा।

अर्थ—रात बीत जाने पर लक्ष्मण मुर्गे की बांग कानों से सुन कर उठे और [सं]सार के स्वामी ज्ञानवान् रामचन्द्र जी भी गुरु जी से पहिले उठे ॥

चौ०—सकल शौच कर जाइ नहाये। नित्य निबाहि मुनिहि शिर नाये ॥
समय जानि गुरुआयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥

अर्थ—सब शौच क्रिया करके स्नान किये, और संध्या वन्दन आदि नित्य कर्म [क]रके मुनि जी को प्रणाम किया। (फूल लाने का) समय जान गुरु जी की आज्ञा [से] दोनों भाई फूल लेने को चले ॥

चौ०—भूप बाग वर देखेउ जाई। ‡जहँ बसंत ऋतु रही लुभाई ॥

---

* गुरु ते पहिले जगतपति, जागे राम सुजान—(मनुसंहिता अ० २-१९४)

श्लोक—हीनान्न वस्त्रवेशः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमश्चैव संविशेत् ॥

अर्थात् गुरु के समीप सदा उन से हीन अन्न, हीन वस्त्र और हीन रूप से रहना चाहिये तथा गुरु जी के सोकर उठने के पूर्व ही उठे और उनके सोने के पश्चात् सोवे ॥

‡ जहँ बसंत ऋतु रही लुभाई—

सवैया—झूमे झुके तरुपुंज रसाल तमालन जालन पै द्युति साजै।
त्यों 'ललिते' कचनार अनार प्रसूनन भार अपार सु राजै ॥
... के फूल फोलत सो मधुपी धुनि छाजै।
... हु मास बसंत विराजै ॥

* लागे विटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना।

अर्थ—उन्हों ने जनक राज की उत्तम बगिया जा देखी, जहां पर बसन्त ऋतु मा लोभ के मारे ठहर रही हो (अर्थात् जहां पर सब प्रकार के फूल आदि बसन्त ऋतु क नाईं लगे रहते थे)। भांति भांति के मन भावने वृक्ष लगे थे, और रंग बिरंगी उच लताओं के मंडप छा रहे थे॥

चौ०—नव पल्लव फल सुमन सुहाये। +निज संपति सुररूख लजाये।
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहँग नचत कल मोरा।

अर्थ—वृक्षों में सुहावने नये पत्ते, फल और फूल लगे थे जो इस अपनी सामग्री से कल्पवृक्षों को भी लज्जित करते थे। पपीहा, कोयल, सुआ और चको आदि पक्षी बोल रहे थे और मोर भली भांति नाच रहे थे॥

चौ०—× मध्य बाग सर सोह सुहावा। मणिसोपान विचित्र बनावा॥
विमल सलिल सरसिज बहुरंगा। जलखग कूजत गुंजत भृंगा॥

---

* लागे विटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना—सुमति मन रंजन नाटक से—

क०-भरे भौंर भारन हजारन सुडारन पै, लपकि झपकि वर द्रुम द्युति छोरे देत।
'ललित' लतान के बितान से तने हैं तैसे, चहुँ ओर कोकिल कलित कीर सोरे देत॥
विकसे चहूँघा वर विटप बिलोकौ इत, निकसे कलीन अति सुखमा हिलोरे देत।
घोरे देत आनँद हिये में प्रेम बोरे देत, पवन प्रसून भूरि भूमि पै बिथोरे देत।

+ निज संपति सुररूख लजाये—

कवित्त—बगरे लतान युत सगरे विटप वर सुमन समूह सोहै अगरो सुवेश को।
फूलन के भार डार डार पै अपार द्युति कोकिल पुकार हरे त्रिविधि कलेश को॥
कहत बनै न कछु 'ललित' निहारी इत उमहो परति सुख मानो देश देश को।
जनक सो राजत जनक जू को बाग ता को नंदन सो लागै बन नंदनसुरेश को॥

× मध्य बाग सर सोह सुहावा। मणिसोपान विचित्र बनावा—सीता स्वयंम्बर नाटक से—

क०-पूरित सुवारि पर मारिज विकासे खासे प्रेम रज्जु फाँसे गाँसे भौंर मुत्र भीने लेत।
अजब बना से चहुँघा से हैं प्रकासे घाट धवल प्रभा से घन सार सार लीने लेत॥
डोलत चकोर मोर सारस मराल बाल बोलत सुरच ते कलोल कल कीने लेत।
राम सों बिलोकौ बन्धु निमि को तड़ाग 'चन्द्र' छीरधि की छहरि छबीली छटा छीने लेत॥

अन्वय—सुहावा बाग मध्य विचित्र मणिसोपान बनावा सरसोह । आदि ॥

अर्थ—सुहावने बगीचे के बीच में रङ्ग बिरङ्ग मणिजटित सीढ़ियों से युक्त सरोवर शोभा दे रहा था। उस के निर्मल जल में रङ्ग बिरंगे कमल फूले थे। जहां जलपक्षी शब्द कर रहे थे और भौंरे गुंजार रहे थे ॥

दो०—बाग तड़ाग बिलोकि प्रभु, हरषे बंधु समेत।
†परम रम्य आराम यह, जो रामहिं सुख देत ॥ २२७ ॥

अर्थ—रामचन्द्र जी बाग और तालाब को देखकर भाई लक्ष्मण सहित आनन्द को प्राप्त हुए, यह बगीचा बड़ा ही रमणीक था जो रामचन्द्र जी को सुख दे रहा था ॥

चौ०—‡चहुँ दिशि चितै पूछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन ॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई ॥

अर्थ—बाग की शोभा देखने तथा मालीगणों को खोजने के निमित्त चारों ओर देख माली गणों से पूछ प्रसन्न चित्त से तुलसी पत्र और फूल तोड़ने लगे। उसी समय सीता जी भी बगीचे में आईं उन्हें उनकी माता ने गौरी जी के पूजने के निमित्त भेजा था ॥

---

† परम रम्य आराम यह, जो रामहिं सुखदेत—राम स्वयंम्बर से

क०-तालन तमालन के तैसे हिन्तालन के रुचिर रसालन के जाल मन भाये हैं।
हम आल बालन के रजत देवालन के आलै लोक पालन के लोचन लजाये हैं ॥
दिख देख बालन के देखे ते पिहाल होत षट ऋतु कालन के फूल फल छाये हैं।
और महिपालन के बालन की बातें कौन रघुराज 'कोशलेश' लालन लुभाये हैं ॥

‡ चहुँदिशि चितै पूछि मालीगन—

सवैया—ये हो महीपति माली सुनी गुरु पूजन के हित फूल उतारन।
आये इतै हम बंधु समेत उतारैं प्रसून जो होय न बारन ॥
कैसे कहे बिन फूल चुनै मिथिलेश कि वाटिका के मन हारन।
वस्तु बिरानो के पूछे बिना 'रघुराज' जू लेव न धेद उचारन ॥
राम [illegible] अराम को पालक कान परे गृह बाहर आयो।
[illegible] भूप कुमार रह्यो तहि के पलकैं न लगायो ॥
[illegible] पाणि को जोरि पर्यो प्रभु प्रेम सु बैन न [illegible]
'[illegible] [illegible] न बायो मोहि विरंचि बनायो ॥

⊕ लागे विटप मनोहर नाना । बरन बरन बर बेलि बिताना

अर्थ—उन्हों नें जनक राज की उत्तम बगिया जा देखी, जहां पर वसन्त ऋतु लोभ के मारे ठहर रही हो (अर्थात् जहां पर सब प्रकार के फूल आदि वसन्त ऋतु नाईं लगे रहते थे) । भांति भांति के मन भावने वृक्ष लगे थे, और रंग बिरंगी लताओं के मंडप छा रहे थे ॥

चौ०—नव पल्लव फल सुमन सुहाये । +निज संपति सुररूख लजा

चातक कोकिल कीर चकोरा । कूजत विहँग नचत कल मोर

अर्थ—वृक्षों में सुहावने नये पत्ते, फल और फूल लगे थे जो इस सामग्री से कल्पवृक्षों को भी लज्जित करते थे । पपीहा, कोयल, सुआ और आदि पक्षी बोल रहे थे और मोर भली भांति नाच रहे थे ॥

चौ०—× मध्य बाग सर सोह सुहावा । मणिसोपान विचित्र बनाव

विमल सलिल सरसिज बहुरंगा । जलखग कूजत गुंजत भृंग

---

* लागे विटप मनोहर नाना । बरन बरन बर बेलि बिताना—सुमति मन रंजन से—

क०-भरे भौंर भारन हजारन सुडारन पै, लपकि झपकि बर द्रुम द्युति छोर
'ललित' लतान के वितान से तने हैं तैसे, चहुँ ओर कोकिल कलित कीर सोर
विकसे चहूँधा वर विटप विलोकौ इत, निकसे कलीन अति सुखमा [illegible]
घोरे देत आनँद हिये में प्रेम बोरे देत, पवन प्रसून भूरि भूमि पै बिथोरे

+ निज संपति सुररूख लजाये —

कवित्त—बगरे लतान गुल सगरे विटप पर सुमन समूह सोहैं अगरौ सुगंध को
फूलन के भार डार डार पै अपार द्युति कोकिल पुकार हरै विविधि [illegible]
कहत बनै न कछु 'ललित' निहारो इत उमहौ परति सुख मानौ [illegible]
जनक सौ राजत जनक जू को बाग ता को नंदन सो लागे पन

× मध्य बाग सर सोह सुहावा । मणिसोपान विचित्र बना

नाटक से—

क० [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

चौ०—मज्जन करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरिनिकेता॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग वर मांगा॥

अर्थ—तालाब में सखियों के साथ स्नान करके प्रसन्न चित्त से गौरी जी के मन्दिर में गईं। बड़े प्रेम से पूजा कर अपने योग्य श्रेष्ठ वर के हेतु प्रार्थना की॥

चौ०—एक सखी सिय संग विहाई। गई रही देखन फुलवाई॥
*तेइ दोउ बंधु विलोके जाई। प्रेमविवश सीतापहँ आई॥

अर्थ—एक सखी सीता जी का सङ्ग छोड़ फुलवाड़ी देखने को गई थी। उसने दोनों भाइयों को जाकर देखा तो प्रेम में मग्न होती हुई सीताजी के पास आई॥

दोहा—×तासु दशा देखी सखिन्ह, पुलकगात जल नैन।
कहु कारण निज हर्ष कर, पूछहिं सब मृदुबैन॥ २२८॥

अर्थ—जब सखियों ने उस की ऐसी दशा देखी कि शरीर के रोम खड़े हैं और नेत्रों में (प्रेम के) आंसू डबडबा रहे हैं तब तो वे सब की सब मधुर वाणी से पूछने लगीं कि हे सखी! तू अपने आनन्द का कारण तो कह?

चौ०—†देखन बाग कुँवर दुइ आये। वय किशोर सब भाँति सुहाये॥

---

* तेइ दोउ बंधु विलोके आई। प्रेमविवश सीता पहँ आई॥ राम रसायन रामायण से—

चौपई छन्द—हिय विचारि कुलकानि जानि तिय धर्म धीर कछु धारी।
चली द्वैक डग परै न पग मग भई नेह मतवारी॥
तहँ ते चली फेरि फिरि लौटै इहि विधि करि परिभाई।
झूमत झुकत चकित सी चितवत अली अलिन बिच आई॥

× तासु दशा देखी सखिन्ह ... ...

कवित्त—एकै सखि आई फुलवाई बात सौंची कहु तनरुह छाई धीर ननन बह री है।
कंप भरी 'ललित' विलोकी आठ बावरी सो और भाँति गात दशा और गति हेरी है॥
बोलत न काहे नेक नेह री निबाहे सखी गदगद कंठ कछु हाल अति देरी है।
परी मैं हौं चेरी कहा विधि मति फेरी अरी मेरी सौंह साँची कहु कौन गति तेरी है॥

† देखन बाग कुँवर दुइ आये। वय किशोर सब भाँति सुहाये—

कवित्त—आये हैं कुमार दोऊ श्यामर सलोने गोरे नर सिर मौर अङ्ग सुखमान घरी सो।
'ललित' निमेष तजि देखत ही नैन जिन्हें पावत परमरंग सुरमणि ढेरी सी॥
लोचन प्रसून एक कमल करन तोने कोटि कामवारे देखि होत मति घेरी सी।
मेरी हमें बावरी बताओ सही बावरी हौं तेरी सौंह देखि हौ तो है हां गति मेरी सी॥

और भी—

चौ०—*संग सखी सब सुभग सयानी। +गावहिं गीत मनोहर बानी॥
×सर समीप गिरिजा गृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मन मोहा॥

अर्थ—सीता के साथ सब सौभाग्यवती चतुर सखियां मनोहर वाणी से गीत गाती थीं। तालाब के पास ही पार्वती जी का मन्दिर शोभायमान था जिस का वर्णन नहीं किया जा सक्ता, देखने ही से मन मोहित हो जाता था॥

* सङ्ग सखी सब सुभग सयानी—

सीता सँग आई सुभगबाला। (सीता सँग)
गज गामिनि सब सखी सहेली राजकुँवरि हंसिनि चाला॥
कोउ सखि नील पीत पट पहिरे कोउ सखि हरित कञ्चुक लाला।
पग पैंजनिया नूपुर सोहै कटि किंकिण बेंदी भाला॥
चन्दन अक्षत धूप दीप कर लिय नैवेद्य पुहुप माला।
'नायक कवि' कलकंठ लजावनि गावत गीत सहित ताला॥

+ गावहिं गीत मनोहर बानी—राम स्वयंम्वर से—

सिय छवि को कहि सकै उचारी।
जेहि मुख सम सर करत कलोनिधि, घटत बढ़त हिय हारी॥
हँसनि छुटनि शशि छटनि लजावति, द्विगुनी दुति उजियारी।
पिक कोकिल जेहि मधुर बैन सुनि, लज्जित भे बनचारी॥
खञ्जन कञ्जन मीन कुरङ्गन, दृग छवि छीन निकारी।
केतन बास दियो जल भीतर, केतन विपिन मँझारी॥
किमि कहि जाय कनक लतिका जड़, सिय भुजसरिस विचारी।
तारन सहित पूर्णिमा रजनी, लखि लजाति तन सारी॥
चरण चारु नख अवलि विमंडित, बिन आवक अरुणारी।
बसी विश्व की कोमलता सहँ, करि कंचन सों रारी॥
श्री- रघुराज कहीं पटतर केहि, उपमा कविन जुठारी।
महा मनोहर मूरति मुदकर, बार बार बलिहारी॥

× सर समीप गिरजा गृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मन मोहा—सीता स्वयंम्वर से—

क०-हाटक कलश कल झलझलात ऊरध जों तापर पताका हिलै बाँका थी कृपानी को।
सुभग कँगूरे शोभ पूरे अति रूरे लसैं बिहँसैं विरचिह्न की रचना विधानी को॥
विलसैं अनूप यूप पाँति आंति भाँतिन की जाति ना बखानी छवि मोहै मन बानी को।
प्रभा सरसानी देखि भूलत सयानी 'चंद्रि' सब सुख खानी धाम दुर्गा महरानी को॥

श्याम गौर किमि कहौं बखानी। +गिरा अनयन नयन बिन बानी॥

अर्थ—(सखी कहने लगी) दो राजकुमार जिन की किशोर अवस्था है और जो सभी प्रकार से सुन्दर हैं, बाग की सैर करने आये हैं। एक तो श्यामले और दूसरे गोरे रङ्ग के हैं उन का वर्णन मैं कैसे करूं क्योंकि वाणी को तो नेत्र नहीं और नेत्रों के वाणी नहीं (अर्थात् जीभ जिसे वर्णन करने की शक्ति है उसे देखने की शक्ति नहीं और नेत्र जिन्हें देखने की शक्ति है उन्हें वर्णन करने की शक्ति नहीं। भाव यह कि देखने वाला कोई और है और वर्णन कर्त्ता कोई दूसरा है। सारांश यह है कि—नैनन के नहिं बैन, बैन के नयन नहीं हैं)।

चौ०—सुनि हरषीं सब सखी सयानी। सिय हिय अति उतकंठा जानी॥
एक कहहि नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आये काली॥

अर्थ—साथ की सब सखियां सयानी तो थी हीं (ऐसी चतुराई की बात सुनते ही) प्रसन्न हुईं और वे ताड़ गईं कि सीता जी के हृदय में भी (देखने की) बड़ी लालसा है। (इतने में) एक सखी बोल उठी हे आली ! ये वेही राजपुत्र हैं जिन के बारे में सुना था कि विश्वामित्र मुनि के साथ कल आये थे॥

पद—सखो री जो जै हौ वहि ओर।
कहौं यनाय बनाय कछू नहिं राजकुँवर चित चोर॥
जो न मानि है सीख सयानी पुनि न चली कछु जोर।
'श्री रघुराज' हाल होई स्वइ जनि भयो अब भोर॥

+ गिरा अनयन नयन बिन बानी—लाला मन्नीलाल (ब्रजचन्द) कृत रागविनोद से—
राग पीलू—निरखे सखि दोउ राजकिशोर।
बिहरत श्री मिथिलेश नृपति के बाग माहिं चहुँ ओर।
श्याम गौर सुठि रूप राशि छवि भरी पोर ही पोर॥
वारिद दुति दै घन दामिनि रवि शशि रति मदन करोर।
बरनि सकैं केहि भाँति सुघाई मधुराई चितचोर॥
गिरा अनयन नयन बिन बानी रची विरंचि कठोर।
[illegible]॥
ब्रज प्रभुपद दिखाऊँ तुम को बिनती करत निहोर॥

भये विलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि ‡ निमि तजे दृगंचल ॥

अर्थ—इतना कहकर ज्योंहीं पलट कर उस (ध्वनि) की दिशा में देखने लगे तो सीता जी के चन्द्रस्वरूपीमुख‡को देख इन के नेत्र चकोर की नाईं निहारने लगे । (रामचन्द्र जी के) सुन्दर नेत्र इस प्रकार टकटकी लगाकर रह गये मानो निमिराज ने लज्जा के कारण उन के पलकों को छोड़ दिया हो (अर्थात् रामचन्द्र जी के नेत्रों का पलक मारना बन्द हो गया, वे इकटक सीता की ओर देखते ही रह गये) ॥

---

‡ निमि—सूर्यवंशी इक्ष्वाकु राजा के सौ पुत्रों में से दूसरे का नाम निमि था। यह गोतम के आश्रम के समीप वैजयत नाम का नगर बसाकर वहीं राज करता था। इसने ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ की सहायता से अनेक यज्ञ किये। फिर एक बार बड़े भारी यज्ञ के करने के विचार से वशिष्ठ जी के पास गये। वशिष्ठजी ने कहा कि मुझे अभी इन्द्रको यज्ञकराने के निमित्त जाना है। वहां से जब लौटकर आऊंगा तब तुम यज्ञ का आरंभ करना. निमि ने जीवन को अस्थिर समझकर गोतम ऋषि को उपाध्याय बनाकर अनेक ऋषियों की सहायता से यज्ञका आरंभ कर दिया। वशिष्ठ जीने लौटकर जब ये हाल देखा। तब उन्हों ने क्रोधित होकर निमि को श्राप दिया कि तुम्हारी देह पतन पावे। निमि ने भी ऐसा ही श्राप वशिष्ठ जी को दे दिया। दोनों के शरीर पतन हो गये। जब इनकी आत्मायें ब्रह्मदेव जी के पास पहुंचीं। तब ब्रह्माजी की आज्ञानुसार वशिष्ठ ने मंत्र,वरुण द्वारा फिर से शरीर धारण कर लिया परन्तु निमि ने ब्रह्मदेव से प्रार्थना की कि शरीर धारण करने में अनेक,कष्ट होते हैं इस कारण मुझे विदेह ही रहने दीजिये। ब्रह्मदेव ने इसे मान्यकर लिया तभी से विदेहरूपी निमि का वास प्राणियों के पलकों पर रहता है। इसी से रामचंद्र जी और सीताजी का परस्पर शृङ्गारयुक्त विलोकन के समय गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि—'मनहुं सकुचि निमि तजेउ दृगंचल' यज्ञ करने वाले ऋषियों ने निमि के निर्जीव शरीर की रक्षा करके यज्ञ समाप्त किया. इसके पश्चात् राज्य का अधिकारी किसी को न देख इन्हों ने इसी मृतक शरीर को मथन करके उसी में से एक पुरुष निर्माण किया। उसी से उसका नाम मिथी रक्खा और इसी नाम पर से वैजयत नगर का नाम मिथिला पड़ा। मिथी राजा की उत्पत्ति केवल पिता ही के शरीर से (बिना माता के संयोग से) हुई थी. इसहेतु ये जनक कहलाये और इनकी आत्मा विदेह रही इस से विदेह भी कहलाये। इस कुल से उत्पन्न हुए राजा इसी समय से सूर्यवंश से पृथक् होकर गोतम कुल वालों को उपाध्याय मानने लगे (देखो वाल्मीकीय रामायण उत्तर कांड सर्ग ५५—५७) ॥

चौ०—‡ कंकनकिंकिनिनूपुरधुनिसुनि। कहत लषन सन राम हृदय गुनि॥
† मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्हीं। मनसा विश्वविजय कहँ कीन्हीं॥

अर्थ—हाथों के, पहुँचों के गहनों की, कमर के गहनों की तथा पैर के गहनों की ध्वनि सुनकर रामचन्द्र जी अपने हृदय में विचार कर लक्ष्मण से कहने लगे (इस ध्वनि से प्रकट होता है कि) मानो कामदेव ने नगाड़े पर चोब देकर संसार को जीत लेने की इच्छा दर्शाई हो (भाव यह कि सखियों समेत सीता के आभूषणों की ध्वनि से रामचन्द्र जी ने अनुमान किया कि सीता अब अपना रूप दिखाकर मुझे मोहित करेंगी तो विश्व का स्वामी मैं जब इस प्रकार पवित्र प्रीति रस में डूब जाऊंगा तब मानो सब संसार ही को कामदेव जीत चुकेगा)॥

चौ०—अस कहि फिर चितये तेहि ओरा। ❀ सियमुखशशि भये नयन चकोरा॥

‡ कंकन किंकिनि नूपुर 'धुनि सुनि'—जानकी स्तवराज भाषाटीका से—

सवैया—श्री रामप्रियापदभूषण की रव का बरनौं महिमा मति थोरी।
पंक्ति लजी कल हंसन की सिय जू तव नूपुर की ध्वनि सोरी॥
सुन्दर मन्द गँभीर मनोहर कोमलता तेहि में हूं लखो री।
पीतम श्री रघुनन्दन के मन मोहन को जनु मंत्र चकोरी॥

† मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्हीं। मनसा विश्वविजय कहँ कीन्हीं॥ सुमति मन रंजन नाटक से—

सवैया—और किये तन को मन को यह मो पै चमू चढ़ि साजन लागी।
लै ऋतुराज समाज सबै सँग कोकिल कै रव गाजन लागी॥
दुति कै घोर समोर लगे 'लजिते' लतिका घर राजन लागी।
जीतिबे को जग साजन साजि मनोज कि दुंदुभि बाजन लागी॥

❀ सियमुखशशि भये नयन चकोरा—राम रसायन रामायण से—

दो०—श्रीचक्र राज किशोर की, परी दृष्टि इत आय।
[illegible] छबि, [illegible]॥
सियमुख [illegible], रघुनन्दन मन ओर।
[illegible] नहिं ओर॥

और श्री [illegible] का वर्णन—
श्री [illegible] निवासी हैं।

कवित्त—[illegible]।
[illegible]॥
[illegible]।
[illegible]॥

चौ०—†तात जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारण होई॥
पूजन गौरि सखी ले आई। करत प्रकाश फिरति फुलवाई॥

अर्थ—हे भाई! यह जनक की वही कन्या है जिसके लिये धनुषयज्ञ होरहा है। यह सखियों को साथ लेकर गौरी जी के पूजन निमित्त आई है सो सब फुलवारी को शोभित करती फिरती है॥

चौ०—‡जासु बिलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा॥
सो सब कारण जान विधाता। फरकहिं सुभग अङ्ग सुनु भ्राता॥

अर्थ—जिसके अपूर्व रूप की छटा देखकर स्वभाव ही से पवित्र मेरा मन भी चलायमान होगया। इसका पूरा पूरा कारण तो दैव ही जाने परन्तु हे भाई! सुनो मेरे दहिने अंग (नेत्र, भुजा आदि) फड़क रहे हैं॥

चौ०—रघुवंशिन कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पग धरैं न काऊ॥
मोहि अतिशय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु परनारि न हेरी॥

अर्थ—रघुवंशियों का तो सहजही स्वभाव है कि वे मन से भी बुरे मार्ग में पैर रखने का विचार नहीं करते। फिर मुझ को तो अपने हृदय का बड़ा विश्वास है कि जिसने सपने में भी दूसरी स्त्री को नहीं ताका॥

चौ०—+जिनके लहहिं न रिपु रण पीठी। नहिं लावहिं परतिय मन डीठी॥
मंगन लहहिं न जिनके नाहीं। ते नर वर थोरे जग माहीं॥

---

† तात जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारण होई—

क०—जाकी देह आगे दुरि जात दुति दामिनी की दीपति कितीक नीके कुंदन कनक की।
नीरज से नैन हैं न बैन ऐसे कोकिल के उपजे न उपमा अलौकिक कथन की॥
मंद मंद चाल सों मराल हू को मारै मान मनहि चलावै मुनि भूपण मनक की।
जासु हित होय धनुयज्ञ की तयारी भारी सोई देखो तात जात तनया जनक की॥

‡ जासु बिलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा—रामस्वयंवर—

सवैया—आवत ही छवि नेसुक ताहि लखो नहिं आखिन में अस शोभा।
शारद शेष महेश गणेश न भाषि सकैं उर राखि के लोभा॥
भो रघुराज सुनो सहजै मन मेरो पुनीत सोऊ लखि छोभा।
छोड़ि कहीं दुख दंपन के अस जानु यों जोति में चित न दोभा॥

+ जिन के लहहिं न रिपुरण पीठी। नहिं लावहिं परतिय मन डीठी—राम स्वयम्बर से

चौ०—देखि † सीयशोभा सुख पावा। हृदय सराहत वचन न आवा॥
† जनु विरंचि सब निजनिपुणाई। विरचि विश्व कहँ प्रगटि दिखाई॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी सीता जी की शोभा देख सुखी हुए, उन की बड़ाई मन ही मन करने लगे परन्तु मुख से कुछ कह न सके। मानो ब्रह्मा ने अपनी सब चतुराई ही को रूप दे परमेश्वर को स्पष्ट दिखाया हो (अर्थात् ब्रह्मा ने सीता जी बनाने में मानो अपनी शक्ति भर प्रवीणता दिखाई हो)॥

चौ०—सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छविगृह दीपशिखा जनु बरई॥
सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरिय विदेहकुमारी॥

अर्थ—(शोभा ऐसी थी कि) सुन्दरता को भी शोभा सहित करती थी और मानो छवि के घर ही दिया की ज्योति प्रकाशित हो रही हो (भाव यह है कि बड़ी अपूर्व सुन्दर छवि सीता जी की थी)। कवियों ने सब प्रकार की उपमा दूसरी स्त्रियों को देकर मानो जूठी कर डाली हैं अब जनकपुत्री का मिलान किस से किया जावे॥

दोहा—सियशोभा हिय वरनि प्रभु, आपनि दशा विचारि।
बोले शुचि मन अनुज सन, वचन समयअनुहारि॥ २३०॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी सीता जी की सुन्दरता का मन ही मन वर्णन कर तथा अपनी दशा पर विचार कर शुद्ध मन से समय के अनुसार लक्ष्मण से कहने लगे॥

---

† जनु विरंचि सब निज निपुणाई। विरचि विश्व कहँ प्रगटि दिखाई :—ठीक यही आशय कुमार संभव के प्रथम सर्ग में पार्वती जी के विषय में कहा गया है, यथा—

श्लोक—सर्वोपमा द्रव्य समुच्चयेन, यथा प्रदेशं विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थ सौन्दर्य दिदृक्षयेव॥ ४९॥

अर्थात्—सम्पूर्ण उपमा की सामग्री (यथा चन्द्र, अरविन्द, शुक, मृग, सिंह, प्रवाल, मुक्ता आदि) एकत्र करके प्रत्येक को योग्य स्थान पर जमा जमा कर बड़े ही परिश्रम से ब्रह्मा जी ने मानो सम्पूर्ण सुन्दरता को एक ही स्थान में देखने के निमित्त पार्वती जी का निर्माण किया हो॥ ४९॥

और भी—

कवित्त—कोमलता कंज ते गुलाब ते सुगन्ध लैके चन्द्र ते प्रकाश लैके उदित उजेरो है।
रूप रति आनन ते चातुरी सुजानन ते, नीर लै निवानन ते कौतुक निवेरो है॥
'ठाकुर' कहत यों मसाला विधि कारीगर रचना निहार को न होत चित चेरो है।
कंचन के रंग लै सवाद लै सुधा को बसुधा को सुख लूट कर बनायो मुख तेरो है॥

रा अर्थ—जहां जहां सीताजी देखती थीं (और रामचंद्र जी न दिखाई देते थे) सीताजी को मानो कमलसिन जो ब्रह्मा हैं उनके वर्षों की श्रेणी सी समझ (अर्थात् वह थोड़ासा वियोगकाल भी हजारों वर्ष की नाईं समझ पड़ता था वियोग दशा में बहुधा हुआ ही करता है)॥

सरा अर्थ—जहां जहां सीता जी शुद्धभाव से देखती थीं (अर्थात् अमृत भरी वाली स्वच्छ श्वेत दृष्टि से देखतीं थीं उसी भाव से उनकी सयानी सखियां भी थीं। इसहेतु उसी उसी स्थान पर मानो सफ़ेद कमलों का झला सा बरस जाता व यह कि शुद्ध प्रीति के अमृत भरे नयनों का रङ्ग श्वेत और उनका गुण वाला होता है जैसा बिहारी की सतसई में कहा है॥

१०—अमी हलाहल मद भरे, सेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुक झुक परत, जेहि चितवत इकबार॥

-लता ओट तब सखिन लखाये। श्यामल गौर किशोर सुहाये॥
देखि रूप लोचन ललचाने। हर्षे जनु निज निधि पहिचाने॥

र्थ—तब सखियों ने श्यामले और गोरे सुहावने रूप के किशोर अवस्था को लता की ओट में दिखलाया। उन के रूप को देखते ही सीता जी के नेत्र दर्शन के लिये ललचाने लगे। मानो उन्हों ने अपने धनसमूह को पहिचान लिया हो (भाव सीता जी ने अपने परम प्रिय रामचन्द्र जी को पहिचान लिया)॥

-*थके नयन रघुपति छबिदेखी। पलकन हूँ परिहरी निमेखी॥
+अधिक सनेह देह भइ भोरी। शरद शशिहिं जनु चितव चकोरी॥

---

* थके नयन रघुपति छवि देखी—
।—बानी नेह सानी सुखदानी मन मानी बहु प्रीति सरसानी सुनि रूप की निकाई को।
सङ्ग ले सहेली अलबेली औ नवेला सबै देखन चली हैं घनश्याम रघुराई को॥
जनकदुलारी सुकुमारी मोद भारी हिये 'रसिक बिहारी' सो निहारी चहुँ धाई को।
निरखत झांकी छबि बांकी देह थाकी सिया प्रेममद छाकी छबि लाल की लुनाई को॥

+ अधिक सनेह देह भइ भोरी। शरद शशिहिं जनु चितव चकोरी—राम रसायन
मण से—
गीतिका छन्द—इहि भांति सिय सु सखिन युत रस नेह के हार्षी घनी।
प्रकटे लतन की ओट ते ताही समै रघुकुल मनी।
आनन्द हिय उमगो रही अकि चित्र सी सब जहँ तहां।
मानो शरद निशि चन्द्र को [illegible] चकोरी लखि रहीं॥

अर्थ—जिन लोगों की पीठ उनके शत्रु नहीं देख पाते (अर्थात् जो शत्रुओं की ओर पीठ कर लड़ाई से भागते नहीं) जो दूसरे की स्त्री नहीं निहारते और जो भिखारियों को विमुख नहीं फेरते ऐसे उत्तम पुरुष संसार में कम हैं ॥

दो०—करत बतकही अनुजसन, मन सियरूप लुभान।
मुखसरोजमकरंदछवि, ×करत मधुप इव पान ॥ २३१ ॥

अर्थ—इस प्रकार से लक्ष्मण जी से बात चीत कर रहे थे परन्तु मन तो सीता जी के स्वरूप पर लट्टू होरहा था और वे उनके कमलस्वरूपी मुख छवि के रस को भौंरे की नाईं स्वाद ले रहे थे। (अर्थात् सौंदर्य पर मोहित हो उसे इकटक निहार रहे थे) ॥

चौ०—चितवति चकित चहूँ दिशि सीता। +कहँ गये नृपकिशोर मन चीता॥
जहँ विलोकि मृगशावकनयनी। जनु तहँ बरिस कमलसित श्रेनी॥

अर्थ—सीताजी चकित होकर चारों ओर देखने लगीं कि मनभावन राजकिशोर कहां गये। जहां पर ये मृगछौना सरीखे नेत्रवाली सीताजी देखती थीं वहीं वहीं मानो सफ़ेद कमलों की सी वृष्टि हो जाती थी (अर्थात् जिस स्थान पर सीताजी नेत्रों की पुतली घुमाकर देखतीं थीं उसी ओर सम्पूर्ण सखियां भी देखने लगती थीं सो ऐसा मालूम होता था कि मानो सफ़ेद कमलों की वर्षा होजाती हो। कारण नेत्रों के इधर उधर घुमाने से सफ़ेद भाग विशेष दिखाई देने लगते थे और नेत्रों की उपमा कमलों से दी जाती है इसहेतु प्रत्येक सखी के सफ़ेद नेत्र भाग सीताजी के नेत्रों की नाईं होने से सफ़ेद कमलों की वर्षा ही सी दिखाई पड़ती थी) ॥

सवैया—जै बो न लायक लाल उतै परदारन के बिच धर्म बिचारी।
आये इतै मुनिशासन लै नहिं जानो रही मरयाद हमारी॥
रीति है धर्म धुरीनन की रघुवंशिन की जग जाहिर भारी।
पीठि परै नहिं संगर में नहिं दीठि परै सपन्यो परनारी॥

× करत मधुप इव पान—शकुन्तला नाटक से

गीत—भ्रमर तुम मधु के चाखन हार।
आम की रस भरी मृदुल मंजरी तासों प्रीति अपार॥

+ कहँ गये नृपकिशोर मन चीता—

गीत—चले गये दिल के दामनगीर।
जब सुधि आवै तुम्हरे दरश की उठत करेजवा पीर॥
नटवर वेष नयन रतनारे सुन्दर श्याम शरीर।
हरश्याम मधु तुम्हरे दरश को अँखियां होत अधीर॥

चौ०—भाल तिलक श्रम बिंदु सुहाये। श्रवण सुभग भूषण छवि छाये॥
×विकट भृकुटि कच घूंघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे॥

अर्थ—माथे पर तिलक पसीने की बूंदों के साथ शोभायमान थे और कानों में सुन्दर आभूषणों की शोभा छा रही थी। टेढ़ी भौंहें, घुंघरवाले बाल और नये कमल के समान रतनारे नेत्र थे॥

चौ०—चारु चिबुक नासिका कपोला। हास•विलास लेत जनु मोला॥
मुख छवि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जेहि बिलोकि बहु काम लजाहीं॥

अर्थ—ठुड्डी, नाक और गाल सुन्दर तथा हँसने की छटा मानो (चित्त को) मोल ही लिये लेती थी (अर्थात् उनके हँसने में वश करने की शक्ति थी)। उनके मुख की शोभा तो मुझ से कही नहीं जाती, उसे देख कर तो अनेक कामदेव लज्जित हो जाते थे॥

चौ०—उर मणि माल कंबु कल ग्रीवा। काम कलभ कर भुज बल सीवा॥
‡सुमन समेत वाम कर दोना। साँवर कुँवर सखी सुठि लोना॥

× विकट भृकुटि—नखसिख से—

छन्द—कीधौं काम कलम लिखी है बंक छंद तुक सरस सिंगार की सुरीति बिसतार की।
कीधौं मुख पंकज पै भँवर लुभाय रह्यो पाँय फैलाय सेज सोभन सँभार की॥
कैधौं है 'बिहारी' बिनगुन की कमान युग सुषमा अपार भरी धरी श्याम मार की।
बदन मयंक ते कढ़ी हैं कै कलंक कला बंक भृकुटी हैं राम अवध अधार की॥

• हास विलास लेत जनु मोला—प्रेम पीयूषधारा से—

खेमटा—चलो देखौं अवध के लाल बिहँसि मन लेइ रहे॥
अलकैं बिथुरि रहीं मुख ऊपर, अजब अनोखी चाल,
बिहँसि मन लेइ रहे॥
अँखियाँ दोउ रतनार रसीली, बिधु सम सोहत भाल,
बिहँसि मन लेइ रहे॥
मोहनिदास करें बस अपने, डारि प्रेम को जाल,
बिहँसि मन लेइ रहे॥

‡ सुमन समेत वाम कर दोना। साँवर कुँवर सखी सुठि लोना—

छप्पय—सुर सिद्ध महर्षि सुरर्षि सबै, जिनके पद पूजन हेत करैं।
सुर पादप फूलन को जिन पै, अज शंकर हू बरषैं बगरैं॥

(रघुराज)

अर्थ—रामचन्द्र जी की शोभा देख सीता जी के नेत्र इस प्रकार स्थिर हो गये कि पलकों का खुलना न लगना बन्द हो गया (अर्थात् सीता जी उन्हें टकटकी बांध कर देखने लगीं) विशेष प्रेम में देह की सुध इस प्रकार भूल गई जिस प्रकार चकोरी शारद ऋतु के (पूर्ण) चन्द्रमा को देखकर मग्न हो जाती है॥

चौ०—लोचनमग रामहिं उर आनी। दीन्हें पलककपाट सयानी
जब सियसखिन प्रेमवशजानी। कहि न सकहिंकछु मन सकुचानी

अर्थ—लोचनरूपी द्वार से श्रीरामचन्द्र जी को हृदय में लाकर चतुर सीता जी नेत्रों के पलकरूपी किवाड़ बंद कर लिये (अर्थात् रामचन्द्र जी के ध्यान में सीता नयन मूंद कर बैठ रहीं)। जब सखियों ने सीता जी को प्रेम के आधीन जान लि तब तो वे कुछ न कह सकीं परन्तु मन में लज्जित हुईं॥

दो०—*लताभवन ते प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु युग विमलविधु, जलदपटल बिलगाइ॥ २३२

अर्थ—उसी समय दोनों भाई लताओं के मंडप से बाहिर निकल आये मा दो स्वच्छ चन्द्रमा बादल के परदे को अलग कर निकल पड़े हों॥ सारांश यह लताओं की ओट से दोनों भाई मैदान में दिखाई दिये॥

चौ०—शोभासींव सुभग दोउ वीरा। नीलपीतजलजातशरीरा
काकपच्छ शिर सोहत नीके। गुच्छा बिच बिच कुसुमकली के

अर्थ—दोनों वीर बड़े सुन्दर और शोभा की मानो हद्द ही थे और उन शरीर पर (क्रमानुसार) नीले और पीले कमल के समान मस्तक पर बाल के पट्टे सुशोभित थे जिन के बीच बीच में फूलों की कलियों के गुच्छे लगे थे॥

---

* लता भवन ते प्रगट भे—

सवैया—प्यारी लखो इन श्यामरे को अति ही द्युति शोभन रूप अपार के।
जाति सराहो न कोमलता 'ललिते' शुभमानन चारु हजार के॥
कैसे हैं कहै देखत ही जे हरै मद मार के।
पटली निकरे जनु पूरनचन्द कुँवार के॥

०—केहरि कटि पट पीत धर, सुखमा शीलनिधान।
+देखि भानुकुल भूषणहिं, बिसरा सखिन अपान॥ २३३॥

अर्थ—सिंह के समान कमर वाले पीताम्बरधारी शोभा और शीलयुक्त सूर्यवंश [शिरो]मणि श्री रामचन्द्र जी को देख कर सखियों को अपने शरीर की सुध भूल गई॥

—धरि धीरज इक सखी सयानी। सीता सन बोली गहि पानी॥
†बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किशोर देखि किन लेहू॥

अर्थ—एक चतुर सखी धीरज धर के सीता जी का हाथ पकड़ कर कहने [लगी] कि गौरी जी का ध्यान फिर कर लेना, अभी राजकुमारों को क्यों नहीं [देख] लेतीं॥

—सकुचि सीय तब नयन उघारे। सन्मुख दोउ रघुसिंह निहारे॥
*नख शिख देखि राम की शोभा। सुमिरि पिता प्रण मन अति छोभा॥

+ देखि भानुकुल भूषणहिं, बिसरा सखिन अपान—प्रेम पीयूष धारा से—

दादरा—मो मन बसि गयो अवध बिहारी॥
जनक बाग में गई रही मैं, बीनत कुसुम फिरत फुलवारी।
या छवि को कहँ लगि हौं बरनौ निरखत तन मन धन सब वारी॥
ता छिन ते बावरि भइ डोलौं, जा छिन ते वह रूप निहारी।
"मोहनिदास" प्रेम की गांसी, मो हिय आनि लगी अति भारी॥

† बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किशोर देखि किन लेहू॥

पद—जनकतनया तजि गौरी ध्यान।
लखि लीजै लुकि राज लाड़िलो, अस सुन्दर नहिं आन॥
खंजन कंजन मृगन मीनगण लोचन लखत परान।
मंजु मयंक मरीचि मन्द परि तकि माधुरि मुसुक्यान॥
कोटि मदन मद कदन बदन छवि दोनों जासु समान।
घटत बढ़त दिन प्रति तारापति सोच यही पियरान॥
सकल सुकृत फल कोटि जन्म को देहिं जो गौरि दयान।
सो 'रघुराज' राज ढोटा दोउ करहिं नैन फल दान॥

* नख शिख देखि राम की शोभा। सुमिरि पिताप्रण मन अति छोभा॥

सवैया—पितु के प्रण की सुधि कै पुनि सो पछिताति मनै नहिं धीर धरै।
हरको धनु है अति ही कठिनै महिपालन को नहिं टारे टरै॥
"रघुराज" महा सुकुमार कुमार कहो किमि तोरि है मंजु करै।
विधि कैसी करी इनहीं के गरे मम हाथन सों जयमाल परै॥

अर्थ—हृदय पर रत्नों की माला धारण किये हुए थे, उनकी गर्दन शंख की भाँई शोभायमान थी (अर्थात् ऊँची पुष्ट और तीन रेखाओं सहित) उनकी भुजायें बड़ी बलिष्ट कामरूपी हाथी के बच्चे की सूँड़ के समान थीं। बायें हाथ फूलों से भरे हुए दोना लिये थे। हे सखी! उनमें से श्यामले रंग वाले बहुत सुन्दर स्वरूपवान् हैं॥

'रघुराज' सोई निज भक्त अधीन, विदेह की वाटिका में विहरैं।
मुनि कौशिक शासन मानि सुखी, कर फूलन तोरिकै दोन भरैं॥

और भी राग विनोद से—(राग सारंग में)

हौं लखि आई आजु बाग बिच कुँवर सलोने री॥
कोटि रूप शृङ्गार के, घन दामिनि रति मार।
रवि शशि लज्जित होत सब, लखि लखि शोभ अपार॥
राज हंसन के छौने री॥
निरखत ही मोहत चितै, छवि सागर सुख देन।
किमि बरनों दृग बिन गिरा, बिन बानी तिमि नैन॥
मनो पढ़ि डारत टोने री॥
नीरद पीत सोहत बसन, कटि निषंग कर बान।
कंध शरासन मुकुट शिर, कुंडल छवि श्रुति थान॥
भाल दिये बिन्दु डिठौने री॥
लसत भौंर ते कढ़त यों, दीपति दिपति अमन्द।
सघन पटल घन फारि मनु, कढ़ि आये युगचन्द॥
लिये कर फूलन दोने री॥
ऐसे नहिं देखे सुने, रूप [illegible]
मृदुता मृदुता नहीं, [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अर्थ—(वचनों को सुन) लज्जित हो जब सीताजी ने नेत्र खोले तो उन्हों ने अपने साम्हने दोनों रघुकुल वीरों को देखा। पैर से शिर तक रामचन्द्र जी की शोभा देखी परन्तु पिता जी के प्रण का विचार करते ही चित्त में बड़ा खेद हुआ॥

चौ०—परवश सखिन लखी जब सीता। भयउ गहरु सब कहहिं सभीता॥
‡पुनि आउब इहि बिरियाँ काली। अस कहि मन बिहँसी इक आली॥

अर्थ—जब सखियों ने देखा कि सीता जी तो दूसरे के आधीन हो रही हैं (अर्थात् रामचन्द्र जी के प्रेम में पग गई हैं) तब तो सब की सब डर के मारे कह उठीं कि देरी हो गई है। (इतने ही में) एक सखी यह कहकर कि 'पुनि आउब इहि बिरियाँ काली' मन ही मन मुसकराने लगी॥

सूचना—'पुनि आउब इहि बिरियाँ काली' इन शब्दों के विषय में गोस्वामी जी आगे लिखते हैं कि 'गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी' इस से स्पष्ट है कि इस में बहुत गूढ़ भाव भरा हुआ है सो यों कि—

(१) 'इसी समय कल फिर आवेंगी' अर्थात् आज विशेष प्रेम के कारण बहुत देरी हो चुकी है सो जल्दी घर चलो कल फिर आवेंगी।

(२) आज तुमने पूजा के हेतु यहां आकर इतनी देरी लगाई है सो 'कल फिर इसी समय आ सकोगी' क्या? अर्थात् माता जी कल न आने देवेंगी।

(३) राज कुमारों को यहां एकान्त में देखलेने का सुअवसर आज ही मिला है 'कल फिर क्या ऐसा समय आवेगा' अर्थात् नहीं आवेगा, कारण धनुषयज्ञ हो चुकेगा।

(४) सखी यह दर्शाती है कि अब चलो घर चलें कल यही समय फिर आवेगा अर्थात् कल इसी समय धनुषयज्ञ होगा। वहां सब राजाओं के साथ ये राजपुत्र भी आवेंगे तब उन्हें फिर देख लेना।

चौ०—गूढ़गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयउ बिलंब मातु भयमानी॥
धरि बड़ि धीर रामउर आनी। फिरी अपनपौ पितुबश जानी॥

‡ पुनि आउब इहि बिरियाँ काली—

सवैया—है गे बिलम्ब तु बैठी रहै अब अंब गये बिन कोप करैगी।
पूजन बाकि रहै जगदंब को संब भये रबि बेला टरैगी॥
श्री रघुराज निहारि रहें मन को उपजो नहिं फेरि फिरैगी।
आउब काल्हि यही बिरियाँ इत गौरि कृपा सब पूरी परैगी॥

छं०—नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव वेद नहिं जाना॥
भव भव विभव पराभव कारिणि। विश्व विमोहनि स्ववश विहारिणि॥

अर्थ—हे गणेश जी और स्वामिकार्तिक की माता, हे संसार के उत्पन्न करने वाली, बिजली के समान प्रकाशित शरीर वाली तुम्हारी जय हो! न तो तुम्हारा आदि है, न मध्य है और न अंत है तुम्हारी अपरम्पार महिमा को वेद भी नहीं जानते। संसार की उत्पत्ति, पालन और नाश करने वाली तुम्हीं तो हो तथा संसार को मोहित करने वाली और अपनी इच्छा से विहार करने वाली भी हो॥

दो०—पतिदेवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न कहि सकहिं, सहस शारदा शेष॥ २३५॥

अर्थ—हे माता! जितनी उत्तम पतिव्रता स्त्रियां हैं उनमें आप की गणना पहिले है। आपकी अमित बड़ाई को सहस्रों शारदा और शेष नाग जी भी नहीं कर सकते॥

चौ०—+सेवत तोहि सुलभ फल चारी। वरदायिनि त्रिपुरारि पियारी॥
देवि पूजि पदकमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे॥

अर्थ—हे वर देने वाली, शिवप्रिये! तुम्हारी सेवा करने से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों फल सुगम हो जाते हैं। हे देवी! तुम्हारे कमलस्वरूपी चरणों को पूजने से देवता, मनुष्य और मुनिगण सब सुखी होते हैं॥

चौ०—*मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उरपुर सब ही के॥

इनके प्रथम पूज्यपद पाने की कथा इसी कांड में 'महिमा जासु जान गणराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ' की टिप्पणी में है।

+ सेवत तोहि सुलभ फल चारी। वरदायिनि त्रिपुरारि पियारी॥

कवित्त—तुही वेद बानी रमा रूप गुणखानी तुही तुही निरबानी पंचभूत में समानी है।
तुही योगध्यानी परमातमा भवानी तुही तुही किरपानी त्रास हाथन पिछानी है॥
'बदी कवि' तुही सूर्य चंद्र में प्रकाशमानी तुही ठकुरानी सब विश्व में बखानी है।
जीव हितमानी देव कला प्रगटानी तुही मोहि वरदानी एक तुही हितमानी है॥

* मोर मनोरथ जानहु नीके .... * बस बहि चाल गई ये देहो—

सवैया—हे गिरिराजसुता शिव आनन चन्द्र चकोर समान रहो।
आदि न मध्य न अन्त कहे चिरकाल से शम्भु के संग रहो॥
तुम आरति हो सबके हिय की 'हरदेव' मनोरथ जानति हो।
यह जो कहि कारण है यहि कारण कारण जानि कहे किरहो॥

और भी पंडरिया रामायण से—

दूसरा अर्थ—सीताजी ने शिवजी के कठोर धनुष को विभूत अर्थात् हुआ ही समझ लिया इस हेतु रामचंद्र जी की श्यामली मूर्ति को हृदय में धारण कर लीं ॥

चौ०—प्रभु जब जात जानकी जानी। ×सुख सनेह शोभा गुणखानी॥
परम प्रेम मय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीतर लिखि लीन्ही॥

अर्थ—रामचन्द्र जी ने सुख, प्रेम, सुन्दरता और गुणों से भरी पूरी जानकी को जाते हुए देखा। तब तो उन्हों ने अपने पूर्ण प्रेम की मानो उत्तम स्याही से अपने चित्त के भीतर उनका चित्र खींच लिया (भाव यह कि अधिक प्रेम से उनको अपने हृदय में धारण किया)॥

चौ०—गई भवानी भवन बहोरी। वंदि चरण बोली कर जोरी॥
जय जय जय गिरिराजकिशोरी। जय महेशमुखचंद चकोरी॥

अर्थ—फिर से गौरी जी के मंदिर में गई और उनके चरणों की वंदना कर हाथ जोड़ कर कहने लगी। हे श्रेष्ठ गिरिराज नंदिनी! तुम्हारी जय हो, जय हो! हे शिवजी के चंद्ररूपी मुख को चकोरी के समान निहारने वाली, तुम्हारी जय हो॥

चौ०—जय †गजवदन षड़ानन माता। जगत जननि दामिनि द्युतिगाता॥

× सुख सनेह शोभा गुणखानी—चारों विशेषणों की विशेषता कवि जी पहिले ही पृथक् २ वर्णन कर आये हैं यथा—

(१) सुख की खानि—देखि सीय शोभा सुख पावा। हृदय सराहत वचन न आवा॥
(२) सनेह की खानि—अधिक सनेह देह भइ भोरी। शरद शशिहि जनु चितव चकोरी॥
(३) शोभा की खानि—सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छवि गृह दीप सिखा जनु बरई॥
(४) गुण की खानि—देखन मिसु मृग विहँग तरु, फिरै बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुवीर छवि, बाढ़ै प्रीति न थोरि॥

† गजवदन—मत्स्यपुराण में कथा है कि एक बार पार्वतीजी ने अपने शरीर को उबटन लगाया। शरीर से अलग किये हुए उबटन का इन्हों ने एक पुतला बनाया और खिलवाड़ की रीति से उसे हाथी की नाईं सूंड़ बनादी। फिर वह खेल समझकर उन्हों ने उस पुतले को पानी में डाल दिया। उसी समय उस पुतले से एक पुरुष निकला। उसे पार्वती जी ने पुत्र कहके पास बुलाया। जब वह समीप आया तो विनायक नाम से उसे सब रुद्रगणों का अधिकारी बना दिया। इसी से इनका नाम गणपति भी हुआ और हाथी की सूंड़ सरीखा मुँह होने के कारण ये गजानन गजवदन आदि नाम से प्रसिद्ध हुए। पार्वती जी ने इन्हें अपना पुत्र कहा, इस हेतु ये शिवपुत्र, शिवलाल आदि नाम से भी प्रसिद्ध हैं। गणेश आदि पुराणों में यही कथा कुछ अदल बदल कर लिखी है॥ (इनके)

अर्थ—सीता जी की विनती पर पार्वती जी को इतना प्रेम उमँगा कि उनके शरीर से एक माला खसक पड़ी और वे मुसकराने लगीं (प्रसन्नता से प्रसाद-रूप माला गिरा दी और सीताजी की पति के हेत दबी हुई प्रार्थना सुनकर मुसकराईं) सीता जी ने आदरपूर्वक उस माला को अपने सीस पर धारण किया तब तो गौरी जी का हृदय प्रसन्नता से इतना भर गया कि वे इस प्रकार बोलने लगीं—

चौ०—सुनु सिय सत्य असीस हमारी । पूजिहि मनकामना तुम्हारी ॥
†नारदवचन सदा शुचि साँचा । सो वर मिलिहि जाहि मन राँचा ॥

अर्थ—हे सीता जी ! हमारी सच्ची असीस को सुनो 'तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी' नारद का कहना सदैव शुद्ध और सच्चा होता है । तुम्हें वही वर मिलेगा जो तुम्हारे चित्त में चढ़ा है । (भाव यह कि नारद ही के कहने से मैंने शिवजी के चरणों में विश्वास कर उन्हें पतिरूप से पा लिया, उसी तरह नारद के वचनों को मान कर तुमने भी श्री रामचन्द्र जी को जो अपने हृदय में धारण किया है सो वे ही तुम्हें ब्याहेंगे) ॥

छन्द—मन जाहि राचेउ मिलिहि सो वर सहज सुंदर साँवरो ।
करुणानिधान सुजान शीलसनेह जानत रावरो ॥
इहि भाँति गौरि असीस सुनि सियसहित हिय हर्षित अली ।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदितमन मंदिर चली ॥

अर्थ—'स्वभाव ही से सुन्दर श्यामलशरीरवाला पति जिस पर तुम्हारा मन मोहित है वही मिलेगा, क्योंकि दया सागर, ज्ञानवान रामचन्द्र जी तुम्हारा शील और प्रेम जानते हैं' । इस प्रकार पार्वती जी के आशीर्वाद को सुन कर सीता जी सखियों सहित हृदय में प्रसन्न हुईं । तुलसीदास जी कहते हैं कि वे पार्वती जी का पूजन कर बारम्बार मन में प्रसन्न होती हुईं पिता के भवन चली आईं ॥

सो०—जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हर्ष न जात कहि ।
मंजुलमंगलमूल, बाम अंग फरकन लगे ॥ २३६ ॥

---

† नारदवचन सदा शुचि साँचा । सो वर मिलिहि जाहि मन राँचा ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

कीन्हेउ प्रकट न कारण तेही। अस कहि चरण गहे वै

अर्थ—मेरी इच्छा को तुम भली भांति जानती हो कारण तुम तो स
हृदयस्थल में रहती हो। इसी हेतु मैंने (अपना मनोरथ) स्पष्ट नहीं कहा
कर सीताजी ने उनके चरण पकड़े॥

चौ०—†विनय प्रेमवश भई भवानी। खसी माल मूरति मुसका
सादर सियप्रसाद शिर धरेऊ। बोली गौरि हर्ष उर भ

कुंडलिया—पूजि विविध विधि पाँय परि विनती सीय सुनाय।
आदि अन्त त्रैलोक तू स्ववश विहारिणि माय॥
स्ववश विहारिणि माय मनोरथ जानत ही के।
प्रकट प्रभाव प्रताप (अगम वरदान) शची के॥
शची शारदा हरि तिया सेय सेय सब सुख भरि।
जयजयजय गिरिपतिसुता विविधि विनय सिय पाँय परि॥

† विनय प्रेम वशभई भवानी। खसी माल मुरति मुसकानी॥

इस कथन में 'खसीमाल' और 'मूरति मुसकानी' ये दोनों वाक्य आरंभ के वाक्य
संबंध रखते हैं और दोनों का कारण भी उसी में सुझाया गया है सो यों कि—

(१) सीताजी की विनय भरी स्तुति से पार्वती जी की मूर्त्ति ऐसी प्रेमवश भई
उस पर से एक माल खसक पड़ी जिसे प्रसाद रूप मानकर सीताजी ने उठा लिया क्यों
मूर्त्ति से माला किम्वा पुष्प का गिरना शुभ तथा कार्य सिद्धकारी समझा जाता है।

(२) मूरति मुसकानी—मूर्त्ति के हँसने का कारण भी सीताजी की विनय ही
क्योंकि पार्वती जी ने इस बात का विचार किया कि इन्होंने मेरी इतनी मर्य्यादा और प्रतिष्ठा रख
कि 'रामजी मुझे वर मिलें' ऐसा स्पष्ट रूप से कथन न किया और 'मनुज चरित की चेष्टा
दर्शाती हुई मुझे ही आदि शक्ति मान स्तुति कर रही हैं परन्तु यथार्थ में आप स्वतः आदि शक्ति
आदि अंत और मध्य रहित हैं (पृ० ७ उद्भव स्थिति संहार आदि का अर्थ और टि० देखो)।

दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि—सीताजी अधूरी पूजा छोड़ करके रामजी के
दर्शनों को चली गईं और फिर उन्हें अपने हृदय में धारण कर वरदान पाने की इच्छा से
पूजा के अनंतर प्रार्थना वन्दना करने को आईं और कह रही हैं कि मेरे मन की प्रीति आप
से छिपी नहीं है तौभी अपने श्रीमुख से मुझे वरदान दे दीजिये—सारांश यह है कि
पूजा अधूरी छोड़ी और रामचन्द्रजी को पति स्वीकार कर लिया और अब हम से वर मांग
रही हैं इन बातों का विचार कर मूरति मुसकानी। मूर्ति का मुसकराना भी इस अवसर में
शुभ नहीं समझा जा सकता है अर्थात् मूर्ति स्वतः बात चीत करने की शक्ति रखती हो,
या कि उनके आशीर्वाद से बढ़कर है। साधारण पाषाण मूर्ति का इस समय पर हँसना अशुभ
समझा जाता है।

चौ०–प्राचीदिसि शशि उयेउ सुहावा। सियमुखसरिस देखि सुख पावा॥
बहुरि विचार कीन्ह मन माहीं। +सीयबदन सम हिमकर नाहीं॥

अर्थ—पूर्व दिशा में सुन्दर चन्द्रमा का उदय हुआ उसे सीता के मुख के समान देख कर सुखी हुए। (इस कथन से अनुमान हो सक्ता है कि उस दिन पूर्णमासी थी) फिर मन में जो विचार किया तो सीता के मुखके समान चन्द्रमा न जँच पड़ा॥

दो०–†जन्म सिंधु पुनि बंधु विष, दिन मलीन सकलंक।
‡सियमुख समता पाव किमि, चंद बापुरो रंक॥ २३७॥

अर्थ—(सो यों कि) उसका उत्पत्ति स्थान (खारा) समुद्र, भाई विष है और द दिन में तेजहीन तथा कलंक सहित है, (इसहेतु) बेचारा (शोभा का) दरिद्री न्द्रमा सीता के मुख की बराबरी कैसे कर सक्ता है॥

+सीयबदन सम हिमकर नाहीं—हनुमन्नाटक में लिखा है कि ब्रह्मा ने तराजू के पलड़ों में एक ओर सीताजी का मुख और एक ओर चंद्रमा को रखकर मिलान किया तो चंद्रमा वाला पलड़ा ऊपर ही रहा आया अर्थात् चंद्रमा बहुत ही कम प्रतीत हुआ यथा—

छप्पय—छीर सिंधु अरु पुहुमि युगल जेहि पलुवा कीन्हें।
औषधीश अरु बदन साथ तिन में रखि दीन्हें॥
अनिल दण्ड करि तुला विधाता तिनको तोलत।
यहै भूमिको भूमि यहै गगनांगन डोलत॥
तब तौल बराबर होन हित तारागण तितमें रखत।
तउ रह्यो ऊर्ध्व को ऊर्ध्व यह गुरुताई मुखमें लखत॥

† जन्म सिंधु पुनि बंधु विष—
सवैया—चन्द नहीं विष कन्द है "केशव" राहु यहै गुन लीलि न लीन्हों।
कुम्भज पावन जानि अपावन धोखे पियो पचि जान न दीन्हों॥
याको सुधाधर शेष विषाधर नाम धरो विधि है बुधि हीनो।
शूद्र सो भाइ कहा कहिये यह पाप लै आप बराबर कीन्हों॥

‡ सिय मुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रंक—
कवित्त—कुन्ती पांचाली दमयन्ती तारा शकुन्तला का अहल्या हू मन्दोदरि हू पहिले सुधारे हैं।
मेनका घृताची रंभा मंजुघोषा उरबशी तिलोत्तमा को तिलहूते हलुकी निहारे हैं॥
'विदुष सुकवि' भने गिरा रमा उमा राधा मोहिनी हू रचि फिर मनमें बिचारे हैं।
सिया को बनाय विधि धोये हाथ जामें रंग ताको भयो चन्द्र दर भर भये तारे हैं॥

अर्थ—गौरी जी को प्रसन्न जानकर सीता जी के हृदय का आनन्द कहा जाता था, उन के कोमल आनन्दकारी वायें अङ्ग (नेत्र भुजा आदि) फरकने (स्त्रियों के वायें अङ्गों का फरकना शुभ समझा जाता है) ॥

चौ०—हृदय सराहत सीय लुनाई। गुरुसमीप गवने दोउ भाई॥
*रामकहा सब कौशिकपाहीं। सरल सुभाव छुआ छल नाहीं॥

अर्थ—(रामचन्द्र जी) अपने मन में सीता की शोभा की बड़ाई करते हुए ल[illegible] सहित विश्वामित्र जी के पास गये। रामचन्द्र जी ने सब हाल विश्वामित्र जी से [illegible] क्योंकि उनका स्वभाव सीधा था और छल का लेश भी उन में न था॥

चौ०—सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि असीस दुहुँ भाइन्ह दीन्ही॥
×सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे। राम लषन सुनि भये सुखा[illegible]

अर्थ—फूलों को लेकर मुनि जी ने पूजा की और फिर दोनों भाइयों [illegible] आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी मनकामना पूरी होवे, यह सुनकर रामचन्द्र जी [illegible] लक्ष्मण सुखी हुए॥

चौ०—करि भोजन मुनिवर विज्ञानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी॥
विगत दिवस गुरु आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई॥

अर्थ—श्रेष्ठ ज्ञानवान मुनि जी भोजन करके कुछ पुरानी कथा कहने लगे। ज[illegible] दिन डूब गया तो गुरु जी की आज्ञा पाकर दोनों भाई संध्या वंदन करने चले॥

---

* राम कहा सब कौशिक पाहीं—

सवैया—मैं प्रभु आयसु को धरि शीस गयो जबहीं हित के फुलवारी।
तोरत फूल तहाँ या दशा भइ ऐसी न जाति है देह सँभारी॥
का कहिये प्रभु सों "ललिते" यह जैसी भई नइ रीति हमारी।
नेह भरो ठगि या मैं गयो बगिया में लखी मिथिलेश कुमारी॥

× सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे। राम लषन सुनि भये सुखारे—राम रसायन रामायण।

छन्द—इन भांत दोउ [illegible] गुरुपद पूजि अति आनंद भरे।
गुरु [illegible] के [illegible] सुनाय मुनि तें [illegible] कहे॥
[illegible] दृग प्रकाश कौशिक पुनि दुन आशिष दये।
निर्विघ्न मन [illegible] पूरें राम पुनि प्रमुदित भये॥

अर्थ—तू घटता बढ़ता है और वियोगियों को दुःख देने वाला है, तुझे अवसर पाकर राहु ग्रहण लगाता है। तू चकई चकवाओं को दुःखदाई तथा कमलों का वैरी है, रे चन्द्र! तुझ में बहुत से दुर्गुण हैं॥

चौ०—‡ वैदेहीमुखपटतर दीन्हे। होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे॥
सियमुखछविविधुव्याजबखानी। गुरु पहँ चले निशा बड़ि जानी॥

अर्थ—सीता के मुख से मिलान करने में अयोग्य बात करने का बड़ा दोष होता है। इस प्रकार चन्द्रमा के बहाने से सीता जी के मुख की शोभा का वर्णन किया और रात्रि अधिक हुई ऐसा समझ गुरुजी के पास चले॥

चौ०—करि मुनि चरण सरोज प्रणामा। आयसु पाइ कीन्ह विश्रामा॥
विगत निशा रघुनायक जागे। बंधु विलोकि कहन अस लागे॥

अर्थ—मुनि जी के कमलस्वरूपी चरणों को प्रणाम किया और फिर उनकी आज्ञा ले विश्राम किया। रात बीत जाने पर श्री रामचन्द्र जी जागे और लक्ष्मण को देखकर ऐसा कहने लगे॥

चौ०—उयेउ अरुण अवलोकहु ताता। पंकजकोकलोकसुखदाता॥
बोले लषन जोरि युग पानी। प्रभुप्रभावसूचक मृदुबानी॥

अर्थ—हे भाई! देखो तो अरुण उदय हुआ जो कमल, चकवा और संसार को सुख देने वाला है। लक्ष्मण जी दोनों हाथ जोड़कर रामचन्द्र जी के प्रताप को प्रकट करने वाली मधुर वाणी बोले॥

दो०—अरुणउदय सकुचे कुमुद, उडुगनज्योति मलीन।
तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बलहीन॥ २३८॥

सवैया—रे विधु कोकन शोक प्रदायक तू जग जाहिर पंकज द्रोही।
काम की मीत करै अति शीत कियो गुरु को अपकार है कोही॥
भाषत "श्री रघुराज" सुनै सिय के मुख की सरि तोहि न सोही।
सीक न लागत मोहि मयंक बड़ो विरही जन को निरमोही॥

‡ वैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे॥

सवैया—जन्म समुद्र ते एक महागुण रङ्क धरे ज्यहि सों यदि भाई।
"हरि" भ्रातहु पंकज दाहत ताहु मनै निज सखि सभाई॥
दीप मलीन रहै दिन में निज दीन दुखीन बड़ो दुखदाई।
रंक मयंक घटा घटत्यहु सिय मुख की समता किमि पाई॥

अर्थ—जहां पर नगर की कुलीन स्त्रियां अपनी अपनी योग्यता के बैठ कर देखेंगी। नगर के बालक मीठे वचन बोल कर आदर पूर्वक रामचन्द्र रंग भूमि की रचना दिखा रहे थे॥

दो०—† सब शिशु यहि मिस प्रेमवश, परसि मनोहर गात।
तनु पुलकहिं अति हरष हिय, देखि देखि दोउ भ्रात

अर्थ—सब बालक इसी बहाने से प्रेमवश हो उनके शरीर को दोनों भाइयों को देख देख कर बड़ी प्रसन्नता के कारण रोमांचित हो जा

चौ०—‡ शिशु सब राम प्रेमवश जाने। प्रीति समेत निके
निज निज रुचि सब लेहिं बुलाई। सहित सनेह जाहिं

अर्थ—रामचन्द्र जी ने सब बालकों को प्रेम के आधीन जान लि ने उनके घरों की बड़ाई की। सब बालक अपनी अपनी इच्छानुसार लिवा ले जाते थे तो दोनों भाई प्रेमपूर्वक जाते थे॥

चौ०—राम दिखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर
× लवनिमेष महँ भुवन निकाया। रचइ जासु
भक्त हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित

† सब शिशु यहि मिस प्रेमवश, परसि मनोहर गात—
कवित्त—अंग अंग परसैं सुढंग रंग रंग रचैं सहित उमंग संग
कोऊ इतरावैं अनखावैं औरिसावैं कोऊ कोऊ बतरावैं
रसिक विहारी नेहवश रघुलाल तिनै करत निहाल
कोऊ देत गारी कोऊ देत करतारी कोउ करैं

‡ शिशु सब राम प्रेमवश जाने। प्रीति समेत निकेत
क०-कोऊ जे प्रवीन प्रौढ़ सरस सनेही शुद्ध निरखि
तिनकी सुप्रीति श्याम सुंदर विलोकि साँची
कहि रस बैन चैन दीन्हों है कमल नयन लाय
सुख सरसाने मनमाने पहिचाने जाने सत्य
× लवनिमेष महँ भुवन निकाया। रचै जासु
गज़ल—तुम्हें धनवाद ऐ ईश्वर तेरे
तेरे बे अंत सागर में

दो०—+तव भुजबल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु विघटन परिपाटी॥

शब्दार्थ—तव = तुम्हारी। उदघाटी = (१) उदयाचल की घाटी, (२) प्रकट करने वाली। विघटन = नाश होना। परिपाटी = परम्परा की रीति॥

अर्थ—आप की भुजा उदयाचल की घाटी है उस पर धनुष "तोड़ने" की परम्परा की रीति आप के बल के प्रताप को प्रकट करेगी (अर्थात् जिस प्रकार उदयाचल पर सूर्यदेव उदय होकर अंधकार नाश करने की, सनातन रीति से अपने प्रताप को प्रकट करते हैं उसी प्रकार आप के बाहुरूपी उदयाचल पर आप के बल की महिमा धनुष भंग करने की प्रत्येक रामअवतार की सनातन रीति को प्रकट करेगी। भाव यह कि धनुष को तोड़ कर आप अपने पराक्रम को प्रकट करेंगे)॥

दूसरा अर्थ—तुम्हारी भुजाओं के बल की बड़ाई प्रकट करने को मानो यह धनुष तोड़ने की परम्परा की रीति प्रकट होगी (अर्थात् जब आज आप धनुष तोड़ेंगे तब आप की सूर्य के समान सनातन रीति अंधकाररूपी धनुष को नाश कर नक्षत्ररूपी राजाओं के तेज को मलीन कर कमल, चक्रवाक, आदिरूपी अपने भक्तों को सुखी करेगी)॥

तीसरा अर्थ—आपके बाहु बल की कीर्त्ति के उदय की घाटी यह धनुष-रूप से प्रकट हुई है और न घटना ही इसकी परम्परा की रीति है (अर्थात् धनुष तोड़ कर आप की कीर्त्ति जो फैलेगी सो कभी घटने की नहीं बढ़ती ही जावेगी)॥

चौथा अर्थ—रावण, बाणासुर आदि बड़े २ राजाओं की कीर्त्ति को विघटन अर्थात् विशेष करके घटा देना यह जिसकी सनातन रीति है। वही धनुष आप के भुज बल प्रताप को उदय कराने के हेतु ही मानो प्रकट हुआ है (अर्थात् यह धनुष दूसरे राजाओं का प्रताप भंजन कर आप की महिमा प्रसिद्ध करने के हेतु ही मानो प्रकट हुआ है)॥

चौ०—बंधु वचन सुनि प्रभु मुसुकाने। होइ शुचि सहज पुनीत नहाने॥
नित्यक्रिया करि गुरु पहँआये। चरणसरोज सुभग शिर नाये॥

अर्थ—लक्ष्मण के वचन सुनकर श्री रामचन्द्र जी मुसकराने लगे और जो स्वभाव ही से पवित्र हैं उन्होंने शौच आदिक कर्म करके स्नान किया। नित्य कर्म

+ तव भुजबल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु विघटन परिपाटी—
सवैया—राउर के भुज विक्रम की महिमा महि मा उदयाचल घाटी।
ता ते सदा प्रगटै कवि "बन्दि" अमन्द प्रताप दिवाकर बाटी॥
नाश करै अनयारहि को शिरचाप तमै छन में द्युति डाटी।
आजत पाउ समाज सबै उडु यही सनातन की परिपाटी॥

ौ०—रंगभूमि आये दोउ भाई। अस सुधि सब पुरबासिन पाई॥
†चले सकल गृहकाज बिसारी। बालक जुवा जरठ नर नारी॥

अर्थ—यज्ञशाला में दोनों भाई आये, जब ये समाचार नगर निवासियों ने
ये। तो बालक जवान बुड्ढे स्त्री पुरुष अपने २ घर का काम छोड़ उठ धाये॥

ौ०—देखी जनक भीर भइ भारी। शुचि सेवक सब लिये हँकारी॥
तुरत सकल लोगन्ह पहँ जाहू। आसन उचित देहु सब काहू॥

अर्थ—जब जनक जी ने देखा कि बहुत से लोग आपहुँचे तब उन्हों ने सब
तुर सेवकों को बुलाया (और कहा)। जल्दी से सब लोगों के पास जाओ और
ब को यथा योग्य स्थान पर बिठाओ॥

दो०—कहि मृदुबचन बिनीत तिन, बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि॥२४०॥

अर्थ—उन लोगों ने विनय से भरे हुए कोमल वचन कह कह कर उत्तम,
ध्यम, नीच और सब से छोटी जाति के स्त्री पुरुषों को यथा योग्य स्थानों पर
बैठाया॥

चौ०—राजकुअँर तेहि अवसर आये। मनहुँ मनोहरता तन छाये॥
×गुणसागर नागर बरबीरा। सुंदर स्यामल गौर शरीरा॥

अर्थ—उसी समय दोनों राजकिशोर आ पहुँचे, मानो उनके शरीर पर शोभा
छा रही हो। सुन्दर श्यामले और गोरे रंग वाले (दोनों) वीर, गुणों से भरे हुए
बड़े चतुर थे॥

---

† चले सकल गृहकाज बिसारी—

दोहा—दौरे को न बिलोकिये, रसिकरूप अभिराम।
सब सुखदायक साँवरो, छबि के धाम श्याम॥

× गुणसागर नागर बरबीर—

कवित्त—सुन्दर बदन में सुन्दर सुनैयन, देखन में मदन की छबि के कदन हो।
[illegible] नीति में अनीति के करालकाल दान सनमान बेद साधन अनेक हो॥
[illegible] उपज अपार [illegible] गुन, [illegible] उदारन [illegible] बरनन हो।
[illegible] गुणसागर राम [illegible] गुन रत्नाकर के [illegible] रतन हो॥

(संध्या आदि) करके गुरु जी के पास गये और उन के कमलस्वरूपी सु चरणों को प्रणाम किया ॥

चौ०-सतानंद तब जनक बुलाये। कौशिक मुनि पहँ तुरत पठाये
+जनकविनयतिनआनिसुनाई। हर्षे बोलि लिये दोउ भाई

अर्थ—वहां जनक जी ने (अपने पुरोहित) सतानंद जी को बुला भेजा [illegible] तुरंत ही उन्हें विश्वामित्र जी के पास जाने को कहा। उन्हों ने आकर जनक जी विनती विश्वामित्र जी से कही (कि धनुष यज्ञ के हेतु आप कृपा कर पधारें) विश्वा[illegible] जी ने प्रसन्न हो दोनों भाइयों को (अपने पास) बुला लिया ॥

दो०-सतानंद पदबंदि प्रभु, बैठे गुरु पहँ जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठएउ जनक बुलाइ॥ २३६

अर्थ—रामचन्द्र जी सतानंद जी के चरणों की वंदना कर अपने गुरु जी पास जा बैठे, तब ही विश्वामित्र जी ने कहा हे प्यारे! जनक जी ने हम लोगों बुलावा भेजा है सो चलो चलें ॥

चौ०-सीयस्वयम्बर देखिय जाई। ईश काहि धौं देइ बड़ाई।
लषन कहा यशभाजन सोई। नाथ कृपा तव जापर होई।

अर्थ—चलकर सीतास्वयम्बर देखना चाहिये देखें शंकर जी किसे बड़ाई [illegible] है। लक्ष्मण जी कहने लगे कि हे गुरु जी! यश का पात्र तो वही होगा जिस पर आप की कृपा होगी ॥

चौ०-हर्षे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्ह असीस सबहिं सुखमानी॥
पुनि मुनि वृंद समेत कृपाला। देखन चले धनुषमखशाला॥

अर्थ—[illegible] वचनों को सुन कर सब मुनिगण प्रसन्न हुए और [illegible] सुख मान, कर आशीर्वाद दिया। फिर मुनिगणों समेत [illegible] [illegible]

चौ०—रंगभूमि आये दोउ भाई। अस सुधि सब पुरबासिन पाई॥
†चले सकल गृहकाज बिसारी। बालक जुवा जरठ नर नारी॥

अर्थ—यज्ञशाला में दोनों भाई आये, जब ये समाचार नगर निवासियों ने पाये। तो बालक जवान बुड्ढे स्त्री पुरुष अपने २ घर का काम छोड़ उठ धाये॥

चौ०—देखी जनक भीर भइ भारी। शुचि सेवक सब लिये हँकारी॥
तुरत सकल लोगन्ह पहँ जाहू। आसन उचित देहु सब काहू॥

अर्थ—जब जनक जी ने देखा कि बहुत से लोग आपहुँचे तब उन्हों ने सब चतुर सेवकों को बुलाया (और कहा)। जल्दी से सब लोगों के पास जाओ और सब को यथा योग्य स्थान पर बिठाओ॥

दो०—कहि मृदुबचन बिनीत तिन, बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि॥२४०॥

अर्थ—उन लोगों ने विनय से भरे हुए कोमल वचन कह कह कर उत्तम, मध्यम, नीच और सब से छोटी जाति के स्त्री पुरुषों को यथा योग्य स्थानों पर बिठाया॥

चौ०—राजकुअँर तेहि अवसर आये। मनहुँ मनोहरता तन छाये॥
×गुणसागर नागर बरबीरा। सुंदर श्यामल गौर शरीरा॥

अर्थ—उसी समय दोनों राजकिशोर आ पहुँचे, मानो उनके शरीर पर शोभा छा रही हो। सुन्दर श्यामले और गोरे रंग वाले (दोनों) वीर, गुणों से भरे हुए बड़े चतुर थे॥

---

† चले सकल गृहकाज बिसारी—

दोहा—दौरे को न बिलोकिये, रसिकरूप अभिराम।
सब सुखदायक साँवरे, छबिधर लायक श्याम॥

× गुणसागर नागर बरबीर—

कवित्त—मन्दर महीपन में सुन्दर सुमेरुपर, देवन में प्रबलरूप राशि के मदन हो।
राजहंस नीति में अनीति के कराल काल दान सनमान येहि राजत अदन हो॥
अंग अंग सुगल जलोंसे फरकीले भुज, बारन उघारन बिरद बदन हो।
कलश प्रभाकर सुयश धाम रामचन्द्र गुण रत्नाकर के चौदहो रतन हो॥

आदि) करके गुरु जी के पास गये और उन के कमलस्वरूपी सुन्द को प्रणाम किया ॥

*सतानंद तब जनक बुलाये । कौशिक मुनि पहँ तुरत पठाये ॥
+जनकविनयतिनआनिसुनाई। हर्षे बोलि लिये दोउ भाई ॥

र्थ—वहां जनक जी ने (अपने पुरोहित) सतानंद जी को बुला भेजा और उन्हें विश्वामित्र जी के पास जाने को कहा । उन्हों ने आकर जनक जी की श्वामित्र जी से कही (कि धनुप यज्ञ के हेतु आप कृपा कर पधारें) विश्वामित्र न्न हो दोनों भाइयों को (अपने पास) बुला लिया ॥

—सतानंद पदवंदि प्रभु, बैठे गुरु पहँ जाइ ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठएउ जनक बुलाइ ॥ २३६ ॥

—रामचन्द्र जी सतानंद जी के चरणों की वंदना कर अपने गुरु जी के ठे, तब ही विश्वामित्र जी ने कहा हे प्यारे ! जनक जी ने हम लोगों को ना है सो चलो चलें ॥

ीयस्वयम्वर देखिय जाई । ईश काहि धौं देइ बड़ाई ॥
पन कहा यशभाजन सोई । नाथ कृपा तव जापर होई ॥

—चलकर सीतास्वयम्वर देखना चाहिये देखें शंकर जी किसे बड़ाई देते जी कहने लगे कि हे गुरु जी ! यश का पात्र तो वही होगा जिस पर आप गी ॥

मुनि सब सुनि बर बानी । दीन्ह असीस सबहिं सुखमानी ॥
नि मुनि वृंद समेत कृपाला । देखन चले धनुपमखशाला ॥

—ऐसे योग्य वचनों को सुन कर सब मुनिगण प्रसन्न हुए और सब ने फर आशीर्वाद दिया । फिर मुनिगणों समेत श्री रामचन्द्र जी धनुप यज्ञ देखने को चले ॥

ानन्द—ये ऋषि गौतम ऋषि जी के पुत्र अहल्या के गर्भ से उत्पन्न हुए थे और यहां उपरोहिती करते थे ॥

विनय तिन आनि सुनाई—

औरह रंग रंगी रंग भूमि है, कौन गनै नृप को गन आयो ।
[illegible] सनाथ सों राखि रहे सब, भोर सदा दिप को [illegible] ॥
[illegible] [illegible] मध-मुनि ने [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] नृप नाथ बुलायो ॥

ौ०–रंगभूमि आये दोउ भाई। अस सुधि सब पुरबासिन पाई॥
†चले सकल गृहकाज बिसारी। बालक युवा जरठ नर नारी॥

अर्थ—यज्ञशाला में दोनों भाई आये, जब ये समाचार नगर निवासियों ने
ये। तो बालक जवान बुड्ढ स्त्री पुरुष अपने २ घर का काम छोड़ उठ धाये॥

ौ०–देखी जनक भीर भइ भारी। शुचि सेवक सब लिये हँकारी॥
तुरत सकल लोगन्ह पहँ जाहू। आसन उचित देहु सब काहू॥

अर्थ—जब जनक जी ने देखा कि बहुत से लोग आपहुँचे तब उन्हों ने सब
तुर सेवकों को बुलाया (और कहा)। जल्दी से सब लोगों के पास जाओ और
ब को यथा योग्य स्थान पर बिठाओ॥

दो०–कहि मृदुबचन बिनीत तिन, बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि॥२४०॥

अर्थ—उन लोगों ने विनय से भरे हुए कोमल वचन कह कह कर उत्तम,
ध्यम, नीच और सब से छोटी जाति के स्त्री पुरुषों को यथा योग्य स्थानों पर
ठाया॥

ौ०–राजकुअँर तेहि अवसर आये। मनहुँ मनोहरता तन छाये॥
×गुणसागर नागर बरबीरा। सुंदर श्यामलगौरशरीरा॥

अर्थ—उसी समय दोनों राजकिशोर आ पहुँचे, मानो उनके शरीर पर शोभा
ा रही हो। सुन्दर श्यामले और गोरे रंग वाले (दोनों) वीर, गुणों से भरे हुए
ड़े चतुर थे॥

---

† चले सकल गृहकाज बिसारी—

दोहा—हीरे सों न बिलोकिये, रसिकरूप अभिराम।
सब सुखदायक सांवहु, लखिये लायक श्याम॥

× गुणसागर नागर बरबीरा—

कवित्त—मन्दर महीपन में सुन्दर सुमेरुधर, देवन में पुरन्दर पाशि के कहन हो।
राजहंस भाँति मैं कनीति के करन कहत दान सनमान पेखि राघव अनेक हो।
जग जेत तुपक अचोले फलौंके गुन, बारन उबारन सिंह बरन हो।
कहत मनोहर सुयश यश रामचन्द्र गुन रत्नाकर के सोदर रतन हो।

चौ०—राजसमाज विराजत रूरे। उडुगण महँ जनु युग विधु पूरे ॥
*जिनके रही भावना जैसी। प्रभुमूरति तिन देखी तैसी ॥

अर्थ—राजसभा में ऐसे शोभायमान लगते थे मानो नक्षत्रों के समूह में दो पूर्ण चन्द्रमा विराजते हों। (उस समय) जिस का जैसा भाव था उसने रामचंद्र जी की मूर्त्ति को उसी प्रकार देखा ॥

चौ०—देखहिं भूप महारण धीरा। +मनहुँ वीररस धरे शरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहुँ भयानकमूरति भारी ॥

अर्थ—बड़े रण बाँकुरे राजा लोग उन्हें इस प्रकार देखते थे कि मानो वीर रस ही ने शरीर धारण कर लिया हो। रामचन्द्र जी को देख दुष्ट राजा इस प्रकार डरे कि मानो भारी डरावनी मूर्त्ति हो ॥

चौ०—रहे असुर छल छोनिप वेखा। तिन प्रभु प्रकट कालसम देखा ॥
पुरवासिन देखे दोउ भाई। नरभूषण लोचनसुखदाई ॥

शब्दार्थ—छोनिप शुद्ध रूप क्षोणिप (क्षोणि = पृथ्वी + प = रक्षा करने वाला) = राजा ॥

अर्थ—जो राक्षस राजाओं का रूप धारण किये थे उन्हों ने रामचन्द्र जी को यम के समान समझा। नगर निवासियों ने दोनों भाइयों को मनुष्यों में शिरोमणि और नेत्रों के सुख देने वाले जाना ॥

दो०—नारि विलोकहिं हर्षि हिय, निजनिजरुचि अनुरूप।
†जनु सोहत श्रृङ्गार धरि, मूरति परमअनूप ॥२४१॥

---

* जिन के रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन देखी तैसी—इसी आशय को भी कृष्णचन्द्रजी के बारे में यों कहा है—

कवित्त—कामिनी निहारयो काम संतन विचारयो राम, योगी योग ध्यान सिद्ध सिद्धन विरंचिये।
दुर्जन को शारदूल सज्जन को कल्पवृक्ष शत्रुन को शूर प्रजा प्रजापति पेखिये ॥
चकपटा, मोरन को चंद्रमा चकोरन को भ्रमर को कंज मंजु मकरंद लेखिये।
कौन जाने काको ध्यान बाल सब जाने यथा एक नरनाथ ही अनेक कर देखिये ॥

+ मनहुँ वीररस धरे शरीरा—यहाँ से आगे नव रसमयी रूपों का वर्णन है जो टुकड़ों में लिखे हैं ॥

† जनु सोहत श्रृङ्गार धरि, मूरति परम अनूप—राम स्वयंवर में—
दो०—कोटि मदन मद कदन वपु, कोमल वदन सुधार।
कहैं सखी यह नरतनक, निरधारि श्रृंगार ॥

अर्थ—स्त्रियां प्रसन्न चित्त हो अपनी अपनी भावना के अनुसार देखतीं थीं कि मानो शृङ्गार रस ही बहुत ही उपमा रहित शरीर धारण कर शोभा दे रहा हो॥

चौ०—विदुषन प्रभु ×विराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥

अर्थ—ज्ञानियों ने प्रभु जी को विराटरूप से देखा, जिन के अनगिन्ती मुख, हाथ, पैर, नेत्र और मस्तक थे। जनक जी के कुटुम्बी लोग उन्हें किस दृष्टि से देखते थे जिस दृष्टि से कोई अपने सगे नातेदारों को प्यार से देखता हो॥

चौ०—सहित विदेह विलोकहिं रानी। शिशुसम प्रीति न जाइ बखानी॥
योगिन परमतत्त्वमय भासा। शांतशुद्धसम सहज प्रकासा॥

अर्थ—जनक राजा और उन की रानियां भी उन्हें अपने पुत्र के समान प्रेम से देखतीं थीं कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सक्ता। योगियों को तो वे पूर्ण ब्रह्म ही समझ पड़े जो शांत, शुद्ध, एक रस और स्वभाव ही से प्रकाशित सूझ पड़े॥

चौ०—हरिभक्तन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सबसुखदाता॥
‡रामहिं चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिं कथनीया॥

अर्थ—ईश्वर के भक्तों ने दोनों भाइयों को इष्ट देव के समान सब प्रकार सुखदायक देखा। जिस भाव से सीता जी श्री रामचन्द्र जी की ओर देखतीं थीं उस प्रेम का सुख कहते नहीं बनता॥

× विदुषन प्रभु विराटमयदीसा—श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १३।
श्लोक—सर्वतः पाणि पादं तत्सर्वतोऽक्षि शिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ १४॥
अर्थात् परब्रह्म सभी ओर से हाथ पैर वाला, सभी ओर से नेत्र सिर और मुख वाला, सब ओर से कान वाला होकर सब चराचर समुदाय में व्याप्त होकर स्थित है॥

‡ रामहिं चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिं कथनीया—राम स्वयम्बर से
सवैया—जो हरि हेरत हो सिय के हिय होत भयो हरि हीय हुलासे।
सो कवि कौन कहै जिनसे नहिं के सकै शेष अशेष हुलासै॥
मैं मति मन्द कहौं केहि भांति सो सुगुन कहाँ कहै आठहुँ त्रासे।
जानहिं राम सिया हिय की सिय जानति राम का अन्तर हासे॥

चौ॰—उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहइ कवि कोऊ॥
*जेहि विधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देखेउ कोशलराऊ॥

अर्थ—(सीता जी उस प्रेम सुख को) हृदय में तो समझतीं थीं परन्तु वे भी उसे कह नहीं सक्तीं थीं तो भला कोई कवि किस प्रकार से उसका वर्णन करे। निदान जिस के जी में जैसा भाव रहा–उसने श्री रामचन्द्र जी को उसी के अनुसार देखा॥

दो॰—राजत राजसमाज महँ, कोशलराजकिशोर।
सुन्दरश्यामलगौरतनु, +विश्वविलोचनचोर॥ २४२॥

अर्थ— राजाओं की समाज में सुन्दर श्यामल और गोरे शरीर वाले संसार के नेत्रों के चुराने वाले अयोध्यापुरी के राजकिशोर इस प्रकार सुशोभित हुए॥

चौ॰—†सहज मनोहरमूरति दोऊ। कोटिकामउपमा लघु सोऊ॥
शरदचंदनिन्दकमुख नीके। नीरजनयन भावते जी के॥

अर्थ—दोनों स्वरूप स्वभाव ही से मनमोहने थे, (यहां तक कि) करोड़ों कामदेव की उपमा भी उन के लिये थोड़ी ही थी। उन के सुन्दर मुख शरद पूनों के चन्द्रमा को भी तुच्छकर देते थे और उन के कमलस्वरूपी नेत्र मन को प्यारे लगते थे॥

चौ॰—चितवनि चारु मारमदहरनी। भावति हृदय जात नहिं बरनी॥
कलकपोल श्रुतिकुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला॥

अर्थ—कामदेव के घमंडको मिटाने वाली मनोहर चितवनि चित्त को सुहावनी लगती थी परन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सक्ता था। सुडौल कपोलों पर कानों के कुंडल हिल रहे थे, ठोढ़ी और होंठ सुन्दर थे तथा वाणी मधुर थी॥

---

* जेहि विधि रहा जाहि जस भाऊ—रामचन्द्र भूषण से—

कवित्त—श्याम घन सोहैं सुनि मण्डली मयूरन को, पुरुष पुरातन प्रमाण वेद वर को।
भोज में सरासन शिरोमणि महेश जान्यो, ठान्यो देव वृन्द या प्रकाश जोति वर को॥
'लछिराम' राजवंश कामद कमल मान्यो, जन घन दानियो सुमेर सुर धर को।
मिथिला सुरेश प्राणनाथ मैथिली त्यों, मान्यो मिथिलेश बालक रूप रघुवर को॥

+ विश्वविलोचनचोर—देखो कि॰ पृ॰ ९१

† सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ—

राम विहार—जन ने लखे राजकुमार॥
जनकपुर के संग सब ने लखे अंग सँवार।
सुभग श्यामल गौर राजत और देत भार॥　　　　(आज)

चौ०—* कुमुदबंधुकर निंदक हाँसा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा॥
‡ भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं॥

अर्थ—उनकी हँसन चन्द्रकिरण की निंदा करने वाली थी, टेढ़ी भौंहें और सुहावनी नाक थी। ऊँचे मस्तक में तिलक झलक रहे थे और बालों को देखकर भौंरों की पंक्तियाँ लज्जित हो जाती थीं॥

चौ०—पीत चौतनी सिरन्ह सुहाई। कुसुमकली बिच बीच बनाई॥
रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवाँ। जनु त्रिभुवनशोभा की सीवाँ॥

अर्थ—पीली चौगोसियाँ टोपियाँ सीस पर शोभायमान थीं जिनके बीच बीच में फूलों की कलियाँ बनाई गई थीं। शंख के समान सुन्दर कंठ की सुहावनी तीन रेखायें ऐसी थीं मानो तीनों लोक की सुन्दरता की हद बंदी हो॥

भाल तिलक विशाल राजत महँ शोभ अपार।
विकट भ्रुकुटी कमल दृग से नैन छवि अपार॥
चरु कपोलन लोल कुंडल श्रवण सीप सुढार।
नासिका शुक तुंड के सम अधर बिम्ब मझार॥
सुभग रेख सुरंग अवली कुन्द कैसी डार।
अरु कैसी चिबुक ग्रीवा कम्बु रेखा चार॥
काम करि कर बाहु जानौं हरत जग को भार।
लसत आयत उर सु जाके विप्र चरण सिंगार॥
नद्यो त्रिवली लसति रोमावली शुभग संवार।
नाभि कूप सु केहरी कटि कदलि जंघ सुढार॥
पींडुरी वर गुलफ एड़ी आँगुरी नख जार।
परो मन "बलभद्र" को लखि चरण राम उदार॥

* कुमुदबंधुकर निंदक हाँसा—जसवंत जसो भूषण से—

दोहा—विद्रुम बिच मुक्ता फलसु, वा प्रवाल युत फूल।
अधर बनि मुसक्यान के, तब है हैं सम तूल॥

‡ भाल विशाल तिलक झलकाहीं—

छन्द— तिलक झलक जामें सुभग सुधाम राजै रूप भूप वर को।
जो त्रिभुवन नायक प्रसिद्धि निद्धि घर को॥
कहा चमक नक्षत्र पत धारो प्रभु उर को।
हाल कर राजत सुभाल है कृपाल रघुवर को॥

(संध्या आदि) करके गुरु जी के पास गये और उन के कमलस्वरूपी सुन्दर चरणों को प्रणाम किया ॥

चौ०—सतानंद तब जनक बुलाये। कौशिक मुनि पहँ तुरत पठाये॥
+जनकविनयतिनआनिसुनाई। हर्षे बोलि लिये दोउ भाई॥

अर्थ—वहां जनक जी ने (अपने पुरोहित) सतानंद जी को बुला भेजा तुरंत ही उन्हें विश्वामित्र जी के पास जाने को कहा। उन्हों ने आकर विनती विश्वामित्र जी से कही (कि धनुष यज्ञ के हेतु आप कृपा कर पधारें जी ने प्रसन्न हो दोनों भाइयों को (अपने पास) बुला लिया ॥

दो०—सतानंद पदवंदि प्रभु, बैठे गुरु पहँ
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठएउ जन

अर्थ—रामचन्द्र जी सतानंद जी के चरणों की
पास जा बैठे तब ही विश्वामित्र जी ने कहा हे प्यारे

अर्थ—विनती करके अपना वृत्तांत कह सुनाया और मुनि जी को सब रंगभूमि [दिख]ाई। जहां २ दोनों राजकिशोर जाते थे तहां २ सब लोग चकित होकर देखने [लग]ते थे॥

[चौ]०—निज निज रुख रामहिं सब देखा। कोउ न जान कछु मर्म बिसेखा॥
†भलि रचना नृपसन मुनि कहेऊ। राजा मुदित महासुख लहेऊ॥

अर्थ—सब ने रामचन्द्र जी को अपनी ही ओर मुँह किये हुए देखा परन्तु किसी [को] कुछ विशेष भेद न समझ पड़ा। विश्वामित्र जी ने जनक जी से कहा कि 'तैयारी [अच्छी] की है' यह सुन कर राजा जी बहुत प्रसन्न हुए॥

दो०—*सब मंचन्ह ते मंच इक, सुन्दर बिशद बिशाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ, बैठारे महिपाल॥ २४४॥

चौ०—जनकराय पूछत भृगु पाहीं। कारण कथन आगमन छाहीं॥
परशुराम तब वचन सुनायो। कन्या को विवाह सुनि आयो॥
अब मैं करन जात तप राजा। मम आधीन रहै यह काजा॥
अब कब दरश होहिंगे नाथा। मम कन्या विवाह तुव हाथा॥
सुनि नृप विनय परशुधर भाखो। यह मम भूप धनुष धर राखो॥
यह नरेश जो चाप चढ़ावे। सो तुव सुता ब्याह कर पावे॥
यहै प्रतीति राखि उर राजा। अस कह गये मुनी तप काजा॥

† भलि रचना नृप सन मुनि कहेऊ। राजा मुदित महा सुख लहेऊ—जानकी मंगल से
छन्द लागे विसूरन समुझि प्रण मन बहुत धीरज आनि कै।
लै चल दिखावन रंग भूमि अनेक विधि सनमानि कै॥
कौशिक सराही रुचिर रचना जनक मुनि हरषित भये।
तब राम लषण समेत मुनि कहँ सुभग सिंहासन दये॥

* सब मंचन्ह ते मंच इक सुन्दर बिशद बिशाल.................... महिपाल
राग परज—सखी रँग भीने दोऊ राजकुमार।
निरख सखी नैनन भर नीके शोभा अमित अपार॥
भुज दंडन चंदन मंडन पर चमक चाँदनी चार।
ललित कंठ रेखा विचित्र लखि उर कमलन के हार॥
रंगभूमि मणि जटित मंच पर बैठे सभा मझार।
मानों रवि उदयाचल गिरि तें निकस्यो तिमिर बिदार॥
खंड खंड ब्रह्मंड खंड के भूपति जुरे अपार।
जहाँ रामचन्द्र छबि ऊपर नित कान्दर बलिहार॥

दो०—कुंजरमणिकंठाकलित, उरन्ह तुलसिकामाल।
वृषभकंध केहरिठवनि, बलनिधि बाहु बिशाल॥ २४३॥

शब्दार्थ—कुंजरमणि = गजमोती। कलित = सुन्दर। वृषभ = बैल। कंध (कं शिर+ध = रखना) = शिर के धारण करनेवाले अर्थात् कांधा। केहरि = सिंह। ठवनि = चाल॥

अर्थ—गजमोतियों के सुंदर कंठा (कंठ में) तथा हृदय पर तुलसी की माला धारण किये थे, बैल कैसे कांधे, सिंह सरीखी चाल और बलिष्ठ लम्बी भुजायें थीं॥

सूचना—गजमुक्तों का कंठा धारण करने से राजकुमार और तुलसी की माला धारण करने से मुनि शिष्य सूचित किया है.

चौ०—कटि तूणीर पीत पट बाँधे। कर शर धनुष वाम वर काँधे।
पीतयज्ञउपवीत सुहाये। नखशिख मंजु महा छवि छाये।

अर्थ—कमर में तरकस और पीताम्बर कसे थे, हाथ में बाण और श्रेष्ठ बांये कांधे पर धनुष धारण किये थे। पीले जनेऊ सुहावने लगते थे, इस प्रकार शिर से पैर तक सुन्दर महाछवि छाय रही थी॥

चौ०—देखि लोग सब भये सुखारे। इकटक लोचन ×टरत न टारे॥
हर्ष जनक देखि दोउ भाई। मुनिपदकमल गहे तब जाई॥

अर्थ—सब लोग इस शोभा को देख प्रसन्न चित्त हुए और ऐसी टकटकी बांधकर देखने लगे कि वे अपने नेत्र हटा नहीं सकते थे। दोनों भाइयों को देखते ही जनक जी ने प्रसन्न होकर विश्वामित्र जी के कमलस्वरूपी चरणों को छुआ॥

चौ०—†करि बिनती निजकथा सुनाई। रंगअवनि सब मुनिहि दिखाई॥
जहँ-जहँ जाहिं कुअँर वर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितव सब कोऊ॥

× "टरत न टारे" का पाठान्तर "चलत न तारे" है जिसका अर्थ "उनके नेत्रों के गोलक किम्बा पुतलियां घूमती न थीं अर्थात् वे इकटक निहार रहे थे॥

† करि बिनती निज कथा सुनाई—राम रत्नाकर रामायण में यह कथा इस प्रकार लिखी है कि—

चौ०—तब महेश भृगुपतिहिं बुलाये। धनुष देइ बहु विधि समुझाये॥
जनकराज के घर धर आवो। धार प्रभाव नृपहिं समुझावौ॥
जो धनु भंग करै नृप धन्या। ताहि बियाहि देइ नृप कन्या॥
दोहा—फिर भाषहु निज भाव धरि, सुनत चले भृगुनाथ।
धनुष धरे इक हाथ गुनि, धनुष धरे इक हाथ॥ (क्षेपक)

अर्थ—विनती करके अपना वृत्तांत कह सुनाया और मुनि जी को सब रंगभूमि दिखलाई। जहां २ दोनों राजकिशोर जाते थे तहां २ सब लोग चकित होकर देखने लगते थे॥

चौ०—निज निज रुख रामहिं सब देखा। कोउ न जान कछु मर्म बिसेखा॥
‡भलि रचना नृपसन मुनि कहेऊ। राजा मुदित महासुख लहेऊ॥

अर्थ—सब ने रामचन्द्र जी को अपनी ही ओर मुँह किये हुए देखा परन्तु किसी को कुछ विशेष भेद न समझ पड़ा। विश्वामित्र जी ने जनक जी से कहा कि 'तैयारी अच्छी है' यह सुन कर राजा जी बहुत प्रसन्न हुए॥

दो०—*सब मंचन्ह ते मंच इक, सुन्दर विशद विशाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ, बैठारे महिपाल॥ २४४॥

चौ०—जनकराय पूछत भृगु पाहीं। कारण कवन आगमन छाहीं॥
परशुराम तब वचन सुनायो। कन्या को विवाह सुनि आयो॥
अब मैं करन जात तप राजा। मम आधीन रहै यह काजा॥
अब कब दरश होहिंगे नाथा। मम कन्या विवाह तुव हाथा॥
सुनि नृप विनय परशुधर भाखो। यह मम भूप धनुष धर राखो॥
यह नरेश जो चाप चढ़ावे। सो तुव सुता ब्याह कर पावे॥
यहे प्रतीति राखि उर राजा। अस कह गये मुनी तप काजा॥

‡ भलि रचना नृप सन मुनि कहेऊ। राजा मुदित महा सुख लहेऊ—जानकी मंगल से

छन्द लागे बिसूरन समुझि प्रण मन बहुत धीरज आनि कै।
लै चल दिखावन रंग भूमि अनेक विधि सनमानि कै॥
कौशिक सराही रुचिर रचना जनक मुनि हरषित भये।
तब राम लषण समेत मुनि कहँ सुभग सिंहासन दये॥

* सब मंचन्ह ते मंच इक सुन्दर विशद विशाल.................. महिपाल

राग परज—सखी रँग भीने दोऊ राजकुमार।
निरख सखी नैनन भर नीके शोभा अमित अपार॥
भुज दंडन चंदन मंडन पर चमक चाँदनी चार।
ललित कंठ रेखा विचित्र सखि उर कमलन के हार॥
रंगभूमि मणि जटित मंच पर बैठे सभा मझार।
मानो रवि उदयाचल गिरिते निकस्यो तिमिर बिदार॥
खंड खंड महखंड खंड के भूपति जुरे अपार।
आहा रामचन्द्र छवि ऊपर नित कान्दर बलिहार॥

अर्थ—दूसरे राजा जो अविवेकी, अज्ञानी और घमंडी थे वे इन वचनों को सुनकर हँस पड़े। (और कहने लगे कि) धनुष तोड़ने पर भी ब्याह होना कठिन है फिर भला बिना धनुष तोड़े कन्या को कौन ब्याह सक्ता है ?

चौ०—+एक बार कालहु किन होऊ। सियहित समर जितब हम सोऊ॥
यह सुनि अपर भूप मुसकाने। धर्मशील हरिभक्त सयाने॥

अर्थ—सीता के लिये हम लड़ाई में चाहे काल क्यों न हो उसे भी एक बार हरा देवेंगे। यह सुन दूसरे राजा जो धर्मात्मा, हरिभक्त और चतुर थे वे मुसकराने लगे (और बोले कि)॥

सो०—❀सीय बिवाहब राम, गर्व दूरि करि नृपन्ह का।
जीति को सक संग्राम, दशरथ के रनबाँकुरे॥ २४५॥

अर्थ—राजाओं का घमंड तोड़ कर सीता को तो रामचन्द्र ही ब्याहेंगे, भला दशरथ जी के पुत्र जो संग्राम करने में विकट हैं उन्हें कौन जीत सक्ता है ?

चौ०—वृथा मरहु जनि गाल बजाई। मनमोदक नहिं भूख बुझाई॥
सिख हमारि सुनु परम पुनीता। जगदंबा जानहु जिय सीता॥

अर्थ—(तुम लोग) व्यर्थ बकवाद करके क्यों मरे जाते हो ? मन के लड्डू खाने से भूख नहीं बुझ सक्ती ? (अर्थात् बिना पराक्रम के सीता का मिलना इस प्रकार दुर्लभ है कि जिस प्रकार बिना कुछ खाये भूख नहीं बुझ सक्ती, इस हेतु) हमारे अति पवित्र सिखापन को सुन कर सीता जी को अपने हृदय से जगतमाता जानो॥

+ एक बार कालहु किन होऊ—

सवैया—कैसे अशंकि रहे रघुवंशिन कालहु सों हमको खटके ना।
देखियो मेरी कला धनु को तुम शूरन हूं से कहूं अटके ना॥
यादि बतात हौ बावरे से "ललिते" अरि देखि कहूं मटके ना।
नेक रहे हटके न कहूँ भट को लखि के रन में भटके ना॥

❀ सीय बिवाहब राम, गर्व दूरि करि नृपन्ह को—

दोहा—जनकसुता श्री इन्दिरा, नारायण श्री राम।
यही एक धनु तोरि हैं, सिय ब्याहैं परिणाम॥

सवैया—हरि हैं मद पुञ्ज नरेशन को करि हैं जग कीरति को अधिकारी।
भरि हैं सब के हिय मोद यहै चुप होउ सबै सुनि बात हमारी॥
डरिहैं शिवचाप मृनालसो आनि यही "ललिते" हिय माहि बिचारी।
धरि हैं सब के उर धीर यहै वरि हैं हरि ये मिथिलेशकुमारी॥

चौ०–जगतपिता रघुपतिहि विचारी। भरि लोचन छवि लेहु निहारी॥
सुन्दर सुखद सकल गुणरासी। ये दोउ बंधु शंभुउरवासी॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी को संसार के उत्पत्ति करने वाले समझ कर नेत्र भर उनकी शोभा को देख लेओ। छबीले, सुखदाई, सब गुण सम्पन्न ये दोनों भाई महादेव जी के हृदय में बस रहे हैं॥

चौ०–सुधासमुद्र समीप बिहाई। मृगजल निरखि मरहु कत धाई॥
करहु जाइ जा कहँ जोइ भावा। हमतौ आज जन्मफल पावा॥

अर्थ—अरे! समीप के अमृतरूपी समुद्र को छोड़ कर मृगतृष्णा को देख क्यों भटक भटक कर मरते हो। जो जिसे अच्छा लगे सोई जाकर करने लगे, हम लोगों ने तो जन्म लेने का फल पालिया (अर्थात् तुम लोग अमृतवत् रामदर्शन को छोड़ सीता पाने की झूठी आशा में मरे जाते हो। जो चाहे सो करो हम तो उनके दर्शनों से तृप्त हो गये)॥

चौ०–अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे॥
देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना। बरषहिं सुमन करहिं कल गाना॥

अर्थ—इतना कह कर भले राजा प्रेम में मग्न होगये और उपमारहित स्वरूप को देखने लगे। देवगण विमानों में चढ़े हुए आकाश से देख रहे थे और फूलों की वर्षा करके मनोहर गीत गारहे थे॥

दो०–जानि सुअवसर सीय तब, पठई जनक बुलाइ।
चतुर सखी सुंदर सकल, सादर चलीं लिवाइ॥ २४६॥

अर्थ—तब ठीक समय जान कर जनक जी ने जानकी को बुलवा भेजा, जानकी और चतुर सब सखियां उन्हें आदर सहित लिवा ले आईं॥

चौ०–सियशोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूपगुणखानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृतनारि अंगअनुरागी॥

अर्थ—सीता जी की शोभा वर्णन नहीं की जाती क्योंकि वे जगन्माता हैं तथा सौन्दर्य [illegible] गुणों से परिपूर्ण हैं। मर [illegible] साधारण स्त्रियों के अंग की [illegible] [illegible] मुझे तुच्छ जान पड़ती है॥

चौ०—सीय वरनि तेहि उपमा देई । कुकवि कहाइ अयश को लेई ॥
जो *पटतरिय तीय सम सीया । जग अस युवति कहां कमनीया॥

शब्दार्थ—कमनीया (कम् = चाहना) = चाहना करने के योग्य; अर्थात् मनोहर ॥

अर्थ—उनके साथ मिलान कर सीता जी का वर्णन करके कौन अयोग्य कवि कहलावे और कौन अपयश लेवे। यदि कहो कि किसी स्त्री के साथ सीता जी का मिलान किया जावे तो संसार में ऐसी मनोहर स्त्री है ही कहां ? ॥

चौ०—†गिरा मुखर तनु अर्धभवानी । रतिअति दुखित अतनु पतिजानी॥
विप वारुणी बंधु प्रिय जेही । कहिय रमा सम किमि वैदेही ॥

शब्दार्थ—गिरा = वाणी, सरस्वती। मुखर = बहुत ही बोलने वाली। अतनु (अ = बिना + तनु = शरीर) = बिना शरीर का अर्थात् कामदेव जिस का नाम अनंग भी है। वारुणी = मदिरा। रमा = लक्ष्मी ॥

अर्थ—सरस्वती जी बहुत ही बोलने वाली हैं, पार्वती जी तो आधे ही शरीर वाली हैं (आधा अङ्ग शिव जी का है) और रति अपने पति कामदेव को अनङ्ग समझ बहुत ही दुखित रहा करती है। विप और मदिरा जिन के प्यारे भाई हैं ऐसी लक्ष्मी जी को सीता जी के बराबर कैसे कहैं (स्मरण रहे कि समुद्र मथने पर जो १४ रत्न निकले थे उन में से विप, मदिरा [illegible] लक्ष्मी जी भी हैं, इसी कारण एक ही स्थान से उत्पत्ति होने के कारण विप [illegible] लक्ष्मी [illegible] हुए) ॥

चौ०—जो छबिसुधा पयोनिधि होई । परमरूपमय कच्छप सोई ॥
शोभारजु मंदरशृङ्गारू । मथइ पानिपंकज निज मारू ॥

सूचना—जब कि सीता जी की उपमा के लिये न कोई साधारण स्त्री है और न प्रसिद्ध देव स्त्रियों में से कोई उन की बराबरी कर सक्ती हैं तो कवि जी उपमा के लिये एक कल्पित लक्ष्मी मान कर उन के साथ मिलान तो करते हैं परन्तु फिर भी इस चतुराई के साथ कि ऐसी लक्ष्मी सीता जी की पटंतर के लिये न्यून जँचती है ॥

अर्थ—जो छविरूपी अमृत का समुद्र होवे और परमसौंदर्यमयी कछुआ होवे शोभा की रस्सी और शृङ्गार ही का मंदराचल (मथानी) हो तथा कामदेव अपने कमलस्वरूपी हाथों से मथन करै ॥

दो०—यहि विधि उपजै लच्छि जब, सुंदरता सुखमूल ।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीयसम तूल ॥ २४७ ॥

अर्थ—इस प्रकार सौंदर्य आनन्द की खानि लक्ष्मी जी जब उत्पन्न होवें तब भी कविगण डरते डरते कहेंगे कि ये सीता जी के तुल्य हैं ॥

चौ०—+चली संग लै सखी सयानी । गावति गीत मनोहर बानी ॥

अर्थ—चतुर सखियां सुरीले शब्दों से गीत गाती हुई सीता जी को अपने साथ लेकर आईं ॥

+ चली संग लै सखी सयानी । गावति गीत मनोहर बानी ॥ प्रेम पीयूष धारा से—

लावनी—बनी सिय बनरी अति बाँकी । नहीं है जग उपमा जाकी ॥
बैस की है अति ही थोरी । रूप की है अति ही गोरी ॥
हिया की है अति ही भोरी । यही है जनकनृपति छोरी ॥
लखो क्या तरह द्वार झाँकी । नहीं है जग उपमा जाकी ॥ १ ॥
लसैं अंखियाँ दोउ रतनारी । फबै उर मोतिन गजरा री ॥
सोह तन में सुन्दर सारी । अलक सोहत हैं अति कारी ॥
देखि गति चन्द्रहु की धारी । नहीं है जग उपमा जाकी ॥ २ ॥
भाल बिच बिन्दा अति सोहै । देखि मुख रति निशिदिन मोहै ॥
परनि सक उपमा जग को है । सुधी कवि सुरबालता गोहै ॥
कहूँ मैं समता यहि का की । नहीं है जग उपमा जाकी ॥ ३ ॥
[illegible] पग नूपुर हैं बाजे । कमर में बर किंकिणि गाजे ॥
[illegible] धरने ते [illegible] भाजै । यही है [illegible] सिर गाजै ॥
प्रेम से "प्यारेलिन" अति बांकी । नहीं है जग उपमा जाकी ॥ ४ ॥

चौ०—†सोह नवलतनु सुंदरि सारी । जगतजननिअतुलितछविभारी॥

अर्थ—नवीन शरीर पर सुन्दर साड़ी शोभायमान थी ऐसी जगत को उत्पन्न करने वाली सीता जी की बहुत ही उपमा रहित शोभा थी ॥

दूसरा अर्थ—सारी सुन्दरि अर्थात् सम्पूर्ण सुन्दर स्त्रियां इसी नवीन शरीर से मानो शोभा पाती हैं (अर्थात्) सम्पूर्ण सुन्दरता से युक्त जितनी स्त्रियां हैं उन सब को जो शोभा मिली है सो सीता जी ही से मिली है। काहे से कि ये जगत की माता हैं इस हेतु जो छवि लड़कियों की होगी सो माता ही के अनुसार तथा इन में इतना अधिक सौंदर्य है कि उस की तुलना करने को दूसरी छवि है ही नहीं, इस हेतु भी छबीली स्त्रियां इन्हीं से छवि पाती हैं ॥

तीसरा अर्थ—जगत की माता सीता जी सौंदर्य की ऐसी भारी छटा लिये हुए थीं कि उस से उन की साड़ी तथा सम्पूर्ण नवयौवना सुन्दरी जो उन के साथ थीं शोभायमान हो गई थीं ॥

चौ०—भूषण सकल सुदेश सुहाये । अंग अंग रचि सखिन बनाये॥
रंगभूमि जब सिय पग धारी । ×देखि रूप मोहे नरनारी ॥

अर्थ—सम्पूर्ण आभूषण यथोचित अङ्ग प्रत्यङ्गों में सखियों ने उत्तम रीति से पहनाये थे (इस प्रकार सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित हो) जब सीता जी रंगभूमि में आईं तब उन के सौंदर्य को देख सब स्त्री पुरुष भौंचक से रह गये ॥

---

† सोह नवलतनु सुन्दरि सारी—जानकी स्तवराज भाषा टीका से

सवैया—सारी सिया अति सुन्दर नील लसै तव गात प्रभा दरसाई।
हेम के भूषन से कल भूषित है पट देखि छटा अधिकाई॥
आनंद हेतु सुहागिन के उर राखत राम स्वरूप छिपाई।
ताहि कृपा रंग से रँगि के मन सारी समेत रहौ उर छाई॥

× देखि रूप मोहे नर नारी—

इस में कोई २ यह शंका कर बैठते हैं कि सीता जी को देखकर नर और नारी कैसे मोहित हुए क्योंकि गोसाईं जी तो उत्तर कांड में लिखते हैं कि 'मोह न नारि नारि के रूपा' तो यहां पर विरोध सा समझ पड़ता है परन्तु विचार करने से समझ में आजाता है कि 'मोह न नारि नारि के रूपा' यह कथन साधारण स्त्रियों के बारे में है न कि आदि शक्ति के विषय में, सीता जी तो आदि शक्ति हैं उन्हीं से सब स्त्री पुरुष सौंदर्य को प्राप्त करते हैं और उनकी सुन्दरता सब संसार के जीवधारियों को मोहित करने वाली है तो जनकपुर की स्त्रियां कैसे मोहित न होतीं ॥

चौ०–जो छविसुधा पयोनिधि होई। परमरूपमय कच्छप सोई॥
शोभारजु मंदरशृङ्गारू। मथइ पानिपंकज निज मारू॥

सूचना—जब कि सीता जी की उपमा के लिये न कोई साधारण स्त्री है और न प्रसिद्ध देव स्त्रियों में से कोई उन की बराबरी कर सक्ती हैं तौ कवि जी उपमा के लिये एक कल्पित लक्ष्मी मान कर उन के साथ मिलान तो करते हैं परन्तु फिर भी इस चतुराई के साथ कि ऐसी लक्ष्मी सीता जी की पटतर के लिय न्यून जँचती है॥

अर्थ—जो छविरूपी अमृत का समुद्र होवे और परमसौंदर्यमयी कछुआ होवे शोभा की रस्सी और शृङ्गार ही का मंदराचल (मथानी) हो तथा कामदेव अपने कमलस्वरूपी हाथों से मथन करै॥

दो०–यहि विधि उपजै लच्छि जब, सुंदरता सुखमूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीयसम तूल॥ २४७॥

अर्थ—इस प्रकार सौंदर्य आनन्द की खानि लक्ष्मी जी जब उत्पन्न होवें तब भी कविगण डरते डरते कहैंगे कि ये सीता जी के तुल्य हैं॥

चौ०–+चली संग लै सखी सयानी। गावति गीत मनोहर बानी॥

अर्थ—चतुर सखियां सुरीले शब्दों से गीत गाती हुईं सीता जी को अपने साथ लेकर आईं॥

+ चली संग लै सखी सयानी। गावति गीत मनोहर बानी॥ प्रेम पीयूष धारा से—

लावनी—बनी सिय बनरी अति बाँकी। नहीं है जग उपमा जाकी॥
बैस की है अति ही थोरी। रूप की है अति ही गोरी॥
हिया की है अति ही भोरी। यही है जनकनृपति छोरी॥
लखो क्या तरह दार झाँकी। नहीं है जग उपमा जाकी॥ १॥
लसैं अँखियाँ दोउ रतनारी। कण्ठ उर मोतिन गजरा री॥
सोह तन में सुन्दर सारी। अलक सोहत है अति कारी॥
देखि गति चन्दहु की थाकी। नहीं है जग उपमा जाकी॥ २॥
भाल बिच बिन्दा अति सोहै। देखि मुख रति निशिदिन जोहै॥
धरनि सक उपमा जग को है। दृगों छवि सुरललना मोहै॥
कहूं मैं समता यहि का की। नहीं है जग उपमा जाकी॥ ३॥
अजब पग नूपुर हैं बाजै। कमर में कटि किंकिनि राजै॥
[illegible] धरने ते [illegible] लाजै। यही है सखियन सिर ताजै॥

चौ०-†सोह नवलतनु सुंदरि सारी। जगतजननिअतुलितछविभारी॥

अर्थ—नवीन शरीर पर सुन्दर साड़ी शोभायमान थी ऐसी जगत को उत्पन्न करने वाली सीता जी की बहुत ही उपमा रहित शोभा थी॥

दूसरा अर्थ—सारी सुन्दरि अर्थात् सम्पूर्ण सुन्दर स्त्रियां इसी नवीन शरीर से मानो शोभा पाती हैं (अर्थात्) सम्पूर्ण सुन्दरता से युक्त जितनी स्त्रियां हैं उन सब को जो शोभा मिली है सो सीता जी ही से मिली है। काहे से कि ये जगत की माता हैं इस हेतु जो छवि लड़कियों की होगी सो माता ही के अनुसार तथा इन में इतना अधिक सौंदर्य है कि उस की तुलना करने को दूसरी छवि है ही नहीं, इस हेतु भी छबीली स्त्रियां इन्हीं से छवि पाती हैं॥

तीसरा अर्थ—जगत की माता सीता जी सौंदर्य की ऐसी भारी छटा लिये हुए थीं कि उस से उन की साड़ी तथा सम्पूर्ण नवयौवना सुन्दरी जो उन के साथ थीं शोभायमान हो गईं थीं॥

चौ०-भूषण सकल सुदेश सुहाये। अंग अंग रचि सखिन बनाये॥
रंगभूमि जब सिय पग धारी। ×देखि रूप मोहे नरनारी॥

अर्थ—सम्पूर्ण आभूषण यथोचित अङ्ग प्रत्यङ्गों में सखियों ने उत्तम रीति से पहनाये थे (इस प्रकार सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित हो) जब सीता जी रंगभूमि में आईं तब उन के सौंदर्य को देख सब स्त्री पुरुष भौंचक से रह गये॥

---

† सोह नवलतनु सुन्दरि सारी—जानकी स्तवराज भाषा टीका से

सवैया—सारी सिया अति सूक्ष्म नील लसी तब गात प्रभा दरशाई।
हेम के सूत्रन से बहु भूषित है पर देखि छटा अधिकाई॥
आनँद हेतु सुहागिन के उर राखत राम स्वरूप छिपाई।
ताहि छपा रँग से रँगि के मन सारी समेत रहो उर छाई॥

× देखि रूप मोहे नर नारी—

इस में कोई २ यह शंका कर बैठते हैं कि सीता जी को देखकर नर और नारी कैसे मोहित हुए क्योंकि गोसाईं जी ही उत्तर कांड में लिखते हैं कि 'मोह न नारि नारि के रूपा' तो यहां पर विरोध सा समझ पड़ता है परन्तु विचार करने से समझ में आजाता है कि 'मोह न नारि नारि के रूपा' यह कथन प्राकृत स्त्रियों के बारे में है न कि आदि शक्ति के विषय में, सीता जी तो आदि शक्ति हैं उन्हीं से सब स्त्री पुरुष सौंदर्य को प्राप्त करते हैं और उनकी छटा सब संसार के जीवधारियों को मोहित करने वाली है तो जनकपुर की स्त्रियां कैसे मोहित न होंगी॥

सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं । ‡विधि सन विनय करहिंमनमाहीं

अर्थ—रामचन्द्र जी का स्वरूप और सीता जी की सुन्दरता को देख स्त्री पुरु[illegible] ने पलक मारना बन्द कर दिया (अर्थात् वे इकटक निहारने लगे)। सब के स[illegible] विचार तो बाँधते थे परन्तु प्रकट कहने में संकोच करते थे तथापि मन ही मन विधा[illegible] से विनती करते थे कि—

चौ०—हरु विधि वेगि जनक जड़ताई । मति हमार अस देहु सुहाई

*बिन विचार प्रण तजि नरनाहू । सीय राम कर करइ विवाहू

अर्थ—हे विधाता तुम ! जनक जी की राजहठ को जल्दी से हटा दो और अ[illegible] हमारी सरीखी सुन्दर बुद्धि दे देओ । जिस से नरेश जी ! अपने बिना विचारे कि[illegible] हुए प्रण को छोड़कर सीता का विवाह रामचन्द्र जी के साथ कर देवें ॥

चौ०—जग भल कहिहि भाव सब काहू । हठ कीन्हें अंतहु उर दाहू

†इहि लालसा मगन सब लोगू । वर साँवरो जानकी योगू

---

‡ विधि सन विनय करहिं मनमाहीं—कुंडलिया रामायण से—

कुंडलिया—मिथिलापुर के नारि नर सिय रघुवीर निहारि ।
विनती करहिं विरंचि सब अंचल अंजलि पारि ॥
अंचल अंजलि पारि देहु वरदान विधाता ।
राम जानकी योग जोरि मिलवहु यह नाता ॥
नाथ [illegible] नृपप्रण हरै भूपति [illegible] पर ।
यह संयोग विचारि कहि मिथिलापुर के नारि नर ॥

* बिन विचार प्रण तजि नरनाहू । सीय राम कर करइ [illegible]—

क०—कोऊ सखी कहती सखी सो रामचन्द्र देख [illegible] [illegible]
इनको विलोकि भूप प्रन को विहाय [illegible] [illegible]
" अवध विहारी " [illegible]
[illegible] सीता रामचन्द्र [illegible]

† इहि लालसा मगन सब लोगू । वर साँवरो जानकी योगू ।

सवैया—हे विधि [illegible]
[illegible]
" [illegible] " [illegible]
[illegible]

०—हर्षि सुरन्ह दुंदुभी बजाई। बर्षि प्रसून अपसरा गाई॥
पाणिसरोज सोह जयमाला। *औचक चितये सकल भुआला॥

अर्थ—देवताओं ने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाये, फूलों की वर्षा हुई और अप्सराएँ ने लगीं। (सीता जी के) कमलस्वरूपी हाथों में जयमाला शोभा दे रही थी, राजा चकचकाकर देखने लगे॥

०—सीय चकित चित रामहिं चाहा। भये मोहवश सब नरनाहा॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई॥

अर्थ—सीता ने तो अधीर चित्त से रामचन्द्र जी को देखना चाहा परन्तु सब ा भौंचक से रह गये। (सीता जी ने) विश्वामित्र मुनि के पास ही दोनों भाइयों बैठे देखा तो उन के नेत्र मानो अपनी संपति को पाकर लालसा से टकटकी बांधकर गये॥

दो०—गुरुजन लाज समाज बड़ि, देखि सीय सकुचानि।
लगी विलोकन्ह सखिन्ह×तन, रघुवीरहि उर आनि॥२४८॥

अर्थ—पिता, पुरोहित आदि श्रेष्ठ जनों की मर्यादा और भारी सभा का विचार सीता जी सकुचा गईं। इसहेतु रघुनाथ जी को हृदय में धारण कर सखियों की देखनी लगीं॥

०—+राम रूप अरु सिय छवि देखी। नर नारिन्ह परिहरी निमेखी॥

---

* "औचक" का पाठान्तर "अवचट" भी है अर्थ एक ही है—

× तन=ओर। इसके दूसरे उदाहरण रामायण ही में यों हैं—इसी काण्ड में २५८ दोहे चात् (१) प्रभु 'तन' चिते प्रेम प्रण ठाना॥ अयोध्याकांड के १०० वें दोहे में विहँसे देन, चिते जानकी लषन 'तन'॥

+ रामरूप अरु सिय छवि देखी। नर नारिन परिहरी निमेखी—

ारँग—जब ते राम लषन चितये री।
रहे इकटक नर नारि जनकपुर लागत पलक कलप बितये री॥
प्रेमविवश माँगत महेश सो देखत ही रहिये नित ये री।
कै ये सदा बसहु इन नयनन्हि कै ये नयन जाहु जित ये री॥
कोउ समझाइ कहै किन भूपहि बड़े भाग्य आये इत ये री।
कुलिश कठोर कहां शंकरधनु मृदुमूरति किशोर कित ये री॥
विरचित इनहिं विरंचि भुवन सब सुन्दरता खोजत रितये री।
तुलसिदास ते धन्य जनम जन मन क्रम बच जिन के हिय ये री॥

अर्थ—भाट लोग ऊंचे स्वर से कहने लगे हे सम्पूर्ण राजाओ ! आप सुनिये, लोग महाराज जनक जी के कठिन प्रण को हाथ उठाकर कहते हैं (हाथ उठाकर क की एक प्रथा है जो किसी बात को निश्चयपूर्वक जताने के लिये की जाती है कि ि में सब का चित्त उस कहने वाले की ओर आकर्षित हो) ॥

सूचना—स्मरण रहे कि भाटों की चतुराई उन के शब्दों से प्रकट होती है र 'प्रण विदेह कर' विदेह कर' इन शब्दों का दूसरा अर्थ यह होता है कि यह ! लोगों को विदेही करने वाला है अर्थात् इस के सुनने ही से आप लोगों को शारी बल का अभिमान न रह कर देह की सुध बुध सी न रहेगी जैसा नीचे लिखा है—

चौ०—*नृप भुजबल विधुशिवधनुराहू । गरुअ कठोर विदित सब काहू

‡रावण बाण महाभट भारे । देखि शरासन गवहिं सिधारे

अर्थ—राजाओं की भुजाओं का बल चन्द्रमा के समान और शिव जी का ध राहुरूपी है, सब लोग जानते ही हैं कि यह भारी और कठोर है । देखो बड़े ब भारी योधा रावण और बाणासुर सरीखे जिस धनुष को देखकर चुपचाप च गये ॥

चौ०—†सोइ पुरारिकोदंड कठोरा । राज समाज आज जेइ तोरा

त्रिभुवन जय समेत वैदेही । बिनिहि विचार बरइ हठि तेही

---

* नृप भुजबल विधु शिवधनुराहू इत्यादि—कुंडलिया रामायण से—

कुंडलिया—हरगिरि ते गरु जानिये कमठ पृष्ठ ते कोर ।
महि शृँग रच्यो विरंचि अनु सकल वज्र तन तोर ॥
सकल वज्र तन तोरि मोरि मुरि गये दशानन ।
बाणासुर से सुभट भये भञ्जित कहु आनन ॥
आन न कबउ या को मरम शिवहि छाँड़ि को तानिये ।
निज बल हृदय विचारि कै हरगिरि ते गरु जानिये ॥

‡ रावण बाण महाभट भारे । देखि शरासन गवहिं सिधारे—

(रावण) दोहा—हों तो नाशिव धनुष तौ देतो ताहि चढ़ाय ।
यह असमंजस लाइ उर जात शिवहि शिरनाय ॥
(बाण)—मेरे गुरु को धनुष यह, सीता मेरी माय ।
दुहुँ ओर असमंजसहि महुँ जात शिरनाय ॥

† सोइ पुरारि कोदंड कठोरा । राज समाज आज जेइ तोरा ॥

राजा जनक के बंदीगणों ने महाराजा का प्रण सब राजाओं प्रति कहा (सीता स्वयम्बर से) ॥

अर्थ—संसार के लोग इसे उत्तम कहेंगे क्योंकि सब लोगों की यही इच्छा है और हठ पकड़े रहने से तो पीछे से भी जलेगा। सब लोग इसी लालसा में मग्न हैं कि श्यामल वर जानकी के योग्य है॥

चौ०—+तब बंदीजन जनक बुलाये। बिरदावली कहत चलि आये।
कह नृप जाइ कहहु प्रण मोरा। चले भाट हिय हर्ष न थोरा।

अर्थ तब जनक जी ने यश बखानने वालों को बुलवाया। वे लोग इन के वंश की कीर्ति वर्णन करते हुए आये। (उन से) राजा ने कहा कि (सब राजाओं को) हमारा प्रण कह सुनाओ, (यह सुन) बंदीगण आनन्द पूर्वक चल खड़े हुए॥

सूचना—'हिय हर्ष न थोरा' इन शब्दों में बड़ी विचित्रता है सो यों कि एक अर्थ तो स्पष्ट ही है जो ऊपर लिख चुके हैं। दूसरा अर्थ—भाटों के आगे कहे हुए वचनों से यह ध्वनित होता है कि 'भाटों के हृदय में थोड़ा भी हर्ष न था' अर्थात् जब उन्होंने जान लिया कि जनक जी वही अपना कठिन प्रण अभी तक भी राजाओं को सुनाने के लिये कहते हैं और उसे त्यागते नहीं हैं। तब तो उन्हें यह चिन्ता हुई कि रामचन्द्र जी से विवाह होने में सन्देह है॥

दो०—बोले बन्दी वचन वर, सुनहु सकल महिपाल।
×प्रण विदेहकर कहहिं हम, भुजा उठाइ विशाल॥ २४६॥

+ तब बंदीजन जनक बुलाये। बिरदावली कहत चलि आये—

सो०—सभामध्य गुण ग्राम, बन्दी सुत द्वै शोभहीं।
सुमति विमति यह नाम, राजन को वर्णन करैं॥

× प्रण विदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ विशाल—गीतावली रामायण से—

राग मारू—सुनो भैया भूप सकल दै कान।
वज्ररेख गज दशन जनक प्रण वेद विदित जग जान॥
घोर कठोर पुरारि शरासन नाम प्रसिद्ध पिनाकु।
जो दशकंठ दियो बाँवो जेहि हरगिरि कियो है मनाकु॥
भूमि भाल भ्राजत न चलत सो ज्यों विरंचि को आंकु।
धनुतोरै सोई वरै जानकी राव होइ कि रंकु॥

और भी—

गीतिका छन्द—कोइ आज राजसमाज में बल शम्भु को धनु कर्षि है।
पुनि कान के परिमान तानि सु चित्त में अति हर्षि है॥
वह राज होइ कि रंक "केशवदास" सो सुख पाइ है।
नृप कन्यका यह तासु के उर पुष्पमाला नाइ है॥

अर्थ—मूर्खराजा क्रोध से मुँह लाल कर धनुष को जा पकड़ते थे परन्तु जब वह न उठता था तो लजाकर लौट आते थे, (ऐसा समझ पड़ता था कि) धनुष मानो राजाओं की भुजाओं का बल पाकर अधिक ही अधिक भारी होता जाता था ॥

चौ०—*भूप सहसदस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा ॥
×डगै न शंभु शरासन कैसे। कामीवचन सती मन जैसे ॥

अर्थ—दस हज़ार राजे एक ही बार उठाने लगे परन्तु धनुष हटाने से भी नहीं हटा। महादेव जी का धनुष इस प्रकार अचल हो रहा था जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री का मन कामातुर पुरुष के वचनों से (नहीं डिगता है)॥

दूसरा अर्थ—एकही बारा से यह अभिप्राय भी होता है कि एक ही दिन दस हज़ार राजा बारी २ से धनुष उठाने का उपाय कर चुके थे परन्तु कोई भी सफल मनोरथ न हुए (बारीकी से विचार किया जावे तो यह अर्थ भी ठीक नहीं जमता क्योंकि इतना समय कहाँ था) ॥

संभवित तीसरा अर्थ—दस हज़ार राजे जो एक ही दिन एकत्र हुए थे उन में से (अभी तक) जितने राजा धनुष उठाने को गये थे उन में से किसी के टाले वह धनुष न टल सका (भाव यह कि धनुष उठाने को अभिमानी थोड़े से योद्धा गये थे, जैसा ऊपर कह आये हैं-सुनि प्रण सकल भूप अभिलाषे। भट मानी अतिशय मन माषे. बहुतेरे राजारूप देवता, सज्जन राजा, और भक्त राजा आदि

---

* भूप सहस दस एकहि बारा—इसमें यह शंका हो सकी है कि दस हज़ार राजा मिलकर जो धनुष को कदाचित् उठालेते तो सीता किसे ब्याही जाती ? उसका समाधान पंडित लोग यों करते हैं कि उन लोगों ने आपस में यह सलाह करली होगी कि हम लोगों में से जो सब से अधिक बलवान् होगा सो सीता को ब्याह लेगा, परन्तु सब पूर्वा पर विचार करने से ऐसा जँच पड़ता है कि राजाओं ने पृथक् पृथक् अपना बल चलता न देख कदाचित् क्रोध के आवेश में होकर ऐसा विचार किया हो कि किसो प्रकार से धनुष उठे तो सही ? परन्तु तीसरा संभवित अर्थ जो ऊपर लिख आये हैं उस पर विचार करने से यह शंका भी नहीं रहती क्योंकि धनुष का विस्तार भी विचारणीय है

× डगै न शंभु शरासन कैसे। कामीवचन सती मन जैसे—

सवैया—पण्डित मान भयो सब को नृप मण्डल हारि रह्यो जगती को।
व्याकुल बाहु निराकुल बुद्धि थक्यो बल विक्रम लंकपती को ॥
कोटि उपाय किये कहि "केशव" केहूं न छांड़त भूमि रती को।
भूरि विभूति प्रभाव सुभावहि ज्यों न चलै चित योगयती को ॥

अर्थ—उसी शिव जी के कठोर धनुष को राजाओं की सभा में जो कोई आज तोड़ेगा। उस के साथ जानकी जी तथा तीनों लोक की विजय लक्ष्मी बिना विचार किये हुए ही जबरई से विवाह करलेवेंगी (अर्थात् सीता जी तो उसके साथ विवाह कर ही लेवेंगी इस के सिवाय उसे तीनों लोक में यश मिलेगा)॥

चौ०–सुनि प्रण सकल भूप अभिलाषे। भट मानी अतिशय मन माषे॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन शिर नाई॥

अर्थ—ऐसा प्रण सुनकर सब राजा उत्सुक हो गये और अभिमानी राजा मन में बहुत ही क्रोधित हुए (इस मतलब से कि धनुष को ऐसा कठोर बतलाते हैं हम अभी तोड़ डालते हैं)। कमर बांधकर झट से उठ खड़े हुए और अपने अपने इष्टदेवताओं को सीस नवाकर चले॥

चौ०–तमकि ताकि तकि शिवधनुधरहीं। उठइ न कोटि भाँति बल करहीं॥
जिनके कछु बिचार मन माहीं। चाप समीप महीप न जाहीं॥

अर्थ—वे क्रोध के आवेश से घूर कर देख शिव जी के धनुष को पकड़ते थे परन्तु नाना प्रकार से बल करने पर भी वह उठाये नहीं उठता था। जिन राजाओं के चित्त में कुछ ज्ञान था वे धनुष के पास तक ही न जाते थे॥

दो०–+तमकि धरहिं धनु मूढ़नृप, उठइ न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट बाहुबल, अधिक अधिक गरुआइ॥२५०॥

दो०—जो उद्भट भट आय के, शिव धनु देय चढ़ाय।
सो आनँद सरसाय उर, सुता ब्याहि लैजाय॥

+ तमकि धरहिं धनु मूढ़नृप, उठइ न चलहिं लजाय। कुंडलिया रामायण से—

कुंडलिया—धनु न नयो कर कटि नयो तमकि छुओ धनु आनि।
पाँव नवै शीशहु नवै भई प्रबल बल हानि॥
भई प्रबल बल हानि मान मुख को सब सूख्यो।
तन में चल्यो प्रस्वेद अधर दल बिद्रुम रूख्यो॥
रूख्यो बिद्रुम बदन भो देह दशा बिह्वल भयो।
लोचन मन दूनौ नये धनु न नयो कर कटि नयो॥

और भी रामरत्नाकर रामायण से

चौ०—गरुअ सुमेरु अधिक धनु जोही। ताको सकै टार अस को है॥
लज्जित हुइ नृप बैठहिं जाई। बालक मिल करतार बजाई॥

चौ०—द्वीप द्वीप के भूपति नाना । आये सुनि हम जो प्रण ठाना ॥
†देव दनुज धरि मनुज शरीरा । विपुल वीर आये रण धीरा ॥

अर्थ—अनेक द्वीप निवासी राजा लोग हमारे पक्के प्रण को सुनकर आये । देवता और राक्षस मनुष्य रूप धारण कर तथा बहुतेरे रण कुशल योद्धा भी आये ॥

दो०—कुँवरि मनोहरि विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय ।
पावन हार विरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय ॥ २५१ ॥

अर्थ—मनमोहिनी राजकुमारी, भारी जीति और बहुत ही प्रशंसनीय कीर्त्ति इन सब का पाने वाला धनुभंजनहार मानो कर्त्तार ने रचा ही नहीं (अर्थात् यदि कर्त्तार रचता तो वह अवश्य धनुष तोड़कर इन तीनों को पा लेता)

सूचना—'कुँवरि मनोहरि' का अर्थ मनमोहिनी राजकन्या ऐसा करने से कोई कोई यह शंका कर बैठते हैं कि जनक जी अपनी पुत्री की मनोहरता अपने मुख से कैसे कहेंगे तौभी 'कुँवरि' को कोई विशेषण न लगाकर 'मनोहरि' को 'विजय बड़ि' के साथ रखने से ऐसी शंका का भली भांति निवारण होजाता है सो यों कि—

(१) राजकुमारी (२) बड़ि मनोहरि विजय तथा (३) अति कमनीय कीरति, इन तीनों का पाने वाला कोई भी राजा ब्रह्मा ने नहीं रचा (इस में से ध्वनि यह निकल सक्ती है कि जिसे ब्रह्मा ने नहीं रचा अर्थात् जो आप ही अवतार ले आये हैं ऐसे रामचन्द्र जी कदाचित् हों तो हों)

परन्तु केवल मनोहर कहने से पुत्री का शृङ्गार वर्णन नहीं समझा जा सक्ता । क्योंकि इसी प्रकार का कथन दक्ष जी ने अपनी पुत्री सती के सम्बंध में कहा है—'सावित्र्या इव साधुवत्' अर्थात् सावित्री की नाईं शुद्ध आचरण वाली (भागवत स्कन्ध ४ अध्याय दूसरा श्लोक ११वां) और १२वें श्लोक में भी 'गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कट लोचनः' अर्थात् उस बन्दर की नाईं नेत्र वाले ने मेरी मृगछौनी की नाईं नेत्र वाली पुत्री का पाणिग्रहण करके (इत्यादि) ऐसे २ शब्द कहे हैं ॥

---

† देव दनुज धरि मनुज शरीरा । विपुल वीर आये रणधीरा—

कवित्त—पावक पवन मुनि पन्नग पतंग पितृ ज्योतिषंत जेते जग ज्योतिषिन गाये हैं ।
असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथ सरित सिन्धु "केशव" चराचर जे वेदन गनाये हैं ॥
अमर अजर अस अगी औ अनंगी सब बरणि सुनावै कौन ऐसे मुख पाये हैं ।
सीता के स्वयम्बर को रूप अवलोकिबे को भूपन को रूपधारि विश्वरूप आये हैं ॥

धनुप के पास तक नहीं गये थे जैसा ऊपर कह आये हैं ' जिन के कछु विचार मन माहीं । चाप समीप महीप न जाहीं ' ॥

चौ०—सब नृप भये योग उपहासी । जैसे विनु विराग सन्यासी ॥
+कीरति विजय वीरता भारी । चले चापकर बरबस हारी ॥

अर्थ—(धनुप के उठाने का प्रयत्न करने वाले) सब राजा हँसी के योग्य होगये जिस प्रकार विषयों का त्याग किये बिना सन्यासी हँसने के योग्य हो जाता है । ये लोग अपना यश, जय की इच्छा और बड़े पराक्रम को जबरई से मानो धनुप को सौंपकर चले गये (अर्थात् धनुप न उठा सकने के कारण इन राजाओं ने भले राजाओं के रोकने पर भी अपनी कीर्त्ति, विजय और भारी वीरता को गँवाया) ॥

चौ०—श्रीहत भये हारि हिय राजा । बैठे निज निज जाइ समाजा ॥
*नृपन्ह विलोकि जनक अकुलाने । बोले वचन रोप जनु साने ॥

अर्थ—ये राजा तेजहीन होकर मन मार अपनी २ समाज में जा बैठे । राजाओं की दशा देखकर जनक जी अधीर हो उठे और ऐसे वचन कहने लगे कि मानो क्रोध से भरे हों (भाव यह कि विदेह राजा बड़े धैर्यवान् थे तौ भी समयानुसार उचित वचन बोले जो बहुतेरों को क्रोधयुक्त समझ पड़े) ॥

+ कीरति विजय वीरता भारी । चले चाप कर बरबस हारी—कुंडलिया रामायण से—

कुंडलिया—धनु धन सब को हरि लयो मति गति नाम सदोप ।
यश कीरति बल बीरता धीरज तेज प्रताप ॥
धीरज तेज प्रताप नियम व्रत धर्म सुकर्मनि ।
अस्त्र शस्त्र की हारि रूप द्युति लाज काज गनि ॥
लाज काज पर गाज धरि राजनि धनुकर सो लियो ।
रीते बीते सब भये धनु धन सब को हरि लियो ॥

* नृपन्ह विलोकि जनक अकुलाने । बोले वचन रोप जनु साने—

श्लोक—नारिकेल समाकारा, दृश्यन्तेऽपिहि सज्जनाः ।
अन्ये बदरिकाकारा, बहिरेव मनोहराः ॥

अर्थ—सज्जन लोग नारियल के समान स्वरूप में दिखाई देते हैं (अर्थात् देखने में कठोर परन्तु हृदय से नम्र और मधुर गरी की नाई होते हैं) और दूसरे लोग बेर की नाई बाहर से नम्र दिखाई देते हैं (परन्तु भीतर से बेर की गुठली की नाई कठोर हैं) ॥

चौ०—जनकवचन सुनिसब नरनारी । देखि जानकिहि भये दुखारी ॥
†माषे लषन।कुटिल भईं भौंहैं । रदपट फरकत नयन रिसौंहैं ॥

अर्थ—जनक जी के वचन सुन और सीता जी की ओर देखकर सब स्त्री पुरुष दुखित हुए। लक्ष्मणजी क्रोधित हो उठे, उनकी भौंहें टेढ़ी होगईं, होंठ फड़कने लगे और आंखों से क्रोध झलकने लगा ॥

दो०—कहि न सकत रघुवीर डर, लगे वचन जनु बान ।
नाइ रामपदकमल शिर, बोले गिराप्रमान ॥ २५२ ॥

अर्थ—रामचंद्र जी के डर से कुछ कह नहीं सक्ते थे परन्तु जनक जी के वचन बाण की नाईं चुभ गये (इस हेतु) रामचंद्र जी के कमलस्वरूपी चरणों में शीस नवाकर यथायोग्य वचन कह उठे कि—

चौ०—रघुवंशिन्ह महँ जहँ कोउ होई । तेहि समाज अस कहइ न कोई ॥
‡कही जनक जस अनुचित बानी । विद्यमान रघुकुलमणि जानी ॥

अर्थ—रघुवंशियों मेंसे जहां कोई भी हो उस समाज में ऐसा कोई भी न कहेगा। जैसे अयोग्य वचन जनक जी ने रघुकुल श्रेष्ठ रामचंद्र जी के रहते हुए कहे हैं ॥

---

† माषे लषन कुटिल भईं भौंहैं । रदपट फरकत नयन रिसौंहैं—
कुंडलिया—लषन लाल को लाल मुख सुने जनक के बैन ।
फरके अधर प्रलाप को अरुण भये द्वउ नैन ॥
अरुण भये द्वउ नैन जोरि कर भे उठि ठाढ़े ।
करुणानिधि की ओर वचन बोले रिस बाढ़े ॥
बाढ़े रिस कह सुनु जनक वचन कहौ रघुवंश दल ।
राम कृपालु समाज महँ लषन लाल कहँ लाल मुख ॥

‡ कही जनक जस अनुचित बानी । विद्यमान रघुकुलमणि जानी—
सवैया—जात नहीं तन पीर सही, नृप बैन भरे विष तीर से लागे ।
धीर धरो नहिं जात कहीं कहा, ये सिगरे अंग दाह से दागे ॥
आप भुने "लखिते" न गुने कछु जो निधि[illegible] कहे रिस पागे ।
धीर [illegible] महँ प्रभुता रघुवंशिन के [illegible] [illegible] ॥

चौ०—कहहु काहि यह लाभ न भावा। काहु न शंकर चाप चढ़ावा।
×रहेउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलभरि भूमि न सके छुड़ाई।

अर्थ—कहिये तो सही! यह लाभ किस को नहीं भाता परन्तु किसी ने भी तो शिव जी के धनुष को न चढ़ाया। हे भाइयो! चढ़ाने और तोड़ने की तो कहै कौन किसी ने उसे अपने स्थान से तिल भर भी न हटाया॥

चौ०—अब जनि कोउ माखै भट मानी। ●वीर विहीन मही मैं जानी॥
+तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि वैदेहि विवाहू॥

अर्थ—आज से कोई घमंडी योधा डींग न मारै, मैंने समझ लिया कि पृथ्वी वीर रहित होगई। आशा छोड़ो और अपने अपने घर पधारो, विधाता ने जानकी का विवाह लिखा ही नहीं॥

चौ०—सुकृत जाइ जो प्रण परिहरऊँ। कुँअरि कुँआरि रहउ का करऊँ॥
जो जनतेउँ बिनभट भुवि भाई। तो प्रण करि होतेउँ न हँसाई॥

अर्थ—जो मैं अपना प्रण छोड़ता हूं तो धर्म जाता है, पुत्री कुंआरी बनी रहे, मैं लाचार हूं। हे भाई! यदि मैं जान लेता कि पृथ्वी पर कोई योधा है ही नहीं, तो फिर ऐसा प्रण ठान अपनी हँसी न कराता॥

× रहेउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिल भरि भूमि न सके छुड़ाई—

दोहा—नेक शरासन आसनै, तजी न केशवदास।
उपम कै धाक्यो सबै, राज समाज प्रकास॥

● वीर विहीन मही मैं जाना—

सवैया—देव अदेव नृदेव भये जिन [illegible]
[illegible]
[illegible]
"केशव" [illegible]

+ तजहु आस निज निज गृह जाहु। लिखा न विधि वैदेहि विवाहु—

कुंडलिया—[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

—हे प्रभु ! आप के प्रताप के आधार से धनुप को कठफूल की डंडी के समान
ू और जो ऐसा न करूं तो आप के चरणों की सौगंध खाकर कहता हूं कि मैं
ुप को हाथ से न छुऊंगा ॥

-लपन सकोप वचन जब बोले । डगमगानि महि दिग्गज डोले ॥
सकल लोक सब भूप डेराने । सिय हिय हर्ष जनक सकुचाने ॥

अर्थ—जब लक्ष्मण जी ने ऐसे क्रोध भरे वचन कहे तो पृथ्वी हिलने लगी और
ओं के हाथी कँप उठे । सम्पूर्ण मनुष्य तथा राजा लोग डर गये, सीता जी के
में आनंद हुआ और जनक जी लज्जित हुए ॥

०—गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं । मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं ॥
सैनहिं रघुपति लपन निवारे । प्रेम समेत निकट बैठारे ॥

अर्थ—विश्वामित्रजी, रामचंद्र जी और सब मुनिगण हृदय से ऐसे प्रसन्न हुए
कि बारम्बार उनके रोम खड़े हो उठते थे । रामचन्द्र जी ने नेत्रों के संकेत से लक्ष्मण
को रोका और प्यार से उन्हें अपने पास बिठलाया ॥

चौ०—विश्वामित्र समय शुभ जानी । बोले अतिसनेहमय बानी ॥
†उठहु राम भंजहु भवचापा । मेटहु तात जनकपरितापा ॥

अर्थ—विश्वामित्रजी ठीक अवसर जानकर अत्यंत प्रेम से भरी हुई वाणी बोले ।
हे राम उठो ! महादेवजी का धनुप तोड़ो ! और ऐसा करके हे प्यारे ! जनकजी का
दुःख दूर करो ॥

चौ०—सुनि गुरु वचन चरण शिर नावा । हर्ष विषाद न कछु उर आवा ॥

---

† उठहु राम भंजहु भवचापा । मेटहु तात जनक परितापा—

सवैया—सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने ।
बीस बिसे व्रत भंग भयो सो कहो अब "केशव" को धनु ताने ॥
शोक कि आग लगी परिपूरण आय गये घनश्याम बिहाने ।
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरु पुण्य पुराने ॥

भाव यह है कि जनक जी व सीता आदि सब शोक की आग में मानो जल रहे थे कि इतने में विश्वामित्र जी की आज्ञा से जो श्याम स्वरूप श्री रामचन्द्र जी खड़े होगये सो मानो घने बादल चढ़ आये हों, जिनकी वर्षा से जैसे जंगल की दवार ठंढी हो जाती है इसी प्रकार घनश्याम रामचन्द्र जी के धनुष तोड़ने से इन लोगों की जलन बुझने की आशा होगई ।

चौ०—सुनहु भानुकुल पंकजभानू । कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू ॥
×जो राउर अनुशासन पाऊं । कंदुक इव ब्रह्मांड उठाऊं ॥
कांचे घट जिमि डारौं फोरी । सकौं मेरु मूलक इव तोरी ॥

अर्थ—हे कमलस्वरूपी सूर्यवंश को सूर्य के समान प्रभु ! मैं अपने स्वभाव से कहता हूं कुछ अभिमान नहीं करता । जो आप की आज्ञा पाऊं तो ब्रह्मांड को गेंद की नाईं उठा लूं और उसे कच्चे घड़े की नाईं फोड़ डालूं, (यदि इस में सुमेरु पर्वत के कारण बाधा पड़े तो उस) सुमेरु पर्वत को भी मैं मूली के समान तोड़ सक्ता हूं ॥

चौ०—तव प्रताप महिमा भगवाना । का बापुरो पिनाक पुराना ।
नाथ जानि अस आयसु होऊ । कौतुक करौं विलोकिय सोऊ ।
कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं । योजन शत प्रमाण लै धावौं ॥

अर्थ—सो हे भगवान् ! ये सब आप के प्रताप ही से, विचारा जीर्ण धनुष किस हिसाब में है । हे स्वामी ! ऐसा जानकर आज्ञा दीजिये और जो तमाशा कर दिखाऊं उसे देखिये कि कमल की डंडी की नाईं धनुपको चढ़ाकर चार सौ कोस तक ले दौड़ूं ॥

दो०—*तोरौं छत्रकदंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ ।
जो न करौं प्रभुपदशपथ, पुनि न धरौं धनुहाथ ॥ २५२ ॥

शब्दार्थ—छत्रक = कठ फूल, कुकुरमुत्ता ॥

× जो राउर अनुशासन पाऊं । कंदुक इव ब्रह्मांड उठाऊं—

क०—अब तो न सही जात पीर रघुवीर धीर तोर से लागे हैं चैन आयसु जो पाऊं मैं ।
"ललित" मरोरि महि वारिधि में डारौं बोरि तोरि दिग दंतिन के दंतन दिखाऊं मैं ॥
रावरे प्रताप बल सांची कहौं रघुवीर मेरु लै उखारि छिति छोर लगि धाऊं मैं ।
अटकि रहेहो कहा मुख ते निकारिये तो झटकि शरासन को चटकि चढ़ाऊं मैं ॥

* तोरौं छत्रकदंड जिमि, तवप्रताप बल नाथ—हृदय राम कवित्त हनुमन्नाटक से—

सवैया—बोल उठ्यो लघुवीर सुनो रघुवीर कहो छिन माहि उठाऊं ।
थी मुख ते न कहो कछु दासहि भौंहन को नेकु आयसु पाऊं ॥
पाय छुवौं दाबि कै अबहीं रवि को कर वाम सों जाय छपाऊं ।
राम उदाम तुम्हें दिखराय कै देहुं प्रताप कहां बढ़काऊं ॥

अर्थ—चक्रवाकरूपी मुनि और देवगणों का दुःख दूर हुआ, इसहेतु वे फूल बरसा कर अपनी भक्ति बताने लगे। रामचन्द्र जी ने प्रीतिपूर्वक गुरु जी के चरणों को प्रणाम कर सब मुनियों से आज्ञा मांगी॥

चौ०—सहजहि चले सकल जगस्वामी। ‡मत्तमंजु वर कुंजरगामी॥
चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तनु भये सुखारी॥

अर्थ—मस्त धीमी चाल वाले सुन्दर हाथी के समान चलने वाले सम्पूर्ण संसार के स्वामी श्री रामचन्द्र जी अपनी स्वाभाविक चाल से चले। रामचन्द्र जी के चलते समय जनकपुर के सब स्त्री पुरुष रोमांचित हो प्रसन्न चित्त हुए॥

चौ०—+वंदि पितर सुर सुकृत सँभारे। जोकछु पुन्य प्रभाव हमारे॥
तौ शिव धनुष मृनालकी नाईं। तोरहिं राम गणेश गोसाईं॥

अर्थ—अपने पुरुषाओं और देवताओं की वंदना करके अपने सत्कर्मों का स्मरण किया (और कहा) यदि हमारे धर्म कर्मों का कुछ फल होवे। तो हे गणेश गोसाईं! रामचन्द्र जी शिव जी के धनुष को कमल की डंडी के समान तोड़ डालें॥

दो०—रामहिं प्रेम समेत लखि, सखिन्ह समीप बुलाइ।
सीता मातु सनेहवश, वचन कहे बिलखाइ॥ २५५॥

अर्थ—सीता जी की माता (सुनयना जी) रामचन्द्र जी को प्यार से देख सखियों को अपने पास बुला कर प्रेम के कारण दुःख भरे वचन कहने लगीं॥

रविप्रताप निरखत मनो उडुगन ज्योति मलीन॥
उडुगन ज्योति मलीन दीन बल हीन विराजत।
जड़ खल दल दलमलेउ साधु सुर सज्जन गाजत॥
गाजत दुंदुभि सुमन सुर मगन नारि नर पेखि कै।
थकित चकित पल नहिं लगत रामरूप नृप देखि कै॥

‡ मत्त मंजु वर कुंजरगामी—यही छटा अन्य प्रकार से उत्तर रामचरित के ६ वें सर्ग में भी दर्शाई है "धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्" अर्थात् वह धीर गम्भीर धीर चाल से मानो पृथ्वी को दबाता आ रहा है॥

+ वंदि पितर सुर सुकृत सँभारे .... गणेश गोसाईं—जनकपुर के सब लोग मानो यह विचार रहे थे कि—

दोहा—जन्म जन्मान्तर के सुकृत, जो कछु होंय हमार।
तो ब्याहै यह जानकी, सुन्दर श्याम कुमार॥

ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये। ठवनि युवा मृगराज लजाये

अर्थ—गुरुजी की आज्ञा सुन उनके चरणों पर शिर नवाया परन्तु रामचन्द्रज हृदय में आनंद व खेद कुछ भी नहीं हुआ। वे अपने सादे स्वभाव ही से उठ हुए उस समय की छटा ने जवान सिंह को भी मात कर दिया॥

दो०—×उदित उदयगिरि मंचपर, रघुवर बाल पतंग।
विकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग॥ २५४।

अर्थ—उदयाचलरूपी सिंहासन पर रामचंद्र रूपी प्रातः काल के सूर्य का उ हुआ जिस से सज्जनरूपी सब कमल प्रफुल्लित हुए और उनके भ्रमररूपी नेत्र प्र हुए (अर्थात् रामचंद्रजी को धनुष तोड़ने के निमित्त उठ कर खड़े देख सज्जन हर्षित हुए और उनके नेत्र रामचन्द्र जी की ओर टकटकी बांधकर रह गये जिस प्र सूर्य के उदय होने से कमल खिलते हैं और तब भौंरे प्रसन्न होते हैं)॥

चौ०—नृपन्ह केरि आशा निशि नाशी। वचन नखत अवली न प्रकाशी
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटीभूप उलूक लुकाने

अर्थ—सम्पूर्ण राजाओं की आशारूपी रात्रि मिट गई और उनके वचनरू नक्षत्रों की पंक्तियों का प्रकाश दब गया (अर्थात् सम्पूर्ण राजा हताश हुए इसी हे उन का डींग मारना बंद होगया) घमंडी राजा कुमुद के समान सिकुड़े और कपटभे धारी राजारूपी उल्लू छिप गये (अर्थात् घमंडी राजा लज्जित हुए और देवता, राक्ष आदि जो राजाओं के रूप धर कर आये थे सो छिपने लगे)॥

चौ०—भये विशोक कोक मुनि देवा। †वर्षहिं सुमन जनावहिं सेवा।
गुरुपद वंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा॥

× उदित उदयगिरि मंच पर—

सवैया—शोभित मंचन की अवली गजदन्तमयी छवि उज्ज्वल छाई।
ईश मनो वसुधा में सुधारि सुधाधर मंडल मंडि जुन्हाई॥
ता महँ "केशव दास" विराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवन सों जनु देवसभा शुभ सीयस्वयम्बर देखन आई॥

† वर्षहिं सुमन जनावहिं सेवा—कुंडलिया रामायण में

कुंडलिया—रामचन्द्र नृप देखि कै पुनि मुं

अर्थ—राजा की सब चतुराई जाती रही, हे सखी ! विधाता की करतूति कुछ समझ में नहीं आती, (तब) चतुर सखी मधुर वचन बोली कि हे रानी जी ! प्रतापवान् को छोटा न समझना चाहिये ॥

चौ०—कहँ कुम्भज कहँ सिंधु अपारा । सोखेउ सुयश सकल संसारा ॥
रविमंडल देखत लघु लागा । उदय तासु त्रिभुवन तम भागा ॥

शब्दार्थ—कुंभज = अगस्त्य ऋषि ।

अर्थ—कहां तो अगस्त्य ऋषि जी और कहां भारी समुद्र, उस को पीकर उन्हों ने संसार में अपनी सुन्दर कीर्त्ति फैलाई । सूर्य मण्डल देखने में तो छोटा लगता है परन्तु उस के उदय होने से तीनों लोक का अंधकार मिट जाता है ॥

दो०—मंत्रपरम लघु जासु वश, विधि हरि हर सुर सर्व ।
महामत्त गजराज कहँ, वश कर अंकुश खर्व ॥ २५६ ॥

अर्थ—मंत्र बहुत छोटा है परन्तु ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और सम्पूर्ण देवता उसके आधीन रहते हैं इसी प्रकार मतवाले हाथी को भी छोटा सा अंकुश अपने वश में रखता है ॥

चौ०—काम कुसुम धनुशायक लीन्हे । सकल भुवन अपने वश कीन्हे ॥
देवि तजिय संशय अस जानी । भंजब धनुष राम सुनु रानी ॥

अर्थ—कामदेव फूलों के धनुष बाण ही से सम्पूर्ण संसार को अपने आधीन किये हैं । हे देवी ! ऐसा जान कर सन्देह को त्यागो, हे रानी जी सुनिये ! रामचन्द्र जी धनुष को तोड़ डालेंगे ॥

चौ०—सखी वचन सुनि भइ परतीती । मिटा विषाद बढ़ी अति प्रीती ॥
तब रामहिं विलोकि वैदेही । सभय हृदय विनवति जेहि तेही ॥

अर्थ—सखी के ऐसे वचनों को सुन कर रानी जी को विश्वास आगया, दुःख दूर होगया और विशेष प्रेम बढ़ा । उसी समय सीता जी भी रामचन्द्र जी को देख कर हृदय से भयभीत हो जिस को देखो उसी देवता की विनती करने लगीं ॥

मंत्र परम लघु जाके वश में सुरगण सकल विचारो ।
लघु को प्रभुता श्रेष्ठ दई विधि चित चिन्तन सब टारो ।
राज समाज आज शिव धनु तिनि तोरहिं कठिन करारो ।
तेजवन्त " ब्रजचन्द " राम ये अति बालक अनुसारो ।

चौ०–सखि सब कौतुक देखनहारे। जेउ कहावत हितू हमारे
कोउ न बुझाइ कहइ नृप पाहीं। ये बालक अस हठ भल नाहीं

अर्थ—हे सखी! जो हमारे हितकारी कहे जाते हैं, वे सब तमाशा देख रहे (उन में से) कोई भी राजा जी से समझा कर नहीं कहता कि ये बालक हैं इन के सा ऐसा हठ ठीक नहीं। अथवा यह आप की बालक की नाईं हठ ठीक नहीं॥

चौ०–रावण बाण छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा।
*सो धनु राजकुँअर कर देहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं।

अर्थ—जिस धनुष को रावण और बाणासुर सरीखे योद्धाओं ने छुआ तक न, तथा (जिस के उठाने के हेतु) सब राजा बल का अभिमान कर के हार बैठे। व धनुष राजकुमार के हाथ में देते हैं, भला हंस का छौना कहीं मंदराचल को उठा सक्ता है? (अर्थात् ऐसे सुकुमार राजकुमार से धनुष तोड़ने की आशा निरर्थक है)॥

चौ०–भूप सयानप सकल सिरानी। सखि विधि गति कछु जात न जानी।
बोली चतुर सखी मृदुबानी। †तेजवंत लघु गनिय न रानी॥

शब्दार्थ—सयानप = चतुराई। सिरानी = जाती रही॥

---

* सो धनु राजकुँअर कर देहीं। बाल मराल कि मन्दर लेहीं—

सवैया—ये हो सखी न लखी अब जाति बुझोति न काहू करैं दइ मारे।
कौतुक देखनवारे सभी नृप को सिख देत न हेत विचारे॥
जो धनु धारन टारन को बलवान दशानन बान से हारे।
"वन्दि" सो धारि हैं टारि हैं क्योंकर बाल मराल से ये नृप वारे॥

† तेजवंत लघु गनिय न रानी। इत्यादि—लाला मन्नीलाल (व्रजचन्द) कृत राग विनोद से—

राग कालिंगड़ा—रानी तनिक धीर उर धारो।
अति प्रवीन इक सुमति सहेली यों मृदु वचन उचारो॥
कहँ गागरसुत कह सागर जल अति अपार विस्तारो।
सोख्यो धरि अंगुष्ठ गाढ़ में विदित सुयश उजियारो॥
देखत में रवि विम्ब तनक सो लागत तनक निहारो।
उदय होत ताके त्रिभुवन में रहत न कहुँ अँधियारो॥
काम कुसुम की लै कमान कर कियो स्ववश जग सारो।
अंकुश के वश रहत निरन्तर ज्यों गयंद मतवारो॥ (अंश परम)

अर्थ—भलीभाँति नेत्रों से निहार निहार कर रामचन्द्र जी की छटा देखी, परन्तु पिता के प्रण की सुध कर के फिर भी चित्त को चिंता हुई। (सो यों कि) हे पिता! तुम ने बड़ा कठिन प्रण ठान लिया है कुछ हानि लाभ का विचार न समझा॥

चौ०—×सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई॥
कहँ धनु कुलिशहु चाहि कठोरा। कहँ श्यामल मृदुगात किशोरा॥

अर्थ—कोई मंत्री भी डर के मारे सिखापन नहीं देता, बुद्धिमानों की सभा में यह बड़ा अयोग्य बर्त्ताव होरहा है। कहां तो वज्र की नाईं कठोर धनुष और कहां यह श्यामला, सुकुमार छोटी अवस्था का शरीर?

चौ०—विधि केहि भाँति धरउँ उरधीरा। सिरिस सुमन किमि बेधिय हीरा॥
सकल सभा की मति भइ भोरी। †अब मोहि शंभुचाप गति तोरी॥

अर्थ—हे विधाता! मैं किस प्रकार से हृदय में धीरज धरूं, सिरिस के फूलों से कहीं हीरा छेदा जा सक्ता है? सम्पूर्ण सभा वालों की तो बुद्धि नष्ट होगई है अब तो हे शिव धनु! मुझे तेरा ही भरोसा है॥

चौ०—निज जड़ता लोगन पर डारी। होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी॥
अति परिताप सीय मन माहीं। लवनिमेष जनु युग सम जाहीं॥

चन्द्रायणा छन्द—कोमल मूरति कोशलराज किशोर है।
शम्भु शरासन कमठ सु पृष्ठ कठोर है॥
केहि विधि होय अधिज्य असम्भव बात है।
अति दारुण प्रण कियो अहह तुम तात है॥

× सचिव सभय सिख देइ न कोऊ। बुध समाज बड़ अनुचित होई—

श्लोक—न सा सभा यत्र न सन्तिवृद्धा, वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मं।
धर्मं स नो यत्र न सत्यमस्ति, सत्यं नतद्यच्छल मभ्युपैति॥

अर्थात् वह सभा नहीं जहां वृद्ध नहीं, वे वृद्ध नहीं जो धर्म नहीं बतलावें, वह धर्म नहीं जिसमें सत्य नहीं, वह सत्य नहीं जो छल से मिला है॥

† अब मोहि शंभुचाप गति तोरी—

क०—ये हो शंभु चाप कृपालु हौं निहोरौं तुम्हें, मांगौं मन भायो वरदान यह पाऊं मैं।
दीजै हो प्रसन्न अति दाता फल चार के हो, आनें गौरि संयुत तिहारो गुण गाऊं मैं॥
है तो तात त्यागें प्रण कै तो मृदु होवै चाप, तबै साँवरे को जयमाला पहिराऊं मैं।
"रसिक बिहारी" त्यागि कानँद उमग रंग, राम दरस्वान संग अवध सिधाऊं मैं॥

चौ०—मन ही मन मनाव अकुलानी । होउ प्रसन्न महेश भवानी ॥
+करहु सुफल आपन सेवकाई । करि हित हरहु चाप गरुआई ॥

अर्थ—मन ही मन घबराकर विनती करने लगीं कि हे शिव पार्वती जी ! प्रसन्न हूजिये ? आप की जो सेवा की है उसे सार्थक कीजिये, कि दया कर धनुष के भारीपन को घटा दीजिये ॥

चौ०—*गणनायक वरदायक देवा । आजु लगे कीन्हउँ तव सेवा ॥
वार बार सुनि विनती मोरी । करहु चाप गरुता अति थोरी ॥

अर्थ—हे गणेश जी ! वरदान देने वाले देवता, आज तक मैंने आप की सेवा की है । वारंवार मेरी विनय सुन कर धनुष के भारीपन को बहुत ही थोड़ा कर दीजिये ॥

दो०—देखि देखि रघुवीर तन, सुर मनाव धरि धीर ।
भरे विलोचन प्रेमजल, पुलकावली शरीर ॥ २५७ ॥

अर्थ—रघुवीर के शरीर को वारंवार देख कर धीरज धर के देवताओं को मना रहीं थीं । प्रेम के मारे नेत्रों में जल भर आया और शरीर के रोंगटे खड़े होगये ॥

चौ०—नीके निरखि नयन भरि शोभा । पितु प्रण सुमिरि बहुरि मन छोभा ॥
अहह †तात ! दारुण हठ ठानी । समुझत नहिं कछु लाभ न हानी ॥

+ करहु सुफल आपन सेवकाई । करि हित हरहु चाप गरुआई ॥

सवैया—हे करुणाकर शंकर देव करी तुम्हरी शुचि सेव अघाई ।
आय गयो समयो अब सो कर जोरि निहोरि कहौं मन भाई ॥
श्री रघुनाथ के पंकज हाथ में नाथ शरासन की गरुआई ।
"यंदि" समूलहु फूलहु ते लग तूलहु ते हलकी करुपाई ॥

* गणनायक वरदायक देवा—मान कवि कृत कृष्णखंड भाषा सेः—

छप्पय—जय गजमुख मुख सुमुख सुखद सुखमा सरसायन ।
जय जग सिद्ध समृद्धि वृद्धि बुधिवर बरसायन ॥
जय मंगल आचरण मंगला चरण विविधि विधि ।
जय वर वरण सरोज कलित कल्लोल कलानिधि ॥
जय शम्भु सुवन दुख दवन हर भुवन भुवन गुणगाथ जय ।
जय [illegible] जय, जय जय जय गणनाथ जय ॥

† अहह तात दारुण हठ ठानी—हनुमन्नाटक भाषा (श्री राजा चतुर दास जी कृत)

चौ०—×गिरा अलिनि मुखपंकज रोकी। प्रकट न लाज निशा अवलोकी॥

शब्दार्थ—गिरा = वाणी। अलिनि = भौंरी।

अर्थ—सीता जी ने वाणीरूपी भौंरी को मुखरूपी कमल में रोक रक्खा, लाजरूपी रात्रि को देख कर उसे प्रकट नहीं किया (अर्थात् सीता जी कुछ कहना चाहती थीं परंतु गुरुजनों की लाज के मारे उन्हों ने कहा नहीं, जिस प्रकार रात्रि के आजाने पर कमल पर बैठी हुई भौंरी उसी में बंद होकर रहती है और यद्यपि उसे फोड़ कर निकल जाने की उसमें शक्ति रहती है तौभी वह प्रेम के कारण उस में प्रातः काल तक बंद ही रहती है)

चौ०—‡लोचनजल रह लोचनकोना। †जैसे परम कृपण कर सोना॥

अर्थ—नेत्रों का जल नेत्रों के कोनों में ही रह गया (अर्थात् आंसू कुछ बहे नहीं) जिस प्रकार बड़े कंजूस मनुष्य का द्रव्य उसके घर ही में कहीं छिपा रहता है।

भाव यह है कि प्रेम और दुःख दोनों के कारण नेत्रों में आंसू तो आये परन्तु सीता जी ने उन्हें इस प्रकार दबाया कि सखियों आदि के साम्हने भी स्पष्ट रूप से वे दिखे नहीं, जैसे बड़ा कंजूस अपने द्रव्य को दूसरों की दृष्टि से छिपाये रखता है॥

चौ०—सकुची व्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरज प्रतीति उर आनी॥

× गिरा अलिनि मुखपंकज रोकी। प्रकट न लाज निशा अवलोकी—स्त्रियों के शरीर पर धारण करने के १२ आभूषण तो होते ही हैं जो अन्यत्र लिखे हैं, परन्तु यथार्थ १२ आभूषण तो लज्जा आदि सद्गुण हैं जो अर्जुनविलास नामी ग्रंथ से उद्धृत किये जाते हैं—

सवैया—शील औ लाज मिठास बतान में तैसी बड़ाई स्वधर्म प्रपूरन।
साधुता और पतिव्रत नेम निबाहै सदा सो न काहू को दूषन॥
तैसा विनय औ आचार [illegible] गुरु लोगन सेवे को [illegible]।
ये हैं तियान को तोष से सुख कारिनि बारह भूषन॥

‡ लोचन जल रह लोचन कोना—(रस वाटिका से) विप्रलंभ शृंगार का ऐसा उत्तम उदाहरण है॥

सवैया—पी चलिबे की घरी [illegible] सुनि चन्द्रमुखी चित [illegible]।
[illegible] मुख पै [illegible]॥
[illegible]।
[illegible]॥

† जैसे परम कृपण कर सोना—बड़े [illegible] कंजूस का द्रव्य [illegible]

अर्थ—(हे प्रभु ! तुम) अपनी कठोरता और लोगों पर दया कर रामचन्द्र को देख हलके हो जाओ। सीता जी के मनमें इतना भारी क्लेश था कि निम एक पल भी युग के समान मान पड़ता था ॥

दो०—×प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि, राजत लोचन लाल।
खेलत मनसिज मीनयुग, जनु विधु मंडल डोल ॥ २५८

शब्दार्थ—लोल = चंचल। मनसिज = (मनसि = हृदय से + जन् = उत्पन्न होना) = हृदय से उत्पन्न होने वाला, अर्थात् कामदेव। युग = दो। डोल खेलत = हिंडोले झूलत ॥

अर्थ—(सीताजी के) चंचल नेत्र (जो कभी प्रेम के कारण) रामचन्द्र की ओर देखते थे और (कभी लाज के मारे) पृथ्वी की ओर देखने लगते थे इस प्रकार शोभायमान थे कि मानो कामदेव की दो मछलियां चंन्द्र मण्डल में हिंडोल झूल रहीं हों (अर्थात् गोसाईं जी सीता जी के मुख को चंद्र मण्डल, उन के नेत्र को कामदेव की मछलियां और नेत्रों के गोलकों को जो बारंबार रामचन्द्र जी मुख देखने को ऊपर उठते और लज्जा के मारे पृथ्वी की ओर जाते थे सो मानो हिंडोलने में ऊपर नीचे झूलना मान कर ऐसी तर्कना बांधते हैं कि जिस प्रका किसी सफ़ेद रंग की चौड़े मुँह वाली बोतल में पानी भर कर उस में जो मछलिय डाली जाती हैं वे क्रम से ऊपर नीचे आया जाया करती हैं, और मन में यों कह रहीं थीं कि —इन दुखियाँ अँखियान को, सुख सिरजोई नाहिं। देखत बनै न देखते बिन देखे अकुलाहिं) ॥

× प्रभुहि चितहि पुनि चितइ महि, राजत लोचन लोल। इत्यादि—इस कथन की छटा नीचे लिखे हुए राग मलार में विस्तार सहित दर्शाई है—

राग मलार—झूलत तेरे नयन हिंडोरे ॥
श्रवण खंभ भुइँ भई मयारी दृष्टि किरण डाँड़ी चहुँओरे ॥
पटली अधर कपोल सिंहासन बैठे युगल रूप रति जोरे।
बरुनी चमर ढुरत चहुँदिशि ते लर लटकत फुँदना चित चोरे ॥
दुर देखत अलकावलि अलि कुल लेत है पवन सुगंध झकोरे।
कचघन आड़ दामिनी दमकत इंद्र माँग धन करत निहोरे ॥
थकित भये मंडल युवतिन के युग ताटंक लाज मुख मोरे।
रसिक प्रीतम रस भाय झुलावत बिविध कटाक्ष तान तृण तोरे ॥

दो०—लषन लखेउ रघुवंशमणि, ताकेउ हरकोदंड ।
पुलकि गात बोले वचन, चरण चाँपि ब्रह्मंड ॥ २५६ ॥

अर्थ—जब लक्ष्मण जी ने देखा कि रघुकुल श्रेष्ठ रामचन्द्र जी शिव जी के धनुष को ताकने लगे। तब तो वे अपने चरणों से ब्रह्मांड को दबा कर प्रसन्नता पूर्वक यों कहने लगे ॥

चौ०—+दिशि कुंजरहु कमठ अहि कोला । धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
राम चहहिं शंकरधनु तोरा । होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥

शब्दार्थ—दिशिकुंजर = दिशाओं के हाथी अर्थात् दिग्गज । कमठ = कच्छप, जो अपनी पीठ पर पृथ्वी को धारण किये है । अहि = सर्प, शेष नाग जो कच्छप पर ठहरे हुए पृथ्वी को धारण किये हैं। कोला (कोल) = वाराह, जो पृथ्वी के धारण कर्त्ता हैं

अर्थ—हे दिग्गजो ! हे कच्छप ! हे शेषनाग ! हे वाराह तुम सब धीरज के साथ पृथ्वी को सम्हाले रहो जिस में वह डगमगाय नहीं। श्री रामचन्द्र जी शिव जी के धनुष को तोड़ना चाहते हैं इस हेतु तुम सब हमारी आज्ञा सुन कर चैतन्य होजाओ ॥

चौ०—चाप समीप राम जब आये । नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाये ॥

अर्थ—जब रामचन्द्र जी धनुष के पास पहुंचे तब सब स्त्री पुरुषों ने अपने देवताओं तथा शुभ कर्मों का स्मरण किया (इस अभिप्राय से कि हम लोगों के अच्छे कर्मों का फल देवगण हमें इस भांति देवें कि रामचन्द्र जी धनुष को तोड़ सकें) ॥

चौ०—सब कर संशय अरु अज्ञानू । मंद महीपन्ह कर अभिमानू ॥
भृगुपति केरि गर्व गरुआई । सुर मुनि वरन्ह केरि कदराई ॥
सिय कर सोच जनक पछतावा । रानिन्ह कर दारुण दुख दावा ॥
शंभुचाप बड़ बोहित पाई । चढ़े जाइ सब संग बनाई ॥

अर्थ—सब लोगों का सन्देह तथा अज्ञान, मूर्ख राजाओं का घमंड, परशुराम का अहंकार और बड़प्पन, देवताओं और श्रेष्ठ मुनियों का डर। सीता की चिन्ता,

---

+ दिशि कुंजरहु कमठ अहिकोला—आदि (रामरहस्य से)—

सवैया—दिशि कुंजर कच्छप कोल सुनौ महिशीस पै शेष जु धारन पारे।
यहि औसर श्री रघुवंशमणी शिवचाप प्रभंजन को चित धारे॥
दृढ़ता से धरा धरिये सबही यहि ते पहिले "द्विज देव" पुकारे।
बल संयुत होउ सबै दिगपाल यही अनुशासन होत हमारे॥

चौ०—*तन मन वचन मोर प्रण साँचा । रघुपतिपदसरोज मन राँचा
तौ भगवान सकलउरवासी । करिहहिं मोहि रघुबर कै दासी

अर्थ—अपने चित्त की घबराहट को विशेष जान लज्जित हुईं तौभी धीर धर के हृदय में भरोसा रख विचारने लगीं कि जो मनसा वाचा कर्मणा से मेरा प्रण सच्चा होकर मेरा मन रघुनाथ जी के चरणारविंदों में लगा है तो घट घट जानने वाले परमात्मा मुझे रामचन्द्र जी की दासी करेंगे ॥

चौ०—†जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलइ न कछु सन्देहू ।

अर्थ—(क्योंकि) जिसका जिस पर सच्चा प्रेम होता है वह उसे मिलता है इस में कुछ सन्देह नहीं ॥

चौ०—प्रभुतन चितै प्रेमप्रण ठाना । कृपानिधान राम सब जाना ।
सियहि विलोकि तकेउ धनुकैसे । चितव गरुड़ लघुव्यालहि जैसे ।

अर्थ—रामचन्द्र जी की ओर देख कर प्रेम का दृढ़ निश्चय कर लिया, दयासागर रामचन्द्र जी ये भव विचार जान गये । सीता जी को देख कर धनुष को इस प्रकार देखने लगे जिस प्रकार गरुड़ छोटे सर्प को (तुच्छ मान कर) देखता है ॥

भी उसे स्वप्न तक में दे डालने का विचार ही चित्त को चिंताग्रस्त करता है—

क०—सूम पतनी सों कहै सुन सपने की बात अकथ कहानी रात बरबस हारो तो
चांदी को खरो तो जिमी गाड़के धरो तो ताहि मन में विचार खोद हाथ के निकारो तो ।
ताही समय आय एक कवि ने कवित्त पढ़ो ह्वै कै प्रसन्न ताहि दीवो अनुसारो तो
हो तो कुल दाग यह जेठन के भाग अरी जाग ना परतो तो हौं रुपैया दै डारो तो ।

* तन मन वचन मोर प्रण साँचा ··· ··· ··· ··· ··· सो तेहि मिलइ न कछु सन्देहू—
ये तीन चौपाइयाँ नीचे के दो श्लोकों का ठीक २ उल्था ही जँचता है—

श्लोक—कायेन मनसा वाचा यदि सत्यं पणं मम ।
राघवेन्द्रस्य पादाब्जे मनश्चमे रतिं गतम् ॥ १ ॥
तर्हि सर्वगतो देवस्तद्दासी माङ्करोतु वै ।
यस्या यस्मिन् पर स्नेहं सतां प्राप्यो न संशयः ॥ २ ॥

† जहि के जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलइ न कछु सन्देहू—

क०—कौन काज भौंरन को कमल बुलावत हैं कौन काज बुलबुल पर्यंक मडरात हैं ।
चन्द्रमा की चिट्ठी कहूं गई है चकोरन को मेघ की गराज ले मयूर हरषात हैं ॥
आज लौं सरोवर ने हंस ना बुलायो कहूं कीर कीर कैर कैर थोंहीं फुररात हैं ।
बूझि देखी गुणीजन पंडित प्रवीण लोग जहां आप देखे तहां आप हो लौं जात हैं ॥

शब्दार्थ—तृषित = प्यासा। सुधा = पानी॥

अर्थ—(रामचन्द्र जी ने) देखा कि सीता जी बहुत ही व्याकुल हैं (यहां तक कि) एक पल भर भी उन्हें एक कल्प के समान व्यतीत होता है। (तो विचारने लगे कि) जो प्यासा प्राणी पानी बिना प्राण त्याग देवे तो फिर मरने पर उसे तालाब भर पानी भी किस काम का॥

चौ०—×का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूक पुनि का पछताने॥
***अस जिय जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति विशेखी॥**

× का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूक पुनि का पछताने—

श्लोक—निर्वाण दीपे किमु तैल दानम्, चोरेगते वा किमु सावधानम्।
पयोगते किं वनिता विलासः, पयोगते किं खलु सेतुबंधः॥

अर्थ—दीपक के बुझ जाने पर उस में तेल डालने से क्या, चोरों के चले जाने पर सावधानी किस काम की, जवानी ढल जाने पर स्त्रीप्रेम किस काम का और पानी के निकल जाने पर पुल बांधने से क्या लाभ होगा (अर्थात् ये सब उपाय निरर्थक होंगे)॥

और भी—मनोहर कविकृत नीति शतक से—

दो०—समय पाय आछे पुरुष, करत भलाई तात।
समय चूक की हूक सो, बड़े बड़े बिलखात॥

* अस जिय जानि जानकी देखी—जानकी जी के हृदय के विचार, श्री रामचंद्र जी का झट से धनुष तोड़ना आदि सब नीचे की ग़ज़ल में स्पष्ट रूप से दर्शाये हैं (सांगीत रत्नाकर से)—

ग़ज़ल—कठिन है प्रण पिता जी का ये शम्भू चाप भारी है।
ये रह रह सोचती सीता जी दिल में बेकरारी है॥१॥
ख़याले पाक में आना श्री आकर झट निकल जाना।
नज़ाकत उस तरफ ऐसी इधर ये काम भारी है॥२॥
मिलेगा हाय रघुवर सा हमें वर किस स्वयम्बर में।
हिरासां दिल में होती ना उमेदी दिल पै तारी है॥३॥
उठाया चाप रघुवर ने श्री भंजन कर दिया दम में।
खो सीता रह गई कहती ये भारी है ये भारी है॥४॥
पिन्हायो मग्न हो जयमाल कि रघुवर को सिया जी ने।
हुई जानी विधाता ने भली जोड़ी सम्हारी है॥५॥
"दया" सुन लो ज़रा ठहरो कोई कानों में कहता है।
सिया जी राम जी की जै जै बोलो जै जै कारी है॥६॥

जनक जी का सोच तथा रानियों के बड़े भारी दुःख की जलन। ये सब मिल शिव जी के धनुष को बड़ी भारी जहाज़ समझ कर उस पर जा बैठे (अर्थात् सं अज्ञान, अभिमान, गर्व, गरुआई कदराई, सोच, पछतावा, दारुण दुख दावा इन ने धनुष का आधार ले रक्खा था, धनुष न टूटता तो ये सब बने ही रहते, धनुष टूटने पर उसी के साथ नष्ट हो जायँगे जैसा आगे कहा जायगा)॥

चौ०–रामबाहुबलसिंधु अपारा। चहत पार नहिं कोउ कनहारा।

शब्दार्थ—कनहार शुद्ध शब्द कर्णधार (कर्ण = पतवार + धार = पकड़ने वाला) = पतवार पकड़ने वाला, नाव खेने वाला॥

अर्थ—रामचन्द्र जी की भुजाओं का बल ही मानो अपार समुद्र था, ये स इस के पार जाना चाहते थे पर कोई खेने वाला न था। (भाव यह कि ये सब रामचन्द्र जी के बल में सन्देह समझते थे कि धनुष न टूट सकेगा परन्तु उसके तोड़ने बाधा डालने वाला कोई न था अर्थात् किसी को यह शक्ति कहां थी जो रामचन्द्र जी को धनुष तोड़ने से रोकै। ऐसा ही रोकने वाला यहां पर खेने वाला कहा गया है, जो था ही नहीं, तभी तो ये सब के सब धनुष टूटने के साथ ही डूब जावेंगे इसी को गोस्वामी जी ने आगे के २६१वें सोरठे में कहा है 'बूड़ी सकल समाज' आदि)॥

दो०–राम बिलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन, जानी बिकल बिशेखि॥ २६०॥

अन्वय—राम (ने) सब लोग बिलोके (उन्हें) चित्र लिखे से देखि, कृपायतन सीय चितई (तो) बिशेखि बिकल जानी।

अर्थ—रामचन्द्र जी ने जब सब लोगों की ओर देखा तो उन्हें टकटकी लगाये अपनी ओर देखते हुए समझ दयासागर प्रभु ने सीता की ओर देखा तो उन्हें बहुत व्याकुल जाना॥

चौ०–देखी बिपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कलपसम तेही॥
†तृषित बारि बिन जो तनु त्यागा। मुये करै का सुधा तड़ागा॥

---

† तृषित बारि बिन जो तनु त्यागा। मुये करै का सुधा तड़ागा—राम रहस्य सं—
सवैया—प्यासो तजै तन बारि बिना [illegible]।
[illegible]॥
[illegible]।
[illegible]॥

-तेहि छण राम मध्य धनु तोरा। ×भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा॥
र्थ—(धनुष को) उठाते चढ़ाते और तानते हुए किसी ने ठीक ठीक न
यद्यपि सब खड़े खड़े देखते रहे। उसी पल भर में रामचन्द्र जी ने धनुष को
। तोड़ डाला जिस की बड़ी भारी ध्वनि संसार भर में भर गई॥

भरि भुवन घोर कठोर रव रविबाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हे सकल बिकल बिचारहीं।
* कोदंड भंजेहु राम तुलसी † जयति बचन उचारहीं॥

अर्थ—बड़ा भयंकर शब्द जगत में भर गया जिस से सूर्य के घोड़े भी रास्ता छोड़
लगे। दिशाओं के कुंजर चिंघाड़ने लगे, पृथ्वी हिलने लगी और शेषनाग,
। और बाराह (जो तीनों पृथ्वी को सम्हाले हुए हैं) गड़बड़ा गये। देवता,
। और मुनिगण सब के सब व्याकुल हो कानों में अँगुली डाल विचार करने लगे
रामचन्द्र जी ने धनुष को तोड़ डाला और तुलसीदास जी भी (सब के साथ)
ो! जय हो! ऐसे शब्द कहने लगे॥

× भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा

स छिति गई दबक लचक गयो छिति धर बार पर्यो कठिन कमठ करराने है।
सहम सुरेश गयो दहल चहल शेष धौंप को दिनेश वामदेव थरराने है॥
भयो छिति पात ऐसो सुनिये अघात मानों कंपो ब्रह्म कटि कै को पञ्ज तरराने है।
जब सो "मुरारि" भनै राम तान तोरो चाप चाप घरराने कै धराधर धरराने है॥

* कोदंड भंजेहु राम—

छप्पय— दिग्गजि डगि अति गुंजि सर्व पय समुद्र सर।
व्याल बधिर त्यहि काल बिकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयंद लरखरत परत दसकंध मुक्ख भर।
सुर विमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर॥
चौंके विरंचि शंकर सहित कोल कमठ अहि कलमल्यो।
ब्रह्माण्ड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम शिवधनु दल्यो॥

† जयति बचन उचारहीं—

दो०—जय रघुबर जय राम की, जय जय करत फिरोर।
जय रघुबीर सुधीर जय, भई नभों रट टेर॥

अर्थ—जब खेती सूख गई तो बरसा किस काम की ? और समय बीत ज[ाने पर]
[पछताना]? तो फिर पछताने से क्या होता है ? ऐसा जी में जान जानकी को देखा तो म[न में]
उन का विशेष प्रेम देख कर रोमांचित हो उठे ॥

चौ०—गुरुहि प्रणाम मनहि मन कीन्हा । *अति लाघव उठाइ धनु लीन्ह[ा]
†दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि धनु नभ मंडल सम भयऊ

अर्थ—गुरु जी को मन ही मन प्रणाम किया और बड़ी हलकाई से धनुष
उठा लिया। उस समय वह बिजली की नाईं चमका फिर ज्योंहीं उसे चढ़ाया तो
धनुष आकाश में मंडलाकार दिखाई दिया ॥

चौ०—+लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े । काहु न लखा देख सब ठाढ़े

* अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा—काव्य प्रभाकर से

छप्पय—कहलि कोल अरु कमठ उठत दिग्गज दल दलिमलि ।
धसकि धसकि महि मसकि जात सहसफ्फणि फणि वलि ॥
उथल पथल जल थल सशंक लंका दल गलबल ।
नभ मंडल हल हलन चलत भुव अतल वितल तल ॥
टंकोर घोर घन प्रलय धुनि सुनि सुमेरु गिरि गिरिगयो ।
रघुवंश वीर जब तमकि पग धमकि धमकि धरि धनु लयो ॥

† दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ —

सवैया—ज्यों घन दामिनि कौंधि अचानक त्यों हरि शंकरचाप उठायो ।
ज्यों सुनि रोपि शरासन कानहि पूछन दाहिन हाथ पठायो ॥
वाम कहे कस भागि चल्यो तब दाहिन उत्तर देत सुहायो ।
"ठाकुर राम" कहैं यह बूझहुँ तोरहि की धरि देहि चढ़ायो ॥

\+ लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े ... ... तेहि छण राम मध्य धनु तोरा—
[र]ामरसायन रामायण से—
[द]ंडक छंद-राम धनु निरखि वर नृपन बल धरखि यश परखि सब होय गति हरखि दृग पाय के।
धर्म धुर धीर रघुबीर रणधीर तेहि सहज कर धारि गुरुहि शिरहि शिर नाय के ॥
सपदि संधानि भुव भंग अनुमानि कछि कान लग तानि निरखो न कोऊ वियो ।
पेखि बरिवंड असमंड भुज दंड ते चंड कोदंड द्वै खंड खंडित कियो ॥
और भी —

दो०—धनुष भंग इहि विधि भयो, औचक काहु न देख ।
गिरो खंड है भूमि तब, चकित रहे सब पेख ॥

गाढ़े=दृढ़ता से, जैसा अमर कोश में लिखा है—" गाढ़ बाढ़ दृढ़ानि च "

नाचने लगीं ब्रह्मा आदि देवगण, सिद्ध और मुनि लोग रामचन्द्र जी की बड़ाई कर उन्हें आशीर्वाद देते थे। रंग विरंगे फूल और मालायें बरसाते थे और स्वर्गीय गवैये प्रेम भरे गीत गाते थे॥

चौ०—*रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुषभंगधुनि जात न जानी॥

अर्थ—संसार भर में 'जय जय' की ध्वनि भर गई परन्तु धनुष भंग ध्वनि के कारण कम समझ पड़ती थी।

'धनुषभङ्ग धुनि जात न जानी' का दूसरा अर्थ कोई कोई ऐसा करते हैं कि जय जय ध्वनि के कारण धनुष भङ्ग की ध्वनि का ध्यान भी उचट गया।

तीसरा अर्थ यों करते हैं कि—धनुष तोड़ने के शब्द को (जा = जमदग्नि + तन = पुत्र) अर्थात् परशुराम ने सुना॥

चौ०—×मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भंजेउ राम शंभुधनु भारी॥

अर्थ—प्रसन्न हो जहां तहां स्त्री पुरुष कहते थे कि शिव जी के भारी धनुष को रामचन्द्र जी ने तोड़ डाला है॥

दो०—बन्दी मागध सूत गण, विरद वदहिं मति धीर।
करहिं निछावर लोग सब, हय गय मणि धन चीर॥ २६२॥

शब्दार्थ—बन्दी = भाट, प्रशंसक। मागध = (मगधदेश का) कलावंत, कड़खैत। सूत = कथा कहने वाले॥

अर्थ—चतुर भाट, कलावंत और पौराणिक लोग वंश की कीर्त्ति गाने लगे और बहुतेरे लोग घोड़ा, हाथी, मणि, धन और वस्त्र निछावर करने लगे॥

---

* रही भुवन भरि जय जय बानी—

॥ मनहर छन्द ॥

गाँव गाँव गेह गेह गैल गैल गली गली, गोल गोल माहिं यहै धुनि सरसाई है।
कहैं कवि मथ्यादत्त दास तुलसी के करै, ठौर ठौर राम ही की बजत बधाई है॥
याही तान टूटत हैं झांझ औ मृदंग सबै, ढोलक सितार बसी बीना सहनाई है।
रामचन्द्र जू की जय रामचन्द्र जू की जय रामचन्द्र जू की जय यहै धूम छाई है॥

× मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भंजेउ राम शंभुधनु भारी—

सवैया—रावन बान महाबलि आदि अनेक औ देवन हू हग जोर्‌यो।
तीनहुँ लोकन के भट भूप उठाय थके सबको बल छोर्‌यो॥
घोर कठोर जिते सहजै "रसिकराम" भनौं जन रीभन छोर्‌यो।
रामकुमार सराज से हाथन सो नहिं शम्भु सरासन तोर्‌यो॥

सो०—शंकरचाप जहाज, सागर रघुवरबाहुबल ।
* बूड़ी सकल समाज, चढ़े जो प्रथमहिं मोहवश ॥ २६ ॥

अर्थ—शिव जी का धनुष जहाज़ के सदृश था और रघुनाथ जी की भुजा का बल समुद्र के समान था। उस जहाज पर बैठने वाले सब के सब जो पहिले उ अज्ञान के कारण जा बैठे थे सो डूब गये (भाव यह कि धनुष के टूट जाने से 'स संशय अरु अज्ञान' से लगाकर 'रानिन्ह कर दारुण दुख दावा' तक जितने रूपी भ्रम दुःख आदि थे वे सब मिट गये) ॥

चौ०—‡प्रभु दोउ चापखंड महि डारे । देखि लोग सब भये सुखा
कौशिकरूपपयोनिधि पावन । प्रेमवारि अवगाह सुहावन
रामरूपराकेश निहारी । बढ़ी बीचि पुलकावलि भारी

अर्थ—रामचन्द्र जी ने धनुष के दोनों टुकड़े पृथ्वी पर फेंक दिये जिन्हें देखते सब लोग प्रसन्न हुए । विश्वामित्र का स्वरूप पवित्र समुद्र उस में प्रेमरूपी अ जल शोभा दे रहा था। रामरूपी पूर्ण चन्द्र को देख कर (उस समुद्र रूपी शरीर रोमांचित रूप की लहरों की तरंगें बढ़ गईं (भाव यह कि रामचन्द्र जी का परा देख विश्वामित्र जी प्रेम से फूले न समाते थे अर्थात् वे बहुत ही आनंदित हुए)॥

चौ०—बाजे नभ गहगहे निशाना । देववधू नाचहिं करि गाना
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीशा । प्रभुहि प्रशंसहिं देहिं अशीशा
वर्षहिं सुमन रंग बहु माला । गावहिं किन्नर गीत रसाला

अर्थ—आकाश में बड़े ज़ोर से नगाड़े बजने लगे और अप्सराएँ गीत गा क

---

* बूड़ी सकल समाज, चढ़े जो प्रथमहिं मोहवश—

क०—जनक निराशा दुष्ट नृपन की आशा दुरजन को उदासी शोक रनिवास मनु के।
वीरन के गरब गरूर भरपूर सब भ्रम मद आदि मुनि कौशिक के तनु के॥
"हरीचन्द" भय देव मन के पुहिमि भार विकल विचार सबै पुरनारी जनु के।
शंका मिथिलेश की सिया के उर शूल सबै तारि डारे रामचन्द्र साथै हर धनु के॥

‡ प्रभु दोउ चापखंड महि डारे । देखि लोग सब भये सुखारे—

क०—भूपन को मान गयो ज्ञान गयो बीरन को बैरिन को प्रान गयो खलदल घर को
जनक को सोच गयो संकट सिया को पुरजन मन पन भयो आनँद सुभर
"गोकुल" कहत साधु सुखमा सरस भई भयो है असाधुन को रूप जरो जर
मंगल उदोत भयो पोत पुण्य पानिप को टोई खंड होत हो कोदंड महा हर

चौ०—रामहि लषन विलोकत कैसे। शशिहि चकोर किशोरक जैसे॥
सतानंद तब आयसु दीन्हा। सीता गमन राम पहँ कीन्हा॥

अर्थ—लक्ष्मण रामचन्द्र जी को इस प्रकार देख रहे थे जिस प्रकार चकोर का बच्चा चन्द्रमा को देखता हो। इतने में सतानंद जी ने आज्ञा दी तो सीता जी रामचन्द्र जी के समीप चलीं॥

दो०—संग सखी सुन्दरि चतुर, +गावहिं मंगलचार।
गवनी बालमरालगति, सुखमा अंग अपार॥ २६३॥

अर्थ—साथ में रूपवती चतुर सखियां विवाह के गीत गाती जातीं थीं। सीता जी छोटी राजहंसिनी की चाल से चलीं, उनके अंगों की शोभा का पारावार न था॥

चौ०—सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी। †छविगण मध्य महा छवि जैसी॥
कर सरोज जयमाल सुहाई। विश्व विजय शोभा जनु छाई॥

अर्थ—सखियों के बीच में सीता जी कैसी शोभायमान लगती थीं मानो सुन्दरता के समूह में महा सुन्दरता होवै। सीता जी के कमलरूपी हाथों में जयमाला शोभा दे रही थी मानो संसार जीतने की शोभा छहर रही हो॥

चौ०—तन सकोच मन परम उछाहू। गूढ़प्रेम लखि परै न काहू॥
जाइ समीप रामछवि देखी। रहि जनु कुँअरि चित्र अवरेखी॥

अर्थ – शरीर में लज्जा और हृदय में भारी उमंग थी, इस गुप्त प्रेम को कोई भी

+ गावहिं मंगलचार—

राग विलावल—*सिय जयमाल चली पहिरावन॥ टेक॥*

बनी अनूप नवल फूलन की राजै कोमल करन सुहावन॥
सुन्दर अंग संग सब सखियां लागीं मंगल गीत सुनावन।
छवि धारी प्यारिन तन सारी दमके दामिन दीप लजावन॥
सब सखियन शिरमौर जानकी जिनके रघुनंदन मन भावन।
"मणीलाल"प्राण धन वार्‌यो जगदम्बिका प्रभाछवि गावन॥

† छविगण मध्य महा छवि जैसी—शिवसिंह सरोज से—

कवित्त—हंसन के छौना स्वच्छ सोहत बिछौना बीच होत गति मोतिनकी ज्योति औन्ह यामिनी।
सत्य की सोता गसोता पूरण सुहाग भरी चली जयमाल लै मराल मंद गामिनी॥
आई उर बसी सोई मूरति प्रत्यक्ष लसी चिन्तामणि देख हंसी शङ्कर की स्वामिनी।
मानो शरद चन्द चन्द मध्य अरविन्द अरविन्द मध्य विद्रुम बिदारि कढ़ी दामिनी॥

चौ०—झांझ मृदंग शंख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहा
बाजहिं बहु बाजने सुहाये। जहँ तहँ युवतिन्ह मंगल गा

अर्थ—झांझ, मृदंग, शंख, रोशनचौकी, तुरही, ढोल और सुन्दर नगाड़े। प्रकार भांति २ के सुहावने बाजे बजने लगे और स्त्रियां सभी स्थानों में मंगलीक गाने लगीं॥

चौ०—सखिन्ह सहित हरषीं सब रानी। सूखत धान परा जनु पानी
*जनक लहेउ सुख सोच विहाई। पैरत थके थाह जनु पा

अर्थ—सखियों समेत सब रानियां ऐसी प्रसन्न हुईं कि मानो सूखी हुई धान पानी मिला हो। जनक जी ने चिंता को त्याग सुख पाया मानो तैरते तैरते थकने व को थाह मिल गई हो॥

चौ०—श्रीहत भये भूप धनु टूटे। ×जैसे दिवस दीप छवि छूटे
†सिय हिय सुख बरनिय केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जल स्वाँती

अर्थ—धनुष के टूटने से सब राजा शोभा हीन हो गये जैसे दिन में दीपक तेज फीका पड़ जाता है। सीता जी के हृदय का सुख किस प्रकार वर्णन किया सक्ता है (वे तो ऐसी प्रसन्न हुईं) मानो चातकी को स्वाति का जल मिल गया (भाव यह कि बहुत समय का इच्छित फल प्राप्त हो गया)॥

---

* जनक लहेउ सुख सोच विहाई ... ...

राग टोड़ी—जनक मुदित मन टूटत पिनाक के।

बाजे हैं बधावने सुहावने मंगल गान भयो सुख एक रस रानी राजा रांक के।
दुंदुभी बजाई गाई हरषि बरषि फूल सुर गण नाचे नाच नायक हू नाक के
तुलसी महीश देखे दिन रजनीश जैसे सूने परे सून से मनो मिटाये आंक के

× जैसे दिवस दीप छवि छूटे—कहा है सभा विलास में—

दोहा—मूढ़ तहां ही मानिये, जहां न पंडित होय।
दीपक की रवि के उदय, बात न पूछै कोय॥

† सिय हिय सुख बरनिय केहि भांती। जनु चातकी पाइ जल स्वांती—सीता जी को देखकर, श्री रामचंद्र जी पर अटल प्रेम और धनुष टूटने से अब उन की प्राप्ति का सुख कहते तो बनता ही नहीं, तो भी तुलसी सतसई के अनुसार चातक और स्वाति बूंद का अकथनीय अनुराग आदि कहा जाता है—

दो०—चातक स्वांति सब रहत, सुमिर सुधर जल आइ।
तुलसी चातक प्रबर को, ताहि दुनि सुध आइ।

अर्थ—उस छटा को देख कर सखियां फिर गाने लगीं इतने ही में सीता जी ने वह जयमाल रामचन्द्र जी के गले में पहिरा दी ॥

सो०—रघुवर उर जयमाल, देखि देव वर्षहिं सुमन ।
सकुचे सकल भुआल, जनु विलोकि रवि कुमुदगन ॥ २६४ ॥

अर्थ—रामचंद्र जी के हृदय में जयमाल देख कर देवगण फूल बरसाने लगे और सम्पूर्ण राजा लज्जित हुए जैसे सूर्य को देख कर कुई के फूल सिमिट जाते हैं ॥

चौ०—पुर अरु व्योम बाजने बाजे । खल भे मलिन साधु सब राजे ॥
सुर किन्नर नर नाग मुनीसा । जय जय जय कहि देहिं असीसा ॥

अर्थ—नगर और आकाश में बाजे बजने लगे, दुष्ट राजा उदास हुए और सज्जन प्रसन्न हुए। देवता, किन्नर, मनुष्य, सर्प और मुनि गण 'जय, जय, जय' कह कर आशीर्वाद देने लगे ।

चौ०—नाचहिं गावहिं विबुध वधूटी । बार बार कुसुमावलि छूटी ॥
जहँ तहँ विप्र वेदधुनि करहीं । वंदी विरदावलि उचरहीं ॥

अर्थ—अप्सराएँ नाचतीं और गातीं थीं तथा बारंबार फूलों की वरसा होती थी। जगह जगह ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे थे और भाट लोग वंश की बड़ाई कर रहे थे ॥

चौ०—†महि पाताल नाक यश व्यापा । राम वरी सिय भंजेउ चापा ॥

---

† महि पाताल नाक यश व्यापा । राम वरी सिय भंजेउ चापा—

श्लोक—लज्जा कीर्तिर्जनकतनया त्र्यंबके द्वह भग्ने।
तिस्रः कन्याः समुपगता भेजिरे रामचन्द्रम् ।
तस्यापाणिं ग्रहणसमये स्वापसौ ज्ञानसीता ।
भूपे. लाज्जं दिग्भूपेतु गतासच्चला दिग्दिगन्तम् ॥

अर्थ—धनुष के टूटने पर विवाह योग्य तीन कन्यायें रामचन्द्र जी के पास आपहुँची हुईं । एक लज्जा, दूसरी कीर्ति और तीसरी सीता. जिस समय रामचन्द्र जी ने सीता जी को स्वीकार कर लिया उस समय जेठी अर्थात् लज्जा कोपित होकर राजाओं के पास चली गई (भाव यह कि सीता जी के जयमाल पहिराने पर दुष्ट राजा लज्जित हुए) और मझली अर्थात् कीर्ति देशान्तर को चली गई (भाव यह कि रामचन्द्र जी का यश तीनों लोक में फैल गया)

न समझ सका। रामचंद्र जी के समीप पहुंच कर जब उन की छवि को नि
तो किशोरी जो मानो चित्र में लिखी सी रह गईं ॥

चौ०—चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सु
सुनत युगल कर माल उठाई। प्रेमविवश पहिराइ न ‌ॅ

अर्थ—यह दशा देख चतुर सखी ने समझाकर कहा कि मनोहर ज
पहिना दो। इन वचनों को सुन कर दोनों हाथों से माला उठाई परन्तु प्रेम से
हो पहिराते न बनती थी ॥

चौ०—†सोहत जनु युग जलज सनाला। शशिहि सभीत देत जयमा

अर्थ—उस समय ऐसी छटा दीख पड़ी कि मानो डंडियों युक्त दो कमल संकुचि
चन्द्रमा को जयमाल देना चाहते हों ॥

सूचना—यहां पर कवि की चतुराई पर विचार करने से अपूर्व आनंद होता
कि उन्हों ने सिमिटे हुए हाथों को सिकुड़े हुए कमलों की उपमा दी है और उस
कारण भी बहुत ही उत्तम रक्खा है सो यों कि कमल चंद्रमा के सन्मुख सिकुड़ जा
है यहां पर रामचन्द्र जी के मुख को चंद्रमा की उपमा देकर कमलों का सिकुड़ना औ
भय के कारण बहुत पास तक न जाना सब ही दरशा दिया है ॥

चौ०—*गावहिं छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल रामउर मेली ॥

---

† सोहत जनु युग जलज सनाला। शशिहि सभीत देत जयमाला—राम रसायन
रामायण से :—

क०—आई रघुचन्द ढिग जनककिशोरी गोरी देखो खंड खंड तहँ शंभुधनु अंक को।
रसिक बिहारी ऐसो आनँद सिया के चित्त जैसे चर वित्त पाय होवे सुख रंक को ॥
दोऊ कर उमगि उठाये जयमाल लीन्हे कवि हुलसाये हेरि उपमा उतंक को।
क्षीरसधु गहि के सनाल युग कंजन ते मुक्तमाल देत मानो पूरन मयंक को ॥

* गावहिं छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल रामउर मेली—गीतावली
रामायण से—

राग सारंग—राम कामरिपुचाप चढ़ायो।
मुनिहिं पुलक आनंद नगर नभ निरखि निशान बजायो ॥
जेहि पिनाक बिन नाक किये नृप सबहि विषाद बढ़ायो।
सोई प्रभु कर परसत टूट्यो जनु हुतो पुरारि पढ़ायो ॥
पहिराइ जयमाल जानकी युवतिन मंगल गायो।
तुलसी सुमन बरष हरषे सुर सुयश तिहूं पुर छायो ॥

अर्थ—गोतम की स्त्री अहल्या की गति अर्थात् पतिलोक गमन का स्मरण कर रामचन्द्र जी के चरणों को अपने हाथों से नहीं छूती थीं (इस अभिप्राय से कि यदि मैं भी अपने पतिलोक को चली जाऊं तो रामचन्द्र जी से वियोग हो और मैं अकेली वहां क्या करूंगी) इस अलौकिक (अर्थात् अनादि) प्रीति को समझ रघुकुल श्रेष्ठ रामचन्द्र जी हँसे ॥

दूसरा अर्थ—गोतम की स्त्री जो पाषाण की थी उस ने भी दिव्यरूप धारण कर लिया सो मेरे अलंकारों के हीरे आदि भी स्त्रीरूप न बन जायँ ॥

तीसरा अर्थ—गोतम अर्थात् अंधकार मिट गया तियगति सुरति करि अर्थात् स्त्रियों की मुक्ति केवल पतिचरणरजसेवा है इस का स्मरण कर अभी चरण नहीं छूती कि इन को जल्दी छूलेने से शीघ्र ही वियोग सहना पड़ेगा ॥

चौ०—तब सिय देखि भूप अभिलाषे । कूर कपूत मूढ़ मन माषे ॥
+उठि उठि पहिरि सनाह अभागे । जहँ तहँ गाल बजावन लागे ॥

अर्थ—तब सीता जी को देख कर राजाओं की अभिलाषा बढ़ी और वे दुष्ट. भ्रष्ट, नष्ट मन में क्रोधित हुए । ये कर्महीन उठ उठ कर बख्तर पहिन अपनी अपनी जगह पर डींग मारने लगे ॥

चौ०—*लेहु छँड़ाइ सीय कह कोऊ । धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ ॥
तोरे धनुष चाड़ नहिं सरई । जीवन हमहिं कुँअरि को बरई ॥

अर्थ—कोई कोई कह उठे कि सीता को छुड़ा लेओ और दोनों राजकुमारों को पकड़ कर बांध लो । धनुष तोड़ने से काम न चलेगा, हमारे जीते जी राजकुमारी को कौन ब्याह सक्ता है ॥

+ उठि उठि पहिरि सनाह अभागे । जहँ तहँ गाल बजावन लागे—

कवित्त—कोऊ बापुरे ये सुकुमार नृप बाल दोऊ कालहु के साथ हम रण में उमाहि हैं ।
"ललित" जियत धरि बालक समर जीति जनकनरेश को जोरावरी चित चाहि हैं ॥
आजु लौं मुरे न जुरे कोटिन सुभट रण कौन अवनी में भूप औन बल थाहि हैं ।
काकपक्ष धारे ये बिचारे बिन मारे मरें जियत हमारे कौन कुँवरि बिवाहि हैं ॥

* लेहु छँड़ाइ सीय कह कोऊ । धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ—

सवैया—सीय छँड़ाय धरौ न डरौ पकरौ नृप बालक बापुर दोऊ ।
युद्ध मचौ सँभरौ अब तौ न टरौ चित चाह करौ हठ कोऊ ॥
"बदि" घनदि लरौ रण में छल में अस कौतुक होइ कौ होऊ ।
ब्याहहि तौ लखि हाल परे हम जीवत बाल बरे कस कोऊ ॥

‡करहिं आरती पुर नर नारी । देहिं निछावर वित्त बिसा[illegible]

शब्दार्थ—नाक = स्वर्ग ।

अर्थ—पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग में यश भर गया कि रामचन्द्र जी ने धनु[illegible] तोड़ कर सीता जी को व्याहा । नगर के स्त्री पुरुष आरती करते थे और अ[illegible] अपनी श्रद्धा से बढ़ कर निछावर करते थे ॥

चौ०—×सोहति सीय राम की जोरी । छवि शृंगार मनहुँ इक ठौरी[illegible]

सखी कहहिं प्रभु पद गहु सीता । करति न चरण परस अति भीता[illegible]

अर्थ—सीता रामचन्द्र जी की जोड़ी शोभा दे रही थी मानो छवि और शृं[illegible] इकट्ठे हुए हों । सखियां कहने लगीं कि हे सीता ! रघुनाथ जी के चरण छूओ पर बहुत भय के कारण वे उनके चरण न छूतीं थीं ॥

दो०—†गौतमतियगति सुरति करि, नहिं परसति पग पानि ।

मन बिहँसे रघुवंशमणि, प्रीति अलौकिक जानि ॥ २६५ ॥

---

‡ करहिं आरती पुर नरनारी—प्रेमपीयूषधारा से—

परज—नित उठि दरशन कीजिये ।

दशरथसुत अरु जनकलली को, रूप सुधा रस पीजिये ॥

मोहनि मूरति निरख जुगल छवि नैनन को सुख दीजिये ।

मोहनि दास लागि चरनन में जन्म सुफल कर लीजिये ॥

× सोहति सीय राम की जोरी—

राग देश—युगल छवि आज अनूप बनी ।

गोरी सिया साँवरे रघुवर नख शिख द्युति कमनी ॥

खंजन नैन मयन मन गंजन अंजन रेख बनी ।

ललित किशोरी लाल रसिक वर मृदु मुसक्यान घनी ॥

† गौतमतियगति सुरति करि, नहिं परसति पग पानि । राम रहस्य से—

सवैया—सजनी तुव बात प्रमान करौं शुचि सीख सदा उर में धरिहौं ।

यहि औसर कारण एक बड़ो तेहि ते यह शासन ना करिहौं ॥

पदकंज छुए ऋषि की रमनी पति पै गमनी, यहि ते डरिहौं ।

" द्विजदत्त " निरंतर मो हिय में बसते प्रभु पायन ना परिहौं ॥

इस के उत्तर में सखियों ने यों कहा—

दोहा—धूरी पंकज रेणुका, मूरी मदन मयंक ।

ऊरी रही कलंक युत, तू री बिना कलंक ॥

शब्दार्थ—वैनतेय (विनता से उत्पन्न) = गरुड़ । शश = खरहा । नागअरि (नाग = हाथी + अरि = शत्रु) = सिंह ॥

अर्थ—गरुड़ का भाग जिस प्रकार कौआ चाहे, और जिस प्रकार सिंह का भाग खरहा लेना चाहे । जिस प्रकार व्यर्थ क्रोध करने वाला कुशल चाहे और शिवजी का विरोधी होकर सुख और संपत्ति चाहे ॥

चौ०—†लोभी लोलुप कीरति चहई । अकलंकता कि कामी लहई ॥
‡हरिपदविमुख परमगति चाहा । तस तुम्हार लालच नरनाहा ॥

शब्दार्थ—लोभी = लालची । लोलुप = चंचलचित्त । अकलंकता = निर्दोषीपन ॥

अर्थ—लोभ से चलचित्त पुरुष यदि अपनी बड़ाई चाहे और कामीपुरुष निर्दोषी होना चाहे । ईश्वर के चरणों का विरोधी जिस प्रकार मुक्ति चाहे, हे राजाओ ! उसी प्रकार यह तुम्हारा लालच है ॥

चौ०—कोलाहल सुनि सीय सकानी । सखी लिवाइ गई जहँ रानी ।
राम सुभाय चले गुरु पाहीं । सिय सनेह बरनत मन माहीं ॥

शब्दार्थ—कोलाहल = हुल्लड़, बहुतेरे लोगों की जोर से बात चीत ॥

अर्थ—यह हुल्लड़ सुनकर सीता जी डर गईं, तब सखियां उन्हें वहां लिवा लेगईं जहां रानियां थीं । रामचन्द्र जी सीता जी के प्रेम को मन ही मन सराहते हुए साधारण रीति से गुरु जी के पास चले ॥

चौ०—रानिन्ह सहित सोचवश सीया । अब धौं विधिहि कहा करनीया ।
भूप वचन सुनि इत उत तकहीं । लषन राम डर बोल न सकहीं ॥

---

† "लोभी लोलुप कीरति चहई" के पाठान्तर " लाभ लोभ कुल कीरति चहई " से भी ऊपर का अर्थ सिद्ध होता है ॥

‡ हरिपदविमुख परम गति चाहा । तस तुम्हार लालच नरनाहा—
राग धनाश्री—मति लोगों कैतिक हो समझाई ।

नंदनंदन के चरण कमल भजि तजि पखंड चतुराई ।
सुख सम्पति दारासुत हय गय छूटे सबै समुदाई ।
छण भंगुर ये सबै स्याम बिन अन्त नाहिं संग जाई ।
जनमत मरत बहुत जुग बीते अजहूँ लाज न आई ।
सूरदास भगवन्त भजन बिन ढंढे जन्म दंदई ।

चौ०—जो विदेह कछु करै सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भ्रा
साधु भूप बोले सुनि बानी। राज समाजहि लाज लजानी

अर्थ—यदि राजा जनक कुछ सहायता करें तो संग्राम में इन को भी भाइयों समेत जीत लो। इन वचनों को सुनकर भले राजा कहने लगे अरे राजाओं की सभा में तो लाज भी लजा गई (अर्थात् इन के समीप से लाज चली गई और अब ये निर्लज्ज यों बक रहे हैं) ॥

चौ०—†बल प्रताप वीरता बड़ाई। नाक पिनाकहि संग सिधाई
सोइ शूरता कि अब कहुँ पाई। असबुधि तौ विधि मुँह मसि लाई

अर्थ—बल, प्रताप, शूरता, बड़ाई और नाक (अर्थात् लोक में मर्यादा) ये सब धनुष के संग चले गये। वही बहादुरी है कि इतने ही समय में कहीं दूसरी जगह पागये हो, अरे! तुम्हारी ऐसी कुबुद्धि है तभी तो विधाता ने तुम्हारे मुँह में कारख लगाई है (अर्थात् तुम्हारी बड़ी अपकीर्ति हुई है) ॥

दो०—देखहु रामहिं नयन भरि, तजि इर्षामद कोहु।
‡लषन रोष पावक प्रबल, जानि शलभ जनि होहु ॥ २६६॥

अर्थ—अरे! बैर, घमंड और क्रोध को त्याग कर रामचंद्र जी को नेत्र भर कर देखलो, लक्ष्मण जी के प्रचंड अग्निरूपी क्रोध में जान बूझ कर पतंगा मत बनो (भाव यह कि रामचंद्र जी से यदि विरोध करोगे तो लक्ष्मण बिना मारे न छोड़ेंगे) ॥

चौ०—बनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमिशशचहहिंनाग अरिभागू॥
जिमि चह कुशल अकारण कोही। सुख संपदा चहै शिवद्रोही॥

---

† बल प्रताप वीरता बड़ाई। नाक पिनाकहि संग सिधाई—

सवैया—का बलकी बल को लियो जानि कहा चित दीन इहां ते टरो ना।
नाक गई कटि साथ पिनाक कहै "ललिते" कुल कानि करो ना॥
बातें बनाय बनाय कहा कहो नेकहु लाज हिये में धरो ना।
जाय कहूं किन आय मरो गल बाँधि के सागर बूडि मरो ना॥

‡ लषन रोष पावक प्रबल, जानि शलभ जनि होहु—जैसा कहा है

दोहा—जब न बनी कछु काहुते, अब बोलत बहु कूर।
लषन रोष की अगिन में, वृथा होउ जनि धूर॥

अर्थ—उसी समय में महादेव जी के धनुष के टूटने का शब्द सुन कर भृगु के कमलस्वरूपी वंश को सूर्य के समान (प्रफुल्लित करने वाले) परशुराम जी आ पहुंचे ॥

चौ०—देखि महीप सकल सकुचाने । बाज झपट जनु लवा लुकाने ॥
गौर शरीर भूति भलि भ्राजा । भाल विशाल त्रिपुंड विराजा ॥

अर्थ—उन को देख कर सम्पूर्ण राजा दबक गये मानो बाज पक्षी की झपट से लवा पक्षी छिप गये हों । (परशुराम जी के) गोरे शरीर पर भस्म भली भांति शोभा दे रही थी और उन के ऊंचे मस्तक पर चंदन की खौर सुशोभित थी ॥

चौ०—†सीस जटा शशि वदन सुहावा । रिसवश कछुक अरुण हुइ आवा ॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते । सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते ॥

पुरुषा भृगु जी थे । इसी से ये भृगुकुल में श्रेष्ठ भार्गव कहलाये । इन के पिता का नाम जमदग्नि और माता का नाम रेणुका था । ये ब्राह्मण थे जो विष्णु के छठयें अवतार माने जाते हैं । रामनाम धारी पहिले यही हुए । इन्हों ने शिवजी से विद्या सीखी थी और उन्हीं ने इन्हें परशु या फरसा दिया था तभी से ये 'परशुराम' कहलाये (दूसरे रामनाम धारी प्रसिद्ध श्री रामचन्द्र जी हुए और तीसरे श्री कृष्णजी के बड़े भाई बलराम जी रामनाम धारी हुए) । इन का अवतार त्रेतायुग के आरंभ में क्षत्रियों का अत्याचार दबाने को हुआ था । ये शिवजी के शिष्य थे इसी हेतु जब श्री रामचन्द्र जी ने जनकपुर में शिव जी का धनुष तोड़ा था । तब क्रोधित होकर दौड़ आये थे परन्तु श्री रामचन्द्र जी का विशेष बल देख तथा उन्हें अवतार समझ तपस्या करने के हेतु चले गये । पिता की आज्ञा मान कर जो इन्हों ने अपनी माता का वध किया था उस की कथा अयोध्या कांड की टि० पृ० ६६१ में और सहस्रबाहु से युद्ध का वर्णन आगे दिया है । इन्हों ने इक्कीस बार क्षत्रियों को परास्त कर सम्पूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणों को दे डाली थी । कहते हैं कि मलाबार देश को परशुराम जी ने बसाया था जहां पर बहुत से ब्राह्मण उन के साथ उत्तरी प्रदेशों से आये थे ।

† सीस जटा शशि वदन सुहावा । रिसवश कछुक अरुण हुइ आवा—

सवैया—स्वच्छ शरीर विभूति भसी भलि भाल विशाल त्रिपुण्ड कि शोभा ।
सीस जटा युग चंद छटा शुचि शोणित रंग मनो कछु गोभा ॥
नैन रिसौंहें सुभौंहें तनी तनि माल विशाल उरस्थल लोभा
भूभरहारक भार्गव रूप विलोकत भूपन को मन क्षोभा ॥

और भी रामरसायन रामायण से— (दोहा)

अर्थ—रानियों समेत सीता जी को चिंता हुई कि विधाता अब क्या चाहता है ? लक्ष्मण जी राजाओं के वचन सुनकर यहां वहां ताकते थे परन्तु र के डर के मारे कुछ कह नहीं सक्ते थे ॥

दो०—अरुणनयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन्ह सकोप ।
×मनहुं मत्तगजगण निरखि, सिंहकिशोरहि चोप ॥ २

शब्दार्थ—चोप = उछाह ॥

अर्थ—लक्ष्मण जी लाल लाल आंखें और टेढ़ी भौंहें कर क्रोध के साथ रा को देखते थे। मानो मस्त हाथियों के झुंड को देख कर सिंह का बच्चा उत्साह गया हो ॥

चौ०—खरभर देखि विकल पुरनारी । *सब मिलि देहिं महीपन्ह गा

अर्थ—नगर की स्त्रियां इस गड़बड़ को देख व्याकुल हो उठीं और सब मि इन राजाओं को गालियां देने लगीं ॥

(परशु राम आगमन)

चौ०—तेहि अवसर सुनि शिव धनु भंगा । + आये भृगुकुलकमलपतंग

× मनहुँ मत्तगजगण निरखि, सिंहकिशोरहि चोप—भामिनीविलास को (विप्रचन्द्र कवि विरचित) से—

दोहा—नेकहु गज की गरज सुनि, हरिसुत जननी गोद ।
सिमिटि अंग निज धंगहीं, उछल्यो चहत समोद ॥

* सब मिलि देहिं महीपन्ह गारी—सीता स्वयम्वर से

सवैया—धनुहाँ अब टूटि गयो सजनी इन राजन को अब काज कहा ।
दहिजार न जायँ घरै अपने परे काहे को जोरे समाज महा ॥
नहिं हा सरमात नहीं तनिको पहिरा अस मोद दिपान अहा ।
नहिं आवत लाज मनावत गाल [illegible] गुलाम निकाम यहा ॥
अरराय के गाल न फाटि परै मरै दारि गोहारि मचाय रहे ।
मुख मोड़ मसी भरवाय रहे [illegible] देतो कराय रहे ॥
नृप कूर गवार औ नवटे किमि बाहु न को अजमाय रहे ।
इक बाढ़क मास दराय रहे दहिजार कहीं न भी धाय रहे ॥

+ आये भृगुकुलकमलपतंगा—भृगुकुलकमलपतंग अर्थात् परशुराम । इन के पू.

लोग ऐसा भय मानते थे कि कहीं मार न बैठें)। फिर जनक जी ने भी आकर सीस नवाया और सीता को बुलवाकर उन से भी प्रणाम करवाया ॥

चौ०—†आशिष दीन्हि सखी हर्षानी । निजसमाज ले गई सयानी ॥
विश्वामित्र मिले पुनि आई । पदसरोज मेले दोउ भाई ॥

अर्थ—उन्होंने आशीर्वाद दिया (कि कल्याणी वीर प्रसवा भव अर्थात् सौभाग्यवती और शूरवीर पुत्रों की जननी होओ) यह सुनकर सखी प्रसन्न हुई और सीता जी को स्त्री समाज में लिवा लेगई। फिर विश्वामित्र जी ने आकर भेंट की और दोनों भाइयों (राम लक्ष्मण) को उनके कमलस्वरूपी चरणों में डाल दिया ॥

चौ०—राम लपन दशरथ के ढोटा । *दीन्ह असीस देखि भल जोटा ॥
रामहिं चितइ रहे भरि लोचन । रूप अपार मारमदमोचन ॥

अर्थ—राम और लक्ष्मण दशरथ के पुत्रों को देख उन की जोड़ी मनोहर जान आशीर्वाद दिया (कि विजयी आयुष्मान भव अर्थात् तुम्हारी विजय रहे और बड़ी आयु होवे)। कामदेव के रूप गर्व को मिटाने वाले रामचन्द्र जी के अति सुन्दर स्वरूप को देख वे टकटकी बांध कर रह गये ॥

सूचना—समय सूचकता के कैसे उत्तम उदाहरण हैं कि एक तो जनक जी ने सीता जी से परशुराम जी को प्रणाम कराकर आशीर्वाद प्राप्त कर लिया और दूसरे विश्वामित्र जी ने भी राम लक्ष्मण को भी आशीर्वाद दिला कर संभावी कोप से हानि का बचाव कर लिया ॥

दो०—बहुरि विलोकि विदेह सन, कहहु काह अति भीर ।
पूछत जानि अजान जिमि, व्यापेउ कोप शरीर ॥ २६६ ॥

अर्थ—फिर जनक जी की ओर देखकर कहने लगे कि कहो तो सही ? यह बड़ी भीर काहे की है ? सो जान कर भी अज्ञान की नाईं पूछते थे और शरीर में क्रोध भर गया था ॥

---

† आशिष दीन्हि सखी हर्षानी—
दोहा—जियहु सुयश जग छाइ के, सुख सुखमा सरसात ।
पतिव्रत माहिं प्रवीन हुइ, रहै अचल अहिवात ॥

* दीन्ह असीस देखि भल जोटा—
दोहा—दोउ निडर अरि ते सदा समर न जीते कोइ ।
चिर चिर जय युग युग जियो, कीर्तिवन्ता बर होइ ॥

अर्थ—शिर पर जटाजूट और चन्द्रमा के समान सुहावना मुख था जो क्रो कारण कुछ लाल हो गया था। टेढ़ी भौंहैं और नेत्र क्रोध से लाल हो गये थे इस उनकी साधारण दृष्टि भी ऐसी दीख पड़ती थी कि मानो क्रोधभरी हो॥

चौ०—वृपभ कंध उर वाहु विशाला। चारु जनेउ माल मृगछाल
कटि मुनिवसन तूण दुइ बांधे। धनु शर कर कुठार कल कांध

अर्थ—बैल सरीखे कन्धे, छाती चौड़ी, लंबी भुजायें थीं, सुन्दर जनेऊ, म और मृगछाला धारण किये थे। कमर में वल्कल तथा दो तरकस धारण किये हाथ में धनुपबाण और सुन्दर कांधे पर फरसा लिये थे॥

दो०—‡संत वेप करनी कठिन, वरनि न जाइ स्वरूप।
धरि मुनितनु जनु वीररस, आयउ जहँ सब भूप॥ २६८

अर्थ—भेप तो साधुओं का परन्तु काम क्रूरता के थे ऐसे रूप का वर्णन नहीं सक्ता, मानो वीररस मुनि भेप धारण कर के उस राज समाज में आया हो॥

चौ०—देखत भृगुपतिवेप कराला। उठे सकल भय विकल भुआला
पितु समेत कहि निज निज नामा। लगे करन सब दंड प्रणामा

अर्थ—परशुराम जी का भयानक भेप देखते ही सब राजा भय से हरबरा उठ खड़े हुए। अपने अपने पिता के नाम सहित अपना नाम बताकर सब साष्टां प्रणाम करने लगे॥

चौ०—जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी। सो जानइ जनु आयु खुटानी
जनक वहोरि आइ शिर नावा। सीय बुलाइ प्रणाम करावा

अर्थ—अपना प्रेमी समझ कर जिस की ओर सहज ही में [illegible]ते थे वह समझता था कि मानो हमारी उमर बीत चुकी (भाव यह कि उन[illegible] भरी [illegible] से ही

दो०—जटा जूट शिर भस्म तनु, भाल [illegible]
कर धनु शर वर तेज वहु, [illegible]
‡ संत वेप करनी कठिन, वरनि न जाय
रामाश्री चतुर दासकृत)।
कवित्त—मस्तक मनोहर विराजै टोप [illegible]
परम पवित्र भाल भूपत उर[illegible]
वसन मजीठ रंग रंजित [illegible]
[illegible] को कमंडल [illegible]

दो०—सभय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीर ।
हृदय न हर्ष विषाद कछु, बोले श्री रघुबीर ॥ २७० ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी ने जब देखा कि सब लोग भयभीत हैं और जानकी को भारी बेचैनी हो रही है ऐसा जान कर दुःख सुख रहित हृदय से कहने लगे ॥

चौ०—†नाथ शंभुधनुभंजनिहारा । होइहि कोउ इक दास तुम्हारा ॥
आयसु काह कहिय किन मोही । सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही ॥

शब्दार्थ—कोही (सं० कोपी) = क्रोधी ॥

अर्थ—हे स्वामी ! शिव जी का धनुष तोड़ने वाला आप का कोई एक दास होगा । क्या आज्ञा है ? मुझ से क्यों नहीं कहते (इस उत्तर को) सुन क्रोधी मुनि खिसिया कर कहने लगे ॥

चौ०—सेवक सो जो करइ सेवकाई । अरिकरनी करि करिय लराई ॥

अर्थ—सेवक वही है जो सेवा करे, परन्तु जो शत्रु के काम करे उस से लड़ाई करनी चाहिये (भाव यह कि जो मन से, वचनों से और कर्म से सेवा करे वह सेवक कहलाता है । केवल वचनों से सेवक कहने वाला सेवक नहीं हो सक्ता। कर्म तो शत्रु के किये अर्थात् मेरे गुरु शंकर जी का धनुष तोड़ डाला तो वह सेवक न हुआ शत्रु हुआ, इस से वह लड़ाई करने के योग्य है) ॥

चौ०—सुनहु राम जेइ शिवधनु तोरा । ‡सहसबाहुसम सो रिपु मोरा ॥

---

† नाथ शंभुधनुभंजनिहारा । होइहि कोउ इक दास तुम्हारा—सीता स्वयम्बर से ।
सवैया—रोष न आनिय ज्ञानि शिरोमणि ठानिय नेक विवेक विचारा ।
मानिय सम्मत मूल यहै मन कोप किये उर होत विकारा ॥
भाविहि मेटि सकै हठि को द्विज "बंदि" अनंदित वेद पुकारा ।
शंभु शरासन नाशनहार सो है है कोऊ इक दास तुम्हारा ॥

‡ सहस्रबाहु—चन्द्रवंशी कृतवीर्य राजा का पुत्र कार्तवीर्य था. इसके और नाम अर्जुन, सहस्रार्जुन, सहस्रबाहु आदि थे. इसने अनूप देश की माहिष्मती नाम नगरी को अपनी राजधानी बनाया. कहते हैं कि माहिष्मती नर्मदा के किनारे जबलपुर के पास भेड़ाघाट के समीप थी. इसका अधिकार भारतवर्ष भर में हो गया था. इसने तपस्या करके दत्तात्रेय को प्रसन्न किया और इन से अनेक वरदान पाये: यथा (१) एक हज़ार हाथ, (२) एक सोबरन का रथ जिसकी गति राजा की इच्छानुसार थी, (३) दोषों को न्याय के द्वारा सुधारने की शक्ति, (४) पृथ्वी का जीत लेना और उस पर धर्म से राज्य करने की बुद्धि,

ना को बिलगाइ बिहाइ नतु सब राजा मारे जैहैं' ऐसा
. होगा कि उस राजा को चाहिये कि वह समाज को छोड़
सब राजा मारे जावेंगे, परन्तु इस में यह शंका रह जाती है
.. मारे समाज का छोड़कर अलग न हो तो सब राजाओं का
.र क्यों वृथा मारे जायँगे॥

वचन लषन मुसकाने। बोले परशु धरहिं अपमाने॥
ं तोरी लरिकाइ। कबहुँ न अस रिस कीन्हि गोसाईं॥
र ममता केहि हेतू। सुनि रिसाय कह भृगुकुलकेतू॥

: के इन वचनों को सुनकर लक्ष्मण जी मुसकराये और परशुराम
.न कहने लगे। हे गोस्वामी! मैंने लड़कपन में बहुत से छोटे धनुष
। ऐसा क्रोध नहीं किया। इस धनुष पर क्यों विशेष प्रेम है, इन
जी क्रोधित हो कहने लगे॥

बालक कालवश, बोलत तोहि न सँभार।
म त्रिपुरारिधनु, विदित सकल संसार॥ २७१॥

.। क्या मृत्यु के वश होकर तू सम्हालकर नहीं बोलता, सब
जी का धनुष क्या धनुही के समान है?

हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुप समाना॥
: जीर्ण धनु तोरे। देखा राम नये के भोरे॥

अर्थ—हे राम सुनो! जिसने शिवजी का धनुष तोड़ा है वह सहस्रबाहु भा के समान मेरा वैरी है (भाव यह कि सहसबाहु मेरे पिता का घातक था और शिव जी का धनुष तोड़ने वाला भी गुरुद्रोही हुआ। इस हेतु गुरु द्रोही को मैं ऐसा दण्ड दूंगा जैसा सहसबाहु को दिया था)॥

चौ०—सो बिलगाइ बिहाइ समाजा। नतु मारे जैहैं सब राजा॥

अन्वय—सो समाजा बिलगाइ बिहाइ (दे) नतु सब राजा मारे जैहैं।

अर्थ—उसे समाज के लोग अलग करके छोड़दें नहीं तो सब राजा मारे जायँगे (भाव यह कि सब को चाहिये कि उससे दूर हो जावें जिससे मैं उसे मार डालूं यदि ऐसा न होगा तो मेरा कहना न मानने से मैं सब राजाओं को मार डालूंगा)॥

) शत्रुओं से पराजित न होना, (६) उस मनुष्य के हाथ से मृत्यु जो संसार भर में प्रसिद्ध हो, (७) इसने ८५००० वर्ष तक हृष्ट पुष्ट और शक्ति युक्त शरीर से ऐश्वर्य सहित र भोगा. कोई भी राजा कभी कार्तवीर्य को बराबरी न कर सकेगा. विशेषकर इन बातों था (१) १०००० यज्ञ, (२) उदारता, (३) तपस्या (४) नम्रता और (५) आत्म ज्ञान।

यह रावण का समकालीन था। एक बार रावण दिग्विजय करता हुआ माहिष्मती मे पहुंचा। वहां पर सहसबाहु ने इसे क़ैद कर रक्खा था; परन्तु रावण के आजा स्त्य मुनि के कहने से छोड़ दिया था. इसके १००० पुत्रों में से जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, और ऊर्जित प्रसिद्ध थे॥

ने अपने भोजनों के लिये इस राजा से एक बन माँगा था। राजा की आज्ञानुसार , बन को भक्षण करते समय अर्थात् जलाते समय वशिष्ठ मुनि का आश्रम जल । मुनि जी ने इसी से क्रुद्ध होकर कार्तवीर्य को शाप दिया कि तेरी सहस्र भुजाएँ [illegible]॥

प्रभाव से एक बार इसे दुर्बुद्धि उत्पन्न हुई। इस ने जमदग्नि ऋषि से सत्कार पाने पर भी उनकी कामधेनु का बलात्कार से हरण कर लिया भी मार डाला। परशुराम जी ने उसकी १००० भुजाएँ काट डालीं जिससे यह संकल्प किया कि ऐसे दुष्ट ये क्षत्री हैं इस हेतु मैं पृथ्वी को निःक्षत्रिय इस कथन के अनुसार परशुरामजी ने २१ बार राजाओं का वध करके पृथ्वी को दे डाला था (जैसा कहा है "भुज बल भूमि भूप बिन कीन्ही। विपुल दीन्ही॥"

सूचना—'सो समाजा को बिलगाइ बिहाइ नतु सब राजा मारे जैहें' ऐसा
न्वय करने से यह अर्थ होगा कि उस राजा को चाहिये कि वह समाज को छोड़
लग हो जावे नहीं तो सब राजा मारे जावेंगे, परन्तु इस में यह शंका रह जाती है
यदि वह राजा डर के मारे समाज का छोड़कर अलग न हो तो सब राजाओं का
या दोष है और वे बेचारे क्यों वृथा मारे जायँगे ॥

चौ०–सुनि मुनि वचन लषन मुसकाने। बोले परशु धरहिं अपमाने॥
×बहु धनुहीं तोरी लरिकाइ। कबहुँ न अस रिस कीन्हि गोसाई॥
इहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाय कह भृगुकुलकेतू॥

अर्थ—मुनि जी के इन वचनों को सुनकर लक्ष्मण जी मुसकराये और परशुराम
जी से निरादर सहित कहने लगे। हे गोस्वामी! मैंने छुटपन में बहुत से छोटे धनुष
तोड़े थे, आप ने कभी ऐसा क्रोध नहीं किया। इस धनुष पर क्यों विशेष प्रेम है, इन
शब्दों को सुन परशुराम जी क्रोधित हो कहने लगे॥

दो०–रे नृप बालक कालवश, बोलत तोहि न सँभार।
धनुहीं सम त्रिपुरारि [illegible] विदित सक[illegible] संसार॥ २७१॥

अर्थ—रे राजकुमार! क्या [illegible] [illegible]लकर नहीं बोलता, सब
संसार में प्रसिद्ध शिव जी [illegible] ?

चौ०–लषन कहा [illegible] ये सब धनुष समाना॥
+का [illegible] राम नये के भोरे॥

×

[illegible]रि आरि।
[illegible] कोटि कोटि॥
[illegible] छोरि छोरि।
[illegible] तोरि तोरि॥

शब्दार्थ—छति (क्षति) = हानि। जीर्ण = पुराना। भोरे = धोखे॥

अर्थ—लक्ष्मण जी हँस कर कहने लगे कि हे देव सुनिये! हमारी समझ में सब धनुष बराबर ही हैं। पुराने धनुष के तोड़ने में हानि लाभ क्या है? श्री रामचन्द्र जी तो उसे नये के धोखे से देखा था॥

चौ०—*छुवत टूट रघुपतिहु न दोषू। मुनि बिन काज करिय कत रोषू।
बोले चितइ परशु की ओरा। रे शठ सुनेहि सुभाउ न मोरा॥

अर्थ—वह तो छूते ही टूट गया श्री रामचन्द्र जी को भी दोष नहीं। हे मुनि जी! आप क्यों व्यर्थ क्रोध करते हैं। (तब तो मुनि जी) फरसा की ओर देखकर बोले, रे मूर्ख! तू ने मेरा स्वभाव नहीं सुना?

चौ०—†बालक जानि बधउँ नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानहि मोही॥
बालब्रह्मचारी अति कोही। विश्व विदित क्षत्रियकुलद्रोही॥

अर्थ—तुझे बालक समझ कर नहीं मारता हूं, रे मूर्ख! तू मुझे निपट मुनि ही जानता है। मैं बालकपन से ब्रह्मचारी और बड़ा क्रोधी हूं, संसार जानता है कि मैं क्षत्रियों के वंश का बैरी हूं॥

कवित्त—सायो तो पवन सतायो तो शरद ताहि सरिगौ सरेस कैयो घुन को डरो हतो
बिना रंग रोगन को सकुचत लीन्हों हाथ तानो कछु नाहीं अति जोरो ना करो हतो॥
क्षमावंत हूजै मोपै नयो बनवाइ लीजै जीरन पुरानो जानि तुम हूं धरो हतो।
लाये कौन शासन प्रकाशन हुताशन है चाहे सो कीजिये शरासन तो सरो हतो॥

* छुवत टूट रघुपतिहु न दोषू। मुनि बिन काज करिय कत रोषू॥

कवित्त—सुनिये सुजान भृगुवंश अवतंस मुनि बिन अपराध भौंह नाहक न तानिये।
'ललित' पुरानो बहु काल को न जानो धरो अति सरो भरो अपयश ही को ठानिये।
रावरी दुहाई नाथ सांची ये बखानत हौं छुअत कमलपानि टूटो यह जानिये
पीर न बढ़ावौ उर धीरन में धीर तुम जीरन पिनाक ताको येती रिस ठानिये।

† "बालक जानि" के पाठान्तर "बाल बिलोकि और बालक बोलि" भी हैं।

बालक जानि बधउँ नहिं तोही—बालक स्त्री आदि के बध करने से भारी पातक होत है, इसे भरत जी ने भी कौशल्या जी से कहा था, (राम रत्नाकर रामायण से)—

छन्द—जे मरत बिन उत्तरक्रिया निज नारि में सुत ना लहैं।
नृप नारि बालक के बधे शुचि वास को नहिं पात हैं॥
मधु मांस आदिक बेच के निज कुटुंब पालत रात हैं।
मते रघुनाथ बन में तिनहिं मैं अघ लाग हैं॥

चौ०—‡भुजबल भूमि भूप बिन कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही॥
सहसबाहुभुज छेदनिहारा। परशु बिलोकु महीपकुमारा॥

अर्थ—मैंने अपने बाहुबल से पृथ्वी को राजाओं से रहित कर डाला और अनेक बार ब्राह्मणों को दान करदी। रे राजकुमार! सहस्रबाहु की भुजाओं के काटनेवाले मेरे इस फरसा को देख ले?

दो०—मातु पितहि जनि सोचबश, करसि महीपकिशोर।
*गर्भन के अर्भकदलन, परशु मोर अति घोर॥ २७२॥

शब्दार्थ—गर्भन के अर्भक = गर्भवती के पेट के बच्चे।

अर्थ—हे राज कुमार! अपने माता पिता को सोच में मत डाले। मेरा यह बड़ा कठोर फरसा गर्भवती स्त्रियों के बच्चों का भी नाश करने वाला है॥

चौ०—बिहँसि लषन बोले मृदुबानी। अहो मुनीश महाभट मानी॥
†पुनि पुनि मोहि दिखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू॥

अर्थ—लक्ष्मण जी मुसकराकर धीरे से कहने लगे कि अहो मुनीश्वर! तुम अपने को बड़ा योद्धा समझ रहे हो। तुम मुझे बारंबार फरसा दिखलाते हो सो क्या फूँक से पहाड़ को उड़ाना चाहते हो? (अर्थात् चेष्टामात्र ही से तुम मुझे भयभीत करना चाहते हो सो नहीं हो सक्ता क्योंकि)॥

---

‡ भुजबल भूमि भूप बिन कीन्ही .... परशु बिलोकु महीपकुमारा—हनुमन्नाटक भाषा (श्री रामाजी चतुर्दास कृत)

छन्द—त्रिगुणित सात बेर क्षत्रिय समस्त केर बसा मांस रुधिर सनान बहु बार है।
निधन बिधान बीच परम प्रधान यह तीय गुरु बाल नाहिं निर्दय निहार है॥
राजन के कंधकूट कोटि कोटि काटन में साठौं घरी मारी गैर परम प्रचार है।
बार बार बदन प्रभुवांक पिय धार धार क्षत्रि क्षयकार घोर धार ये कुठार है॥

* 'गर्भन' का पाठान्तर 'गर्बिन' भी है जिसका अर्थ घमंडी राजाओं के ऐसा होता है॥

† पुनि पुनि मोहि दिखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू॥

कवित्त—पौरुष के पाये तो पिनाक ना पपोहत सों पौरुष के पेले कहुँ पर्वत गिरै नहीं।
दीपक के छेसे दिनेश ना मलिन होत गूगा सुने कहूँ मृगराजन धौं सकै नहीं॥
द्विजन के सुख रण मंडित रजपूतन सों धीरज कहाँ गाढ़ उनको घट नहीं॥
लै लै कुठार बार बार हो उबारत रघुवंशन के बाहु दंड हारन करै नहीं॥

चौ०—इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तर्जनी देखि मर जा
देखि कुठार शरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमा

शब्दार्थ—तर्जनी (तर्ज = धमकाना) = हाथ के अँगूठे के पास की अँगुली के द्वारा बहुधा लोगों को धमकाते हैं॥

अर्थ—यहां पर कोई कुम्हड़ा की बतियां तो हैं नहीं ? जो तर्जनी अँगुली के दि से सूख जावें। फरसा और धनुषबाण को (तुम्हारे पास) देखकर मैंने भी कुछ तेजी से कहे॥

चौ०—†भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहेउ सहउँ रिस रोक
‡सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन पर न सुरा

शब्दार्थ—सुराई (शूराई = शूर का काम) = बहादुरी॥

अर्थ—आप को भृगुकुल वाले समझ तथा जनेऊ देखकर जो कुछ आप ने सो सब मैंने क्रोध मारकर सहलिया। (क्योंकि) देवता, ब्राह्मण, हरिभक्त और इन सब पर हमारे वंश वाले (अर्थात् रघुवंशी) बहादुरी नहीं दिखलाते॥

चौ०—*बधे पाप अपकीरति हारे। मारत हू पा परिय तुम्हा
कोटि कुलिश सम वचन तुम्हारा। वृथा धरहु धनु बान कुठारा

---

† भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी ... ... सुमति मन रंजन नाटक से

कवित्त—पाइ नृपद्रोही कब छाँड़तो समर माहिं इतीं अपलोकै रघुवंशि पर नाम हीं
काहे को पलकि बलविपुल बखानौ मुनि महा धनु हाथ नाथ धारे बलधाम हीं
"ललित" न छोभी देखि अरिगण मोद भरो शंक को न अंक कालहु को रण बाम हीं
देखि उपवीत गातै घात ना करत बातै लाहु चलि द्यांते पातै करत प्रणाम हीं

और भी—

दोहा—परशु देख फरकत जु भुज, कंपत लखि उपवीत।
रन सन्मुख भे राम सों, राम होन यह रीत॥

‡ सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन पर न सुराई।

दोहा—विप्रधेनु बालक वधू, गुरु गरीब अरु गाय।
"सज्जन" इन आतहुन पै, चोट करे रौ जाय॥

* बधे पाप अपकीरति हारे। मारत हू पा परिय तुम्हारे—इसपराम कवित्त इ
प्रभाकर से—

क०—रावन निवारो जिन भारी तिन कुल गुरु भूषन के भूखे मरा लोभी कहा कहिये।
बाके हाथ दोनों में न काहू मंत्र बांधुन को तार्वे तेरी बात सुन सुन धार रहिये॥
(राम चं०)

अर्थ—इनके मारडालने से पाप होता है और इनसे हार जाने से अपयश होता है तुम यदि मारोगे तो भी हम तुम्हारे पैर ही पड़ेंगे (भाव यह कि तुम भृगुकुल के हो और भृगुमुनि ने जो विष्णु जी के लात मारी थी उसे सहकर उन्होंने उनके पैर ही पड़े थे) (इस समय) तुम्हारे वचन ही, तो करोड़ों वज्रों के समान हैं धनुषबाण और फरसा का धारण करना तुम्हारे लिये व्यर्थ है॥

कोटि कुलिश सम वचन" " " " का दूसरा अर्थ—ब्राह्मणों का शाप ही करोड़ों वज्रों के समान हानिकारक होता है। उन्हें धनुषबाण और फरसा आदि धारण करने की आवश्यकता ही नहीं॥

दो०—जो विलोकि अनुचित कहेउँ, छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोप भृगुवंशमणि, बोले गिरा गँभीर॥ २७३॥

अर्थ—जो (अर्थात् जिन अस्त्र शस्त्रों को) देखकर मैंने आप से कुछ अयोग्य वचन कहे हैं सो हे धीरजवान् मुनीश्वर जी ! आप क्षमा कीजिये (अर्थात् यदि मैं आप सरीखे महामुनि के पास इन हथियारों को न देखता तो अयोग्य वचन भी न कहता इसी से क्षमा मांगता हूं) इन वचनों को सुनते ही भृगुवंशियों में श्रेष्ठ परशुराम जी क्रोध के साथ गंभीर वाणी से बोले॥

चौ०—कौशिक सुनहु मंद यह बालक। कुटिल कालवश निजकुलघालक॥
भानुवंशराकेशकलंकू। निपट निरंकुश अबुध अशंकू॥

अर्थ—विश्वामित्र जी सुनो ! यह बालक मूर्ख है तथा कपटी, मृत्युवश और अपने कुल का नाश करने वाला है। यह सूर्यकुलरूपी चंद्रमा में कलंक के समान है, यह बड़ा मनमौजी, अज्ञानी और निडर है॥

चौ०—कालकवल होइहि छिन माहीं। कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं॥
+तुम हटकहु जो चहहु उबारा। कहि प्रताप बल रोष हमारा॥

हम को धनुष तोखो बाँधे तरकस अनरस करे बाम्हन सों ताते सब सहिये।
काशीराम कहै रघुवंशिन की रीति यहै जासे कीजै मोह तासों कोह कैसे गहिये॥

+ तुम हटकहु जो चहहु उबारा। कहि प्रताप बल रोष हमारा—राम रहस्य में
सवैया—सुन कौशिक बालक की शठता अभिमानरतो कुलनाशनवारो।
रविवंशिन माहि कलंक निरंकुश ज्यों सकलंक मयंक विचारो॥
छण में यह काल कराल के गाल में जायहिगो नहिं दोष हमारो।
कहि के हमरो बल रोष प्रताप नहीं हटको यहां "रूप" उबारो॥

शब्दार्थ—कालकवल होइहि = यम का ग्रास बनेगा अर्थात् मारा जाय उबारा = बचाना ॥

अर्थ—यह पल भर में मारा जायगा, मैं चिल्लाकर कहे देता हूं, मुझे [illegible] नहीं। जो तुम इसे बचाया चाहते हो तो हमारा तेज, बल और क्रोध सुनाकर [illegible] रोक लो ॥

चौ०—लखन कहेउ मुनि सुयश तुम्हारा। तुमहिं अछत को बरनै पारा॥
आपने मुख तुम आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥

अर्थ—लक्ष्मण जी कहने लगे कि हे मुनि जी! आप के रहते हुए आप के [illegible] को कौन वर्णन कर सक्ता है। आप ने अपने मुख से निज करतूति तो नाना [illegible] से बारंबार वर्णन की है।

चौ०—नहिं संतोष तो पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू॥
वीरव्रती तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहु शोभा॥

अर्थ—यदि जी न भरा हो तो और भी कुछ कह डालो? क्रोध को दबा [illegible] असह्य दुख न सहिये। आप तो योद्धाओं का बाना बांधे, धीरजवान और स्थिर [illegible] माने जाते हो, इसहेतु गालियां देने से शोभा नहीं पाते॥

दो०—†शूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आप।
‡विद्यमान रिपु पाइ रण, कायर करहिं प्रलाप॥ २७४

* वीरव्रति तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहु शोभा—राम रहस्य से
सवैया संतोष नहीं तो कहो कछु और न रोकहु क्रोध सहो दुख भारो।
वीरव्रती तुम हो सुकृती सुनि गारिन को हँसि है जग सारो॥
हे मुनिनाथ सुशील तुम्हार न जानत को जग में उजियारो।
है यह रीति न वीरन की अपने मुख दत्त प्रताप पुकारो॥

"गारी देत न पावहु शोभा"—गालीसूचक शब्द ये हैं:—
(१) भानुवंश राकेश कलंकू। (२) निपट निरंकुश। (३) निपट अबुध। (४) [illegible] [illegible] आदि।

† शूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आप—
[illegible] शूराः [illegible] [illegible] पौरुषम्।
श्लोक—[illegible] [illegible] नहीं करते, वे भी करतूति कर दिखाते हैं॥
‡ [illegible] करहिं प्रलाप—टीक यही बात विभीषण ने [illegible] [illegible] थे। जब उन्होंने सुना था कि

शब्दार्थ—प्रलापहु या बकवाद ॥

अर्थ—योद्धा लोग तो लड़ाई में बहादुरी दिखाते हैं, कुछ अपनी बड़ाई नहीं बताते और कायर तो संग्राम में वैरी को रहते हुए देख केवल बकवाद करने लगते हैं ॥

चौ०—तुम तौ काल हाँकि जनु लावा। बार बार मोहि लागि बुलावा ॥
सुनत लषन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा ॥

अर्थ—तुम तो मृत्यु को मानो अपने साथ ही लेते आये हो जो बारंबार मेरे लिये उसे बुलाते हो। (भाव यह कि मृत्यु क्या आप के आधीन है ? जो घड़ी घड़ी मेरे लिये उसे बुलाते हो)। लक्ष्मण जी के ऐसे कड़े वचन सुन कर (परशुराम ने) भयंकर फरसा को अपने हाथ में सम्हाल कर लिया ॥

चौ०—अब जनि देइँ दोष मोहि लागू। कटुवादी बालक बधयोगू ॥
†बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यह मरनहार भा साँचा ॥

अर्थ—(और बोले) 'अब लोग मुझे बुरा न कहें, बुरे वचन कहने वाला बालक मार डालने के योग्य है। मैंने इसे बालक जान बहुत बचाया परंतु अब तो यह सचमुच मरना ही चाहता है'। (क्योंकि यह तो मुझे कायर कहता है) ॥

चौ०—कौशिक कहा छमिय अपराधू। बालदोषगुन गनहिं न साधू ॥
कर कुठार मैं अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही ॥

अर्थ—विश्वामित्र कहने लगे अपराध क्षमा कीजिये क्योंकि बालक के गुण अवगुणों का विचार सज्जन नहीं करते। (परशुराम कहने लगे कि) (एक तो) मेरे हाथ में फरसा है (दूसरे) मैं बिना कारण के ही क्षत्रियों पर क्रोध करने वाला हूं और (तीसरे) मेरा अपराध करने वाला तथा गुरु का वैरी मेरे सामने है ॥

रामचन्द्रजी की सेना लंका के समीप आ पहुंची है - रामरसायन से

दोहा—प्रथम बचानत फूलि जे, बड़ी बड़ी बहु बात।
ऐसे ते औसर परे, दरशत हैं कदरात ॥

† बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यह मरन हार भा साँचा—

सवैया—बालक जानि तज्यौं हित कै यह छाँड़े नहीं कटु बैन उचारियो।
जानै प्रताप न मेरो कहो बहु क्यों "छलिते" उर धीरज धारियो ॥
मो कर पावक भाजन मैं शठ चाहै सबै कुल को बन जारियो।
लाग न मेरी कछू यह तौ बरजोरी चहै यमलोक सिधारियो ॥

चौ०—उतर देत छाँड़उँ बिन मारे। केवल कौशिक शील तुम्हारे॥
न तु इहि काटि कुठार कठोरे। गुरहि उऋण होतेउँ श्रम थोरे॥

अर्थ—ऐसे उत्तर देने वाले को मैं जो बिना मारे छोड़ देता हूं सो हे विश्वामित्र! यह तुम्हारा ही संकोच है (भाव यह कि मारडालने के योग्य तो है परंतु तुम अपने साथ इन्हें लिवालाये हो सो तुम्हें कलंक न लगे इसहेतु छोड़ देता हूं)। नहीं तो इस को अपने भयंकर फरसे से काटकर थोड़े ही श्रम से गुरु के ऋण से छुटकारा पालेता (अर्थात् सहज ही में शंकर जी के धनुष तोड़ने वाले को मार कर उन का बदला मैं ही लेलेता)॥

दो०—गाधिसुवन कह हृदय हँसि, मुनिहिं हरिअरिइ सूझ।
‡अजगव खंडेउ ऊख जिमि, अजहुँ न बूझ अबूझ॥ २७५॥

शब्दार्थ—गाधिसुवन = गाधि राजा के पुत्र अर्थात् विश्वामित्र। हरिअरिइ = (१) हरियाली (२) हरि शत्रु ही। अजगव = शिव का धनुष, जैसा कि अमर कोष में लिखा है ' पिनाको ऽजगवं धनुः' अर्थात् शिवजी के धनुष को पिनाक या अजगव भी कहते हैं॥

अर्थ—विश्वामित्र जी हँसकर मन ही मन कहने लगे कि परशुराम को सब हरा हरा ही सूझता है (अर्थात् वे समझते हैं कि राम लक्ष्मण भी साधारण क्षत्री हैं सो जिस प्रकार उन्हों ने अनेक क्षत्रियों को वैरी समझ कर मार डाला है इसी प्रकार इनको भी मार डालेंगे। जिस प्रकार सावन के अंधे को सब कुछ हरा ही हरा समझ पड़ता है।) जिन्होंने शिव जी के धनुष को गन्ने की नाईं तोड़ डाला है उन्हें ये अज्ञानवश अभी तक नहीं पहिचानते (कि शिव जी का धनुष तोड़ना क्या साधारण क्षत्रियों का काम है)॥

दूसरा अर्थ—विश्वामित्र जी हँसकर हृदय में कहने लगे कि हरि (अर्थात् रामचन्द्र जी) जिन्हों ने शिव जी के धनुष को गन्ने की नाईं तोड़ डाला है वे मुनि को ' अरिइ सूझ ' अर्थात् शत्रु ही समझ पड़ते हैं यह जानकर भी अजान हो रहे हैं॥

‡ " अजगव खंडेउ ऊख जिमि " का पाठान्तर " अयमय खांड़ न ऊख मय " है जिस का अर्थ यह है कि (राम लक्ष्मण को मारना) यह " अयमय खांड़ अर्थात् लोहे का बना हुआ खांड़ा है न " ऊख मय खांड़ " है अर्थात् ऊख की बनी हुई खांड़ (शक्कर) नहीं है जिसका खाना सहज है (भाव यह कि राम लक्ष्मण लोहे के खांड़े अर्थात् तलवार की नाईं काटने वाले हैं न कि ऊख की खांड़ के समान सुलभता से खाने के पदार्थ हैं। सार यह है कि राम लक्ष्मण को न मार सकोगे वरन उलटे पराजित होओगे) यह टेढ़ी खीर है या लोहे के चने हैं, गप्प से खाने के योग्य नहीं हैं॥

चौ०—कहेउ लषन मुनि शील तुम्हारा। को नहिं जान विदित संसारा॥
*मातहि पितहि उऋण भये नीके। गुरुऋण रहा सोच बड़ जीके॥

अर्थ—लक्ष्मण जी कहने लगे हे मुनि! तुम्हारे सकोची स्वभाव को कौन नहीं जानता है संसार में सभी को प्रकट है। तुम अपने माता पिता के ऋण से तो भली भांति मुक्त हो चुके अब गुरु का ऋण बाकी है उसी का जी में बड़ा सोच है (अर्थात् माता को स्वतःमार कर तथा पिता को सहसबाहु से वध किया हुआ देख दोनों के ऋण से उऋण हो गये ये व्यंग्य वचन हैं)॥

चौ०—सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गयेउ व्याज बहु बाढ़ा॥
अब आनिय व्यवहरिया बोली। तुरत देउँ मैं थली खोली॥

अर्थ—वह गुरु का ऋण मानो हमारे ही माथे से चुकाया जाता है (उस ऋण को) दिन बहुत हो गये इस हेतु व्याज बहुत बढ़ गया है। अब साहूकार को बुला लाओ तो मैं झटपट थैली खोल कर चुका दूँगा (भाव यह कि अपने साहूकार गुरु शंकर जी को बुला लाओ तो वे ही आकर इस का निपटारा कर लेवेंगे)॥

चौ०—सुनि कटुवचन कुठार सुधारा। हाहा कहि सब लोग पुकारा॥
भृगुवर परशु दिखावहु मोही। विप्र विचारि बचौं नृपद्रोही॥

अर्थ—ऐसे कठोर वचन सुनते ही परशुराम ने फरसा उठाया तो सब लोग हाहाकार मचाने लगे। (लक्ष्मण फिर बोले) हे परशुराम! तुम मुझे फरसा दिखाते हो, हे राजकुल शत्रु! मैं तुम्हें ब्राह्मण जान कर बचा रहा हूं॥

चौ०—†मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहिं के बाढ़े॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहिं लषन निवारे॥

अर्थ—कभी तुम्हें कठिन संग्राम में विकट योद्धाओं से काम नहीं पड़ा, हे ब्राह्मण देवता! तुम घर ही के पराक्रम से बढ़े हो (अर्थात् तुम अपने तपोबल ही

---

* मातहि पितहि उऋण भये नीके—इस की कथा सहसबाहु की कथा में देखो टि० पृ० १६७॥

† मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े—

कवित्त—हमहूं त्रिलोकि कै कुठार औ धनुषबान यैन सतरार के कहे जो भरि जाइगो।
"ललित" करी जो बिन छत्र छिति मंडल तो मैं न हतों तब सब मान टरि जाइगो॥
कोई तुम गाढ़ो मुनि सुभट मिलो न जग अब रघुपतिन सों काम परि जाइगो।
दुख भरि जाइगो सुहाइगो न फेरि कहू रोप मति यायों सो हिये में खरि जाइगो॥

से वीर बन बैठे हो अथवा घरही में माता का वध कर वीरता की डींग मार रहे सब लोग चिल्ला उठे कि यह ठीक नहीं (सुनते ही) रामचन्द्र जी ने नेत्रों के से लक्ष्मण को रोका ॥

दो०—लपनउतर आहुतिसरिस, भृगुवरकोप कृशानु।
बढ़त देखि जल सम वचन, बोले रघुकुलभानु ॥ २७

अर्थ—रघुकुल में सूर्य के समान रामचंद्र ने जब देखा कि लक्ष्मण के आ समान उत्तरों से परशुराम की क्रोधरूपी अग्नि बढ़ती ही जाती है तब तो वे के समान वचन बोले (अर्थात् जिस प्रकार आहुति से बढ़ती हुई अग्नि को ज द्वारा शांत करते हैं उसी प्रकार लक्ष्मण के अनुचित उत्तरों से बढ़े हुए परशुरा क्रोध को रामचंद्र जी अपनी शीतल वाणी से शांत करने लगे) ॥

चौ०—×नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध मुख करिय न को
जो प प्रभुप्रभाव कछु जाना। तौ कि बराबरि करत अयाना

अर्थ—हे स्वामी ! इस बालक पर दया कीजिये यह शुद्ध दूध पीने वाले बा की नाई है उस पर क्रोध न कीजिये। जो यह अज्ञानी कुछ आप के प्रभाव जानता तो क्या बराबरी करता ? (अर्थात् नहीं) ॥

चौ०—†जो लरिका कछु अनुचित करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं
करिय कृपा शिशु सेवक जानी। तुम सम शील धीर मुनिज्ञानी

× नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध मुख करिय न कोहू—हितोपदेश से—

श्लोक—देवतासु गुरौ गोषु, राजसु ब्राह्मणेषु च।
नियंतव्यः सदा कोपो, बालवृद्धातुरेषु च ॥

अर्थात् देवताओं, गुरु, गायों, राजाओं, ब्राह्मणों, बालकों, वृद्धों और रोगियों प सदा कोप को रोकना चाहिये ॥

† जो लरिका कछु अनुचित करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं—हनुमन्नाट भाषा (श्रीरामाजी चतुरदास कृत)

छप्पय—सुनि सुनि वचन मुनीश राम निज चेतसि गुनि गुनि।
पुनि पुनि नयन निहारि बैन बोले हिय गुनि गुनि ॥
भुज बल विदित न याहि माहिं शिवधनु प्रताप बल।
रावर महिमा महा कहा यह जानि सकै भल ॥
करिये न क्रोध नादक विभो धरिये धीरज धूप धिय।
कराव बाल आचरण कवि है प्रमुदित गुरु लोग हिय ॥

और भी राम रसायन रामायण में—(रोला)

अर्थ—जो बालक कुछ अयोग्य काम भी कर डाले तो उस के गुरु, माता और पिता का मन प्रसन्न ही होता है। आप सरीखे शीलवान्, धीरजवान् और ज्ञानवान् मुनि उसे अपना छोटा सेवक समझकर कृपा ही करें ॥

चौ०—रामवचन सुनि कछुक जुड़ाने। ‡कहि कछु लषन बहुरि मुसकाने॥
हँसत देखि नख सिख रिस व्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी॥

अर्थ—रामचन्द्र जी के वचनों को सुनकर कुछ शांत हुए इतने में लक्ष्मण कुछ कहकर फिर मुसकराये। हँसते हुए देख शिर से पैर तक क्रोध भरगया और कहने लगे हे राम! तुम्हारा भाई बड़ा पापी है ॥

चौ०—गौरशरीर श्याम मन माहीं। कालकूटमुख पयमुख नाहीं॥
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। नीच मीचसम लखै न मोहीं॥

अर्थ—इस का तन तो उजला है परन्तु मन मैला है, यह विषमुख है दूध मुख नहीं। यह स्वभाव ही से टेढ़ा है तुम्हारे स्वभाव से नहीं मिलता, यह नीच मुझे अपनी मृत्यु के समान नहीं देखता ॥

दो०—लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, *क्रोध पाप कर मूल।
जेहिवश जन अनुचित करहिं, चरहिं विश्वप्रतिकूल॥२७७॥

अर्थ—लक्ष्मण हँस कर कहने लगे हे मुनि सुनिये! क्रोध पाप की जड़ है जिसके आधीन हो कर मनुष्य अयोग्य काम कर बैठते हैं और संसार के विरुद्ध बर्ताव करने लगते हैं। (भाव यह कि जैसे आप ने क्रोध के कारण निरपराधी क्षत्रियों को मारा और विश्वरूप था रामचन्द्र जी से क्रोध कर रहे हो) ॥

दोहा—महावीर पर धीर प्रभु, क्षमिये शिशु अपराध।
कृपा करत हैं बाल पै, सबही साधु प्रसाद॥

‡ कहि कछु लषन बहुरि मुसकाने—विजय दोहावली में इसके विषय में यों लिखा है—

दो०—प्रभु चितये मुसक्याय कै, बैठ रहे कछु अन्त।
लषन बतायो भृगुपतिहि, चारि नारि को कन्त॥

भाव यह कि चारि नारि को कन्त अर्थात् अँगूठा चुपके से दिखा दिया

* क्रोध पाप कर मूल—

क०—गर्व ते सुकृत जाय ममता ते पत्त जाय कुलाज है ते कुल जाय योग जाय कुसंग ते।
[illegible] ते शरीर जाय भूप ते मरयादा जाय बुद्धि जाय भंग ते।
[illegible] जाय मांग ते मान जाय [illegible] गंग ते।
[illegible] जाय रजपूती जाय धन मुहँ [illegible] ते।

चौ०—मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। परिहरि कोप करिय अब दाया
टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने। बैठिय होइहहिं पाय पिराने
† जो अति प्रिय तौ करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़गुणी बुलाई

अर्थ—हे मुनीश्वर! मैं आप का सेवक हूं, अब क्रोध को छोड़िये और कृ कीजिये। टूटा हुआ धनुष क्रोध करने से जुड़ नहीं सक्ता, बैठ जाइये, पाँव पिरा लगे होंगे। जो (धनुष पर) अधिक प्रेम है तो उपाय कीजिये, किसी बड़े कारी को बुलाकर जुड़वा लीजिये॥

चौ०—बोलत लषनहिं जनक डराहीं। ✻ मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं।
थर थर कांपहिं पुरनरनारी। छोट कुमार खोट बड़ भारी।
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी। रिसतन जरै होइ बल हानी।

अर्थ—लक्ष्मण जी के बोलने से जनक जी डरते थे, वे कहने लगे इन्हें चुप कर दो, अयोग्य बातें ठीक नहीं। नगर के स्त्री पुरुष थर्रा उठे थे वे बोले कि यह छोटा कुँअर बड़ा खोटा है। ऐसी निधड़क बातें सुनते २ परशुराम जी का शरीर तो क्रो. के मारे जला जाता था और साथ ही साथ उन का बल भी घटता जाता था॥

चौ०—बोले रामहिं देइ निहोरा। बचउँ बिचारि बंधु लघु तोरा॥
+ मन मलीन तनु सुन्दर कैसे। बिषरस भरा कनकघट जैसे॥

---

† जो अति प्रिय तौ करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुणी बुलाई॥—धनुष यज्ञ नाटक बहार से॥

सवैया—मुनि बैठिये पाय पिरान लगे हुइ हैं मन मो तरसावत है।
नहिं चैन पड़ै छ हृदै में प्रभू आ क्षण क्षण मोह बढ़ावत है॥
तौ एक गुणी हमरे पुरमाहि बसइ वर चाप बनावत है।
तुम ताहि बुलाइ जुड़ाइ लो ये जन रक्ष प्रयत्न बतावत हैं॥

* मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं—नीति शास्त्र में कहा है कि "मौनेन कलहो नास्ति नास्ति जागरिते भयम्" अर्थात् चुप रह जाने से तकरार शान्त हो जाती है और चैतन्य रहने वाले को भय नहीं रहता॥

+ मन मलीन तनु सुन्दर कैसे। बिषरस भरा कनकघट जैसे॥—धनुष यज्ञ नाटक बहार से—

सवैया—ये दुष्ट है श्याम हृदय का महा तन सुन्दर गौर लखावत है।
सौभाविक वक्र गती ये चलइ नहिं तेरी समानता पावत है॥
है घोर हलाहल या के गले मुख बचन सदा कटु आवत है।
मन तुच्छ मुनी मोय जानत है नहिं काल विचार डरावत है॥

अर्थ—रामचंद्र पर धरभार रख के कहने लगे कि मैं इसे तुम्हारा छोटा भाई जान कर छोड़े देता हूं। ये मन का मैला तन का गोरा इस प्रकार है जैसे विष के रस से भरा हुआ सोने का घड़ा॥

दोहा–*सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुरु समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम॥ २७८॥

अर्थ—सुनते ही लक्ष्मण जी फिर हँसने लगे तो रामचंद्र जी ने घुड़क दिया, तब वे लज्जित होकर व्यंग्य वचन कहना छोड़ गुरु जी के पास चले गये॥

चौ०–अति बिनीत मृदु शीतलबानी। बोले राम जोरि युगपानी॥
सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना। बालकवचन करिय नहिं काना॥

अर्थ—रामचंद्र जी दोनों हाथ जोड़ बहुत ही नम्र मधुर और शांति देने वाले वचन बोले। हे स्वामी सुनिये! आप तो स्वभाव ही से बुद्धिमान् हैं, बालक के शब्दों पर ध्यान न देना चाहिये॥

चौ०–+ बररे बालक एक सुभाऊ। इनहिं न संत बिदूषहिं काऊ॥
×तेहि नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥

---

* सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम—हितोपदेश से
श्लोक—आकारैरिंगितैर्गत्या, चेष्टया भाषणेन च।
नेत्रवक्त्र विकारेण, लक्ष्यतेऽन्तर्गतंमनः॥

अर्थात् आकार से, इशारे से, गति से, चेष्टा से और भाषण से तथा नेत्र और मुख के विकार से मन के भीतरी भाव जाने जाते हैं॥

+ बररे बालक एक सुभाऊ। इनहिं न संत बिदूषहिं काऊ—राम रसायन रामायण से
दोहा—मूढ़ मत्त शिशु तिय दुखी, पांचहु एक समान।
इन के वचन सरोष सुनि, रोष न करैं सुजान॥
सवैया—बाल बदी करै बादि सदा पितु मातु तऊ भरैं गोविन्द माहीं।
क्रूर कसूर करैं पशु भूरि तजै तऊ पालक पालिबो नाहीं॥
हे भृगुनाथ तिहारेहि नाथ अबोध है बाल कहैं केहि पाहीं।
ये जड़तावश मोह पर्यो तुम बादि बराबर होहु कृपाहीं॥
× तेहि नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा—राम रसायन रामायण से
दोहा—लखन दुखी नहिं चाप को, सत्य कहौं भृगुनाथ।
हौं अपराधी रावरो, यह धनु कर मम नाथ॥

*भयेउ वाम विधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदय कृपा कस काऊ॥

अर्थ—हाथ नहीं उठता, क्रोध से जी जला जाता है, राजाओं का घातक यह फरसा भी निरर्थक होरहा है। विधाता ही विपरीति होगया तब तो मेरा स्वभाव पलट गया, भला, मेरे हृदय में किसी के ऊपर दया काहे की॥

चौ०—आज दैव दुख दुसह सहावा। सुनि सौमित्र विहँसि शिर नावा॥
बाउकृपा मूरति अनुकूला। बोलत वचन झरत जनु फूला॥
†जो पै कृपा जरहि मुनि गाता। क्रोध भये तनु राखु विधाता॥

शब्दार्थ—बाउ (शुद्धरूप वायु) = हवा॥

अर्थ—आज विधाता ने बड़ा भारी दुःख सहाया सुनते ही लक्ष्मण ने मुसकरा-कर शिर नवाया। आप के शरीर ही के अनुसार आप की कृपा की वायु है (अर्थात् जैसा आपका शरीर विष का पात्र है वैसीही आपकी कृपा भी विष भरी है)। जो आप वचन बोल रहे हैं वे मानो फूलही से झर रहे हैं (भाव यह कि आप जो बातें बोल रहे हैं सो मानो विष उगल रहे हैं)। हे मुनिजी! यदि कृपा करने से ही आप का शरीर जला जाता है तो जब आप क्रोध करेंगे तो दैव ही है जो आप के शरीर की रक्षा करे (अर्थात् क्रोधित होने पर कहीं शरीर न छूटजाय)॥

चौ०—देखु जनक हठि बालक येहु। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहु॥
वेगि करहु किन आँखिन ओटा। देखत छोट खोट नृपढोटा॥

कीन्हों हृदय प्रबोध, अद्भुत अरि देखत टाढ़े।
उत्तर सुनत सरोष, मोर हिय ज्वालन बाढ़े।
ज्वालन बाढ़े जरत उर, घोर धार को छै गयो।
काटि काटि कंठनि कुलह, रे कुठार कुंठित भयो॥

* भयेउ वाम विधि फिरेउ सुभाऊ—जसवन्त जसो भूषण से—
छप्पय—सुर समूह को सुधा विष्णु को रमा मनोहर।
शंकर को शशिकला शक्र को कल्पतरोवर॥
मेदिनि को मर्याद हिमालय सुन को सरनो।
द्विज यह आशा यह जु करहि दुख में उद्धरनो॥
वारिधि अगस्त अचयो जबै विष्णु न करो सहाय भव।
कहु देव कोपत जबै है अनेक बाधक विफल॥

† जो पै कृपा जरहि मुनि गाता। क्रोध भये तनु राखु विधाता—
दो०—काम समान कृपानि नहिं, [illegible]

विहँसे लपन कहा मुनि पाहीं। +मूँदहु नयन कतहुँ कोउ नाहीं॥

अर्थ—हे जनक देखो! यह बालक मूर्ख है जो जान बूझ कर यमपुरी में अपना घर बनाया चाहता है (अर्थात् मरना चाहता है)। यह देखने में छोटा परन्तु बड़ा खोटा राजकुमार है इसे मेरी आंखों की ओट जल्दी से क्यों नहीं करदेते। (यह सुन) लक्ष्मण जी हँसे और परशुराम से बोले कि आप आंखे बंद कर लेवें तो फिर कोई भी कहीं न दीख पड़ेगा॥

दो०—परशुराम तब राम प्रति, बोले वचन सक्रोध।
शंभुशरासन तोरि शठ, करसि हमार प्रबोध॥ २८० ॥

अर्थ—तब परशुराम रामचन्द्र जी से क्रोध भरे वचन कहने लगे कि रे मूर्ख! तू महादेव जी के धनुष को तोड़ कर हमें समझाना चाहता है॥

चौ०—बंधु कहै कटु संमत तोरे। तू छल विनय करसि कर जोरे॥
+करु परितोष मोर संग्रामा। नाहिं त छाँडु कहाउब रामा॥

अर्थ—तेरी ही सलाह से तेरा भाई कठोर वचन कह रहा है और तू कपट से हाथ जोड़कर विनती कर रहा है। मुझ से युद्ध करके मेरा संतोष कर नहीं तो अपने को राम कहलवाना छोड़ दे (भाव यह कि यथार्थ में राम तो मेरा नाम है तू नया राम कहां से कूद पड़ा)॥

+मूँदहु नयन कतहुँ कोउ नाहीं—सहजो बाई कृत सहज प्रकाश में नयन मूँद कर बैठने से संसार की सम्पूर्ण वस्तुओं को मानो अपने साम्हने से हटाकर चित्त शुद्ध करना है—

दो०—सहजो गुरु प्रसन्न हो, मूँदि लिये दोउ नैन।
फिर मोसों ऐसे कहो, समझ लेहु यह सैन॥

+करु परितोष मोर संग्रामा। नाहिं त छाँड़ु कहाउब रामा॥ हृदयराम कवि कृत हनुमन्नाटक से—

[illegible] न हैहो आन रूप कहा रघु कूंको करोंगो निदान सुन्यो तयो ओ[illegible] अब हो।
पुंडुप टू को [illegible] धरे [illegible] बार बार बोलत गरब हो॥
[illegible]

बिहँसे लपन कहा मुनि पाहीं। +मूँदहु नयन कतहुँ

अर्थ—हे जनक देखो! यह बालक मूर्ख है जो जान बूझ
अपना घर बनाया चाहता है (अर्थात् मरना चाहता है)। यह दे
परन्तु बड़ा खोटा राजकुमार है इसे मेरी आंखों की ओट जल्दी से क्यों
(यह सुन) लक्ष्मण जी हँसे और परशुराम से बोले कि आप आंखे
तो फिर कोई भी कहीं न दीख पड़ेगा॥

दो०—परशुराम तब राम प्रति, बोले वचन सक्रोध।
शंभुशरासन तोरि शठ, करसि हमार प्रबोध॥ २

अर्थ—तब परशुराम रामचन्द्र जी से क्रोध भरे वचन कहने
तू महादेव जी के धनुष को तोड़ कर हमें समझाना चाहता है॥

चौ०—बंधु कहै कटु संमत तोरे। तू छल विनय
+करु परितोष मोर संग्रा नाहिं त छाँ

अर्थ—तेरी ही सलाह से तेरा वचन कह
हाथ जोड़कर विनती कर रहा है। करके मे
अपने को राम कहलवाना छोड़ दे कि यथा

चौ०—छल तजि करहु समर शिवद्रोही। *बंधु सहित नतु मारौं तोही॥
भृगुपति बकहिं कुठार उठाये। मन मुसकाहिं राम शिर नाये॥

अर्थ—रे शिव जी के वैरी! कपट को छोड़ युद्ध कर नहीं तो मैं तुझे भाई समेत मारे डालता हूं। परशुराम जी फरसा को उठाये हुए अनाप शनाप कह रहे थे और रामचन्द्र जी मन में मुसकराते हुए शिर नीचा किये सुन रहे थे (भाव यह कि इतने समय तक लक्ष्मण, रामचन्द्र जी, विश्वामित्र और जनक से परशुराम जी बातचीत करते रहे और कई स्थानों में अवतार सूचक सूचना भी हुई, धनुष भंग भी देखा परन्तु यह न जाना कि अवतार होगया)॥

चौ०—गुनहु लषन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू॥
‡टेढ़ जानि शंका सब काहू। †बक्र चन्द्रमहि ग्रसै न राहू॥

---

* बंधु सहित नतु मारौं तोही—

सवैया—एक तो चूक यही धनु तोरेउ कोप की आगि बुझै न बरे से।
दूजइ आनि अतंक कियो मृग जात कहाँ मृगराज अरे से॥
तीजइ बैन कटाक्ष कहे बचिहौ नहिं कोटि उपाय करे से।
आज दुहू रघुवंशिन के भुज काटौं कुठार की धार तरे से॥

‡ टेढ़ जानि शंका सब काहु—बिहारी की सतसई से—

दोहा—बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमान।
भलो भलो कहि छोड़िये, खोटे ग्रह जपदान॥

† बक्र चन्द्रमहि ग्रसै न राहू—विप्रचित्त को सिंहिका नाम की पत्नी से जो सन्तान हुए, उनमें एक राहु है। इसका तामसरूपी मंडल सूर्य मंडल के ऊपर और चन्द्र मंडल के नीचे इस मन्वंतर में विद्यमान है। इसका काला रथ आठ घोड़ों से खींचा जाता है और इस की गति सूर्य मंडल से चन्द्र मंडल तक और चन्द्र मण्डल से सूर्य मण्डल तक हुआ करती है। इस ग्रह के ऊर्ध्व भाग केतु के रथ में भी आठ लक्खी घोड़े जुते रहते हैं। इस की कथा यों है कि राहु नाम का एक दैत्य था जिसका मस्तक और अधोभाग अजगर के थे इसका स्वरूप चतुर्भुजी था। समुद्र मंथन से जो चौदह रत्न निकले थे उन में से अमृत के लिये देव और दानव झगड़ा करने लगे। विष्णुजी ने चतुर्भुजी मोहिनी रूप धारण कर दैत्यों की पंक्ति में मदिरा और देव पंक्ति में अमृत बांटना आरंभ कर दिया। राहु देवता का रूप धारण कर देव पंक्ति में बैठ अमृत पान कर गया। इतने में सूर्य और चन्द्र के द्वारा सूचित होने पर विष्णु जी ने उस के शिर से धड़ को अलग करके चतुर्भुज से द्विबाहु कर दिया। अमृत के प्रभाव से वह मरा नहीं। निदान दोनों टुकड़े राहु और केतु के नाम से

बिहँसे लषन कहा मुनि पाहीं। +मूँदहु नयन कतहुँ कोउ नाहीं॥

अर्थ—हे जनक देखो! यह बालक मूर्ख है जो जान बूझ कर यमपुरी में अपना घर बनाया चाहता है (अर्थात् मरना चाहता है)। यह देखने में छोटा परन्तु बड़ा खोटा राजकुमार है इसे मेरी आंखों की ओट जल्दी से क्यों नहीं करदेते। (यह सुन) लक्ष्मण जी हँसे और परशुराम से बोले कि आप आंखे बंद कर लेवें तो फिर कोई भी कहीं न दीख पड़ेगा॥

दो०—परशुराम तब राम प्रति, बोले वचन सक्रोध।
शंभुशरासन तोरि शठ, करसि हमार प्रबोध॥ २८०॥

अर्थ—तब परशुराम रामचन्द्र जी से क्रोध भरे वचन कहने लगे कि रे मूर्ख! तू महादेव जी के धनुष को तोड़ कर हमें समझाना चाहता है॥

चौ०—बंधु कहै कटु संमत तोरे। तू छल विनय करसि कर जोरे॥
+करु परितोष मोर संग्रामा। नाहिं त छाँड़ु कहाउब रामा॥

अर्थ—तेरी ही सलाह से तेरा भाई कठोर वचन कह रहा है और तू कपट से हाथ जोड़कर विनती कर रहा है। मुझ से युद्ध करके मेरा संतोष कर नहीं तो अपने को राम कहलवाना छोड़ दे (भाव यह कि यथार्थ में राम तो मेरा नाम है तू नया राम कहां से कूद पड़ा)॥

+मूँदहु नयन कतहुँ कोउ नाहीं—सहजो बाई कृत सहज प्रकाश में नयन मूंद कर बैठने से संसार की सम्पूर्ण वस्तुओं को मानो अपने साम्हने से हटाकर चित्त शुद्ध करना है—

दो०—सहजो गुरू प्रसन्न हो, मूँदि लिये दोउ नैन।
फिर मोसों ऐसे कही, समझ लेहु यह सैन॥

+करु परितोष मोर संग्रामा। नाहिं त छाँड़ु कहाउब रामा॥ हृदयराम कवि कृत हनुमन्नाटक से—

छं०—जीवत न छैहौं जान आन महा रुद्र जू की करौंगो निदान सुन्यो गयो जोऊ
ख्याति के सपूत, पुरहूत हू को बांधि धरे कारागार बार बार बोलत.
बांध बरे मानत न ओर नट जानत न मानत न उधर उधर आये
नयो अधिकार सो संसार मांझ वार दान नातर हथ्यार भूमि मांझ डार

चौ०—जो तुम औतेहु मुनि की नाईं। पदरज शिर शिशु धरत गोसाईं ॥
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिय विप्रउर कृपा घनेरी ॥

अर्थ—जो आप (केवल) मुनि ही की नाईं आते, तो हे गोस्वामी ! यह बालक आप के चरणों की रज को शिर पर धारण करलेता। अज्ञानी की भूल क्षमा कीजिये, ब्राह्मण के हृदय में तो बहुत सी दया चाहिये ॥

चौ०—हमहिं तुमहिं सरवर कस नाथा। कहहु तो कहां चरण कहँ माथा ॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परशुसहित बड़ नाम तुम्हारा ॥

अर्थ—हे स्वामी ! तुम्हारी हमारी बराबरी कैसे हो सक्ती है ? कहिये तो ! कहां सिर और कहां पैर ? (भाव यह कि कहां तो आप ब्राह्मणरूपी स्वामी और कहां मैं क्षत्रीरूपी आप का सेवक)। हमारा केवल 'राम' ऐसा छोटा नाम है और आप का तो 'परशु' के साथ मिलकर बड़ा नाम 'परशुराम' है ॥

चौ०—†देव एकगुण धनुष हमारे। नवगुण परम पुनीत तुम्हारे ॥
सब प्रकार हम तुम सन हारे। छमहु विप्र अपराध हमारे ॥

अर्थ—हे ब्राह्मण देवता ! हमारे पास तो एक ही गुण धनुष विद्या का है (सो भी हिंसक होने से पवित्र नहीं) और आप परम पवित्र नौगुणों से परिपूर्ण हैं। हम सभी तरह आप से हार मानते हैं हे विप्र ! हमारे अपराधों को क्षमा कीजिये ॥

दोहा—बार बार मुनि विप्रवर, कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष होइ, तुहूँ बन्धुसम वाम ॥ २८२ ॥

---

† देव एक गुण धनुष हमारे। नव गुण परम पुनीत तुम्हारे—राम रहस्य से

सवैया—अनजानत को अपराध छमो द्विज होइ दया उर में बहुतेरी।
हम में तुम में बड़ बीच मुनी लखिये जिमि मस्तक पाँउन केरी ॥
"द्विज वृत्त" सुविप्रन के गुण नौ हम पै इक चातुरता धनुकेरी।
सब भांति से हारि गये तुम से अपराध छमौ विनती यह मेरी ॥

ब्राह्मणों के नव गुण ये हैं—

ऋजुस्तपस्वी संतोषी क्षमावान्तृष्णो जितेन्द्रियः।
दाताऽदाता दयालुश्च ब्राह्मणो नवभिर्गुणैः ॥

अर्थात् सरल स्वभाव, पाला, तपस्वी, सन्तोषी, क्षमावान्, तृष्णात्यागी, इन्द्रियजित, दाता गृहीता और दयावान् ब्राह्मण इन नौ गुणों से युक्त होता है ॥

अर्थ—(रामचन्द्र जी मन ही मन कह रहे थे) चिढ़ाने की करतूति की है और इस पर क्रोध किया जाता है, कहीं कहीं सीधेपन में भी दो जाता है। (देखो) टेढ़ा जान कर तो सब डरते रहते हैं, जैसे टेढ़े चंद्रमा ग्रहण नहीं लगाता जब चंद्रमा सीधा अर्थात् पूरा हो जाता है (तब उस लगता है)॥

चौ०—*राम कहेउ रिस तजिय मुनीसा। कर कुठार आगे यह स
जेहि रिस जाइ करिय सोइ स्वामी। मोहि जानि आपन अनुग

अर्थ—रामचंद्र जी कहने लगे कि हे मुनि जी! क्रोध को छोड़ दीजि तो आप के हाथ में फरसा है और यह मेरा शिर आप के आगे है। हे प्र अपना सेवक जानिये और जिस प्रकार से आप का क्रोध मिटे सोई कीजिये॥

दोहा—प्रभुहि सेवकहि समर कस, तजहु विप्रवर रोप॥
वेप विलोकत कहेसि कछु, वालकहू नहिं दोप॥ २

अर्थ—स्वामी [और सेवक का संग्राम कैसा? हे श्रेष्ठ विप्र! क्रोध को त्य आप का (विचित्र]) रूप देख कर जो कुछ कहा उस में इस वालक का अपराध नहीं॥

चौ०—देखि कुठार वान धनु धारी। भइ लरिकहि रिस वीर विचा
नाम जान पै तुमहिं न चीन्हा। वंशसुभाव उतर तेइ दीन्

अर्थ—फरसा और धनुप वाण धारण किये देख आप को वीर समझ को भी क्रोध आगया! आप का नाम सुनकर भी उसने आप को पहिचाना और रघुकुल में उत्पन्न होने के कारण से उसने आप को उत्तर दिये॥

ग्रह बना दिये गये। परन्तु ये आकाश में भ्रमण करते हुए सूर्य और चन्द्र से सम पर ग्रहण लगा कर अपना वैर भँजाते रहते हैं (देखो विष्णु पुराण)॥

स्मरण रहे कि जब चन्द्र ग्रहण पड़ता है तब वह चन्द्रमा के पूर्ण होने ही पर पड़ है और यह सब कथा चन्द्र और सूर्य ग्रहण का रूपक है॥

* राम कहेउ रिस तजिय मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा॥ इत्यादि—

श्री हृदयराम कविकृत हनुमन्नाटक से—

कवित्त—मन आन्यो तेरो बल तैसो ताको लाग्यो फल, कठिन कुठार धार कंठ पर धरिये।
इत पर और कछू बात आवै तात हाथ कीजै साईं भावती पै रोप को न करिये॥
ऐसो कछू कुल को सुभाव है हमारे राम मारे मार थैयें पै न मारिये जो मरिये।
करो सरनाय और सुनो मुनिराय गाय ब्राह्मण से हरिये तो पाँय का के परिये॥

करते हैं उसी प्रकार मैंने धनुष बाण तथा फरसा से करोड़ों राजाओं को सेना समेत संग्राम में मार गिराया)॥

चौ०—मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे। बोलसि निदरि विप्र के भोरे॥
भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढ़ा॥

अर्थ—तू मेरा प्रभाव जानता नहीं है इसी से विप्र के धोखे से मेरा अपमान करता है। धनुष के तोड़ने से बड़ा अहंकार आगया कि 'हम ही' हैं जो मानो संसार को जीत कर खड़े हैं॥

चौ०—राम कहा मुनि कहहु विचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी॥
छुवतहि टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करउँ अभिमाना॥

अर्थ—रामचन्द्र जी बोले हे मुनि जी विचार कर कहिये! आप का क्रोध बहुत ही भारी और हमारा अपराध बहुत थोड़ा है। धनुष पुराना था, छूते ही टूट-गया. भला फिर मैं किस कारण से अभिमान करूंगा॥

दोहा—†जो हम निदरहिं विप्र वदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तो अस को जग सुभट जेहि, भयवश नावहिं माथ॥ २८३॥

अर्थ—हे भृगुश्रेष्ठ जी सत्य सत्य सुनिये! यदि हम ब्राह्मण मानकर आप की निन्दा करें तो संसार में ऐसा कौन बड़ा योधा है जिस के सामने हम डर से शिर झुकावें (भाव यह कि ब्राह्मण ही मान कर आप को शिर झुका रहे हैं, यदि आप के अस्त्र शस्त्र धारण करने से आप को क्षत्री योधा मानते तो निधड़क लड़ते)॥

चौ०—देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना॥
जो रण हमहिं प्रचारइ कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ॥

अर्थ—देवता, राक्षस. राजा और अनेक योद्धा बराबरी के हों या अधिक बलवान् हों। यदि हम को लड़ने के लिये उत्तेजित करें तो काल ही क्यों न आजावे उससे भी आनन्दपूर्वक लड़ेंगे॥

---

† जो हम निदरहिं विप्र वदि—

श्लोक—नाऽहं बिभेमि सुरराजवज्रान् त्र्यक्षस्य शूलान्न यमस्य दण्डात्।
नाग्नेर्न सोमाद्वरुणस्य पाशाच्छङ्के भृशं ब्रह्मकुलावमानात्॥

अर्थात् मैं न तो इन्द्र के वज्र से, न शिव जी के त्रिशूल से और न यमराज के दण्ड से न अग्नि से, न चन्द्र से और न वरुण के जाल से इतना डरता हूं जितना अधिक मैं ब्राह्मणों के अपमान से डरता हूं॥

अर्थ—रामचन्द्र जी ने परशुराम जी से बारंबार ' मुनि ' 'विप्र वर, '
तो परशुराम जी क्रोधित होकर कहने लगे कि तू भी अपने भाई के
खोटा है ॥

चौ०–निपटहि × द्विज कर जानहि मोही । मैं जस विप्र सुनावउँ त
चाप श्रुवा शर आहुति जानू । कोप मोर अतिघोर कृश

शब्दार्थ—श्रुवा = अग्नि में आहुति देने का पात्र ॥

अर्थ—तू मुझ को निरा ब्राह्मण ही समझ रहा है, मैं जैसा ब्राह्मण हूं स
सुनाये देता हूं । मेरे धनुष को श्रुवा, वाण को आहुति समझ और मेर
ही भारी भयंकर अग्नि है ॥

चौ०–समधि सेन चतुरंग सुहाई । महामहीप भये पशु अ
मैं इहि परशु काटि बल दीन्हे । समरयज्ञ जग कोटिक कीन्

शब्दार्थ—समधि = यज्ञ की लकड़ी ।

अर्थ—चतुरंगिनी सेना समिधा और बड़े बड़े राजा ही आकर बलि के पशु
मैंने इस फरसा से काट कर मानो बलिदान किये, इस प्रकार के यज्ञ मैंने
में करोड़ों कर डाले (अर्थात् जिस प्रकार यज्ञ में समिधा से अग्नि को प्रदीप्त
स में श्रुवा से घी जौ आदि की आहुति देते हैं और अश्व आदि पशुओं का बलि

× निपटहि द्विज कर जानहु मोही—द्विज (द्वि = दो बार + जन् = पैदा होना
दो बार जन्मा हुआ अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य । ये तीनों द्विज कहलाते हैं । जैसा स्
में लिखा है कि "जन्मना जायते शूद्रः, संस्कारैर्द्विज उच्यते" अर्थात् जन्म से शूद्र की न
पैदा होता है परन्तु यज्ञोपवीत आदि संस्कारों से द्विज कहलाता है । ये द्विज शब्द
साधारण अर्थ हुआ ॥

"निपटहि द्विज कर जानहु मोही" यहां पर निपटहि द्विज से साधारण ब्राह
सूचित होता है और साधारण ब्राह्मण के ये लक्षण हैं—

श्लोक—एकाहारेण सन्तुष्टः षट् कर्मनिरतःसदा ।
ऋतुकालाभिगामी च सविप्रो द्विज उच्यते ॥

अर्थात् एक ही बार के भोजन से सन्तुष्ट रहकर पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना
दान देना और लेना । इन छः कर्मों में सदा रत हो और ऋतुकाल में स्त्री का संग करे त
ऐसे ब्राह्मण को द्विज कहते हैं ॥

परशुराम जी अपने को इन्हीं ऊपर कहे हुए गुणों को चाप श्रुवा आदि रूपक से छ
… द्विज सूचित करते हैं ॥

चौ०—सुनि मृदुवचन गूढ़ रघुपति के। उघरे पटल परशुधरमति के॥
राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मोर मिटै सन्देहू॥
†देत चाप आपहि चढ़ि गयऊ। परशुराम मन विस्मय भयऊ॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी के नम्र और गूढ़ वचनों को सुनकर परशुराम जी की बुद्धि के नेत्रों के पलक खुल गये (अर्थात् परशुराम जी को ज्ञान हुआ कि ये विष्णु का अवतार सूचित करते हैं परन्तु अब फिर से क्रियाद्वारा जांच करना चाहते हैं, क्योंकि एक बार तो धनुष तोड़ने से क्रियाद्वारा जांच हो ही चुकी थी तथापि) हे राम! इस लक्ष्मीपति विष्णु जी के धनुष को अपने हाथ में लेओ और खींचो कि जिस से मेरा सन्देह दूर हो। परशुराम जी ने धनुष को देना चाहा कि उसका रोदा आप ही से तन गया (अर्थात् धनुष बाण चलाने के योग्य हो गया) तब तो परशुराम जी के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ॥

सूचना—परशुराम जी को जिस बात पर से विस्मय हुआ वह यह है कि शिव जी ने कहा था कि जो कोई तुम्हारे इस धनुष को चढ़ावेगा। उसी को अवतार समझना सो धनुष तो आप ही से विना चढ़ाये चढ़ गया। इसहेतु रामचन्द्र जी पूर्ण अवतारी हैं। कथा यों है कि—(राम रत्नाकर रामायण से)॥

चौ०—सुरन्ह बुलाय विश्वकर्मा को। युग धनु रचन कह्यो सब ता को॥
अजगव महिष शृङ्ग बहु जोरी। पवि पषान कीन्ह इक ठोरी॥
अपर कठोर पदारथ लाये। बहु श्रम कर युग चाप बनाये॥
शिव को दियो एक धनु जैसे। दूजो दियो विष्णु कहँ तैसे॥
हरि निज चाप भृगुपतिहि दीन्हा। शिव कैलास पास धर लीन्हा॥
विष्णु कह्यो भृगुपति समझाई। जो यह मम धनु लेइ चढ़ाई॥
दो०—तब जानो अवतार मम, भयो भूमि बिच आन।
कह अस देवन सहित निज, भवन गये भगवान॥

---

† देत चाप आपहि चढ़ि गयऊ—इस पाठ का प्रमाण रसिक बिहारी जी यों लिखते हैं कि—

चौ०—पुनि भृगुवर विचार उर कीन्हा। निजकर धनु रघुनाथहि दीन्हा॥
नृपसुत सुभत सगुन भो चापा। लख्यो राम तब रामप्रतापा॥

भाव यह है कि जब परशुराम जी अपना धनुष श्री रामचन्द्र जी को देने लगे तो वह चाप "नृपसुत" अर्थात् श्री रामचन्द्र जी को छूतेही "सगुन भो" अर्थात् रोदा सहित सज्जित

चौ०—*क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंक तों

कहौं सुभाव न कुलहि प्रशंसी। कालहु डरहिं न

अर्थ—जो क्षत्री का शरीर पाकर संग्राम में डरता है उस नी कलंक लगाने वाला समझो। मैं अपना स्वभाव कहता हूं, कुल नं करता, रघुवंशी तो संग्राम में यम से भी न डरेंगे॥

चौ०—विप्रवंश की अस प्रभुताई। अभय होइ जो

अर्थ—ब्राह्मण के कुल का ऐसा प्रभाव है कि जो आप से डरता (अर्थात् आप के आशीर्वाद कृपा आदि से उसे किसी का डर न साधारण लोगों की समझ में आया)॥

दूसरा अर्थ—विप्रवंश की ऐसी महिमा है कि जो 'अभय हो किसी का डर न हो। जैसे मैं परमेश्वर जो कभी किसी से नहीं डरत डर रहा हूं। इस में यह गूढ़ता है कि परमेश्वर का अवतार क्षत्रीवंश में ही हूं॥

तीसरा अर्थ—रामचन्द्र जी अपने हाथ से अपनी छाती पर संकेत करते हुए यह जताते हैं कि 'ब्राह्मण के वंश का ऐसा माहात्म्य स्वरूपी मैं तुम्हारे पुरुषा भृगु जी से डरा और उनके चरणचिन्ह को पर धारण किये हूं उस से मैं निधड़क हो गया। इसी आशय को विजय पुष्ट किया है—

दोहा—राम कहा भृगुनाथ, सो, कह अस नायो माथ।
अभय होइ तुम को डरै, 'धरे चरण पर हाथ'॥

---

* क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंक तेहि पामर जाना—श्री के दूसरे अध्याय में कहा है

श्लोक—स्वधर्ममपिचावेक्ष्य न विकंपितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥ ३१॥

अर्थ—(श्री कृष्ण जो बोले कि हे अर्जुन!) अपना धर्म (अर्थात् क्षा विचार कर तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिये। क्योंकि क्षत्रियों को धर्मयुद्ध कोई दूसरा धर्म नहीं है॥

‡अनुचित वचन कहेउँ अज्ञाता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता॥

अर्थ—मैं एक मुख से आप की क्या बड़ाई करूं, महादेव जी के मनरूपी मानसरोवर में हंस के समान आप की जय हो। मैंने बिना समझे अयोग्य वचन कहे सो हे क्षमाशील दोनों भाइयो! मुझे क्षमा कीजिये॥

चौ०—कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गये बनहि तप हेतू॥
अपभय कुटिल महीप डराने। जहँ तहँ कायर गवहिं पराने॥

अर्थ—हे रघुकुल शिरोमणि! आपकी जय होय, जय होय, जय होय! ऐसा कह कर भृगुकुल श्रेष्ठ (परशुराम जी) वन में तपस्या करने को चले गये। दुष्ट राजा अपनी की हुई करतूति ही के डर से कांप उठे, वे कायर मौका पातेही जहां के तहां भागने लगे॥

दो०—देवन दीन्ही दुंदुभी, प्रभु पर वर्षहिं फूल।
हर्षे पुरनर नारि सब, मिटा मोह भय शूल॥ २८५॥

अर्थ—देवताओं ने नगाड़े बजाये और वे रामचन्द्र जी पर फूल बरसाने लगे, नगर के सब स्त्री पुरुष आनंदित हुए उन का अज्ञान, डर और दुःख दूर हो गया॥

(ब्याह की तैयारी)

चौ०—अति गहगहे बाजने बाजे। सबहि मनोहर मंगल साजे॥
यूथयूथमिलिसुमुखिसुनयनी। *करहिं गान कल कोकिलबयनी॥

---

‡ अनुचित वचन कहेउँ अज्ञाता। छमहु छमामन्दिर दोउ भ्राता—हनुमन्नाटक भाषा (श्री रामा जी चतुर्दास कृत)

छप्पय—अहो रामगुणग्राम धर्म ध्रुव धाम धुरंधर।
दिनमणि कुल कल कलश प्रचुर पुरुषोत्तम पुरंदर॥
जो न आप अवतार अमल निरमल महि होतो।
तो अवलम्बन अवनिअवनि अधिपन नहिं होतो॥
जै लोकत्रय तापत्रायक तरल निजवर मुदमंगल करण।
अपराध छोप छमियो बिभो सकल लोक अशरण शरण॥

* करहिं गान कल कोकिल बयनी—पद्म रामायण से—
राग भँभोटी—अद्भुत रूप लिया रघुवर को।
निरखि सखा नैनन भरि नीके जो त्रिभुवन जन को सरवर को॥

दो०—जाना रामप्रभाव तब, पुलकि प्रफुल्लित गात।
जोरि पाणि बोले वचन, प्रेम न हृदय समात॥

अर्थ—तब वे रामचन्द्र जी की महिमा जान गये और उनका शरीर पुलकित हो गया। फिर हाथ जोड़ कर वचन बोले, परन्तु प्रेम हृदय में न समाता था।

चौ०—जय रघुवंशवनजवनभानू। गहनदनुजकुलदहन

जय सुर विप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह को

शब्दार्थ—वनज (वन = पानी + ज = पैदा होना) = पानी से पैदा होनेवाला अर्थात् कमल (योग रूढ़ि)। गहन = वन। दनुज = राक्षस॥

अर्थ—रघुवंशरूपी कमलों के समूह को सूर्य के समान प्रफुल्लित करनेवाले तथा जंगलरूपी राक्षसों को जलाने के हेतु अग्नि के समान आप देवता, ब्राह्मण और गौ की रक्षा करने वाले आप की जय हो, और क्रोध और सन्देहों को मिटाने वाले आप की जय हो॥

चौ०—विनयशील करुणा गुणसागर। जयति वचनरचना अ

सेवकसुखद सुभग सब अंगा। जय शरीरछवि को

अर्थ—नम्रता, सुचाल, दया और गुणों के समुद्र तथा वचनरचना में प्रवीण आप की जय हो। सेवकों को सुख देने वाले, सब अंग सुन्दर, कामदेव के समान शरीर की छवि वाले आप की जय हो॥

चौ०—†करौं काह मुख एक प्रशंसा। जय महेशमनमानस

हो गया तब "राम" अर्थात् परशुराम ने "राम प्रताप" अर्थात् श्री राम ज जान लिया—

"आपहि चढ़ि गयऊ" का पाठान्तर "आपहि चलिगयऊ" भी है अ उचट कर आप ही से श्री रामचन्द्र जी के हाथ में चला गया॥

† करौं काह मुख एक प्रशंसा—काव्य निर्णय से—

क०—सागर सरित सर जहाँ लौं जलाशै जग सब मैं जो घोरे किल
अवनि अकाश भरि कागज बनाइ लै कमल करि मेरु सिर बैठक
"दास" दिन रैन कोटि कलप लौं शारदा सहस कर है जो लिखिबे हो
छोड़ हद काजर कलम कागजन की भुवाल गुण गण को तऊ न

अर्थ—तौभी अब तुम जाकर वेद में कही हुई रीति के अनुसार कुलाचारों को ब्राह्मणों से, वंश के जेठों से तथा कुलगुरु से पूछ कर करो॥

चौ०—†दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं नृप दशरथहि बुलाई॥
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला॥ ‡पठये दूत बोलि तेहि काला॥

अर्थ—दूतों को अयोध्यापुरी भेजो कि वे लोग जाकर दशरथ जी को बुला लावें। राजा जी ने प्रसन्न होकर कहा बहुत अच्छा महाराज! और उसी समय दूतों को बुलाकर भेज दिया॥

चौ०—बहुरि महाजन सकल बुलाये। आइ सबन्हि सादर शिर नाये॥
हाट बाट मंदिर सुरबासा। नगर सवाँरहु चारिहु पासा॥

अर्थ—फिर सब भले आदमियों को बुलवाया उन लोगों ने आकर आदर पूर्वक सिर नवाया। (राजा जी ने कहा कि तुम लोग) बाजारों, रास्ताओं, महलों, देवस्थानों और नगर भर को चारों ओर से सजाओ॥

---

† दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं नृप दशरथहि बुलाई—हृदयराम कवि कृत हनुमन्नाटक से—

कवित्त-राज ऋषि बात कही भली पति रही राजा राजा दशरथ जू को वेगही बुलाइये।
कुटुम्ब समेत और बालक लै संग दोऊ नैनन सो पूतन को ब्याह दिखराइये॥
मानी सोई करी दूत बोल्यो तेहिघरी बिदा कीन्हों कह्यो पौन संग रैन दिन धाइये।
सीरी भई छाती पाई आगन की बातो राम पाती लिख पठई बराती ह्वै कै आइये॥

‡ पठये दूत बोलि तेहि काला—रामस्वयंवर से—

चौबोला—करि प्रणाम धावन दुख दावन कटि फेंटो दृढ़ कीन्हें।
चपल चले चटक बाजी चढ़ि अवध पंथ गहि लीन्हें॥
यहि विधि देखत कहत चार ते आत तुरंग धवायें।
दिवस द्वैक महँ चले दिवस निशि कोशलपुर नियरायें॥
राजमहल की डगर बताओ पूछत पथिकन काहीं।
निमिकुल नाथ निशान निहारत पथिक खड़े दुर जाहीं॥
दशरथ द्वारपाल देखे तिन दूतो विदेह निशानी।
सादर कुशल पूछि मिथिला की बैठाये सन्मानी॥
तुरत जाय अवधेश सभा महँ ऐसे वचन सुनायें।
धावन चारि पत्र लै आये श्री मिथिलेश पठायें॥
सुनि मिथिलेशपत्र की आवनि अति नृप मोद महाई।
कह्यो द्वारपालहि विदेह के ल्यावहु दूत लिवाई॥

अर्थ—नगर में बड़े घनघोर बाजे बजने लगे और सब कार्य आरंभ किये। सुन्दर मुख वाली, सुन्दर नेत्र वाली ता शब्द वाली स्त्रियां एकत्र होकर सुन्दर गीत गाने लगीं॥

चौ०—सुख विदेह कर बरनि न जाई। जन्मदरिद्र म
विगत त्रास भइ सीय सुखारी। +जनु बिधु उद

अर्थ—जनक जी का आनंद तो कहते नहीं बनता या मा ने बहुत सा द्रव्य पालिया हो। डर के मिट जाने से सीता जी मानो चन्द्रमा के उदय होने से छोटी चकोरी आनंदित हुई हो॥

चौ०—जनक कीन्ह कौशिकहि प्रणामा। प्रभुप्रसाद धनु
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई। अब जो उचित सो क

अर्थ—जनक जी ने (जाकर) विश्वामित्र जी को प्रणाम किय कि) आप ही के आशीर्वाद से रामचन्द्र जी ने धनुष तोड़ डाला है। मुझे कृतार्थ कर दिया हे स्वामी! अब जो कुछ करना उचित हो सो

चौ०—कह मुनि सुनु नरनाथ प्रवीना। रहा विवाह चा
टूटत ही धनु भयेउ विवाहू। सुर नर नाग विदित

अर्थ—मुनि जी बोले हे चतुर राजन्! सुनिये, विवाह का होना टूटने पर ही अवलंबित था। सो धनुष के टूटते ही विवाह तो हो चुका मनुष्य और नागलोक वासी भी जानते हैं॥

दो०—तदपि जाइ तुम करहु अब, यथा वंशव्यवहार।
बूझि विप्र कुल वृद्ध गुरु, वेद विदित आचार॥ २८

राजिव नैन कमलदल लोचन नृप दशरथसुत अवध नगर को।
इनके चरण कमल कोमल पर मन मधुकर हो रहो तिन पर को॥
इन के नाम नेक सुमिरे ते संशय मिटत सकल जम घर को।
छाहाराम गुलाम राम को पटो लिखायो प्रभु के कर को॥

+जनु बिधु उदय चकोरकुमारी—विहारी की सतसई में चन्द्र पर चकोरी क की पराकाष्ठा यों कही गई है—

दोहा—लगति किरण शीतल सुगग, निशि दिन सुख अवगाह।
शशी भ्रम सूर त्यों, रहति चकोरी चाह॥

अर्थ—तौभी अब तुम जाकर वेद में कही हुई रीति के अनुसार कुलाचारों को ब्राह्मणों से, वंश के जेठों से तथा कुलगुरु से पूछ कर करो ॥

चौ०—†दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं नृप दशरथहि बुलाई ॥
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला। ‡पठये दूत बोलि तेहि काला ॥

अर्थ—दूतों को अयोध्यापुरी भेजो कि वे लोग जाकर दशरथ जी को बुला लावें। राजा जी ने प्रसन्न होकर कहा बहुत अच्छा महाराज ! और उसी समय दूतों को बुलाकर भेज दिया ॥

चौ०—बहुरि महाजन सकल बुलाये। आइ सबन्हि सादर शिर नाये ॥
हाट बाट मंदिर सुरवासा। नगर सवाँरहु चारिहु पासा ॥

अर्थ—फिर सब भले आदमियों को बुलवाया उन लोगों ने आकर आदर पूर्वक शिर नवाया। (राजा जी ने कहा कि तुम लोग) बाजारों, रास्ताओं, महलों, देवस्थानों और नगर भर को चारों ओर से सजाओ ॥

---

† दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं नृप दशरथहि बुलाई—हृदयराम कवि कृत हनुमन्नाटक से—

कवित्त-राज ऋषि बात कही भली पति रही राजा राजा दशरथ जू को वेगही बुलाइये।
कुटुम्ब समेत और बालक लै संग दोऊ नैनन सो पूतन को ब्याह दिखराइये ॥
मानी सोई करी दूत बोल्यो तेहिघरी बिदा कीन्हों कह्यो पौन संग रैन दिन धाइये।
सीरी भई छाती पाई भागन की पाती राम पाती लिख पठई बराती ह्वै कै आइये ॥

‡ पठये दूत बोलि तेहि काला—रामस्वयंवर से—

चौबोला—करि प्रणाम धावन सुख छावन कटि फेंटो यत कीन्हें।
चंचल चले चटक बाजी चढ़ि अवध पंथ गहि लीन्हें ॥
यहि विधि देखत कहत चार ते आत तुरंग धवाये।
दिवस एक महँ चले दिवस निशि कोशलपुर नियराये ॥
राजमहल को डगर बतायो पूछत पथिकन काहीं।
निमिकुल नाथ निशान निहारत पथिक खड़े हुइ आहीं ॥
दशरथ द्वारपाल देखे तिन दूरी विदेह निशानो।
सादर कुशल पूछि मिथिला को बैठाये सन्मानो ॥
तुरत जाय अवधेश सभा महँ ऐसे बचन सुनाये।
धावन चारि पत्र लै आये श्री मिथिलेश पठाये ॥
सुनि मिथिलेशपत्र की आवनि अति नृप मोद महाई।
कह्यो द्वारपालहि विदेह के ल्यावहु दूत लिवाई ॥

अर्थ—नगर में बड़े घनघोर बाजे बजने लगे और कार्य आरंभ किये। सुन्दर मुख वाली, सुन्दर नेत्र वाली शब्द वाली स्त्रियां एकत्र होकर सुन्दर गीत गाने लगीं॥

चौ०—सुख विदेह कर बरनि न जाई। जन्मदरिद्र

विगत त्रास भइ सीय सुखारी। +जनु बिधु

अर्थ—जनक जी का आनंद तो कहते नहीं बनता। या ने बहुत सा द्रव्य पालिया हो। डर के मिट जाने से सीता मानो चन्द्रमा के उदय होने से छोटी चकोरी आनंदित हुई हो।

चौ०—जनक कीन्ह कौशिकहि प्रणामा। प्रभुप्रसाद ध

मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई। अब जो उ [illegible] सो

अर्थ—जनक जी ने (जाकर) विश्वामित्र जी को प्रणाम। कि) आप ही के आशीर्वाद से रामचन्द्र जी ने धनुष तोड़ डाला है मुझे कृतार्थ कर दिया है स्वामी! अब जो कुछ करना उचित हो

चौ०—कह मुनि सुनु नरनाथ प्रवीना। रहा विवाह

टूटत ही धनु भयेउ विवाहू। सुर नर नाग [illegible]

अर्थ—मुनि जी बोले हे चतुर राजन्! सुनिये, विवाह का टूटने पर ही अवलंबित था। सो धनुष के टूटते ही विवाह तो हो गु मनुष्य और नागलोक वासी भी जानते हैं॥

दो०—तदपि जाइ तुम करहु अब, यथा वंशव्यवहार।

बूझि विप्र कुल वृद्ध गुरु, वेद विदित आचार॥ २

[illegible]

+ जनु बिधु उदय चकोरकुमारी—[illegible]

[illegible]

अर्थ—नगर में बड़े घनघोर बाजे बजने लगे और सब लोगों ने सुहावने मंग- यें आरंभ किये। सुन्दर मुख वालीं, सुन्दर नेत्र वालीं तथा कोकिला के समा ंद वालीं स्त्रियां एकत्र होकर सुन्दर गीत गाने लगीं॥

ौ०—सुख विदेह कर बरनि न जाई। जन्मदरिद्र मनहुँ निधि पाई॥
विगत त्रास भइ सीय सुखारी। +जनु विधु उदय चकोरकुमारी॥

अर्थ—जनक जी का आनंद तो कहते नहीं बनता था मानो जन्म के कंगाल बहुत सा द्रव्य पालिया हो। डर के मिट जाने से सीता जी भी ऐसी प्रसन्न हुईं नो चन्द्रमा के उदय होने से छोटी चकोरी आनंदित हुई हो॥

ौ०—जनक कीन्ह कौशिकहि प्रणामा। प्रभुप्रसाद धनु भंजेउ रामा॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई। अब जो उचित सो कहिय गोसाईं॥

अर्थ—जनक जी ने (जाकर) विश्वामित्र जी को प्रणाम किया (और कह ;) आप ही के आशीर्वाद से रामचन्द्र जी ने धनुष तोड़ डाला है। दोनों भाइयों ने के कृतार्थ कर दिया हे स्वामी! अब जो कुछ करना उचित हो सो कहिये॥

ौ०—कह मुनि सुनु नरनाथ प्रवीना। रहा विवाह चापआधीना॥
टूटत ही धनु भयेउ विवाहू। सुर नर नाग विदित सब काहू॥

अर्थ—मुनि जी बोले हे चतुर राजन्! सुनिये, विवाह का होना तो धनुष के ने पर ही अवलंबित था। सो धनुष के टूटते ही विवाह तो हो चुका इसे देवता नुष्य और नागलोक वासी भी जानते हैं॥

दो०—तदपि जाइ तुम करहु अब, यथा वंशव्यवहार।
बूझि विप्र कुल वृद्ध गुरु, वेद विदित आचार॥ २८६॥

राजिव नैन कमलदल लोचन नृप दशरथसुत अवध नगर को।
इनके चरण कमल कोमल पर मन मधुकर ह्वै रहो चिन पर को॥
इन के नाम नेक सुमिरे ते संशय मिटत सकल जग घर को।
बाहारामनुग्राम राम को पटो लिखायो प्रभु के कर को॥

+ जनु बिधु उदय चकोरकुमारी—चिदारी की सचाई में चन्द्र पर चकोरी की चाह ो पराकाष्ठा यों कही गई है—

दोहा—सगनि किरण शीतल सुभग, निशि दिन सुख अपगाह।
सी, घन गुर ज्यों, रहनि चकोरी चाह॥

अर्थ—तौभी अब तुम जाकर वेद में कही हुई रीति के अनुसार कुलाचारों को ब्राह्मणों से, वंश के जेठों से तथा कुलगुरु से पूछ कर करो॥

चौ०—†दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं नृप दशरथहि बुलाई॥
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला। ‡पठये दूत बोलि तेहि काला॥

अर्थ—दूतों को अयोध्यापुरी भेजो कि वे लोग जाकर दशरथ जी को बुला लावें। राजा जी ने प्रसन्न होकर कहा बहुत अच्छा महाराज! और उसी समय दूतों को बुलाकर भेज दिया॥

चौ०—बहुरि महाजन सकल बुलाये। आइ सबन्हि सादर शिर नाये॥
हाट बाट मंदिर सुरवासा। नगर सँवारहु चारिहु पासा॥

अर्थ—फिर सब भले आदमियों को बुलवाया उन लोगों ने आकर आदर पूर्वक शिर नवाया। (राजा जी ने कहा कि तुम लोग) बाजारों, रास्ताओं, महलों, देवस्थानों और नगर भर को चारों ओर से सजाओ॥

---

† दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं नृप दशरथहि बुलाई—हृदयराम कवि कृत हनुमन्नाटक से—

कवित्त-राज ऋषि बात कही भली पति रही राजा राजा दशरथ जू को बेगही बुलाइये।
कुटुम्ब समेत और बालक लै संग दोऊ नैनन सों पूतन को ब्याह दिखराइये॥
मानी सोई करी दूत चाल्यो तेहिघरी बिदा कीन्हों चढ्यो पौन संग रैन दिन धाइये।
ठाढ़ी भई छाती पाई आनन की थाती राम पाती लिख पठई बराती ह्वै कै आइये॥

‡ पठये दूत बोलि तेहि काला—रामस्वयंबर से—

चौबोला—करि प्रणाम धावन तुरत द्वावन कटि फेंटो कस कीन्हें।
चंचल चले चटक बाजी चढ़ि अवध पंथ गहि लीन्हें॥
यहि विधि देखत करत चार ते आठ तुरंग धवाये।
दिवस द्वैक महँ चले दिवस निशि कोशलपुर नियराये॥
राजमहल की डगर बताओ पूछत पथिकन काहीं।
निमिकुल नाथ निशान निहारत पथिक खड़े हुइ जाहीं॥
दशरथ द्वारपाल देखे तिन दूतों विदेह निहारो।
सादर कुशल पूछि मिथिला की बैठारे सन्मानो॥
सुनत आय अवधेश सभा महँ ऐसे बचन सुनाये।
धावन धारि पत्र लै आये श्री मिथिलेश पठाये॥
सुनि मिथिलेशपत्र की आवनि करि नृप मोद महाई।
कह्यो द्वारपालहि विदेह के ल्यावहु दूत लिवाई॥

अर्थ—तोभी अब तुम जाकर वेद में कही हुई रीति के अनुसार कुलाचारों को ब्राह्मणों से, वंश के जेठों से तथा कुलगुरु से पूछ कर करो ॥

चौ०—†दूत अवधपुर पठवहु जाई । आनहिं नृप दशरथहि बुलाई ॥
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला । ‡पठये दूत बोलि तेहि काला ॥

अर्थ—दूतों को अयोध्यापुरी भेजो कि वे लोग जाकर दशरथ जी को बुला लावें। राजा जी ने प्रसन्न होकर कहा बहुत अच्छा महाराज ! और उसी समय दूतों को बुलाकर भेज दिया ॥

चौ०—बहुरि महाजन सकल बुलाये । आइ सबन्हि सादर शिर नाये ॥
हाट बाट मंदिर सुरबासा । नगर सवाँरहु चारिहु पासा ॥

अर्थ—फिर सब भले आदमियों को बुलवाया उन लोगों ने आकर आदर पूर्वक शिर नवाया। (राजा जी ने कहा कि तुम लोग) बाजारों, रास्ताओं, महलों, देवस्थानों और नगर भर को चारों ओर से सजाओ ॥

---

† दूत अवधपुर पठवहु जाई । आनहिं नृप दशरथहि बुलाई—हृदयराम कवि कृत हनुमन्नाटक से—

कवित्त-राज ऋषि बात कही भली पति रही राजा राजा दशरथ जू को वेगहीं बुलाइये।
कुटुम्ब समेत और बालक लै संग दोऊ नैनन सों पूतन को ब्याह दिखराइये॥
मानी सोई करी दूत चाल्यो तेहि घरी बिदा कीन्हों बढ्यो पौन सम रैन दिन धाइये।
सीरी भई छाती पाई आगम की थाती राम पाती लिख पठई बधाई है दै आइये॥

‡ पठये दूत बोलि तेहि काला—रामस्वयंवर से—

चौबोला—करि प्रणाम धावन सुख छावन कटि फेंटो घन कीन्हें।
चंचल चले चटक बाजी चढ़ि अवध पथ गहि लीन्हें॥
यहि विधि देखत कहत बार ते आत तुरत धवाये।
दिवस द्वैक महँ चले दिवस निशि कोशलपुर नियराये॥
राजमहल की डगर बतायो पूछत पथिकन काहीं।
निमिकुल नाथ निशान निहारत पथिक धर्ड्ढ दुर जहाँ॥
दशरथ द्वारपाल देखे तिन दूतो विदेह बिचारो।
सादर कुशल पूछि मिथिला की देखाये सन्द्वारा॥
तुरत जाय अवधेश सभा महँ देखे बचन दूर ते।
धावन चारि एक लै आये की मिथिलेश पठाये॥
सुनि मिथिलाधिप की आवनि कहि नृप [illegible]।
कह्यो द्वारपालहिं बिदेह के ल्यावहु दूत [illegible]॥

अर्थ—नगर में बड़े घनघोर बाजे बजने लगे और सब लोगों ने सुहावने मंगल कार्य आरंभ किये। सुन्दर मुख वालीं, सुन्दर नेत्र वालीं तथा कोकिला के सम शब्द वालीं स्त्रियां एकत्र होकर सुन्दर गीत गाने लगीं॥

चौ०—सुख विदेह कर बरनि न जाई। जन्मदरिद्र मनहुँ निधि पाई॥
विगत त्रास भइ सीय सुखारी। +जनु विधु उदय चकोरकुमारी॥

अर्थ—जनक जी का आनंद तो कहते नहीं बनता था मानो जन्म के कंगाल ने बहुत सा द्रव्य पालिया हो। डर के मिट जाने से सीता जी भी ऐसी प्रसन्न हुईं मानो चन्द्रमा के उदय होने से छोटी चकोरी आनंदित हुई हो॥

चौ०—जनक कीन्ह कौशिकहि प्रणामा। प्रभुप्रसाद धनु भंजेउ रामा॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई। अब जो उचित सो कहिय गोसाईं॥

अर्थ—जनक जी ने (जाकर) विश्वामित्र जी को प्रणाम किया (और कहा कि) आप ही के आशीर्वाद से रामचन्द्र जी ने धनुष तोड़ डाला है। दोनों भाइयों ने मुझे कृतार्थ कर दिया है स्वामी! अब जो कुछ करना उचित हो सो कहिये॥

चौ०—कह मुनि सुनु नरनाथ प्रवीना। रहा विवाह चापआधीना॥
टूटत ही धनु भयेउ विवाहू। सुर नर नाग विदित सब काहू॥

अर्थ—मुनि जी बोले हे चतुर राजन्! सुनिये, विवाह का होना तो धनुष के टूटने पर ही अवलम्बित था। सो धनुष के टूटते ही विवाह तो हो चुका, इसे देवता मनुष्य और नागलोक वासी सब जानते हैं॥

दो०—तदपि जाइ तुम करहु अब, यथा वंशव्यवहार।
बूझि विप्र कुल वृद्ध गुरु, वेद विदित आचार॥ २८६॥

सुरप्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ी। मंगलद्रव्य लिये सब ठाढ़ी॥
चौके भाँति अनेक पुराईं। सिंधुरमणिमय सहज सुहाई॥

अर्थ—बहुत से भौंरे तथा रंग बिरंगे पक्षी भी बनाये जो पवन के लगने से गुंजारते और शब्द करते थे। देवताओं की मूर्तियां भी खंभों में गढ़ कर बनाई गई थीं जो मंगलीक द्रव्यों को लिये खड़ी थीं। फिर नाना प्रकार के सहज ही में सुहावने गजमुक्तों से चौक पूरे गये थे॥

दो०—सौरभपल्लव सुभग सुठि, किये नीलमणिकोरि।
हेमबौर मरकत घवरि, लसत पाटमय डोरि॥ २८८॥

अर्थ—नीलमणि को कोर कर आम के उत्तम सुहावने पत्ते बनाये जिन में सोने का बौर और हरी मणियों की अंबियों के गुच्छे रेशम के धागों से लटकते हुए शोभा दे रहे थे॥

चौ०—रचे रुचिर वर बंदनवारे। मनहुँ मनोभव फंद सवाँरे॥
मंगल कलश अनेक बनाये। ध्वजपताक पट चँवर सुहाये॥

शब्दार्थ—मनोभव (मनः = मन + भव = उत्पन्न होना) = मन से उत्पन्न होने वाला, कामदेव॥

अर्थ—सुन्दर सुहावने बंदनवारे बनाये मानो कामदेव ने अपना जाल फैलाया हो। बहुतेरे मंगल सूचक कलश तैयार किये तथा ध्वजा, पताका, वस्त्र और चौंर शोभा युक्त बनाये थे॥

चौ०—दीप मनोहर मणिमय नाना। जाइ न बरनि विचित्र बिताना॥
†जेहि मंडप दुलहिनि बैदेही। सो बरनइ असमति कवि केही॥

---

† जेहि मंडप दुलहिनि बैदेही। सो बरनइ असि मति कवि केही—कुंडलिया रामायण से—

कुंडलिया—सो बितान सुखमा कहै जेहि छवि सुखमा छाहि।
सरस सिद्धि लक्ष्मी रम जुगपत पद जाहि॥
रम जुगपत पद जाहि जहां दुलहिन बैदेही।
बिधि हरि हर यम इन्द्र होत चितवैं हित तेही॥
चितवैं हित तेही कृपा दृष्टि जा रघुपति रहै।
समधी दशरथ जनक सम को बितान सुखमा कहै॥

चौ०—हर्षि चले निज निज गृह आये। पुनि परिचारक बोलि पठाये॥
रचहु विचित्र वितान बनाई। शिर धरि वचन चले सचुपाई॥

अर्थ—वे लोग प्रसन्न होते हुए अपने अपने घर आगये फिर जनक जी ने टहलुओं को बुला भेजा। (और कहा कि) तुम लोग सम्हाल कर अनोखा मंडप तैयार करो इस आज्ञा को स्वीकार कर वे चुपचाप चले गये॥

चौ०—पठये बोलि गुणी तिन नाना। जे वितान विधि कुशल सुजाना॥
विधिहि वंदि तिन कीन्ह अरंभा। विरचे कनककदलि के खंभा॥

अर्थ—उन्हों ने सब भाँति के कारीगरों को बुलाया जो मंडप बनाने में बड़े चतुर थे। उन (कारीगरों) ने विधाता की वन्दना कर कार्य आरंभ किया, सोने से केले के खंभा बनाये॥

दो०—हरितमणिन्ह के पत्र फल, पद्मराग के फूल।
रचना देखि विचित्र अति, मन विरंचि कर भूल॥ २८७॥

अर्थ—हरी मणियों के पत्ते और फल बनाये तथा लाल मणियों के फूल बनाये जिसकी विचित्र बनावट देख कर ब्रह्मा का मन भी धोखा खा सक्ता था॥

चौ०—बेणु हरित मणिमय सब कीन्हे। सरल सपर्ण परहिं नहिं चीन्हे॥
कनककलित अहिबेलि बनाई। लखि नहि परै सपर्ण सुहाई॥

अर्थ—हरी मणियों से सब बांस, पत्तों समेत ऐसे बनाये गये थे कि पहिचाने नहीं जाते थे। सोने से शोभायमाननाग बेलि पानों सहित ऐसी बनाई थी कि असली और नकली का भेद न समझ पड़ता था॥

चौ०—तेहि के रचि पचि बंध बनाये। बिच बिच मुकता दाम सुहाये॥
माणिक मरकत कुलिश पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥

अर्थ—उसी बेल के सम्हाल कर पचीकारी से बंध बनाये और उन के बीच बीच में मोतियों की झालरें लगाईं। फिर माणिक, नीलम, हीरा और पिरोजा इन को चीर कर, कोर कर और पचीकारी करके कमल बनाये॥

चौ०—×किये भृंग बहु रंग बिहंगा। गुंजहिं कूजहिं पवनप्रसंगा॥

× किये भृंग बहु रंग बिहंगा। गुंजहिं कूजहिं पवनप्रसंगा—प्राचीन समय की कला कौशल्य की कारीगरी है जब कि ऐसे २ भौंरे और पक्षी तैयार किये जाते थे कि जिन में वायु का संचार होने से ऐसी स्वाभाविक ध्वनियां निकलती थी कि मानो भौंरे गुंजार रहे हों और पक्षी बोल रहे हों।

अर्थ—नाना भाँति के मनभावने मणियों के दीपक थे वह मंडप ऐसा अनूठा था कि उस का वर्णन नहीं किया जा सक्ता था। जिस मंडप में सीता जी दुलहिन थीं उस का वर्णन कर सकै ऐसी बुद्धि किस कवि की है (किसी की नहीं) ॥

चौ०—दूलह राम रूपगुणसागर। सो वितान तिहुँ लोक उजागर ॥
‡जनकभवन की शोभा जैसी। गृह गृह प्रतिपुर देखिय तैसी ॥

अर्थ—स्वरूप और सद्गुणों से परिपूर्ण रामचन्द्र जी जहां पर दूलह हैं वह मंडप तीनों लोक में प्रसिद्ध ही है। राजा जनक के महलों की जैसी सजावट थी वैसी ही शोभा (प्रायः) जनकपुर के प्रत्येक घर की दीख पड़ती थी ॥

चौ०—जेइ तिरहुत तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगत भुवन दशचारी ॥
जो संपदा नीचगृह सोहा। सो विलोकि सुरनायक मोहा ॥

अर्थ—जिस ने उस समय (जनक जी की राजधानी) तिरहुत नगरी देखी थी उसे चौदह भुवनों की शोभा कम ही जँचती थी। जो कुछ धन सम्पत्ति साधारण तिरहुत निवासी के घर में थी उसे देख कर इन्द्र का चित्त भी मोहित हो जाता था (भाव यह कि इन्द्र भी उस की सम्पदा की सराहना करने लगते थे) ॥

दो०—बसै नगर जेहि लच्छि करि, कपट नारिवर वेष।
तेहि पुर की शोभा कहत, सकुचहिं शारद शेष ॥ २८९ ॥

अर्थ—जिस नगर में साक्षात् लक्ष्मी जी बनावटी स्त्री भेष धारण किये हुए आबसी थीं, उस नगर की शोभा वर्णन करने में सरस्वती और शेषनाग जी भी सकुचाते थे ॥

चौ०—पहुँचे दूत † रामपुर पावन। हरषे नगर विलोकि सुहावन ॥

---

‡ जनकभवन की शोभा जैसी। गृह गृह प्रतिपुर देखिय तैसी—विजय दोहा वली से—
दो०—आदि सखी जे सिया की, संग लीन्ह अवतार।
आदि सखा जे विष्णु के, अवधपुरी व्यवहार ॥

† रामपुर=श्री रामचन्द्र जी की नगरी अर्थात् अवधपुरी। इस के बारे में रामरत्नाकर रामायण में यों लिखा है—
चौ० बंदउँ अवधपुरी सुखरासी। सबहि मुक्तिदायक जिमि काशी ॥
सत पुरिन्ह महँ आदि बखानी। रामभक्ति चिन्तामणि खानी ॥

†भूपद्वार तिन खबर जनाई । दशरथ नृप सुनि लिये बुलाई ॥

अर्थ—दूत पवित्र अयोध्यापुरी में जा पहुंचे और वे उस मनोहर नगर को देख प्रसन्न हुए । उन्हों ने राजा जी की ड्योढ़ी पर सन्देशा लगाया, जिसे सुनकर महाराज दशरथ जी ने उन्हें बुलवा लिया ॥

चौ०—करि प्रणाम तिन पाती दीन्ही । मुदित महीप आप उठि लीन्ही ॥
‡वारि विलोचन बांचत पाती । पुलकगात आई भरि छाती ॥

अर्थ—उन्होंने प्रणाम करके चिट्ठी दी राजा ने स्वतः उठकर प्रसन्नता पूर्वक उसे ले ली । चिट्ठी के बांचते बांचते नेत्रों में (प्रेम के) आंसू भर आये और शरीर पुलकायमान हो गया तथा हृदय में प्रेम उमँड़ उठा ॥

---

† भूपद्वार तिन खबर जनाई । दशरथ नृप सुनि लिये बुलाई—रामस्वयम्बर से—

छन्द चौबोला—सभा द्वार पहुंचे जब धावन दशरथ सभा निहारे ।
सिंहासनासीन कोशलपति सुनासीर मद गारे ॥
लोकपाल सम भूमिपाल सब बैठे उभय कतारे ।
दालन सों दालन करि चालन कर पालन कर धारे ॥
बैठे रघुवंशी रिपुध्वंशी जगत प्रशंसी प्यारे ।
कलँगी सों कलँगी विलँगी नहि लगन सुरता धारे ॥
चंचल अचल इव मीन बैठ भट प्रभु मुख दगहि निहारें ।
इष्टदेव सम रघुकुलनायक अपने मनहिं विचारें ॥
छाजत छत्र छपाकर शिर पर प्रगटत परम प्रकाशा ।
चारु चमर चालत परिचारक बड़े चाहिं आशा ॥
कनकछरी बहु रत्न भरी कर धरे खरे प्रतिहारा ।
निरखत नयन नरेश वदन बर काज करत इशारा ॥
सन्मुख खड़ो सुमंत सचिव पर नृप शासन अभिलाखो ।
भृकुटि विलास विचारि काज सब करत राज रख राखो ॥
पुलकित तनु करि कै प्रणाम सब दंड सरिस मन माहीं ।
दीन्हे नजरि निछावरि कीन्हे कोशल नायक पाहीं ॥

‡ वारि विलोचन बांचत पाती । पुलकगात आई भरि छाती—

क०-ताड़का को बध विश्वामित्र जू को यज्ञ तारी गौतम की नारी जो महा हो प्यार महते ।
करिके विवाह भंग करिके जनकसुता कौशिक जनक सब कीन्हो नेह बढ़ते ॥
ए हो रघुनाथ कवि कहिये कहाँ लौं सुख पावन लै कासो करो धरि हिय बढ़ते ।
छूटे बन्द जामा के पुलक भरी छाती जबे विहबल भूप दशरथ पाती पढ़ते ॥

चौ०—राम लषन उर कर वर चीठी। *रहि गये कहत न खाटी मीठी

शब्दार्थ—खाटा मीठी (मुहावरा) = बुरी भली ॥

अर्थ—राम लक्ष्मण तो हृदय में भरगये थे और हाथ में शुभ पत्रिका लेकर रा
उस समय यह कहते न बना कि समाचार बुरे हैं या भले (भाव यह कि बहुत स
में राम लक्ष्मण के समाचार मिले थे सो हृदय में तो दोनों भाइयों पर ध्यान लग रहा
और बाहर से हाथ में चिट्ठी लिये थे, सभा के लोगों से चिट्ठी का हाल थोड़े समय
कुछ भी न कह सके, कारण उस में संकट और फिर उन का निवारण यही सारे
लिखे थे।) ॥

चौ०—पुनि धरि धीर पत्रिका बांची। हरषी सभा बात सुनि सांची।

अर्थ—(निदान) धीरज धरके फिर से चिट्ठी। बांचकर सुनाई सब सभा वाले
सच्चा सच्चा हाल सुनकर प्रसन्न हो गये (अर्थात् जब लोगों ने पत्रिका के समाचार
सुने तब तो उन्हें पहिले यह विचार उठा कि दशरथ जी के चुपचाप रहजाने के यथार्थ
कारण इस में सचमुच दीख पड़ते हैं और जब सुना कि प्रत्येक बाधा दूर होकर प्रसन्
पुर्वा से विवाह का शुभ मुहूर्त भी निश्चित हो गया और बरात की तैयारी करना है तो
बहुत ही प्रसन्न हुए) ॥

* रहि गये कहत न खाटी मीठी—

चौ०—घट मीठी खोटी मई देखी। मानो ईश्वर कृपा विशेखी॥
प्रथम भयो ताड़का संहारा। मुनि मख राखि निशाचर मारा॥
तीजे गौतम नारि उधारा। चौथे [illegible] पगु धारा॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

अर्थ—वे श्यामले तथा गोरे अंग वाले धनुष और तर्कस धारण किये हैं, कुमार अवस्था है और विश्वामित्र मुनि के साथ हैं। पहिचानते होओ तो उनका स्वभाव कहो ? इस प्रकार प्रेम के मारे राजा जी बारंबार कहते थे॥

चौ०—जा दिन ते मुनि गये लिवाई। तब ते आज साँचि सुधि पाई॥
कहहु विदेह कवन विधि जाने। सुनि प्रियवचन दूत मुसकाने॥

अर्थ—जिस दिन से मुनि जी उन्हें लिवा लेगये हैं उस दिन से आज पक्की खबर पाई है। कहो तो ! राजा जनक ने उन्हें कैसे पहिचाना, ऐसे प्रेम भरे वचनों को सुन कर दूत मुसकाने लगे॥

दो०—सुनहु महीपतिमुकुटमणि, तुम सम धन्य न कोउ।
राम लषन जिन के तनय, विश्वविभूषण दोउ॥ २६१॥

अर्थ—हे सब राजाओं के सिरताज महाराज ! आप के समान भाग्यवान् कोई नहीं है। संसार को शोभा देने वाले राम लक्ष्मण सरीखे जिन के दोनों पुत्र हैं॥

चौ०—पूछन योग न तनय तुम्हारे। पुरुषसिंह तिहुँ पुर उजियारे॥
जिन के यश†प्रताप के आगे। शशि मलीन रवि शीतल लागे॥
‡तिन कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हे। देखिय रवि कि दीप कर लीन्हे॥

अर्थ—पुरुषों में सिंह के समान, तीनों लोक में प्रकाश करने वाले आप के पुत्रों को क्या पूछना है ? जिन के यश के सामहने चन्द्रमा फीका और तेज के आगे सूर्य निस्तेज सा जान पड़ता है उन्हें आप कहते हो कि कैसे पहिचाना, हे नाथ ! क्या सूर्य को कोई चिराग हाथ में लेकर देखता है ? (अर्थात् जैसे सूर्य अपने

दूतों को यह सन्देह न हुआ हो कि यहां मगध में तो ऐसे चक्रवर्ती के ठाट बाट हैं और राम लक्ष्मण सादे भेष में ही हैं।

† प्रकार—

दोहा—आनी कीरति सुयश सुनि, होत शत्रु उर ताप।
जग [illegible] सब [illegible], कहिये नाहिं प्रताप॥

‡ तिन कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हे। देखिय रवि कि दीप कर लीन्हे—

[illegible]

प्रभाव से सब को प्रकाशित करता है उस को देखने के लिये दूसरा साधन न चाहिये। इसी प्रकार आपके कुमार प्रभावशाली हैं इनका पहिचानना क्या कठिन है॥

चौ०—सीयस्वयम्वर भूप अनेका। सिमिटे सुभट एक ते एका॥
शंभुशरासन काहु न टारा। हारे सकल भूप बरियारा॥
तीन लोक महँ जे भट मानी। सब कै शक्ति शंभुधनु भानी॥

अर्थ—सीता के स्वयम्वर में एक से एक अधिक बलवान् अनेक राजा इकट्ठे हुए थे। सब राजा बल कर के थक गये परन्तु शिव जी का धनुष किसी से न डिगा। तीनों लोक में जितने अभिमानी राजा थे सब के बल को महादेव जी के धनुष ने घटा दिया॥

चौ०—सकै उठाइ *सरासुर मेरू। सोउ हिय हारि गयेउ करि फेरू॥
†जेइ कौतुक शिवशैल उठावा। सोउ तेहि सभा पराभव पावा॥

शब्दार्थ—सरासुर ('सर' का पर्यायीशब्द 'बाण' + असुर) = शुद्ध नाम 'बाणासुर'॥

अर्थ—बाणासुर जो कि मेरु पर्वत को उठा सक्ता है वह भी हृदय में हार मान फिर कर चला गया और जिस (रावण) ने खिलवाड़ की रीति से कैलास पर्वत को उठा लिया उस ने भी उस सभा में हार मानी॥

दो०—‡तहाँ राम रघुवंशमणि, सुनिय महामहिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिन, जिमि गज पंकजनाल॥ २९२॥

---

* "सरासुर" का पाठान्तर "सुरासुर" भी है जिस का अर्थ यह होता है कि देवता और राक्षस (जो सुमेरु पर्वत को उठा सक्ते थे)॥

† जेइ कौतुक शिवशैल उठावा—इस की कथा रावण के जीवन चरित्र में है। सो अन्यत्र मिलेगी॥

‡ तहाँ राम रघुवंश मणि सुनिय महा महिपाल—

क०—सीय के स्वयम्वर समाज जहाँ राजन के राजन के राजा महाराजा जाने नाम को।
पावन पुरन्दर कृशानु भानु धनद से गुण के निधान रूप धाम सोम काम को॥
बान बलवान यातुधान पति सारिखे से जिन के गुमान सदा सालिम संग्राम को।
तहाँ रघुबंश के समर्थ नाथ तुलसी के चपरि चढ़ायो चाप चन्द्रमा ललाम को॥
और भी हनुमन्नाटक से—

छप्पय—हर [illegible] सुजस [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भृगुकरव।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। (नोट)

सूचना—'प्रेम प्रताप वीररस पागी' प्रेम भरे शब्द ये हैं "अब न आँखि आवत कोऊ"। प्रताप इन शब्दों में झलकता है कि "शशि मलीन रवि शीतल गे" और वीररस प्रकट करने वाले ये वचन हैं "भंजेउ चाप प्रयास बिन, जिमि पंकजनाल" ॥

चौ०—सभासमेत राउ अनुरागे । †दूतन्ह देन निछावरि लागे ॥
‡कहि अनीति ते मूदहिं काना । धर्म विचारि सबहिं सुख माना ॥

अर्थ—सभा वालों समेत राजा जी मग्न हो गये और दूतों को निछावरि देने लगे। दूत बोले यह उचित नहीं और कानों पर हाथ धर के रह गये (मान यह दूत दुलहिन की ओर के थे सो उन्हों ने वर पक्ष से द्रव्य आदि का ग्रहण धर्म विरुद्ध जान कर नहीं किया) इस धर्म के बर्ताव को देख कर सब सुखी हुए ॥

दो०—तब उठि भूप वशिष्ठ कहँ, दीन्हि पत्रिका जाइ ।
कथा सुनाई गुरुहि सब, सादर दूत बुलाइ ॥ २९३ ॥

अर्थ—तब राजा ने उठ करके वशिष्ठ जी को चिट्ठी दी और दूतों को बुलाकर गुरु जी को आदर पूर्वक सब कथा कह सुनवाई ॥

चौ०—सुनि बोले गुरु अति सुख पाई । पुण्यपुरुष कहँ महि सुख छाई ॥
जिमि सरिता सागर महँ जाहीं । यद्यपि ताहि कामना नाहीं ॥

अर्थ—(सब वार्ता) सुनकर गुरु जी बहुत ही प्रसन्न हो बोले कि पुण्यवान् पुरुष के लिये सब पृथ्वी मानो आनंद से भरी है। जिस प्रकार नदियां बहकर समुद्र में मिलती हैं यद्यपि समुद्र को नदियों की कुछ चाह नहीं रहती ॥

चौ०—‡तिमि सुख संपति बिनहि बुलाये। धर्मशील पहँ जाहिं सुभाये॥
तुम गुरुविप्रधेनुसुरसेवी । तस पुनीत कौशल्या देवी॥

अर्थ—इसी प्रकार सुख और धन धान्य आदि भी बिना बुलाये आप ही आप धर्मात्माओं के पास चले आते हैं। आप गुरु, ब्राह्मण, गाय, और देवताओं की सेवा करने वाले हो, इसी प्रकार शुद्ध आचरण वाली महारानी कौशल्या जी भी हैं॥

चौ०—सुकृती तुम समान जग माहीं। भयउ न है कोउ होनउ नाहीं॥
तुम ते अधिक पुण्य बड़ का के। राजन राम सरिस सुत जा के॥

अर्थ—संसार में आप के समान सत्कर्मी न हुआ था न है और न होवेगा। हे राजन्! जिनके रामचंद्र सरीखे पुत्र हैं उन से बढ़ कर और कौन पुण्यात्मा हो सक्ता है॥

चौ०—वीर विनीत धर्मव्रतधारी। गुणसागर बर बालक चारी॥
†तुम कहँ सर्वकाल कल्याना। सजहु बरात बजाइ निशाना॥

‡ तिमि सुख सम्पति बिनहि बुलाये। धर्म शील पहँ जाहिं सुभाये—विष्णु पुराणान्तर गत ध्रुवोपाख्यान से—

श्लोक—सुशीलो भव धर्मात्मा मैत्रः प्राणिहिते रतः।
निम्नं यथापः प्रवणाः पात्रमायान्ति सम्पदः॥

अर्थात् (रानी सुनीति अपने पुत्र ध्रुव से बोली कि) तुम शीलवान्, धर्मात्मा सब के प्रिय और प्राणियों के हित करने वाले हो जाओ। क्योंकि जिस प्रकार पानी नीचे ही की ओर बहता है उसी प्रकार नम्र स्वभाव वाले धर्मात्मा मनुष्य के पास सम्पूर्ण ऐश्वर्य भी आप ही आप आ जाते हैं॥

† तुम कहँ सर्व काल कल्याना—ऊपर के कथन से विदित होता है कि महाराजा दशरथ को सब प्रकार के सुख थे सो यों कि—

श्लोक—अर्थागमो नित्यमरोगिता च, प्रियश्च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यस्य पुत्रोऽर्थ करी च विद्या, षड्जीव लोकेषु सुखानि राजन्॥

भाव यह कि हे राजा! संसार में जीवन के ये छः सुख हैं (१) प्रतिदिन धन प्राप्ति, (२) निरोगी शरीर, (३), सन्मित्र तथा (४) मधुर बोलने वाली स्त्री (५) आज्ञाकारी पुत्र और (६) फलदायक विद्या॥

अर्थ—चारों सुन्दर सुत पराक्रमी, नम्र और धर्म के आचरण वाले हैं। आप को सदैव मंगल ही है इस हेतु नगाड़े बजाकर बरात तैयार करो ॥

दो०—चलहु वेगि सुनि गुरुवचन, भलेहि नाथ शिर नाइ।
भूपति गवने भवन तब, दूतन्ह बास दिवाइ ॥ २६४ ॥

अर्थ—' चलो जल्दी चलें, ' ऐसे गुरु जी के वचन सुनकर ' ठीक है स्वामी ' (इतना कह) प्रणाम कर तथा दूतों को डेरा दिलवा कर राजा जी महलों में पधारे ॥

चौ०—राजा सब रनिवास बुलाई। जनकपत्रिका बाँचि सुनाई ॥
सुनि संदेश सकल हरषानी। अपरकथा सब भूप बखानी ॥

अर्थ—राजा जी ने सब रानियों को बुलाकर जनक जी की चिट्ठी पढ़कर सुना दी। समाचार सुन सब की सब मग्न होगईं, तब तो राजा जी ने और भी दूतों से सुने हुए समाचार कह सुनाये ॥

चौ०—प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी। मनहुँ सिखिनि सुनि बारिदबानी ॥
मुदित असीस देहिं गुरुनारी। अतिआनंदमगन महतारी ॥

अर्थ—रानियां प्रेम से इस प्रकार आनंद में मग्न होगईं जैसे मोरनियां बादल की गर्ज सुनकर प्रेम से फूली नहीं समातीं। गुरुजन की स्त्रियां प्रसन्न चित्त हो आशीर्वाद देने लगीं और कौशल्या आदि मांताएँ तो परमानंद में मग्न थीं ॥

चौ०—लेहिं परस्पर अतिप्रिय पाती। हृदय लगाइ जुड़ावहिं छाती ॥
राम लखन की कीरति करनी। बारहिं बार भूप बर बरनी ॥

अर्थ—आपस में उस परम प्यारी पाती को ले ले कर हृदय से लगा करके कलेजा ठंढा करती थीं। श्रेष्ठ राजा जी ने राम लक्ष्मण की बड़ाई और करतूति को कई बार कहा ॥

चौ०—मुनिप्रसाद कहि द्वार सिधाये। रानिन्ह तब महिदेव बुलाये ॥
दिये दान आनंदसमेता। चले विप्र बर आसिष देता ॥

अर्थ—निदान ' यह सब विश्वामित्र जी का आशीर्वाद ' है ' ऐसा कह राजा सभा में आने पर रानियों ने ब्राह्मणों को बुलवाया ' और उन्हें दान दिये, ब्राह्मण आशीर्वाद देते हुए चले गये ॥

सो०—याचक लिये हँकारि, दीन्हि निछावरि कोटि विधि।
चिरजीवहु सुत चारि, ‡चक्रवर्त्ति दशरथ के॥ २९५

अर्थ—फिर भिखारियों को बुला लिया और उन्हें अनगिन्ती प्रकार से निछा[वरि] दी, वे आशीर्वाद देने लगे कि चक्रवर्त्ती महाराज दशरथ जी के चारों पुत्र चिरंजीव र[हें]

चौ०—कहत चले पहिरे पट नाना। हरषि हने गहगहे निशाना
समाचार सब लोगन्ह पाये। †लागे घर घर होन बधाये

अर्थ—(निछावरि में पाये हुए) भांति भांति के कपड़े पहन कर (ऊपर अनुसार) कहते हुए चले और प्रसन्न होकर जोर जोर से बाजे बजाने लगे। नगर निवासियों को यह खबर लगी तो घर २ मंगलाचार होने लगे॥

चौ०—भुवन चारि दश भयउ उछाहू। जनक सुता रघुवीर विवाहू
सुनि शुभ कथा लोग अनुरागे। †मग गृह गली सवाँरन लागे

---

‡ चक्रवर्त्ति दशरथ के—राम स्वयम्बर से चक्रवर्त्ती के कुछ चिन्ह—

[क]—केते महाराज रघुराज आवैं देखिबे को, केते महाराज जावैं बलि दै स्वदेश को।
केते महाराज ठाढ़े रोज रोज द्वार देश, केते महाराज बसैं शिर धै निदेश को॥
केते चौर ढारैं केते छत्र को सँवारैं संग, केते धूरि झारैं पद रसम हमेश को।
भूपति हजारैं ते निहारै रुख चार चारैं, भूप चक्रवर्त्ती चूड़ामणि अवधेश को॥

† लागे घर घर होन बधाये—

[रा]ग केदार—मन में मंजु मनोरथ होरी।
सो हरगौरि प्रसाद एक ते कौशिक कृपा चौगुनी भोरी॥
प्रण परिताप चाप चिन्ता निशि सोच सँकोच तिमिर नहिं थोरी।
रविकुल रवि अवलोकि सभासर हित चित वारिज वन विकस्योरी॥
कुँवर कुँवरि सब मंगल मूरति नृप दोउ धरम धुरंधर धोरी।
राज समाज भूर भागी जिन लोचन लाहु लह्यो इक ठोरी॥
व्याह उछाह राम सीता को सुकृत सकल विरंचि रच्योरी।
तुलसीदास जानें सोइ यह सुख जा उर बसत मनोहर जोरी॥

† मग गृह गली सवाँरन लागे—राम स्वयम्बर से—

[चौबोला]—पुर [illegible] धाम धाम महँ [illegible] बखाना।
[illegible] [illegible] महँ [illegible] पट भूषण विविध नाना॥
[illegible] [illegible] महँ [illegible] [illegible] माहीं।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] महँ नाहीं॥
([illegible])

अर्थ—चौदह लोकों में इस बात का आनन्द छा गया कि सीता और रामचन्द्र जी का विवाह है। यह शुभ कथा सुनकर लोग प्रेम में मग्न हुए और रास्ते, घर तथा गलियों को सजाने लगे॥

चौ०–यद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मंगलमय पावनि॥
तदपि प्रीति की रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई॥

अर्थ—यद्यपि अयोध्या सदा सुहावनी है क्योंकि वह राम की नगरी होने से सदैव पवित्र और मंगलों से परिपूर्ण है। तो भी प्रेम का भाव सुहावना होता है इसहेतु मनोहर मंगलमयी सजावट सम्हाल कर बनाई॥

चौ०–ध्वज पताक पट चामर चारू। छावा परम विचित्र बजारू॥
कनककलश तोरण मणिजाला। हरद दूब दधि अक्षत माला॥

अर्थ—अच्छे अच्छे ध्वजा, पताका वस्त्र और चमर से बाज़ार को बहुत ही अद्भुत रीति से सजाया। वहां पर सोने के कलश तोरण, मणियों की झालरें लगाईं, हलदी, दूब, दही अक्षत और माला रक्खी॥

दो०–मंगलमय निज निज भवन, लोगन्ह रचे बनाइ।
बीथी सींची चतुर सम, चौके चारु पुराइ॥ २९६॥

शब्दार्थ–चतुर सम=उसको कहते हैं जिस में चार वस्तुयें बराबर बराबर की मिली हों॥

अर्थ—सब लोगों ने अपने अपने घर सजाकर मंगलमयी कर दिये और गलियों को सिंचवाकर चार सम भाग चौक पूरने की वस्तुयें एकत्र कर चौक पुरवाया॥

चौ०–जहँ तहँ यूथयूथमिलि भामिनि। सजि नवसप्त सकल द्युतिदामिनि॥
बिधु बदनी मृगशावकलोचनि। निज सरूप रतिमान विमोचनि॥
†गावहिं मंगल मंजुल बानी। सुनि कलरव कलकंठ लजानी॥

पुरी अरभरी ताहि घर्घरी करैं हर्षरी भोगू।
कहँ हर्षरी मेटि कबँरी तब प्रभु करी संदागू।
कहुँ रथ चक्र होत घर घर रव नदहिं मत्त मातंगा।
कहुँ हय हेषन शोर मच्यो अति थोउ नहिं होत हवंगा।
भरत शत्रुसूदन अति हर्षित बदन बोइ बिसराई।
मुदित करहिं मातन से बातन कब देखब दोउ भाई।

† गावहिं मंगल मंजुल बानी। सुनि कलरव कलकंठ लजानी— ([illegible])

अर्थ—जहां देखो तहां स्त्रियों के झुंड सोलह शृङ्गार किये हुए सब ओर बिजली की नाईं प्रकाश करतीं हुईं। चन्द्र मुखी, मृगनयनी और अपनी सुन्दरता से रति के रूपगर्व को छुड़ाने वाली। मीठे स्वरों से मंगलगीत गा रहीं थीं उनके सुरीली तानों को सुनकर कोयल भी लज्जित होती थीं॥

चौ०—भूपभवन किमि जाइ बखाना। विश्वविमोहन रचेउ विताना॥
मंगलद्रव्य मनोहर नाना। राजत बाजत विपुल निशाना॥

अर्थ—राजमहल का वर्णन कैसे किया जा सक्ता है, जहां पर संसार को मोहित करने वाला मंडप तैयार किया गया था। नाना प्रकार के मंगलीक पदार्थ सुशोभित थे और बहुत से बाजे बज रहे थे॥

चौ०—कतहुँ विरद बंदी उच्चारहीं। कतहुँ वेदध्वनि भूसुर करहीं॥
गावहिं सुंदरि मंगलगीता। लेइ लेइ नाम राम अरु सीता॥
बहुत उछाह भवन अति थोरा। मानहुँ उमगि चला चहुँ ओरा॥

अर्थ—कहीं तो भाट वंशावली कह रहे थे और कहीं कहीं ब्राह्मण वेद पढ़ रहे थे। रूपवती स्त्रियां राम और सीता का नाम ले ले कर गीत गातीं थीं। आनन्द तो बहुत था (इस के लिये) राजभवन बहुत छोटा था इस हेतु वह मानो चारों ओर से निकल पड़ा (भाव यह कि आनन्द राजगृह तथा संपूर्ण नगर भर में भर गया था)॥

कान्हरा—राम लषन सुधि आई बाजै अवध बधाई।
ललित लगन लिखि पत्रिका उपरोहित के कर जनक जनेश पठाई॥
कन्या भूप विदेह की रूप की अधिकाई।
तासु स्वयम्वर सुनि सब आये देश देश के नृप चतुरंग बनाई॥
पण पिनाक पवि मेरु ते गुरुता कठिनाई।
लोकपाल महिपाल बाण हत रावण सके न चाप चढ़ाई॥
तेहि समाज रघुराज के मृगराज गजाई।
भंजि शरासन शम्भु को जग जय कल कीरति तिय तियमणि सिय पाई॥
पुर घर घर आनन्द महा सुनि चाह सुहाई।
मातु मुदित मंगल सजै कहैं, मुनिप्रसाद भये सकल सुमंगल माई॥
गुरु आयसु मंडप रच्यो सब साज सजाई।
तुलसिदास दशरथ [illegible] पूजि गणेशहि चले निशान बजाई॥

दो०—‡शोभा दशरथ भवन की, को कवि बरनै पार।
जहां सकल सुरसीसमणि, राम लीन्ह अवतार ॥ २९७ ॥

अर्थ—जहां पर सब देवताओं के शिरोमणि श्री रामचंद्र जी ने अवतार लिया था ऐसे दशरथ जी के महलों की शोभा का वर्णन कर सके ऐसा कौन कवि है ?

चौ०—भूप भरत पुनि लिये बुलाई । हय गय स्यंदन साजहु जाई ॥
चलहु वेगि रघुवीर बराता । सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता ॥

अर्थ—फिर राजा जी ने भरत को बुला कर कहा कि तुम जाकर घोड़े हाथी और रथों को तैयार कराओ और जल्दी से रामचन्द्र की बरात में चलो, यह सुन कर दोनों भाई आनन्द में मग्न हो गये ॥

चौ०—भरत सकल साहनी बुलाये । आयसु दीन्ह मुदित उठि धाये ॥
†रचि रुचि जीन तुरँग तिन साजे । बरन बरन बर बाजि बिराजे ॥

---

‡ शोभा दशरथ भवन की, को कवि बरनै पार। आदि—रामस्वयम्बर से—

चौबोला—अति उतंग सुन्दर शशि शाला सात मरातिब वारे।
मानहुँ पुष्पक विमान भान अस्थान लजावन हारे॥
हत दूषण पूषण प्रकाश इव नगर विभूषण सोई।
नर भूषण दशरथ निवास जहँ कतहुँ रूख न होई॥
समथल ऊँच नीच नहिं कतहुँ पूर्ण धर्म धन धानी।
सरस, सुरस रंजित नीरस हत कोशलपति रजधानी॥
बीणा वेणु पटह पणवादिक बाजत पोल नगारे।
अपथ सरिस शोभा सुर नर मुनि त्रिभुवन में न निहारे॥
दो०—जो देख्यो कोशलनगर, सुरनर एकहुँ बार।
तेहि न रही पुनि कामना, देखन हेत अपार॥

† रचि रुचि जीन तुरँग तिन साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे—आल्ह खंड से:—
बोलि दरोगा घोड़न वारे बीरा कलँगी दई इनाम।
बड़े बड़े घोड़न को सजवायो जल्दी हाल करो तैयार॥
घोड़ी हिरौंजिनि औ मुखमंजनि श्यामकरण सब्जा सुरंग।
घोंघर चाल कबूतर आये औ दरियाई पार के घोड़॥
कच्छी मच्छी घोड़ा साजे ताजी तीनि पानें टहनाय।
हरियल मुश्की पाखर डारी पचकल्यानिहु लेहु सजाय॥
अबलख गर्रा औ कुम्मेता समुदा घोड़ा करो तयार।
से इकदाँ इन घोड़न को ऊपर लेउ दुपट्टा डारि॥ (अति नहि)

अर्थ—जहां देखो तहां स्त्रियों के झुंड सोलह शृङ्गार किये हुए सब की बिजली की नाईं प्रकाश करतीं हुईं । चन्द्र मुखी, मृगनयनी और अपनी सुन्दरता से रति के रूपगर्व को छुड़ाने वाली । मीठे स्वरों से मंगलगीत गा रहीं थीं उन सुरीली तानों को सुनकर कोयल भी लज्जित होती थीं ॥

चौ०—भूपभवन किमि जाइ बखाना । विश्वविमोहन रचेउ विताना
मंगलद्रव्य मनोहर नाना । राजत बाजत विपुल निशाना

अर्थ—राजमहल का वर्णन कैसे किया जा सक्ता है, जहां पर संसार मोहित करने वाला मंडप तैयार किया गया था । नाना प्रकार के मंगलीक पदार्थ सुशोभित थे और बहुत से बाजे बज रहे थे ॥

चौ०—कतहुँ विरद बंदी उच्चरहीं । कतहुँ वेदध्वनि भूसुर करहीं
गावहिं सुंदरि मंगलगीता । लेइ लेइ नाम राम अरु सीता
बहुत उछाह भवन अति थोरा । मानहुँ उमगि चला चहुँ ओरा

अर्थ—कहीं तो भाट वंशावली कह रहे थे और कहीं कहीं ब्राह्मण वेद पढ़ रहे थे । रूपवती स्त्रियां राम और सीता का नाम ले ले कर गीत गातीं थीं । आनन्द तो बहुत था (उस के लिये) राजभवन बहुत छोटा था इस हेतु वह मानो चारों ओर से निकल पड़ा (भाव यह कि आनन्द राजगृह तथा संपूर्ण नगर भर में छा गया था) ॥

कान्हरा—राम लखन सुधि आई बाजे अवध बधाई ।
लिखित लगन लिखि पत्रिका उपरोहित के कर जनक जनेश पठाई ॥
कन्या भूप विदेह की रूप की अधिकाई ।
तासु स्वयम्वर सुनि सब आये देश देश के नृप चतुरंग बनाई ॥
पण पिनाक पवि मेरु तें गुरुता कठिनाई ।
लोकपाल महिपाल बाण दश रावण सके न चाप चढ़ाई ॥
तेहि समाज रघुराज के मृगराज गजाई ।
भंजि शरासन शम्भु को जग जय कल कीरति तियमणि सिय पाई ॥
पुर घर घर आनन्द महा सुनि चाह सुहाई ।
मातु मुदित मंगल सजैं करैं, मुनिन्ह दान [illegible] सुमंगल गाई ॥
गुरु [illegible] सुन्दर स्यों [illegible] साज सजाई ।
[illegible] पूजि गनेशहिं [illegible] निशान बजाई ॥
[illegible], ८८

दो०—‡शोभा दशरथ भवन की, को कवि बरनै पार।
जहां सकल सुरसीसमणि, राम लीन्ह अवतार॥ २६७॥

अर्थ—जहां पर सब देवताओं के शिरोमणि श्री रामचंद्र जी ने अवतार लिया था ऐसे दशरथ जी के महलों की शोभा का वर्णन कर सके ऐसा कौन कवि है?

चौ०—भूप भरत पुनि लिये बुलाई। हय गय स्यंदन साजहु जाई॥
चलहु बेगि रघुवीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता॥

अर्थ—फिर राजा जी ने भरत को बुला कर कहा कि तुम जाकर घोड़े हाथी और रथों को तैयार कराओ और जल्दी से रामचन्द्र की बरात में चलो, यह सुन कर दोनों भाई आनन्द में मग्न हो गये॥

चौ०—भरत सकल साहनी बुलाये। आयसु दीन्ह मुदित उठि धाये॥
†रचि रुचि जीन तुरँग तिन साजे। बरन बरन वर वाजि विराजे॥

‡ शोभा दशरथ भवन की, को कवि बरनै पार। आदि—रामस्वयम्बर से—
चौबोला—अति उतंग सुन्दर शशि शाला सात मरातिब वारे।
मानहुँ पुहुप विमान भान अस्थान लजावन हारे॥
हत दूषण भूषण प्रकाश हय नगर विभूषण सोई।
नर भूषण दशरथ निवास जहँ कतहुँ रूख न होई॥
समथल ऊँच नीच नहिं कतहुँ पूर्ण धर्म धन धानी।
सरस, सुरस रंजित नीरस हत कोशलपति रजधानी॥
वीणा वेणु पटह पणवादिक बाजत रोज नगारे।
अवध सरिस शोभा सुर नर मुनि त्रिभुवन में न निहारे॥
दो०—जो देखो कोशलनगर, सुरनर पकहुँ बार।
तेहि न रही पुनि कामना, देखन हेत अपार॥

† रचि रुचि जीन तुरँग तिन साजे। बरन बरन बर बाजि विराजे—आल्ह खंड से:—
कोनि दरांगा घोड़न वारो चीरा कलँगी दई इनाम।
बड़े बड़े घोड़न को लअयायो जल्दी हाल करो तैयार॥
घोड़ी हिरौंजिनि औ मुखमंजनि श्यामकरण सब्जा सुरंग।
घाँघर चाल कबूतर बाघैं औ दरियाई पार के घोड़॥
कच्छी मच्छी घोड़ा साजै ताजी लीनि पाचँ हज़ार।
हरियल मुश्की पाखर डारो पचकल्यानिहु लेहु सजाय॥
लक्खा गर्रा औ कुम्मेता समुदा घोड़ा करौ तयार।
लै इकदायी इन घोड़न के ऊपर जेउ दुशाला डारि॥ (शेष अगे)

अर्थ—भरत ने फ़ौज के दारोग़ाओं को बुलाकर आज्ञा दी, सो वे प्रसन्न पूर्वक उठ दौड़े। उन्हों ने अच्छे अच्छे ज़ीन रखकर घोड़ों को कसा ऐसे अ रंग के उत्तम घोड़े सजाये गये जो ....

चौ०—सुभग सकल सुठि चंचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी ‡नाना जाति न जाहिं बखाने। ×निदरि पवन जनु चहत उड़ाने

अर्थ—सब सुडौल, मनोहर तथा चपल चाल वाले थे और जो पृथ्वी पर। प्रकार टाप धरते थे कि मानो जलते हुए लोहे पर पैर रखते हों (सारांश यह घोड़े बहुत ही शीघ्रता से पैरों को रखते और उठाते थे)। उन के अनेक प्रका का वर्णन नहीं किया जा सक्ता था मानो हवा को तुच्छ मान उड़ना चाहते थे॥

चौ०—तिन सब छैल भये असवारा। भरतसरिस वय राजकुमारा सब सुन्दर सब भूषणधारी। कर शरचाप तूण कटि भारी

अर्थ—उन पर भरत ही की अवस्था वाले बांके सब राजकुमार सवार हुए सभी सुन्दर और सब ही अलंकार पहिरे हुए, हाथ में धनुप बाण और कमर तर्कस धारण किये थे॥

भरि भरि वेला अरे मेंहदी के जिन में लेरन केसर डारि।
चारौं सुम्मन को रंगवावो पाछे पूंछ देउ रँगवाय॥
धरि कठिलानी इन घोड़न पर ऊपर तंग देउ कसवाय।
लसे यकलुआ हैं सोने के और रेशम के तंग कसाय॥
छोटि छोटि कलँगी मोतीचूर की सो कल्लन पर दईं धराय।
पग पैजनिया रुनझुन बाजैं तिन पर छैल भये असवार॥

‡ नाना जाति न जाहिं बखाने—

कवित्त—नैपाली टांगन ताजी अरबी सुरंग ताश्री तरकी तुरंग गर्रा सबजा कुम्मेद है।
अबलक विलायती हिरौजल स्याहकर्ण कोतल सिरगा मुश्की तुरकी सफेद है॥
भनै "मध्र लाल" अरब लक्खा सुपमंजन है पचकल्यान निकुला प्रतिकूल भेद है।
तुकरा पहाड़ी कच्छी देयमान दरयाई मक्सी सुमन्द बाज तेलिया कुमेद है॥

× निदरि पवन जनु चहत उड़ाने—

क०—नरते अधिक दौरें पक्षी अन्तरिक्ष ही के पक्षी ते अधिक दौरें वेगि नदी नीर के।
नीर ते अधिक दौरें "पंसी" कहै सिंह बली सिंह ते अधिक दौरें तीर महाधीर के॥
तीर ते अधिक दौरें पवन झकोरें ओर पौन ते अधिक दौरें नैनहि शरीर के।
नैन ते अधिक दौरें मन निर्द्वं लोकन में मन ते अधिक दौरें बाजी रघुबीर के॥

दो०—छरे छबीले छैल सब, शूर सुजान नवीन।
युग पदचर असवार प्रति, जे असिकलाप्रवीन॥ २९८॥

अर्थ—सब चुने हुए छबीले गबड़ू बहादुर नई अवस्था वाले चतुर थे और प्रत्येक सवार के साथ दो दो ऐसे पैदल थे जो तलवार चलाने में चतुर थे॥

चौ०—बाँधे बिरद बीर रन गाढ़े। निकसि भये पुर बाहिर ठाढ़े॥
†फेरहिं चतुर तुरँग गति नाना। हरषहिं सुनि सुनि पणव निशाना॥

अर्थ—संग्राम में प्रवीण वीर लोग लड़ाई का बाना धारण किये नगर से निकलकर बाहर खड़े हुए। वे चतुर घोड़ों को भाँति भाँति की चाल चलाते थे और ढोल तथा नगाड़ों का शब्द सुनकर प्रसन्न होते थे॥

चौ०—रथ सारथिन्ह विचित्र बनाये। ध्वज पताक मणि भूषण लाये॥
चँवर चारु किंकिनि धुनि करहीं। भानुयानशोभा अपहरहीं॥

अर्थ—सारथियों ने रथों को ध्वजा, पताका और मणियों के आभूषणों द्वारा अद्भुत रीति से सजाया था। उन में उत्तम चँवर लगे थे तथा घंटियां बजरही थीं वे मानो सूर्य के रथ की शोभा को छीने लेते थे (अर्थात् बहुत सुंदर थे)॥

चौ०—‡श्यामकर्ण अगणित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते॥
सुन्दर सकल अलंकृत सोहे। जिनहिं विलोकत मुनि मन मोहे॥

शब्दार्थ—होते = अश्वमेध यज्ञ के योग्य॥

अर्थ—यज्ञ के अनगिन्ती श्यामकर्ण नाम के घोड़ों को सारथियों ने उन रथों में जोते। सब के सब सुडौल तथा आभूषणों से सुशोभित थे जिन को देखकर मुनियों के मन मोह जाते थे॥

---

† फेरहिं चतुर तुरँग गति नाना। आल्ह खंड से—

नये बछेड़ा जे सजवाये तिन पर छैल भये असवार।
अपने अपने गलियारेन से सबी निकसे बाघ मरोर॥
कोई रविघन कोइ रहालन कोइ कुड़रिन पर फेरें बाघ।
चित्र चालि पै चतुर चालि पै कोइ कोइ तितुर चालि से आवें॥
हंस चालि पै मोर चालि पै घोड़ा हरिण चौकड़ी आवें।
पोइन सरपट घोड़ा चलावें दुलकी चालि चलावत आवें॥

‡ श्याम कर्ण—श्यामकर्ण घोड़ों के विषय में अयोध्या कांड रामायण की श्री विनायकी टीका की टिप्पणी पृ० ६४ में "गालव" की कथा देखो॥

चौ०—जे जल चलहिं थलहि की नाईं । टाप न बूड़ बेग अधि[क]
†अस्त्र ‡शस्त्र सब साज बनाई । रथी सारथिन्ह लिये बु[लाई]

अर्थ—जो पानी पर भी पृथ्वी की नाईं चलते थे सो यों कि बहुत [तेज़] चलने के कारण (पानी में) उन की टाप तक न बूड़ती थी । सब प्रकार [के अस्त्र] शस्त्र आदि सम्हाल के तैयार कर सारथी लोगों ने रथ पर बैठने वा[लों को] बुलाया ॥

दो०—चढ़ि चढ़ि रथ बाहिर नगर, लागी जुरन बरात ।
होत सगुन सुन्दर सबन्हि, जो जेहि कारज जात ॥ २६६

अर्थ—रथों पर सवार हो हो कर गांव के बाहर बरात इकट्ठी होने [लगी ।] उस समय जो जिस काम के लिये जाता था, उस को उसी योग्य सुन्दर [सगुन] होते थे ॥

चौ०—*कलित करिबरन्हि परी अंबारी । कहि न जाइ जेहि भांति सँवा[री]
चले मत्तगज घंट बिराजे । मनहुँ सुभग सावन घन गा[जे]

---

† अस्त्र (अस् = फेंकना)=ऐसा हथियार जो फेंक कर चलाया जावे, जैसे ब[ाण] बन्दूक की गोली आदि ॥

‡ शस्त्र (शस्=मारना)=ऐसा हथियार जिसे हाथ में लिये हुए चलावें जैसे तलवार बर्छी आदि ॥

* कलित करिबरन्हि परी अंबारी । कहि न जाइ जेहि भांति सँवारी—आल्ह खंड मारहा युद्ध में—

बोधि दरोगा हाथिन वारो हाथन कड़ा दये डरवाय ॥
बड़े बड़े हाथिन की अम्बारी छोटे पलँग की [illegible] ॥
[illegible]

अर्थ—सुन्दर हाथियों पर उत्तम अंबारियां इस प्रकार से सजीं हुईं थीं कि उन का वर्णन नहीं किया जा सक्ता। मस्त हाथी जो झूमते जाते थे उनकी घंटावलियां इस प्रकार बज रहीं थीं कि मानो सावन के सुहावने बादल गरज रहे हों॥

चौ०—वाहन अपर अनेक विधाना। शिविका सुभग सुखासन याना॥
तिन चढ़ि चले विप्रवरवृंदा। जनु तनु धरे सकल श्रुतिछन्दा॥

अर्थ—और भी अनेक प्रकार की सवारियां थीं जैसे उत्तम पालकी, नालकी, तामझाम आदि। इन पर वेदपाठी ब्राह्मणों के समूह बैठ कर चले, मानो सब वेद और शास्त्र ही रूप धर कर चले जा रहे हों॥

चौ०—मागध सूत वन्दि गुणगायक। चले यान चढ़ि जो जेहि लायक॥
वेसर ऊंट वृषभ बहु जाती। चले वस्तु भरि अगणित भांती॥

अर्थ—भाट, पौराणिक, वंश कीर्त्तन करने वाले तथा गुण गाने वाले यथायोग्य सवारियों पर बैठ कर चले। कई जाति के खच्चर, ऊंट बैल अनेक प्रकार की वस्तुओं से लदे हुए चले॥

चौ०—कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। विविध वस्तु को बरनै पारा॥
चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साज समाज बनाई॥

अर्थ—कहार लोग करोड़ों काँवरों में भाँति २ की वस्तुयें लेकर चले जिनका वर्णन करना कठिन है। सम्पूर्ण नौकर चाकर भी अपनी अपनी टुकड़ियों को सज धज कर चले॥

दो०—सब के उर निर्भर हरष, पूरित पुलकि शरीर।
कबहिं देखिहैं नयन भरि, राम लषन दोउ वीर॥ ३००॥

अर्थ—सब लोगों के हृदय में ऐसा आनन्द भर गया था कि वह समाता न था, उन के शरीर रोमांचित हो गये थे (और सब को यही लालसा थी कि) राम लक्ष्मण दोनों भाइयों को अपने नेत्र भर कब देखेंगे॥

चौ०—[1]गर्जहिं गजघंटा ध्वनि घोरा। रथ रव बाजि हिंस चहुँ ओरा॥
निदरि घनहिं घुर्मरहिं निशाना। निज पराइ कछु सुनिय न काना॥

[1] गर्जहिं गजघंटा ध्वनि घोरा—
दो०—रहित भूंप घटावली, भरत हाव मनु वीर।
मन्द मन्द मावत चल्यो, कुंजर कुंज कुटीर॥

अर्थ—इस तेजस्वी मनोहर रथपर राजा जी ने आनंदपूर्वक वशिष्ठ जी को बिठलाया और गणेश जी, शिव पार्वती जी तथा गुरु जी का स्मरण कर आप भी रथ पर जा बैठे ॥

(अवधपुर से जनकपुर को बरात का प्रस्थान आदि)

चौ०—सहित वशिष्ठ सोह नृप कैसे। सुरगुरु संग पुरंदर जैसे ॥
करि कुलरीति वेदविधि राऊ। देखि सबहि सब भांति बनाऊ ॥
सुमिरि राम गुरुआयसु पाई। *चले महीपति शंख बजाई ॥

अर्थ—वशिष्ठ जी के साथ दशरथ जी इस प्रकार शोभा दे रहे थे जिस प्रकार बृहस्पति जी के साथ इन्द्र जी। राजा जी ने वेद के अनुसार कुल की रीति करके तथा सभी प्रकार की सम्पूर्ण तैयारी देखी। फिर वे रामचंद्र जी का स्मरण कर गुरु जी की आज्ञा ले शंख बजाकर चले ॥

चौ०—हर्षे विबुध विलोकि बराता। बर्षहिं सुमन सुमंगल दाता ॥
भयउ कोलाहल हय गय गाजे। व्योम बरात बाजने बाजे ॥
सुरनर नाग सुमंगल गाई। सरस राग बाजहिं सहनाई ॥

अर्थ—देव गण बरात को देख कर प्रसन्न हुए और शुभ मंगलकारी फूल बरसाने लगे। घोड़ों और हाथियों के शब्द से बड़ा कोलाहल मच गया, आकाश और बरात में बाजे बजने लगे। देवता, मनुष्य, नागलोक वासी सुन्दर मंगलगीत गा रहे थे और सहनाइयों में सुरीले राग बज रहे थे ॥

गुरु जी का ध्यान—

अखंड मंडलाकारं, व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

गनेश जी का स्मरण—

दो०—सुरगण नरगण मुनिन गण, हरत बिघन गण जोय।
एक रदन शुभ सदन जय, मदन कदन सुत सोय ॥

* चले महीपति शंख बजाई—बड़े २ शुभ कार्यों के आरंभ में तथा ऐसे कार्यों में जहां अगणित समाज को आज्ञा देना दूसरे प्रकार से कठिन था। वहां पर शंख ध्वनि करते थे, जैसा यहां पर बरात के प्रस्थान की सूचना के निमित्त किया गया था। इसी प्रकार महाभारत में युद्ध के प्रारंभ में भी कृष्ण आदि ने अपने अपने शंख बजाये थे, इस का अनुकरण आज कल तुरही या बिगुल बजा कर किया जाता है ॥

चौ०—घंट घंटि ध्वनि बरनि न जाहीं। सरौं करहिं पायक फहराहीं॥
†करहिं विदूपक कौतुक नाना। हासकुशल कलगान सुजाना॥

अर्थ—घंटों और घंटियों का शब्द वर्णन नहीं किया जाता था, सेवकों के हाथों में सीधी झंडियां फहरा रही थीं। मसखरे लोग जो ठठोली करने में चतुर और सुन्दर गाने में प्रवीण थे भाँति भाँति के खेल करते जाते थे॥

दो०—तुरँग नचावहिं कुअँर वर, अकनि मृदंग निशान।
नागर नट चितवहिं चकित, डगहिं न ताल विधान॥ ३०२॥

अर्थ—चतुर कुमार मृदंग और नगाड़ों की ध्वनि सुन घोड़ों को नचाते थे जिनको देख कर चतुर नट चकित होते थे क्योंकि वे ताल की गति को न चूकते थे॥

चौ०—‡बनै न वर्णत बनी बराता। होहिं सगुन सुंदर शुभ दाता॥

† करहिं विदूपक कौतुक नाना—हासकुशल कलगान सुजाना॥ एक विदूषक ने बरात की तैयारी की अद्भुत छटा उतारी थी—

तिताला—पपिहरा पिउ की बोली न बोलो।
हाथी पर हौदा अरु घोड़े पर जीन।
काली मुर्गी पर डंका बजावे देवीदीन॥
गोरी सरारारारादन॥ १॥ पपिहरा॥

और दूसरे विदूपक ने वृद्धावस्था में विवाह की कुरीति के विषय में यों तान उड़ाई—

बुढ़ऊ कौन कुमति उपजाय, बनरा बने ब्याहने जाते।
बीती उमर पचासक साल, सन होगये सीस के बाल,
करते कन्या वृथा हलाल, पापों से नहीं भय खाते॥ १॥
घर में सभी तरह सुख सार, बेटा बहू दिये करतार,
इन को सूझि नई ससुरार, घर पै आफत बेंत जमाते॥ २॥
मन में देख हँसें सब लोग, गाली देते कर कर सोग,
[illegible] मदा मोह मदमाते॥ ३॥
देखे [illegible] को धिक्कार, जो कर रहे बुरे व्यवहार,
[illegible] "हरलाल", सुनओ यही जगत के नाते॥ ४॥
[illegible]
[illegible] सुन्दर [illegible]।
[illegible] (पंचम)

चौ०—×चारा चापु वाम दिशि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई॥

अर्थ—बरात इस प्रकार से सजाई गई थी कि उस का वर्णन करते नहीं बनता, बहुत से शुभदायक शकुन होते थे। नीलकंठ पक्षी बाईं ओर चुँग रहा था मानो वह सम्पूर्ण मंगल कहे देता हो॥

चौ०—दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुलदरश सब काहू पावा॥
सानुकूल वह त्रिविध बयारी। सघट सवाल आव वर नारी॥

अर्थ—दाहिनी ओर सुन्दर खेत में कौआ शोभा दे रहा था और निउला के दर्शन सब किसी को हुए। समय के अनुसार तीन प्रकार की (शीतल, मंद, सुगंधित) पवन चलने लगी, सौभाग्यवती स्त्रियाँ बालक या भरे घड़ा लिये आतीं थीं॥

चौ०—लोवा फिरि फिरि दरश दिखावा। *सुरभी सन्मुख शिशुहि पियावा॥
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगलगण जनु दीन्ह दिखाई॥

पंच लक्ष अति स्वच्छ साज के गजहुँ बृष सवारा।
मन्मथ कृत मनु तीन लक्ष रथ पथ पर रहहिं तयारा॥
अदलारे वृष लक्ष पयादे आदे नख शिख सोहे।
चलहिं विख्यात बरात संग महँ जिन समान सुर सोहे॥
वृषभ शकट खर ऊँट जूट बहु खचर खेचर खासे।
रत्न जाल की विविध पालकी तिमि नालकी कसासे॥
रघुकुल के सब राजकुमारन सुकुमारन बुलवाई।
लिये बरात संग करि सादर निउतो नगन पठाई॥
कवि कोविद पंडितजन सज्जन सुहृद सखा अति प्यारे।
परिजन पुरजन गुरजन लघुजन चले स्वरूप सँवारे॥

× चारा चापु बाम दिशि लेई—

श्लोक—भारद्वाज मयूराणाम् चाषस्य नकुलस्य च।
ह्येतद्दर्शनम् पुण्यं वाम मार्गे विशेषतः॥

अर्थात् भारद्वाज पक्षी, मोर नीलकंठ और निउला इनके दर्शन तो शुभ हैं परन्तु बाईं ओर विशेष शुभदायक हैं॥

* सुरभी सन्मुख शिशुहि पियावा—कहावत प्रसिद्ध है कि—
सन्मुख धेनु पिलावहिं बच्छा। इन ते सगुन और नहिं अच्छा॥

अर्थ—मंगल और कल्याण के देने वाले तथा मनमाना फल देने वाले सब शकुन मानो सत्य ठहरने के लिये एक बार ही दिखाई दिये ॥ भाव यह कि ये सब शकुन उत्तम तौ थे परन्तु उन्हों ने रामचन्द्र जी की बरात के सन्मुख आकर अपनी सत्यता को पुष्ट किया अर्थात् सब लोगों ने जान लिया कि ये सब शकुन भले ही हैं क्योंकि इनके होने ही से रामचन्द्र जी के विवाह सरीखा परम आनन्द परिपूर्ण रूप से हुआ ॥

चौ०—मंगल सगुन सुगम सब ता के । सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जा के ॥
+राम सरिस वर दुलहिन सीता । समधी दशरथ जनक पुनीता ॥

अर्थ—जिस के शरीरधारी परमात्मा सरीखे सुपुत्र हैं उस को सम्पूर्ण कल्याण और शकुन सहज ही हैं । राम सरीखे दुलहा, सीता सरीखी दुलहिन और दशरथ तथा जनक सरीखे पुण्यवान् समधी हैं ॥

चौ०—सुनि अस ब्याह सगुन सब नाचे । अब कीन्हे विरंचि हम सांचे ॥
इहि विधि कीन्ह बरात पयाना । हय गय गाजहिं हनहि निशाना ॥

अर्थ—ऐसे ब्याह को सुनकर सब शकुन आनन्द में मग्न होगये कि अब हम सब को विधाता ने सच्चा सिद्ध कर दिया । इस प्रकार बरात ने कूंच किया, हाथी घोड़े शब्द कर रहे थे और नगाड़े बज रहे थे ॥

चौ०—आवत जानि भानुकुलकेतू । सरितन्ह जनक बँधाये सेतू ॥
बीच बीच वर वास बनाये । सुरपुर सरिस संपदा छाये ॥

अर्थ—(दूतों के द्वारा) सूर्यकुल श्रेष्ठ दशरथ जी का आगमन जानकर जनक जी ने नदियों के पुल बँधवा दिये (मार्ग में) स्थान स्थान पर उत्तम निवास स्थान बनवाये जहां पर देवलोक के समान द्रव्य आदि का सुभीता था ॥

चौ०—अशन शयन वर वसन सुहाये । पावहिं सब निज निज मनभाये ॥
नित नूतन सुख लखि अनुकूले । सकल बरातिन मंदिर भूले ॥

अर्थ—सब लोग अपनी अपनी इच्छानुसार भोजन, विश्राम और उत्तम उत्तम

+ रामसरिस बर दुलहिन सीता । समधी दशरथ जनक पुनीता—

क०—भले भूप कहत भले भदेस भूपन सों लोक लखि बोलिये पुनीत रीति मारषी ।
जगदम्बा जानकी जगतपितु रामभद्र जानि जिय जो हो जो न लागे मुँह कारषी ॥
देखे हैं अनेक ब्याह सुने हैं पुराण बेद बूझे हैं सुजान साधु नर नारि पारखी ।
ऐसे सम समधी समाज न बिराजमान राम से न बर दुलही न सीय सारखी ॥

शरीर के रोम खड़े हो गये। जब बरात वालों ने अगवानी का ठाट बाट देखा तब तो उन्हों ने प्रसन्न होकर नगाड़ों पर चोब दी॥

दोहा—‡हरषि परस्पर मिलनहित, कछुक चले बगमेल।
जनु आनन्द समुद्र दुइ, मिलत बिहाइ सुबेल॥ ३०५॥

अर्थ—(दोनों ओर के लोग) प्रसन्नता से आपस में भेंट करने के हेतु कुछ २ आगे बढ़े। मानो आनन्द के दो समुद्र अपनी सीमा छोड़कर मिलने जारहे हों॥

चौ०—बरषि सुमन सुरसुन्दरि गावहिं। मुदित देव दुन्दुभी बजावहिं॥
वस्तु सकल राखीं नृप आगे। विनय कीन्ह तिन अति अनुरागे॥

अर्थ—देवताओं की स्त्रियां फूल बरसा कर गीत गाती थीं और देवता प्रसन्न होकर नगाड़े बजाते थे। अगवानियों ने सब पदार्थ राजा दशरथ जी के साम्हने ला रक्खे और प्रेमपूर्वक उन से (उन्हें स्वीकार करने के हेतु) विनती की॥

चौ०—प्रेम समेत राय सब लीन्हा। भइ बकसीस याचकन्ह दीन्हा॥
करि पूजा मान्यता बड़ाई। जनवासे कहँ चले लिवाई॥

अर्थ—राजा जी ने प्रीति पूर्वक सब पदार्थ ले लिये और भिखारियों को भी बहुत कुछ दे डाला। फिर (अगवानी लोग) उन का पूजन, सन्मान और बड़ाई करके जनवासे की ओर लिवा ले चले॥

चौ०—बसन विचित्र पाँवड़े परहीं। देखि धनद धनमद परिहरहीं॥
अति सुन्दर दीन्हेउ जनवासा। जहँ सब कहँ सब भाँति सुपासा॥

अर्थ—ऐसे अनोखे अनोखे कपड़ों के पाँवड़े बिछाये गये थे कि जिन को देखकर कुबेर भी अपनी सम्पत्ति का घमंड भूल गये थे। बहुत ही रमणीक जनवासा दिया गया जहां सब को सभी प्रकार का सुभीता था॥

चौ०—जानी सिय बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगट जनाई॥
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बुलाई। भूप पहुनई करन पठाई॥

‡ हरषि परस्पर मिलनहित.......... मिलत बिहाइ सुबेल—तात्पर्य यह है कि समुद्र की लहरें अपनी सीमा का उल्लंघन कर आगे नहीं जातीं, परन्तु कवि ने यहां पर अगवानियों और बरातियों को अपनी अपनी मर्यादा छोड़कर परस्पर मिलने के उत्सव को [illegible] करते हैं कि मानो दो समुद्र की लहरें अपना सीमाओं को [illegible]

वस्त्र पाते थे । सब बरात वाले नित नया आनन्द भोगते हुए अपने घरों का भी भूल गये ॥

दो०—आवत जानि बरातवर, सुनि गहगहे निशान ।
सजि गज रथ पदचर तुरँग, लेन चले अगवान ॥ ३०४ ॥

अर्थ—नगाड़ों का भारी शब्द सुनतेही शुभ बरात का आगमन समझ हाथी, पैदल, घोड़े सजकर अगवानी उसे लेने को चले ॥

चौ०—कनक कलश भरि कोपर थारा । भाजन ललित अनेक प्रकारा ।
भरे सुधा सम सब पकवाने । †भाँति भाँति नहिं जाहिं बखाने ॥

अर्थ—स्वर्ण के भरे हुए कलश, कोपर, थार और नाना प्रकार के उत्तम बर्तनों में अमृत की नाईं इतने पकवान भरे थे कि जिनका वर्णन नहीं हो सक्ता ॥

चौ०—फल अनेक बरवस्तु सुहाई । हर्षि भेंट हित भूप पठाई ॥
भूषण वसन महामणि नाना । खग मृग हय गय बहुविधि याना ॥

अर्थ—बहुत से फल और उत्तम सुहावनी वस्तुएँ राजा जी ने प्रसन्न होकर भेंट के निमित्त भेजी । अलंकार, वस्त्र, भाँति भाँति की बड़ी बड़ी मणियां, पक्षी, हरिण, घोड़ा, हाथी और भाँति भाँति की सवारियां (भेजीं) ॥

चौ०—मंगल सगुन सुगंध सुहाये । बहुत भाँति महिपाल पठाये ॥
दधि चिउरा उपहार अपारा । भरि भरि काँवरि चले कहारा ॥

अर्थ—राजा जी ने नाना प्रकार के मंगलीक, शकुन के तथा सुगन्धित पदार्थ पहुँचाये । कहार लोग काँवरों में भरकर दही, चिउरा और भी भेंट की कई वस्तुएँ ले चले ॥

चौ०—अगवानन्ह जब दीख बराता । उर आनन्द पुलक भर गाता ॥
देखि बनाव सहित अगवाना । मुदित बरातिन हने निशाना ॥

अर्थ—जब अगवानियों ने बरात को देखा तो हृदय में ऐसा आनन्द भर गया

---

† भाँति भाँति नहिं जाहिं बखाने—पूरी कचौरी और जो अनेक पकवान भेजे गये उन में कचौरी की प्रशंसा तो सुनिये—

[illegible]
[illegible]

दो०—भूप बिलोके जबहिं मुनि, आवत सुतन्ह समेत।
उठे हरषि सुखसिंधु महँ, चले थाह सी लेत ॥ २०७ ॥

अर्थ—जब दशरथ जी ने विश्वामित्र जी को राजकुमारों समेत आते देखा तब तो वे प्रसन्नता पूर्वक उठे और ऐसे चले कि मानों सुखरूपी समुद्र की तली को ढूँढ़ते हों (भाव यह कि पानी में तैरनेवाला उसकी थाह ढूँढ़ने के निमित्त धीरे २ पाँव के अगले भाग को कुछ २ बढ़ाता है फिर पूरा पैर रख देता है। इसी प्रकार दशरथ जी प्रेम में मग्न हो विश्वामित्र जी की ओर जो जारहे थे सो उनकी दृष्टि तो रामचन्द्र जी में लगी थी, इसहेतु उनके पैर मार्ग में धीरे २ पड़ते थे और उनको आड़ टेढ़ पड़ने का उन्हें कुछ भान ही न था) ॥

चौ०—मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा। बार बार पदरज धरि सीसा ॥
कौशिक राउ लिये उर लाई। दै असीस पूछी कुशलाई ॥

अर्थ—राजादशरथ जी ने विश्वामित्र जी की चरणरज को अनेक बार अपने मस्तक पर धारण कर उन्हें प्रणाम किया। विश्वामित्र जी ने राजा जी को हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कुशल क्षेम पूछी ॥

चौ०—पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुख न समाई ॥
*सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतकशरीर प्राण जनु भेंटे ॥

अर्थ—फिर दोनों भाइयों को प्रणाम करते देखकर राजा जी के हृदय में आनंद समाता न था। पुत्रों को हृदय से लगाकर (पुत्रविछोहरूपी) भारी दुःख को भूलगये मानो मुर्दे में जान आगई हो ॥

चौ०—पुनि वशिष्ठपद शिर तिन नाये। प्रेम मुदित मुनिवर उरलाये ॥
विप्रवृंद वन्दे दुहुँ भाई। मनभावती असीसें पाई ॥

अर्थ—फिर उन्हों ने वशिष्ठ जी के चरणों में सिर नवाया तो मुनि श्रेष्ठ ने प्रेमपूर्वक मगन हो उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। फिर दोनों भाइयों ने सब ब्राह्मणों को प्रणाम किया और उन से मनमाने आशीर्वाद पाये ॥

चौ०—भरत सहानुज कीन्ह प्रणामा। लिये उठाइ लाइ उर रामा ॥
हरषे लषन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेमपरिपूरित गाता ॥

---

* सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतकशरीर प्राण जनु भेंटे—पुत्र वियोग का शोक संसार में प्राणी को मृतक के समान बना देता है। इसी हेतु से गोस्वामी जी ने दर्शाया है कि उन्हीं बिछुरे हुए राम लक्ष्मण से मिलने से राजा दशरथ जी के जी में जी आगया.

अर्थ—जब सीता जी ने समझ लिया कि बरात नगर में आगई तो अपनी थोड़ी सी महिमा कर दिखाई । हृदय में ध्यान करके सब सिद्धियों को बुलाया और राजा दशरथ जी की पहुनई के लिये भेजा ॥

दोहा—सिधि सब सिय आयसु अकनि, गईं जहां जनवास ।
लिये संपदा सकल सुख, सुरपुर भोग विलास ॥ ३०६ ॥

अर्थ—सीता जी की आज्ञा सुनकर सब सिद्धियां अपने साथ देवलोक में भी सुख चैन देने वाले ऐश्वर्य और सम्पूर्ण आनन्दों को लिये हुए वहां गईं जहां पर जनवासा था ॥

चौ०—निज निज वास विलोकि बराती । सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती ॥
विभव भेद कछु कोउ न जाना । सकल जनक कर करहिं बखाना ॥

अर्थ—बरात वाले अपने अपने निवास स्थान में देवताओं के योग्य सम्पूर्ण आनन्द सब प्रकार से सहज ही में प्राप्त हुआ देखते थे । इस ऐश्वर्य का कारण किसी को न समझ पड़ा, सब लोग तो जनक जी ही की बड़ाई करते थे ॥

चौ०—सियमहिमा रघुनायक जानी । हरषे हृदय हेतु पहिचानी ॥
पितु आगमन सुनत दोउ भाई । हृदय न अति आनन्द समाई ॥

अर्थ—सीता जी की महिमा रघुनाथ जी ने जानी तो उनके अभिप्राय को समझ हृदय में प्रसन्न हुए । पिताजी का आना सुनते ही दोनों भाई आनंद में फूले न समाते थे ॥

चौ०—सकुचत कहि न सकत गुरु पाहीं । पितु दर्शन लालच मन माहीं ॥
विश्वामित्र विनय बड़ि देखी । उपजा उर संतोष विसेखी ॥

अर्थ—पिताजी के देखने की मनमें अभिलाषा तो थी पर सकोचवश गुरु जी से कह नहीं सक्ते थे । विश्वामित्र जी ने जब इस भारी नम्रता को देखा तब तो उनके हृदय में विशेष आनंद हुआ ॥

चौ०—हरषि बन्धु दोउ हृदय लगाये । पुलक अंग अंबक जल छाये ॥
चले जहां दशरथ जनवासे । मनहुँ सरोवर तकेउ पियासे ॥

अर्थ—प्रेम पूर्वक दोनों भाइयों को अपने हृदय से लगा लिया, शरीर रोमांचित होउठा और नेत्रों में जल [illegible] आया । जहां जनवासे में दशरथ जी थे वहां को चल दिये [illegible] मनुष्य [illegible] देख पाया हो ॥

०–प्रथम ‡बरात लगन ते आई। ता ते पुर प्रमोद अधिकाई॥
ब्रह्मानंद लोग सब लहहीं। बढ़इ दिवस निशि विधि सन कहहीं॥

अर्थ—नियमित तिथि से पहिले ही बरात आगई थी, इसहेतु नगर में अधिक ानन्द छाया था। सब लोग मानो ब्रह्म के मिल जाने का आनन्द पारहे थे और ह्मा से यह प्रार्थना करते थे कि दिन रात बढ़ा दीजिये (दिन रात बढ़ाने के दो भाव सक्ते हैं (१) यह कि दिन रात का समय बहुत बढ़ जावे (२) यह कि लग्न का मय कोई दूसरा कुछ दिन और भी बढ़ा कर रख दिया जाय)॥

दो०–राम सीय शोभाअवधि, सुकृतअवधि दोउ राज।
+जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस, मिलि नरनारिसमाज॥ ३०६॥

अर्थ—नगर के निवासी स्त्री पुरुष अपनी अपनी समाज में सभी और यही चर्चा रते थे कि रामचन्द्र और सीता जी तो सुन्दरता की हद हैं और दोनों राजा सत्कर्मों ी सीमा हैं (अर्थात् राम और सीता से बढ़कर कोई रूपवंत नहीं और न दोनों हाराजाओं से बढ़कर कोई पुण्यात्मा है)॥

चौ०–जनकसुकृतमूरति बैदेही। दशरथसुकृतराम धरि देही॥
इन सम काहु न शिव अवराधे। काहु न इन समान फल ×साधे॥

अर्थ—जनक जी के उत्तम कर्मों का फल ही मानो साक्षात् सीता जी हैं और दशरथ जी के सत्कर्म ही मानो रामरूप धारण कर आये हैं। इनके समान किसी ने शिव जी की ऐसी भक्ति नहीं की और न किसी ने इन की नाईं फल पाये॥

चौ०–इन सम कोउ न भयउ जग माहीं। है नहिं कतहूँ होनेउ नाहीं॥
हम सब सकल सुकृत की रासी। भे जग जनमि जनकपुर बासी॥

‡ प्रथम बरात लगन ते आई—पाणिग्रहण का मुहूर्त अगहन सुदी पञ्चमी को था और बरात अयोध्यापुर से कार्तिक बदी ८ को चलकर कार्तिक बदी १२ को जनकपुर में आगई अर्थात् लग्न वेला से एक महीना ७ दिन पहिले बरात आगई थी।

+ जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस, मिलि नरनारिसमाज—

[illegible]

उठाकर हृदय से लगा लिया। दोनों भाइयों को देख कर लक्ष्म
प्रेम से परिपूर्ण होकर मिले ॥

दो०—पुरजन परिजन जातिजन, याचक मंत्र
मिले यथाविधि सबहि प्रभु, परमकृपालु विन

अर्थ—बड़े दयालु और नम्र स्वभाव वाले रामचन्द्र जी नगर ि
स्त्रियों, जाति भाइयों, याचकों, मंत्रियों और मित्रों आदि सब ही से
से मिले ॥

चौ०—रामहि देखि बरात जुड़ानी। प्रीति कि रीति न जा
नृपसमीप सोहहिं सुतचारी। जनु धन धर्मादिक तनु

अर्थ—रामचन्द्र जी को देख बरात वालों के हृदय शांत हुए, उस समय
भाव का वर्णन नहीं किया जा सक्ता। दशरथ जी के समीप चारों पुत्र
शोभा दे रहे थे कि मानो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष शरीर धारण करके उन
धन ही बन गये हों ॥

चौ०—सुतन्ह समेत दशरथहि देखी। मुदित नगर नर नारि विसेखी॥
सुमन बरषि सुर हनहिं निशाना। नाकनटी नाचहिं करि गाना॥

शब्दार्थ—नाकनटी (नाक = स्वर्ग + नटी = नाचने वाली) = स्वर्ग में नाचने
वाली अर्थात् अप्सरा ॥

अर्थ—नगर के स्त्री पुरुष राजा दशरथ को सुतों सहित देख कर बहुत
हुए। देवता फूलवर्षा कर नगाड़े बजाते थे और अप्सरायें गीत गाकर नाचती थीं॥

चौ०—सतानंद अरु विप्र सचिवगन। †मागध सूत विदुष वंदीजन॥
सहित बरात राउ सनमाना। आयसु माँगि फिरे अगवाना॥

अर्थ—सतानंद (पुरोहित), ब्राह्मण, मंत्री लोग, भाट, पौराणिक पंडित और
... वर्णन करने वाले सब अगवानियों ने दशरथ जी सहित सब बरातियों का आदर
किया और आज्ञा लेकर लौट आये ॥

† मागध सूत विदुष बंदीजन—([illegible])
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अर्थ—इनके समान संसार में कोई नहीं हुआ है और न कहीं होने वाला है। हम सब जनकपुर निवासी भी जगत में जन्म लेकर सत्कर्मों के भंडार हुए।

चौ०–जिन जानकीरामछवि देखी। को सुकृती हम सरिस बिसेखी॥
पुनि देखब रघुबीर बिवाहू। लेब भली बिधि लोचनलाहू॥

अर्थ—हमारे समान विशेष सत्कर्मी कौन है जिन्हों ने सीता और रामचन्द्र जी के स्वरूपों का दर्शन किया और इसके सिवाय अब रामचन्द्र जी का विवाह देखकर अपने नेत्रों का लाभ भलीभांति उठावेंगे॥

चौ०–कहहिं परस्पर कोकिलबयनी। इहि बिवाह बड़ लाभ सुनयनी॥
बड़े भाग्य बिधि बात बनाई। नयनअतिथि हुइहहिं दोउ भाई॥

अर्थ—सुभाषिणी और मृगनयनी आपस में यही कहती थीं कि इस विवाह से यही बड़ा लाभ है कि दोनों भाई हमारे नेत्रों के पाहुने बनेंगे यह सुअवसर विधाता ने बड़े भाग्य से दिया है॥

दो०–*बारहिंबार सनेहवश, जनक बुलाउब सीय।
लेन आइहहिं बंधु दोउ, कोटिकामकमनीय॥ ३१०॥

अर्थ—जनक जी प्रेम के कारण सीता जी को बारंबार बुलवावेंगे, तब करोड़ों कामदेव की शोभा से भरे हुए दोनों भाई उन्हें लिवाने को आया करेंगे॥

चौ०–†बिबिध भाँति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई॥
तब तब राम लषनहि निहारी। होइहहिं सब पुरलोग सुखारी॥

अर्थ—नाना प्रकार से उनकी पहुनाई, होगी हे माता! कहो ऐसी ससुराल किसे

---

* बारहिंबार सनेहवश जनक बुलाउब सीय—माता की ममता तथा निज प्रेम के कारण जनक जी सीता को बारम्बार बुलावेंगे। कारण कितना ही सुख ससुराल में क्यों न हो, पुत्री भी पिता के भवन को माता के अगाध प्रेम आदि के कारण भूलती नहीं, यथा—

सवैया—सुन्दर रूप तिया मन जानकि लोक औ वेद की मेड़ न मेटी।
[illegible] सुख संपति सों रजधानी सदा जदुना सों जपेटी॥
औधपुरी सुख संपति सों [illegible] को [illegible] न जात है मेटी।
सुर किशोर बनाय बिरंचि [illegible] को [illegible] न भूलत बेटी॥
[illegible] सुख है ससुरारि में [illegible] भौन न भूलत बेटी॥

† बिबिध भाँति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई—जैसा कहा है कि "[illegible] तुल्यं [illegible]"
कि ससुरारि सुख को [illegible]। ([illegible])॥

प्यारी न लगेगी ? उसी समय सब नगर निवासी राम लक्ष्मण को देख सुखी होवेंगे॥

चौ०—सखि जस राम लषन कर जोटा। तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा॥
श्याम गौर सब अंग सुहाये। ते सब कहहिं देखि जे आये॥

अर्थ – हे सखी! वे सब लोग जो देख आये हैं सो कहते हैं, कि जिस प्रकार राम और लक्ष्मण की जोड़ी है उसी प्रकार राजा के संग और दो पुत्र हैं जो श्यामले और गोरे रंग के सब अंगों से सुडौल हैं॥

चौ०—कहा एक मैं आजु निहारे। जनु बिरंचि निज हाथ सँवारे॥
भरत रामही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नरनारी॥

अर्थ—एक सखी कहने लगी कि मैंने आज ही उन को देखा है मानो ब्रह्मा ने अपने हाथ ही से उन्हें बनाया है। भरत तो हूबहू राम ही के सदृश हैं उन्हें कोई भी स्त्री पुरुष एकाएकी नहीं पहिचान सक्ता॥

चौ०—लषन शत्रुसूदन इकरूपा। नख सिख ते सब अंग अनूपा॥
मन भावहि मुख बरनि न जाहीं। उपमा कहँ त्रिभुवन कोउ नाहीं॥

अर्थ— लक्ष्मण और शत्रुघ्न, जिन के पैर से सिर तक सब अङ्ग उपमा रहित हैं, एक ही से रूप वाले हैं। मन में तो पचते हैं परन्तु मुख से कहने में नहीं आते, (कारण) तीनों लोक में कोई नहीं है जिस से इन की पटतर दूँ॥

छंद–‡उपमा न कोउ कह दास तुलसी, कतहुँ कबि कोबिद कहैं।
बल बिनय बिद्या शील शोभा, सिंधु इन से एइ अहैं॥

---

‡ उपमा न कोउ कह दास तुलसी, कतहुँ कवि कोविद कहैं—चाणाक्य नीति से—

श्लोक—काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुरचलश्चिन्तामणिः प्रस्तरः।
सूर्यस्तीव्रकरः शशी क्षयकरः क्षारोहि वारांनिधिः॥
कामोनष्ट तनुर्बलिर्दितिसुतो नित्यं पशुः कामगौ॥
नैतांस्तुलयामि भो रघुपते कस्योपमा दीयते॥

अर्थात् कल्पवृक्ष काठ है, सुमेरु अचल है, चिन्तामणि पत्थर है, सूर्य की किरणें प्रचण्ड [illegible] हैं, चन्द्रमा की किरणें [illegible] हो जाती हैं समुद्र खारा है, कामदेव के शरीर नहीं है, बलि [illegible] है, [illegible] इस कारण आप के साथ [illegible] दी जाती है [illegible]! हे रघुपति! फिर आप की [illegible] की दी जावे॥

पुरनारि सकल पसारि अंचल, बिधिहि बचन सुनावहीं।
ब्याहिय सुचारिउ भाइ इहिपुर, हम सुमंगल गावहीं॥

अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि कवि और पंडितों का कथन है कि इन उपमा के लिये कोई भी कहीं पर नहीं है, शक्ति नम्रता, विद्या, शील और शोभा समुद्र इन के समान ये ही हैं। जनकपुर की स्त्रियां अंचल पसार कर ब्रह्मा से विनती करती थीं कि सुन्दर चारों भाई इसी नगर में ब्याहे जावें और हम सब सुन्दर मंगल गीत गावें॥

सो०—कहहिं परस्पर नारि, वारि विलोचन पुलकतनु।
सखि सब करब पुरारि, पुन्यपयोनिधि भूप दोउ॥३११॥

अर्थ—नेत्रों में आंसू भर और रोमांचित हो स्त्रियां आपस में कहने लगीं, हे सजनी! शंकर जी सब इच्छा पूर्ण करैंगे काहे से कि दोनों राजा पुण्य के समुद्र हैं॥

चौ०—इहि विधि सकल मनोरथ करहीं। आनँद उमगि उमगि उर भरहीं॥
जे नृप सीयस्वयम्वर आये। देखि बंधु सब तिन सुख पाये॥
कहत रामयश विशद विशाला। निज निज भवन गये महिपाला॥

अर्थ—इस प्रकार सब लोग विचार बांधते रहते थे और आनन्द के उत्साह से चित्त को प्रसन्न करते थे। सीता जी के स्वयंवर में आये हुए जिन राजाओं ने चारों भाइयों को देखा उन्हों ने भी आनन्द मनाया। राजा लोग रामचन्द्र जी के निर्मल और भारी यश का वर्णन करते हुए अपने अपने स्थानों को चले गये॥

चौ०—गये बीति कछु दिन इहि भाँती। प्रमुदित पुरजन सकल बराती॥
+मंगलमूल लगन दिन आवा। हिमऋतु अगहन मास सुहावा॥

अर्थ—नगर निवासी तथा बरात वाले प्रसन्न चित्त रहते थे, इस भाँति कुछ समय व्यतीत होगया। सब मङ्गलों का मूल कारण विवाह का मुहूर्त अर्थात् हेमन्तऋतु में सुहावना अगहन महीना आया॥

चौ०—ग्रह तिथि नखत योग बर वारू। लगन शोधि विधि कीन्ह विचारू॥
[illegible] नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन्ह जोई॥

सुनी सकल लोगन यह बाता । कहहिं ज्योतिषी आहिं विधाता ॥

अर्थ—ब्रह्मा उत्तम ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग, दिन और लग्न को शोध कर विचार करने लगे और फिर वही लग्न नारद मुनि के हाथ भिजवा दी, जनक के ज्योतिषियों ने भी वही लग्न शोध रक्खी थी (जो ब्रह्मा ने शोध कर भेजी) जब सब लोगों ने यह बात सुनी (कि ब्रह्मा और जनक जी के ज्योतिषियों की शोधी हुई लग्न एक ही ठहरी) तो वे कहने लग वाह ! ज्योतिषी तो विधाता ही होगये ॥

(विवाह का उत्सव)।

दो०—*धेनुधूलिवेला विमल, सकलसुमंगलमूल ।
विप्रन्ह कहेउ विदेह सन, जानि समय अनुकूल ॥ ३१२ ॥

अर्थ—ब्राह्मणों ने यह समझ कर कि गोधूल समय शुद्ध तथा सम्पूर्ण मङ्गलों का देने वाला है, जनक से कहा कि अब योग्य समय है ॥

चौ०—उपरोहितहि कहेउ नरनाहा । अब बिलंब कर कारण काहा ॥
सतानन्द तब सचिव बुलाये । मंगल सकल साजि सब ल्याये ॥

अर्थ—राजा जनक ने सतानन्द से कहा कि अब देरी करने का कौन सा कारण है ? तब सतानन्द ने मंत्रियों को बुलाया जो सम्पूर्ण मङ्गलीक द्रव्य ले आये ॥

चौ०—शंख निशान पणव बहु बाजे । मंगल कलश शकुन शुभ साजे ॥
†सुभग सुआसिनि गावहिं गीता । करहिं वेदध्वनि विप्र पुनीता ॥

---

* धेनुधूलि वेला विमल, सकल सुमंगल मूल—धेनुधूलि, जिसे बहुधा लोग गोधूल कहा करते हैं, यह समय है जब कि गायें वन से चर कर गांव के समीप आती हैं और उनके पद प्रहार से जो धूल उड़ती है वह प्रायः संध्या समय ही है जब कि अस्तमान सूर्य की कुछ किरणें भी दिखाई देती हैं ॥

क०—नादिन विचारन के बुरे तिथि वारन को निन्दित नक्षत्र के निषेध की प्रथा न है ।
बरन्यो विधान न कुयोग योग वर्जन को मान्यो ना महूरत न वार को निशान है ॥
प्रथम सुधान के न शोधन को काम कछू आनिबक आदि दोष हू को ना निशान है ।
माघ मध धेनु में विवाह के विधान [illegible] गोरज समान शुभ लग्न हू न आन है ॥

† सुभग सुआसिनि गावहिं गीता—प्रेम पीयूष धारा से—

धुन नई—सखी सियवर की रंगीली आंखें ।
निरखत चतुर [illegible] में, [illegible] जब [illegible] है था की ।
पीत रंग की [illegible], [illegible] कोई [illegible] ।
"मोहनि दास" देखि के [illegible], मोहनि मूरति [illegible] की ।

चौ०—प्रेम पुलक तन हृदय उछाहू। चले बिलोकन राम बिवाहू॥
देखि जनकपुर सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहिं लघु लागे॥

अर्थ—प्रेम के मारे शरीर के रोम खड़े हो आये, हृदय में उमंग के साथ श्री रामचन्द्र जी का विवाह देखने चले। जनकपुर को देखकर देवगण मोहित हुए और उन सबों को अपना अपना लोक तुच्छ समझ पड़ा॥

चौ०—चितवहिं चकित बिचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना॥
नगरनारिनर रूपनिधाना। सुघर सुधर्म सुशील सुजाना॥

अर्थ—अद्भुत मंडप को देखकर भौंचक से रहगये क्योंकि उस की भाँति २ की सम्पूर्ण रचना मृत्युलोक की रचना की नाईं न थी। जनकपुर के स्त्री और पुरुष सब रूपवान् चतुर, धर्मवान्, शीलवान् और ज्ञानवान् थे॥

चौ०—तिनहिं देखि सब सुरसुरनारी। भये नखत जनु बिधु उजियारी॥
+बिधिहि भयउ आचरज बिसेखी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी॥

अर्थ—उन को देखकर सम्पूर्ण देवता और उन की स्त्रियां इस प्रकार तेजहीन पड़ गईं जैसे चन्द्रमा के उदय से तारागण (भाव यह कि जनकपुर के स्त्री पुरुषों की सुन्दरता और छवि देवताओं से भी बढ़ चढ़ कर थी)। ब्रह्मा को भी बड़ा आश्चर्य हुआ जबकि उनने अपनी करतूति किसी स्थान में भी न देखी। (अर्थात् जनकपुर के स्त्री पुरुषों की तथा मंडप आदि की रचना कुछ ब्रह्मा की बनाई न थी वह तो मायारूप धारिणी सीता जी की रचना थी)॥

दो०—शिव समझाये देव सब, जनि आचरज भुलाहु।
हृदय बिचारहु धीर धरि, सिय रघुबीर बिवाहु॥ ३१४॥

अर्थ—शिव जी ने सब देवताओं को समझाया कि इस आश्चर्य में मत भूलो, धीरज

+ बिधिहि भयउ आचरज बिसेखी—गीत रामायण से—

गीत—बिस्मित लखि देव हृदय मंडप शोभापर्वा।
कुशदिक अग जननि जहां दूलह त्रिभुवन धनी॥
मणिमय सब धाम रचे अतिशय सुषमा सनी।
प्रतिमा बिरचे अनूप पचि पचि चित्र बनी॥
तोरन महँ मुक्ताफल अनुपम उपमा बनी।
मानहुँ रबिमालि विपुल कहुँ कहुँ लटके गुनी॥
सहसकोटि चन्द्र हेम तारक जहँ जनी।
"रामदास" राम धाम दास लहे हैं धनी॥

चौ०—मरकत कनक वरन वरजोरी। देखि सुरन्ह भइ प्रीति न थोरी॥
पुनि रामहिं विलोकि हियहर्षे। नृपहि सराहि सुमन तिन वर्षे॥

अर्थ—नीलमणि और सुवर्ण की नाईं उत्तम दोनों जोड़ियों (अर्थात् राम और लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न) को देखकर देवताओं को बहुत आनन्द हुआ। फिर रामचन्द्र जी को देखकर हृदय में और भी प्रसन्न हुए तथा राजा दशरथ की बड़ाई कर उन्हों ने फूल बरसाये॥

दो०—×रामरूप नखशिख सुभग, वारहिं वार निहारि।
पुलकगात लोचनसजल, उमा समेत पुरारि॥ ३१५॥

अर्थ—पार्वती सहित शंकर जी तो रामचन्द्र जी की छवि को शिर से पैर तक सुडौल बारंबार देख देख कर शरीर से रोमांचित हो नेत्रों में प्रेम के आँसू भरते थे॥

चौ०—केकि कंठ द्युति श्यामल अंगा। †तड़ित विनिन्दक वसन सुरंगा॥
‡ब्याह विभूषण विविध बनाये। मंगलमय सब भाँति सुहाये॥

अर्थ—मोर के कंठ समान श्यामले अङ्ग की छवि थी, बिजली की निन्दा करने

× रामरूप नखशिख सुभग,—जनक पचीसी से—

चौबोला—चारु जनेऊ पीत वसन वैजंती माल श्याम तन में।
करकंकण अरु पहुँची पहिरे रतन जड़ित चूड़ा कर में॥
गरे हार गज मुक्तायुत भृगुचिन्ह लसै तिनके उर में।
कहँ मंडन श्रीपति मुकुट धरे हम देखे राम जनकपुर में॥

† तड़ित विनिंदक वसन सुरंगा,—वृहद्राग रत्नाकर से—

छपैया—जामा बन्यो जरतार सों सुन्दर लालहु बँद अरु जर्द किनारी।
झालरदार बन्यो पटुका अरु मोतिन की छवि जात बखानी॥
जैसी चाल चले गजराज कहै बलिहारी हैं मोद्र निहारी।
देखत नयनन ताक रही कुछ झाक झरोखन बाँके बिहारी॥

‡ ब्याह विभूषण विविध बनाये। मंगलमय सब भाँति सुहाये—जानकी मंगल से—

बरवा—ब्याह विभूषण भूषित भूषण भूषण।
विश्व विलोचन वनज विकासक पूषण॥
मध्य दरात विराजत अति मनुकुंडल।
मनहुँ मदन मारग [illegible]

धरके हृदय में विचार करो यह तो सीता रामचन्द्र जी का विवाह है (अर्थात् यहां की रचना लौकिक नहीं है) ॥

चौ०—जिन कर नाम लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नशाहीं ॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सियराम कहेउ कामरी ॥

अर्थ—कामदेव के शत्रु महादेव जी कहने लगे कि ये वही सीता राम हैं कि संसार में जिन का नाममात्र लेने से सम्पूर्ण बाधायें मिट जाती हैं और अर्थ, धर्म, काम मोक्ष चारों पदार्थ हाथ लग जाते हैं ॥

चौ०—इहि विधि शंभु सुरन्ह समझावा। *पुनि आगे वर वसह चलावा ॥
देवन्ह देखे दशरथ जाता। महामोद मन पुलकित गाता ॥

अर्थ—इस प्रकार शिव जी ने देवताओं को समझाया और फिर अपने उत्तम वाहन नांदिया को आगे चलाया, देवताओं ने दशरथ जी को परम आनन्द पूरित मन तथा रोमांचित शरीर देखा ॥

चौ०—साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरे करहिं ‡सुखसेवा ॥
सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपवर्ग सकल तनुधारी ॥

अर्थ—उन के साथ में साधुओं और ब्राह्मणों की समाजें ऐसी जान पड़ती थीं कि मानो 'सम्पूर्ण ' सुख ' स्वरूप धारण किये उन की सेवा कर रहे हों। सङ्ग ही में सुन्दर चारों पुत्र ऐसे शोभायमान थे मानो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारों अपवर्गों ने शरीर धारण कर लिये हों ॥

---

* पुनि आगे वर वसह चलावा—कुमार संभव में कविवर कालिदास जी ने इसको उतारी है—

श्लोक—चे खेलगामी तमुवाह वाहः, सशब्द चामीकर किंकिणीकः।
तटाभिघातादिव लग्न पंके, धुन्वन्मुहुः प्रोतघने विषाणे ॥

अर्थात् शिवजी का खिलाड़ी बैल आकाश मार्ग से उन्हें ले चला, उस समय उस के छोटी सोने की घंटावली बजती जाती थी और वह आकाश में बादलों को फाड़ता अपने सींगों को इस प्रकार बारम्बार कपाता था, जिस प्रकार नदी की करार को सींगों समय सींगों पर लगी हुई मिट्टी को सांड़ शिर हिलाकर गिराता जाता है ॥

‡ " सुख सेवा " का पाठान्तर " सुर सेवा " भी है जिसका अर्थ यह है कि देवगण रहे हों ॥

×जगमगत जीन जड़ावजोति सुमोति मणि माणिक लगे।
किंकिनि ललाम लगाम ललित विलोकि सुर नर मुनि ठगे॥

अर्थ—मानो कामदेव घोड़े का रूप धारण कर रामचन्द्र जी के हेतु बहुत शोभा देरहा हो। वह अपनी सुन्दर अवस्था, बल, रूप गुण और चाल से सम्पूर्ण संसार को मोहित कर रहा था। लगे हुए सुन्दर मोती, मणि और माणिक की ज्योति से जड़ाऊ जीन जगमगा रहा था। सुंदर घंटियों और मनोहर लगाम को देख कर देवता, मनुष्य और मुनि धोखा खा जाते थे॥

दोहा—प्रभुमनसहिं लवलीन मन, चलत वाजि छवि पाव।
भूषितउडुगन तड़ितघन, जनु वर वरहि *नचाव॥ ३१६॥

अर्थ—घोड़ा श्री रामचन्द्र जी के मन की लय में अपने मन को लीन कर के नाच रहा था सो इस प्रकार से सुशोभित हुआ था मानो तारागण और बिजली से शोभायमान मेघ उत्तम मोर को नचा रहा हो (यहां पर तारागण के स्थान में भूषण हैं, बिजली के स्थान में केशरिया बाना और मेघ के स्थान में श्री रामचन्द्रजी हैं तथा मोर के स्थान में घोड़ा है)॥

चौ०—जेहि वर वाजि राम असवारा। तेहि शारदहु न बरनै पारा॥
शंकर रामरूप अनुरागे। नयन पंचदश अति प्रिय लागे॥

अर्थ—जिस उत्तम घोड़े पर रामचन्द्र जी सवार थे उस की बड़ाई सरस्वती भी नहीं कर सकती थीं। शिवजी रामरूप पर इस प्रकार मोहित होगये कि उन को अपने पन्द्रह नेत्र बहुत प्यारे लगे (भाव यह कि शिवजी के पांच शिर हैं और प्रत्येक

× जगमगत जीन जड़ाव जोति सुमोति मणि माणिक लगे—रामनाथ प्रधान ग्रंथपचासी कृत—

जग वन्दन जेहि नाम उचारो रघुनन्दन को बाजी।
ताको गुण छवि कहँ कवन बरणों जेहि होत मन राजी॥
भूषित भूषण अंग अदूषण पूषण हय छवि साजी।
जोटिन लनियां गुथी सुमनियां पग पैजनियां बाजी॥

* जनु वर बरहि नचाव—रामचन्द्र भूषण से—

सवैया—चञ्चल चारु सुनें सब रंग में, होत जथा कर [illegible] समान है।
[illegible] में मोर पखा, [illegible] है।
[illegible] है।
[illegible] है।

वाले रँगीन वस्त्र थे। नानाप्रकार के मंगलीक सब प्रकार से मनोहर ब्याह के आभूषण धारण किये थे॥

चौ०—शरद विमल विधु वदन सुहावन। *नयन नवल राजीव लजावन॥
सकल अलौकिक सुंदरताई। कहि न जाइ मनहीं मन भाई॥

अर्थ—शरद ऋतु के निर्मल चन्द्रमा के समान मुख था और नये कमल को लज्जित करने वाले नेत्र थे। सम्पूर्ण अनोखी शोभा थी, मन में सुहावनी लगती थी परन्तु कहने में नहीं आती थी॥

चौ०—†बंधु मनोहर सोहहिं संगा। जात नचावत चपल तुरंगा॥
राजकुँअर वर वाजि नचावहिं। वंशप्रशंसक विरद सुनावहिं॥

अर्थ—साथ ही में मनभावने भाई सुशोभित थे जो चंचल घोड़ों को नचाते जाते थे। राजकुमार उत्तम घोड़ों को नचाते जाते थे और वंश की बड़ाई करने वाले प्रशंसा करते जाते थे॥

चौ०—जेहि तुरंग पर राम विराजे। गति विलोक खगनायक लाजे॥
कहि न जाइ सब भाँति सुहावा। वाजिवेष जनु काम बनावा॥

अर्थ—जिस घोड़े पर रामचन्द्र जी विराजमान थे उस की चाल को देख कर गरुड़ भी लज्जित होजाते थे। वह सभी प्रकार से ऐसा मनोहर था कि कहा नहीं जाता मानो घोड़े का रूप ही कामदेव ने धारण कर लिया हो॥

छन्द—जनु वाजिवेष बनाय मनसिज राम हित अति सोहई।
अपने सुवय बल रूप गुण गति सकल भुवन विमोहई॥

---

* नयन नवल राजीव लजावन—कवि विहारीलाल कृत नखसिख से—

छन्द—लाल लाल डोरे कंज दल द्युति तोरे लेत जग चित चोरे मनो मैन ही के ऐन हैं।
मीन छवि छीन मृगशावक अधीन खंजरीट बलहीन रवि चंद जिय चैन हैं॥
चकृत चकोर मन मुनिन के मोर श्याम रंग घन घोर यों विहारी सुख सैन हैं।
कटि दुख द्वंद फंद आनद के कंद वृंद रस के प्रबंद रामचंद्र जी के नैन हैं॥

† बंधु मनोहर सोहहिं संगा। जात नचावत चपल तुरंगा—

क०—बागो पीत फेंटा पीत पटुका पिछौरा पीत सोहै और पीत मन मोहै मौर पीत है।
अंगराग पीत वर भूषन अमोल पीत तून धनुबान औ कृपान म्यान पीत है॥
साजिन तुरंग पीत संग निज संगी पीत विपुल बराती पीत साज सब पीत है।
"रसिक विहारी" चारु दूलह विलोकि चारौ श्याम श्वेत हरित सुरंग भयो पीत है॥

।जसमाज दुहुँ दिशि दुंदुभी बाजहिं घनी।
न सुर हर्षि कहि जय जयति जय रघुकुल मनी॥
ते जानि बरात आवत, बाजने बहु बाजहीं।
ुआसिनि बोलि परिछन हेतु मंगल साजहीं॥

राज समाजों में बड़ा आनन्द भर गया और बहुत से नगाड़े ाता प्रसन्न होकर फूल बरसाते थे और कहते थे हे रघुकुल श्रेष्ठ! जय हो, जय हो! इस प्रकार बरात को आती हुई समझकर बहुत ा रानियों ने विवाहित ग्राम कन्याओं को बुलाकर आरती करने के स्तुयें एकत्र कीं॥

ज आरतीअनेक विधि, मंगल सकल सवाँरि।
ीं मुदित परिछन करन, गजगामिनि वरनारि॥ २१७॥

ाना प्रकार से आरती सँजोय कर तथा मंगलीक वस्तुयें सम्हाल कर न चालवाली रूपवती स्त्रियां आरती करने को आनन्द पूर्वक चलीं॥

ुवदनी मृगशावक लोचनि। सब निज छवि रति मान विमोचनि॥
ःहिरे बरन बरन बर चीरा। सकल विभूषण सजे शरीरा॥

ानी सुआसिनि बोलि परिछन हेतु मंगल साजहीं—श्री रामचन्द्र जी की अनुपम ुख कर स्त्रियां आपस में यों कह रहीं थीं कि—

—सखि लखन चलो नृप कुँवर भलो, मिथिलापति सदन सिया बनरो।
शिर मोट मुकुट कटि में पियरो, हँसि हेरि हरत हमरो हियरो॥
गल साजत है मोतियन गजरो, अनियारी अँखियन सोहत कजरो।
चित चाहत है उड़ि जाय मिलूं, "रघुराज" छाँड़ सगरो झगरो॥

१ पहिरे बरन बरन बर चीरा। सकल विभूषण सजे शरीरा—आल्हखंड में—
पहिर घांघरा घुर दखिण को तरे तरे जर्द किनारी लाग।
चोली पहिरे मखदरी की औ बँद तार कसी के लाग॥
पाय महावर जिनके सोहे अनवट ठुमकि ठुमकि रहि जायँ।
ठुमकि बाजने बिछिया पहिरे ऊपर नेवर की झनकार॥
कौल छोटि छई तय गुजरी की नीचे पायल की झनकार।
बीस मुँदरियां दसौं अँगुरियां ऊपर छल्ला लये दबाय॥
(गोरी गोरी)

शिर में तीन नेत्र हैं इस हेतु पंद्रह नेत्रों से रामरूप की शोभा दो नेत्रों वालों से मानो साढ़े सात गुणी देखते थे)

चौ०—‡हरिहित सहित राम जब जोहे। रमासमेत रमापति मोहे॥

अन्वय—रमा समेत रमापति (ने) जब हरि सहित राम हित से जोहे तो मोहे॥

अर्थ—लक्ष्मीपति विष्णु जी ने जब घोड़े समेत रामचन्द्र जी के रूप को प्रेम से देखा तो मोहित हुए (भाव यह कि हमारे ही रूपान्तर रामचन्द्र जी की इस समय घोड़े पर कैसी अनुपम छटा है)॥

चौ०—निरखि रामछवि विधि हरषाने। आठै नयन जानि पछताने॥
सुरसेनपउर बहुत उछाहू। विधि ते ड्योढ़ विलोचन लाहू॥

शब्दार्थ—सुरसेनप (सुर = देवता + सेन = सेना + प = रक्षा करना) = देवताओं की सेना के रक्षक, षड़ानन॥

अर्थ—ब्रह्मा भी रामचन्द्र जी के सौंदर्य को देख प्रसन्न हुए, परन्तु केवल आठ ही नेत्र होने से पछतावा करने लगे (कि कहां शिवजी के पन्द्रह नेत्र और कहां मेरे आठ) षड़ानन जी के हृदय में विशेष आनद हुआ कारण उन्हें ब्रह्मा से ड्योढ़े नेत्रों से देखने का लाभ हुआ (ब्रह्मा के चार मुख की आठ आँखें और षड़ानन के छः मुँह की बारह आंखें अर्थात् आठ ड्योढ़ बारह)॥

चौ०—रामहि चितव सुरेश सुजाना। गोतमशाप परमहित माना॥
देव सकल सुरपतिहिं सिहाहीं। आज पुरंदरसम कोउ नाहीं॥
मुदित देवगण रामहि देखी। नृपसमाज दुहुँ हर्ष विसेखी॥

अर्थ—रामचन्द्र जी को देख कर विचारवान् इन्द्र ने गौतम जी के शाप को बड़ा हितकारी माना। सम्पूर्ण देवता इन्द्र को सराहते थे कि इस समय इन्द्र के समान कोई नहीं है (जो हज़ार नेत्रों से रामरूप के दर्शन ले रहे हैं) रामचन्द्र जी को देखकर सब देवगण प्रसन्न हुए और दोनों राज समाजों में भी भारी आनन्द छागया॥

---

‡ हरि इस शब्द का अर्थ यहां पर "घोड़ा" लेना चाहिये। जैसा कि अन्वय और अर्थ देखने से भली भांति समझ में आ जाता है. प्रमाण के लिये अमरकोश का यह श्लोक है:—

श्लोक—यमानिलेन्द्र चन्द्रार्क विष्णु सिंहांशु वाजिषु।
शुकाहि कपि भेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु॥

अर्थात् यम, वायु इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, विष्णु, सिंह, किरण, "घोड़ा" तोता, सर्प, मेंढक इन तेरह पुल्लिंग शब्दों के अर्थ में "हरि" शब्द आता है और कपिल रंग का [illegible] तीनों लिंगों में आता है॥

द—अतिहर्ष राजसमाज दुहुँ दिशि दुंदुभी बाजहिं घनी।
वर्षहिं सुमन सुर हर्षि कहि जय जयति जय रघुकुल मनी॥
इहि भाँति जानि बरात आवत, बाजने बहु बाजहीं।
रानी *सुआसिनि बोलि परिछन हेतु मंगल साजहीं॥

अर्थ—दोनों राज समाजों में बड़ा आनन्द भर गया और बहुत से नगाड़े बजने लगे। देवता प्रसन्न होकर फूल बरसाते थे और कहते थे हे रघुकुल श्रेष्ठ! तुम्हारी जय हो! जय हो, जय हो! इस प्रकार बरात को आती हुई समझकर बहुत से बाजे बजने लगे रानियों ने विवाहित ग्राम कन्याओं को बुलाकर आरती करने के लिये मंगल वस्तुयें एकत्र कीं॥

दोहा—सजि आरतीअनेक विधि, मंगल सकल सवाँरि।
चलीं मुदित परिछन करन, गजगामिनि वरनारि॥ ३१७॥

अर्थ—नाना प्रकार से आरती सँजोय कर तथा मंगलीक वस्तुयें सम्हाल कर हाथी के समान चालवाली रूपवती स्त्रियां आरती करने को आनन्द पूर्वक चलीं॥

चौ०—विधुवदनी मृगशावक लोचनि। सब निज छवि रति मान विमोचनि॥
†पहिरे बरन बरन वर चीरा। सकल विभूषण सजे शरीरा॥

---

* रानी सुआसिनि बोलि परिछन हेतु मंगल साजहीं—श्री रामचन्द्र जी की अनुपम छटा को देख कर स्त्रियां आपस में यों कह रही थीं कि—

दादरा—सखि सावन चलो नृप कुँवर भलो, मिथिलापति सदन सिया बनरो।
शिर मोट मुकुट कटि में पियरो, हँसि हेरि हरत हमरो हियरो॥
गल साजत है मोतियन गजरो, अनियारी अँखियन, सोहत कजरो।
चित चाहत है उड़ि जाय मिलूं, "रघुराज" छाँड़ सबरो झगरो॥

† पहिरे बरन बरन वर ... प्रगीत—पाठान्तर है—
लाग।

शिर में तीन नेत्र हैं इस हेतु पंद्रह
से मानो साढ़े सात गुणी

चौ०—‡हरिहित

अन्वय—रमा स

अर्थ—लक्ष्मीपति वि

देखा तो मोहित हुए (भाव
घोड़े पर कैसी अनुपम छटा है

चौ०—निरखि रामछवि वि

सुरसेनपउर बहुत

शब्दार्थ—सुरसेनप (सुर = देवता
की सेना के रक्षक, षड़ानन ॥

अर्थ—ब्रह्मा भी रामचन्द्र जी के सौंद
नेत्र होने से पछतावा करने लगे (कि कहाँ शि
षड़ानन जी के हृदय में विशेष आनद हुआ
देखने का लाभ हुआ (ब्रह्मा के चार मुख की आ
की बारह आंखें अर्थात् आठ ड्योढ़ बारह) ॥

चौ०—रामहि चितव सुरेश सुजाना । गोतम
देव सकल सुरपतिहिं सिहाहीं । आज पु
मुदित देवगण रामहि देखी । नृपसमाज

अर्थ—रामचन्द्र जी को देख कर विचारवान् इन्द्र ने
बड़ा हितकारी माना । सम्पूर्ण देवता इन्द्र को सराहते थे कि इस
कोई नहीं है (जो हज़ार नेत्रों से रामरूप के दर्शन ले रहे हैं)
देखकर सब देवगण प्रसन्न हुए और दोनों राज समाजों में भी भारी आ

‡ हरि इस शब्द का अर्थ यहां पर "घोड़ा" लेना चाहिये । जैसा कि
देखने से भली भांति समझ में आ जाता है. प्रमाण के लिये अमरकोश का यह

श्लोक—यमानिलेन्द्र चन्द्रार्क विष्णु
शुकादि कपि भेकेषु

अर्थात् यम, वायु इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य
बन्दर, मेंडक इन तेरह पुल्लिंग शब्दों के

अर्थ—सम्पूर्ण अंगों में मंगलीक द्रव्य लगाये हुए इस प्रकार से गातीं थीं कि कोयल भी लज्जित होती थी। हाथ के आभूषण, कमर के आभूषण तथा पैर के आभूषण इस प्रकार से छमछमाते थे कि उनकी चाल को देखकर कामदेवरूपी हाथी लज्जित होते थे ॥

चौ०–बाजहिं बाजन विविधप्रकारा। नभ अरु नगर सुमंगल चारा ॥
×शची शारदा रमा भवानी। जे सुरतिय शुचि सहज सयानी ॥
कपटनारिबरवेष बनाई। मिलीं सकल रनवासहिं जाई ॥
करहिं† गान कल मंगलबानी। हर्षविवश सब काहु न जानी ॥

अर्थ—नाना प्रकार के बाजे बजरहे थे और आकाश तथा जनकपुर में सुन्दर मंगलाचार होरहे थे। इंद्रानी, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती और भी जो देवताओं की स्त्रियां सरल स्वभाव वालीं और चतुर थीं। वे सब स्त्रियों का बनावटी रूप धारण करके रनवास में जामिलीं। सुरीली वाणी से मंगल गीत गाने लगीं परन्तु आनन्द के मारे किसी ने उन्हें न पहिचाना ॥

पीतांबर सोहै गात मंद मंद मुसकरात,।
जनकभवन चले जात गति गयंद की है री ॥
"कान्हर" करुणानिधान मेरे सखि जिवन प्रान।
जानकी झरोखे बैठी राम को मुख जोहै री ॥

× शची शारदा रमा भवानी। जे सुरतिय शुचि सहज सयानी—जनक पचीसी से—

चौबोला—नागसुता गंधर्वसुता अरु यक्षसुता देखी तिन में।
राजबधू अरु देवबधूटी मेरुबधू जुरि मंडप में॥
कोकिल बानी गावत रानी बहु सुख मान भरी तिन में।
कहैं मंडन श्रीपति मुकुट धरे हम देखे राम जनक पुर में॥

† करहिं गान कल मंगलबानी—राग भूपाली कल्यान में—

देख सखी शिर पाग राम के कैसी सोही है।
मरकत गिरि पै चन्द्र चाह चपला जनु मोही है॥
बड़ि बड़ि भुजा विशाल विभूषण लख तृण तोरी है।
सुन्दर नयन विशाल वदन पर हँसी थोरी है॥
उर मोतियन की माल कान कल कुंडल जोरी है।
नाभि गँभीर उदर त्रिवली छवि शारद बौरी है॥
पीताम्बर की बदनी बाड़े पीत पिछौरी है।
"राम गुलाम" अनूप रूप छवि मति मेरि थोरी है॥

अर्थ—चन्द्रमा के समान मुखवालीं, मृगछौना सरीखे नैनावालीं सब स्त्रियां अपनी सुन्दरता से रति के घमंड को घटाने वालीं अनेक रंग के उत्तम वस्त्र पहिरे हुए और शरीरों पर सब गहने धारण किये हुए थीं॥

चौ०—सकल सुमंगल अंग बनाये। ‡करहिं गान कलकंठ लजाये॥
कंकनकिंकिनि नूपुर बाजहिं। चाल बिलोकि कामगज लाजहिं॥

गोरी गोरी बहियाँ हरी हरी चुरियां बिच बंगलियां लैं लौटारि।
कंकन पहिरे कर सोने के तिन की शोभा कही ना जाय॥
आगे अगेला पाछे पछेला कानन करनफूल हहराय।
आठ गांठ की टाड़ैं पहिरे बाजूबँद झूमि झूमि रहि जायँ॥
जड़ी बंदियां हैं माथे पर मानो नाग रहे मन्नाय।
टिकुली दुरवा दै माथे पर तिहरी पांति कांकरन क्यार॥
मांग भराई गजमोतिन से ऊपर सेंदुर लयो लगाय।
गुहो चुटीला है बारन को पटियां लौटि लौटि रहि जायँ॥
अतर फुलेल परो बारन्ह में लपटैं उठैं सुगंधन क्यार।
दुलरी तिलरी गल में बाँधे ऊपर चम्पकली को हार।
हरवा डारे हैं मोतिन को छाती में चमकि चमकि रहि जाय॥
बड़ि बड़ि आँखिन नन्हो कजरा औ सुरमा की रेख लगाय।
नथुनी को लटकन कहर करत है काजर भौंरा सो मन्नाय॥
ओढ़ चूनरी बुँदकन वाली मानो नखतन को उजियार।
साथ केंचुली की चादरि है सो माथे से दई उढ़ाय॥
सजि के सखियां जब ठाढ़ी भईं मानो बिजली केर कतार।

‡ करहिं गान कल कंठ लजाये—

राग बिलावल—मोर मुकुट शीस धरे मोतियन की माल गरे,
　　कानन कुंडल कर धनुष बाण सोहे री।
　　मन्ज नयन अनियारे अति ही लगत प्यारे,
　　दशरथ दुलारे सबही को मन मोहे री॥
　　सुन्दर नासा कपोल, अलक झलक मधुर बोल,
　　भाल तिलक राजत बांकी भौंहें री।
　　संचित भुज अति विशाल भूषण जटित जाल,
　　अंग अंग छवि तरंग कोटि मदन मोहे री॥

(पीताम्बर)

अर्थ—सम्पूर्ण अंगों में मंगलीक द्रव्य लगाये हुए इस प्रकार से गाती थीं कि कोयल भी लज्जित होती थी। हाथ के आभूषण, कमर के आभूषण तथा पैर के आभूषण इस प्रकार से छमछमाते थे कि उनकी चाल को देखकर कामदेवरूपी हाथी लज्जित होते थे॥

चौ०—बाजहिं बाजन विविधप्रकारा। नभ अरु नगर सुमंगल चारा॥
×शची शारदा रमा भवानी। जे सुरतिय शुचि सहज सयानी॥
कपटनारिवरवेप बनाई। मिलीं सकल रनवासहिं जाई॥
करहिं† गान कल मंगलवानी। हर्षविवश सब काहु न जानी॥

अर्थ—नाना प्रकार के बाजे बजरहे थे और आकाश तथा जनकपुर में सुन्दर मंगलाचार होरहे थे। इंद्रानी, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती और भी जो देवताओं की स्त्रियां सरल स्वभाव वालीं और चतुर थीं। वे सब स्त्रियों का बनावटी रूप धारण करके रनवास में जामिलीं। सुरीली वाणी से मंगल गीत गाने लगीं परन्तु आनन्द के मारे किसी ने उन्हें न पहिचाना॥

पीतांबर सोहै गात मंद मंद मुसकरात,।
जनकभवन चले जात गति गयंद की है री॥
"कान्हर" करुणानिधान मेरे सखि जिवन प्रान।
जानकी झरोखे बैठी राम को मुख जोहै री॥

× शची शारदा रमा भवानी। जे सुरतिय शुचि सहज सयानी—जनक पचीसी से—
चौबोला—नागसुता गंधर्वसुता अरु यक्षसुता देखी तिन में।
राजवधू अरु देववधूटी मेरुवधू जुरि मंडप में॥
कोकिल बानी गावत रानी बहु सुख मान भरी तिन में।
कहैं मंडन श्रीपति मुकुट धरे हम देखे राम जनक पुर में॥

† करहिं गान कल मंगलवानी—राग भूपाली कल्यान में—
देख सखी शिर पाग राम के कैसो सोही है।
मरकत गिरि पै चन्द्र चाह चपला जनु मोही है॥
बड़ि बड़ि भुजा विशाल विभूषण लख तृण तोरी है।
सुन्दर नयन विशाल बदन पर हँसी थोरी है॥
उर मोतियन की माल कान कल कुंडल जोरी है।
नाभि गँभीर उदर त्रिवली लख शारद बोरी है॥
पीताम्बर की बदनी बाढ़े पीत पिछौरी है।
"राम गुलाम" अनूप रूप लख मति मेरि थोरी है॥

छंद—को जान केहि आनंदवश सब ब्रह्म वर परिछन चलीं।
कलगान मधुर निशान बरषहिं सुमन सुर शोभा भलीं॥
आनंदकंद विलोकि दूलह सकल हिय हर्षित भईं।
अंभोजअंबकअंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छईं॥

अर्थ—आनन्द के मारे कौन किसे पहिचानता था, सब की सब दूलहरूपी परमात्मा की आरती उतारने को चलीं। उत्तम गीत, धीमे धीमे बाजे और देवताओं का फूल बरसाना इन सब की छटा निराली थी। आनन्द के भंडार दूलह को देखकर सब की सब हृदय से आनन्दित होउठीं। यहां तक कि उनके कमलस्वरूपी नेत्रों में जल भरआया और सुन्दर शरीरों पर रोम खड़े होगये॥

दोहा—जो सुख भा सियमातुमन, देखि राम वर वेष।
सो न सकहिं कहि कल्पशत, सहस शारदा शेष॥ ३१८॥

अर्थ—श्री रामचन्द्र जी की उत्तम छवि को देखकर सीता की माता को जो सुख हुआ वह सैकड़ों कल्प तक हज़ारों सरस्वती और शेष नाग जी भी नहीं कह सके॥

चौ०—नयन नीर हटि मंगल जानी। परिछन करहिं मुदित मन रानी॥
वेदविहित अरु कुलआचारू। कीन्ह भली विधि सब व्यवहारू॥

अर्थ—मंगल का समय जान नेत्रों के आंसुओं को रोक रानियां प्रसन्न चित्त से आरती उतारने लगीं। वेद के अनुसार, कुल की रीति के प्रमाण से सभी नेग ठीक ठीक किये गये॥

चौ०—*पंचशब्द सुनि मंगल गाना। पट पांवड़े परहिं विधि नाना॥
करि आरती अर्घ तिन दीन्हा। राम गमन मंडप तब कीन्हा॥

* [illegible]

शब्दार्थ—पंचशब्द = जयध्वनि, वन्दीध्वनि, वेदध्वनि, वाद्यध्वनि और निशानध्वनि ॥

अर्थ—पंचशब्द और मंगलमय गीत सुनकर नाना प्रकार के वस्त्रों के पाँवड़े पड़ने लगे। उन्हों ने आरती करके अर्घ्य दिया तब रामचन्द्र जी मंडप में गये ॥

चौ०—दशरथ सहित समाज विराजे। विभव विलोकि लोकपति लाजे ॥
समय समय सुर वर्षहिं फूला। शांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला ॥

अर्थ—दशरथ जी अपनी ओर की मंडली सहित बैठे थे, उनके ऐश्वर्य को देखकर लोकपाल (इन्द्र, कुबेर आदि) लज्जित होते थे। देवता सुअवसर पर फूल बरसा देते थे और ब्राह्मण प्रसन्न हो शांति पाठ पढ़ते थे ॥

चौ०—नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपन पर कछु सुनै न कोई ॥
इहि विधि राम मंडपहिं आये। अर्घ देइ आसन बैठाये ॥

अर्थ—आकाश और जनकपुर में धूम धाम मचरही थी कोई भी अपना विराना (शब्द) न सुन सक्ता था। इस प्रकार रामचन्द्र जी मंडप में पधारे, उन्हें अर्घ्य देकर आसन पर बिठलाया ॥

छन्द—बैठारि आसन आरती करि निरखि वर सुख पावहीं।
मणि वसन भूषण भूरि वारहिं नारि† मंगल गावहीं ॥
ब्रह्मादि सुरवर विप्रवेष बनाइ कौतुक देखहीं।
अवलोकि रघुकुलकमलरविछवि सुफल जीवन लेखहीं ॥

अर्थ—आसन पर बिठलाकर आरती की और दूलह को देखकर आनन्द मनाने लगीं। बहुत से मणि, कपड़े तथा गहने निछावर किये; और स्त्रियां मंगल

दोनों पक्ष मिले शुभ अवसर प्रेम पुष्प बरसाये हो ॥
वैदिक अरु कुलरीति सबहि विधि "रामचन्द्र" पद गाये हो ॥

† नारि मंगल गावहीं—

परज—किशोरी प्यारो रँग बनरो।
मिथिलापुर की नर नारिन को मोहि लियो मन रो ॥
खटपट पाग केसरिया बागो सेहरो मोतिन रो।
भगत उधारन असुर सँहारन कर कंकन पन रो ॥
दशरथ जी को कुँवर लाड़िलो बन्धु भरत लछिमन रो।
"कान्हर" दूलह श्री रघुनन्दन जीवन संतन रो ॥

और नाचते थे। ब्रह्मा आदि बड़े बड़े देवता ब्राह्मणों के रूप धारण कर देख रहे थे और रघुकुल कुमुद को चंद्र के समान रामचन्द्र जी की देखकर अपने जीवन को सफल समझते थे॥

दोहा—मागध सूत भाट नट, रामनिछावरि पाय।
मुदित असीसहिं नाय शिर, हर्ष न हृदय समाय॥ ३

अर्थ—मागध, सूत, भाट और नट लोग रामचन्द्र जी की निछावर पाकर प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते थे और उनके हृदय में आनन्द नहीं समाता।

चौ०—मिले जनक दशरथ अतिप्रीती। करि वैदिक लौकिक सब रीती॥
मिलत महा दोउ राज विराजे। उपमा खोजि खोजि कवि लाजे॥

अर्थ—वेद के अनुसार तथा लोकाचार की सब रीतियां करके जनक दशरथ महाराज बड़े प्रेम से मिले। दोनों महाराजाओं के मिलने की उपमा के लिए उपमा खोजते खोजते कवि लोग लज्जित होगये॥

चौ०—लही न कतहुँ हारि हिय मानी। *इन सम ये उपमा उर आनी॥
समधी देखि देव अनुरागे। सुमन वरषि यश गावन लागे॥

अर्थ—जब कोई उपमा कहीं न पाई तो हृदय में हार मानकर ये उपमा मन विचारी कि इनके समान ये ही हैं (यही उपमाओं का भेद अनन्वय अलंकार है देख अयोध्या कांड की टिप्पणी)। समधियों को देखकर देवगणों को ऐसा प्रेम हुआ कि वे फूल बरसाकर उनका यश वर्णन करने लगे॥

चौ०—जग विरंचि उपजावा जब ते। देखे सुने व्याह बहु तब ते॥
सकल भाँति सम साज समाजू। सम समधी देखे हम आजू॥

*टिप्पणी—यहां पर कवि जी अनन्वय अलंकार को सूचित करते ... अनुपमेय वस्तु की उपमा उसी से की जाती है, ... नहीं। सो यों कि—

...।

...॥

...।

कुम.... ॥ शोभा० ॥

शब्दार्थ—समधी (सम = एक समान + धी = बुद्धि) = तुल्य बुद्धि वाले ॥

अर्थ—ब्रह्मा ने जब से जगत को उत्पन्न किया है तब से हमने बहुत से विवाह देखे और सुने हैं। परन्तु सभी प्रकार से ऐश्वर्य और भीड़भाड़ में एकही समान बराबरी के समधी हमने आजही देखे (अर्थात् गुण ऐश्वर्य, शरीरसंपत्ति, राज्य विस्तार, बुद्धि आदि में सम ऐसे समधी आज तक किसी ने न देखे थे और न सुने थे जैसे कि दशरथ जी और जनक जी हैं) ॥

चौ०—देवगिरा सुनि सुंदर सांची । प्रीति अलौकिक दुहुँ दिशि माँची॥
देत पाँवड़े अर्घ सुहाये । सादर जनक मंडपहिं ल्याये ॥

शब्दार्थ—माँची = फैल गई ॥

अर्थ—देवताओं के मनोहर और सच्चे वचनों को सुनकर दोनों ओर अद्भुत प्रेम बढ़गया। अर्घ्य देकर सुन्दर पांवड़े डालते हुए आदर सहित (दशरथ जी को) जनक राज मंडप में लिवालाये ॥

छन्द—मंडप विलोकि विचित्ररचना रुचिरता मुनि मन हरे ।
निजपाणि जनक सुजान सब कहँ आनि सिंहासन धरे ॥
कुलइष्टसरिस वशिष्ट पूजे विनय करि आशिष लही ।
कौशिकहिं पूजत परम प्रीति कि रीति तो न परै कही ॥

अर्थ—मंडप की अनोखी बनावट और मनोहरता देखकर (वशिष्ठ विश्वामित्र आदिक) मुनियों के मन मोहित हो गये और ज्ञानवान् जनक राज ने अपने ही हाथों से सब के लिये सिंहासन लाकर रक्खे। फिर वशिष्ठ मुनि जी को अपने कुल के इष्टदेव के समान पूजा करके विनती की और उन से आशीर्वाद पाया तथा विश्वामित्र जी का पूजन करते समय जो भारी प्रेम का बर्ताव हुआ सो तो कहने ही में नहीं आता ॥

दोहा—‡वामदेव आदिक ऋषय, पूजे मुदित महीस ।
दिये दिव्य आसन सबहिं, सब सन लही अशीस ॥ ३२० ॥

---

‡ वामदेव आदिक ऋषय—कुंडलिया रामायण में ऋषियों के नाम यों वर्णन किये हैं-

कुंडलिया—मुनि वशिष्ठ अरु सतानंद भरद्वाज जाबालि ।
कवि अगस्त्य मुद्गल ऋषि कश्यप मुनि नारदादि ।
वरदव मुनि तपराशि देवऋषि सबक [illegible] ।
कौशिक अरु चिरजीव लोमश [illegible] । ([illegible])

अर्थ—फिर राजा ने प्रसन्न चित्त से वामदेव आदि सब ऋषियों को उत्तम आसन दे पूजा की और सब से आशीर्वाद पाया ॥

चौ०—बहुरि कीन्ह कोशलपति पूजा। जानि ईशसम भाव न दूजा॥
कीन्हि जोरि कर विनय बड़ाई। कहि निज भाग्य विभव बहुताई॥

अर्थ—फिर कोशलाधीश महाराज दशरथ जी का ईश्वर के समान पूजन किया कुछ भेद भाव नहीं रक्खा। हाथ जोड़कर विनयपूर्वक बड़ाई की और फिर बहुत कुछ अपने भाग्य की भी (इनके नातेसंबंध होने से) प्रशंसा की ॥

चौ०—पूजे भूपति सकल बराती। समधीसम सादर सब भाँती॥
आसन उचित दिये सब काहू। कहौं कहा मुख एक उछाहू॥

अर्थ—फिर जनक जी ने सम्पूर्ण बरातियों का भी सब प्रकार समधी के समान आदर सहित सन्मान किया और सब लोगों को यथा योग्य आसन दिये, उस आनंद को मैं अपने एक मुँह से कैसे वर्णन कर सक्ता हूं ॥

चौ०—सकल बरात जनक सनमानी। दान मान विनती बर बानी॥

अर्थ—जनक जी ने सम्पूर्ण बरात वालों को धन, बड़ाई विनती और श्रेष्ठ वचनों से सन्मान किया ॥

चौ०—विधिहरिहरदिशिपतिदिनराऊ। जे जानहिं रघुवीरप्रभाऊ॥
कपटविप्रवरवेष बनाये। कौतुक देखहिं अति सचुपाये॥
†पूजे जनक देवसम जाने। दिये सुआसन विन पहिचाने॥

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, दिग्पाल और सूर्य जो रामचंद्र जी की महिमा जानते थे। वे उत्तम ब्राह्मणों का बनावटी भेष बनाये बहुत ही सुखपाय तमाशा देख रहे थे। जनक जी ने उन्हें भी देवताओं के समान आदर दिया और बिना पहिचाने ही उन्हें बैठने को सुन्दर आसन दिये ॥

रामचन्द्र कौशिक सहित [illegible] लखन [illegible]।
[illegible] [illegible] मुनि [illegible] [illegible] [illegible]॥
† पूजे जनक देवसम जाने—जनक जी ने [illegible] [illegible] का [illegible] कर दिया॥

दोहा—ब्रह्मा [illegible], [illegible] [illegible]।
[illegible]

छन्द—पहिचान को केहि जान सबहि, अपान सुधि भोरी भई ।
आनंदकंद बिलोकि दूलह, उभय दिशि आनँद मई ॥
+सुर लखे राम सुजान पूजे, मानसिक आसन दिये ।
अवलोकि शीलस्वभाव प्रभुको, विबुधमन प्रमुदित भये ॥

अर्थ—कौन किसे जाने ? और कौन किसे पहिचाने ? क्योंकि सब को अपनी ही सुध भूल गई थी । आनंद के भंडार दूलह को देखकर दोनों ओर आनंद भर गया था । ज्ञानी रामचंद्र जी ने देवताओं को लख लिया तो उन्हें मानसिक आसन दे मानसिक ही पूजन किया । ऐसा शील स्वभाव रामचंद्र जी का देखकर सब देवता मन में प्रसन्न हुए ॥

दोहा—* रामचंद्रमुखचंद्रछवि, लोचन चारुचकोर ।
करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोद न थोर ॥ ३२१ ॥

अर्थ—रामचंद्र जी के मुख की चंद्र समान शोभा को सब लोगों के सुंदर चकोररूपी नेत्र आदर सहित निहार रहे थे (उस समय का) प्रेम और आनन्द कम नहीं था (अर्थात् बड़ा आनन्द था) ॥

चौ०—समय बिलोकि वशिष्ठ बुलाये । सादर सतानंद सुनि आये ॥
बेगि कुँअरि अब आनहु जाई । चले मुदित मुनि आयसु पाई ॥

× सुर लखे राम सुजान पूजे, मानसिक आसन दिये—मानसिक पूजन व आसन के विषय में देखो टि० पृ० २४५ पूर्वार्द्ध [शिव विवाह]

* रामचन्द्र मुखचन्द्र छवि, लोचन चारु चकोर ... ... प्रेम प्रमोद न थोर—
राग श्याम कल्याण—कुँवर दशरथ के रंग भरे ।

सुन्दर सुख मन्दर अन्दर आन अरे ॥
[illegible]रगिया पेंच धरे ।
[illegible]रे मन के बीच परे ॥
[illegible]रे ।
[illegible]ल मन मोल लिये हमरे ॥
माल गरे ।
[illegible] रैन रैन दिन मन ते नाहिं टरे ॥
[illegible] रत्न जरे
मन हरने [illegible] राज दवर ॥

अर्थ—लग्न का समय जान वशिष्ठ जी के बुलावे को सुनकर सतानंद जी आगये। (वशिष्ठ जी ने कहा कि) अब जल्दी से राजकुमारी को लेआओ वे मुनि जी की आज्ञा सुनकर प्रसन्न चित्त होते हुए चले॥

चौ०—रानी सुनि उपरोहितबानी। प्रमुदित सखिन समेत सयानी॥
विप्रवधू कुलवृद्ध बुलाई। ‡करि कुलरीति सुमंगल गाई॥

अर्थ—सतानंद जी के वचन सुनकर चतुर रानी जी सखियों समेत प्रसन्न हुईं। फिर ब्राह्मणियों और कुटुम्ब की जेठी सयानी स्त्रियों को बुलाकर कुलाचार करके मंगलीक गीत गाये॥

चौ०—नारिवेष जे सुरबरबामा। सकल सुभाय सुंदरी श्यामा॥
तिनहिं देखि सुख पावहिं नारी। बिन पहिचान प्रान ते प्यारी॥

अर्थ—देवताओं की सुंदर स्त्रियां जो नारीरूप धारण किये थीं और जो सब की सब स्वभाव ही से रूपवती और षोड़शी थीं। उन्हें देख स्त्रियां प्रसन्न होती थीं क्योंकि वे अनचिन्हारी होने पर भी प्राणों के समान प्यारी थीं॥

चौ०—बार बार सनमानहिं रानी। उमा रमा शारद सम जानी॥
×सीय सँवारि समाज बनाई। मुदित मंडपहिं चलीं लिवाई॥

---

‡ करि कुलरीति सुमंगल गाई—

चेती गौरी—रघुवंशी दूलहा नवल बना।

सीस सेहरो गज मोतियन को बिच बिच सोहत अधिक घना॥
चौदह भुवन भामिनी गावत मंगल बाजे बजत घना।
ब्याह बधाइ राम सीता की सुनि सब हरषे संत जना॥
[illegible] नृप ब्याहन आये राय जनक के मंडप तना।
[illegible]

× सीय सँवारि समाज बनाई। मुदित मंडपहिं चलीं लिवाई—वाल्मीकीय रामायण के [illegible]

[illegible]

अर्थ—रानी उन्हें पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती के समान जान उन का सन्मान ार करती थीं। (सखियां) सीता जी का शृङ्गार कर स्त्रियों की समाज बनाकर द पूर्वक उन्हें मंडप में लिवा ले चलीं ॥

ं—चलि ल्याइ सीतहि सखी सादर सजि सुमंगल भामिनी।
*नवसप्त साजे सुंदरी सब मत्तकुंजरगामिनी ॥
†कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकन तालगति बर बाजहीं ॥

अर्थ—सखियां और स्त्रियां सम्पूर्ण मंगल के साज सजकर सीता जी को लिवा ले ; वे रूपवती, सोलह शृङ्गार किये हुए सब की सब मस्त हाथी की सी चाल ल रहीं थीं। उन के सुरीले गीतों को सुनकर मुनियों के ध्यान उचट जाते थे मतवाली कोकिला लजाती थी। तथा उन के पायजेब, बिछिया और सुन्दर ों की ध्वनि ताल के अनुसार निकलती थी ॥

दो०—कंठा भरण सुकण्ठ धर, पदक हार छवि देत।
कनक कंचुकी उर धरी, झिलमिलात तन हेत ॥
चौ०—भुज भूषण कंकण कर सोहे। चूरी चमक कमल कर मोहे ॥
कटि किंकिणी पाय बिच नूपुर। कलरव करत धरत जब भूपर ॥
चन्दराग सब अङ्ग लगाये। सुभग सुरङ्ग बसन पहिराये ॥
सिय शृङ्गार कहे को गाई। जगतमातु शोभा अधिकाई ॥

* नवसप्त (९+७)=१६ शृङ्गार। जो नीचे कहे प्रमाण हैं—
दोहा—अंग शुची मज्जन बसन मांग महावर केश।
तिलक भाल तिल चिबुक में भूषण मेहदी वेश ॥
मिस्सी काजल अर्गजा बीरी और सुगंध।
पुष्पकली युत होइ कर तब नवसप्त निबंध

† कलगान सुनि मुनि—प्रेम पीयूष धारा से—
दादरा—छबन लगी मैं ललकि लखी छबि।
ब्याह साज अति अंगन राजे सिर सुन्दर मौरी की न्यारी छबि ॥
बोरी कलब गुही लटकन है, वारौं [illegible] की देखी छबि।
मोदविलास [illegible], बरबस सिय [illegible] छबि ॥

दोहा—×सोहति वनितावृंद महँ, सहज सुहावनि सीय।
छवि ललनागण मध्य जनु, सुखमातिय कमनीय॥ ३२२॥

अर्थ—स्त्रियों के झुंड में स्वभाव ही से रूपवती सीता जी इस प्रकार सुशोभित थीं कि मानो छविरूपी सुन्दर स्त्रियों के बीच में बहुत ही सुंदर शोभा विराजमान हो॥

चौ०—‡सिय सुन्दरता वरनि न जाई। लघुमति बहुत मनोहरताई॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूपराशि सब भांति पुनीता॥

अर्थ—सीता जी की शोभा का वर्णन नहीं हो सक्ता था क्योंकि उन की सुन्दरता बहुत और मेरी मति थोड़ी है। जब बरातियों ने सब प्रकार से शुद्ध और बहुत रूपवती सीता जी को आते देखा॥

चौ०—सबहि मन कीन्ह प्रणामा। देखि राम भये पूरणकामा॥
हरषे दशरथ सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनँद जेता॥

अर्थ—प्रायः सब ही ने मन ही मन वंदना की और रामचंद्र जी तो उन को देखकर तृप्त हो गये। पुत्रों समेत दशरथ जी प्रसन्न हुए, उन के हृदय में जितना आनन्द था वह कहने में नहीं आता॥

× सोहति वनितावृंद महँ, सहज सुहावनि सीय—

क०—कंचन समान गात सहज सुहात फेरि दीपति दिखात दूनी मंजन निखर पै।
" रसिक विहारी " सजे सकल सिंगार चारु शोभा है अपार हेम बिंदु के चिखर पै॥
मंजु मणि मौरी लसै जनककिशोरी शीस लगत सुहाई आई उपमा निखर पै।
मानो रस राज रघुराज मन जीति बाँधो विजय पताक लै सुमेरु के शिखर पै॥

और भी—

क०—जाके अवदात फल कुन्दन ते गात आंगे नेक हू न दीपति है दीपति चमेली की।
मुख सुखमा की कहूँ उपमा न पाऊं जासु पायन की लाली कंज लालिमा दुयेली की॥
दीपति मसाल सी है बाल "हनुमान" जासों ह्वै रही विशाल शोभा और ही हवेली की।
संग में सहेली सबै सोहनी नवेली तऊ राजति अकेली छटा छूटी अलबेली की॥

‡ सिय सुन्दरता वरनि न जाई—प्रेम पीयूष धारा से—

ठुमरी—गोरे से बदन पर श्याम बिंदुलिया।

मानहुँ ससि दूना पंकज पै, बैठो है आय भगै छवि अलिया॥
ता पर कांत नील सारी तन, चमकत जनु घन माँझ बिजुलिया।
"मोहनि" पिय मन आइ फँस्यो है, लखि सिय की मुसक्यान रँगिलिया॥

चौ०—सुर प्रणाम करि वर्षहिं फूला। मुनि असीस ध्वनि मंगलमूला॥
गाननिशानकोलाहल भारी। प्रेमप्रमोद मगन नरनारी॥

अर्थ—देवता प्रणाम कर फूल बरसाने लगे और मुनिगण मंगलीक आशीर्वाद के वचन कहने लगे। गाने और बजाने की बड़ी धूम धाम थी तथा जनकपुर के स्त्री पुरुष प्रेम में मग्न थे॥

चौ०—इहि विधि सीय मंडपहि आई। प्रमुदित शान्ति पढ़हिं मुनिराई॥
तेहि अवसर कर विधि व्यवहारू। दुहुँ कुलगुरु सब कीन्ह अचारू॥

अर्थ—इस प्रकार सीता जी मंडप में सिधारीं, मुनि लोग हर्षपूर्वक शांति पाठ पढ़ने लगे। उसी समय वशिष्ठ जी और सतानंद जी दोनों ओर के कुलगुरुओं ने व्यवहार की पद्धति करके सब नेग चार किये॥

छन्द—आचार करि गुरु गौरि * गनपति मुदित विप्र पुजावहीं।
†सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अतिसुख पावहीं॥
मधपर्क मंगलद्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महँ चहहिं॥
भरि कनककोपर कलश सो सब लिये परिचारक रहहिं॥

अर्थ—दोनों कुलगुरुओं ने कुलाचार करवाया और ब्राह्मण लोग प्रसन्न मन से गौरी और गणेश जी का पूजन करवाने लगे। देवता साक्षात् दिखाई देकर पूजा लेते थे और बहुत ही प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते थे। मधुपर्क आदि मंगल की वस्तुयें जो जिस समय मुनि जी अपने मन में विचारते थे, वे ही सब वस्तुयें सोने के थार और घड़ों में भरे हुए सब सेवक लिये खड़े रहते थे॥

---

* गनपति—

श्लोक—विनायकं महत्पुण्यं सर्व विघ्न विनाशनम्।
लंबोदरं त्रिनेत्रं च, गणनाथं नमाम्यहम्॥

† सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुख पावहीं—कुंडलिया रामायण से—

कुंडलिया—सूरज कुलगति सब कहैं पावक आहुति लेय।
गणपति कर पूजा करैं विधि विवाह कहि देय॥
विधि विवाह कहि देय चतुर पुनि शेष महेशा।
सुरपति सुरगण सहित मगन हिय प्रगट रमेशा॥
प्रगट रमेश सुरेश द्विज सब सर्वदि आनंद लहैं।
विप्र वेद वंदन पढ़ैं सूरज कुलगति सब कहैं॥

दोहा—×सोहति वनितावृंद महँ, सहज सुहावनि सीय।
छवि ललनागण मध्य जनु, सुखमातिय कमनीय॥ ३२२॥

अर्थ—स्त्रियों के झुंड में स्वभाव ही से रूपवती सीता जी इस प्रकार सुशोभित थीं कि मानो छविरूपी सुन्दर स्त्रियों के बीच में बहुत ही सुंदर शोभा विराजमान हो॥

चौ०—‡सिय सुन्दरता बरनि न जाई। लघुमति बहुत मनोहरताई॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूपराशि सब भांति पुनीता॥

अर्थ—सीता जी की शोभा का वर्णन नहीं हो सक्ता था क्योंकि उन की सुन्दरता बहुत और मेरी मति थोड़ी है। जब बरातियों ने सब प्रकार से शुद्ध और बहुत रूपवती सीता जी को आते देखा॥

चौ०—सबहि मन कीन्ह प्रणामा। देखि राम भये पूरणकामा॥
हरषे दशरथ सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनँद जेता॥

अर्थ—प्रायः सब ही ने मन ही मन वंदना की और रामचंद्र जी तो उन को देखकर तृप्त हो गये। पुत्रों समेत दशरथ जी प्रसन्न हुए, उन के हृदय में जितना आनन्द था वह कहने में नहीं आता॥

× सोहति वनितावृंद महँ, सहज सुहावनि सीय—

क०—कंचन समान गात सहज सुहात फेरि दीपति दिखात दूनी मंजन ति
" रसिक बिहारी " सजे सकल सिंगार चारु शोभा है अपार हेम बिंदु के
मंजु मणि मौरी लसै जनकिशोरी शीस लगत सुहाई आई उपमा
मानों रस राज रघुराज मन जीति बाँधो विजय पताक ही सुमेरु
और भी—

क०—आछे अवदात फल कुन्दन ते गात आगे
सुप सुखमा की कहूँ उपमा न ...
दीपति मसाल सी है बाल ...
संग में सहेली सबै सोहती ...

‡ सिय सुन्दरता बरनि न जा...
दुमरी—गोरे से बदन पर ...
मानहुँ ...
[illegible]
[illegible]

पटरानी) सुनयना जी इस प्रकार सुशोभित हुईं जिस प्रकार हिमालय के साथ मयना जी सुशोभित हुईं थीं ॥

चौ०—कनककलश मनि कोपर रूरे। शुचि सुगन्ध मंगल जल पूरे ॥
निजकर मुदित राय अरु रानी। धरे राम के आगे आनी ॥

अर्थ—सोने का घड़ा और मणिजटित उत्तम परात जिसमें स्वच्छ सुगंधित और मंगलीक जल भरा हुआ था। प्रसन्नतापूर्वक राजा और रानी ने अपने हाथों से रामचन्द्र जी के साम्हने ला रक्खे ॥

चौ०—पढ़हिं वेद मुनि मंगलबानी। गगन सुमन झरि अवसर जानी ॥
+वर विलोकि दम्पति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे ॥

अर्थ—मुनिगण सुन्दर वाणी से वेदध्वनि कर रहे थे और सुन्दर समय समझ कर स्वर्ग से फूलों की झड़ी लग गई। दूलह को देख कर राजा और रानी प्रसन्न हुए तथा पवित्र पैरों को पखारने लगे ॥

छन्द—लागे पखारन पायपंकज प्रेम तनु पुलकावली।
नभ नगर गान निशान जयध्वनि उमगि जनु चहुँ दिशि चली ॥
जे पदसरोज मनोजअरिउरसर सदैव विराजहीं।
जे सुकृत सुमिरत विमलता मन सकल कलिमल भाजहीं ॥

अर्थ—चरण कमलों को पखारने लगे तो प्रेम के मारे उनके अंग रोमांचित हो गये। आकाश और नगर के गीतों, बाजों और जय की ध्वनि चारों ओर फैल चली जो कमलस्वरूपी चरण कामदेव के शत्रु शिवजी के हृदयरूपी तालाब में सदा बने रहते हैं और जिन्हें सत्कर्मी लोग स्मरण करके मन को शुद्ध कर सम्पूर्ण कलियुग के पापों को दूर कर देते है ॥

+वर विलोकि दम्पति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे —कुंडलिया रामायण से—

कुंडलिया—जनक पाय पूजन लगे, साखोचार उचारि।
रानी नृप मन मोद भरि लै कोपर शुचि वारि ॥
लै कोपर शुचि वारि नारि वर मंगल गाईं।
कन्यादान विचारि देव फूलन्ह झरि लाईं ॥
फूले तब नृप सुकृत के चरण पखारत सुख पगे।
निरखि वदन दम्पति मगन जनक पाय पूजन लगे ॥

अर्थ—जिस प्रकार हिमाचल ने पार्वती जी शंकर को और समुद्र ने लक्ष्मी विष्णु जी को समर्पण की। उसी प्रकार जनक जी ने सीता रामचन्द्र जी को समर्पण की और संसार में सुंदर नई कीर्ति प्राप्त की॥ श्यामली मूर्त्ति (रामचन्द्र जी) ने विदेह राजा को विदेह सा (अर्थात् हक्का बक्का) बना दिया तो फिर वे उनसे विनती कैसे कर सक्ते थे। होम कर के प्रथा के अनुसार गठबन्धन किया और फिर भांवरें पड़ने लगीं॥

दोहा—जयध्वनि वंदीवेदध्वनि, मंगलगान निशान।
सुनि हरषहिं बरषहिं विबुध, सुरतरुसुमन सुजान॥ ३२४॥

अर्थ—जयजय कार का उच्चारण भाटों तथा वेदों की ध्वनि, मंगल गीत और नगाड़ों के शब्द सुन कर ज्ञानी देवता प्रसन्न होते थे और कल्पवृक्ष के फूल बरसाते थे॥

चौ०—‡कुअँर कुअँरि कल भाँवरि देहीं। नयनलाभ सब सादर लेहीं॥
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी॥

अर्थ—दूलह और दुलहिन तो उत्तम रीति से भाँवरें फिर रहे थे और सब लोग आदर सहित नेत्रों का लाभ लूट रहे थे। उस मनमोहिनी जोड़ी का वर्णन नहीं हो सक्ता। उनके विषय में जो कुछ उपमा दी जावे वह सब थोड़ी जँचती है (भाव यह 'कि उपमा या तो बराबरी से होती हैं या श्रेष्ठ के साथ' सो इन की उपमा के लिये कोई है ही नहीं, यदि है तो कम)॥

---

‡ कुअँर कुअँरि कल भाँवरि देहीं। नयन लाभ सब सादर लेहीं—

राग केदारा—राजति राम जानकी जोरी।
श्याम सरोज जलद सुन्दर वर दुलहिन तड़ित बरन तनु गोरी॥
ब्याह समय सोहति वितान तर उपमा कहुँ न लहति मति मोरी।
मनहुँ मदन मंजुल मंडप महँ छवि सिंगार शोभा सोउ थोरी
मंगलमय दोउ अंग मनोहर ग्रन्थित चूनरि पीत पिछौरी
कनक कलश कह देत भाँवरी निरखि रूप शारद भइ भोरी॥
मुदित जनक रनिवास रहसबश चतुर नारि चितवहिं तृण तोरी।
निशान वेद धुनि सुनि सुर बरसत सुमन हरष कहै कोरी॥
को फल पाइ प्रेमवश सकल असीसहिं ईश निहोरी।
जेहि आनन्द मगन मन क्यों रसना बरणौं सुख सों री॥

†राम सीय शिर सिंदुर देहीं । शोभा|कहि न जात विधि केहीं।

अर्थ—मुनि लोगों ने प्रेम सहित भाँवरें फिरवाईं और सम्पूर्ण पद्धति सहित पूरी की । रामचन्द्र जी सीता की माँग में सेंदुर भरने लगे उस समय छटा किसी प्रकार से कहने में नहीं आती (तोभी) ॥

चौ०—अरुण पराग जलज भरि नीके । शशिहि भूप अहि लोभ अमी के।
वहुरि वशिष्ठ दीन्ह अनुशासन । *वर दुलिहन बठे इक आसन।

† राम सीयशिर सिंदुर देहीं—

सवैया—चीकनी चारु सनेह सनी चिलकै द्युति मेचक ताई अपार सों।
जीति लिये मखतूल के तार तमीतम तार द्विरेफ कुमार सों॥
पाटी दुहूं विच मांग की लाली विराजि रही यों प्रभा विसतार सों।
मानो श्रृङ्गार की टाटी मनोभव सींचत हैं अनुराग की धार सों॥

* वर दुलहिन वैठे इक आसन—विवाह के समय ईश्वर को सर्व व्यापी समझ अग्नि और लोगों की साक्षी देकर जो धर्म निर्मित पवित्र प्रतिज्ञाएँ करने में आती हैं। ये सब आश्वलायन ग्रह्य सूत्र में वताई हुई हैं। यहां पर सर्व साधारण के स्मरणार्थ सुभीते के लिये संगीत रत्न प्रकाश तीसरे भाग से उद्धृत कर लिखी जाती हैं ॥

स्त्री के वचन—

गज़ल—वचन दो सात जब हम को तभी प्रीतम कहाओगे।
करो इकरार पंचों में उसे पूरा निवाहोगे॥
पकड़ कर हाथ जो मेरा मुझे पत्नी वनाना है।
तो नैया उम्र की मेरी किनारे पर लगाओगे॥
हमारे वस्त्र भोजन की फिकर करना तुम्हें होगी।
वचन मन कर्म से प्यारे मुझे अपना वनाओगे॥
विपति संपति औ वीमारी गमी शादी औ सुख दुख में।
कभी किसी हाल में मुझ से जुदा होने न पाओगे॥
जवानी औ बुढ़ापे में ख़िज़ां वोहार जोवन में।
निगाहे मिहर से हरदम खुशी मुझ को दिखाओगे॥
तिजारत नौकरी खेती अर्थ अरु धर्म सम्बन्धी।
करो कोई काम जब जारी हमें पहिले जताओगे॥
बिगड़े काम कुछ मुझ से करो एकान्त में शिक्षा।
ननँदी सहेलिन में न तुम हम से रिसाओगे॥ (हमें)

अर्थ—मानो सर्प अमृत पाने के लोभ से लाल कमलों की पुष्प रज से चन्द्रमा
पूजित कर रहा हो (यहां पर श्री रामचन्द्र जी का श्याम कर मानों सर्प है
की हथेली कमल है अंगुलियां कमल की पखुरी हैं और सेंदुर कमल का
ा है सीता जी का मुख चन्द्र के समान है उन का सौन्दर्य अमृत है सो सर्प
ो चन्द्रमा से अमृत रस पाने की इच्छा से उस का पूजन कमल के पराग से
ा है) फिर वशिष्ठ जी ने आज्ञा दी तो दूलह और दुलहिन एक ही आसन पर
ाजमान हुए ॥

न्द–बैठे†वरासन राम जानकि मुदित मन दशरथ भये।

हमें तजि और तिरिया को दिया कभि दिल जो तुम जानो।
किये अपने को पाओगे जो मेरा जी जलाओगे॥
अग्नि को साक्षी देकर जो अर्धांगिन किया मुझ को।
तो फिर "बलदेव" बायें पर मुझे अपने बिठाओगे॥

पुरुष के वचन—

गज़ल–वचन देता हूं मैं तुझ को तुझे प्यारी बनाऊंगा।
मगर मैं चन्द बातों का अहिद तुझ से कराऊंगा॥
तुझे मैं धर्म की ख़ातिर जो अर्धांगिन बनाता हूं।
अहिद ता उम्र अपने से न पग पीछे हटाऊंगा॥
मगर तामील हुक्मों पर मेरे रहना कमर बस्ता।
हुई इस काम में गल्ती तो फिर नीचा दिखाऊंगा॥
सिवा मेरे जो कोई नर हो चाहे कितना ही बेहतर।
जो की कभी ख्वाब में ख्वाहिश तो दिल तुम से हटाऊंगा॥
गृहाश्रम के लिये तुम को किया संगिन व सहधर्मिन।
कठिन इस धर्म आश्रम को तेरे बिन कर न पाऊंगा॥
विपति सम्पत्ति में हरदम हमारे साथ में रहना।
गुज़ारा उस में ही करना कि जो कुछ मैं कमाऊंगा॥
वगा राखो जो कुछ दिल में तो अपने दिल की तुम जानो।
मगर मैं धर्म से अपना वचन पूरा निभाऊंगा॥
वचन "बलदेव" के इतने जो हैं स्वीकार सब चित से।
तो फिर दिल जान से प्यारी तेरा ख़िदमत बजाऊंगा॥

† बैठे वरासन राम जानकि मुदित मन दशरथ भये—
राग बिलावल—आज हम देखन पै दवि जैहे। (राग)

तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुर तरु फल नये॥
भरि भुवन रहा उछाह राम विवाह भा सब ही कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यह मंगल महा॥

अर्थ—रामचन्द्र जी और जानकी जी को एक ही श्रेष्ठ आसन पर बैठा हुआ देख, दशरथ जी मन में प्रसन्न हुए। अपने सत्कर्म रूपी कल्पवृक्ष में नये फल देख कर उन का शरीर बारंबार रोमांचित हो उठता था। तीनों लोकों में आनन्द भर गया और सब ने कहा कि रामचन्द्र जी का विवाह हो गया। इस का वर्णन किस प्रकार से करके जीभ को संतोष होवे क्योंकि यह तो एक है और मंगल बे हिसाब है॥

छन्द—तब जनक पाइ वशिष्ठ आयसु व्याह साज सँवारि कै।
मांडवी श्रुतिकीर्ति उर्मिला कुँअरि लई हँकारि कै॥
‡कुशकेतु कन्या प्रथम जो गुणशील सुख शोभा मई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो व्याहि नृप भरतहि दई॥

अर्थ—फिर जनक जी ने वशिष्ठ जी की आज्ञा लेकर सम्पूर्ण विवाह की तैयारी कर मांडवी, श्रुति कीर्ति और उर्मिला राजकुमारियों को बुलवा लिया। पहिली कुशध्वज की कन्या (मांडवी) जो गुणवती, शीलवती और सुख रूप सुन्दरी थी। राजा ने सब नेग दस्तूर करके प्रीति पूर्वक भरत को व्याह दी॥

रोम रोम से छवि बरसत है निरखत नयन सिरैये॥
रूप रास मृदु हास ललित मुख उपमा देत लजैये।
"नारायण" या गौर श्याम को हिये निकुंज बसैये॥

‡ कुशकेतु=कुशध्वज—

ह्रस्व रोमा नाम जनक के दो पुत्रों में से छोटे का नाम कुशध्वज था यह इंद्र देश की सांकाश्या नाम की राजधानी में राज्य करता था। इस की दो कन्याएं थीं मांडवी और श्रुति कीर्ति। जिन्हें इसने क्रमानुसार भरत और शत्रुघ्न से व्याह दी थीं। कहते हैं कि इस के बड़े भाई सीरध्वज के कोई पुत्र न था इसी से सीरध्वज के पश्चात् कुशध्वज मिथिला का राजा हुआ इसके लड़के का नाम धर्मध्वज जनक था (देखो वाल्मीकी रामायण ... सर्ग. ७०)॥

छन्द—जानकी लघु भगिनि सुन्दरि अति शिरोमणि जानिके।
सो जनक दीन्ही ब्याहि लपनहि सकल विधि सनमानि के॥
जेहि नाम श्रुतिकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप शील उजागरी॥

अर्थ—जानकी जी की छोटी बहिन (उर्मिला) को अति रूपवतियों में शिरोमणि जानकर जनक जी ने लक्ष्मण जी को सब प्रकार से आदर सत्कार के साथ विवाह दी। अंत में राजा जी ने उत्तम नेत्र वाली सुंदरमुखवाली, सब गुणों से सम्पन्न तथा स्वरूप और शील स्वभाव में प्रसिद्ध श्रुतिकीर्त्ति नाम की कन्या का विवाह शत्रुघ्न के साथ कर दिया॥

छन्द—* अनुरूप वर दुलहिन परस्पर लखि सकुचि हिय हर्षहीं।
सब मुदित सुन्दरता सराहहिं सुमन सुरगण वर्षहीं॥
सुन्दरी सुन्दर वरन्ह सह सब एक मण्डप राजहीं।
† जनु जीव अरु चारिउ अवस्था विभुन सहित विराजहीं॥

अर्थ यथा योग्य स्वरूप वाले दूलह और दुलहिन एक दूसरे को देखकर सकुचते २ मन में प्रसन्न होते थे। सब लोग प्रसन्नता पूर्वक उनके स्वरूपों की

---

* अनुरूपर वर दुलहिन—विष्णु पदी रामायण से—

राग मलार—सखी जस सीता को पति राम।
तैसेहि भरत मांडवी को पति तिय गोरी पिय श्याम॥
कुँवरि उर्मिला अरु श्रुतिकीरति सुभग साँवरी वाम।
तिन के कन्त लषन रिपुसूदन गोरे अंग ललाम॥
दोउ बड़ बन्धु सुशील परति लखि धीर सहज अभिराम।
छोट अनुज बलदेव चपल कछु सब सुन्दर गुण धाम॥

† जनु जीव अरु चारिउ अवस्था विभुन सहित विराज हीं—"जीव" राजा दशरथ जी माने गये हैं, क्योंकि उनका सम्बन्ध सब पुत्रों और पुत्र बधुओं से है॥

चार अवस्थाएँ—(१) जाग्रत, (२) स्वप्न, (३) सुषुप्ति और (४) तुरीय।
इन के स्थानीय—(१) उर्मिला, (२) श्रुतिकीर्ति, (३) माण्डवी और (४) सीता
विभु—(१) विश्व, (२) तैजस, (३) प्राज्ञ और (४) [illegible]
इन के स्थानीय—(१) लक्ष्मण, (२) शत्रुघ्न, (३) भरत और (४) राम

बड़ाई करते थे और देवगण .फूल बरसाते थे ॥ सुंदर राजकुमारियां रूपवान के साथ एक ही मंडप में सुशोभित हो रहीं थीं। मानो जीव और चारों अवस्था अपने अपने स्वामियों सहित विराजमान् हों ॥

दोहा—मुदित अवधपति सकल सुत, बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाये महिपालमणि × क्रियन्ह सहित फल चारि ॥ ३२५

अर्थ—अयोध्यापति दशरथ जी अपने चारों पुत्रों को बहुओं समेत देख कर इस प्रकार प्रसन्न हुए मानो इन राजशिरोमणि ने अर्थ, धर्म काम, मोक्ष इन चारों फलों को इन की क्रियाओं (अर्थात् उद्यम्, अनुष्ठान, रति, भक्ति) सहित पाया हो ॥

चौ०—जस रघुवीर ब्याह विधि बरणी। सकल कुँअर ब्याहे तेहि करणी
कहि न जाइ कछु दायज भूरी। रहा कनकमणि मण्डप पूरी

अर्थ—जिस प्रकार रामचन्द्र जी के विवाह की रीति वर्णन की गई है उसी प्रकार की रीति से बाकी तीन राजकुमारों का भी विवाह हुआ। दायज तो इतना अधिक था कि वह कहने में नहीं आता, सुवर्ण और मणियों से मानो मंडप भर गया था ॥

चौ०—कंबल बसन विचित्र पटोरे। भाँति भाँति बहुमोल न थोरे।
गज रथ तुरग दास अरु दासी। धेनु अलंकृत कामदुहासी॥

अर्थ—ऊन के वस्त्र तथा रङ्ग बिरंगे रेशमी कपड़े अनेक भांति के बहुत दाम के थे। हाथी, रथ, घोड़े, दास और दासियां, तथा अलंकारों से सुसज्जित कामधेनु के समान गायें ॥

× क्रियन्ह सहित फल चारि—क्रियाएँ और उन के फलों का कोष्टक उन के स्थानीय सहित लिखा जाता है—

क्रियाएँ	क्रियाओं के स्थानीय	फल	फलों के स्थानीय
[illegible]	उर्मिला	धर्म	लक्ष्मण
[illegible]	श्रुतकीर्ति	अर्थ	शत्रुघ्न
[illegible]	माण्डवी	काम	भरत
[illegible]	[illegible]	मोक्ष	राम *

चौ०—वस्तु अनेक करिय किमि लेखा । कहि न जाइ जानहिं जिन देखा ॥
लोकपाल अवलोकि सिहाने । लीन्ह अवधपति सब सुख माने ॥

अर्थ — और भी सैकड़ों वस्तुयें थीं उनका लेखा कहां तक करें, कहते नहीं बनता इसे वे ही जान सक्ते हैं जिन्हों ने देखा था। (दायज को) देख दिग्पाल भी संतुष्ट हुए और राजा दशरथ जी ने सब आनन्द पूर्वक ग्रहण किया ॥

चौ०—दीन्ह याचकन्ह जो जेहिभावा । उबरा सो जनवासहिं आवा ॥
तब कर जोरि जनक मृदुबानी । बोले सब बरात सनमानी ॥

अर्थ — मांगने वालों को जो वस्तु अच्छी लगी वही दे दी गई जो कुछ बच रहा वह जनवासे में भेज दिया गया। तब सब बरात का आदर करके जनक जी हाथ जोड़ कर मीठी वाणी से कहने लगे ॥

छन्द—सनमानि सकल बरात आदर दान विनय बड़ाइ कै।
प्रमुदित महा मुनि वृन्द वन्दे पूजि प्रेम लड़ाइ कै॥
सिरनाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किये।
+सुर साधु चाहत भाव सिंधु कि तोष जल अंजलि दिये ॥

अर्थ — सम्पूर्ण बरात वालों का यथायोग्य सत्कार, दान विनती और बड़ाई से सन्मान किया। आनन्द पूर्वक प्रेम लगाकर बड़े २ मुनीश्वरों का पूजन कर उनकी वंदना की, फिर सीस नवाकर देवताओं को प्रसन्न किया और हाथ जोड़ कर सबसे कहने लगे कि देवता और सज्जन तो प्रेम को चाहते हैं भला एक अंजुली भर पानी के समर्पण करने से समुद्र को क्या सन्तोष होता है (भाव यह है कि आप लोगों के पास इतना वैभव और द्रव्य है कि उसके सामने मेरा दिया हुआ सब इस प्रकार तुच्छ है कि जिस प्रकार जल से परिपूर्ण समुद्र में एक अंजुली जल डालना है तो भी उस से समुद्र संतोष पाता है यदि प्रेम सहित दिया जावे, क्योंकि महात्मा तो भाव ही के भूखे रहते हैं)

+ सुर साधु चाहत भाव सिंधु कि तोष जल अंजलि दिये—
श्लोक—अपां निधिं वारिभिरर्चयन्ति, दीपेन सूर्यं प्रतिबोधयन्ति ।
ताभ्यां तयोः किं परिपूर्णताऽस्ति, भक्त्यैव तुष्यन्ति महानुभावाः ॥
अर्थात् (लोग) समुद्र को थोड़े से पानी द्वारा पूजते हैं, सूर्य की आरती दिखाते हैं। भला थोड़े से जल और आरती से समुद्र तथा सूर्य को क्या संतोष हो सकता है ? (तौभी वे संतोष मानते हैं) क्योंकि महात्मा तो भक्ति से संतोष को पाते हैं ॥

छन्द—करजोरि जनक बहोरि बंधुसमेत कोशलराय सों।
बोले मनोहर बैन सानि सनेह शील सुभाय सों॥
‡ संबंधराजन रावरे हम बड़े अब सब विधि भये।
यह राज साज समेत सेवक जानिबी बिनु गथ लये॥

अर्थ—फिर कुशध्वज के साथ जनक जी हाथ जोड़ कर अयोध्यापति से प्रेम और शील स्वभाव युक्त मधुर वचन कहने लगे हे राजन्! आप से संबन्ध करके हम लोग अब सब प्रकार से बड़े हो गये। आप हम लोगों को राज वैभव समेत बिना मोल लिये अपने दास जानिये॥

छन्द—* ये दारिका परिचारिका करि पालबी करुणामई।

‡ संबंध राजन रावरे हम बड़े अब सब विधि भये—

श्लोक—यातं जन्म कृतार्थतां विकसितं पुण्यांबुजानां वनं।
छिन्नासंप्रति सर्व पाप पटली दुःखान्धकारो गतः॥
आनंदांकुरकोटयः प्रकटिता, विघ्नाटवी पाटिता।
संबंधे भवता कृते सुकृतिनां, किं किं न लब्धं मया॥

भाव यह कि हमारा जन्म सफल हुआ, हमारे पुण्यरूपी कमलों का वन खिल गया, अब हमारे सम्पूर्ण पापसमूह नाश हुए, दुःख रूपी अंधकार मिट गया। हमारे आनन्द रूपी कोटानि कोटि अंकुर प्रकट हुए और विघ्न रूपी जंगल कट गया। निदान् आप सरीखे सत्कर्मियों के संबंध से हमने कौन २ सी वस्तु नहीं पा ली (अर्थात् हमारे सम्पूर्ण दुःख और विघ्न दूर होकर हम परमानद को प्राप्ति हुए)

* ये दारिका परिचारिका करि पालबी करुणा मई। जनक जी बोले कि हे अयोध्यापति महाराज!

श्लोक—कन्या न जानाति गृहस्य कर्म, माता सदा लालन पालितेयम्।
तथापि विद्वन्भवतः सुताय, समर्पिता चांगण लेपनाय॥

अर्थात् कन्या घर का कामकाज नहीं जानती, कारण इस की माता इसे सदा प्या[र करती] रही है। तो भी हे विद्यानिधान महाराज! यह कन्या आप के पुत्र को इसह[ेतु दी जाती] है कि वह उनके [पूजन निमित्त] चौका लगा दिया करेगी॥

[इस] सीता जी को जिन्हों ने अपने पिता को शिक्षा का महारानी हो जाने प[र भी पालन] किया। जैसा उत्तर कांड में कहा है—

गृह सेवक सेवकिनी। विपुल सकल सेवा विधि गुनी॥
गृह परिचर्या करहीं। रामचन्द्र आपहु अनुसरहीं॥

अपराध छमिबो बोलि पठ्यो बहुत हौं ढीठी दई॥
†पुनि भानुकुलभूषण सकलसनमाननिधि समधीकिये।
‡कहि जात नहिं विनती परस्पर प्रेम परिपूरण हिये॥

अर्थ—हे करुणानिधान! इन लड़कियों को टहलनी समान जान कर पोषण येगा। जो मैंने यह बड़ी ढिठाई की थी कि आप को बुला भेजा था सो अपराध क्षमा जियेगा (भाव यह कि यहां से शिष्टजनों के साथ लग्नपत्रिका भेज कर बन्ध का आरम्भ करने की अपेक्षा आप को दूतों द्वारा पत्री भेज कर बुलाया सो था अनुचित हुआ उसे क्षमा कीजिये) फिर सूर्यवंश के शिरोमणि दशरथ जी ने ने समधी को भी आदरणीयों में श्रेष्ठ कर माना। इस प्रकार दोनों के हृदय प्रेम ऐसे भर गये कि एक दूसरे से फिर विनती न कर सके॥

---

† पुनि भानुकुल भूषण सकलसनमाननिधि समधी किये—

श्लोक—विद्यावृत्तयुता प्रसन्नहृदया, विद्वत्सुवन्द्या वराः।
श्री नारायण पादपंकज युग, ध्याना वधूतांहसः॥
धौताचार परायणाः सविनयाः विश्वोपकारक्षमो।
जाता यत्र भवादृशास्तदमलं, केनोपमेयं कुलम्॥

अर्थात् विद्या और सदाचार से युक्त, प्रसन्न चित्त, विद्वानों का आदर करने वाले, नारायण के चरण कमल युगल के ध्यान से विगत पाप, वेदानुकूल आचार करने वाले, नय सम्पन्न, संसार का उपकार करने में समर्थ ऐसे आप सरीखे जिस कुल में उत्पन्न हैं उस वंश की उपमा किससे दी जा सकी है (अर्थात् आप परम प्रशंसनीय हैं)॥

‡ कहि जात नहिं विनती परस्पर—रामचन्द्रिका से—

जनक जी बोले:—

तारक छन्द—जिन के पुरखा भुव गंगहि लाये, नगरी शुभ स्वर्ग सदेह सिधारे।
जिनके सुत पाहन ते तिय कीनी, हर को धनु भंग प्रभे पुर लीनी॥
निज आप अदेव अनेक सँहारे, सब काल पुरन्दर के रखवारे।
जिन की महिमाहि को अन्त न पायो, हम को बपुरा यश वेदनि गायो॥

दशरथ जी ने कहा:—

विजय छन्द—एक सुखी यहि लोक विलोकिये हैं वहि लोक निरे पशुधारी।
एक इहाँ दुख देखत "केशव" होत वहाँ सुर लोक विहारी॥
एक इहाँऊ वहाँ अति दीन सो देत दुहुँ दिशि के जन गारी।
एकहि भाँति सदा सब लोकनि है प्रभुता मिथिलेश तिहारी॥

छन्द–वृन्दारकागण सुमन वर्षहिं राउ जनवासहिं चले।
दुंदुभी जयधुनि वेदधुनि नभ नगर कौतूहल भले॥
+तब सखी मंगल गान करत मुनीशआयसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चली कोहबर ल्याइ कै॥

शब्दार्थ—वृन्दारका गण = देवगण ।। कोहबर = ब्याह के घर ॥

अर्थ—देवता लोग फूल बरसाने लगे, राजा दशरथ जनवासे को चले ग
आकाश और जनक पुर में नगाड़ों की जय जय और वेद की ध्वनि छागई
बहुत आनन्द हुआ। तब सखियां मंगल गीत गाती हुई मुनि श्रेष्ठों की आज्ञा पा
चारों सुन्दर दूलह और दुलहिनों को विवाह घर में लिवा ले गईं॥

दोहा–पुनि पुनि रामहि चितव सिय, *सकुचति मन सकुचै न।
हरत मनोहरमीनछवि, प्रेम पियासे नैन॥३२६

अर्थ—सीता जी रामचन्द्र जी को वारंवार देखतीं थीं, कारण वे (लोक लाज से
सकुचती थीं परन्तु मन से नहीं सकुचती थीं, प्रेम के भूखे नेत्र उत्तम मछली की
को छीने लेते थे (भाव यह कि प्रेम के आंसू से भरे हुए नेत्रों से कभी राम
जी की ओर देख लेतीं थीं और कभी उन्हें नीचा कर लेतीं थीं। इस चपलता से
हुए नेत्रों को कवि जी ने बहुत ही उत्तम मीन की उपमा देकर दर्शाया है)॥

+ तब सखी मंगल गान करत—

बनरा—धनि धनि सीता जनककुमारी।
जाके हित सुन्दर बनरा यह बनि आये मनहारी॥
हम सीता बालकपन ते यक संगहि रही खेलारी।
श्री रघुराज आज लव यहि सम कोउ नहिं परत निहारी॥

और भी पिप्पलदी रामायण से—

बनरा—देखो सखि राम भरत भाने बनरा।
लेखेहि कर लखन रिपुसूदन गोरे श्री श्याम मौर सिर सेहरा॥
तिलक झलक मकराकृत कुंडल मुख अभिराम पड़े दृग कजरा।
बरन अनेक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गुंज गरे गजरा।
श्री बलदेव [illegible] मोहन मोहन [illegible] [illegible] सेहरा॥

* सकुचति मन सकुचै न—बिहारी सतसई—

दोहा—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नैन॥

चौ०—×श्याम शरीर सुभाय सुहावन। शोभा कोटिमनोजलजावन॥
यावकयुत पदकमल सुहाये। मुनिमनमधुप रहत जिन छाये॥

शब्दार्थ—यावक = महावर॥

अर्थ—रामचन्द्र जी का श्यामल शरीर स्वभाव ही से मनोहर था जिसकी सुन्दरता करोड़ों कामदेव को लज्जित करती थी। कमलस्वरूपी चरण महावर लगाये हुए शोभायमान लगते थे। जिन में मुनियों के मनरूपी भौंरे लुभाने बने रहते हैं॥

चौ०—पीत पुनीत मनोहर धोती। हरत बालरविदामिनिजोती॥
†कल किंकिनि कटिसूत्रमनोहर। बाहु विशाल विभूषण सुंदर॥

अर्थ—पीले रंग का पुनीत पीताम्बर सुहावना लगता था, वह प्रातःकाल के सूर्य तथा बिजली की चमक को दबा देता था। सुन्दर घुँघरू तथा करधनी मनमोहिनी थीं और लम्बी भुजाओं में सुन्दर आभूषण पहिने हुए थे॥

× श्याम शरीर सुभाय सुहावन। शोभा कोटिमनोजलजावन—(विष्णुपदी रामायणसे)—

होरी—जानकी वर सुन्दर माई॥ टेक॥
श्यामल गात [illegible] पीताम्बर फहराई।
मनहुँ मेघ पर [illegible]ति मोर [illegible]दाई॥
रां रवि [illegible]

चौ०—पीत जनेउ महा छवि देई। कर मुद्रिका चोरि चित लेई॥
सोहत ब्याहसाज सब साजे। उर आयत भूषण उर राजे॥

अर्थ—पीला जनेऊ बड़ी शोभा दे रहा था और हाथ की मुँदरी चित्त को चुरा लेती थी। ब्याह के सब अलंकार धारण किये हुए सुशोभित हो रहे थे और विस्तीर्ण हृदय पर हृदयआभूषण शोभायमान थे॥

चौ०—पियर उपरना काँखा सोती। दुहुँ आचरन्हि लगे मणि मोती॥
नयन कमल कल कुंडल काना। ‡बदन सकल सौंदर्यनिधाना॥

अर्थ—पीला दुपट्टा जिस के दोनों छोड़ों पर मणि और मोती लगे थे जनेउ की नाईं (अर्थात् बगल के नीचे से काँधे पर पड़ा था) कमल के समान नेत्र तथा सुन्दर कुंडल कानों में लटक रहे थे और मुख तो मानो संपूर्ण सुन्दरता का भंडार था॥

चौ०—सुन्दर भृकुटि मनोहर नासा। भालतिलक शुचि रुचिर निवासा॥
सोहत मौर मनोहर माथे। मंगलमय मुकुतामणि गाथे॥

अर्थ—सुन्दर भौंहें, सुहावनी नासिका और माथे पर तिलक मानो स्वच्छ और रोचकता का स्थान ही था। सुन्दर मस्तक पर मंगलीक मोती और मणियों से जड़ा हुआ विवाह का मुकुट शोभायमान था॥

छन्द—†गाथे महामणि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं।
पुरनारि सुरसुन्दरी वरहि विलोकि सब तृण तोरहीं॥

---

‡ बदन सकल सौंदर्यनिधाना—

कवित्त—सोम जो कहौं तौ कलानिधि कलंकी सुन्यो कंज सम कहौं कैसे पंक को सदन है।
काम मुख सरिस बखानिये जु राम मुख सोऊ न बनत देह रहित मदन है॥
अमल अनूप आधि व्याधि ते विहीन सदा वाणी के विलास कोटि कलुष कदन है।
कहत "गुलाम राम" एक रस आठो याम शोभा को सदन रामचन्द्र को बदन है॥

† गाथे महा मणि मौर मंजुल, अंग सब चित चोरहीं—

राग दरबार—राघो जू महराज साँवल बनरा।
अजब बन्यो विहारी अँखियन कजरा दशरथ सुत महराज॥
केसरिया बागो और विविध मणि साज।
* मम रूप अटक मन तन मन रहो न सम्हार॥

मणि वसन भूषण वारि आरति करहिं मंगल गावहीं ।
सुर सुमन वरपहिं सूत मागध वंदि सुयश सुनावहीं ॥

अर्थ—मौर में बड़े बड़े मणि जड़े थे और अंग प्रत्यङ्ग मनोहर होने के कारण
गों के चित्त को चुराये लेते थे। नगर की सब स्त्रियां तथा देवताओं की स्त्रियां
ह को देख कर तिनका तोड़तीं थीं (इस अभिप्राय से कि इन को डीठ न लगे
र इन की बलायें तिनका के समान टूट जावें वे मणि, कपड़े और गहने न्यौछावर
र आरती करतीं तथा मंगल गीत गाती थीं। देवगण फूल बरसाते थे और पौराणिक,
ट तथा यश वर्णन करने वाले सुन्दर कीर्त्ति सुना रहे थे ॥

न्द—कोहवरहिं आने कुँवर कुँवरि सुआसिनिन्ह सुखपाइ के ।
‡अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ के ॥
*लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीयसन शारद कहहिं ।
रनिवास हासविलासरसवश जन्म को फल सब लहहिं ॥

अर्थ—सौभाग्यवती स्त्रियां आनंदपूर्वक दुलहा और दुलहिनों को विवाहगृह
में लिवा लाईं और बड़े चाव से लोक व्यवहार मंगलगान समेत करने लगीं।
कौर उठाकर अपने हाथ से दुलहिन के मुख में देने के लिये उमा जी ने रामचन्द्र

---

‡ अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मंगल गाइ के—

गारी—जेवत राम जनकमन्दिर में, सब मिलि नारि जिपाव।
कि हां जी सब मिलि नारि जिपावें ॥
चारी धीर धार मिलि एकै, कौर लेत सुख पावें ॥ कि हां जी कौर ॥
नवल बधू नव नेह नेह सों, कुल बधु सब जुरि आवें ॥ कि हां जी कुल ॥
कुँवरहिं निरखत मन अति हरखत, रस भरि गारी गावें ॥ कि हां जी रस ॥
शेष महेश निगम नारद मुनि उनहुँ के ध्यान न आवें ॥ कि हां जी उनहुँ ॥
"जनदरिया" शिव धन्य जनकपुर, हँसि हँसि लाड़ लड़ावें ॥ कि हां जी
हँसि हँसि लाड़ लड़ावें ॥

* लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन शारद कहहिं—

कवित्त—कलित कटोरा स्वच्छ हीरक अमोल गोल तामें धीर मोदक सुधारो मुख देत है।
होत लहकौरि नेग आनंद अपार छायो लगन सुहायो अति सकल निकेत है ॥
राम सिय शोभा अवलोकि तेहि अवसर का आनँद को हरषि हिलोर हिय देत है ।
रसिक बिहारी जनु चंद के पियूष लै चकोर मुख मैन रति मैन सुख देत है ।

जी को उकसाया और उसी प्रकार सीता जी को सरस्वती जी ने सिखाया रनिवास की सब स्त्रियां इस हँसी दिल्लगी के प्रेम रस को देख देख नयन-फल लूट रहीं थीं ॥

छन्द—+निजपाणिमणि महँ देखि प्रतिमूरति सुरूपनिधान की।
चालति न भुजवल्ली विलोकनिविरहभयवश जानकी ॥
कौतुक विनोद प्रमोद प्रेम न जाइ कहि जानहिं अली।
वर कुँअरि सुन्दर सकल सखी लिवाइ जनवासहिं चली ॥

अर्थ—अपने हाथ के मणियों में रूपनिधान रामचन्द्र जी की परछाईं देखकर जानकी अपनी लतारूपी भुजा को नहीं डुलातीं थीं क्योंकि ऐसा करने से रामचन्द्र जी से विछोह होने का भय था (भाव यह कि हाथ के आभूषणों के मणियों में रामचंद्र जी के प्रतिबिंब को जानकी जी निहार रहीं थीं, इसहेतु उन्हों ने अपना हाथ थोड़े समय के लिये वहां से न हटाया, इस डर से कि हाथ हटाते ही उन का प्रतिबिंब मणियों में न पड़ेगा, सो मानो इस छिपी हुई रीति से उन के दर्शन भी दुर्लभ हो जावेंगे)। उस समय का खेल, मन बहलावा आनंद और प्रेम कहा नहीं जासक्ता, वह तो सखियां ही जानतीं थीं। फिर सखियां सब सुन्दर दूलह और दुलहिन की जोड़ियों को जनवासे पहुंचाने के हेतु लिवा ले चलीं ॥

छन्द—तेहि समय सुनिय असीस जहँ तहँ नगर नभ आनँद महा।
चिरजियहु जोरी चारु चारिउ मुदितमन सबही कहा ॥

+ निज पाणि मणि महँ देखि प्रतिमूरति सुरूप निधान की ... ... कवित्त रामायण से—

सवैया—दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।
गावति गीत सबै मिल सुन्दर वेद युवा जुरि विप्र पढ़ाहीं ॥
राम को रूप निहारति जानकि कंकण के नग की परछाहीं।
याते सबै सुधि भूलि गई कर टेक रही पल टारति नाहीं ॥

और भी—प्रेम पीयूष धारा से [चैती घाटो]

निरखत सीय कंगनवाँ हो रामा, छवि रघुवर की।
टारत नाहीं टेक रही कर, छाको प्रेम मगनवाँ हो रामा, छवि रघुवर की ॥
सब सखियां मिलि मंगल गावत, बैठी जनक अँगनवाँ हो रामा, छवि रघुवर की।
मोहनि [illegible] टै नहिं सजनी, जा हिय लाग लगनवाँ हो रामा, छवि रघुवर की ॥

योगीन्द्र सिद्ध मुनीश देव विलोकि प्रभु दुंदुभि हनी।
चले हरषि बरषि प्रसून निजनिजलोक †जय जय जय भनी॥

अर्थ—उस समय नगर और आकाश में अति ही आनन्द के कारण सभी ठौर आशीर्वाद के शब्द सुनाई देते थे सो यों कि—सब लोगों ने प्रसन्न चित्त से कहा कि ये मनोहर चारों जोड़ियां चिरजीवी होवें। योगीश्वर, सिद्ध मुनिश्रेष्ठ और देवगणों ने रामचन्द्र जी को देख कर नगाड़े बजाये और फिर फूल बरसाकर जय जय जय करते हुए अपने अपने लोक को पधारे॥

दो०—‡सहित बधूटिन्ह कुँवर सब, तब आये पितु पास।
शोभा मंगल मोद भरि, उमगेउ जनु जनवास॥ ३२७॥

अर्थ—तब सब राजकुमार अपनी अपनी दुलहिन समेत पिता के पास आये उस समय उनकी मंगलीक छटा से जनवासे के लोग आनन्द में फूले न समाये॥

चौ०—*पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठये जनक बुलाइ बराती॥
परत पाँवड़े बसन अनूपा। सुतन्ह समेत गवन किय भूपा॥

---

† जय जय जय भनी—प्रेम पीयूष धारा से—
श्री राम—जय जय जयति जय जय राम।
जयति जय जगजननि सीता, जयति सुन्दर नाम॥
जयति पावन सरित सरजू, जय जय अयोध्या धाम।
दास माधुनि भनत जय जय, जयति आठों जाम॥

‡ सहित बधूटिन्ह कुँवर सब, तब आये पितु पास.. ... ... इस दोहे के पश्चात् राम कलेवा का क्षेपक पुरानी में है॥

* पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठये जनक बुलाइ बराती—आदि-(विष्णुपदी रामायण से)—

गारी—जेवन हेत मुदित मिथिलापति कोशलपतिहि बुलाये जी।
साज समाज बरात सहित नृप राजभँवर महँ आये जी॥
बाजा विविध नवीन की धुनि सुनि पुरजन हरषाये जी।
कोउ खिरकी कोउ द्वार अटन पर कोउ मग देखन धाये जी॥
नृप जनवास जनक द्वारे लगि कोटिन द्रव्य लुटाये जी।
रंग बरंग र धारस मखमल दन दन मोद लुटाये जी॥
आनि समय कर जोरि जनक पुनि कोशलपतिहि बचन सुनाये जी।
भोजन करन चलिय सब साहिब सुनत उठे सुख पाये जी॥ (शेष चरण)

अर्थ – फिर नाना प्रकार की रसोई तैयार हुई और जनक जी ने सम्पूर्ण बरातियों को बुला भेजा। फिर अनोखे अनोखे पांवड़ों पर से राजा दशरथ जी चारों पुत्रों सहित चले आये ॥

चौ०–सादर सब के पाय पखारे। यथा योग पीढ़न बैठारे॥
धोये जनक अवधपतिचरना। शील सनेह जाइ नहिं बरना॥

अर्थ – आदर सहित सब बरातियों के पाँव धुलाकर उन्हें यथोचित पीढ़ों पर बिठा दिया। फिर जनक जी ने दशरथ जी के पैर धोये, उस समय की शीलता और प्रेम का वर्णन नहीं हो सक्ता ॥

चौ०–बहुरि रामपदपंकज धोये। जे हर हृदयकमल महँ गोये॥
तीनिउ भाइ रामसम जानी। धोये चरण जनक निजपानी॥

अर्थ—फिर जिन्हें महादेव जी ने अपने हृदय कमल में छिपा रक्खा है ऐसे रामचन्द्र जी के कमलस्वरूपी चरणों को धोया और भी जनक जी ने राम ही के समान जान तीनों भाइयों के पांव पखारे ॥

धोइ चरण दिय भेट सबहि निमिराज भवन लै आये जी।
मनिमय अजिर कनकपीढ़न पर यथा उचित बैठाये जी॥
सुवरण थार कटोरा अगणित सब ढिग प्रथम धराये जी।
चतुर सुआर परोसन लागे भोजन चतुर बनाये जी॥
रुचिर छइउरस छत्तिस व्यंजन भोज न जाहिं गनाये जी।
हरपि सनेह विदेह विभव दे सब कर नेग चुकाये जी॥
पांच कवल कर सब जन भोजन करन लगे मन भाये जी।
गारी होन लगीं अटरन्ह पर कोकिल कंठ लजाये जी॥
सुनत हँसत महराज समायुत बात विलम्ब लगाये जी।
नाम बरातिन के लक्ष्मीनिधि सब कहँ जात बताये जी॥
सुनि सुनि नारि पुरुष अवलन कहँ उठत अधिक गरियाये जी।
इहि विधि जेंइ उठे जब भूपति प्रेम सहित अँचवाये जी॥
बैठे पहिर पोशाक सभा सब अतर सुगंध लगाये जी।
मेवा भरित पान के बीरा पानदान भर धाये जी॥
इक इक सकल बरातिन दीन्हें मणि भूषण पहिराये जी।
ब्याह उछाह सिया रघुवर को शेष कहत सकुचाये जी॥
कृपा करहु "बलदेव" भजनहित एक पदन कछु गाये जी।

चौ०—आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी सब लीन्हे।
सादर लगे परन पनवारे। कनककील मणिपान सँवारे॥

अर्थ—जनक जी ने सब ही को सुयोग्य आसन पर बिठलाया फिर सब रसोई वालों को बुलालिया तब आदरपूर्वक ऐसी पत्तलें डाली गईं जिनमें हरी मणियों के पत्ते और सोने की कीलें लगी थीं॥

दो०—‡सूपोदन सुरभीसरपि, सुन्दर स्वाद पुनीत।
छणमहँ सब कहँ परसि गे, चतुर सुआर विनीत॥ ३२८॥

शब्दार्थ—सूप=दाल। ओदन=भात। सुरभी=गायका+सरपि (शु. रूप सर्पि) =घी, अर्थात् गाय का घी। सुआर=रसोई बनाने वाला।

अर्थ—सुन्दर स्वादिष्ट और स्वच्छ दाल भात और गाय का घी क्षण भर में चतुर रसोई वाले सब को परोस गये॥

चौ०—पंचकवलि करि जेवन लागे। *गारिगान सुनि अति अनुरागे॥
+भाँति अनेक परे पकवाने। सुधासरिस नहिं जाहिं बखाने॥

---

‡ सूपोदन सुरभीसरपि, सुन्दर स्वाद पुनीत—

गारी—जेवन आये हैं राजा दशरथ संग सुवन वर चारी जी।
सुन्दर आसन जनक दिये अति दिव्य भानुद्युतिकारी जी॥
कनक कील मणि परन बने शुचि परेउ तुरत पनवारी जी।
पूजि सुअवसर जानि सुआरन्ह व्यंजन विविध प्रकारी जी॥
परसन लगे प्रथम सूपोदन गोघृत अरु तरकारी जी।
भाँति भाँति मेवा पकवानें जेवत लखि सब नारी जी॥
तानि सुनयना अवर सखी बहु देत मधुर धुनि गारी जी।
परिजन सहित भूप हरषत सुनि "महावीर" सुख भारी जी॥

* गारि गान सुनि अति अनुरागे—

सवैया—पातक हानि पिता सँग हारियो गर्भ के शूलन ते डरिये जू।
ताजन को पँच बन्ध परोर को नाथ के साथ सदा रहिये जू।
पच [illegible] की कटे पाप "केशर" कैसहु तीरथ में मरिये जू।
[illegible] गारि" सुडांड़ भलो जु गया भरिये जू।
[illegible] सरिस नहिं जाहिं बखाने—दादिरा नझन
[illegible] दधि अरु दूध मँगाओ।
[illegible] को परसाओ॥ (बार बार)

अर्थ—पंचग्रासी करके भोजन करने लगे और व्याह की गारीं सुन कर के मग्न हुए। फिर भाँति भाँति के व्यंजन परोसे गये, जो अमृत के समान थे और जिन का वर्णन नहीं हो सक्ता॥

चौ०—परसन लगे सुआर सुजाना। व्यंजन विविध नाम को जाना॥
चारि भाँति भोजन विधि गाई। एक एक विधि बरनि न जाई॥

अर्थ—चतुर रसोईदार नानाप्रकार के व्यंजन परोसने लगे जिन के नाम को जान सक्ता। भोजन चार प्रकार के होते हैं सो एक एक प्रकार का भी वर्णन नहीं किया जा सक्ता॥

चौ०—†छरस रुचिर व्यंजन बहु जाती। एक एक रस अगणित भाँती।

चार चार चौकड़ा चतुर मिल लड्डू लेउ उठाई।
मोती चूर मुदित मन मोहनभोग देउ परसाई॥
युक्ति जतन से लेउ जलेबी अमृतरूप इमरती।
बरफ़ी बड़े जतन से परसौ करके आनँद विरती॥
पेड़ा पुनि पवित्र प्रिय परसौ पिस्ता आदि मिले हैं।
खजुला खस्ता खुरमा खुशदिल सुन्दर श्रेष्ठ बने हैं॥
खोया खुरचन खीर बनाई किशमिश आदि मिलाई।
मालपुअन के वही लालची जिनके दांत न भाई॥
लेउ साग लाये लौका को बैंगन और रतालू।
परवर गोभी मेथी मूली अरुई उत्तम आलू॥
काशीफल अरु कुँदुरू कचरी बने करेला वैसे।
भिंडी भुनी भक्ति बथ.हुर के साग सुरुचि शुभ ऐसे॥
रूपवान लेउ रसिक रायते निकुती नमक मिलाओ।
बथुआ बड़ो परम पोदीना हींग बुघार लगाओ॥
अब लेउ [illegible] आमरे [illegible] के पता सलोने।
दही बड़े [illegible] मौठ [illegible] तिकोने॥
लेउ समोड़े [illegible] सुन्दर चटनी खूब बनाई।
[illegible] [illegible] [illegible] कचाई॥
रामचन्द्र ज्योनार [illegible] हँसि हँसि के [illegible]।
[illegible]॥

† छरस रुचिर व्यंजन बहु जाती। एक एक रस अगणित भाँती—
चौ०—[illegible] मधुर बहु [illegible] [illegible]॥
[illegible]॥

‡जेवत देहिं मधुर धुनि गारी। लेइ लेइ नाम पुरुष अरु नारी॥

अर्थ—पट्रस स्वादिष्ट भोजनों के अनेक प्रकार थे उन में से प्रत्येक रस के अनगिन्ती भेद थे। भोजन करते समय स्त्रियां पुरुष और नारियों का नाम ले ले कर मीठी वाणी से गारीं गा रहीं थीं॥

चौ०—*समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा॥
इहि विधि सब ही भोजन कीन्हा। आदर सहित आचमन कीन्हा॥

अर्थ—सुअवसर पर गारियों का गाना भी अच्छा लगा, तभी तो दशरथ जी समाज समेत सुन सुन कर हँसने लगते थे। इस प्रकार सभी ने भोजन किये और सब के आदर सहित हाथ धुलवाये॥

दो०—देइपान पूजे जनक, दशरथ सहित समाज।
जनवासे गवने मुदित, सकल भूप सिरताज॥ ३२६॥

अर्थ—जनक जी ने बरातियों समेत दशरथ जी का पूजन कर पान दिये तब सब राजाओं के शिरोमणि दशरथ जी प्रसन्न होते हुए जनवासे को गये॥

---

‡ जेवत देहिं मधुर धुनि गारी। लेइ लेइ नाम पुरुष अरु नारी—रामयश दर्पण नाटक से—

गारी - जेंवत राम जनकमन्दिर में गावहु री सखि गारी।
कि हाँ जी, हम सुनियत सब अवधपुरी की होती हैं नारि छिनारी।
कि हाँ जी, सुनियत तुम्हरी बहिनि [illegible] के संग सिधारी।
कि हाँ जी, एक बात हम पूछत तुम सो कहहु जानि अधिकारी।
कि हाँ जी, सब [illegible] मह तुम [illegible] सन्देह भारी।
कि हाँ जी, और तुम्हरे एक बात अचरज बहुत है नृप के नारी।
कि हाँ जी, [illegible] करती यह [illegible] विचारी।
कि हाँ जी [illegible] है [illegible]।
कि हाँ जी, [illegible] है बहुत [illegible]।
कि हाँ जी, [illegible]।
कि हाँ जी, [illegible] है [illegible]।

* [illegible]—
[illegible]।
[illegible]।

चौ०—†नित नूतन मंगल पुर माहीं। निमिष सरिस दिन यामिनि जाहीं
बड़े भोर भूपतिमणि जागे। याचक गुणगण गावन लागे

अर्थ—नगर में प्रतिदिन नया ही आनन्द होता था इस कारण दिनरात एक के समान बीत जाता था। बड़े सवेरे राजराजेश्वर दशरथ जी सोकर उठे तो क्या हैं कि मंगन उनके गुणानुवाद गा रहे हैं॥

चौ०—देखि कुँअर वर बधुन्ह समेता। किमि कहि जात मोद मन जेता
प्रातक्रिया करि गे गुरु पाहीं। महा प्रमोद प्रेम मन माहीं

अर्थ—पुत्रों को सुन्दर बहुओं समेत देखकर दशरथ जी के मन में जो आ[नन्द] हुआ वह कैसे कहा जावे। वे प्रातःकाल की नित्यक्रिया करके गुरु वशिष्ठ जी के [पास] गये, उन के मन में बड़ा ही आनन्द और प्रेम था॥

चौ०—करि प्रणाम पूजा कर जोरी। बोले गिरा अमिय जनु बोरी।
तुम्हरी कृपा सुनहु मुनिराजा। भयो आज मम पूरणकाजा।

अर्थ—उन को प्रणाम कर के हाथ जोड़ कर आदर से मानो अमृत भरे व[चन] कहने लगे। हे मुनिराज! सुनिये, आपकी कृपा से आज मेरा सब काम सि[द्ध] होगया॥

चौ०—अब सब विप्र बुलाइ गोसाईं। देहु धेनु सब भाँति बनाईं॥
सुनि गुरु करि महिपाल बड़ाई। पुनि पठये मुनिवृंद बुलाई॥

अर्थ—हे गोस्वामी! अब सब ब्राह्मणों को बुला कर सब प्रकार से सजाई हुई गौएँ दान कराइये। सुनते ही गुरुजी ने राजा जी की बड़ाई की और सब मुनियों को बुला भेजा॥

---

† नित नूतन मंगल पुर माहीं। निमिष सरिस दिन यामिनि जाहीं -राम [illegible]

[illegible]

दो०—वामदेव अरु देवऋषि, वाल्मीकि जाबालि।
आये मुनिवर निकर तब, कौशिकादि तपशालि॥ ३३०॥

अर्थ—तब वामदेव, नारद, वाल्मीक, जाबालि और विश्वामित्र आदि बड़े तपस्वी मुनीश्वरों के झुण्ड के झुण्ड आ पहुँचे॥

चौ०—दंड प्रणाम सबहि नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे॥
चारि लच्छ बर धेनु मँगाई। कामसुरभि सम शील सुहाई॥

अर्थ—राजा जी ने सब ही को साष्टांग प्रणाम किया और आदर सहित सब प्रेम पूर्वक उत्तम आसन बैठने को दिये। चार लाख उत्तम गौएँ मँगवाई जो कामधेनु के समान शांत और दिखनौट थीं॥

चौ०—सब विधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महिप महिदेवन दीन्हीं॥
करत विनय बहु विधि नरनाहू। लहेउँ आज जग जीवनलाहू॥

अर्थ—राजा जी ने सब को सभी भाँति से सजाया और आनंदपूर्वक ब्राह्मणों को दे दीं। फिर दशरथ जी अनेक प्रकार से विनती करने लगे कि संसार में जन्म लेने का फल मैंने आज पाया॥

चौ०—पाइ असीस महीश अनंदा। लिये बोलि पुनि याचकवृंदा॥
‡कनक वसन मणि हय गय स्यंदन। दिये बूझि रुचि रविकुलनन्दन॥

अर्थ—ब्राह्मणों से आशीर्वाद पाकर दशरथ जी प्रसन्न हुए फिर उन्हों ने याचकों को बुलवाया। उन्हें सूर्यवंशी महाराजा ने मन की इच्छानुसार सोवर्ण, कपड़े, मणि, घोड़े, हाथी और रथ दिये॥

चौ०—चले पढ़त गावत गुणगाथा। जय जय जय दिनकरकुलनाथा॥
इहि विधि रामबिवाहउछाहू। सकै न बरनि सहसमुख जाहू॥

---

‡ कनक वसन मणि हय गय स्यंदन। दिये बूझि रुचि रविकुलनंदन—
कुण्डलिया—मघा मेघ दशरथ भये, याचक दादुर मोर।
सर सरिता द्विजगण भये बाढ़ि चले चहुँ ओर॥
बाढ़ि चले चहुँ ओर शालि जनकादिक रानी।
पुर परिजन भे कृषी सुखो सुख सुन्दर पानी॥
सुन्दर पानी बुन्द मणि भूषण पट पर्यंत नये।
राम क्रिया पावस सुखद मघा मेघ दशरथ भये॥

अर्थ—याचक गण गुणानुवाद गाते और यह कहते हुए चले कि हे सूर्यवंशियों में श्रेष्ठ महाराज आपकी जय हो! जय हो! जय हो! इस प्रकार रामचंद्र जी विवाह के उत्सव को जिस के हज़ार मुख हैं ऐसे शेषनाग जी भी वर्णन नहीं कर सक्ते हैं॥

दो०—बार बार कौशिकचरण, सीस नाइ कह राउ।
यह सब सुख मुनिराज तव, कृपाकटाक्ष प्रभाउ॥ ३३१॥

अर्थ—दशरथ जी विश्वामित्र जी के चरणों की बारंबार वंदना करके कहने लगे कि हे मुनिवर! यह सब आनंद आप ही की कृपा दृष्टि का फल है॥

चौ०—जनक सनेह शील करतूती। †नृप सब भाँति सराह विभूती॥
दिन उठि बिदा अवधपति माँगा। राखहिं जनक सहित अनुरागा॥

अर्थ—जनक जी का प्रेम, शील स्वभाव और कार्रवाई को दशरथ जी सब प्रकार उन के ऐश्वर्य समेत सराहते थे। प्रतिदिन सबेरे ही दशरथ जी जाने की इच्छा प्रकट करते थे परन्तु जनक जी प्रीति सहित उन्हें रोक रखते थे॥

चौ०—नित नूतन आदर अधिकाई। दिनप्रति सहस भाँति पहुनाई॥
नितनव नगर अनंद उछाहू। दशरथ गवन सुहाइ न काहू॥

अर्थ—दिनों दिन नये ढंग से अधिक ही अधिक आदर होता था और प्रतिदिन हज़ारों प्रकार से पहुनई की जाती थी। जनकपुर में नित नया आनंद और उत्साह होता था, इसहेतु दशरथ जी का जाना किसी को अच्छा नहीं लगता था॥

चौ०—‡बहुत दिवस बीते इहि भाँती। जनु सनेह रजु बँधे बराती॥
कौशिक सतानंद तब जाई। कहा विदेह नृपहि समझाई॥

---

† "नृप सब भाँति सराह विभूती" का पाठान्तर "नृप सबराति सराहत बीती" भी है [illegible] अर्थ (१) [illegible] राजा को बड़ाई करते करते (समय) बीत गया, (२) [illegible]

‡ [illegible] जनु सनेह रजु बँधे बराती—राम [illegible] रामायण [illegible] सब प्रीति अधीन भये॥

अर्थ—इस प्रकार बहुत दिन बीत गये और बराती मानो प्रेम की डोरी में बँधे थे (भाव यह कि प्रेम के मारे वे जा नहीं सक्ते थे)। तब विश्वामित्र और सतानंद दोनों ने जाकर जनक राज से समझा के कहा कि—

चौ०—अब दशरथ कहँ आयसु देहू। यद्यपि छाँड़ि न सकहु सनेहू॥
भलेहि नाथ कहि सचिव बुलाये। कहि जय जीव सीस तिन नाये॥

अर्थ—यद्यपि आप प्रेम के कारण उन्हें छोड़ नहीं सक्ते तो भी अब दशरथ जी को जाने की आज्ञा दीजिये। (जनक जी ने कहा) हे प्रभु! ठीक है, और फिर मंत्रियों को बुलवाया जिन्हों ने आते ही 'जय जीव' कह कर सीस नवाया॥

दो०—अवधनाथ चाहत चलन, भीतर करहु जनाउ।
भये प्रेमवश सचिव सुनि, विप्र सभासद राउ॥ २३२॥

अर्थ—(जनक जी बोले) रनवास में खबर करदो कि अवधपति महाराज जाना चाहते हैं। यह सुनकर मंत्री तथा ब्राह्मण और सब समाजों के मुखिया प्रेम में डूब गये॥

(बरात की बिदा)

चौ०—पुरवासनि सुनि चलिहि बराता। पूछत बिकल परस्पर बाता॥
सत्य गवन सुनि सब बिलखाने। मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने॥

अर्थ—जब नगर निवासियों ने बरात की तैयारी सुनी तब तो वे व्याकुल हो एक दूसरे से पूछने लगे और जब जाना कि चलना निश्चय ही हो गया है तब तो सब के सब इस प्रकार कुम्हला गये कि मानो संध्या के समय कमल मुरझा गये हों॥

चौ०—जहँ जहँ आवत बसे बराती। तहँ तहँ सीध चला बहु भाँती॥
बिबिध भाँति मेवा पकवाना। भोजनसाज न जाइ बखाना॥
भरि भरि बसह अपार कहारा। पठये जनक अनेक सुआरा॥

अर्थ—आते समय जहां जहां बरात ठहरी थी वहां वहां बहुत भोजन का सामान भेजा गया। नाना प्रकार के मेवा और पकवान इत्यादि और भी भोजनों की सामग्री जिस का वर्णन नहीं किया जा सकता। बैलों पर लदवा कर और अगणित कहार तथा बहुत से रसोईदार जनक जी ने भिजवा दिये॥

चौ०—†तुरग लाख रथ सहस पचीसा । सकल सँवारे नख अरु सीसा ॥
‡मत्त सहसदस सिंधुर साजे । जिनहिं देखि दिशिकुंजर लाजे ॥
कनक वसन मणि भरि भरि याना । महिषी धेनु वस्तु विधिनाना ॥

अर्थ—एक लाख घोड़े, पचीस हज़ार रथ सब को सिर से पैर तक सजाया। दस हज़ार मस्त हाथी सजवाये जिन को देख कर दिग्गज लज्जित होते थे। सोने के बर्तन और जवाहरात छकड़ों में लाद कर तथा भैंसें, गायें और अनेक प्रकार की सामग्री ॥

दो०—*दाइज अमित न सकिय कहि, दीन्ह विदेह बहोरि ।
जो अवलोकत लोकपति, लोक संपदा थोरि ॥ ३३२ ॥

अर्थ—इतना बे प्रमाण दाइज जनक जी ने फिर से दिया कि उस का वर्णन नहीं हो सक्ता, जिसे देख कर सब लोकों के अधिपतियों को उन के निज लोक की संपत्ति तुच्छ जँचने लगी ॥

---

† तुरग लाख रथ सहस पचीसा—

कवित्त—मुश्की महरोर मौर मव्हर मटौहा मोती लखौरी लखी लाल लीली लहरदारो है।
पंच रङ्ग पीलग पिलंग मुख पट्टन हु बहर विद्वार बादामी पीत तारो है॥
तेलिया तिलक दर तुर्की दरियाई टोप अयलक अचरया औरा नकुल वारो है।
जारद जरद तुकरा नागा रनि लून धूम "लछमणसिंह" छत्तिस तुर वारो है॥

‡ मत्त सहसदस सिंधुर साजे—

कवित्त—कुंजर गणेश मैना दिग्गज गयंद खूनी मुड़िया मतंग भूरा एकदन्त न्यारो है।
भौंरानन्द मदान्ध मुन्नागिरि कज्जल गिरि ऐरावत कुवलय धौलागिरि धारो है॥
भने मन्नूलाल नाम हाथी चांद मूरत है मलयागिरि मकुना गज मतवारो है।
दलगंज नाग गिरि छैदन्ता अङ्गदगिरि कंजा अरु भीला फील भौंरा गिरि कारो है॥

* दायज अमित न सकिय कहि, दीन्ह विदेह बहोरि। रामचन्द्रिका से—

चामर छन्द—मत्त दंति राज राजि बाजि राज राजि कै
हेम हीर मुक्त चीर चारु साज साजि कै॥
बेष बेष बाहिनी अशेष वस्तु शोधियो।
दायजो विदेह राज भांति भांति को दियो॥ १॥
चक्र भौन ज्यों वितान आसने बिछावने।
अस्त्र शस्त्र अङ्ग त्राण भाजनादि को गने॥
दासि दास बाजि बाज पंचपाट को किये।
दायजो विदेहराज भांति भांति को दियो॥ २॥

चौ०—सब समाज इहि भाँति बनाई । जनक अवधपुर दीन्ह पठाई ॥
चलहि बरात सुनत सब रानी । विकल मीनगन जनु लघु पानी ॥

अर्थ—इस प्रकार सब सामग्री तैयार करके जनक जी ने अयोध्यापुरी में पहुँचा दी । जब रानियों ने सुना कि बरात विदा हुई तब तो वे सब की सब इस प्रकार व्याकुल हुई जैसे मछलियां थोड़े पानी में होती हैं ॥

चौ०—+पुनिपुनि सीय गोद करि लेहीं । देइ असीस सिखापन देहीं ॥
होइहु सन्तत पियहि पियारी । चिर अहिवात असीस हमारी ॥
सासु ससुर गुरु सेवा करहू । पतिरुखलखि आयसु अनुसरहू ॥

अर्थ—बारंबार सीता को गोदी में बैठाल कर आशीर्वाद और सिखापन देतीं थीं । हमारा यह आशीर्वाद है कि 'अपने पति की सदा प्यारी होओ और तुम्हारा अहिवात अटल रहे' । सास, ससुर तथा जेठों की सेवा करना और अपने पति का रुख देख आज्ञानुसार बर्ताव करना (यह सिखापन है) ॥

चौ०—अति सनेहबश सखी सयानी । *नारि धर्म सिखवहिं मृदुबानी ॥
सादर सकल कुँअरि समझाई । रानिन्ह बारबार उर लाई ॥

+ पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं । देइ असीस सिखापन देहीं—कुंडलिया रामायण से

कुण्डलिया—रानिन सुता सँवारि कै करुणा सीख सुनाय ।
पतिव्रत धर्महि दृढ़ धरेउ सेयहु सहज सुभाय ॥
सेयहु सहज सुभाय होहु नित स्वामिहि प्यारी ।
सदा सुहागिनि होहु यहै आशिष हमारी ॥
यहै आशिषा देहिं हम सुता अंक उरधारि कै ।
भेंटि भेंटि पायन परैं रानी सुता सँवारि कै ॥

* नारि धर्म सिखवहिं मृदुबानी—महात्मा कण्व जी ने भी अपनी पुत्री शकुन्तला को पति के घर भेजते समय यह शिक्षा दी थी—(शकुन्तला नाटक अं० ४)

दोहा—हे बेटी रनवास में, अब तू पावे बास ।
पति आदर नित कीजियो, अरु शुश्रूषा सास ॥
सखी भाव सौतिनहु तें, भाव सदा ही दीन ।
अपराधि मत हूजियो, भोग्य वस्तु वहि लीन ॥
[illegible] पति आज्ञा करे, तऊ करिय शिर धारि ।
थि रह जो कुलवधू, सोई पतिव्रत नारि ॥

बहुरि बहुरि भेटहिं महतारी। कहहिं विरंचि रची कत नारी॥

अर्थ—बहुत प्रेमवश हो चतुर सखियां भी सुहावनी बानी से स्त्री धर्म की शिक्षा करतीं थीं। रानियों ने प्रेम सहित सब पुत्रियों को समझा कर बारम्बार हृदय से लगाया। फिर फिर से महतारी लड़कियों से भेट करतीं थीं और कहतीं थीं कि ब्रह्मा ने स्त्री काहे को बनाई?

दो०—तेहि अवसर भाइन्ह सहित, राम भानुकुलकेतु।
चले जनकमंदिर मुदित, बिदा करावन हेतु॥ ३३४॥

अर्थ—उसी समय सूर्यवंशियों में शिरोमणि रामचंद्र जी भाइयों समेत बिदा कराने के लिये प्रसन्नता से जनक जी के महलों को चले॥

चौ०—चारिउ भाइ सुभाय सुहाये। नगर नारि नर देखन धाये॥
कोउ कह चलन चहतहहिँ आजू। कीन्ह विदेह बिदा कर साजू॥

अर्थ—चारों भाई स्वभाव ही से सुन्दर थे, इसहेतु नगर के स्त्री पुरुष इन्हें देखने को दौड़े। कोई कोई कहने लगे कि जनक जी ने बिदा की सब सामग्री तैयार कर ली है सो ये आज ही जाने वाले हैं॥

चौ०—×लेहु नयनभरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूपसुत चारी॥
को जानै केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे विधि आनी॥

अर्थ—चारों राजकुमार प्यारे पाहुने हैं, उन के रूप को अपने अपने नेत्रों भर देख लो। हे चतुर सखी! न जाने किस सत्कर्म से विधाता ने इन्हें हम सब के नेत्रों के पाहुने किये॥

चौ०—मरणशील जिमि पाव पियूषा। सुरतरु लहइ जन्म कर भूखा॥
पाव नारकी हरिपद जैसे। इनकर दरशन हम कहँ तैसे॥

शब्दार्थ—मरण शील = जिस का मरना निश्चित है अर्थात् मर्त्य। नारकी = नरक का रहने वाला पापी॥

× लेहु नयन भरि रूप निहारी —
उप उंगला— लै ज्योरी लोचन भर लाहु।
पुरजन परजन मुनिजन हर्षत सियाराम को ब्याह बियाहु।
ऊ या सखी सयानी समझ समझ लिय हैं सब काहु।
व राम जनकपुर रहें हम नहिं नगर अयोध्या जाहु।
परस्पर दोउ मिले नृप दशरथ मिथिलापुर नाहु।

अर्थ—जिस प्रकार मरनहार प्राणी अमृत पाजावे और जन्म से पेट भर खाने को न पाने वाला यदि कल्पवृक्ष को पाजावे। पापी मनुष्य को जिस प्रकार बैकुंठ मिल जावे उसी प्रकार हमें इन के दर्शन हैं (अर्थात् मनुष्य जिस का मरना संसार में निश्चय से होवेहीगा यदि वह दैवयोग से अमर हो जावे तो उसके आनंद का पारावार नहीं है। इसी प्रकार जन्म ही से अधपेटा रहने वाला दरिद्री भी यदि कल्पवृक्ष को पाजावे तो वह चाहे जिस प्रकार भोजन सुख चैन आदि भोग सक्ता है। ऐसे ही नरक के योग्य पापी प्राणी यदि बैकुंठ पाजावे तो उसे अति ही आनंद होता है इसी प्रकार हम लोगों को अत्यंत दुर्लभ दर्शन इन चारों भाइयों के हैं सो हमारे असीम आनंद का क्या ठिकाना है) ॥

चौ०—निरखि रामशोभा उर धरहू। निजमन फणि मूरति मणि करहू॥
इहिविधि सबहि नयनफल देता। गये कुँअर सब राजनिकेता॥

अर्थ—रामचन्द्र जी को देख उनकी शोभा को हृदय में धारण करो, अपने मनरूपी सर्प के लिये उनकी मूर्त्ति का मणि बनालो। (भाव यहकि मणिधारा सर्प अपने मणि के बिना रह नहीं सक्ता वह उसे अपने मस्तक पर धारण किये ही रहता है इसी प्रकार हम सब श्री रामचन्द्र जी की छवि को हृदय से न भूलें) इस प्रकार सब को नेत्रों का फल देते हुए सब राजकुमार राजमहल में गये॥

चौ०—रूपसिंधु सब बंधु लखि, हरषि उठेउ रनिवास।
करहिं निछावरि आरती, महा मुदित मन सास॥ २३५॥

अर्थ—अत्यंत रूपवान् सब भाइयों को देखते ही सब रानियां प्रसन्न हो उठखड़ीं हुईं और सासें तो मन में परम आनन्द से उनकी निछावरि और आरती करने लगीं॥

चौ०—देखि रामछवि अति अनुरागीं। प्रेम विवश पुनि पुनि पद लागीं॥
रही न लाज प्रीति उरछाई। सहज सनेह बरनि किमि जाई॥

अर्थ—रामचन्द्र जी की सुन्दरता को देखकर प्रेम में मग्न होगई और प्यार के कारण बारंबार चरण छूने लगीं। लाज को दबाकर प्रेम हृदय में भरगया उस स्वाभाविक प्रेम का वर्णन कैसे होसक्ता है॥

चौ०—भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाये। †छरस असन अति हेतु जिवाये॥

---

† छरस असन अति हेतु जिवाये—
छन्द—आये कुँअर रनिवास सुनि रानी परम सुख पाइ कै।
लाईं सु सन्मुख आर सों छिप आरती उतराइ कै। (नहिं)

बोले राम सुअवसर जानी। शील सनेह सकुचमय बानी॥

अर्थ—उन्हें भाइयों समेत उबटन लगाकर स्नान करवाया और बड़े प्रेम से पट्रस भोजन करवाये। फिर रामचन्द्र जी उचित समय जानकर शीलता प्रेम और संकोच से भरे हुए वचन बोले॥

चौ०—‡राउ अवधपुर चहत सिधाये। बिदा होन हित हमहि पठाये॥

भरि थाल बहु मणि लाल न्यवछावरि करी चित चाय कै।
लै गईं पुनि शुचि भवन में बहु भाँति मंगल गाय कै॥
पुनि जनक युवतिन रतन जटित सुवर्ण थाल भराय के।
दिय परसि चौकनि पर अनेक प्रकार व्यंजन ल्याय कै॥
पूरी मलाई की धरीं रस भरी बरफी अकबरीं।
गुलगुले रसगुल्ले जलेबी गुलाबैजामुन खरीं॥
उत्तम इमरती अरु अँदरसे रायभोग भलो गनो।
मोदक मदन माखन सु मिसरो खूब खोवा खुल बनो॥
पेठा सु पेड़ा हेसमी नव नकुल घेवर घृत सने।
मनहरन मोहनभोग मोती पाग सीरा शुठि घने॥
भिंडी बघारी भाँति नीकी भटन को भुरता बनो।
परवर मसाले दार भरमा रायतो बहु बिधि ठनो॥
मीठे मुरब्बा आम आदि अचार उत्तम है घना।
बहु भाँति और अनेक व्यंजन नाम कहँ लग मैं गनो॥
कीन्हों कलेवा राम लछिमन आदि शुचि रुचि पाइ के।
कंचन कटोरा नीर निर्मल कियो अचमन आइ के॥
दलदार पीरेपान के बीरे सुवदन चबाइ के।
करि अतर तर वर.वसन बैठे सासु के ढिग जाइ के॥

‡ राउ अवधपुर चहत सिधाये। बिदा होन हित हमहि पठाये—कुंडलिया रामायण से—

कुंडलिया—बिदा हेतु रघुवर गये जनकराय के धाम।
रानिन लखि आसन दियो कीन्हे राम प्रणाम॥
कीन्हे राम प्रणाम कहत मृदुवचन सुहाये।
बिदा दीजिये मोहु नृपति चह अवध सिधाये॥
अवध सिधाये सुनत नृप रानी मुख सूखत भये।
च्वन न मुख पंकज कढ़्यो बिदा हेतु रघुवर गये॥

+मातु मुदितमन आयसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू ॥

अर्थ—राजा जी अयोध्यापुरी को पधारना चाहते हैं उन्हों ने हम लोगों को बिदा मांगने के निमित्त यहां भेजा है । हे माता! प्रसन्न चित्त हो हमें आज्ञा दीजिये और अपने बालक जान हम पर सदा स्नेह करती रहियो ॥

चौ०–सुनत वचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेमवश सासू ॥
हृदय लगाइ कुँअरि सब लीन्हीं। पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्हीं ॥

अर्थ—इन वचनों को सुनकर सब रानियां व्याकुल हो उठीं और सब सासें भी प्रेम के कारण कुछ बोल न सकीं। सब लड़कियों को अपने हृदय से लगाया और उन्हें अपने अपने पतियों के समीप खड़ी करके बहुत बिनती की ॥

छन्द–करि बिनय सिय रामहि समर्पी जोर कर पुनि पुनि कहे।
बलि जाउँ तात सुजान तुम कहँ विदित गति सब की अहे ॥
परिवार पुरजन मोहि राजहि प्राणप्रिय सिय जानबी।
तुलसी सुशील सनेह लखि निज किंकरी करि मानबी ॥

अर्थ—बिनती करके रामचन्द्र जी को सीता सौंप दी और हाथ जोड़ कर बारंबार कहने लगीं। हे ज्ञानवान् प्यारे! मैं तुम्हारी बलैयां लेती हूं तुम्हें तो सब का हाल विदित ही है। कुटुम्बी जनों, पुरवासियों, मुझे तथा राजा जी को जानकी प्राणों की नाईं प्यारी है ऐसा समझो। तुलसीदास जी कहते हैं कि इस की सुशीलता और प्रेम का विचार कर इसे अपनी टहलनी की नाईं समझना ॥

सो०–तुम परिपूरणकाम, ज्ञान शिरोमणि भाव प्रिय।
जनगुनग्राहक राम, दोषदलन करुणायतन ॥ ३३६ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्र जी! तुम सब इच्छाओं से परिपूर्ण, ज्ञानियों में सिरताज, प्रेम के भूखे, भक्तों के गुण जानने वाले, पापों के नाशकर्त्ता और दया के स्थान हो ॥

+ मातु—चाणक्य नीति में लिखा है—

श्लोक—राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्रपत्नी तथैव च।
पत्नीमाता स्वमाता च पंचैता मातरः स्मृताः ॥

अर्थ—रानी, गुरुआइन, पैंहदो मित्र की स्त्री, सास और अपनी माता इन पांचों को माता के तुल्य मानना चाहिये ॥

चौ०—अस कहि रही चरण गहि रानी। प्रेमपंक जनु गिरा समानी ॥
* सुनि सनेहसानी बरबानी। बहु विधि राम सासु सनमानी ॥

अर्थ—ऐसा कहकर रानी जी (रामचन्द्र जी के) चरण पकड़कर रह गईं और उनकी वाणी मानो प्रेमरूपी कीचड़ में फँस गई (अर्थात् प्रेम के मारे बोल रुक गया)॥

चौ०—† राम विदा माँगत कर जोरी। कीन्ह प्रणाम बहोरि बहोरी ॥
पाइ असीस बहुरि शिर नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई ॥

अर्थ—रामचन्द्र जी हाथ जोड़ कर विदा माँगने लगे और बारंबार प्रणाम किया। आशीर्वाद पाकर फिर से शिर नवाकर भाइयों समेत रामचन्द्र जी खड़े हुए ॥

चौ०—मंजु मधुर मूरति उर आनी। भईं सनेह शिथिल सब रानी ॥
पुनि धीरज धरि कुँअरि हँकारी। बार बार भेटहिं महतारी ॥

अर्थ—कोमल मनमोहिनी मूर्त्ति को हृदय में धारण कर सब रानियाँ प्रेम से व्याकुल हो उठीं। फिर माताओं ने धीरज रखकर लड़कियों को बुलाया और वे बारंबार उन से भेट करने लगीं ॥

---

* सुनि सनेहसानी बरबानी। बहु विधि राम सासु सनमानी—जानकी मंगल से—
छन्द—जन जानि करब सनेह बलि कहि दीन वचन सुनावहीं।
अति प्रेम बारहिंबार रानी बालकन्हि उर लावहीं ॥
सिय चलत पुरजन नारि हय गय विहँग मृग व्याकुल भये।
सुनि विनय सासु प्रबोधि तब रघुवंशमणि पितुपहँ गये ॥

† राम बिदा माँगत कर जोरी—श्री रामचन्द्र जी हाथ जोड़कर सास से बिदा माँग रहे थे उस समय सखियाँ मानो सास ही की ओर से उत्तर के मिस आसावरी राग में भारी भरी वाणी से यों गा उठीं—

काहे जाओ रे अवध मनभावना रे।
तुम बिन धीरज नहिं जिय धरि हैं, नैनन ते अँसुआ नित झरि
लिखि लिखि पतियाँ प्यारे हमहिं पठावना रे ॥
जब करि हौं तुव सुरति दुलारे, हुइ हौं विकल लखे बिन प्या
कबहुँ कबहुँ मिथिलापुर महियाँ आवना रे ॥
सुनो हे लाला, "मोदनिवास" भये बेहाल
दरश दिखावना रे ॥

चौ०–पहुँचावहिं फिर मिलहिँ बहोरी। बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी॥
पुनि पुनि मिलति सखिन्ह बिलगाई। बालवच्छ जिमि धेनु लवाई॥

अर्थ—विदा करदेतीं थीं और फिर भेंट करने लगतीं थीं इस प्रकार आपस का (अर्थात् माताओं और पुत्रियों का) प्रेम कुछ कमती न बढ़ा (अर्थात् बहुत बढ़गया)। फिर सखियों से अलग होकर भी मिलतीं थीं जिस प्रकार हाल की बियानी गाय छोटी बछिया से मिले॥

दो०–प्रेमबिवश नरनारि सब, सखिन्ह सहित रनिवास।
मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर, ‡ करुणाबिरह निवास॥ ३३७॥

अर्थ—इस प्रेम को देखकर सब स्त्री पुरुष तथा सखियों समेत सब रानियां इस प्रकार जँच पड़ीं कि मानो बिदेहनगर में करुणारस और बिछोह का दुःख आन बसा हो॥

चौ०–शुक सारिका जानकी ज्याये। कनक पींजरन राखि पढ़ाये॥
व्याकुल कहहिँ कहां वैदेही। सुनि धीरज परिहरै न केही॥

अर्थ—तोता और मैना जिन्हें जानकी जी ने पाला था और सोने के पींजरों में रख कर पढ़ाया था। वे व्याकुल होकर कहते थे कि 'वैदेही कहां हैं'? यह सुन कर ऐसा कौन है जिस का धीरज न छूटे॥

चौ०–×भये बिकल खग मृग इहिभाँती। मनुज दशा कैसे कहि जाती॥
बंधु समेत जनक तब आये। प्रेम उमगि लोचन जल छाये॥

अर्थ—पशु पक्षी इस प्रकार व्याकुल हुए तो मनुष्यों की दशा का वर्णन कैसे

---

‡ करुणाविरह निवास—पुत्रियों को विदा के समय विवाह का आनन्द तो अवधपुर का प्रस्थान करगया और उसके स्थान में थोड़े काल के लिये माना करुणा और विरह आ बसे। जैसा कहा है कि—

दो०—छूटि आव देखो जहां, सुख के सबै उपाय।
उपजत करुणारस तहां, कापुन ते मनुभाय॥

× भये बिकल खग मृग इहि भाँती। मनुज दशा कैसे कहि जाती—[illegible] रामायण से—

तोटक छन्द—पशु पक्षिहु ने कति हो बिकरें। मन हो मन सोच करे कहरें॥
कह बालक वृद्ध कहा बरणा। [illegible] [illegible] [illegible]॥

किया जावे। इतने में कुशध्वज समेत जनक जी आये जिन के नेत्रों में प्रेम के कारण आंसू भर आये॥

चौ०—सीय विलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम विरागी॥
+लीन्हि राय उर लाय जानकी। मिटी महा मर्याद ज्ञान की॥

अर्थ—सीता जी को देखते ही उन का धीरज उड़ गया यद्यपि वे बड़े ही विरक्त कहे जाते थे। जनक जी ने जानकी को हृदय से लगा लिया उस समय उन के ज्ञान की बड़ी मर्यादा न रही॥

चौ०—*समझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह विचार अनवसर जाने॥
बारहिंबार सुता उर लाई। सजि सुंदर पालकी मँगाई॥

अर्थ—तब चतुर मंत्री समझाने लगे तो उन्हों ने कुसमय जान कर विचार किया। बारम्बार पुत्री को हृदय से लगाया और सुन्दर पालकी सजवा कर मँगवाई॥

दो०—प्रेम विवश परिवार सब, जानि सुलग्न नरेश।
†कुँअरि चढ़ाई पालकिन्ह, सुमिरे सिद्ध गनेश॥ ३३८॥

+ लीन्ह राय उर लाय जानकी। कुंडलिया रामायण से—

कुंडलिया—जनक नयन धारा बहै सुता लिये उर लाय।
सिय कंठा छोड़त नहीं जनक न त्यागी जाय॥
जनक न त्यागी जाय सिया समझावत राजै।
धीरज धर्म परान ज्ञान गुण ध्यान समाजै॥
ध्यान समाज न लाज रह लुटत जगत रोवत गहै।
मातु गरै पुनि पितु गरै जनक नयन धारा बहै॥

* समझावत सब सचिव सयाने—

दादरा—प्रीति के कोइ फन्दे परो ना॥ टेक॥
बरसत नयन दरस बिन तरसत मिलन वियोग भये फिर रोना॥ १॥
कोउ फिर कोटि मनहिं समझाये कैसेहु धीरज जात धरो ना॥ २॥
निशि दिन सालत निरखत पद बिछुरन काम कर्म बस रोय मरो ना॥ ३॥
गोप छिपे "बलदेव" कोउ प्रभु नाहक तन बरबाद करो ना॥ ४॥

† कुँअरि चढ़ाई पालकिन्ह।
सिय डोली प्यारी चली ससुरारी मेरे कुटुँब परिवार हो॥ टेक॥
जनक [illegible] की [illegible] है [illegible] अरद [illegible] हो।
—[illegible] ([illegible])

अर्थ—सब कुटुम्ब के लोग प्रेम में डूबे थे, राजा जी ने उत्तम मुहूर्त जान कर लड़कियों को सिद्ध गणेश का सुमिरन कर पालकी में बिठाया॥

चौ०—‡बहु विधि भूप सुता समझाई। नारिधर्म कुलरीति सिखाई॥
दासी दास दिये बहुतेरे। शुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे॥

अर्थ—राजा जनक ने अनेक प्रकार से सीता को समझाया, और स्त्रियों के धर्म तथा अपने कुल की रीति सिखलाई और बहुत से दासी तथा दास के रूप में उत्तम सेवक जिन्हें सीता जी चाहती थीं साथ कर दिये॥

चौ०—सीय चलत व्याकुल पुरवासी। होहिं शकुन शुभ मंगलरासी॥
भूसुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा॥

अर्थ—सीता जी की विदा के समय जनकपुर के लोग व्याकुल हुए उस समय मङ्गलीक शकुन होने लगे। जनक जी ब्राह्मणों, मंत्रियों और सभा राजों समेत पहुँचाने के हेतु साथ हो लिये॥

छत्र चमर लिय संग में दासी पावत [illegible] मुदार हो।
जो कहुँ उड़त पवन से पर्दा होन न देत [illegible] हो।
शिविकन के चहुँ ओर तिलगे गजरथ तुरंग सवार हो।
लखि "बलदेव" सुमन सुर बरसत [illegible] हो।

‡ बहु विधि भूप सुता समझाई। नारिधर्म कुलरीति सिखाई—[illegible]

चौ०—पुत्री तोहि यह कर पाती। मन [illegible] मानस [illegible]।
[illegible] मिथिला की सुध [illegible]। सास ससुर सेवा मन [illegible]।
रहनी सदा होय जस आसो। इहि विधि [illegible]।
दो०—राग [illegible] द्वेष तजि, पति सेवा मन [illegible]।
समय पाय सुख दुख सहब, [illegible]।

और भी—अभ्युत्थानमुपागते [illegible] तद्भाषणे [illegible]।
तत्पादार्पित दृष्टिरासन विधिस्तस्योपचर्या स्वयम्।
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो [illegible]।
प्राच्यैः पुत्रि निवेदिताः कुलवधू सिद्धान्त [illegible]।

अर्थात् जिस समय पति घर में आवें उस समय [illegible] पति के साथ बात चीत करना, उनके चरणों में चित्त लगाये हुए [illegible] सेवा स्वतः करना, उनके सो जाने पर सोना तथा [illegible] ये कुलवान् बधूटियों के लिये यही धर्म बतला दिया है।

किया जावे। इतने में कुशध्वज समेत जनक भी आये जिन के नेत्रों में प्रेम के आंसू भर आये ॥

चौ०—सीय विलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम विरागी ॥
+लीन्हि राय उर लाय जानकी। मिटी महा मर्याद ज्ञान की ॥

अर्थ—सीता जी को देखते ही उन का धीरज उड़ गया यद्यपि वे बड़े ही विरक्त कहे जाते थे। जनक जी ने जानकी को हृदय से लगा लिया उस समय उन के ज्ञान की बड़ी मर्यादा न रही ॥

चौ०—*समझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह विचार अनवसर जाने ॥
बारहिंबार सुता उर लाई। सजि सुंदर पालकी मँगाई ॥

अर्थ—तब चतुर मंत्री समझाने लगे तो उन्हों ने कुसमय जान कर विचार किया। बारम्बार पुत्री को हृदय से लगाया और सुन्दर पालकी सजवा कर मँगवाई ॥

दो०—प्रेम विवश परिवार सब, जानि सुलग्न नरेश।
†कुँअरि चढ़ाई पालकिन्ह, सुमिरे सिद्ध गनेश ॥ ३३८ ॥

+ लीन्ह राय उर लाय जानकी। कुंडलिया रामायण से—

कुंडलिया—जनक नयन धारा बहैं सुता लिये उर लाय।
सिय कंठा छोड़त नहीं जनक न त्यागी जाय ॥
जनक न त्यागी जाय सिया समझावत राजै।
धीरज धर्म पुरान ज्ञान गुण ध्यान समाजै ॥
ध्यान समाज न लाज रह छुटत लगत रोवत गहे।
मातु गरे पुनि पितु गरे जनक नयन धारा बहे ॥

* समझावत सब सचिव सयाने—

दादरा—प्रीति के कोइ फन्दे पगो ना ॥ टेक ॥
बरसत नयन दरस बिन तरसत मिलत वियोग भये फिर रोना ॥ १ ॥
कोउ फिर कोटि मर्याद समझावे कैसेहु धीरज जात धरो ना ॥ २ ॥
निशि दिन सरिस मिलन अरु बिछुरन काल कर्म वश रोय मरो ना ॥ ३ ॥
सोच किये "बलदेव" कौन फल नाहक तन बरबाद करो ना ॥ ४ ॥

† कुँअरि चढ़ाई पालकिन्ह।—

राग पूर्वी—पिय सँग प्यारी चलीं ससुरारी भेट कुटुँब परिवार हो ॥ टेक ॥
कनक रतन की बनी है पालकी जरद जड़ाऊ ओहार हो।
झलकत कलश सुरज के सम से पचरँग लगे हैं कहार हो ॥ (लव नगर)

अर्थ—सब कुटुम्ब के लोग प्रेम में डूबे थे, राजा जी ने उत्तम मुहूर्त जान कर लड़कियों को सिद्ध गणेश का सुमिरन कर पालकी में बिठाया॥

चौ०—‡बहु विधि भूप सुता समझाई। नारिधर्म कुलरीति सिखाई॥
दासी दास दिये बहुतेरे। शुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे॥

अर्थ—राजा जनक ने अनेक प्रकार से सीता को समझाया, और स्त्रियों के धर्म तथा अपने कुल की रीति सिखलाई और बहुत से दासी तथा दास के रूप में उत्तम सेवक जिन्हें सीता जी चाहती थीं साथ कर दिये॥

चौ०—सीय चलत व्याकुल पुरवासी। होहिं शकुन शुभ मंगलरासी॥
भूसुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा॥

अर्थ—सीता जी की विदा के समय जनकपुर के लोग व्याकुल हुए उस समय मङ्गलीक शकुन होने लगे। जनक जी ब्राह्मणों, मंत्रियों और सभा वालों समेत पहुँचाने के हेतु साथ हो लिये॥

छत्र चमर लिय संग में दासी धावत लागि गुहार हो।
जो कहुँ उड़त पवन से परदा होन न देति उघार हो॥
शिविकन के चहुँओर विलगे गजरथ तुरंग सवार हो।
लखि "बलदेव" सुमन सुर बर्षत बरणि न जात बहार हो॥

‡ बहु विधि भूप सुता समझाई। नारिधर्म कुलरीति सिखाई—राम रत्नाकर रामायण में—

चौ०—पुत्री तोहि यत्न कर पाली। मम मन मानस राजमराली॥
जयकय मिथिला की सुध कीजो। सास ससुर सेवा मन दीजो॥
रहनी सदा होय जस आली। इहि विधि जनक कहत दुहिता सों॥

दो०—राग असूया द्वेष तजि, पति सेवा मन लाय।
समय पाय सुख दुख सहन, कीजो नेह बढ़ाय॥

और भी—अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता।
तत्पादार्पित दृष्टिरासन विधिस्तस्योपचर्या स्वयम्॥
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति।
प्राच्यैः पुत्रि निवेदितः कुलवधू सिद्धान्त धर्मागमः॥

अर्थात् जिस समय पति घर में आवें उस समय खड़े होकर उठना और नम्रता पूर्वक पति के साथ बात चीत करना, उनके चरणों में चित्त लगाये हुए [illegible] उनकी सेवा स्वतः करना, उनके सो जाने पर सोना तथा उन से पहिले उठना, हे पुत्री! [illegible] से कुलवान् वधूटियों के लिये यही धर्म बताया गया है।

चौ०—समय विलोकि वाजने वाजे। रथ गज वाजि वरातिन्ह साजे
दशरथ विप्र वोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरण कीन्हे

अर्थ—सुअवसर देख कर वाजे वजने लगे और बरातियों ने रथ, हाथी, घोड़े तैयार किये। दशरथ जी ने सब ब्राह्मणों को बुला लिया और उन को द्रव्य तथा आदर सन्मान दे सन्तुष्ट किया ॥

चौ०—चरणसरोज धूरि धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा
सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना। मंगलमूलशकुन भये नाना

अर्थ—दशरथ जी ब्राह्मणों के कमलस्वरूपी चरणों की धूल को सिर पर धारण कर तथा उन से आशीर्वाद पाय प्रसन्न हो गनपति जी का स्मरण कर चले, उस समय नाना प्रकार के मङ्गलीक शकुन होने लगे ॥

दो०—सुर प्रसून वरषहिं हरषि, करहिं अप्सरा गान।
चले अवधपति अवधपुर, मुदित वजाइ निशान ॥ ३३६ ॥

अर्थ—देवता प्रसन्नतापूर्वक फूल बरसाने लगे और अप्सरायें गाने लगीं तब दशरथ जी प्रसन्न चित्त से नगाड़े बजवाते हुए अयोध्यापुरी को चले ॥

चौ०—नृप करि विनय महाजन फेरे। सादर सकल मँागने टेरे॥
भूषण वसन वाजि गज दीन्हे। प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे॥

अर्थ—दशरथ जी ने नम्रतापूर्वक सब महाजनों को लौटाया और आदर सहित सब मँागने वालों को बुलाया। उन को गहने, कपड़े, घोड़े और हाथी दिये तथा प्रेम से संतुष्ट कर सब को ठहरा रक्खा ॥

चौ०—वारवार विरदावलि भाखी। फिरे सकल रामहि उर राखी॥
वहुरि वहुरि कोशलपति कहहीं। जनक प्रेम वश फिरन न चहहीं॥

अर्थ—बारम्बार वंशावली वर्णन कर सब के सब रामचन्द्र जी को हृदय में रख कर लौटे। दशरथ जी बारबार लौटने को कहते थे परन्तु जनक जी प्रेम के कारण लौटना नहीं चाहते थे ॥

चौ०—पुनि कह भूपति वचन सुहाये। फिरिय महीप दूरि वड़ि आये॥
राउ वहोरि उतरि भे ठाढ़े। प्रेमप्रवाह विलोचन वाढ़े॥

अर्थ—फिर भी दशरथ जी मनोहर वचन कहने लगे कि हे राजन्! बहुत दूर आ गये अब लौटिये। फिर राजा भी सवारी से उतर कर खड़े हुए, उन के नेत्रों से प्रेम के [illegible] बहने लगे ॥

चौ०—तब विदेह बोले कर जोरी। वचन सनेह सुधा जनु बोरी॥
करउँ कवन विधि विनय बनाई। महाराज मोहि दीन्हि बड़ाई॥

अर्थ—तब जनक जी हाथ जोड़ कर बोले मानो उन के वचन प्रेमरूपी अमृत में डूबे हों। मैं किस प्रकार से विनय वर्णन करूं, हे महाराज! आप ने मुझे बड़प्पन दिया॥

दो०—कोशलपति समधी सजन, सनमाने सब भाँति।
×मिलन परस्पर विनय अति, प्रीति न हृदय समाति॥ ३४०॥

अर्थ—दशरथजी ने अपने स्वजन तथा समधी जनक जी का सब प्रकार से मान रक्खा। दोनों महाराज की आपस की नम्रता और प्रीति हृदय में नहीं समाती थी॥

चौ०—मुनि मंडलिहि जनक सिरनावा। आसिरवाद सबहि सन पावा॥
सादर पुनि भेंटे जामाता। रूप शील गुन निधि सब भ्राता॥

अर्थ—जनक जी ने मुनियों की समाज को सीस नवाया और सभी से आशीर्वाद पाया। फिर आदरपूर्वक सब जमाइयों से मिले, जो चारों भाई रूपवान शीलवान, और गुणनिधान थे॥

चौ०—जोरि पंकरुह पानि सुहाये। बोले वचन प्रेम जनु जाये॥
राम करउँ केहि भाँति प्रशंसा। मुनि महेश मन मानस हंसा॥

अर्थ—कमलस्वरूपी हाथों को जोड़ कर ऐसे सुहावने वचन बोले कि मानों वे वचन प्रेम से उत्पन्न हुए हों (अर्थात् उन वचनों में प्रेम ही प्रेम भरा था)। (वे बोले) हे रामचन्द्र जी! मैं आप की बड़ाई किस प्रकार से करूं आप मुनियों तथा महादेव जी के मनरूपी तालाब में हंस के समान हैं (अर्थात् आप मुनियों और महादेव जी के हृदय में सदैव बने रहते हो जिस प्रकार हंस मानसरोवर नहीं त्यागता)॥

चौ०—करहिं योग योगी जेहि लागी। कोह मोह ममता मद त्यागी॥
व्यापक ब्रह्म अलख अविनासी। चिदानंद निर्गुण गुणरासी॥

अर्थ—योगीजन क्रोध, मोह ममता और मद को त्याग कर जिस के हेतु योग का अभ्यास करते हैं जो सब में व्याप्त ब्रह्म चित् और आनन्द से परिपूर्ण ब्रह्म, रज और तम तीनों गुणों से रहित तथा सम्पूर्ण सद्गुणों के स्थान हैं॥

चौ०—तब विदेह बोले कर जोरी। वचन सनेह सुधा जनु बोरी॥
करउँ कवन विधि विनय बनाई। महाराज मोहि दीन्हि बड़ाई॥

अर्थ—तब जनक जी हाथ जोड़ कर बोले मानो उन के वचन प्रेमरूपी अमृत में डूबे हों। मैं किस प्रकार से विनय वर्णन करूं, हे महाराज! आप ने मुझे बड़प्पन दिया॥

दो०—कोशलपति समधी सजन, सनमाने सब भाँति।
×मिलन परस्पर विनय अति, प्रीति न हृदय समाति॥ ३४०॥

अर्थ—दशरथजी ने अपने स्वजन तथा समधी जनक जी का सब प्रकार से मान रक्खा। दोनों महाराज की आपस की नम्रता और प्रीति हृदय में नहीं समाती थी॥

चौ०—मुनि मंडलिहि जनक सिरनावा। आसिरबाद सबहि सन पावा॥
सादर पुनि भेंटे जामाता। रूप शील गुन निधि सब भ्राता॥

अर्थ—जनक जी ने मुनियों की समाज को सीस नवाया और सभी से आशीर्वाद पाया। फिर आदरपूर्वक सब जमाइयों से मिले, जो चारों भाई रूप, शीलवान, और गुणनिधान थे॥

चौ०—जोरि पंकरुह पानि सुहाये। बोले वचन प्रेम जनु जाये॥
राम करउँ केहि भाँति प्रशंसा। मुनि महेश मन मानस हंसा॥

अर्थ—कमलस्वरूपी हाथों को जोड़ कर प्रेम सुहावने वचन बोले। जैसे मानो वे वचन प्रेम से उत्पन्न हुए हों (अर्थात् उन वचनों में प्रेम ही प्रेम भरा था)। (वे बोले) हे रामचन्द्र जी! मैं आप की बड़ाई किस प्रकार से कह सकता हूँ॥ आप मुनि तथा महादेव जी के मनरूपी तालाब में हंस के समान हैं (अर्थात् मुनि और महादेव जी के हृदय में सदैव बने रहते हो जिस प्रकार हंस मानसरोवर नहीं त्यागता)॥

चौ०—करहिं योग योगी जेहि लागी। कोह मोह ममता मद त्यागी॥
व्यापक ब्रह्म अलख अविनाशी। चिदानंद निर्गुण गुणराशी॥

अर्थ—योगीजन क्रोध, मोह ममता और मद को त्याग कर जिन के हेतु योग का अभ्यास करते हैं जो सब में व्याप्त ब्रह्म चित् और आनन्द से परिपूर्ण हैं, तीनों गुणों से रहित तथा सम्पूर्ण सद्गुणों के स्थान हैं॥

चौ०—मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमान
महिमा निगम नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एक रस अह

अर्थ—जिस को न तो मन और न वाणी भी ठीक ठीक जानती और स
पदार्थों का अनुमान करके भी आप के बारे में तर्क भी नहीं बांध सके।
के महत्व को वेद भी "नेति" कह कर वर्णन करते हैं तथा जो भूत, वर्त्तमान, अ
भविष्यत तीनों काल में एक ही से रहते हैं ॥

दो०—नयन विषय मो कहँ भयउ, सो समस्त सुख मूल।
सबहि लाभ जग जीव कहँ, भये ईश अनुकूल ॥ ३४॥

अर्थ—ऐसे सम्पूर्ण सुखों के आदि कारण आप मेरे नेत्रों के विषय हुए (अर्था
मैं ने अपने नेत्रों से आप के दर्शन किये) संसार में जीव को सब ही प्रकार के लाभ
मिलते हैं यदि ईश्वर उस पर प्रसन्न होवे ॥

चौ०—सबहि भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई॥
†होहिं सहसदस शारद शेषा। करहिं कल्प कोटिक भरि लेखा॥
मोर भाग्य राउर गुणगाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघनाथा॥

अर्थ—आप ने मुझे सब प्रकार से बड़प्पन दिया और अपना भक्त जान मुझे
अपना कर लिया। यदि दशहज़ार सरस्वती और शेषनाग भी इकट्ठे हो जावें तथा
करोड़ों कल्प तक हिसाब करते रहें (तौ भी) हे रामचन्द्र जी सुनिये! वे न तो मेरा
भाग्य और न आप के गुणानुवाद कह सकेंगे ॥

चौ०—मैं कछु कहउँ एक बल मोरे। तुम रीझहु सनेह सुठि थो
‡बार बार मांगहुँ कर जोरे। मन परिहरै चरण जनि भो

† होहिं सहसदश शारद शेषा। करहिं कल्प कोटिक भर लेखा—रामचंद्र जी नि
, उन में तूने दोष कहां से पाया जो उन्हें बनवास दिलाया ऐसा वचन भरत जी ने कै
कहा था —

पद—रामचंद्र महँ दोष गुणत विधि कै अकाश की पाटी।
दिये शून्य सोई इहि उडुगन अवलि न जब इहि आँटी॥
लखि श्रम खेद खरी भरि दीन्ही सोई शशि यह भायो।
"विश्वनाथ" उन खोजि न पायो तैं बताव कहँ पायो॥

‡ बार बार मांगहुँ कर जोरे। मन परिहरै चरण जनि भोरे—
रागदेश—हे अच्युत हे पारब्रह्म अविनाशी अघनास।
हे पूरण हे सर्व में ... गुण तास॥

अर्थ—मैं जो कुछ कहता हूँ सो मुझे केवल एक ही आधार है और वह यह आप थोड़े परन्तु सच्चे प्रेम से प्रसन्न हो जाते हैं। मैं वारम्वार हाथ जोड़कर य मांगता हूं कि मेरा चित्त आप के चरणों को धोखे से भी न भूलने पावे॥

चौ०–सुनि वर वचन प्रेम जनु पोपे। पूरणकाम राम परितोपे
करि वर विनय ससुर सनमाने। पितु कौशिक वशिष्ठ समजाने।

अर्थ—ऐसे सुहावने वचनों को जो मानो प्रीति से परिपूर्ण थे सुनकर कामनारहि रामचन्द्र जी संतुष्ट हुए। उन्हों ने भली भाँति विनती कर जनक जी का आदर किय और उन्हें पिता दशरथ जी तथा विश्वामित्र और वशिष्ठ के समान माना॥

चौ०–विनती बहुरि भरत सन कीन्ही। मिलि सप्रेम पुनि आशिष दीन्ही॥

अर्थ—फिर जनक जी ने भरत जी से विनय की और उन से प्रीति सहित भेंट कर उन्हें आशीर्वाद दिया॥

दो०–मिले लपन रिपुसूदनहि, दीन्हि असीस महीस।
भये परस्पर प्रेमवश, फिर फिरि नावहिं सीस॥ ३४२

अर्थ—फिर जनक जी लक्ष्मण और शत्रुघ्न से मिले और उन्हें आशीर्वाद फिर आपस में प्रेम के मारे वार वार सीस नवाने लगे॥

चौ०–वार वार करि विनय बड़ाई। रघुपति चले संग सब भा
जनक गहे कौशिकपद जाई। चरणरेणु शिर नयनन्ह ला

अर्थ—वारम्वार विनती और बड़ाई करके रामचन्द्र जी भाइयों समेत आग च जनक जी ने जाकर विश्वामित्र जी के चरण गहे और चरण रज को शिर तथा न से लगाया॥

हे संगी हे निरंकार हे निर्गुण सब टेक।
हे गोविंद हे गुणनिधान जा के सदा विवेक।
हे अपरम्पार हर हरे है भी होवन हार।
हे सन्तन के सदा संग निराधार आधार।
हे ठाकुर हौं दास रो मैं निर्गुन गुण नहि कोय।
नानक दीजै नाम दान राखौं हिये पिरोय।

शब्दार्थ—जनेत (सं० जन्य) = बरात ॥

अर्थ—मार्ग के उत्तम स्थानों में डेरा करते हुए तथा मार्ग के लोगों को सु
हुए शुभ दिन को बराती अयोध्या नगर के निकट आ पहुँचे ॥

(बरात का अयोध्या में लौट आना)

चौ०—हने निशान पनव वर बाजे । भेरि शंख धुनि हय गय गा
झांझ मृदंग डिमडिमी सुहाई । सरसराग बाजहिं सहन

अर्थ—तब नगाड़े, ढोल और उत्तम बाजे बजने लगे तथा तुरही और शं
ध्वनि हुई, घोड़े हिनहिनाने लगे और हाथी चिंघाड़ने लगे । झांझ, मृदंग,
डुग्गी बजी, तथा सुरीले रागों समेत सहनाई बजने लगीं ॥

चौ०—पुरजन आवत अकनि बराता । मुदित सकल पुलकावलि गात
निज निज सुंदर सदन सँवारे । हाट बाट चौहट पुरद्वा

अर्थ—जब अयोध्यावासियों ने बरात का आना सुना तब तो वे सब के सब ऐसे
हुए कि शरीर के रोम खड़े हो आये । अपने अपने घरों को तथा बाजारों, रास्तों,
राहों, गांवों और नगर के दरवाज़ों को भली भाँति से सजाने लगे ॥

चौ०—गली सकल अरगजा सिंचाई । जहँ तहँ चौकें चारु पुरा
बना बजार न जाइ बखाना । तोरण केतु पताक बिताना

अर्थ—सम्पूर्ण गलियों में अरगजा छिड़कवा दिया । और ठौर ठौर सुन्दर
पुरवाये । बाज़ार बन्दनवारों, झंडों, पताकों और चँदवों से इस प्रकार स
गया था कि उस का वर्णन नहीं हो सक्ता ॥

चौ०—सफल पुंगफल कदलि रसाला । रोपे बकुल कदंब तमाला
लगे सुभग तरु परसत धरनी । मणिमय आलबाल कलकरनी

शब्दार्थ—आलबाल = वृक्षों का थाला । कलकरनी = सुन्दर कारीगरी ॥

अर्थ—फल लगे सुपारी, केले और आम के वृक्ष, मौलश्री, कदम्ब और तमाल
वृक्ष लगाये । ये मनोहर रोपे हुए वृक्ष पृथ्वी को छुए लेते थे, जिन के थाले म
सुन्दर कारीगरी से बनाये गये थे ॥

दो०—विविध भांति मंगल कलश, गृह गृह रचे सँवारि ।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब, रघुबरपुरी निहारि ॥ ३६८ ॥

दो०—†सुन मुनीश वर दर्शन तोरे। अगम न कछु प्रतीति मन मोरे॥
जो सुख सुयश लोकपति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं॥
सो सुख सुयश सुलभ मोहि स्वामी। सब सिधि तव दर्शन अनुगामी॥
कीन्ह विनय पुनि पुनि शिर नाई। फिरे महीपति आसिष पाई॥

अर्थ—हे मुनिराज सुनिये! आप के शुभ दर्शनों से कुछ भी दुर्लभ नहीं है ऐसा विश्वास मेरे मन में है। जिस सुख और सुकीर्त्ति को लोकपाल चाहा करते हैं और उस के पाने की इच्छा से मन में सकुचते रहते हैं। हे स्वामी! वही सुख और उत्तम कीर्त्ति मुझे सहज ही में मिलगई। आप के दर्शनों ही के पीछे पीछे सब सिद्धियां दौड़ा करती हैं (भाव यह कि आप के दर्शन जिसे मिल जायँ उसे सब सिद्धियां अनायास ही मिल जाती हैं) विनती की और बार बार सीस नवाकर आशीर्वाद पाकर के जनक जी लौटे॥

दो०—चली बरात निशान बजाई। मुदित छोट बड़ सब समुदाई॥
‡रामहि निरखि ग्राम नर नारी। पाइ नयन फल होहिं सुखारी॥

अर्थ—नक्कारे पर चोब दे बरात चल खड़ी हुई, सभी छोटे बड़े प्राणी आनन्दित थे। मार्ग के ग्रामवासी स्त्री पुरुष रामचन्द्र जी को देखकर नेत्रों का फल पा करके सुखी होते थे॥

दो०—बीच बीच वर वास करि, मग लोगन्ह सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन, पहुँची आइ जनेत॥ ३४३॥

---

† सुन मुनीश वर दर्शन तोरे। अगम न कछु प्रतीत मन मोरे—
सवैया—सिद्ध समाज सजै अजहूं न कहूं जग योगिन देखन पाई।
रुद्र के चित्त समुद्र बसै नित ब्रह्म हुँ पै बरनी जो न आई॥
रूप न रंग नरेश विशेष अनादि अनंत जो वेदन गाई।
"देशन" गाधि के नंद तुम्हीं यह ज्योति सो मूरतिवंत दिखाई॥
‡ रामहि निरखि ग्राम नर नारी। पाइ नयन फल होहि सुखारी—प्रेम पियूष धारा से—
कजरी—सखोरी श्यामल गौर किशोर, यही अवधेश दुलारे हैं॥
आनन कलकमल छबि राजैं, दृग रतनारे हैं॥
अलिपतियां इव केश कटीलों, लटकत कारे हैं॥
जात चले मन लेइ सखीरी, पथिक पियारे हैं॥
मोहनिदास सखी प्रीतम दोउ, दृग के तारे हैं॥

दो॰–दिये दान विप्रन्ह विपुल, पूजि गणेश पुरारि।
प्रमुदित परमदरिद्र जनु, पाइ पदारथ चारि॥ ३४५॥

अर्थ—गणेश जी तथा महादेव जी का पूजन कर ब्राह्मणों को बहुत सा दान दिया और ऐसी प्रसन्न हुईं कि मानो महादरिद्री चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) पाकर फूला न समाता हो॥

चौ॰–प्रेमप्रमोदविवश सब माता। चलहिं न चरण शिथिल भये गाता॥
रामदरश हित अतिअनुरागीं। परिछनि साज सजन सब लागीं॥

अर्थ—सम्पूर्ण माताएँ प्रेम और बहुत ही आनन्द में ऐसी मग्न हो गई थीं कि उन का शरीर शिथिल हो जाने से आगे को पैर नहीं उठते थे। वे रामचन्द्र जी के दर्शनों के लिये बड़ी प्रेमातुर हुईं और सब आरती की सामग्री तैयार करने लगीं॥

चौ॰–विविधविधान बाजने बाजे। मंगल मुदित सुमित्रा साजे॥
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगलमूला॥

अर्थ—नाना प्रकार के बाजे बजने लगे और सुमित्रा जी ने हर्ष से मंगलीक द्रव्य इकट्ठे किये। जैसे—मंगलकारी पदार्थ हल्दी, दूब, दही, पत्ते, फूल, पान, सुपारी....

चौ॰–‡अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा॥
छुहे पुरटघट सहज सुहाये। मदन शकुन जनु नीड़ बनाये॥

शब्दार्थ—रोचन = रोली। लाजा = खील, लाई। छुहे = रंगीन। पुरटघट = सोने के घड़े। शकुन = पक्षी। नीड़ = घोंसला॥

अर्थ—समूचे चांवल, जौ आदि के अंकुर, रोली, लाई और तुलसी की कोमल मंजरी थी। सुनहरे घड़े रंगे हुए सहज ही में शोभायमान थे, मानों कामदेवरूपी पक्षी ने अपने रहने को घोंसला बनाये हों (कि उन में छिपकर राम जानकी के दर्शन करता रहे)॥

---

‡ अच्छत अंकुर रोचन लाजा—
भजन—सहित बरात भूप दल आवैं।
छोट बड़ेर पुत्र रघुबर लखत मातु रहसि बिहसि कर धावैं॥
बड़ी बड़ी कोचन फल ढोंडे सब आनंद निति गाहीं।
अच्छत रहीं कुँवर दुलिहे कों, दपक कपुर पंज माहीं॥
बतरहि पढ़हि मदन हलधरि मानव सुख किमि कहिये।
[illegible]

अर्थ—भाँति भाँति के मंगलीक कलश घर घर उत्तम रीति से भगाये गये समय राम जी की पुरी को देख कर ब्रह्मा आदि सब देवता प्रसन्न होते थे ॥

चौ०—भूपभवन तेहि अवसर सोहा। रचना देखि मदन मन मो
मंगल शकुन मनोहरताई। ऋधि सिधि सुख संपदा सुह

अर्थ—उस समय राजमहल इस प्रकार शोभायमान था कि उस की र देख कर कामदेव का मन मोहित होगया। सम्पूर्ण मंगल, शकुन और सुन्दरता सिद्धि सुख और सुहावनी धन सम्पत्ति ·· ·· ·· ·· ·· ··

चौ०—जनु उछाह सब सहज सुहाये। तनु धरि धरि दशरथ गृह आ
देखन हेतु राम वैदेही। कहहु लालसा होइ न केहि

अर्थ—मानो सभी उत्साह स्वभाव ही से उत्तम रूप धारण करके द जी के महलों में आ गये हों। रामचन्द्र और सीता जी के दर्शनों की इच्छा कहो न होगी ? (अर्थात् सब हो सीता राम जी के दर्शनों की इच्छा रखते हैं) ॥

चौ०-यूथयूथ मिलिचली सुआसिनि। निजछवि निदरहिं मदन विलासिनि
†सकल सुमंगल सजे आरती। गावहिं जनु बहु वेप भारती

अर्थ—स्त्रियां झुंड के झुंड बांध कर चलीं जो अपनी छटा के साम्हने रति शोभा को मात करतीं थीं। सम्पूर्ण आरती लिये इस प्रकार गा रहीं थीं मानो सरस्वत जी बहुत से रूप धारण किये हों ॥

चौ०—भूपतिभवन कोलाहल होई। जाइ न बरनि समय सुख सोई॥
कौशल्यादि राममहतारी। प्रेमविवश तनुदशा बिसारी॥

अर्थ—राजा जी के महलों में खूब धूमधाम होरही थी उस समय का आनन्द कहने में नहीं आता। कौशल्या आदि रामचन्द्र की माताओं ने प्रेम के मारे शरीर की सुध बिसार दी ॥

---

† सकल सुमंगल सजे आरती—

कवित्त—पेखि के प्रदोष काल भौन मदिपाल जू के चामीकर थारन में परम प्रभा दली।
धै धै हेम दीपक प्रदीपति सुगन्ध छाइ पहिरे सुरङ्ग पट धारे भूपनावली॥
मङ्गलामुखीन संग गावैं मंगलानि गीत मंगलानि द्रव्य लीन्हें चारु कुसुमावली।
"रघुराज" आई राजमन्दिर अवधनारी तारावली आगे करि मानो चपलावली॥

दो०–दिये दान विप्रन्ह विपुल, पूजि गणेश पुरारि।
प्रमुदित परमदरिद्र जनु, पाइ पदारथ चारि॥ ३४५॥

अर्थ—गणेश जी तथा महादेव जी का पूजन कर ब्राह्मणों को बहुत सा दान दिया और ऐसी प्रसन्न हुई कि मानो महादरिद्री चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) पाकर फूला न समाता हो॥

चौ०–प्रेमप्रमोदविवश सब माता। चलहिं न चरण शिथिल भये गाता॥
रामदरश हित अतिअनुरागीं। परिछनि साज सजन सब लागीं॥

अर्थ—सम्पूर्ण माताएँ प्रेम और बहुत ही आनन्द में ऐसी मग्न हो गई थीं कि उन का शरीर शिथिल हो जाने से आगे को पैर नहीं उठते थे। वे रामचन्द्र जी के दर्शनों के लिये बड़ी प्रेमातुर हुईं और सब आरती की सामग्री तैयार करने लगीं॥

चौ०–विविधविधान बाजने बाजे। मंगल मुदित सुमित्रा साजे॥
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगलमूला॥

अर्थ—नाना प्रकार के बाजे बजने लगे और सुमित्रा जी ने हर्ष से मंगलीक द्रव्य इकट्ठे किये। जैसे—मंगलकारी पदार्थ हल्दी, दूब, दही, पत्ते, फूल, पान, सुपारी....

चौ०–‡अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि विराजा॥
छुहे पुरटघट सहज सुहाये। मदन शकुन जनु नीड़ बनाये॥

शब्दार्थ—रोचन = रोली। लाजा = खील, लाई। छुहे = रंगीन। पुरटघट = सोने के घड़े। शकुन = पक्षी। नीड़ = घोंसला॥

अर्थ—सच्चे चावल, जौ आदि के अंकुर, रोली, लाई और तुलसी की कोमल मंजरी थी। सुनहरे घड़े रंगे हुए सहज ही में शोभायमान थे, मानो कामदेवरूपी पक्षी ने अपने रहने को घोंसला बनाये हों (कि उन में छिपकर राम जानकी के दर्शन करता रहूं)॥

‡ अच्छत अंकुर रोचन लाजा—
भजन—सहित बरात भूप रथ धावें।
ठौर ठौर पुर उछर छसत अति रहसि विहसि बर धावें॥
कहीं कहीं कोचन फल छोड़े सब आनँद मिति नाहीं।
दच्छन दरो कुँवर छबि रे यों, उपज बहुत बैन नाहीं॥
बरसहिं प्रगटि मदन उलटित नाचन सुख किमि कहिये।
"[illegible]"

अर्थ—भाँति भाँति के मंगलीक कलश घर घर उत्तम रीति से धराये गये, उस समय राम जी की पुरी को देख कर ब्रह्मा आदि सब देवता प्रसन्न होते थे ॥

चौ०—भूपभवन तेहि अवसर सोहा। रचना देखि मदन मन मोहा॥
मंगल शकुन मनोहरताई। ऋधि सिधि सुख संपदा सुहाई॥

अर्थ—उस समय राजमहल इस प्रकार शोभायमान था कि उस की सजावट देख कर कामदेव का मन मोहित होगया। सम्पूर्ण मंगल, शकुन और सुन्दरता ऋद्धि सिद्धि सुख और सुहावनी धन सम्पत्ति " " " " " "

चौ०—जनु उछाह सब सहज सुहाये। तनु धरि धरि दशरथ गृह आये॥
देखन हेतु राम वैदेही। कहहु लालसा होइ न केही॥

अर्थ—मानो सभी उत्साह स्वभाव ही से उत्तम रूप धारण करके दशरथ जी के महलों में आ गये हों। रामचन्द्र और सीता जी के दर्शनों की इच्छा कहो किसे न होगी? (अर्थात् सब ही सीता राम जी के दर्शनों की इच्छा रखते हैं)॥

चौ०-यूथयूथ मिलिचली सुआसिनि। निजछवि निदरहिं मदन विलासिनि॥
†सकल सुमंगल सजे आरती। गावहिं जनु बहु वेष भारती॥

अर्थ—स्त्रियां झुंड के झुंड बांध कर चलीं जो अपनी छटा के साम्हने रति की शोभा को मात करतीं थीं। सम्पूर्ण आरती लिये इस प्रकार गा रहीं थीं मानो सरस्वती जी बहुत से रूप धारण किये हों॥

चौ०—भूपतिभवन कोलाहल होई। जाइ न बरनि समय सुख सोई॥
कौशल्यादि राममहतारी। प्रेमविवश तनुदशा बिसारी॥

अर्थ—राजा जी के महलों में खूब धूमधाम होरही थी उस समय का आनन्द कहने में नहीं आता। कौशल्या आदि रामचन्द्र की माताओं ने प्रेम के मारे शरीर की सुध बिसार दी॥

---

† सकल सुमंगल सजे आरती—

कवित्त—[illegible] मनिमाल जू के चामीकर थारन में परम प्रभा [illegible]।
[illegible] मुक्तावली॥
[illegible] कुसुमावली।
[illegible] मानो [illegible]॥

दो०–दिये दान विप्रन्ह विपुल, पूजि गणेश पुरारि।
प्रमुदित परमदरिद्र जनु, पाइ पदारथ चारि॥ ३४५॥

अर्थ—गणेश जी तथा महादेव जी का पूजन कर ब्राह्मणों को बहुत सा दान दिया और ऐसी प्रसन्न हुईं कि मानो महादरिद्री चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) पाकर फूला न समाता हो॥

चौ०–प्रेमप्रमोदविवश सब माता। चलहिं न चरण शिथिल भये गाता॥
रामदरश हित अतिअनुरागीं। परिछनि साज सजन सब लागीं॥

अर्थ—सम्पूर्ण माताएँ प्रेम और बहुत ही आनन्द में ऐसी मग्न हो गई थीं कि उन का शरीर शिथिल हो जाने से आगे को पैर नहीं उठते थे। वे रामचन्द्र जी के दर्शनों के लिये बड़ी प्रेमातुर हुईं और सब आरती की सामग्री तैयार करने लगीं॥

चौ०–विविधविधान बाजने बाजे। मंगल मुदित सुमित्रा साजे॥
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगलमूला॥

अर्थ—नाना प्रकार के बाजे बजने लगे और सुमित्रा जी ने हर्ष से मंगलीक द्रव्य इकट्ठे किये। जैसे—मंगलकारी पदार्थ हल्दी, दूब, दही, पत्ते, फूल, पान, सुपारी....

चौ०–‡अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा॥
छुहे पुरटघट सहज सुहाये। मदन शकुन जनु नीड़ बनाये॥

शब्दार्थ—रोचन = रोली। लाजा = खील, लाई। छुहे = रंगीन। पुरटघट = सोने के घड़े। शकुन = पक्षी। नीड़ = घोंसला॥

अर्थ—सबूचे चाँवल, जौ आदि के अंकुर, रोली, लाई और तुलसी की कोमल मंजरी थी। सुनहरे घड़े रँगे हुए सहज ही में शोभायमान थे, मानो कामदेवरूपी पक्षी ने अपने रहने को घोंसला बनाये हों (कि उन में छिपकर राम जानकी के दर्शन करता रहूँ)॥

---

‡ अच्छत अंकुर रोचन लाजा—
भजन—सदित बरात भूप रव आई।
घेर घेर पुर डगर डगर सब रहसि बिहसि नर धावें॥
पढ़ी बढ़ी लोचन फल पाके सब आनँद मिति नाहीं।
[illegible] रही कुँवर छवि पै, दशरथ बधुन संग माहीं॥
[illegible] मंगल [illegible] लाजन सुख किमि कहिये।
"बिरवनाद" [illegible] दिन, [illegible] मोतिन [illegible]॥

चौ०—सगुन सुगंध न जाइ बखानी। मंगल सकल सजहिं सब रानी॥
रची आरती बहुत विधाना। मुदित करहिं कल मंगल गाना॥

अर्थ—शकुन के सुगन्धित पदार्थों (अर्गजा, अतर, गुलाबजल, पुष्प आदि) का वर्णन नहीं किया जा सक्ता। इस प्रकार सब रानियां मंगलाचार की तैयारियां कर रहीं थीं। अनेक प्रकार से आरती सजाकर आनन्द से मनोहर मंगल गान करने लगीं।

दो०—‡कनकथार भरि मंगलन्हि, कमल करनि लिये मात।
चलीं मुदित परिछन करन, पुलकपल्लवित गात॥ ३४६॥

अर्थ—माताएँ प्रेम के कारण रोमांचित हो कमलस्वरूपी हाथों में सोने के थालों में मंगलीक द्रव्य भर कर आरती करने को चलीं॥

चौ०—धूपधूम नभ मेचक भयऊ। सावन घनघमंड जनु ठयऊ॥
सुरतरुसुमनमाल सुर वर्षहिं। मनहुँ बलाकअवलि मन कर्षहिं॥

शब्दार्थ—मेचक = श्यामता। बलाक = बगुला। अवलि = पंक्ति। कर्षहिं = खींचते हैं॥

अर्थ—धूप के धुएँ से आकाश श्याम वरन हो गया मानो सावन के घने बादल छा गये हों। देवता कल्पवृक्ष के फूलों की मालाएं बरसाते थे सो मानो बगुलाओं की पंक्तियां चित्त को लुभातीं हों॥

सूचना—यहां से गोस्वामी जी अयोध्यानगरी में बरात आगमन की तुलना वर्षा ऋतु से करते हैं यथा " " " "

चौ०—मंजुल मणिमय बंदनवारे। मनहुँ पाकरिपुचाप सँवारे॥
प्रगटहिं दुरहिं अटन पर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि॥

अर्थ—सुन्दर मणि जटित वन्दनवारे इस प्रकार भासते थे मानो इन्द्र का धनुष शोभायमान हो। अटारियों पर जो स्त्रियां कभी दीख पड़तीं थीं और कभी छिप जातीं

---

‡ कनक थार भरि मंगलन्हि, कमल करनि लिये मात""जानकी मंगल से उद्धृत—

छन्द—मंगल विटप मंजुल विपुल दधि दूब अछत रोचना।
भरि थार आरति सजहिं सब सारंग शावक लोचना॥
मन मुदित कौशल्या सुमित्रा सकल भूपति भामिनी।
सजि साज परिछन चलीं रामहिं मत्त कुंजर गामिनी॥

बरवा—बधुन सहित सुत चारिउ मातु निहारहिं।
बारहिं बार आरती मुदित उतारहिं॥

थीं सो मानो उत्तम चंचल बिजलियां चमक जाती थीं ॥

चौ०—दुंदुभिधुनि घनगर्जनि घोरा। याचक चातक दादुर मोरा ॥
सुर सुगंध शुचि वर्षहिं वारी। सुखी सकल ससि पुरनरनारी ॥

अर्थ—नगाड़ों का शब्द मानो बादलों की गर्जना थी और मँगता लोग मानो पपीहा, मेंढक और मोर कासा शोर कर रहे थे। देवगण जो शुद्ध सुगन्धित छुट्टे फूल बरसाते थे वही मानो जल बरसता था जिस से नगर के सम्पूर्ण स्त्री पुरुष खेती की नाईं हरे भरे थे। (स्मरण रहे कि कल्पवृक्षों की पुष्प मालाओं को तो बकपंक्तियां माना है और छुट्टे फूलों को जो क्षण२ में देवगण बरसाते थे उन्हें वर्षा की बूंदें अनुमान की हैं जैसे—आगे चलकर कहा है "वर्षहिं सुमन क्षणहिं क्षणदेवा") ॥

चौ०—समय जानि गुरु आयसु दीन्हा। पुरप्रवेश रघुकुलमणि कीन्हा ॥
सुमिरि शंभु गिरिजा गणराजा। मुदित महीपति सहित समाजा ॥

अर्थ—सुअवसर जानकर वशिष्ठ जी ने आज्ञा दी तब दशरथ जी प्रसन्न चित्त से गणेश जी तथा शंकर पार्वती जी का स्मरण करके सब बरातियों समेत नगर में पैठे ॥

दो०—होहिं शकुन वर्षहिं सुमन, सुर दुंदुभी बजाइ।
*बिबुध बधू नाचहिं मुदित, मंजुल मंगल गाइ ॥ २४७ ॥

अर्थ—शकुन होने लगे और देवता नगाड़े बजा बजा कर फूल बरसाने लगे तथा अप्सरायें प्रसन्न मन से मनोहर मङ्गल गीत गाती हुईं नाचने लगीं ॥

चौ०—†मागध सूत बंदि नट नागर। गावहिं यश तिहुँ लोक उजागर ॥
जय धुनि विमल वेदवरबानी। दश दिशि सुनिय सुमंगलसानी ॥

---

* बिबुध बधू नाचहिं मुदित, मंजुल मंगल गाइ—बृहद्राग रत्नाकर से—

राग खम्माच—बहुत दिनान में विदेश हुइ आये मेरे प्यारे मनमोहन, बधाय सब गायो री।
बाधो रस राखो नीकी नीकी गति लै लै कर नीकी नीकी, भांतिन सौं भावन बतायो री ॥
ताल करताल की गमूत मुँहचङ्ग सौं घूँघरू बजाय के, मृदङ्ग सौं मिलायो री।
श्रीव्रजकिशोर रिझवार को रिझायो आज सकल समाज कर, रङ्ग सरसायो री ॥

† मागध सूतबंदि नट नागर। गावहिं यश तिहुँ लोक उजागर—

क०—हित मति मति गति कीरति विभूति नति, रमापति पद्रति रति अतिशय होय।
बलागार राज्य अधिकार श्री शृङ्गार "बंदि" प्रजा परिवार की उदारता अक्षय होय ॥
चंड कर दो सों परचंड चंड चंड चंड, मंडै बाहु दंड खचि अरि उर भय होय।
राज अधिराज राज महाराज सब काल राजन की, जय होय जय होय जय होय ॥

अर्थ—भाट, पौराणिक, वंश बखानने वाले और चतुर नट लोग तीनों प्रसिद्ध कीर्त्ति गाने लगे। शुद्ध जय जय कार तथा श्रेष्ठ वेदध्वनि मंगल से दशों दिशाओं में गूंजने लगीं ॥

चौ०—विपुल बाजने बाजन लागे। नभ सुर नगर लोग अनु
बने बराती बरनि न जाहीं। महा मुदित मन सुख न समा

अर्थ—बहुत से बाजे बजने लगे, आकाश में देवता और नगर में लोग सब हुए। बरातियों का ठाट बाट वर्णन नहीं किया जाता। चित्त में बड़ा ही आन जो हृदय में नहीं समाता था ॥

चौ०—पुरबासिन्ह तब राउ जुहारे। देखत रामहि भये सुख
करहिं निछावरि मणिगण चीरा। वारि विलोचन पुलक शरीर

अर्थ—तब पुरवासियों ने राजा जी को जुहार की और वे रामचन्द्र जी को ही प्रसन्न हुए। सब लोग रोमांचित हो प्रेम के आँसू बहाते हुए रत्नों और की निछावर करने लगे ॥

चौ०—‡आरति करहिं मुदित पुरनारी। हर्षहिं निरखि कुँअर वर चारी
†शिविका सुभग उहार उघारी। देखि दुलहिनिन होहिं सुखारी

अर्थ—नगर की स्त्रियां प्रसन्नता से आरती करतीं थीं और चारों राजकुमारों को देख कर हर्षित होतीं थीं। सुन्दर पालकियों का परदा उठा उठा दुलहिनों को देख कर प्रसन्न होतीं थीं ॥

---

‡ आरति करहिं मुदित पुर नारी। हर्षहिं निरखि कुअर वर चारी—हृदय राम क छव हनुमन्नाटक से—

सवैया—वारन मत्त गुंजारत भृङ्ग कपोलन तुङ्ग ध्वजा फहराहीं।
चारनवंश उचारन को निज बाँह उठाइ कवित्त पढ़ाहीं॥
चामर छत्र लिये संग वीर बने रघुवीर सने मन माहीं।
देख सरूप विषँ जल वारि सबै पुर नारि कहैं बलि जाहीं॥

† शिविका सुभग उहार उघारी। देखि दुलहिनिन होहिं सुखारी—दुलहिनों की मुख छवि देखते ही सखियां चकित हो यों कह उठीं—

दोहा—आहा! परम उघार दृग, सफल करैं सब कोइ।
तेज चपंजन के परे, हँसी ...

दो०—इहि विधि सब ही देत सुख, आये राजदुआर।
*मुदित मातु परिछन करहिं, बधुन्ह समेत कुमार॥ ३४८

अर्थ—इस प्रकार सब को सुखी करते हुए राजद्वार पर आ पहुंचे, तब प्रसन्नता से माताएँ बहुओं समेत पुत्रों की आरती उतारने लगीं॥

चौ०—†करहिं आरती बारहिंबारा। प्रेम प्रमोद कहै को पारा॥
भूषण मणि पट नाना जाती। करहिं निछावरि अगणित भाँती॥

अर्थ—बारंबार उन की आरती की उस समय के प्रेम तथा भारी आनन्द को कौन वर्णन कर सक्ता है अनेक भाँति के गहने, जवाहरात और कपड़े कई प्रकार से निछावर करतीं थीं॥

चौ०—बधुन समेत देखि सुत चारी। परमानंद मगन महतारी॥
‡पुनि पुनि सीयरामछवि देखी। मुदित सुफल जग जीवन लेखी॥

अर्थ--माताएँ चारों बहुओं को पुत्रों समेत देखकर बड़े ही आनंद में मग्न होगईं बारंवार सीता रामचन्द्र जी की शोभा देख संसार में अपने जन्म को सुफल जान प्रसन्न होतीं थीं॥

---

* मुदित मातु परिछन करहिं, बधुन समेत कुमार—गीत रामायण से—

आरती—पुलकि तन आरती करैं मैया।

निरखि मनोहर कुँअर कुँअरि छबि बहु विधि लेति बलैया॥
वारत भूषण द्रव्य भूरि पट मुदित बिलोकि निछैया॥
शम्भु प्रसाद अनुग्रह मुनि के तात विजय चढ़ि ऐया॥
"महावीर" आनन्द मगन मन रघुवर सुजस कहैया॥

† करहिं आरती बारहिंबारा। प्रेम प्रमोद कहै को पारा—

भजन—बरनत बैनन सुख अधिकाई॥ टेक॥

आनँद जल उमगत अंबक युग भूलि भूलि विधि जाई॥
सुत सुत बधुन लखहिं जन चाहहिं दृग मग हियहि समाई॥
"विश्वनाथ" मुख चूमि तोरि तृण पुनि पुनि लेहि बलाई॥

‡ पुनि पुनि सीयराम छवि देखी—

कवित्त—गोरे स्याम रङ्ग रति कोटिन अनङ्ग सङ्ग जाकी छवि देखि होत लज्जित बिचारे हैं
चन्द कैसो भाग भाल भृकुटी कमान-ऐसी नासिका सुहाई नैन ओर छोर वारे हैं।
ओठ अरुनारे तैसे कुन्द से दशन प्यारे ललित कपोलन पै कच घुंघुरारे हैं।
मंजु भुज धारे दोउ नील पीत पटवारे "प्रेम सखी" रामसिया जीवन हमारे हैं।

चौ०–×सखी सीयमुख पुनि पुनि चाही। गान करहिं निज सुकृत सराही॥
बरषहिं सुमन चणहिं चण देवा। नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा॥

अर्थ—सखियां सीता जी के मुख को बारबार देखतीं थीं और अपने सत्कर्मों की सराहना करती हुई गीत गातीं थीं। देवता पल पल पर फूल बरसाते हुए नाच गाकर प्रभु पर अपनी भक्ति दर्शाते थे॥

चौ०–†देखि मनोहर चारिउ जोरी। शारद उपमा सकल ढँढोरी॥
देत न बनहिं निपट लघु लागी। इकटक रही रूप अनुरागी॥

अर्थ—चारों सुहावनी जोड़ियों को देखकर सरस्वती जी ने सब उपमायें ढूंढ़ डालीं। जब कोई भी उपमा देते न बनी क्योंकि वे सब बहुत ही तुच्छ जँच पड़ीं तब तो छवि में ऐसी छक गईं कि टकटकी बाँध कर रह गईं॥

दो०–निगमनीति कुलरीति करि, अर्घ पाँवड़े देत।
बधुन्ह सहित सुत परिछ सब, चलीं लिवाइ निकेत॥ ३४९॥

× सखी सीय मुख पुनि पुनि चाही। गान करहिं निज सुकृत सराही॥ पद रामायण से—

केदारा—बड़े भाग सखी मिथलेश की।
मेरे जान राम सीता की अविचल जोरि हमेश की॥
दौरि दौरि दरशन को आये भूप बधू सब देश की।
तन मन प्रान करत न्यौछावर लेत बलैया भेश की॥
राय जनक की कुँवरि लड़ैती पटरानी अवधेश की।
साहा रामदास कान्हर भज स्वामिनि शेश महेश की॥

† देखि मनोहर चारिउ जोरी। शारद उपमा सकल ढँढोरी—हनुमन्नाटक भाषा (श्री रामाजी चतुर दास कृत) राम रूप।

मनोहर छंद—कैसे ये अलज नील अतसी कुसुम जैसे कैसे ये कुसुम जैसे नीलमणि भाम हैं।
नीलमणि धाम कैसे शोभित तमाल तैसे कैसे वे तमाल जैसे दूब दल श्याम हैं॥
दूब दल श्याम कैसे यमुना प्रवाह जैसे यमुना प्रवाह कैसे जैसे तनु राम हैं।
राम तनु श्याम कैसे नवघन श्याम जैसे नवघन श्याम कैसे जैसे श्याम राम हैं॥

सीता स्वरूप।

पीत मणिमाल कैसी लतिका सुवर्ण जैसी कैसी लता जैसो रंग केसर अमंद री।
केसर सु कैसी जैसी सोन जुही कैसी जुही जैसी गिरा धारि वृष्टि वृन्द पर बुंद री॥
कैसी ओप अम्बुकी सु जैसी यज्ञ ज्वाल ज्योति कैसी ज्वाल जैसी पीतपट छबिछंद री।
कैसी पटज्योति जैसी सीय छबि कैसी सीय जैसी बिज्जु कैसी बिज्जु जैसी सिय सुंदरी॥

अर्थ—आरती करने के पश्चात् वेद की विधि तथा कुलाचार कर अर्घ्य देतीं हुई और पाँवड़े बिछातीं हुई बहुओं समेत सुतों को महलों में लिवा ले चलीं ॥

चौ०—चारि सिंहासन सहज सुहाये। जनु मनोज निज हाथ बनाये॥
तिन्ह पर कुँअरि कुँअर बैठारे। सादर पाय पुनीत पखारे॥

अर्थ—चार सिंहासन स्वभाव ही से ऐसे सुंदर थे कि मानो कामदेव ने उन्हें अपने हाथ से बनाया हो। उनपर दुलहा और दुलहिनों को बिठलाया तथा आदर-सहित उनके पवित्र चरण धोये॥

चौ०—धूप दीप नैवेद्य वेद विधि। पूजे वरदुलहिनि मंगलनिधि॥
‡ बारहिं बार आरती करहीं। व्यजन चारु चामर शिर ढरहीं॥

अर्थ—फिर मंगल के भंडार दूलह और दुलहिनों को धूप, दीप नैवेद्य द्वारा वेद विधान से पूजन किया। उन पर बारंबार आरती उतारतीं थीं और सिर पर उत्तम पंखे और चमर ढुर रहे थे॥

चौ०—वस्तु अनेक निछावरि होहीं। भरी प्रमोद मातु सब सोहीं॥
पावा परमतत्त्व जनु योगी। अमृत लहेउ जनु संतत रोगी॥

अर्थ—बहुत सी वस्तुएँ निछावरि की जा रहीं थीं और आनन्द से परिपूर्ण सब माताएँ सुशोभित थीं। मानो किसी योगी ने परब्रह्म को पा लिया हो अथवा सदैव के रोगी को मानो अमृत मिल गया हो॥

चौ०—जनम रंक जनु पारस पावा। अंधहि लोचन लाभ सुहावा॥
मूकवदन जस शारद छाई। मानहुँ समर शूर जय पाई॥

अर्थ—मानो जन्म के दरिद्री ने पारस पाया हो अथवा अंधे को आँखों का मिल जाना सुहावना लगा हो। जिस प्रकार गूंगे की जीभ पर सरस्वती आन विराजी हो अथवा किसी वीर ने मानो लड़ाई में जय पाई हो॥

---

‡ बारहिं बार आरती करहीं—

आरती—आरति कीजे सीयरमन की, भरत लक्ष्मण शत्रुदमन की॥
राजत सुन्दर रत्न सिंहासन, माधुरि मूरति शोक शमन की।
कीट मुकुट कुंडल बनमाला, सीसफूल नथ हार रतन की॥
बाजूबंद विशायठ कंकन, कर धनु शायक गुम्फ सुमन की।
"श्री बलदेव" चरनपर देखत, होत मगन सुधि रहत न तन की॥

दो०—इहि सुख ते शत कोटि गुण, पावहिं मातु अनंद।
भाइन्ह सहित बिआहि घर, आये रघुकुलचंद॥

अर्थ—जिस समय रघुवंशियों में चंद्रमा के समान रामचन्द्र जी भाइयों स[illegible]
कर घर आये, उस समय ऊपर कहे हुए सुखों से सौ करोड़ गुणा अधिक
माताओं को हुआ॥

दो०—लोकरीति जननी करहिं, वर दुलहिन सकुचाहिं।
मोद विनोद विलोकि बड़, राम मनहिं मुसुकाहिं॥ ३५०

अर्थ—माताएँ तो सब लोकाचार कर रहीं थीं परंतु दूल्हा दुलहिन लज्जित
इस लोकरीति की क्रीड़ा के बड़े आनंद को देखकर रामचन्द्र जी मनही मन मुसकु[illegible]

चौ०—देव पितर पूजेविधि नीकी। पूजी सकल वासना जी[illegible]
सबहिं वन्दि माँगहिं वरदाना। भाइन्ह सहित राम कल्या[illegible]

अर्थ—हृदय की सम्पूर्ण इच्छाएँ पूरी हुईं इस हेतु सुंदर प्रकार से देवता[illegible]
पितरों का पूजन किया। तथा सबकी वंदना कर यह वरदान मांगा कि भाइयों[illegible]
रामचन्द्र का भला होवे॥

चौ०—अंतरहित सुर आसिष देहीं। मुदित मातु अंचल भरि ले[illegible]
भूपति बोलि बराती लीन्हे। यान वसनमणि भूषण दीन्[illegible]

अर्थ—अदृश्य रूप से देवता आशीर्वाद देते थे जिन्हें माताएँ हर्ष पूर्वक [illegible]
पसारकर ग्रहण करतीं थीं। दशरथ जी ने बरातियों को बुला लिया और उ[illegible]
सवारियां, कपड़े जवाहरात और गहने दिये॥

चौ०—आयसु पाइ राखि उर रामहिं। मुदित गये सब निजनिजधामहि[illegible]
पुर नर नारि सकल पहिराये। घर घर बाजन लगे बधाये[illegible]

अर्थ—आज्ञा पाकर सब बराती हृदय में रामचन्द्र जी का चिंतवन करते[illegible]
आनंद पूर्वक अपने २ घर गये। फिर नगर के सब स्त्री पुरुषों को पहिरावन पहि[illegible]
और प्रत्येक घर में आनंद बधाई होने लगी॥

चौ०—याचक जन याचहिं जोइ जोई। प्रमुदित राउ देहिं सोइ सोई[illegible]
सेवक सकल बजनियां नाना। पूरन किये दान सनमाना[illegible]

अर्थ—भिक्षुकगण जो २ वस्तु मांगते थे राजा जी प्रसन्नता से वही वस्तु दे देते थे
सम्पूर्ण टहलुओं [illegible]

दो०—देहिं असीस जोहारि सब, गावहिं गुणगणगाथ।
तब गुरु भूसुर सहित गृह, गवन कीन्ह नरनाथ ॥ ३५१ ॥

अर्थ—सब लोग वंदनाकर आशीर्वाद देते थे तथा उनके गुणानुवाद वर्णन करते थे (इस काम से छुट्टी पाकर) गुरु और विप्रों सहित राजा जी महलों में पधारे ॥

चौ०—जो वशिष्ठ अनुशासन दीन्हा। लोक वेद विधि सादर कीन्हा ॥
भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठीं भाग्य बड़ जानी ॥

अर्थ—वशिष्ठ जी ने जो कुछ आज्ञा की, वे ही सब वेद रीतियां और लोकाचार आदर सहित किये गये। ब्राह्मणों की भीड़ देखकर सब रानियां अपना बड़ा ही भाग्य समझ आदरपूर्वक उठीं ॥

चौ०—पाय पखारि सकल अन्हवाये। पूजि भलीविधि भूप जिवाँये ॥
आदर दान प्रेम परिपोषे। देत असीस चले मन तोषे ॥

अर्थ—राजा जी ने सब के पांव धोकर स्नान कराये और उनका पूजन करके भली भाँति भोजन करवाये तथा सत्कार करके, द्रव्य आदि दे प्रेम से उन्हें सतुष्ट किया, तब वे प्रसन्न हो आशीर्वाद देते हुए चले ॥

चौ०—बहुविधि कीन्ह गाधिसुत पूजा। नाथ मोहि सम धन्य न दूजा ॥
कीन्हि प्रशंसा भूपति भूरी। +रानिन सहित लीन्ह पग धूरी ॥

अर्थ—फिर अनेक प्रकार से विश्वामित्र जी का पूजन किया (और कहा) कि हे प्रभु! मेरे समान भाग्यवान दूसरा नहीं है। राजा जी ने उनकी बहुत ही बड़ाई की और रानियों समेत उनकी चरण रज को ले लिया ॥

चौ०—भीतर भवन दीन्ह वर वासू। मन जोगवत रह नृप रनवासू ॥
*पूजे गुरुपदकमल बहोरी। कीन्ह विनय उर प्रीति न थोरी ॥

+ रानिन सहित लीन्ह पग धूरी—सहजो बाई कृत सहज प्रकाश से—
दोहा—सब तीरथ गुरु के चरण, नितही परसो होय।
सहजो चरणोदक लिये, पाप रहत नहिं कोय ॥

* पूजे गुरुपदकमल बहोरी—सहजो बाई कृत —
दो०—गुरुपद निरखे परखिये, गुरुपद हिरदे राख।
सहजो गुरुपद ध्यावकर, गुरु बिन और न भाख ॥

अर्थ—महलों के भीतर ही उनके रहने का सुभीता कर दिया और दशरथ जी सब रानियों समेत उन के मन को अपने हाथ में लिये रहते थे। फिर वशिष्ठ जी के चरण कमलों का पूजन किया और उन से विनती की, उस समय उनके हृदय में बहुत प्रेम था ॥

दो०—वधुन्ह समेत कुमार सब, रानिन सहित महीश।
पुनि पुनि वन्दत गुरुचरण, देत अशीस मुनीश ॥ ३५२ ॥

अर्थ—बहुओं समेत सब राजकुमारों ने तथा रानियों समेत दशरथ जी ने गुरु वशिष्ठ जी के चरणों की बारंबार वन्दना की, तब मुनि जी ने उन्हें आशीर्वाद दिये ॥

चौ०—विनय कीन्ह उर अतिअनुरागे। सुत संपदा राखि नृप आगे॥
नेग माँगि मुनिनायक लीन्हा। आशिरवाद बहुत विधि दीन्हा॥

अर्थ—दशरथ जी हृदय में प्रेम से गद्गद हो विनती करने लगे कि ये पुत्र और धन संपत्ति सब आप ही की है (अब क्या आज्ञा होती है)। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने अपना नेग माँग लिया और अनेक प्रकार से आशीर्वाद दिये॥

चौ०—उर धरि रामहि सीय समेता। हरषि कीन्ह गुरु गवन निकेता॥
विप्रवधू सब भूप बुलाई। चैल चारुभूषण पहिराई॥

शब्दार्थ—चैल (सं.) = कपड़े ॥

अर्थ—सीता समेत रामचन्द्र जी को हृदय में धारण कर गुरु जी प्रसन्न होकर अपने घर चले गये। दशरथ जी ने सब ब्राह्मणियों को बुलाया और उन्हें सुन्दर कपड़े तथा गहने पहिनाये ॥

चौ०—बहुरि बुलाइ सुआसिनि लीन्ही। रुचि विचारि पहिरावनि दीन्ही॥
नेगी नेग योग सब लेहीं। रुचि अनुरूप भूपमणि देहीं॥

अर्थ—फिर सौभाग्यवती स्त्रियों को बुलाया और उनकी इच्छानुसार पहिरावनें पहिराईं। फिर सब नेगियों ने अपने अपने उचित नेग माँगे और राजराजेश्वर जी ने उन की इच्छानुसार दिये ॥

चौ०—प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने। भूपति भली भाँति सनमाने॥
देव देखि रघुवीर विवाहू। वर्षि प्रसून प्रशंसि उछाहू॥

अर्थ—जो पूजनीय प्यारे पाहुने समझे गये, राजा जी ने उनका भी सन्मान

भली भाँति से किया। देवताओं ने रामचन्द्र जी का यह विवाह देख फूलों की वर्षा की और उत्सव की प्रशंसा की ॥

दो०—चले निशान बजाइ सुर, निजनिजपुर सुख पाइ।
कहत परस्पर रामयश, प्रेम न हृदय समाइ ॥ ३५३ ॥

अर्थ—देवता सुख पाकर नगाड़े बजाते हुए अपने २ लोक को चले। एक दूसरे से रामचंद्र जी का यश वर्णन करते जाते थे तौ भी उन का प्रेम हृदय में न समाता था ॥

चौ०—सब विधि सबहि समदि नरनाहू। रहा हृदय भरि पूरि उछाहू ॥
जहँ रनवास तहां पग धारे। सहित बधूटिन्ह कुँअर निहारे ॥

शब्दार्थ—समदि (सम् = भली भाँति + अदि = वश करना) = भली भाँति वश में करना ॥

अर्थ—राजा जी ने सब का सब प्रकार से आदर सत्कार किया और उनके हृदय में बहुत ही उत्साह भर गया। फिर जहां रनवास था वहां पधारे और पुत्रों को बहुओं समेत देखा ॥

चौ०—लिये गोद करि मोद समेता। को कहि सकै भयउ सुख जेता ॥
बधुन्ह सप्रेम गोद बैठारीं। बार बार हिय हरषि दुलारीं ॥

अर्थ—(दशरथ जी ने) आनंदपूर्वक उन्हें अपनी गोद में बैठा लिया (उस समय) उन्हें जितना सुख हुआ उसे कौन कह सक्ता है। प्रेमपूर्वक बहुओं को गोद में बिठाया और बारंबार हृदय में प्रसन्न हो उन का प्यार किया ॥

चौ०—देखि समाज मुदित रनवासू। सब के उर आनँद कियो वासू ॥
कहेउ भूप जिमि भयउ बिवाहू। सुनि सुनि हर्ष होइ सब काहू ॥

अर्थ—इस समाज को देखकर रानियां प्रसन्न हुईं मानो सब के हृदय में आनंद आ बसा हो। जिस प्रकार विवाह हुआ था सो सब राजा जी ने कह सुनाया जिस को सुन २ कर सब को आनंद होता था ॥

चौ०—*जनकराज गुण शील बड़ाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई ॥

---

* जनक राज गुण शील बड़ाई। प्रीति रीति सम्पदा सुहाई }
बहु विधि भूप भाट जिमि बरनी। }
इस विषय पर गंगा धर की कविता राट निवासी बब्बू भाट द्वारा प्राप्त— (कवित्त

कहिन सकहिं शत शारद शेषू। वेद विरंचि महेश गनेशू॥
सो मैं कहौं कवन विधि बरनी। भूमिनाग शिर धरइ कि धरनी॥

शब्दार्थ—भूमिनाग (सं.) = केंचुआ, सँपोला॥

अर्थ—(सब लोगों ने) रामचन्द्र जी के दर्शन कर प्रणाम किया और आज्ञा पाकर वे अपने २ घर गये। (उस समय का) प्रेम, अधिक आनंद, उत्सव, बड़ाई, समय समाज की सुन्दरता को, सौ सरस्वती, शेषनाग जी, वेद, ब्रह्मा, महादेव तथा गणेश जी भी नहीं वर्णन कर सक्ते। तो फिर मैं उस को किस प्रकार वर्णन कर सक्ता हूं भला सँपोला भी कहीं अपने शीस पर धरती को धारण कर सक्ता है? (कभी नहीं, पृथ्वी को शीस पर धारण करने की सामर्थ्य तो शेषनाग ही को है)॥

चौ०—नृप सब भाँति सबहि सनमानी। कहि मृदु वचन बुलाई रानी॥
वधू लरकिनी परघर आईं। †राखेहु नयन पलक की नाईं॥

अर्थ—राजा जी ने सब का सभी प्रकार से सन्मान किया फिर रानियों को बुला कर मधुर बचनों से कहा, कि देखो ये बहूएँ बाल अवस्था वाली पराये घर आई हैं इसहेतु इन को इस प्रकार रखना कि जैसे पलक आंखों को सम्हालते हैं॥

दो०—+लरिका श्रमित उनींदवश, शयन करावहु जाइ।
अस कहि गे विश्रामगृह, रामचरण चित लाइ॥ ३५५॥

अर्थ—लड़के थके हुए उनींदे होरहे हैं सो जाकर इन को सुला देओ, इतना कह राजा जी रामचन्द्र जी के चरणों को चित्त में धारण कर निद्रालय में गये॥

चौ०—भूपवचन सुनि सहज सुहाये। जटित कनक मणि पलँग डसाये॥

---

† राखेहु नयन पलक की नाईं—जैसा सभा विलास में कहा है—

दोहा—सुजन बचावत कष्ट सों, रहैं निरंतर साथ।
नयन सहाई पलक ज्यों, देह सहाई हाथ॥

+ लरिका श्रमित उनींदवश, शयन करावहु जाइ—

लाल के सोने को समयो भयो।
दशरथ राउ मुदित रानिन प्रति इहि विधि बोध दयो॥
इत आईं दुल को परछाईं चन्द्र प्रकाश छयो।
लरिका चपुन्ह सनेह उनींदे श्रम कछु अधिक भयो॥
बधु सुकुमारी मातु दुलारी इन कहँ सबहि नयो।
शयन करावहु जाइ इन्हैं तुम यह कहि भूप गयो॥
ब्याह उछाह विनोद महा सुख नित नित होत नयो।
ताहि "विरायक" कहँ लग बरनैं काहु न पार लयो॥

बहु विधि भूप भाट जिमि बरनी। रानी सब प्रमुदित सुनि करनी॥

अर्थ—जनक महाराज के गुण, शीलस्वभाव, बड़प्पन, प्रीति, पद्धति और सुहावनी संपत्ति को। नाना प्रकार से दशरथ जी ने भाट की नाईं वर्णन कि ऐसी करतूति को सुन कर सब रानियां बहुत प्रसन्न हुईं॥

दो०—सुतन्ह समेत नहाइ नृप, बोलि विप्र गुरु ज्ञाति।
भोजन कीन्ह अनेक विधि, घरी पाँच गइ राति॥ ३५४॥

अर्थ—राजा जी ने पुत्रों के साथ साथ स्नान किये और ब्राह्मणों तथा गु जनों को बुलवाकर उनकी पंक्ति में बैठकर नाना प्रकार के पकवान भोजन किये ही कि पांच घड़ी रात बीत गई॥

चौ०—×मंगलगान करहिं वरभामिनि। भइ सुखमूल मनोहर यामिनि
अँचइ पान सब काहू पाये। स्रग सुगंध भूषित छवि छाये

अर्थ—सौभाग्यवती स्त्रियां मंगलीक गीत गातीं थीं और वह रात्रि सुहाव तथा बहुत ही सुखदायक हुई। आचमन कर सब ने पान खाये और मा तथा सुगंधित वस्तुओं से सुशोभित हुए॥

चौ०—रामहि देखि रजायसु पाई। निजनिजभवन चले शिर नाई
प्रेम प्रमोद विनोद बड़ाई। समय समाज मनोहरताई।

क०—राजन की कहा सुरराज साथ जेयो हम स्वाद का बताऊँ वह सुधा रस बोरे
ताहो से सौगुणी रसोई मिथिलेशपुर की बिसरै ना आज लौं विदेह के
कौशलेश जी कहत कौशला से "गंगाधर" पुण्य पटरानी मोहि कंठ
मुख में भरी है मधुराई वह गारमा की कानन भरी है वह गान

× मंगलगान करहिं वरभामिनि—

गारी राम प्रसाद की—पिया घन श्याम सिया तन गोरी, पिया घन श्याम०
रूप सदन विधु बदन मनोहर रघुकुल मणि [illegible]
का कहुँ शोभा लाल लाड़िली दुधि शृङ्गार मनहुँ यक ठौ
बैठी महलन माहि किशोरी निरखत मुख लोचन टुक जो
कोट मुकुट रायवशिर सोहै सिय जी के माथे सोहत
सुभग रूप रति मदन विमोहे सीता राम सकै कह
"राम प्रसाद" के रघुवर स्वामी, हृदय बसो यह सुन्दर

चौ०–मुनिप्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईश अनेक करवरें टारीं ॥
मख रखवारी करि दुहुँ भाई। +गुरुप्रसाद सब विद्या पाई ॥

अर्थ—हे प्यारे! मैं तुम्हारी बलैयां लेती हूं, परमेश्वर ने मुनि जी की कृपा से तुम्हारी बहुतसी बलायें दूर कीं। तुम दोनों भाइयों ने विश्वामित्रजी के यज्ञ की रक्षा की और उन्हीं के आशीर्वाद से सब युद्ध विद्या प्राप्त की ॥

चौ०–मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी ॥
कमठ पीठ पविकूट कठोरा। नृप समाज महँ शिवधनु तोरा ॥

अर्थ—तुम्हारे चरणों की धूल लगने से गोतम ऋषि की स्त्री अहल्या तर गई सो यश संसार भर में फैल रहा है। राजाओं की समाज में कछुए की पीठ तथा वज्र से भी अधिक कठोर शिव जी के धनुष को तोड़ डाला ॥

चौ०–†विश्व विजय यश जानकि पाई। आये भवन ब्याहि सब भाई ॥
‡सकल अमानुप कर्म तुम्हारे। केवल कौशिक कृपा सुधारे ॥

अर्थ—इस से संसार में जय, कीर्त्ति और जानकी को पाया, इस के सिवाय सब

+गुरु प्रसाद सब विद्या पाई—

क०–लोह को ज्यों पारस पषाण हूं पलट लेत कंचन छुवत होय जग में प्रमानिये।
द्रुम को ज्यों चंदन हू पलटै लगाय बास आप के समान ता को शीतलता आनिये ॥
कीट को ज्यों भृंग हू पलट के करत भृंग सोऊ उड़ जाय नाहिं अचरज मानिये।
"सुन्दर" कहत यह सगरे प्रसिद्ध बात शुद्ध सीख पलटै सो सतगुरु जानिये ॥

† विश्व विजय यश जानकि पाई—

राग बिहाग—जय जय जनक किशोरी की, कुअरि लड़ैती भोरी की।
भाल विशाल तिलक केसर को, मंजुल बिन्दी रोरी की ॥
मणिमय जटित विविध बहु भूषण चन्द्रवदन तन गोरी की।
मिथिलापुर की वीथिन विहरत ललित सखी सँग टोरी की ॥
शची रची रति कमला वांछत चरण कमल रज तोरी की।
गुण गम्भीर शारदा सुमिरत जीवन शंकर गौरी की ॥
"लाला राम दास सुन्दर" भज राम सिया की जोरी की।

‡ सकल अमानुष कर्म तुम्हारे—

राग कान्हरा—भुजनि पर जननी वारि फेरि डारी।
क्यों तोर्‌यो कोमल कर कमलन शंभु शरासन भारी ॥ (क्यों)

...ा जी प्यारे आये। तुम्हारे काम सभी मनुष्यों के कर्तव्य से बढ़ के
...त्र जी की कृपा से सिद्ध हुए॥

...आज सुफल जग जन्म हमारा। देखि तात विधुवदन तुम्हा...
...जे दिन गये तुमहिं बिन देखे। ते विरंचि जनि पारहिं ले...

...र्थ—हे प्यारे! आज तुम्हारे चन्द्रसमान मुख को देख संसार में हमारा ...हुआ। जितने दिन तुम्हारे विछोह में बीत गये उन्हें ब्रह्मा हिसाब में न ...यह कि संसार में हमारे जीने की जितनी अवधि है उस में से जितने दिन ...त्र जी के साथ रहे उतने दिन हमारी आयु में ब्रह्मा यदि और बढ़ा देवे ...ो क्योंकि संसार में तुम्हारे बिना देखे जीना वृथा है)॥

...राम प्रतोषीं मातु सब, कहि विनीत वर बैन।
...सुमिरि शंभुगुरुविप्रपद, किये नींदवश नैन॥ ३५७॥

...र्थ—रामचन्द्र जी ने सुयोग्य मधुर वचनों से सब माताओं को संतुष्ट किया और ..., गुरु जी और ब्राह्मणों के चरणों को स्मरण कर सो गये॥

...नींदहु वदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना॥

...र्थ—सोते समय भी सुहावना सलोना मुखड़ा इस प्रकार शोभायमान था जैसे

ज्यों मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताड़का मारी।
मुनिप्रसाद मेरे राम लखन की विधि बड़ि करवर टारी॥
चरनरेनु लै नयन लगावत क्यों मुनिबधू उधारी।
कहौ तात क्यों जीति सकल नृप बरी विदेहकुमारी॥
दुसह रोष मूरति भृगुपति अति नृपति निकर खयकारी।
क्यों सौंप्यो सारंग हारि हिय करी बहुत मनुहारी॥
उमगि उमगि आनंद बिलोकति बधुन सहित सुत चारी।
तुलसिदास आरती उतारति प्रेममगन महतारी॥

* नींदहु बदन सोह सुठि लोना—किसी कवि ने ऐसी मुद्रा को कैसी उत्तम रीति से ...कहा है—
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

संध्या समय कमल सम्पुटित होने पर भी शोभता है ॥

चौ०—‡घर घर करहिं जागरन नारी। देहिं परस्पर मंगलगारी ॥

अर्थ—स्त्रियां अपने अपने घरों में रतजगा कर रहीं थीं और आपस में मङ्गलीक हँसी ठट्ठा कर रहीं थीं ॥

चौ०—पुरी विराजति राजति रजनी। रानी कहहिं विलोकहु सजनी ॥
सुंदरि वधुन्ह सासु लेइ सोई। फणिकन्ह जनु शिर मणि उरगोई ॥

अर्थ—रानियां कहने लगीं कि हे सजनी! देखो तो अयोध्या नगरी सुशोभित होने से रात्रि भी शोभायमान लगती है। फिर प्रत्येक सास अपनी अपनी बहू को लेकर इस प्रकार सो गई जिस प्रकार नागनी अपने सिर की मणि को हृदय से लगा कर सो जावे ॥

चौ०—†प्रात पुनीतकाल प्रभु जागे। अरुणचूड़ वर बोलन लागे ॥

---

‡ घर घर करहिं जागरन नारी। देहिं परस्पर मंगल गारी—

राग सोरठ—अँखियाँ रामरूप रस भीनी।
कोटि काम अभिरामश्यामघन निरख भई लय लीनी ॥
लोकलाज कुलकान न मानत नूतन नेह रँगीनी।
"रत्न हरी" कैसे अब निरखैं हो गईं ज्यों जल मीनी ॥

राग जंगला—जय श्री जानकि बल्लभ लालहिं।
मणिमन्दिर श्री कनककमहल में विपुल रँगीली यालहिं ॥
कोउ गावत कोउ वेणु बजावत कोउ मृदंग डफ तालहिं।
"युगल बिहारी" भावत दोऊ लखि छवि भईं निहालहिं ॥

गारी—करत लाग गये नैन बतियां, करत लाग गये नैन ॥ टेक ॥
दशरथसुत सब जनकनन्दिनी, रूपशील गुण ऐन ॥ बतियां ॥
मधुबन में रस बाँधो भर धुन, राग उठे घन चैन ॥ बतियां ॥
"मधुर अली" मधुरे स्वर गावे, बोलत अनूप बैन ॥ बतियां ॥

† प्रात पुनीतकाल प्रभु जागे। अरुणचूड़ वर बोलन लागे—जागने के पहिले कौशल्या जी ने अपना पूर्ण प्रेम प्रकाशित कर यह प्रभाती छेड़ी—

राग विभास—भोर भयो जागो रघुनंदन। गत व्यलीक भक्तन उर चंदन ॥
शशि कर हीन छीण द्युति तारे। तमचर मुखर सुनो मेरे प्यारे ॥
विकसत कंज कुमुद बिलखाने। लै पराग रस मधुप उड़ाने ॥
अनुज सखा सब बोलन आये। वंदिन अति पुनीत गुण गाये ॥
मन भावतो कलेऊ कीजे। तुलसिदास को जूठन दीजे ॥

‡बन्दि मागधन्ह गुनगन गाये। पुरजन द्वार जोहारन आये॥

शब्दार्थ—अरुणचूड़ = मुर्गा।

अर्थ—सवेरे के सुन्दर समय में जब सुहावने मुर्गा बोलने लगे, तब रामचन्द्र जी जागे। बन्दीगण और भाट गुणानुवाद गाने लगे और नगर निवासी जोहार करने को द्वार पर आ पहुंचे॥

चौ०—बन्दि विप्र गुरु सुर पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता॥
जननिन्ह सादर बदन निहारे। भूपति संग द्वार पग धारे॥

अर्थ—माता, पिता, देवता, गुरु और ब्राह्मणों की वन्दना कर उन से आशीर्वाद पाकर सब भाई प्रसन्न हुए। माताओं ने प्रेम से उन के मुँह देखे फिर वे राजा जी के साथ द्वार पर आये॥

दो०—कीन्ह शौच सब सहज शुचि, सरित पुनीत नहाइ।
प्रातक्रिया करि तात पहँ, आये चारिउ भाइ॥ ३५८॥

अर्थ—स्वभाव ही से पवित्र चारों भाई सब शौच क्रिया कर, पावन सरयू में स्नान कर के सन्ध्या वन्दन आदि प्रातकर्म से सुचित्त हो पिता के पास आये॥

चौ०—भूप विलोकि लिये उर लाई। बैठे हरषि रजायसु पाई॥
†देखि राम सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी॥

---

‡ बन्दि मागधन्ह गुण गण गाये—

राग बिलावल-आज तो निहार रामचंद्र को मुखारविंद चंदहु से अधिक छवि लागत सुहाई री॥
केसर को तिलक भाल गरे सोहै मुक्तमाल घुंघर वारी अलकन पर कुंडल छवि छाई री॥
अनियारे अरुण नयन बोलत अति ललित बैन माधुरी मुसकान पर मदन हूँ लजाई री॥
ऐसे आनंद कंद निरखत मिटजात द्वंद छवि पर बनमाल "कान्हर गई हौं बिकाई री"॥

† देखि राम सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी—गीत रामायण से—

चंचरीक—देखो छवि मंजु मृदुल राम की लोनाई।
देखु रुचिर चरण आज, सुभग पदुम बिधु समाज, मानो गिरि नील उपर बैठि है अथाई॥ १॥
पीत बसन लसत अंग, पंकज कसे कटि निषंग, कर सरोज धनुष बाण, देखन सुखदाई।
सुंदर उर उर विशाल, मुक्तन के पुंजमाल, भृगुचरण अंक ललित, सुषमा समुदाई॥ २॥
कंठ कम्बु कान सुहाव, चिबुक कपोल कहि न जाय, श्रुतिहु अगम सकल भाँति बरनत कठिनाई।
[illegible], हास मन्द उदय चंद, मदन कोटि लजहिं देखि, बदन की निकाई॥ ३॥
[illegible], [illegible] अति रसाल, श्याम बरन दरस मोद कोमल चितलाई।
[illegible] देखि, [illegible], काकभुशुण्डि कृपासिन्धु रघुपति रघुराई॥ ४॥

अर्थ—राजा जी ने देखते ही उन्हें हृदय से लगालिया फिर वे आज्ञा पाकर सब हो बैठ गये। रामचन्द्र जी को देखकर सभा के सब लोग संतुष्ट हुए और मान लिया कि नेत्रों के लाभ की यही सीमा है (अर्थात् यदि नेत्रों से रामचन्द्र जी के दर्शन न होवें तो उन नेत्रों से कुछ फल नहीं) ॥

चौ०–पुनि वशिष्ठ मुनि कौशिक आये । सुभग सुआसन्हि मुनि बैठाये ॥
सुतन्ह समेत पूजि पद लागे । निरखि राम दोउ गुरु अनुरागे ॥

अर्थ—फिर वशिष्ठ और विश्वामित्र मुनि आये, उन्हें उत्तम मनोहर आसनों पर बिठलाया। तब सब सुतों समेत पूजन कर उन के चरण छुए, दोनों गुरु रामचन्द्र जी को देखकर मग्न हो गये ॥

चौ०–कहहिं वशिष्ठ धर्म इतिहासा । सुनहिं महीप सहित रनिवासा ॥
मुनि मन अगम ‡गाधिसुत करनी । मुदित वशिष्ठ बहुत विधि बरनी ॥

अर्थ—वशिष्ठ जी धर्म सम्बन्धी कथायें कहने लगे जिन्हें राजा जी रानियों समेत सुनने लगे । मुनियों के चित्त में भी न आने वाली विश्वामित्र जी की करतूति को वशिष्ठ जी ने प्रसन्न मन हो अनेक प्रकार से वर्णन किया ॥

चौ०–†बोले वामदेव सब साँची । कीरति कलित लोक तिहुँ माँची ॥
सुनि आनंद भयउ सब काहू । राम लषन उर अधिक उछाहू ॥

अर्थ—वामदेव जी कहने लगे कि वशिष्ठ जी का कहना सत्य है (तभी तो विश्वामित्र जी की) उत्तम कीर्ति तीनों लोकों में फैल रही है। यह सुनकर सब को आनन्द हुआ और रामचन्द्र जी तथा लक्ष्मण जी को अधिक आनन्द हुआ ॥

दो०–मंगल मोद उछाह नित, जाहिं दिवस इहि भाँति ।
उमगी अवध अनंद भरि, अधिक अधिक अधिकाति ॥ ३५६ ॥

अर्थ—मंगलीक कार्य, आनन्द और उत्सवों में ही दिन इस भांति बीतते थे कि अवधपुरी आनन्द से उमग उठी और वह आनन्द नित प्रति बढ़ता ही जाता था ॥

---

‡ गाधिसुत करनी—देखोविश्वमित्र जी का जीवन चरित्र ॥ (पृ० ४२ उत्तरार्द्ध)
† बोले वामदेव सब साँची । कीरति कलित लोक तिहुँ माँची—
दोहा—विश्वामित्र मुनीश की, महिमा अपरम्पार ।
करतल गत आमलक सम, जिनको सब संसार ॥

चौ०-†सुदिन शोधि कल कंकन छोरे। मंगल मोद विनोद न थोरे॥
नित नव सुख सुर देखि सिहाहीं। अवध जनम याचहि विधि पाहीं॥

अर्थ—शुभ मुहूर्त ढूँढ़ कर सुन्दर कंकण छोरे, उस समय मंगल आनन्द और हास विलास बहुत हुआ। दिनों दिन नया ही नया आनन्द देखकर देवता प्रसन्न होते थे और ब्रह्मा से प्रार्थना करते थे कि हमारा जन्म अवधपुर में होवे॥

चौ०-विश्वामित्र चलन नित चहहीं। राम सनेह विनय वश रहहीं॥
दिन दिन सौ गुण भूपतिभाऊ। देखि सराह महामुनिराऊ।

अर्थ—विश्वामित्र जी प्रतिदिन जाना चाहते थे, परन्तु वे रामचन्द्र जी के प्रेम और विनय के कारण ठहर जाते थे। दशरथ जी का दिनों दिन बहुत ही बढ़ना हुआ प्रेम देख मुनिराज भी उस की सराहना करने लगते थे॥

चौ०-‡माँगत बिदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भये आगे।
नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवक समेत सुत नारी।

अर्थ—निदान बिदा माँगते समय राजा जी प्रेमवश हो उठे और पुत्रों को साथ ले आगे खड़े हो गये। (और बोले कि) हे स्वामी! मेरा सब ऐश्वर्य आप ही का है और मैं स्त्री पुत्रों समेत आप का सेवक हूँ॥

---

† सुदिन शोधि कल कंकन छोरे। मंगल मोद विनोद न थोरे—

राग देश—हँस पूछें अवधपुर कि नारि नाथ कैसे गज के फंद छुड़ाये।
तिहारे यही अचरज मन भाये॥
गज औ ग्राह लरें जल भीतर बारण द्वंद्व मचाये।
गज की टेर सुनी रघुनंदन गरुड़ छोड़ उठ धाये॥
छोरे न छुट सिया जी को कँगना कैसे आप चढ़ाये।
कोमल गात अंग अति नीके देखत मनहिं लुभाये॥
जहँ जहँ भीर परी संतन्ह पर तहँ तहँ होत सहाये।
तुलसिदास सेवक रघुनंदन आनँद मंगल गाये॥

‡ माँगत बिदा राउ अनुरागे—

क०-जो हौं कहौं रहिये तो प्रभुता प्रकट होत, चलन कहौं तो हित हानि नाहिं सहनै।
भावै सो करहु तो उदास भाव प्राणनाथ, संग ले चलौ तो कैसे लोक लाज बहनै॥
केशो केसो नाथ की सौं सुनहु छबीले लाल, चले ही बनत जो पै नाहीं अब रहनै।
कहा तुम हाँसि सीख सुनहु सुजान प्रिय तुम ही बखत मोहीं जैसी कछु कहनै॥

चौ०—करब सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरशन देत रहब मुनि मोहू॥
असकहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरण मुख आव न बानी॥

अर्थ—इन लड़कों पर सदा प्रेम करते रहियो और हे मुनि जी! मुझे भी कभी २ दर्शन दिया कीजियो। इतना कह राजा जी स्त्री पुत्रों सहित उन के पैरों पर गिर पड़े और मुख से कुछ न कह सके॥

चौ०—दीन्हि असीस विप्र बहु भाँती। चले न प्रीति रीति कहि जाती॥
राम सप्रेम सङ्ग सब भाई। आयसु पाइ फिरे पहुँचाई॥

अर्थ—विश्वामित्र जी नाना प्रकार के आशीर्वाद देकर चल खड़े हुए। उस समय की प्रीति का वर्णन कहा नहीं जाता। रामचन्द्र जी अपने भाइयों समेत प्रेमपूर्वक उन्हें पहुंचाकर उनकी आज्ञा से लौट आये॥

दोहा—†रामरूप भूपति भगति, व्याह उछाह अनन्द।
जात सराहत मनहि मन, मुदित गाधिकुलचन्द॥ ३६०॥

अर्थ—गाधि जी के कुल में चन्द्र के समान विश्वामित्र जी रामचन्द्र जी की सुन्दरता, दशरथ जी की भक्ति और व्याह के उत्सव तथा आनन्द को मन ही मन में सराहते हुए प्रसन्नता पूर्वक चले जाते थे॥

चौ०—वामदेव रघुकुलगुरु ज्ञानी। बहुरि गाधिसुत कथा बखानी॥
*सुनि मुनि सुयश मनहिं मन राऊ। बरनत आपन पुण्य प्रभाऊ॥

---

† रामरूप भूपति भगति, व्याह उछाह अनंद—

सवैया—इन के मुख पै अनु भानु बदै उन के मुख प द्युति चंद बिराजै।
इन के पटपीत लसै चपला उन के पटनील घटा घन गाजै॥
"कवि राघव" दोउ हँसैं बिहँसैं रस रंग भरे छवि सों छवि छाजै।
नित ऐसेहि नेह सनेह सने सिय राम सदा हमरे हिय राजै॥

* सुनि मुनि सुयश… … … —गुरु पर हो तो ऐसा हो—

छ०-काहू सों न रोष तोष काहू सों न राग दोष काहू सों न बैर भाव काहू की न घात है।
काहू सों न बकवाद काहू सों नहीं बिषाद काहू सों न संग नातो कोऊ पक्षपात है॥
काहू सों न दुष्ट बैन काहू सों न लेन देन ब्रह्म को बिचार कछु और न सुहात है।
"सुन्दर" कहत सोई ईशन को महाईश सोई गुरुदेव जा के दूसरी न बात है

चौ०—†सुदिन शोधि कल कंकन छोरे। मंगल मोद विनोद न थोरे।
नित नव सुख सुर देखि सिहाहीं। अवध जनम याचहि विधि पाहीं॥

अर्थ—शुभ मुहूर्त्त ढूँढ़ कर सुन्दर कंकण छोरे, उस समय मंगल आनन्द और हास विलास बहुत हुआ। दिनों दिन नया ही नया आनन्द देखकर देवता प्रसन्न होते थे और ब्रह्मा से प्रार्थना करते थे कि हमारा जन्म अवधपुर में होवे॥

चौ०—विश्वामित्र चलन नित चहहीं। राम सनेह विनय वश रहहीं॥
दिन दिन सौ गुण भूपतिभाऊ। देखि सराह महामुनिराऊ॥

अर्थ—विश्वामित्र जी प्रतिदिन जाना चाहते थे, परन्तु वे रामचन्द्र जी के प्रेम और विनय के कारण ठहर जाते थे। दशरथ जी का दिनों दिन बहुत ही बढ़ता हुआ प्रेम देख मुनिराज भी उस की सराहना करने लगते थे॥

चौ०—‡माँगत विदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भये आगे॥
नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवक समेत सुत नारी॥

अर्थ—निदान विदा माँगते समय राजा जी प्रेमवश हो उठे और पुत्रों को साथ ले आगे खड़े हो गये। (और बोले कि) हे स्वामी! मेरा सब ऐश्वर्य आप ही का है और मैं स्त्री पुत्रों समेत आप का सेवक हूं॥

---

† सुदिन शोधि कल कंकन छोरे। मंगल मोद विनोद न थोरे—

राग देश—हँस पूछैं अवधपुर कि नारि नाथ कैसे गज के फंद छुड़ाये।
तिहारे यही अचरज मन भाये॥
गज औ ग्राह लरैं जल भीतर दारुण द्वंद्व मचाये।
गज की टेर सुनो रघुनंदन गरुड़ छोड़ उठ धाये॥
छोरे न छुट सिया जी को कँगना कैसे चाप चढ़ाये।
कोमल गात अंग अति नीके देखत मनहिं लुभाये॥
जहँ जहँ भीर परी संतन्ह पर तहँ तहँ होत सहाये।
तुलसिदास सेवक रघुनंदन आनँद मंगल गाये॥

‡ माँगत विदा राउ अनुरागे—

क०—जो ही कहौं रहिये तो प्रभुता प्रकट होत, चलन कहौं तो हित हानि नाहि
सहे सो करहु तो उदास नाथ प्राणनाथ, संग ले चलो तो कैसे लोक
देखो कैसो आप की सौं सुनहु दुवौ लाल, चले ही बनत जो
वचा तुम हौ निधि सुनहु सुजान प्रिय तुम हौ

चौ०—कविकुल जीवन पावन जानी। रामसीययश मंगल खानी॥
तेहिते मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेत निज बानी॥

अर्थ—रामचन्द्र जी और सीता जी के यश को सम्पूर्ण मंगल का भंडार तथा कवियों के वंश का जीवन आधार और पवित्र जाना। इसहेतु मैं ने अपनी वाणी को पवित्र करने के लिये कुछ वृत्तांत वर्णन किया॥

छं०—†निजगिरापावनि करन कारन रामयश तुलसी कह्यो।
रघुवीरचरित अपार वारिधि पार कवि कौने लह्यो॥
‡उपवीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं।
वैदेहिरामप्रसाद ते जन सर्वदा सुख पावहीं॥

अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं ने अपनी वाणी को पवित्र करने के हेतु रामचन्द्र जी का यश वर्णन किया। रामचन्द्र जी का चरित्र तो सीमा रहित समुद्र के समान है उसका छोर किस कवि ने पाया है? (अर्थात् किसी ने नहीं)। जो लोग श्री राम आदि चारों भाइयों के यज्ञोपवीत, ब्याह के मंगलीक उत्सव आदि आदर पूर्वक सुनते हैं अथवा वर्णन करते हैं वे लोग सीता राम जी की कृपा से सदैव आनन्द भोगते हैं॥

सो०—सिय रघुवीर विवाह, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन कहँ सदा उछाह, मंगलायतन रामयश॥ ३६१॥

अर्थ—जो लोग सीता और रामचन्द्र जी के विवाह को प्रेम सहित वर्णन करते हैं अथवा सुनते हैं उन को सदैव आनन्द ही आनन्द है क्योंकि रामचन्द्र जी का यश मंगल का भण्डार है॥ (सो यौकि)

---

† निजगिरापावनि करन कारन रामयश तुलसी कह्यो—सीता स्वयम्वर नाटक से—
दोहा—बानी गुन खानी करन, चहत जु कविजन कोय।
सीता राम विवाह को, बरनै मन मुद होय॥

‡ उपवीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं—(टीकाकार कृत)॥
दोहा—जन्म महोत्सव शिशु चरित, मख उपवीत विवाह।
कहहिं सुनहिं ते नर सदा, "नायक" लहहिं उछाह॥

अर्थ—मार्ग से लौटकर वामदेव और वशिष्ठ जी ने विश्वामित्र जी की कथा वर्णन की। मुनि जी की उत्तम कीर्ति सुनकर राजा जी मन ही मन अपनी पुण्य की बड़ाई करने लगे॥

चौ०—बहुरे लोग रजायसु भयऊ। सुतन्ह समेत नृपति गृह गयऊ॥
जहँ तहँ रामब्याह सब गावा। सुयश पुनीत लोक तिहुँ छावा॥

अर्थ—राजा की आज्ञा हुई तब सब लोग अपने २ घर गये और दशरथ जी भी पुत्रों समेत महलों में पधारे। सब लोग ठौर २ राम जी के विवाह की चर्चा करने लगे, और उनका पवित्र उत्तम यश तीनों लोकों में फैल गया॥

चौ०—×आये ब्याहि राम घर जब ते। बसे अनन्द अवध सब तब ते॥
*प्रभु विवाह जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू॥

अर्थ—जिस समय रामचन्द्र जी विवाह करके आगये उसी समय से सब आनन्द भी अयोध्यापुरी में आ बसे। रामचन्द्र जी के विवाह में जिस प्रकार का आनन्द हुआ उस का वर्णन न तो सरस्वती जी और न शेषनाग जी कर सक्ते हैं॥

× आये ब्याहि राम घर जब ते। बसे अनन्द अवध सब तब ते—रामचन्द्रिका से—

त्रिभंगी छन्द—बाजे बहु बाज तारनि साजैं सुनि सुर लाजैं दुख भाजैं।
नाचैं नव नारी सुमन शृँगारी गति मनुहारी सुख साजैं॥
बीणानि बजावैं गीतनि गावैं मुनिन्ह रिझावैं मन भावैं।
भूषण पट दीजै सब रस भीजै देखत जीजै छवि छावैं॥

सोरठा—रघुपति पूरण चन्द, देखि देखि सब सुख मढ़ैं।
दिन दूने आनन्द, ता दिन ते तेहि पुर बढ़ैं॥

* प्रभु विवाह जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू—कुंडलिया रामायण से—

कुण्डलिया—राम विवाह बखानई मोद समुद्र उछाह।
नारद शारद शेष शुक गणपति को अवगाह॥
गणपति को अवगाह व्यास विधि कहि कहि हारे।
मति अनुरूप बखानि भजन को भाव विचारे॥
मति अनुरूप बखानि कै गिरा सफल निजमानई।
तुलसिदास के कौन मति रामविवाह बखानई॥

चरित्र पवित्र किये मधु मात पिता सब ही हितकारी ।
: जनेउ महामुनिपग्र सुधारि के तारि दई ऋषिनारी ॥
महीपन के बल को मद ऊपाद लई मिथिलेश कुमारी ।
यक" गाय कहैं रघुनायक दायक हैं मुद मंगल भारी ॥

शशि ऋषि निधि महि चतुर्दशि, माघ असित गुरुवार ।
बाल तिलक 'नायक' कियो, रामचरण रज धार ॥

——०००——

द्रामचरित मानसे सकल कलिकलुष विध्वं
सन्तोष सम्पादनो नाम प्रथमः सोपानः समाप्तः

॥ श्री गणेशायनमः ॥

† श्री रामायण बालकांड की श्री विनायकी टीका की †

॥ पुरौनी ॥

※ काव्य ※

ध्वनिकार ने काव्य को पुरुष मान कर उसके अंगों की इस प्रकार योजना की है। यथा

सवैया—शब्द औ अर्थ शरीर गुनी रस आदि को काव्य को जीव बखानो।
शूरता आदि लौं हैं गुण औ पुनि अंधता आदिलौं दोष विजानो॥
अंगन के कोउ ढंग विशेष सों थापित ज्ञोन लौं रीतिहि मानो।
कंकन कुंडल आदि लौं आहि अलंकृति यौं उर अन्तर आनो॥

अर्थात् शब्द और उसका अर्थ दोनों मिलाकर काव्य के शरीर समझे जाते हैं रस या व्यंग्य उसके जीवात्मा माने जाते हैं। ओज, माधुर्य आदि उसके गुण हैं, कर्ण कटु और निहतार्थ आदि दोष हैं। छन्द का प्रकार, रचना की विशेषता है तथा उपमा उत्प्रेक्षा आदि अलंकार हैं, जैसे कंकण और कुंडल आदि शरीर के आभूषण होते हैं।

इनमें से कई एकों का विस्तार सहित वर्णन यथायोग्य स्थान पर दिया गया है।

(पृ० २—वर्णानाम्) मगण आदि का पिंगल विचार

सूचना—गणों को पहिचानने के लिये ह्रस्व और दीर्घ अक्षरों का ज्ञान होना अवश्य है सो नीचे के कोष्टक से समझ में आवेगा।

भेद	अक्षर या मात्रा	उदाहरण	संकेत	अवशिष्ट
ह्रस्व एक मात्रिक	(१) अ इ उ ऋ. (२) क से ह तक के तेंतीस अक्षर ऊपर के किसी भी अक्षर की मात्रा से मिले हुए. [३] दो या तीन व्यंजन आपस में मिले हुए अक्षर की ह्रस्व मात्राओं सहित. [४] पहिले और दूसरे में कहे हुए सम्पूर्ण अक्षर अर्द्ध बिन्दु सहित.	प्रजा, इन्हें उठी, ऋषी पद फिर तुम. मृदु स्वर. त्रिजटा स्मृति हँसी. चाहिं पायँ	।।। तीन लघु	[ऋ ॠ ऌ ॡ अक्षर बहुध हिन्दी भाषा में नह आते]। (स्वर रहित हिन्ह हलन्त व्यंजन की मा नहीं होती। जैसे अर्प में त्)

सो पाँकि—

बाल चरित्र पवित्र किये प्रभु मात पिता सब ही हितकारी।
धारि जनेउ महामुनियज्ञ सुधारि के तारि दई ऋषिनारी॥
मर्दि महीपन के बल को मद ब्याह लई मिथिलेश कुमारी।
"नायक" गाय कहैं रघुनायक दायक हैं मुद मंगल भारी॥

दोहा—शशि ऋषि निधि महि चतुर्दशि, माघ असित गुरुवार।
बाल तिलक 'नायक' कियो, रामचरण रज धार॥

—०—

इति श्री मद्रामचरित मानसे सकल कलिकलुष विध्वंसने विमल सन्तोष सम्पादनो नाम प्रथमः सोपानः समाप्तः

॥ श्री गणेशायनमः ॥

† श्री रामायण बालकांड की श्री विनायकी टीका की †

॥ पुरौनी ॥

❀ काव्य ❀

ध्वनिकार ने काव्य को पुरुष मान कर उसके अंगों की इस प्रकार योजना की है। यथा

सवैया—शब्द औ अर्थ शरीर गुनी रस आदि को काव्य को जीव बखानो।
शूरता आदि लौं हैं गुण औ पुनि अंधता आदिलौं दोष बिजानो॥
अंगन के कोउ ढंग विशेष सों थापित ह्वैन लौं रीतिहि मानो।
कंकन कुंडल आदि लौं आहि अलंकृति यों उर अन्तर आनो॥

अर्थात् शब्द और उसका अर्थ दोनों मिलाकर काव्य के शरीर समझे जाते हैं रस या व्यग्य उसके जीवात्मा माने जाते हैं। ओज, माधुर्य आदि उसके गुण हैं, कर्ण कटु और निहतार्थ आदि दोष हैं। छन्द का प्रकार, रचना की विशिषता है तथा उपमा उत्प्रेक्षा आदि अलंकार हैं, जैसे कंकण और कुंडल आदि शरीर के आभूषण होते हैं।

इनमें से कई एकों का विस्तार सहित वर्णन यथायोग्य स्थान पर दिया गया है।

(पृ० २—वर्णानाम्) मगण आदि का पिंगल विचार

सूचना—गणों को पहिचानने के लिये ह्रस्व और दीर्घ अक्षरों का ज्ञान होना अवश्य है सो नीचे के कोष्ठक से समझ में आवेगा।

भेद	अक्षर या मात्रा	उदाहरण	संकेत	अवशिष्ट
ह्रस्व एक मात्रिक	(१) अ इ उ ऋ.	अजा, इन्हें उठी, ऋषी		[ऋ ऌ लृ अक्षर बहुधा हिन्दी भाषा में नहीं आते]।
	(२) क से ह तक के संनीत अक्षर ऊपर के किसी भी अक्षर की मात्रा से मिले हुए.	कब फिर तुम. मृदु		(स्वर रहित किम्बा हलन्त व्यंजन की मात्रा नहीं होती। जैसे अर्थात् में त्)
	[३] दो या तीन व्यंजन या स्वर में मिले हुए अक्षर की ह्रस्व मात्राओं सहित.	स्वर. त्रिजटा स्मृति	।।। तीन लघु	
	[४] पहिले और दूसरे में कहे हुए अपूर्ण अक्षर अर्द्ध बिन्दु सहित.	हँसो. चांदिं पायजूँ		

क्रम से गुरु होता है। यरता अर्थात् यगरा रगरा और तगरा के आदि, मध्य औ
अन्त में क्रम से लघु होता है। इसी प्रकार सन अर्थात् सगरा और नगरा के आ
मध्य और अन्तमें क्रम से गुरु और लघु वर्ण रहते हैं अर्थात् मगण में तीनों गुरु औ
नगण में तीनों लघु वर्ण होते हैं।

गणों के नाम उदाहरण सकेत, देवता शुभ या अशुभ और उनके फल
के कोष्टक में लिखे जाते हैं॥

गण	उदाहरण	सङ्केत	देवता	शुभयाअशुभ	फल
मगण	वर्णानाम्	ऽऽऽ	भूमि	शुभ	श्री
नगण	भरत	।।।	शेष	”	सुख
भगण	श्री गुरु	ऽ।।	चन्द्रमा	”	यश
यगण	भवानी	।ऽऽ	वरुण	”	धन
रगण	मालिका	ऽ।ऽ	अग्नि	अशुभ	जार
सगण	धरणी	।।ऽ	पवन	”	भ्रम या
तगण	वाचाल	ऽऽ।	आकाश	”	शून्
जगण	महीश	।ऽ।	भानु	”	रोगव

शुभ और अशुभ गणों का विचार मात्रिक छन्दों में किया जाता है,
वर्ण वृत्तों में॥ क्योंकि वर्णवृत्त कभी २ एकही गण से बनते हैं और कई अशुभ
बनते किम्वा आरम्भ होते हैं।

(पृ० २ पर्वार्द्ध)—अर्थ संघानाम् अर्थ तीन प्रकार के होते हैं अर्थात् (१
(२) लक्ष्य और (३) व्यंग्य।

इन अर्थों को समझने के लिये 'शब्द' समझना अवश्य है क्योंकि
का अर्थ होता है।

शब्द—वह है जो सुनाई देता है और शब्द के सुनने से जो चित्त मे
पड़ता है वही अर्थ है। शब्द तीन प्रकार के होते हैं—(१) वाचक (२) लक्षक
व्यंजक

[१] वाचक—संकेत किये हुए अर्थ को जो साक्षात् कहे वह शब्द वाच

इस शब्द का यही अर्थ है ऐसी जो ईश्वर की इच्छा है उसे संकेत
और संकेत कराने वाली शक्ति को अभिधा कहते हैं।

वाचक शब्द से अभिधा शक्तिद्वारा जो संकेत प्रकट होता है, वही वा

भेद	अक्षर या मात्रा	उदाहरण	संकेत	टिप्पणी
	[५] दीर्घ का ह्रस्व	मोहि तोहि भेट नृपति दिन तीजो।		कविता में 'मो' और 'तो' ह्रस्व करके पढ़े जावेंगे।
दीर्घ या गुरु मात्रिक	[१] आ ई ऊ ॠ ए ऐ ओ औ अं अः [२] क से ह तक तेंतीसों अक्षर ऊपर की दीर्घ मात्राओं से मिले हुए [३] दो या तीन व्यंजन आपस में मिले हुए ऊपर की दीर्घ मात्राओं सहित. (४) संयुक्त अक्षर के आदि का दीर्घ माना जाता है। [५] संस्कृत कवितामें चरण के अन्तका ह्रस्व वर्ण कभी २ गुरु माना जाताहै।	आप ईश, ऊख औंग। काम, घी दूध पैसा, दुःख। प्यार, स्त्री, क्रूर। वर्णानाम्, शङ्कर और अनुस्वार उपेन्द्र वज्रादपिदारु णोसि	SSS तीनों दीर्घ	[१] इन में आ, ई ऊ दीर्घ हैं। [२] का, घी दू, पैसा दुः दीर्घ हैं। [३] प्या, स्त्री क्रू दीर्घ हैं। [४] इन में व श नु ह्रस्व होने पर भी दीर्घ समझे गये [५] इस में ह्रस्व 'सि' दीर्घ मानी गई है। कभी २ संयोग के आदिका अक्षर भी ह्रस्व ही रहता है; जैसे 'कन्हैया' और तुम्हें में 'क' और 'तु'

गणों का विचार नीचे लिखे अनुसार है—

काव्य में तीन तीन अक्षरों के समूह को गण कहते हैं। गुरु लघु के विचार से ये आठ प्रकार के हैं, यथा मन भय रस तज अर्थात् मगण, नगण भगण, यगण, रगण, सगण, तगण, और जगण।

गणों में वर्णों के गुरु लघु का क्रम स्मरण रखने के हेतु नीचे का श्लोक अथवा दोहा उत्तम है:— (देखो श्रुति बोध)

श्लोक—आदिमध्यावसानेषु, भजसा यान्ति गौरवम्।
यरता लाघवं यान्ति, मनौतु गुरु लाघवम्॥

इसी का उल्था टीकाकार कृत —

दो०—आदि मध्य अरु अन्त में, भजसा के गुरु मान।
'नायक' यरता लघु कह्यो; मन क्रम गुरु लघु जान॥

अर्थ—भजसा अर्थात् भगण जगण और सगण के आदि, मध्य और अन्त में

क्रम से गुरु होता है । यरता अर्थात् यगण रगण और तगण के आदि, मध्य और अन्त में क्रम से लघु होता है। इसी प्रकार मन अर्थात् मगण और नगण के आदि, मध्य और अन्तमें क्रम से गुरु और लघु वर्ण रहते हैं अर्थात् मगण में तीनों गुरु और नगण में तीनों लघु वर्ण होते हैं।

गणों के नाम उदाहरण सहित देवता शुभ या अशुभ और उनके फल नीचे के कोष्टक में लिखे जाते हैं॥

गण	उदाहरण	संकेत	देवता	शुभयाअशुभ	फल
मगण	वर्णानाम्	SSS	भूमि	शुभ	श्री
नगण	भरत	III	शेष	"	सुख
भगण	श्री गुरु	SII	चन्द्रमा	"	यश
यगण	भवानी	ISS	जल	"	धन
रगण	मालिका	SIS	अग्नि	अशुभ	नाशक
सगण	धरणी	IIS	पवन	"	भ्रम या दुःख
तगण	वाचाल	SSI	आकाश	"	शून्य
जगण	महीश	ISI	भानु	"	रोगकारी

शुभ और अशुभ गणों का विचार मात्रिक छन्दों में किया जाता है, न कि वर्ण वृत्तों में॥ क्योंकि वर्णवृत्त कभी २ एकही गण से बनते हैं और कई अशुभ गण से बनते किम्बा आरम्भ होते हैं।

(पृ० २ पर्वार्द्ध)—अर्थ संघानाम् अर्थ तीन प्रकार के होते हैं अर्थात् (१) वाच्य, (२ लक्ष्य और (३) व्यंग्य।

इन अर्थों को समझने के लिये 'शब्द' समझना अवश्य है क्योंकि शब्द ही का अर्थ होता है।

शब्द—वह है जो सुनाई देता है और शब्द के सुनने से जो चित्त में समझ पड़ता है वही अर्थ है। शब्द तीन प्रकार के होते हैं—(१ वाचक (२ लक्षक और (३) व्यंजक

[१] वाचक—संकेत किये हुए अर्थ को जो साक्षात् कहै वह शब्द वाचक है।

इस शब्द का यही अर्थ है ऐसी जो ईश्वर की इच्छा है उसे संकेत कहते हैं। और संकेत कराने वाली शक्ति को अभिधा कहते हैं।

वाचक शब्द से अभिधा शक्तिद्वारा जो संकेत प्रकट होता है, वही वाच्यार्थ है

इसी को वाच्य, मुख्यार्थ, अभिधेयार्थ, नामार्थ आदि कहते हैं। जैसे:—
" जल संकोच विकल भइ मीना "

इस में जल और मीना ये शब्द वाचक हैं और इन के अर्थ को बो
कराने वाली शक्ति 'अभिधा' तथा जल का अर्थ पानी और मीन का अर्थ मछली
वाच्यार्थ हुए। वाचक चार प्रकार से पहिचाना जाता है।

[क] जाति -"रघुवंशिन" महँ जहँ कोउ होई।
[ख] यदृच्छा—सुनि "भुशुंडि" के वचन भवानी।
[ग] गुण—" श्याम गौर" किमि कहौं बखानी।
[घ] क्रिया – शोभासिन्धु" खरारी "

[२] लक्षक—जिस शब्द से वाच्यार्थ को छोड़ सम्बन्धी दूसरे अर्थ का ब
कराया जावे वह लक्षक शब्द है इस की शक्ति को लक्षणा कहते हैं।

लक्ष्य—वह अर्थ है जो वाच्यार्थ को छोड़ कर परन्तु इसी के सम्बन्ध
किसी प्रयोजनवश अन्यार्थ स्फुरण करे। इसे लक्ष्यार्थ भी कहते हैं। जैसे—

"प्रथम वास तमसा भयउ" अर्थात् रामचन्द्र जी का निवास "तमसा" नदी
नहीं हुआ, परन्तु उस के किनारे हुआ, यह लक्ष्यार्थ है।

[इस के अनेक भेद हैं, जो विस्तार भय से नहीं लिखे]।

[३] व्यंजक--वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से अतिरिक्त अर्थ बोध के कराने वा
शब्द को व्यंजक कहते हैं।

इस अर्थ कराने वाली शक्ति का नाम व्यंजना है।

व्यंग्य—वह अर्थ है जो शब्द से व्यंजना शक्ति के द्वारा भासता है और ज
वाच्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ से भिन्न होता। जैसे—विप्रवंश की अस प्रभुताई। अभय हो
जो तुम्हैं डराई॥

इस में " विप्रवंश " से यह व्यंग्य ध्वनित हुआ कि हम आप को नहीं डर
परन्तु आप के ब्राह्मणत्व से डरते हैं।

[इस के अनेक भेद हैं जो विस्तार सहित काव्य निर्णय, जसवन्त यशो भूषण
श्री रावणेश्वर कल्पतरु और काव्य प्रभाकर आदि ग्रन्थों में मिलेंगे]।

सूचना - जब व्यंग्य उत्तम हो अर्थात् व्यंग्य में वाच्य से अधिक चमत्कार हो,
तब उसे ध्वनि कहते हैं ऐसे ध्वनि वाले काव्य का नाम भी ध्वनि है। – जैसेचतुरि
गौरि हर ध्यान करेहू। भूप किशोर देखि किन लेहू॥

[पृ० २] साहित्य के नव रस

÷ 'रस' इस शब्द की धातु रस् है जिसका अर्थ स्वाद लेना है।

जिस प्रकार भोजन के रुचिया पुरुष भोज्य पदार्थों का स्वाद लेते हैं इसी प्रकार लोग भाव और अभिनय से बंधे हुए स्थायी भावों का मन से मज़ा लेते हैं।

स्वाद आनन्द विशेष है। धन पुत्र आदि की प्राप्ति में भी आनन्द है, परंतु वह आनन्द स्वादरूप नहीं। लोक में रसनेन्द्रिय से मधुरादि रस का अनुभव करके आनन्द होता है उस का स्वाद व्यवहार है। उसी प्रकार काव्य किम्वा नाटक में विभाव आदि सामग्री से उल्लासित रत्यादिकों के अनुभव से लोगों के हृदयों को जो आनंद होता है उसे भी स्वाद कहते हैं और वही रस कहलाता है। यह आनंद इतर आनंदों से उत्कृष्ट है।

नाटक देखते ही किम्वा काव्य सुनते ही रसोत्पत्ति नहीं होती किंतु नाटक तथा काव्य के भाव को समझ लेने से रसोत्पत्ति होती है इस हेतु रस समझने के लिये रस की सामग्री अर्थात् भावों का समझना अवश्य है। जैसा कि भरत भगवान ने कहा है:—

न भाव हीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः।
परस्परकृता सिद्धि स्तयोरभिनये भवेत् ॥

अर्थात् भाव विना रस नहीं है और रस विना भाव नहीं है, नाटक में इन दोनों की सिद्धि परस्पर होती है।

भाव.

अमरकोष में लिखा है कि 'विकारो मानसो भावः' अर्थात् मन का विकार भाव है।

[१] विभाव-भाव के कारण को विभाव कहते हैं। इस के दो भेद हैं:—
[क] आलम्बन विभाव अर्थात् वे कारण जिन के अवलम्ब से भाव उत्पन्न होवे। यथा

÷ भोजन के रस छः हैं; यथा—

दो०—मीठा खट्टा चिरपिरा, खारा कड़ुवा आदि।
सहित कसैला स्वाद के, षटरस भोजन माहि॥

साहित्य में इन से प्रयोजन नहीं उसके रस ९ हैं जिनका वर्णन विस्तार सहित ऊपर लिखा है।

नायक अथवा नायिका, विदूषक, शत्रु आदि। जैसे–

अस कहि फिर चितये तेहि ओरा। सिय मुख शशि भये नयन चकोरा॥

माना सिंगिग देखि कर कीना।

[ख] उद्दीपन विभाव अर्थात् वे कारण जो भाव को उत्तेजित करें। जैसे निर्झर बाग कूदना, माल्याजा आदि उदाहरण–

प्राची दिशि शशि उयउ सुहाया। सिय मुख सरिस देखि सुख पाया॥

करहिं विदूषक कौतुक नाना। आदि

सूचना—ये विभाव प्रत्येक रस के भिन्न २ होते हैं।

[२] अनुभाव–भाव के कार्य अथवा भाव के बोधन को अनुभाव कहते हैं। जै सत्सूचक, अंग विशेष, आदि चिन्ह और भुज उठाने आदि शरीर चेष्टा। इस के चार ये हैं :—[१] कायिक [२] मानसिक, (३) आहार्य [४] सात्विक।

सात्विक के आठ भेद हैं:-[१] स्तंभ [२] कम्प [वेपथु], ३ स्वरभंग [४] वि [५] अश्रु, [आंसू] [६] स्वेद [पसीना] [७] रोमांच और [८] प्रलय॥

इन सबों की परिभाषाएं उदाहरण सहित इसी पुरैनी में भाव भेद शी लेख में मिलेंगी॥

(३) संचारी -जो भाव रस को विशेष रूप से पुष्ट कर जल तरंग की न स्थायी भाव में लीन हो जाते हैं उन्हें संचारी भाव कहते हैं। इनका दूसरा न व्यभिचारी भाव भी है ये तेंतीस हैं। यथा– (१) निर्वेद (२) ग्लानि (३) शं (४) असूया (५) मद (६) श्रम [७] आलस्य (८) दैन्य (९) चिन्ता (१०) [११] स्मृति [१२] धृति (१३) व्रीड़ा [१४] आवेग (१५) चपलता (१६) ज (१७) हर्ष, (१८) गर्व, (१९) विषाद, (२०) निद्रा (२१) अमर्ष (२२) औत्सुक्य [अपस्मार, [२४] सुप्ति (स्वप्न) (२५) विबोध, (२६) उग्रता (२७) मरण (२८) (२९) व्याधि (३०) अवहित्थ [३१] उन्माद (३२) त्रास और (३३) वितर्क।

[४] स्थायी भाव–जो भाव वासनात्मक होते हैं, चित्त में चिरकाल तक रि रहते हैं, जो उत्पन्न होने के पश्चात् सजातीय वा विजातीय भावों के योग से नहीं होते वरन उन्हें अपने में लीन करते हैं और जो विभावादिकों के योग से पा पुष्ट हो रसरूप होते हैं उन्हें स्थायी भाव कहते हैं। सारांश यह कि स्थायी भ के लिये ये चार धर्म आवश्यक हैं—

[१] वासनात्मकता और चित्त में चिरस्थिति।

[२] सजातीय या विजातीय भावों के योग से नष्ट न होना।

[३] अन्य भावों को अपने में लीन कर लेना।

[४] विभावादिकों के योग से परिपुष्ट हो रस रूप होना।

साहित्य शास्त्र के अनुसार ये चारों धर्म सम्पूर्ण भावों में से केवल इन नव भावों में पाये जाते हैं। यथा—(१) रति, [२) हास (३) शोक (४) क्रोध [५] उत्साह, (६) भय (७) जुगुप्सा (८) विस्मय और (९) निर्वेद।

येही स्थायी भाव परिपुष्ट होकर रस संज्ञा को प्राप्त होते हैं इस हेतु रस की परिभाषा यों हुई—

विभाव, अनुभाव और संचारी भावों की सहायता से जब स्थायी भाव उत्कट अवस्था को प्राप्त हो मनुष्य के मन में अनिर्वचनीय आनंद को उपजाता है तब उसे रस कहते हैं। ये नव हैं सो यों कि-- [१] रति से शृंगार, (२) हास से हास्य, (३) शोक से करुण (४) क्रोध से रौद्र [५] उत्साह से वीर [६] भय से भयानक [७] जुगुप्सा से वीभत्स, [८] विस्मय से अद्भुत और [९] निर्वेद से शान्ति रस होते हैं।

† नव रसों का कोष्टक †

नम्बर	रस	स्थायी भाव	आलम्बन विभाव	उद्दीपन विभाव	अनुभाव	संचारी भाव	उदाहरण
१	शृंगार	रति	नायक, नायिका	सखा, सखी वन बाग विहार	मुसक्याना हाव भाव आदि	उन्मादिक	सीतहिं पहिराये प्रभु सादर
२	हास्य	हास	विचित्र आकृति वेश आदि	कूदना, ताली देना आदि	अनोखी रीति से हँसना	हर्ष चपलता आदि	वर अनुहार बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई
३	करुण	शोक	प्रिय का वियोग	प्यारे के गुण स्मरण उसकी वस्तुओं का दर्शन आदि	रोना विलाप करना करम का दिखाना [illegible]	मोह चिन्ता जड़ता उन्मादादि	पति सिर देखत मंदोदरी मुर्छित विकल धरणि खस परी

नम्बर	रस	स्थायी भाव	आलम्बन विभाव	उद्दीपन विभाव	अनुभाव	संचारी भाव	
४	रौद्र	क्रोध	शत्रु	शत्रु का वर्त्ता वा उसके वचन आदि	भौंहें चढ़ाना होंठ चबाना दांत पीसना आदि	गर्व चपलता मोह आदि	ना नव प
५	वीर	उत्साह	रिपु का विभव	मारूबाजा सैन्यका कोलाहल	सेना का अनुधावन हथियारों का उठाना	गर्व, असूया	सु दी फर भुज
६	भयानक	भय	भयानक दर्शन	घोर कर्म	काँपना गात्र संकोच आदि	वैवर्ण्यगद्गद आदि	हा
७	बीभत्स	जुगुप्सा ग्लानि	रक्त मांस आदि	रक्तमांस कृमि पीव आदि दर्शन	नाक मूँदना मुख परिवर्तन और थूकना आदि	मोह मूर्च्छा असूया	धि उर गल
८	अद्भुत	विस्मय आश्चर्य	आश्चर्य के पदार्थ, वार्त्ता	अलौकिक गुणों की महिमा	रोमांच, कम्प गद्गद् वाणी का रुकना	वितर्कमोह निर्वेद	जहाँ प्रभु सेव सुनी
९	शांत	निर्वेद [शम]	सत्संगति, गुरु सेवा	पवित्र आश्रम तीर्थ स्थान	रोमांच आदि	मति, धृति सर्वभूतदया	ह्लाद वर ज

टीकाकार रचित—

दो०—सीता राम विहार को, रस 'शृंगारहिं' जान।
सूपनखा श्रुति नासिका, कृंतन 'हास्य' बखान॥
द्वितिय कांड में 'करुणा रस', 'रौद्र' दशानन कर्म।
लषन वीरता 'वीर रस', युद्ध "भयानक" मर्म॥
रक्तनदी "बीभत्स" रस, "अद्भुत" राघव युद्ध।
नवम "शान्त" निर्वेद मय, कथा राम की शुद्ध॥

पृ० २—बालकांड के छन्दों का पिंगल विचार

१ अनुष्टुप् या अनुष्टुभ् (वर्णिक)

दो०—पंचम लघु षष्ठम गुरु, वर्ण आठ पद चार।
द्वितिय चौथ सप्तम लघू, श्लोक अनुष्टुप सार॥

अर्थात् जिस छन्द में आठ आठ अक्षर के चार चरण हों और प्रत्येक चरण का पांचवां अक्षर लघु और छठवां अक्षर दीर्घ हो तथा दूसरे और चौथे चरण का सातवां अक्षर लघु होवे उसे अनुष्टुप् छन्द कहते हैं।यथा—

वर्णानामर्थसंघानां, रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ, वन्दे वाणीविनायकौ॥ १॥

इस में ऊपर कहे हुए सब लक्षण पाये जाते हैं।

इसी प्रकार आरंभीय और चार श्लोक भी अनुष्टुप् हैं।

२ शार्दूल विक्रीडित (वर्णिक)

इस चार चरण वाले समवृत्त के चरण में मगण; सगण, जगण, सगण, तगण, तगण, और एक गुरु रहता है तथा बारह और सात अक्षरों पर विश्राम होता है।

गण स्मरणार्थ नीचे का पद्यखंड उपकारी है [टीकाकार कृत]

मो से जे सुत तुर्ग भानु मुर हैं शार्दूल विक्रीडिते

भावार्थ—(सूर्य देव कहते हैं कि) अत्यन्त भारी युद्ध से उत्पन्न जो पुत्र अर्थात् उदधिकुमार हैं वे सिंह समान पराक्रम से रहते हैं।

पिंगलार्थ—म स ज स त त से गण, ग से गुरु दर्श भानु से बारह तथा मुर (स्वर) से सात अर्थात् बारह और सात वर्णों पर विश्राम व यति सूचित की है।

अन्तिम शब्द से नाम और सम्पूर्ण पंक्ति शार्दूल विक्रीड़ित छन्द ही में

उदाहरण [देखो पृ० ७]

म	स	ज	स	त	त
555	॥5	।5।	॥5	55।	55।
यन्माया	वशव	र्त्ति विश्व	मखिलं	ब्रह्मादि	देवासु

३ वसंत तिलका (वर्णिक)

देखो 'वसंत तिलकै' तभि जी जगैगो

भावार्थ—वसन्त ऋतु में तिलक नाम के फूल को जब तुम देखोगे, तब तुम्ह चित्त प्रसन्न होगा।

पिंगलार्थ—वसन्त तिलका-छन्द में ऊपर की पंक्ति रची है इस में तगण, भग जगण, जगण और दो गुरु होते हैं। यह चार लकीरों वाला चौदह अक्षरों समवृत है।

इसे वसन्त तिलक, उद्धर्षिणी और सिंहोन्नता भी कहते हैं। (देखो उदाहर पृष्ठ ९)

त	भ	ज	ज	ग ग
55।	5॥	।5।	।5।	55
नानापु	रापन्नि	गमाग	मसम्म	तंपद्

४ सोरठा (मात्रिक)

मात्रिक अर्द्धसम छन्द का नाम 'सोरठा' है जिस में ४८ मात्रा होती हैं सो यों कि इसके पहिले और तीसरे चरण में ग्यारह ग्यारह और दूसरे तथा चौथे चरण में तेरह तेरह मात्रा होती हैं। इस के सम चरणों में जगण न होना चाहिये—

यथा (देखो पृ० ११)

जिहि सुमिरत सिधि होइ, गणनायक करिवर बदन।
करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धिराशि शुभगुण सदन ॥ इत्यादि

सूचना—सोरठा के चरणों को उलट कर पढ़ने से दोहा बन जाता है। यथा—

गणनायक करि वर वदन, जेहि सुमिरत सिधि होइ।
बुद्धि राशि शुभ गुण सदन, करो अनुग्रह सोइ॥

५ चौपाई [मात्रिक]

इस मात्रिक सम छन्द के चारों चरणों में सोलह सोलह मात्रा होती हैं। विशेषता यह है कि चरण के अन्त में गुरु लघु अक्षर न हों। तुलसी दास जी की इस रामायण को 'चौपाई रामायण' कहते हैं। क्योंकि इस में चौपाई ही विशेष हैं। यथा—(पृ०१६)

चौ०—वन्दौं गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा॥
अमिय मूरिमय चूरण चारू। शमन सकल भवरुज परिवारू॥ इत्यादि

आधी चौपाई को अर्द्धाली और चौथाई चौपाई को एक चरण कहते हैं। चौपाई के अनेक भेद हैं जिन के नाम आदि 'छन्दः प्रभा कर' अथवा और छन्द ग्रन्थों में मिलेंगे।

६ दोहा [मात्रिक]

'दोग्धि चित्तमिति दोहा' जो चित्त को दोहता है उसे दोहा [संस्कृत में द्विपदा] कहते हैं। इस अर्द्ध सम छन्द में ४८ मात्रा होती हैं, इसके पहिले और तीसरे चरण में तेरह तेरह और दूसरे तथा चौथे चरण में ग्यारह ग्यारह मात्रा होती हैं परन्तु पहिले और तीसरे चरणों में जगण का निषेध है यथा- (पृ० १८)

दो०—यथा सुअंजन आँजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं शैल बन, भूतल भूरि निधान॥ इत्यादि

दोहे को पलटने से सोरठा हो जाता है। यथा...

सो०—साधक सिद्ध सुजान, यथा सुअंजन आँजि दृग।
भूतल भूरि निधान, कौतुक देखहिं शैल बन॥

७ हरिगीतिका [मात्रिक]

इस मात्रिक सम छन्द के लक्षण छन्दः प्रभाकर में यों कहे हैं—

सोरह रवी लग अन्त अन रचि लीजिये हरिगीतिका।

अर्थात् १६ और १२ के विश्राम से २८ मात्रा होती हैं अन्त में लघु गुरु होते हैं। यथा (पृ० ५३)

मंगल करनि कलिमल हरनि, तुलसीकथा रघुनाथ की। इत्यादि..

८ चवपैया [मात्रिक]

दिसि वसु रवि मत्तन धरि मति पट्टन संग अन्तहि चवपैया। [छन्दः प्रभा

अर्थात दश आठ और बारह मात्राओं के विश्राम से प्रत्येक चरण को र

अन्त में सगणऔर एक गुरु रखने से चवपैया छन्द होता है। यथा - [देखो पृ०

जप योग विरागा तप मख भागा श्रवण सुनै दश सीसा

पृ० २६ [पूर्वार्द्ध] जलचर में राघव मत्स्य की कथा-

इस की कथा पुरीनी ही में पूर्वार्द्ध के अन्त में रावण सम्बन्धी क्षेपक अन्तर्गत है इस हेतु यहां दोहराई, नहीं गई परंतु गज की कथा नीचे लिखी है

॥ गजेन्द्र ॥

क्षीरसागर के मध्य में त्रिकूट नाम का एक पर्वत है उसी पर्वत की क में वरुण भगवान का 'ऋतुमत' नाम बगीचा है। उस में एक बड़ा भारी सरोवर इसी सरोवर पर किसी समय उस पर्वत पर रहने वाला एक गज यूथपति अप हथिनियों के झुंड सहित आया। आते ही गजराज सरोवर में धँसा और जलप तथा स्नान कर अपनी सूंड़ से हथिनियों को भी नहलाने लगा। इतने में एक बलवा ग्राह ने उस का पैर पकड़ लिया। गज ने यथा शक्ति उस से छूटने का उपाय किय और उस के साथियों ने भी सहायता देकर उसे पानी से निकालना चाहा; परन्तु इ के सब उपाय निष्फल हुए। निदान गज ने (जो पूर्व जन्म का इन्द्रद्युम्न राजा थ और शापवश गज हो गया था) यही निश्चय किया कि संकट के समय सर्व शक्तिमा परमेश्वर के सिवाय और कौन सहायता करेगा। इसहेतु उस ने प्रार्थना आरंभ की। उस की आर्त पुकार को सुनते ही भगवान् गरुड़ को छोड़ कर दौड़ आये और सुदर्शन चक्र से ग्राह का शिर काट कर गज को संकट से उबारकर मोक्ष दी। ग्राह भी परमेश्वर के हाथ से मर कर 'हूहू' नाम के गंधर्व का शरीर पुनः प्राप्त कर अपने स्थान को चला गया॥ [देखो श्री मद्भागवत ८ वां स्कन्ध]

पृ० ३१ हरिहर

रत्नयत् में लिखा है कि शिव जी ईश्वर ही हैं। विष्णु और शिव में कुछ भेद नहीं. नाममात्र का भेद है सो यों कि सात्विक प्रकृति का अंगीकार कर निमित्तकारण तो विष्णु जी हैं और तामस प्रकृति का स्वीकार विवर्तोपादान कारण शिवजी हैं। जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों द्वारा मृगजल की उत्पत्ति के हेतु विवर्तोपादान कारण और मध्यान्ह काल में इसी रूप से निमित्त कारण है। तो भी दोनों कारणों में केवल सूर्य ही है। इसी प्रकार संसार के सम्बन्ध से दोनों कारण

केवल ईश्वर ही है। जिस प्रकार सूर्य महदाकाश के आश्रय से है उसी प्रकार ईश
रब्रह्म के आश्रित है। इस विचार से विष्णु और शिव,इन दोनों का ईश्वर
नित्यमुक्त रूपसे है। नित्यमुक्त वे कहलाते हैं जो सदा सर्वकाल मुक्त ही र
हैं। ब्रह्मदेव की नाई जीवत्व को प्राप्त होकर मुक्त होने वाले तो जीवन मुक्त
जाते हैं। न कि नित्यमुक्त जो केवल शिव और विष्णु ही हैं। ये अपना
आप ही निर्माण कर प्रकट होते हैं, जैसे जलकणों से घनीभूत हो कर ओले घन
हैं। संसार की उत्पत्ति हेतु जो दो मुख्य कारण अर्थात् निमित्त और विवर्तोपा
कारण हैं। ये दोनों इन्हीं ने ब्रह्मदेव के आधीन किये हैं। इस हेतु यथार्थ में
स्त्री पुत्र आदि गौण उपाधियां हैं ही नहीं। जो प्राणी इन दोनों में कुछ भे
मान कर मत्सर हीन हो श्रेष्ठ वैराग्ययुक्त इनकी उपासना करते हैं वे सालोक्य मु
पाकर वहां से पतित न होकर कैवल्य मुक्तिपद को प्राप्त होते हैं। उनमें भेद
से उनका अनादर करने वाले प्राणी उसी समय पतित होते हैं। जैसे जय वि
हुए थे। इन्हीं ने जिस प्रकार जगत के उत्पन्न करने की शक्ति ब्रह्मदेव को
उसी प्रकार उन्हें पालन और संहार की शक्ति भी दे रक्खी है। परन्तु इतना
पर भी जब कभी कार्य कारण से ब्रह्मदेव इन कार्यों को करने में असमर्थ हो जाते
उसी समय ये प्रकट होकर उन की सहायता करते हैं। सारांश यह है कि जो
विषयोन्मुख होते हैं उन्हें स्वरूपोन्मुख करना इतनी ही इन्हें उपाधि है और न
जो भृगु मुनि के लात मारने आदि की कथाएं हैं वे इन के विभूति रूप अवतारों
ही हैं।

पृ० ४५–सम प्रकाश तम पाख दुहुं—इस के विषय में पृष्ठ ४५ पूर्वोद्ध
टिप्पणी में जो कुछ समझाया है उस के व्यतिरिक्त एक तो यह बात बताई जात
कि चन्द्रमा सूर्य से प्रकाशित होता है। जैसा कि महाकवि कालिदास जी ने (
को लगभग दो हज़ार वर्ष हो चुके हैं) अपने महाकाव्य रघुवंश के तीसरे स
लिखा है कि—

> श्लोक—पितुः प्रयत्नात्स समग्र सम्पदः शुभैशरीरावयवैर्दिनेदिने।
> पुपोष वृद्धिं हरि दश्व दीधिते, रनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः॥ २२॥

भाव यह कि युवराज दिलीप दिनों दिन अपने अंग प्रत्यंगों में इस प्रकार
और पुष्टि पाते गये, जिस प्रकार नवीन चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से दिनों दिन
प्रकाश पाता जाता है॥

दूसरे मोटे लेखे से यह दर्शाने का प्रयत्न किया जाता है कि अंधेरे तथा उजेले पाख में चन्द्रमा प्रति तिथि को प्रायः दो घड़ी घटता बढ़ता है, न कि ठीक ठीक दो घड़ी; परन्तु समझने के लिये दो दो घड़ी मान कर हिसाब यों जमता है। यथा-

	शुक्ल पक्ष		कृष्ण पक्ष	
तिथि	प्रकाश घटिका में	तम घटिका में	प्रकाश घटिका में	तम घटिका में
१	२	२८	२८	२
२	४	२६	२६	४
३	६	२४	२४	६
४	८	२२	२२	८
५	१०	२०	२०	१०
६	१२	१८	१८	१२
७	१४	१६	१६	१४
८	१६	१४	१४	१६
९	१८	१२	१२	१८
१०	२०	१०	१०	२०
११	२२	८	८	२२
१२	२४	६	६	२४
१३	२६	४	४	२६
१४	२८	२	२	२८
योग	२१०	२१०	२१०	२१०

सूचना—इस में दोनों पाखों में उजेला और अंधेरा बराबर बराबर है। परन्तु यहां पर यह स्मरण रखना चाहिये कि यद्यपि उजेले पाख की प्रतिपदा को दो घड़ी उजेला और अट्ठाईस घड़ी अंधेरा तथा अंधेरे पाख की प्रतिपदा को अट्ठाईस घड़ी प्रकाश और दो घड़ी अंधेरा बतलाया गया है और वह यथार्थ में होता ही है परन्तु इतने सूक्ष्म रूप से कि दिखाई नहीं देता।

अब यह प्रश्न होसक्ता है कि चौदह तिथियों का मिलान तो किया गया, परन्तु मुख्य तिथि पूर्णिमा और अमावास्या जिनमें पूरा पूरा विरोध सा दीख पड़ताहै उसका क्या समाधान है? ज्योतिष के नियमों तथा तिथि के आरंभ समय का विचार करनेसे समझ में आ सक्ता है कि तिथि का आरम्भ अर्द्ध रात्रि के पश्चात् हो जाताहै इस नियम के अनुसार पूर्णिमा की अर्द्ध रात्रि के उपरान्त का आधा प्रकाश कृष्ण पक्ष में जा पड़ा और इसी प्रकार अमावास्या की अर्द्ध रात्रि के उपरान्त की अंधेरी शुक्ल पक्ष में आ पड़ी। इस

झ...झांझ मृदंग शंख सहनाई (इस में झा' दीर्घ है)।
भ ..भरत सकल साहिनी बुलाये ['भरत' देववाची शब्द है]
र...राम रमापति कर धनु लेहू ('राम' देववाची शब्द है और 'रा' दीर्घ भी है)।
प . पट मुख जन्म कर्म जग जाना [इस में पटमुख देववाची शब्द है]।
ह .हरिइच्छा भावी बलवाना (इस में 'हरि' शब्द देववाची है)

अर्थ में वाच्य, लक्ष्य,और व्यंग्य [देखो पुरीनी पृ० ३ पंक्ति १९]

अलंकारों में उपमा आदि बहुतेरे अलंकार अयोध्या कांड रामायण की श्री विनायकी टीका की पुरीनी में उदाहरण सहित मिलेंगे।

छन्द रचना में अनुष्टुप्, शार्दूल विक्रीड़ित, बसंत तिलका, सोरठा, चौपाई, दोहा, हरि गीतिका और चवपैया इतने ही प्रकार के छन्द जो बालकाण्ड में हैं वे सब इसी पुरीनी में लिख आये हैं [देखो पृ० ९ से पृ० १२ तक] शेष कांडों के छन्दों का पिंगल विचार उन्हीं कांडों की पुरीनी में मिलेगा।

† भाव भेद †

सूचना–पुरीनी ही में जो पृष्ठ ५ में रस समझाये हैं उसी के भीतर भावों के भेद लिखे हैं। उन में से अनुभाव और संचारी भावों के जो अन्तर्गत भेद लिख आये हैं। उन के उदाहरण कहीं कहीं अन्य ग्रन्थों से और बहुधा रामायण से दिये हैं:–

अनुभाव के चार भेद [१] कायिक [२] मानसिक [३] आहार्य और [४] सात्विक

[१] कायिक–सिय मुख शशि भये नयन चकोरा।
[२] मानसिक...देखि सीय शोभा सुख पाया।
[३] आहार्य (शोभा दर्शाना) .. गुच्छा बिच बिच कुसुमकली के।
[४] सात्विक...भये विलोचन चारु अचंचल।

तन व्यभिचारी सात्विक भाव आठ हैं उन के नाम व उदाहरण श्री राघवेश्वर कल्पतरु से संक्षेप में लिखते हैं:...

दो०.. स्तम्भ कम्प स्वर भंग अरु, विवरन आंसू नाम।
स्वेद और रोमांच पुनि, प्रलय बहुरि अभिराम॥

आठों के उदाहरण एक ही कवित्त में:...

है रही अडोल पहराव गात, बोले नाहिं, बदलि गई है छटा बदन सँवारे की।

(६) य र ल व — अंतस्थ किम्वा य वर्ग
(७) श ष स ह—ऊष्म किम्वा अन्तिम वर्ग

सूचना - इन अक्षरों में से जिस किसी अक्षर का नाम लेना हो, उस के अन्त में 'का' लगाकर उसे सूचित करते हैं। जैसे अकार से 'अ' ककार से 'क' समझा जाता है। इसी प्रकार और भी जानो।

इन में से ऊपर के वर्ण वर्ग की मैत्री नीचे के वर्ग के अक्षरों से होती है। यथा ककार की चकार से, चकार की टकार से, टकार की तकार से और तकार की पकार से परन्तु यही क्रम यदि उलट दिया जावे तो मैत्री नहीं होती। अर्थात् पकार की तकार से, तकार की टकार से, टकार की चकार से, और चकार की ककार से मैत्री नहीं होती है।

भाव यह कि ऊंचे वर्ग के नीचे वर्ग वालों से मिल बैठते हैं, परन्तु नीचे वर्ग वालों में इतनी योग्यता कहां कि ऊपर वालों को अपने मित्र बना लें।

दग्धाक्षर दोष— पं० मनीराम मिश्र कन्नौज वासी कृत छन्द छप्पनी पिंगल से—
सवैया—एक कवर्ग के अन्त को वर्ण चवर्ग के द्वै मनिराम गनीजै।
चारि टवर्ग के बीच बिना तजि जानि थकार पवर्ग न कीजै॥
तीनि यवर्ग के छाड़ि यकार ते और षकार हकार न कीजै।
वर्ण न इन विचारि कै चित्त ये मित्त कवित्त के आदि न दीजै॥
अर्थ—मनीराम कवि कहते हैं कि कवर्ग का अंत्य अक्षर 'ङ' चवर्ग के अन्तिम दो अक्षर अर्थात् 'झ ञ' गिन लेओ। टवर्ग के चार अक्षर बीच के डकार बिना त्यागो अर्थात् ट ठ ढ ण को त्यागो तथा थकार और पवर्ग के पांचों अक्षर छोड़ो। ऐसे ही यवर्ग के 'य' को शुभ मान बाकी तीन अक्षर अर्थात् 'र ल व' त्यागो और षकार तथा हकार भी वर्जनीय हैं। इसहेतु हे मित्र! यदि ये अक्षर दीर्घ न हों और विचार के अनुसार देववाची न हों, तो इन्हें कविता के आदि में मत रक्खो।

सारांश यह है कि ङ झ ञ ट ठ ढ ण थ प फ ब भ म र ल व ष और ह। ये अठारह अक्षर अशुभ समझे जाते हैं। यदि ये ही अक्षर दीर्घ हों अथवा देववाची शब्दों के आदि में हों तो दूषित नहीं।

स्मरण रहे कि बहुधा कविगण केवल पांच अक्षरों को दग्धाक्षर मानते हैं और वे ये हैं—झ भ र ष ह। परन्तु इन में भी दीर्घ होने तथा देववाची होने से दोष नहीं माना जाता है इसके सिवाय ङ ञ ण ये कविता के आदि में आते ही नहीं हैं)

२९ व्याधि—अति परिताप होय मन माहीं।
३० अवहित्थ—तन सकोच मन परम उछाहू।
३१ उन्माद- कहहु तात दारुण हठ ठानी।
३२ त्रास- भयो विलम्ब मातु भय मानी।
३३ तर्क—सो सब कारण जान विधाता।
रसों में शृंगार, हास्य आदि का हाल इसी पुरौनी के पृ० ५ में लिख आये हैं।

पृ० ५१—दोषों में कर्ण कटु, ग्रामीण आदि—

कविता के दोष काव्य ग्रन्थों में ७० से अधिक कहे गये हैं सो यों कि—(१) शब्द दोष सोलह, (२) वाक्य दोष इक्कीस, [३] अर्थ दोष तेईस और (४) रस दोष दश। इन के सिवाय किसी किसी दोष के अन्तर्गत भेद भी हैं तथा कोई कोई दोष गुण भी हो जाते हैं। इन में से बहुतेरे काव्य प्रभाकर, काव्य निर्णय आदि ग्रन्थों में मिलेंगे। यहां पर पांच शब्द दोष और उतने ही अर्थ दोष समझाये गये हैं॥

* शब्द दोष *

१. "कर्णकटु" किम्वा श्रुति कटु-वह कविता है जो सुनने में कर्कश हो। जैसे—"त्रियाञ्जलध चञ्चुत्रवा इधै परत ही दृष्टि। ये शब्द कर्ण कटु हैं॥

२. "ग्रामीण" किम्वा ग्राम्य— वे शब्द हैं जो बहुधा साधारण लोगों के बोल चाल में आते हैं। जैसे-बरवा— करिया फरिया पहिरे कुरता लाल।
गुजरी गोंड़ सु गुजरी चनकी चाल॥
इस में करिया फरिया, गुजरी गोड़ आदि शब्द ग्रामीण हैं।

३. "असमर्थ" (जिसे वाच्छल भी कहते हैं) जिस अर्थ के लिये शब्द रक्खा जावे, उस पर लक्ष्य होते हुए भी दूसरे अर्थ को चित्त दौड़े। जैसे, मति राम हरी चुरियां खनकैं' इस का अर्थ तो यह है कि "मति रामकवि" कहते हैं कि हरी चूड़ियों का शब्द हो रहा है। परन्तु दूसरा अर्थ यह प्रतीत होता है कि मति अर्थात् बुद्धि को राम ने हरी, इस हेतु चूड़ियां खनकाने वाले किम्वा जनाने बन गये॥

४. "अश्लील"- जिस कविता में लज्जा, घृणा और अमंगल सूचक शब्द हों उसे अश्लील कहते हैं। जैसे जीमूतनि दिन पितृगह, तियगणपठ गुदरान। इसमें जीमूत शब्द बादलों का सूचक है। पितृगह पितृलोक और गुदरान का अर्थ निर्वाह का है। इनमें मूत पितृ,गह, गुद और रान ये अश्लील शब्द हैं—

५. "समास"— जहां समास को पलट कर दूसरे शब्द रक्खे गये हों वहां समास दोष माना जाता है। जैसे—

भरि भरि आवै नीर लोचन दुहून बीच, गरारीर स्वेदन में भारी रंग तारे
पुलक उठे हैं रोम, कछुक अंगन फेरि कवि 'लछिराम' कौन जुगुति विचारे
बालक सो हमर अचानक मिल्यो है लगी नजर तिरीछी कहूं पांत।ट थारे

तेंतीस संचारी भाव उदाहरण सहित

१ निर्वेद- अब प्रभु कृपा करहु यहि भांती। सब तजि भजन करौं दिन राती
२ ग्लानि-मनही मन मनाव अकुलानी
३ शंका-शिवहि बिलोकि ससंकेउ मारू
४ असूया (डाह)—तब सिय देखि भूप अभिलाखे। कूर कपूत मूढ़ मन माखे
५ मद-रण मदमत्त निशाचर दर्पा।
६ श्रम— थके नयन रघुपति छवि देखी।
७ आलस्य-अधिक सनेह देह भइ भोरी।
८ दैन्य [दीनता]—पाहिनाथ कहि पाहि गोसाईं।
९ चिन्ता-चितवति चकित चहूं दिशि सीता। कहं गये नृपकिशोर मनचीता
१० मोह—लीन्हि लाय उर जनक जानकी।
११ स्मृति-सुमिरि सीय नारदवचन, उपजी प्रीति पुनीत।
१२ धृति (धैर्य)—धरि बड़िधीर राम उर आनी।
१३ व्रीड़ा (लाज)—गुरुजन लाज समाज बड़ि, देखि सीय सकुचानि॥
१४ आवेग (संभ्रम)— उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुं पट कहुं निषंग धनुतीर
१५ चपलता-प्रभुहि चितै पुनि चितै महि राजत लोचन लोल॥
१६ जड़ता-सुनि राग नांभ अचल हुइ वैसा। पुलक शरीर पनसफल जैसा
१७ हर्ष—हरषि राम भेटेउ हनुमाना।
१८ गर्व-रघुवंशिन कर सहज सुभाऊ।
१९ विषाद-सभय हृदय विनवति जेहि तेही।
२० निद्रा-रघुवर जाइ शयन तब कीन्हा।
२१ अमर्ष-जेहि सपनेहु परनारि न हेरी।
२२ औत्सुक्य-जनु तहं बरिस कमल सितश्रयनी।
२३ अपस्मार-चितवति चकित चहूं दिशि सीता।
२४ सुप्ति (स्वप्न)-जागी सीय स्वप्न अस देखा।
२५ विबोध-प्रात पुनीत काल प्रभु जागे।
२६ उग्रता—एक बार कालहु किन होई।
२७ मरण-राम राम कहि राम कहि, बालि कीन्ह तन त्याग।
२८ ज्ञान—प्रभु तन चितै प्रेम प्रण ठाना।

दो०—है दुपंच स्यन्दन शपथ, सौ हजार मन तोहि।
बल आपनो दिखाउ जो, मुनिकर जानै मोहि॥

यहां दुपंच स्यन्दन का अर्थ दशरथ और सौ हजार मन का अर्थ लखनन है

॥ अर्थ दोष ॥

(१)" कष्टार्थ ".. वह दोष है जिसमें अर्थ बड़ी कठिनाई से ध्यान में आवे। जैसे-
परवारौं चार मृग चार विहंग फलचार। अर्थ-चार मृग = चार पशु सो यों कि-नयन मृग, घू घट पर घोड़ा, गतिपर गज और कटि पर सिंह न्यौछावर है। चारविहंग= पक्षी अर्थात् वाणी पर कोकिल, गर्दन पर कबूतर, बालों पर भौंरा, नाक पर सुआ, डारों। फल चार अर्थात् दांतों पर अनार, स्तनों पर श्रीफल, ओठों पर कुंदरू नितंब पर तूंबी फल ये चारों न्यौछावर हैं॥

[२] "व्याहतं"...वह दोष है कि जिस अर्थको सिद्धकरें उसी को निषेध कर कहे जैसे—

"चन्द्रमुखी के बदन सम, हिमकर कह्यो न जाय"

इस में स्त्री को चन्द्रमुखी कहकर फिर कहते हैं कि उसके मुख के समान चन्द्र नहीं है।

(३) "पुनरुक्ति"...जिसमें [क] एकही शब्द अनेकबार हो अथवा
(ख) भिन्न भिन्नशब्द हों; परन्तु अर्थ एकही हो, उसे पुनरुक्ति दोष कहते हैं। जैसे—
(क) मुख पर बेसरिकी लसनि मुखपर केसरि रंग। इसमें मुखशब्द दोबार आयाहै।
[ख] मृदुवाणी मीठी लगै, बात कविन की उक्ति।
इस में वाणी, बात और उक्ति इन तीनों का एक ही अर्थ है।

[४] 'सन्दिग्ध'...वह दोष है जिस के अर्थ का ठीक ठीक निर्णय करने में सन्देह ही रहे। जैसे...

दो०.. आपन राहु भुजंग इव, लिखत तिया ततकाल।
लिखि लिखि पोंछत फिर लिखति, कारण कौन जमाल॥

इस में स्त्री के चित्र लिखने और मिटाने के कारणों का सन्देह ही रहता है।

[५] 'प्रसिद्ध विद्या विरुद्ध'...वह दोष है जिस में लोक रीति, वेद रीति, कवि रीति, देश रीति, काल रीति आदि के विरुद्ध अर्थ हो। जैसे—

(सवैया)

पं०—वामन जी ने अपने काव्यालंकार सूत्र में दस गुण कहे हैं (और उन के अनुसार कई ग्रन्थों में भी दस गुण कहे गये हैं) सो यों कि

श्लोक...श्लेष प्रसादः समता माधुर्यं सुकुमारता।
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कान्ति समाधयः॥

अर्थात् (१) श्लेष, (२) प्रसाद, (३) समता, (४) माधुर्य, (५) सुकुमारता, (६) अर्थ व्यक्ति, (७) उदारता, (८) ओज, (९) कान्ति और (१०) समाधि।

इन में से (२) प्रसाद, (४) माधुर्य [८] ओज ये मुख्य तीन गुण हैं जिन का वर्णन ऊपर हो चुका है। शेष सात गुण इन्हीं तीनों गुणों के अन्तर्गत ही रहते हैं। जैसा काव्य प्रकाश में महात्मा मम्मट जी ने लिखा है कि—

माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश

भाव यह कि [काव्य के गुण] तीन ही हैं अर्थात् माधुर्य, ओज और प्रसाद कि दस।

इसी अभिप्राय को भिखारी दास जी भी अनुमोदन करते हैं।

दो०—माधुर्यौज प्रसाद के सब गुन हैं आधीन।
ता ते इनहीं को गन्यो, मम्मट सुकवि प्रवीन॥

पृ० १०५—अजामिल

क़न्नौज शहर में अजामिल नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह पहिले सदाचारी था, पर दासी के संसर्ग से वह दुराचारी अनाचारी होगया था। उस दासी से दस पुत्र उत्पन्न हुए। उन में से छोटे पुत्र का नाम नारायण था। वह छोटा होने के कारण माता पिता को बहुत प्यारा था। जब अजामिल का मृत्यु काल आया तो यमदूत उसे लेने को आये। इस ने घबड़ाकर अपने छोटे पुत्र को नारायण! नारायण कह के पुकारा। नारायण नाम की ध्वनि सुनकर विष्णु के पार्षद वहां आये, उन मे और यमदूतों मे बहुत कुछ वादानुवाद हुआ। निदान उस ब्राह्मण के पूर्व पुण्य तथा अन्त में नारायण नाम स्मरण की महिमा को विशेषतः सिद्ध करके दोनों दूत अन्तर्ध्यान हो गये। तत्पश्चात् अजामिल ने अपने पापकर्मों का प्रायश्चित करने के निमित्त हरिद्वार में निवास कर कई वर्षों के पश्चात् मोक्ष पाकर उन्हीं विष्णु दूतों के द्वारा बैकुंठ धाम प्राप्त किया।

(देखो श्री मद्भागवत स्कन्ध ६ अध्याय १ला व दूसरा)

(२) 'ओज' का अर्थ दीप्ति अर्थात् तेज है। जिस रचना के सुनने से मन
होवे, वह काव्य ओज गुण वाला है। उसकी रचना काव्य निर्णय में यों
की गई है। जैसे—

दो०—उद्धत अक्षर जहं पर, सकट वर्ग मिलि जाय।
ताहि ओज गुण कहत हैं, जे प्रवीन कविराय॥

भाव यह कि उद्धत अक्षर अर्थात् प्रत्येक वर्ग के दूसरे और चौथे अक्षर संयुक्त अक्षर, इसी प्रकार कवर्ग और टवर्ग के सम्पूर्ण अक्षर अथवा संयुक्त अ कविता में हों उसे ओज गुण वाला काव्य कहते हैं। जैसे—

[१] कटकटहि जम्बुक भूत प्रेत पिशाच खप्पर संचहीं॥
(२) खप्परन्हि खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं॥
यह गुण वीर, रौद्र और वीभत्स रस में विशेष रहता है और अमृत कविता इसका उत्तम उदाहरण है॥

स्मरण रहे कि यह ओज गुण माधुर्य गुण का विरोधी है। इसहेतु मा गुण वाले रसों में इसका निषेध है और इस के रसों में माधुर्य के रसों का निषेध

[३] 'प्रसाद, शब्द का पर्यायी शब्द निर्मलता है॥

जिस कविता में अक्षर मन रोचक हों और उसका अर्थ शीघ्र जाना जावे प्रसाद गुण युक्त काव्य कहते हैं॥

प्रसाद गुण के विषय में काव्य प्रभाकर की प्रभा पदुमन कवि कृत काव्य मञ्ज कथित यों प्रकाशित की गई हैः—

दो०—सुगम बोध मति शुद्ध गति, नहिं संशय नहि वाद।
तेहि कवित्त को जानियो, 'पदुमन' गुण परसाद॥

भाव यह कि जिस कविता का अर्थ शीघ्र समझ में आवे, यति न बिगड़े, खट न हो, जो निस्सन्देह और निर्विवाद हो, उसे प्रसाद गुण युक्त काव्य कहते हैं ऐसे पदुमन जी का कथन है॥ जैसे—

दो०—ज्ञानी तापस शूर कवि कोविद गुण आगार।
केहि के लोभ विडम्बना, कीन्ह न यह संसार॥

यह गुण माधुर्य और ओज गुण वाली कविताओं में भी पाया जाता है।

† पृ०—३५२ (पूर्वार्द्ध) दशशिर=रावण।

साम्प्रत जो वैवस्वत मन्वन्तर प्रचलित है इसी में ब्रह्मा के मन से उत्पन्न हुए पुलस्त्य ऋषि के नाती और विश्रवा ऋषि की केकसी नाम की स्त्री से जो तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनमें से जेठा रावण था। उत्पन्न होते ही इस के दश शिर थे। इसी से इस का मुख्य नाम दशग्रीव था। फिर पीछे से रावण नाम पड़ा (देखो वाल्मीकीय रामायण सर्ग ९ व भारत वन पर्व अ० २७३) वैवस्वत मन्वन्तर की ग्यारहवीं चौकड़ी में इस का जन्म हुआ था [देखो लिंग पुराण अ० ६३]।

अब रावण कुछ बड़ा हुआ तो इस का सौतेला भाई कुबेर अपने पिता विश्रवा से मिलने को आया। उस समय कैकसी ने उस को पहिचान दिला कर रावण से कहा तू भी ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त करले। यह सुन रावण बोला; ऐसा ही करूंगा और फिर अपने भाई कुम्भकर्ण व विभीषण को साथ ले गोकर्ण क्षेत्र में जाकर भारी तपस्या करने लगा। वह तपस्या इसने दश हज़ार वर्ष तक इस प्रमाण से की कि वह प्रत्येक हज़ार वर्ष के अन्त में अपना एक शिर काट कर हवन कर देता था। इस प्रकार उस ने नौ हज़ार वर्ष के अंत में नौ शिर हवन कर डाले और दशवें हज़ार वर्ष के अंत में दशवां शिर भी हवन करने को तैयार हुआ। उस समय ब्रह्मदेव प्रकट होकर कहने लगे कि जो इच्छा हो सो वरदान मांगो। यह विनती कर बोला कि आप किसी को अमर तो करते ही नहीं। इसहेतु यह वरदान दीजिये कि देवता, राक्षस, दैत्य नाग, यक्ष और सुपर्ण इत्यादि किसी के हाथ से मैं न मारा जा सकूं। मनुष्य तो मेरे साम्हने तिनका के समान हैं। ब्रह्मदेव बोले, ऐसा ही हो और जो तू ने मस्तक हवन किये हैं उन के बारे में यह कहता हूं कि वे ज्यों के त्यों हो जावें तथा तू इच्छारूप धारी भी हो जावे। इसी प्रकार शेष दोनों भाइयों को भी अलग अलग वरदान दिये गये। निदान रावण श्लेषात्मक वन में पिता के पास लौट आया [देखो वाल्मीकीय रामायण उत्तर कांड सर्ग १०]॥

जब सुमाली राक्षस को मालूम हुआ कि मेरे दौहित्र [अर्थात् लड़की के लड़के] वरदान पा चुके हैं। तब वह प्रहस्त, मारीच, विरूपाक्ष और महोदर आदि राक्षसों को साथ लेकर आया और रावण से कहने लगा कि तुम अपने सौतेले भाई कुबेर से ऐश्वर्य समेत लंका छीन लो। रावण ने कहा कि बड़ा भाई तो पिता के समान होता है। इस के साथ मैं अनुचित बर्ताव कैसे करूं। इस पर वे प्रहस्त ने इसे माया से लुभा कर स्वतः दूत बन कुबेर से लंका लेली। और राक्षसों ने मिल कर रावण को लंका का राजतिलक कर दिया। इसका पराक्रम देख मय दैत्य ने अपनी कन्या मन्दोदरी इसे ब्याह दी और एक शक्ति भी इसको

गज की कथा लिखआये हैं (देखो पुरौनी पृ०१२)

ॐ गणिका ॐ

सत्ययुग में परशु नाम का एक वैश्य था, इस की स्त्री का नाम जीवन्ति वह पति के मर जाने पर व्यभिचार कर्म करने लगी. सब कुटुम्बियों ने इसे बहु समझाया, पर इस के जी में एक न भाया पिता ने क्रुद्ध हो कर इसे घर से नि दिया। स्वतंत्र होने पर इस का व्यभिचार और भी बढ़ा। कुमार्गी स्त्रियां क सन्तान हीन रह जाती हैं। कदाचित् इसी कारण से इसे भी कोई संतान न हु एक दिन इस ने एक सुग्गा मोल लिया और साधारण रीति से उसे राम नाम पढ़ लगी। पढ़ाते २ दोनों को राम नाम लेने का अभ्यास सा पड़ गया और दैवयोग रामनाम उच्चारण करते२ ही दोनों एकसाथ मर गये और राम नाम के प्रताप से तर

श्री मद्भागवत के ११ वें स्कन्ध में एक दूसरी वेश्या की कथा है सो यों विदेह नगर में पिंगला नाम की एक वेश्या रहती थी, वह एक दिन संध्या ही से स धज कर किसी धनवान् पुरुष की मार्ग प्रतीक्षा करने लगी—बारम्बार द्वार पर आ और फिर जब किसी को अपने पास आते न देखती तो भीतर चली जाती। पर फिर भी वहां न ठहर कर बाहर आ जाती थी। ऐसा करते २ आधी रात बीत ग उस के पास कोई भी न आया। निदान यह निराश हो बिस्तर पर आ लेटी औ नींद न आने के कारण पड़ी २ सोचने लगी कि इस हड्डी और मांस निर्मित मलमू से भरी देह का मुझे इतना घमंड और विश्वास था; परन्तु इसे तुच्छ ही जान बहुते धनी पुरुष मेरे साम्हने से निकल गये और किसी ने मेरी सुन्दरता का विचार ही न किया। यह विदेह नगर है मैं क्यों ऐसे पाप कर्म करूं कि जिस में पीछे से पछताना पड़े। साधारण मरणहार मलमूत्र से युक्त पुरुषों पर मैं क्यों वृथा प्रेम लगाऊं। यदि मेरा अटल प्रेम उस सर्व शक्तिमान् अजर अमर पवित्र परमात्मा पर लगे तो अवश्य यह जन्म सुधरे। ऐसे २ अनेक तर्क वितर्क कर उसने अपना वेश्या कर्म त्याग दिया और परमेश्वर का भजन करते२ तरगई। सो मानो यों कि-अबलौं नसानी अब ना नसै हौं

[देखो टि० पृ० १२२ पंक्ति २८ पूर्वार्द्ध]

पृ०—१३६—प्रसाद आदि गुणों का वर्णन इसी पुरौनी के पृ० २१ में है।

पृ०—१६२ गम्भ की कथा 'हरिहर शीर्षक' पुरौनी पृ० १२ में है।

ने यह शाप दिया कि यदि रावण किसी स्त्री से उसकी इच्छा बिना सम्भोग करेगा तो उसके मस्तक के सात टुकड़े हो जावेंगे।

इसके दश शिर और बीस भुजाएँ थीं। रंग काला होनेसे भयंकर दिखाई देता था परन्तु इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति होने से यह बहुधा सुन्दर रूप धारण कर लेता था। इसकी आकृति भी बड़ी थी। परन्तु कुम्भकर्ण से बहुत छोटी थी। शिवजी पर इसकी बड़ी भक्ति थी। परन्तु बुरे कर्मों की ओर विशेष झुकाव होनेके कारण इसे शिव भक्ति से अधिक लाभ न पहुंचा। इसकी वेद में बहुत पहुंच थी। ऐसा मालूम होता है। कारण पहिले चारों वेदों के विभाग अध्यायों में न थे। इसी ने उन्हें विषयों के क्रममें जमाया। वेदों के पद क्रम, घन व जटा इसी के कल्पित किये हुए कहे जाते हैं श्रीरामचन्द्र जी के साथ विरोध, उनसे युद्ध तथा उनके बाणों से मारे जाने का हाल विस्तार पूर्वक रामायण ही में है॥

पृ० २९९ (पूर्वार्द्ध) भूपति भावी मिटइ नहिं, यदपि न दूषण तोर—के पश्चात्का

* क्षेपक *

चौ० जो करि कपट छलै जग काहू। देइहिं ईश अधम गति ताहू॥
विप्रवचन सुन नृप अकुलाना। बहुरि पुनि विनय कीन्ह विधिनाना॥
पुनि पुनि पद गहि कहेउ भुआला। शाप अनुग्रह करहु कृपाला॥
अब तुम होब निशाचर जाई। अलवश तामस तनु पाई॥
अजर अमर अतुलित प्रभुताई। जग विख्यात वीर होइ भाई॥
होइहि जबहि पराभव भारी। तब तुम सेवब देव पुरारी॥
शिवप्रसाद यह पाइ बहोरी। होइहै सब जग प्रभुता तोरी॥
मिलिहहि तोहि जब सनत कुमारा। तब तुम समुझब शाप हमारा॥

दोहा—तुम पूछब विस्तार निज सादर सुनहु नरेश।
सब परिवार उधार तब होइहै मुनि उपदेश॥

पृ० ३६२-[पूर्वार्द्ध] रथ मद मत्त फिरे जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुं न पावा॥

के पश्चात् का क्षेपक।

दोहा--सप्तदीप नव खंड लगि सप्त रसाल प्रकाश।
कपमान धरणी धसत, सुरलपतिन्ह मन त्रास॥

दी, जिसे इस ने विभीषण पर चलाई थी। इस ने अपनी बहिन शूर्प
विवाह विद्युज्जिह्व नाम के राक्षस से कर दिया था। रावण मद मस्त होकर
करने लगा। इसे रोकने के लिये कुबेर ने दूत भेजा। इस दूत का रावण ने
द्वारा भक्षण करा दिया। तभी तो अंगद ने ताना दिया था कि 'देखी न
रखवारी। वृद्धि न मरहु पर्वधुत भारी'। फिर रावण कुबेर से लड़ने को गया
उसे परास्त कर उस का पुष्पक विमान छीन लिया॥

एक समय यह कैलाश पर्वत के समीप गया। वहां पर नंदी का बन्दर मुख देखकर हँस उठा। नन्दी ने शाप दिया कि बन्दर ही तेरा नाश करेंगे। क्रुद्ध हो दशानन कैलाश को उखाड़ने लगा। जब यह हाल शिवजी को मालूम तो उन्हों ने अपनी अलौकिक शक्ति से कैलाश को धर दबाया. इससे इसके हाथ यह पहिले रोया इसहेतु इसने 'रावण' अर्थात् रोनेवाला ऐसा नाम पाया। फिर सामवेद का गान करके शिवजी को प्रसन्न कर वहां से छुटकारा पाया। इसी समय शिवजी से चन्द्रहास नाम की तलवार भी प्राप्त करली।

एक समय इस ने वेदवती से छेड़ छाड़ की थी। उसने इसे शाप दिया था वंश सहित तेरा नाश मेरे ही कारण से होगा। कहते हैं कि यही वेदवती सीता रूप अवतरीं।

यह एक बार मरुत राजा से युद्ध करने गया। राजा यज्ञ कर रहा था, सो कर युद्ध करना चाहता था; परंतु यज्ञकर्त्ताओं ने रोका। तो यह यज्ञासन पर बैठ गया। पर से रावण यह डींग मारते हुए लौट आया कि मरुत राजा मुझ से डर गया, मैं उसे जीत लिया॥

नारद जी के उत्तेजित करने से यह यम से लड़ने को गया। सात दिन तक यु हुआ। निदान यम ने अपना भयंकर रूप प्रकट कर कालदंड से रावण को मारना ही चाहा था कि इतने ही में ब्रह्माजी ने यम को अपने वरदान की सूचना की। इस से यम अन्तर्ध्यान हो गये। रावण को अपनी जीत मान लेने का यह दूसरा अवसर मिल गया॥

इस के पीछे रावण ने पाताल में जाकर सब नाग देवों को जीत लिया और वहां पर निवात कवच से साल भर तक लड़ता रहा परंतु विजय प्राप्त न होने से आपस में सन्धि करली। फिर अश्म नगर के कालकेयों से जो इसका युद्ध हुआ उसमें रावणही के हाथसे इसकी बहिन शूर्पनखा का पति विद्युज्जिह्व मारा गया था। फिर वरुणलोक में गया, वहां वरुण तो थे ही नहीं, उनके सेनापति ने अपनी हार स्वीकार करली। इसने नलकूबर की अप्सरा से बलात्कार किया। उसने सब हाल नलकूबर से जा कहा। नलकूबर

देखी तहँ इक सरवर शोभा। जेहि मन मह्रा मुनिन कर लोभा॥
तहां कपीश करै निज ध्याना। दशकंधरहिं देखि मुसुकाना॥
जाइ ठाढ़ तहँ भा रजनीसा। ठोंक बाहु गरजित भुज बीसा॥
तब कपीश चितया मुसुकाई। ध्यान कि श्रौसर रिस बिसराई॥
तब रावण बोला करि क्रोधा। बकध्यानी कपिशठ सुनु बोधा॥
नाम तोर सुनि श्रायो धाई। दे कपि युद्ध छांड़ि कदराई॥

दो०—मोहि जीते बिन समर सुन, वृथा ध्यान तवकीश।
श्रंजलि देइ न पाइ है, शपथ करौं श्रज ईश॥

चौ०—तब बाली बोला बिहँसाई। बल तुम्हार ऐसो है भाई॥
रवि श्रंजलि मैं देउँ समीती। ठाढ़ होउ जायहु मोहिं जीती॥
तब निशिचरपति उठा रिसाई। दे कपि युद्ध छांड़ि कदराई॥
तबहि कीशपति मनहिं बिचारा। शिव बल दीन्ह मरहि नहिं मारा॥
दशकंधर घर जाहु बिचारी। श्रजय तुम्हारि सुनी बिधिचारी॥
बहुत भांति बाली समझावा। कौनेहु भांति बोध नहिं श्रावा॥
तब सकोप ह्वइ धरा कपीशा। धरि तेहि कांख चापि दशशीशा॥
श्रंजलि दीन्हि रविहि मन बानी। श्रचई सदा उदधि कर पानी॥
जपा श्रादि शंकर मन बानी। तेहि क्षण संध्या वन्दि सिरानी॥

दोहा—श्रावा घरहिं कपीश तब, कांख रहा लंकेश।
इहि बिध बीते मासषट, पाये बहुत कलेश॥

चौ०—निज कलेश वश करै उपाई। तहँ न चलै कछु श्रातुरताई॥
बहु प्रस्वेद कछरी महँ जाना। श्रधिक कुवास कीन्ह तहँ धामा॥
कलन लाइ रिसि दशननि काटा। कचकर जीव मनहुँ भ्रम चाटा॥
एक दिवस रवि श्रंजलि साजा। कांखते निसरि मह्रा धुनि गाजा॥
तब पुनि धरि कपीश सोइ बाँधा। लै श्रायो श्रंगद के सँधा॥
बीस भुजा दशशीश सुधारा। चरण दोउ पुनि धरि उर धारा॥
धरि समेटि भूनरि सम कीन्हा। बांधि सेज पर शोभा दीन्हा॥
श्रंगद खेलि लात शिर मारा। किलकिलाइ किलकै किलकारा॥

दोहा—तारा चीन्हेउ रावणहि, तेहि क्षण दीन्ह छुड़ाइ।
जाहु तुरत लंकेश गृह, बहुरि धरहि कपिराइ॥

चौ०— नारद मिले कहेसि मुसुकाई। देव कहां मुनि देहु दिखाई॥
सुनत अनख नारदहि न भावा। श्वेत द्वीप तेहि तुरत पठावा॥
सागर उतरि पार सो गयऊ। नारि वृंद तहं देखत भयऊ॥
तिन सन कहा पतिन पहुंचाई। कहिउ कि आव निशाचरनाई॥
तब मैं तिनहिं जीति संग्रामा। लै जैहौं तुम को निज धामा॥
सुनत वचन एक जरठ रिसानी। धाइ चरण गहि गगन उड़ानी॥
गई दूरि धरि धरि झकझोरा। डारिसि सिंधु मध्य अति जोरा॥

दोहा—गयो पताल अचेत हुइ, मरै न विप्रप्रसाद।
सावधान उठि गर्जे पुनि, हिये न हरष विषाद॥

चौ०—जीतेसि नाग नगर सब झारी। गयो बहुरि बलिलोक सुरारी॥
बैरोचनसुत आदर दयऊ। कुशल बूझि तब बोलत भयऊ॥
तुमहू निज शत्रुहि गहि लीजै। चलि महि लोक राज्य अब कीजै॥
कह बलि कनककशिपु के मंडन। पहरि लेहु तुम सुख दुख खंडन॥
लाग उठावन उठा न कोई। याही पौरुष ते जय होई॥
जिन यह भूषण अंगन धारे। ते भट गे इक क्षण में मारे॥
तेहि ते भवन जासु लै प्राना। चला तुरत मन माहिं लजाना॥
बामन रावन आवत जाना। किये देवऋषि सन अपमाना॥
खेलत रहे नगर शिशु नाना। निज बल तिनहिं दीन्ह भगवाना॥
धाइ धरा तेहि पुर लै आये। नगर नारि नर देखन धाये॥
बीस बाहु दशकंधर जाई। विधि यह गढ़नि कहां की आई॥
राखिन्हि बांधि खिजावहिं भारी। नाम न कहै सहै बरु गारी॥
बामन देखि बहुत संकुचाना। तब छुड़ाय दिय कृपानिधाना॥
चला तुरंत निशाचरनाहा। लाज शंक कछु नहिं मन माहा॥

दोहा- अति निर्लज्ज दया रहित, हिंसा परअति प्रीति।
राम विमुख दशकंठ शठ, तापर चाहत जीति॥
भरद्वाज सुनि जाहि जब, होत विधाता वाम।
मथिहुं कांध हुइ जाइ तब, लहै न कौड़ी दाम॥

चौ०—जहं कहुं फिरत देव द्विज पावै। दंड लेइ बहु त्रास दिखावै॥
इहि आचरण फिरै दिन राती। महा मलिन मन खल उतपाती॥
तब तुरन्त पंपापुर आया। बालि नाम कपिपति तहं ठांवा॥ [देखी]

दो०—निकट जाय लंकेश तब, गहे अंक भरि लीन्ह ।
पुत्रवधू जो कुवेर की, नहिं विचार कछु कीन्ह ॥

चौ०—कीन्ह ताहि मन शंका आई । घाटि कर्म कीन्हे पछिताई ॥
मन पछिताय शोच उर भयऊ । लंकेश्वर लंका महँ गयऊ ॥
चली उर्वसी आई तहां । अलकापुर नल कूवर जाहां ॥
समाचार सब पतिहि सुनावा । सुनी कथा मन महँ पछितावा ॥
दीन्ह शाप करि क्रोध अगारा । रावण वंश होहु क्षयकारा ॥
चली शाप लंका महँ आई । दशकंधर बैठेउ जेहिं ठाईं ॥
आगे आइ ठाढ़ि भा शापा । तब लंकेश्वर अति भय कांपा ॥
सडर सकोप चितव तेहि ओरा । नल कूवर कर शाप सुघोरा ॥

दो०—शापहि अंगीकार कर, मन महँ कीन्ह विचार ।
दण्ड ऋषिन से लीन्ह नहिं, रोपेउ लंकभुवार ॥

चौ०—दूत चारि तेहि पठय भवानी । भरद्वाज मुनि कथा बखानी ॥
आये दूत ऋषिन्ह के गेहा । देखत सबहिं भये संदेहा ॥
पूछहिं ऋषय कहां पग धारा । कहहु कुशल लंकेश भुवारा ॥
तात कुशल अब भइ विपरीता । तुमसन मागिन्ह दंड अभीता ॥
देहु दण्ड अस कहहिं रिसाई । कै गिरि कंदर आशु पराई ॥
सुनि अस वचन सबहिं दुख पावा । तुरत एक तिन पात्र मँगावा ॥
जेहि दरबार नीति नहिं भाई । खल मंडली जुरी तहँ आई ॥
सब मिल करि विचार इक ठाये । भरि घट रुधिर ऋषय ले आये ॥
दूतन सौंपि कहा मुनि ज्ञानी । भूपहि कहेउ जाइ यह बानी ॥

दोहा—घट उघरत क्षय होइहहु, सहित सकल परिवार ।
लेय दूत तहँ आयऊ, जहँ रह लंकभुवार ॥

चौ०—आये दीरघ दूत जब रावन । परम उलहास भयो मन भावन ॥
अब आनि घट धरा उतारी । देखि शंक लंकापति भारी ॥
बोलिन्ह वचन कहा यह भाई । सकल कथा तिन नृपहि सुनाई ॥
यहि घट ते लंकापति नाशा । सब दूतन अस वचन प्रकाशा ॥
यह घट लै उत्तर दिशि जाहू । जतन समेत धरहु लै ताहू ॥
शम्भु सभा श्रुति याद मझारा । इघमें रहि जनक मन हारा ॥

चौ०—पुनि रावण आवा तेहि ठाँई। सहसबाहु जहँ रास बनाई॥
जल क्रीड़ा जु करहिं सब नारी। विविध भांति शोभा अति भारी॥
आस रासमंडल जहँ रेवा। सुरनर नाग करहिं सब सेवा॥
आइ दीख रावण सुखनाना। देख विभव अतिशय दुख माना॥
तहँ लंकेश जाइ शिव देखा। शांतरूप अति सुन्दर वेखा॥
कमलप्रसून विल्वपुनि लायउ। तेहि चढ़ाइ मस्तक पद नायउ॥
जाकै जल छोभेउ दशशीशा। पढ़े मंत्र सुमिरे गौरीशा॥
निलज अशंक गयउ पुनि तहँवा। करि जलकेलि सहसभुज जहँवा॥

दोहा—तब प्रचंड जल छोभयउ, बूड़न लाग समाज।
सहसबाहु अति शंकमन, सकल तियन उर लाज॥

चौ०—तब राजा सन बोलहिं नारी। अलिहि सुन्दरी राजकुमारी॥
सुनहु नृपति आवा कोउ गाढ़ा। अकस्मात नरमद जल बाढ़ा॥
सुनि राजहिं भा क्रोध अपारा। जस त्रिपुरारि त्रिपुर कहँ जारा॥
जाइ दीख रावण तहँ ठाढ़ा। जासु मंत्र जनु जलनिधि बाढ़ा॥
माया प्रबल महा बल भारी। लंकेश्वर कहँ धरेसि प्रचारी॥
लै पुनि बांधि गयो तिय पासा। गढ़नि देख सब परम हुलासा॥
करि असनान पूजि गौरीशा। हयशाला बांधिसि दशशीशा॥
लज्जित दुष्ट नष्ट करि रहई। रिस उर मारि कष्ट बहु सहई॥

दो०—सुन गिरिजा पावन परम, अब यह कथा रसाल।
लै हयशाला बाँधि तेहि, बीस भुजा दशभाल॥

चौ०—सकल आइ देखहिं नर नारी। मारहिं लात हँसहिं दै तारी॥
नाम न कहै रहै सकुचाना। बहु विधि पूछहिं नृपति सुजाना॥
नृत्य करहिं रंभादिक नारी। दशहु माथ दश दीपक बारी॥
कछुक दिवस यहि भांति गवांवा। सो पुलस्त्य मुनि जाइ छुड़ावा॥
चला तुरंत महा अभिमानी। नल की शाप आइ नियरानी॥
मारग जात दीख विधुधारी। अति अनूप सुन्दर वरनारी॥
चंदन पुष्प पत्रकर धारी। पूजन चली माय त्रिपुरारी॥
देखि त्रयंगी मन मुसुकानी। तब रावण बोला मृदुबानी॥
को तुम नारि गमन कहँ कीन्हा। लज्जायश कछु उतर न दीन्हा॥

याज्ञवल्क्य मुनि कथा रसाला। साधु साधु मुनि परम कृपाला ॥
पुनि पुनि कहेउ कथा उपदेशा। जग जीतेउ सब लंकनरेशा ॥
चारि ठाउं हारिसि भइ त्रासा। सकल देव कीन्हे निज दासा ॥

[पृ० ४० उत्तरार्द्ध]

कोशलपुर वासीन्ह नर, नारि वृद्ध अरु बाल ..के पश्चात् का क्षेपक

चौ०—इक दिन एक सलूका आयउ। भूपति द्वारे कपिन्हि नचायउ ॥
देखि राम मचलाई ठानी। मो कहँ कीश मँगावहु आनी ॥
तब नरेश बहु कीश मँगाये। एकहु रघुपति मनहि न भाये ॥
गुरु पहँ जाइ भूप शिर नाये। सकल रामहठ कह समझाये ॥
तब वशिष्ठ बोले मुसकाई। कहीं हठै तब सोइ उपाई ॥
पम्पापुर वासी हनुमाना। जहां रहत नृप बालि सयाना ॥
दोहा—दूत तहां तुम भेज करि, बोल पठावहु कीश।
तेहि मर्कट को देखकर, हरषित होंहि सुरईश ॥

चौ०—सुनि गुरुवचन दूत पठवाये। तिन जा बचन सुकंठ सुनाये ॥
सुनि सँदेश हनुमन्त हकारी। कहेउ अवधपुर जाउ सुरारी ॥
रघुपति निरखि पवन सुत आये। कपठ लाय निज सखा बनाये ॥
जहं खेलहिं श्री राम कृपाला। संग रहैं तहं केशरिलाला ॥
राम एक दिन चंग उड़ाई। इन्द्रलोक में पहुँची जाई ॥
सुरपति सुतबधु चंग निहारी। पकड़ लीन्ह अस हृदय विचारी ॥
जासु चंग अस सुन्दरताई। सो जन त्रिभुवन में अधिकाई ॥
इहां राम पकड़ी चंग जानी। कहेहु जाहु देखहु कपि मानी ॥
सुरपुर पहुँच नारि के हाथा। बोले देहि छांडु हरिनाथा ॥
विहँसि कह्यो बिन दरशन पाये। छांड़ब नाहिं राम मन भाये ॥
प्रेम विवश तेहि लखि हनुमाना। आइ सकल प्रभु पास बखाना ॥
जाइ कहहु बोले भगवाना। चित्रकूट दर्शन मनमाना ॥
दोहा—प्रभु की वाणी सुनत ही, आइ कह्यो हनुमान ॥
चित्रकूट में आइ तुम, दर्शन निश्चय जान ॥
तिन तब कर ते तुरत ही, दीन्हों छोड़ पतंग ॥
खैंच लई प्रभु वेग ही खेलत बालक संग ॥

(पृ० ५८ उत्तरार्द्ध)

गये जहां जगपावनि गंगा—के पश्चात् का क्षेपक।

चौ०—अनुज सहित प्रभु कीन्ह प्रणामा। बहु प्रकार सुख पायउ रामा ॥

तेहि रिस ते तहँ कुम्भ पठावा। दूतन्ह सो सब मर्म बुझावा॥
ले घट जनक नगर ते गये। गावृत क्षेत्र मध्य तहँ भये॥
दैवयोग तहँ परा अकाला। बिन बरसे भइ प्रजा बिहाला॥
रोग शोक चहुँ ओर निहारी। भई बिकलता भूपति भारी॥
सतानन्द तब कहेउ विचारी। करहु यज्ञ नृप बरसै वारी॥
जनक यज्ञ तहँ कीन्ह अरम्भा। रचे कनक कदली के खम्भा॥
कियो मेखला मणिमय पूरी। भूमि सुहावन पावन भूरी॥
नृपति पुरोहित शासन पाई। चामीकर हल रचो बनाई॥
हाटकलांगल मही सुधारी। तहां प्रकट भइ ऋषियकुमारी॥
भुजा नामकहि निकट बुलाई। लीन्ही नृप तेहि कंठ लगाई॥
कन्या देखि अनूप भवानी। सुता मानि राजा गृह आनी॥
नाम जानकी परम पुनीता। नारद आइ कहा पुनि सीता॥

छंद०—कह पुनि सीता परम पुनीता आदि ज्योति की शक्ति सही।
नृपनीतिविधाना परमसुजाना आदि मध्य अवसान मही॥
भव उद्भव करनी पालनि हरनी नेति नेति यह वेद कहै।
तुवकृत्य प्रकाशी भुजा विलासी तीन लोक महँ पूर रहै॥

दो०—सकल कथा नृप जनक सो, नारद कही बखानि।
सकल सुलक्षित लखि गुण जगदंबा जिय जानि॥

चौ०—जनक सविनय कहत करजोरे। नाथ मनोरथ पूजे मोरे॥
चरण पखारि सुथल बैठारी। विनय कीन्ह अस्तुति विस्तारी॥
परम हुलास वचन शुभ भाखा। चरणोदक लै माथे राखा॥
धन्य धन्य कहि सुता प्रभाऊ। मुनि अस प्रीति कीन्ह नहिं काऊ॥
जो तुम कृपा कीन्ह पग धारे। मिटे अमंगल दोष हमारे॥
अब मोहि भा भरोस मुनिनाथा। भयो धन्य मैं गुणगण गाथा॥
साधु विदेह राज श्री जा की। उपमा और कहौं नृप का की॥
तुम उपमा उपमेय और सब। जहांप्रकट भइ भुजा आइ अब॥

दो०—योग भोग मैं गोइ मन, किये न प्रकट सुभाउ।
भये विदेह विदेह सुनि, विदा भये मुनिराउ॥

चौ०—कहि कथा ऋषिराउ सिधाये। बहुरि दूत लंका पुर आये॥
[illegible] हम आये राखी। सो शंकर गिरिजा सन भाखी॥

(याज्ञवल्क्य

दोहा—तव सुत कीन्हें पाप बहु मारे बालक वृंद।
तुम कहँ प्राण समान सुत सकल प्रजनि कहँ मंद॥

चौ०—प्रजागिरा मुनि धीरज दीन्हा। सुतहि देश ते बाहर कीन्हा॥
तासु तनय जग विदित प्रभाऊ। गुणनिधि अंशुमान तेहि नाऊ॥
बसत हृदय नृप के सो कैसे। फणि मणि मीन सलिल रह जैसे॥
गये प्रजा सब निज निज धामा। भये विशोच मनहि विश्रामा॥
बहुरि नृपति मन कीन्ह विचारा। आइ भयउ पन चौथ हमारा॥
द्विज मंत्रिन गुरु सुतन्ह बुलाये। हिमगिरि विंध्य मध्य तब आये॥
रुचिर वेदिका एक बनाई। देखत बनै वरणि नहि जाई॥
मख प्रारंभ छाँड़ेउ तब तुरगा। वेगवंत देखिय जिमि वरगा॥

दो०- सुरपति सुनि दारुण मखहि, मन महँ करि अनुमान।
आइ तुरग तिन्ह लीन्हउ मर्म न कोऊ जान॥

चौ०—राखेउ आन कपिल मुनि पाहीं। कोउ न जान काऊ गति नाहीं॥
युगवत रहे जे सुभट सयाने। लेत तुरग तिनहूं नहि जाने॥
तिन सब आइ कहा नृप पाहीं। महाराज हम कहत डराहीं॥
लीन्ह तुरँग यह जान न कोई। कहा करिय जो आयसु होई॥
सुनत वचन नृप विस्मय पायउ। सकल सुतन कहँ तुरत बुलायउ॥
जाइ तुरग तुम हेरहु भाई। सकल चले चरनन सिर नाई॥
सुरपति सम देखिय बलधीरा। सकल धनुर्धर अति रणधीरा॥
तिनहि चलत धरणी अकुलाई। बलि पशु जीव भये सब भाई॥
सुमन वाटिका उपवन बागा। सरित कूप वापिका तड़ागा॥
नगर गांव मुनि आश्रम नाना। गिरि कानन कंदर अस्थाना॥

सो० – इहि विधि शोधेउ जाइ आये सब मिलि भूप पहिं॥
चरणन माथहि नाइ बोले प्रभु कहुँ अश्व नहिं॥

चौ०—खोदहु महि सुत फेर पठाये। चले सकल पूरब दिशि आये॥
तिनके कर जनु यज्ञ ममाना। योजन भरि खोदहि बलवाना॥
देखि प्रतुन बल विबुध डराने। करिहहि कहा सकल सकुचाने॥
शोधत महि पताल सब आये। दिग्गज देखि सबन्ह सिर नाये॥
तेहि पूछा सब कथा सुनायउ। बहुरि सकल दक्षिण दिशि आयउ॥

पुनि सुरसरि उतपति रघुराई। कौशिक सन पूछा गिर नाई॥
कह मुनि प्रभु तव कुल इक राजा। नाम, सगर तिहुँ लोक बिराजा॥
तेहि के युग भामिनि सुकुमारी। केशिनि ज्येष्ठ सुमति लघु प्यारी॥
सब प्रकार संपति गुण भ्राजा, सुत विहीन मन विस्मय राजा॥
एक समय भामिनि दोउ साथा। बनो तप हेतु गये रघुनाथा॥
सघन सुफल तरु सुंदर नाना। तहँ भृगुमुनि, तप तेज निधाना॥

दोहा—सहित नारि नृप मुदित मन, रहे वर्ष शत एक।
कीन्हे तप भल देखि भृगु, अस्तुति कीन्ह अनेक॥

चौ०—कहि निज दुख प्रणाम नृप कीन्हा। दे अशीश तब मुनि वर दीन्हा
नृप रानी सन मुनि अस भाषा। लेउ सो वर जो जेहि अभिलाषा
सुनि मुनि चरण शीश तिन नावा। देउ नाथ तुम कहँ जो भावा।
एकहि कहा एक सुत होना। दूसरि सहस साठि सुत लोना।
हर्षित भयउ सुभग वरपाई। हाथ जोरि चरणनि शिरनाई॥
सहित भामिनिन्ह अवधहि आयउ। हर्ष सहित कछु दिवस गमायउ॥
जानि सुघरी नखत सुखदाई। तबकेशिनि असमंजस जाई॥
सुमति प्रसव तुम्बरि इक सोई। भये सुत प्रगट कहे मुनि जोई॥
हर्ष सहित दिय दान नरेशू। पूजि विप्र गुरु गौरि गणेशू॥
घृत घट सुंदर तुरत मँगाये। ते सब सुत नृप तिन महँ नाये॥

दोहा—इहि विधि भये सकल सुत, पूजे सब मन काम॥
जाहि दिवस निशि हर्षवश, सुनहु रामघनश्याम॥

चौ०—परिजन पुरजन रानि नरेशू। अति आनँद तनु मिटा कलेशू॥
बाल केलि करि भयउ कुमारा। लीला करैं अगम संसारा॥
होहिं सुकाज सकल मन चीते। इहि सुख बसत बहुत दिन बीते॥
शरयूनदी अवध जो अहई। विमल सलिल उत्तर दिशि बहई॥
प्रजा लोग के बालक नाना। नित उठि तहां करहिं अस्नाना॥
असमंजस तहँ तरणी आनी। तिन्हहिं चढ़ाइ बोर गहिपानी॥
भये प्रजा सब परम दुखारी। बालक बध लखि सुनहु खरारी॥
सकल गये जहँ बैठि नृपाला। बोले बचन नाय पद भाला॥
तुम नृप बरहु प्रजा प्रतिपाला। सुत तुम्हार भा सब कर काला॥
तजय देय अरु सुनहु नरेशू। बिना तजे नहिं मिटहि कलेशू॥

नगर समीप गरुड़ पहुँचाई। गयउ भवन तब निज रघुराई॥
यहां तुरग लै नृप शिरनाई। षष्टि सहस सुत मरण सुनाई॥
विस्मय हर्ष विवश नृप भयऊ। कीन्हा यज्ञ दान बहु दयऊ॥
बहुविधि नृपति राज तब कीन्हा। प्रजा लोग कहँ अति सुख दीन्हा॥

दोहा – अंशुमान कहँ राज दे, निज मन हरिपद लाग।
गयउ सगर तप काज बन, हृदय अधिक अनुराग॥

चौ० तासु तनय दिलीप नृप भयऊ। बन तप हेतु उतर दिशि गयऊ॥
अतिहि अगम तप कीन्ह नृपाला। भये कालवश गे कछु काला॥
केहि विधि कहुँ दिलीप प्रभुताई। सेवहिं सकल नृपति तेहि आई॥
युगवत जेहि सुख सुरपति रहई। महिमा तासु कथन कवि कहई॥
भागीरथ अस सुत भयो जासू। पितु सम नीति अधिक उर तासू॥
तिन्हहिं बोलि नृप दीन्हेउ राजू। आप चले उठि तप के काजू॥
मन महँ करत पंथ अनुमाना। सुरसरि आव तजौं तनु प्राना॥
अंशुमान सम तनु परिहरऊं। फिरि निज नगरक नाम न लेऊं॥
इहि विधि करत विचार भुआला। जाइ कीन्ह तप परम विशाला॥

सो० – करत विचार भुआल, जाइ कीन्ह बन प्रबल तप।
बीते कछु इक काल, देह तजी कोउ प्रकट नहिं॥

चौ० – सुरसरि लागि तजे तनुभूपा। सो तजि मूढ़ पियहिं जल कूपा॥
इहां भगीरथ मन अस भयऊ। पितु न आव बहु दिन चलि गयऊ॥
काकुत्स्थ नाम तासु सुत रहऊ। दीन्हा राज नीति बहु कहऊ॥
कहि सब पूर्व कथा सुत पाहीं। दीन्ह अशीश चलेउ बन माहीं॥
निकसत नगर सगुन भल पाये। अतिहि निबिड़ बन तहँ नृप आये॥
देखि भगीरथ मन अति भावा। सुरसरि हेतु तपहिं मन लावा॥
एक चरण दोउ भुजा उठाये। रवि सन्मुख चितवहि मन लाये॥
वर्ष सहस बीते इहि भांती। जात न जानहिं दिन अरु राती॥
देखि उग्र तप विधि चलि आये। बोले नृप सन वचन सुहाये॥
मांगहु नृप सु लेहु वरदाना। बोले नृप करि अजहिं प्रणामा॥
जो मांगौं सो जानत अहहू। मोसन मांगन प्रभु किमि कहहू॥

एहि विधि पुनि दूसर गज देखा। अति उत्तम गुण विमल विशेखा॥
ताहू कहँ प्रणाम पुनि कीन्हा। चले रतन पश्चिम चित दीन्हा॥
तीसर देखि प्रदक्षिण कीन्हा। पुनि उत्तर दिशि शोधन लीन्हा॥
दिग्गज श्वेत देखि सुख पाये। सकल कपिल मुनि पहँ चलिआये॥
खोदत महि कोउ पार न पावा। सोइ भा चहुँ दिशि जलधि सुहावा॥
दो० — देखिनि आइ तुरंग तब, बांधा मुनिवर पास।
बोले वचन सुक्रुद्ध हुइ, भा चह सब कर नास॥
चौ० - खोदी महि हम चारिउ क्रोधा। रे रे दुष्ट बहुत तोहि शोधा॥
कोउ कह चोर दीख यहु होई। इहि सम छली और नहिं कोई॥
सुनत वचन मुनि चितवा जबहीं। भये भस्म क्षण महँ सब तबहीं॥
उमा वचन जेहि समभि न बोला। सुधा होइ विष तिक्तम ओला॥
पावक जानि धरैं कर प्रानी। जरहिं न काहे ते अभिमानी॥
जानि गरल जे संग्रह करहीं। सुनहु राम ते काहे न मरहीं॥
क्रोध कीन्ह बिन करे विचारा। भये सकल तेहिते जरि छारा॥
वहाँ नृपति अंशुमान बुलाये। नहि आये सुत तिनहिं पठाये॥

दोहा — दीन्ह नृपति आशीश तब, अति हित बारहिबार।
वेगि फिरहु लै तुरँग सुत, मेरे प्राण अधार॥

चौ० — चलेउ नाइ पद शीश कुमारा। विष्णु भक्त दुहुँ कुल उजियारा॥
जहँ कहुँ निरखि मुनिन के धामा। पूछि खबर करि दंड प्रणामा॥
चले मुनिन्ह सन पाइ अशीशा। खोजहु पैहहु बाहु महीशा॥
इहि विधि खोजत मग महँ आता। मिलेउ गरुड़ सुमती कर भ्राता॥
चरण परत तब आशिष दयऊ। जरे सकल जेहि विधि सो कहऊ॥
सुनतहि वचन शोच भा भारी। लै खगेश देखेउ थल बारी॥
अंशुमान तहँ मज्जन कीन्हा। क्रम क्रम सबहिं तिलांजलि दीन्हा॥
बहुरि गरुड़ बोले सुनु ताता। मैं तोहि कहौं सुनौ इक बाता॥

सो० — करु सुत सोइ उपाइ, गंगा आवहिं अवनि महँ।
दरशन ते अघ जाइ, मज्जन कीन्हे परम हित॥

चौ० — षष्टि सहस सुत तरिहहि इहि विधि। गंगा पाइ परम पावननिधि॥
सुनि अस वचन हृदय अतिभाये। सहित गरुड़ मुनिवर पहँ आये॥
भूप गरुड़ मुनि चरणन नायउ। पूर्व कथा नृप ताहि सुनायउ॥
आशिष देइ तुरग मुनि दीन्हा। हर्षित हृदय गवन तब कीन्हा॥
(न

मज्जन करहिं देवता आई। मुनिगण सिद्ध रहे तहँ छाई॥

सोरठा तर्पन कर मन लाइ, हर्ष हृदय नहिं जात कहि।
दरशन ते अघ जाइ, तरहिं सकल सुर मुनि कहहिं॥

चौ०-करै जो मज्जन तप मन लाई। तिन की महिमा कहि न सिराई॥
स्यंदन पर नृप सोहत कैसे। तेजवंत रवि देखिय जैसे॥
लांघत शैल सुहावन देशा। पाछे सुरसरि अग्र नरेशा॥
हरिद्वार समीप तब आई। तीर्थ देखि सुरसरि मन भाई॥
तीरथ हू मन भा सुख भारी। जब प्रयाग पहुची अघहारी॥
तहँ मज्जन कीन्हे दुख जाई। बहुरि देवसरि काशी आई॥
सो शिवपुरी सहज सुखदाई। बरनि न जाइ मनोहरताई॥
औरौं तीर्थ विविध विधि जानी। गईं तहां किमि कहौं बखानी॥
मग लोगन कहँ करति सनाथा। जाइ चली इहि विधि रघुनाथा॥

दो०-मिली बहोरि समुद्र महँ, उदधि हृदय हरषान।
लगेउ सराहन भगिरथहिं, तुम सम धन्य न आन॥

चौ० कीन्हेउ अस जस करै न कोई। तप महिमा बल कत नहिं होई॥
सगर तनय तारे ततकाला। हर्षवंत तब भयउ भुआला॥
औरौं रहे जे कुल महँ कोऊ। तिन के संग तरे सब ओऊ॥
सकल सुरन्ह संग तहां विधाता। नृप सन आइ कही अस बाता॥
धन्य भगीरथ जग यश लयऊ। तुम समान नृप और न भयऊ॥
आपनि सत्य प्रतिज्ञा करऊ। संमत वेद सबहि सुख दयऊ॥
गंगासागर सब कोउ कहहीं। अघ समूह देखत रवि हरहीं॥
भागीरथी नाम अस कहहीं। सुर मुनि नाग सिद्ध यश कहहीं॥
अस कहि विधि निज लोक सिधाये। इहां भगीरथ अति सुख पाये॥

छंद-पाये अमित सुख बहुरि पूजेउ सुरसरिहि मन लाइ के।
तब दीन्ह आशिष मुदित गंगा नृप गये सुख पाइ के॥
इहि भांति मुनि गंगा कथा तब राम आपि परखन नये।
कह दासतुलसी राम लषनहि महामुनि आशिष दये॥

दोहा- कौशिक आशिष अमिय सम, सुनि हर्षे रघुनाथ।
पाइ बहुरि नृप अस कहेउ, बेगि चलिय मुनि नाथ॥

सो० -तदपि कहौं प्रभु देहु, वर शुभ संतति वृद्धि कर।
दूसर करहु सनेहु गंगा आवहिं अवनिपर॥

चौ०- एवमस्तु कहि पुनि विधि कहहीं। सुरसरि देउं राखि को सक
छूट जाइ पुनि तुरत रसातल। फिरहिं न नृपनि सुनिय पुनि भूत
तेहिते कहुँ इक तोहि बताहीं। अति दयालु शंकर मन मा
सोइ सक राखि देवसरि आजू। ताहि जपे तव होइहि का
अस कहि विधि अंतरहित भयऊ। बहुरि भगीरथ शिव तप ठयऊ
विबुध वर्ष अंगुष्ठ अधारा। बार बार शिव नाम उचार
शिव कृपालु प्रगटे तब आई। हाथ जोरि नृप कह शिरनाई
मैं राखब सुरसरि दे आसा। बहुरि उमापति गे कैलासा

दोहा—वहां देवसरि शिव वचन, सुनि मन कीन्ह विचार।
जाउँ रसातल शिव सहित, जात न लावौं वार॥

चौ०—अंतरयामी शिवहि उपाई। निज शिर जटा सु अगम बनाई॥
इहां भगीरथ अस्तुति कीन्ही। सुनि मृदु गिरा छांड़ि विधि दीन्हं
छटत शोर भयउ अति भारी। चकित देव अहि दिग्गज चारी॥
सुरसरि पुनि शिवजटा समानी। एक वर्ष तहँ रहीं भुलानी॥
कौतुक देखि सकल सुर हर्षे। कहि जय जयति सुमन तिन वर्षे॥
बहुरि भगीरथ सुमिरण कीन्हा। शिव तब डारि बुंद इक दीन्हा॥
तेहि ते भईं तीनि जल धारा। एक गई नभ एक पतारा॥
गइ नभ सो भइ अघकर नाशिनि। देवन धरा नाम मंदाकिनि॥

सो०—दूसरि गई पताल, नाम प्रभावति हरन दुख।
तीसरि गंग विशाल, सुर संतन कहँ करन सुख॥

चौ० आइ भगीरथ तब शिर नावा। बोली सुरसरि वचन सुहावा॥
वेगवंत नृप रथ तै आनू। तुरग मरुत गति जिमि रथ भानू॥
तेहि रथ चढ़ि नृप चल मम आगे। चलिहौं मैं तब पाछे लागे॥
मुनि नृप तुरत दिव्य रथ आना। चढ़ेउ हृदय सुमिरत भगवाना॥
चली करि नृपहि सुरसरी। देवन मुदित सुमन झर करी॥
द बरणि न जाई। टूटहिं तब गिरि शिला सुहाई॥
थ शिव जाती। कमठ नक्र व्याकुल बहु भांती॥

जे रघुवंशी कुँवर लाड़िले प्रभु कहँ माख पियारे।
चढ़े तुरंग संग तेउ गमने राम रंग मतवारे॥
राम वामदिशि श्री लक्ष्मीनिधि सखन सहित तेउ सोहैं।
चंचल बागे किये तुरिन्ह की बातें करत हँसोहैं॥
जगवंदन जेहि नाम जाहिरो रघुनन्दन को बाजी।
ता को गुण छवि कहँ लौं बरणौं जोहि होत मन राजी॥
जित रुख पावै तित पहुँचावै छन आवै छन जावै।
जिमिजिमि थमिथमि थिरकि भूमिपर गतिन ततिन दरशावै॥
फांदत चंचल चारु चौकड़ी चपलहु के चख झांपै।
भरत कुँवर को तुरँग रँगीलो वरणि जाइ कहु कापै॥
चम्पा नाम चाल चटकीली जेहि पर रिपुहन भाये।
सब समाज के आगे निरतैं मोर कुरंग लजाये॥
जो कहुँ नेकहु हाथ उठावत कई हाथ उठि जातो।
बार बार चुचुकारि दुलारत ताहू पर न जुड़ातो॥
लक्खी घोड़ा लषनलाल को बांको निपट चलाको।
उड़ि उड़ि जात वायुमंडल को परत न पग महि ताको॥
सरफराय उड़िजाय परत है लक्ष्मीनिधि हय पाहीं।
उचित विचार हँसे रघुवंशी रामहु मृदु मुसकाहीं॥
लखि तुरंग की चंचलताई लषन की देखि चढ़ाई।
रघुवंशी निमिवंशी सिगरे ठगि से रहे थिकाई॥
राम आदि जे कुँवर लाड़िले तेउ लखि भरे उछाहैं।
रीझि रीझि तहँ लषनलाल को वारहिंवार सराहैं॥
इमि मग होत विलास विविध विधि विपुल बाजने बाजैं।
सुनत नकीब पुकार नगर तिय कढ़ि बैठी दरवाजैं॥
कोउ तिय निरखि बदन की सुखमा अतिसुख महँ सो पागी।
भरे सनेह देह सुधि नाहीं रामरूप अनुरागी॥
कोउ तिय देखि अतूला दूलहा अति सनेह तनु भूला।
फूला नैन मैन मन भूला लागि प्रीति की हूला॥
कोउ घूँघट पट खोलि सुन्दरी लखि सुँदरी लै पानी।
देखत दूलहा रूप राम को आनँद सिन्धु समानी॥
दो०—कोउ मूरति लखि सांवरी, तोरति तृण मुख पाग।
माधुरि मूरति में पगीं, निज मूरति सुख त्याग॥

[पृ० २७१ उत्तरार्द्ध]

सहित बधूटिन्ह कुँअर सब, तब आये पितु पास . के आगे का क्षेपक (

भोर भये अपने कुमार को जनक वेगि बु लाये ।
सुनि कै पितु सँदेश लक्ष्मीनिधि सखन सहित तहँ आये॥
सादर किये प्रणाम चरण छुइ लखि बोले मिथिलेशू।
गमनहु तात तुरत जनवासे जहँ श्री अवधनरेशू॥
विनय सुनाय राय दशरथ सो पाय रजाय सचेतू।
आनहु चारिउ राजकुमारन करन कलेऊ हेतू॥
यह सुनि शीश नाय लक्ष्मीनिधि भरि उर मोद उमंगा।
सखन समेत मन्द हँसि गमने चढ़ि चढ़ि चपल तुरंगा॥
कलनि दिखावत हय थिरकावत करत अनेक तमासे।
मृदु मुसकात बतात परस्पर पहुँचि गये जनवासे॥
सखन सहित तहँ उतरि तुरँग ते मिथिलापति के बारे।
चारिहु सुत युत अवधराज को सादर जाय जुहारे॥
अति सुख निधि लक्ष्मीनिधि को लखि सखन सहित सतकारे।
रघुकुल दीप महीप हाथ गहि निज समीप बैठारे॥
तेहि क्षण सानुज निरखि राम छवि सखन सहित सुखमाने।
लक्ष्मीनिधि मुख दरश पाइ कै रामहु नैन जुड़ाने॥
तब श्रीनिधि कर जोरि भूप सो कोमल बैन उचारे।
करन कलेऊ हेत पठावो चारिहु राजदुलारे॥
सुनि मृदुवचन प्रेमरस साने दशरथ मृदु मुसक्याने।
चारहु कुँवर बुलाय वेगही विदा किये सुखमाने॥
जनक नगर की जान तयारी सेवक सब सुख पागे।
निज निज प्रभुहि सँवारन लागे लै भूषण वर बागे॥
रघुनंदन शिर पाग जरकसी लसी त्रिभंगी बांधी।
तिमि नौरंगी झुकी कलंगी रुचि रुचि पैंजनि साधी॥

दो०—बरनि सकै को राम कौ, अनुपम दूलह भेष।
जेहि लखि शिव सनकादि को, रहत न तनहि सरेष॥

इमि मंत्र अनुज सहित रघुनन्दन चारौं राज दुलारे।
चढ़े तुरंगन चढ़े तुरंगन अगन वचन सँभारे॥ (जै रघुवंशी)

देखत उठीं सकल रनिवासै रह्यो न तनुहि सरेषा॥
करि आरती वारि मनि भूषण सादर पाय पखारे।
चारि रंग के चारि सिंहासन चारिहु वर बैठारे॥
लखि छवि ऐना सासु सुनैना एक न पलक लगे ना।
भूली रैना बोलि सकै ना कहत बनै ना बैना॥
सखि अकि रही तनक नहि डोलै मगन महा सुख माहीं।
रामरूप रंगि गई रंगीली अंसु बहे दृग आहीं॥
इमि तहँ दशा विलोकि सासु की राम सुनत मनमाहीं।
काह भयो यह आज रानि को पूछत मे सकुचाहीं॥
चतुर सखी चित चरचि राम सो बोली मधुरी बानी।
यह तुम्हार गुरा है सब लालन और न कछु उर आनी॥
सुनत वचन यह तुरत धीर धरि जगी सुनैना रानी।
बार बार बहु लीन्ह बलैया चूमि कपोलन पानी॥
माधुरि मूरति सांवलि सूरति की दृग तोरति रानी।
रीझि रीझि तहँ रामरूप पै चित ही न ल बिकानी॥
पुनि कर जोरि राम सो रानी बोली अति मृदु बानी।
उठहु लाल घर करहु कलेऊ जो जो रुचि हिय ठानी॥
यह सुनि सजन समेत उठे तहँ चारहु राजदुलारे।
भरी भाग्य अनुराग सुनैना निज कर पाय पखारे॥
रचना अधिक बहुक के पीठन बैठारे सब भाई।
कंचनथारी मृदुल मुहारी परसा विविध मिठाई॥
रुचि अनुरूप भूप सुत जेवत पवन डुलावैं सासू।
बूझि बूझि रुचि विजन परसैं दरसि न जाइ हुलासू॥
स्वाद सराहि पाय पुनि अँचवे सखियन पान खवाये।
बैठे पहरि पंचाक गहन युत विविध कुसुम लगाये॥

दो०—राज ऐन सब चैन युत, रमैं राजकुमार।
जिन को हास विलास लखि, लाजहि लाखन मार॥

(पृ० २ उत्तरार्द्ध) कौशल्या

दक्षिण कोशलपुरी के राजा भानुमान की कन्या का नाम कौशल्या था। कन्या का विवाह राजा ने उत्तर कोशल देश के महाराजा दशरथ जी के साथ कर दिया था और दहेज में बहुत धनसम्पत्ति दी थी। कौशल्या जी कि सद्गुणों का वर्णन करना

स्था में और रानियों से छोटी तथा परमसुन्दरी होने के कारण कैकेयी दशरथ जी
प्यारी पत्नी बन बैठी. महाराजा मृगया तथा संग्राम के समय भी उसे अपने साथ
ते थे और कैकेयी भी राजा जी को बहुत चाहती थी। तभी तो संग्राम आदि कष्ट
समय उसने राजा जी को प्रसन्न कर दो वरदान पा लिये थे (देखो अयोध्या
रामायण की श्री विनायकी टीका की टि० पृ० ४१)। परन्तु जेठे
रामचन्द्र जी के राज्याभिषेक के समय कैकेयी भी जो रामचन्द्र जी पर
त से बढ़कर प्रेम रखती थी। अपने पिता के वचन तथा अपने वरदानों को भूल गई
। इसके दो मुख्य कारण कहे जा सक्ते हैं (१) श्री रामचन्द्र जी के सच्चरित्र
) अपनी विमाता कैकेयी पर उनकी परम पूज्य भक्ति। कैकेयी का जन्म राजवंश
आ था। वह अपने सौन्दर्य से दशरथ जी को विवाह से पहिले मोहित कर चुकी थी।
के पति भी चक्रवर्ती महाराजा दशरथ जी थे, जिन्हें यह परम प्यारी थी
तु यह अपने भोले स्वभाव के कारण दूसरे के कथन पर शीघ्र ही विश्वास कर लेती थी
। इसी कारण से मंथरा के बहकाने से इस प्रकार स्त्रीहठ को पकड़
कि रामचन्द्र सरीखे प्यारे पुत्र को वनवास देने में न सकानी और
ो उसके जीवन का दूषित कर्म समझा जाता है। वरदान माँगकर रामचन्द्र जी को
वास भेजने और भरत को गद्दी पर बिठलाने आदि की कथा अयोध्याकांड रामायण
विस्तार पूर्वक है। श्री रामचन्द्र जी और भरत जी के आचरणों से कैकेयी को पीछे
पछताना पड़ा था, परन्तु सहसा कर पीछे पछताना व्यर्थ ही हो गया॥

* सुमित्रा *

सिंघल देश के सुमित्र नाम के प्रतापी गुणवान् राजा की कन्या का नाम
मित्रा था। यह भी रूप लावण्यवती थी। राजा ने अपने मंत्री के द्वारा महा-
जा दशरथ को सूचना भेजी कि मैं अपनी कन्या का विवाह आप के साथ करना
हता हूं। इस के अनुसार महाराजा ने सुमित्रा का पाणिग्रहण किया। पहिले
कौशल्या और कैकेयी से विवाह कर चुके थे। इसहेतु सुमित्रा तीसरी पटरानी
हैं। परन्तु दशरथ जी का विशेष प्रेम कैकेयी ही पर रहता था। प्रतिप्राणा साध्वी
जिस प्रकार पति देवता को प्रेमभक्ति भरी दृष्टि से देखा करती है; सुमित्रा देवी भी राजा
दशरथ को उसी प्रेमभक्ति भरी दृष्टि से देखा करती थीं। इस के सिवाय सुमित्रा जी का प्रेम
ी रामचन्द्र और भरत पर विशेष था। सपत्नी के पुत्रों से द्वेष न कर
न से प्रेम रख कर अपने पुत्रों से उन की सेवा कराना यह बहुत ही प्रशंसनीय गुण
सुमित्रा जी में था। उन में दूसरा गुण इस से भी बढ़ कर यह था कि वे
अपनी सपत्नियों के साथ ऐसा उत्तम व्यवहार रखतीं थीं कि मानो सगी बहिनें हों
उन्हों ने अपनी सहृदयता, सुशीलता, धर्मपरायणता आदि गुणों के कारण कौशल्या
जी को मानो अपने वश ही में कर रक्खा था॥

अगम्य है तथा उन के भाग्य के बारे में इतना ही कहना बस है कि वे पराक्रमी राजा दशरथ जी की पत्नी और विष्णु के अवतार श्री रामच माता थीं। राजा दशरथ जी इन का बड़ा आदर करते थे। ये ही प्रध. थीं। (यद्यपि कुछ काल के लिये दशरथ जी का अधिक प्रेम कैकेयी पर ल तौ भी पुत्रेष्टि यज्ञ में प्राप्त चरु का आधा भाग कौशल्या ही को दिया कौशल्या जी अपनी सपत्नी कैकेयी पर क्रोधित न हुई थीं। यद्यपि उस सत्य शील पुत्र को वनवास दे दिया था। इस के सिवाय इन्हों ने भरत को समझाया था (देखो अयोध्याकांड रामायण की श्री विनायकी टीका की महाराजा दशरथ जी ने स्वयं कहा था कि प्रियवादिनी कौशल्या मेरी सेवा में की नाईं; एकान्त वार्ता में सखी सरीखी, धर्माचरण में भार्या की भाँति, उत्त देने में बहिन की नाईं और भोजन के समय में माता की भांति बर्ताव कर इन्होंने धर्म को श्रेष्ठ समझ कर अपने प्यारे पुत्र के चौदह वर्ष वनवास का वि दुःख सहन करलिया था। इन्हों ने सवतिया डाह की विपत्ति को धैर्यता से किया था। परन्तु अपनी सौत पर क्रोध नहीं किया था। उन का सरलस्वभाव निश्छल कथन गोस्वामी जी के वचनों में यों है:—

चौ० – सरल सुभाव राम महतारी। बोली वचन धीर धर भारी॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धर्मकटीका॥

दोहा०—राज देन कहि दीन्ह बन, मोहि न सो दुख लेश।
तुमबिन भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचंड कलेश॥

चौ० – जो केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ माता॥
जो पितु मातकहेउ बन जाना। तौ कानन शत अवध समाना॥

(देखो अयोध्या कांड रामायण की श्री विनायकी टीका)

कैकेयी।

केकय नाम का देश जिस को आज कल हिरात कहते हैं अफ़ग़ानिस्तान में है। वहां के राजा का नाम अश्वपति था। राजा जनक और अश्वपति समकालीन थे। अश्वपति की कन्या कैकेयी थी। जिस का विवाह महाराजा दशरथ जी से हुआ था। विवाह होने के पूर्व ही कैकेयी के पिता ने दशरथ जी से यह प्रतिज्ञा करा ली थी कि हमारी पुत्री से जो पुत्र उत्पन्न होवे, वही अयोध्या का भावी महाराज होवे (कारण कौशल्या जी उन की पटरानी थीं ही; परन्तु उस समय तक निस्सन्तान थीं)

(पृ० १३ उत्तरार्द्ध) संस्कार

बीज दोष और गर्भ दोष के निवारणार्थ तथा "आत्मीय देह" करने के लिये द्विजातियों में अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य जातियों में जो कर्म किये जाते हैं। उन्हें संस्कार कहते हैं [देखो मनुसंहिता दूसरा अ० श्लोक २६-२८। मनुस्मृति में द्वादश [सं]स्कार कहे हैं। व्यासजी सोलह कहते हैं। कहीं २ दश ही बतलाये हैं। गोतम ऋषि तो चालीस संस्कार बतलाते हैं व आठ आत्मीय गुण मिला कर कहीं अड़तालीस संस्कार माने हैं।

इन में से तीन [अर्थात् गर्भाधान पुंसवन और सीमंत] संस्कार जन्म के पहिले ही होते हैं। शेष जन्म होने के अनंतर ॥

व्यास जी के अनुसार षोडस संस्कार ये हैं:—

[१] गर्भाधान—(यह स्त्री का संस्कार है) स्त्री के प्रथम रजोदर्शन के समय यह संस्कार होता है। गणेश नक्षत्र आदि की पूजा पुण्याह वाचन मातृका पूजन नांदी मुख श्राद्ध आदि इस के आठ अंग हैं।

(२) पुंसवन—गर्भ रहने पर यह संस्कार दूसरे से आठवें मास तक होता है। यह गर्भ के बालक का संस्कार है न कि स्त्री का। इस में स्त्री के केश विशेष प्रकार से बांधे जाते हैं और नाक में सोमलता या बड़ वृक्ष की जड़ का चूर्ण लगाया जाता है। यह पुत्र जन्म के उद्देश से किया जाता है॥

[३] सीमन्त—सीमान्तोन्नयन संस्कार गर्भ से चौथे से आठवें मास तक होता है। यह स्त्री का संस्कार है। कुशा से स्त्री के केशों की मांग की जाती है और कहीं २ जघा पर जल पूर्ण घट भी रक्खा जाता है॥

(४) जात कर्म—नालच्छेदन के पूर्व यह बालक का संस्कार है॥

[५] नाम करण—जन्म से दशवें वा बारहवें दिन बालक के नाम रखने को कहते हैं॥

(६) निष्क्रमण--चौथे मास में बालक को पहिले पहिल घर से बाहर ले जाने और सूर्य के दर्शन कराने को कहते हैं।

(७) अन्नप्राशन - छठवें मास अथवा कुलाचारानुसार बालक को पहिले पहिल खीर चटाने को कहते हैं।

(८ चौल (चूड़ा)—प्रथम या तृतीय वर्ष में बालक के मुंडन को कहते हैं।

९) कर्ण वेध—जन्म से बारहवें या सोलहवें दिन या ६ ७, ८ वें मास या ऊने वर्षों में बालक के कान बींधने को कहते हैं।

(१०) उपनयन लड़के को आचार्य के समीप गायत्री उपदेश के अर्थ ले जाने को उपनयन यज्ञोपवीत, व्रतबंध, जनेऊ या बरुआ आदि कहते हैं। पांचवें या आठवें वर्ष जनेऊ पहिन कर गायत्री का उपदेश लिया जाता है। इस मुख्य

सुमित्रा देवी का सत्यधर्म पर अनुराग देखिये रामचन्द्र जी के वनवा जब शोकाकुल दशरथ जी कौशल्या जी के महलों में गये। तब उन की दशा तथा रामचन्द्र सरीखे पुत्र आदि के वियोग मे व्यथित कौशल्या जी को सु ने किस प्रकारसे ढाढ़स बंधाया था। उसे सुन कर कौन ऐसा पुरुष होगा जो सु को पूर्ण देवी मान कर उन की प्रशंसा न करेगा। क्योंकि उस समय सुमित्र भी उसी प्रकार के वियोग दुःखों का साम्हना करना पड़ा था॥

सुमित्रा जी बोलीं कि हे बहिन! रामचन्द्र जी सर्व गुण सम्पन्न हैं के लिये किसी प्रकार की विपत्ति का भय नहीं है। उन के लिये शोक करना नहीं है। रामचन्द्र जी सत्यवादी हैं। वे अपने पिता की सत्यता दृढ़ रखने ही राज्य को छोड़ बनवासी हुए हैं। उन का अनुराग सत्कर्मों में रहता है के थोड़े समय के लिये वियोगका शोककरना योग्य नहीं दिखता॥ और कहने लग

कीजै कहा जीजी जू सुमित्रा परि पाय कहै तुलसी सहावै विधि सोई सहियत
रावरो सुभाय राम जन्म ही ते जानियत भरत की मातु को सो कीबो चहियतु
जाई राजघर ब्याहि आई राज घर महा राजपूत पाये हू न सुख लहियतु
देह सुधा गेह ताहि मृग ने मलीन कियो लाहू पर चाह विन राहु गहियतु

रामचन्द्र निर्दोषी हैं. शीघ्र ही जय प्राप्त कर जानकी तथा लक्ष्मण लौट आवैंगे। भविष्य के सुख का विचार कर थोड़े दिनों के वियोग को लोग के कारण सहन कर लेते हैं॥

जब कि सब अवध निवासी व्याकुल हो रहे थे दशरथ जी को तो सुध ही नहीं थी और कौशल्या जी भी शोकाकुल हो रही थीं। ऐसे संकट के समय अपने पति की दशा देख और पुत्रों तथा पतोहू के वियोग से घबरायी हुई सुमित्रा भी जब धैर्य को धारण कर कौशल्या जी को उचित रीति से समाधान कर रहीं थी तो उन्हें साक्षात् देवी ही कहना अनुचित न होगा। क्योंकि इस समय उन्हों ने विश्वास, सत्यप्रियता, कर्तव्यनिष्ठा मानवी चरित्र से जानकारी आदि का अच्छा परि चय दिया था। धन्य है! ऐसी माताओं को और उनको उपजाने वाली भारत भूमि को

विश्वासपात्रप्राणी यदि छल कपट का भंडार ही निकल पड़े तो उसके द्वार प्राप्त हुई वेदना असह्य हो जाती है। ऐसे असह्य दुःखके समय जो ढाढ़स बँधा सका है उसी के आचरण अनुकरणीय हैं॥

सारांश यह है कि ऐसी सचरिता आदर्शदेवी में भार्याभाव, मातृभाव, सखी भाव और विमाता भाव सभी उत्तम थे। तभी तो रसिकविहारी जी ने कहा है कि 'कौशिला सुमित्रा सी न माता सु विवेकी पुनि ....

बालकांड रामायण की प्रसिद्ध कहावतें। (पूर्वार्द्ध)

पृष्ठ	कहावत
२१	साधुचरित शुभ सरिसकपासू। निरस विशद गुणमय फल जासू॥
,,	जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। वन्दनीय जेहि जग यश पावा॥
,,	मुद मंगलमय सन्तसमाजू। जो जग जंगम तीरथराजू॥
२५	मज्जनफल पेखिय ततकाला। काक होहिं पिक बकहु मराला॥
,,	सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई॥
२७	बिन सतसंग विवेक न होई। रामकृपा बिन सुलभ न सोई॥
,,	शठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई॥
,,	विधिवश सुजन कुसंगति परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥
२८	विधि हरि हर कवि कोविद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
,,	सो मो सन कहि जात न कैसे। 'शाकवणिक मणिगणगुण जैसे'॥
२९	बहुरि बन्दि खलगण सतिभाये। 'जे बिन काज दाहिने बाँये'॥
३०	परहित हानि लाभ जिन केरे। उजरे हर्ष विषाद बसेरे॥
३१	जे परदोष लखहिं सहसाखी। परहित घृत जिनके मनमाखी॥
३३	उदयकेतु सम हित सब ही के। कुम्भकरण सम सोवत नीके॥
३४	पर अकाज लग तनु परिहरहीं। जिमि हिमउपल कृषीदल गरहीं॥
३५	वचन वज्र जेहि सदा पियारा। सहसनयन परदोष निहारा॥
३६	पायस पालिय अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा॥
,,	बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं। मिलत एक दारुण दुख देहीं॥
३७	उपजहिं एक संग जल माहीं। जलज जोंक जिमि गुण बिलगाहीं॥
३८	गुण अवगुण जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥
,,	भलो भलाई पै लहइ, लहइ निचाई नीच। सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच॥ ५॥
३९	खल गह अगुण साधु गुण गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥
,,	तेहि ते कछु गुण दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिन पहिचाने॥
,,	कहहिं वेद इतिहास पुराना। विधि प्रपंच, गुण अवगुण साना॥
४१	जड़ चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन्ह करतार। सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥ ६॥
,,	काल स्वभाव करम बरिआई। भलेउ प्रकृतिवश चुकहिं भलाई॥
४२	खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटै न मलिन स्वभाव अभंगू॥

संस्कार के बिना द्विजातीय वेद पढ़ने का अधिकारी

(११) वेदारंभ वेद पढ़ने के कर्म को वेदारंभ संस्कार कहते हैं।

[१२] केशान्त समावर्तन)— वेदपाठ समाप्त होने पर गुरु की आज्ञा से आने के संस्कार को कहते हैं। इस में शिष्य के केश काटे जाते हैं।

(१३) विवाह - आठ प्रकार का है (देखो मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक २१)

[१४] विवाहाग्नि परिग्रह —विवाह की अग्नि का ग्रहण।

[१५] त्रेताग्नि संग्रह—तीन वेदों की विधि से अग्नि का संग्रह।

(१६) अन्त्येष्टि —यह मृतक का संस्कार है।

† श्राद्ध †

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में लिखा है कि पुरातन काल में देव और मनुष्य पर एकत्र रहते थे। यज्ञ करने के पुण्य से देवों को स्वर्ग मिला और मनुष्य पृथ्व ही रह गये। यह देख कर मनु जी ने श्राद्धकर्म की रास्ता दिखाई। वे लिख कि वेद पढ़े हुए ब्राह्मणों को हव्य कव्य [अर्थात् देवताओं और पितरों के निमि उद्देश किया हुआ अन्न] देवें। और अधिक पूज्य ब्राह्मणों को भी देने से बड़ा' होता है। (देखो मनुसंहिता तीसरा अध्याय १२८ वां श्लोक]। देवनिमित्त श्राद्ध नांदीमुख और पितृ निमित्त श्राद्ध को अश्रुमुख श्राद्ध कहते हैं (देखो वालकांड रामा उत्तरार्द्ध टि० पृ० १२, १३]।

श्राद्ध का असल अभिप्राय योग्य ब्राह्मणों को [जिन का जीवन पुराने समय में संसारी वैभव को त्याग कर के केवल परोपकार में व्यतीत होता था] आर्थिक सहायता पहुँचाने का था। और इसीहेतु श्राद्ध में जिन को भोजन दक्षिणा आदि देने का विधान है। उस में सगे, सम्बन्धी, मित्र जिन से अपना स्वार्थ निकले उन मनुष्यों को सम्मिलित करना ठीक नहीं समझा जाता था। श्राद्ध में सुपात्र और केवल अतिथि ही को ग्रहण करना लिखा है। पुराने ग्रन्थों में 'श्राद्धमित्र', जो दक्षिणा आदि लेने से मित्र होगये हैं उनकी बड़ी निन्दा की है। मोक्षमूलर साहब ने तो यहां तक कहा है कि ईसाई धर्म में श्राद्ध का न होना एक बड़ी त्रुटि है। परोपकारार्थ प्रत्येक वस्तु का दान पितरों में प्रबल भक्ति के सिवाय [illegible] काम ही होता है॥

५६ जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥
६१ जेहि जन पर ममता अति छोहू। तेहि करुणा कर कीन्ह न कोहू॥
„ गई बहोरि गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥
६२ अति अपार जे सरित वर, जो नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिन श्रम पारहि जाहिं॥ १३॥
६३ जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रमबादि बालकवि करहीं॥
६४ सरल कवित कीरति विमल, सोइ आदरहिं सुजान
सहज बैर बिसराय रिपु, जो सुनि करहिं बखान॥
७० अनमिल आखर अर्थ न जापू। प्रकट प्रभाव महेश प्रतापू॥
८४ महिमा जासु जान गणराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥
८५ जान आदिकवि नामप्रतापू। भयउ शुद्ध कर उलटा जापू॥
८७ नामप्रभाव जान शिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमी को॥
६४ राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहरहुँ, जो चाहसि उजियार॥ २१॥
६७ जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
„ चहुँ चतुरन कहँ नाम अधारा। ज्ञानी प्रभुहि विशेष पियारा॥
„ चहुँ युग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विशेष नहिं आन उपाऊ॥
१०१ शबरी गीध सु सेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुणगाथ॥ २४॥
१०३ ब्रह्म राम ते नाम बड़, बरदायक बरदानि।
रामचरित शत कोटिमहँ, लिय महेश जिय जानि॥ २५॥
१०४ नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भक्तशिरोमणि भे प्रहलादू॥
„ ध्रुव सगलानि जपेउ हरिनामू। पायेउ अचल अनूपम ठामू॥
१०८ भाय कुभाय अनख आलस हूँ। नाम जपत मंगल दिशि दश हूँ॥
१०६ लोकहुँ वेद सुसाहिब रीती। विनय सुनत पहिचानत प्रीती॥
११० सुकवि कुकवि निज मति अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी॥
„ साधु सुजान सुशील नृपाला। ईशअंशभव परम कृपाला॥
१११ रीझतराम सनेह निसोते। को जग मन्दमलिन मति मोते॥
शठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं रामकृपालु।
उपल किये जलयान जेहि, सचिव सुमति कपि भालु॥
११२ अति बड़ मोरि ढिठाई खोरी, सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी॥
११३ कहत नसाइ होइ हिय नीकी। रीझत राम जानि जन जी की॥

४२ कर सुवेष जग वंचक जेऊ। वेष प्रताप पूजियत
,, उघरहिं अन्त न होय निबाहू। कालनेमि जिमि रावण
४३ किये कुवेष साधु सनमानू। जिमि जग जामवन्त
,, हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु वेद विदित सब
,, गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा। कीचहि मिलै नीच जल
,, साधु असाधु सदन शुक सारी। सुमिरहिं राम देहिं गनि
४४ धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिय पुराण मंजुमसि स
,, ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुयोग सुयोग।
,, होइ कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलक्षण लोग॥
,, सम प्रकाश तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह।
,, शशि पोषक शोषक समझि, जग यश अपयश दीन्ह॥
४७ सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ
,, मति अति नीच ऊँच रुचि आछी। चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी
,, ज्यौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता।
४८ निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका॥
,, जे पर भनित सुनत हरषाहीं। ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं
,, जग बहु नर सरिता सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई॥
,, सज्जन सुकृत सिन्धु सम कोई। देखि पूर विधु बाढ़हिं जोई॥
४६ खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकण्ठ कठोरा॥
५२ विधुवदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥
,, सब गुण रहित कुकविकृत बानी। राम नाम यश अंकित जानी॥
,, सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस सन्तगुणग्राही॥
५३ सोइ भरोस मोरे मन आवा। केहि न सुसंग बड़प्पन पावा॥
,, धूमउ तजइ सहज करुआई। अगरु प्रसंग सुगन्ध बसाई॥
,, भव अङ्ग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥
५४ प्रिय लागहि अति सबहि मम, भनित रामयश संग।
. दारु विचारु कि करइ कोउ, बन्दिय मलय प्रसंग॥
५५ तैसेहि सुकवि कवित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं॥
५६ कीन्हे प्राकृत जन गुण गाना। शिर धुनि गिरा लागि पछताना॥
५७ जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस वेष मराला॥
,, चलत कुपंथ वेद मग छाँड़े। कपट कलेवर कलिमल भाँड़े॥
,, वंचक भक्त कहाइ राम के। किंकर काम के॥

१९३ रहत न प्रभुचित चूक किये की। करत सुरति सौ बार हिये

„ जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्ह कुचा

११४ सोइ करतूति विभीषण केरी। सपनेहु सो न राम हिय हे

११६ जानहिं तीन काल निज ज्ञाना। करतल गत आमलक समान

११७ श्रोता वक्ता ज्ञाननिधि, कथा राम की गूढ़।
किमि समझै यह जीवजड़, कलिमल ग्रसित विमूढ़ ॥ १० ॥

११८ रामकथा कलि पन्नग भरनी। पुनि विवेक पावक कहँ अरनी

१२३ सद्गुरु ज्ञान विराग योग के। विबुधवैद्य भव भीम रोग के

१२४ मंत्र महामणि विषय व्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के।

„ हरन मोहतम दिनकर कर से। सेवक शालिपाल जलधर से।

१२५ अभिमत दानि देव तरुवर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से॥

„ कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दम्भ पाखंड।
दहन रामगुणग्राम इमि, ईंधन अनल प्रचंड॥

१२७ राम अनंत अनंत गुण, अमित कथा विस्तार।
सुनि आचरज न मानिहहिं, जिनके विमल विचार ॥ ३३ ॥

१२६ चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजे तनु नहिं संसारा॥

१३६ अति खल जे विषयी बक कागा। इहि सर निकट न जाहिं अभागा॥

„ सम्बुक भेक सिवार समाना। इहाँ न विषय कथा रस नाना॥

„ तेहि कारण आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बेचारे॥

, आवत इहि सर अति कठिनाई। रामकृपा बिन आइ न जाई॥

१४० गृह कारज नाना जंजाला। तेइ अति दुर्गम शैल विशाला॥

„ जे श्रद्धा शम्बल रहित, नहिं संतन्ह कर साथ।
तिनकहँ मानस अगम अति, जिनहिं न प्रिय रघुनाथ ॥ ३८ ॥

१४१ जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नींद जुड़ाई होई॥

„ जड़ता जाड़ विषम उर लागा। गयहु न मज्जन पाव अभागा॥

„ करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवै समेत अभिमाना॥

१४२ जो बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निन्दा करि ताहि बुझावा॥

„ सकल विघ्न व्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा विलोकहिं जेही॥

१४३ जिन हरि भगति न मानस पोषे। ते कायर कलिकाल बिगोये॥

„ तृषित निरखि रवि कर भव बारी। फिरिहहिं मृगा जिमि जीव दुखारी॥

१४६ [illegible] करहिं [illegible] नीति नर, पुनि [illegible] जो गाव।
होइ न विमल विवेक उर, [illegible] तन हिये दुराव ॥ ४४ ॥

२५३ शिवपदकमल जिनहिं रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सुहाहीं॥
„ बिन छल विश्वनाथपद नेहू। रामभक्त कर लच्छण येहू॥
„ शिव सम को रघुपतिव्रतधारी। बिन अघ तजी सती अस नारी॥
२५५ जेहि पर कृपा करहिं जन जानी। कविउरअजिर नचावहिं बानी॥
२५६ हरिहर विमुख धर्म रति नाहीं। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं॥
२६१ यदपि योषिता अनअधिकारी। दासी मन क्रम वचन तुम्हारी॥
२६२ गूढ़ौ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥
२६४ झूठौ सत्य जाहि बिन जाने। जिमि भुजङ्ग बिन रजु पहिचाने॥
„ जेहि जाने जग जाइ हिराई। जागे यथा स्वप्नभ्रम जाई॥
२६६ जिन हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवणरंध्र अहिभवन समाना॥
„ नयनन्ह सन्तदरश नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा॥
„ ते शिर कटु तूमर सम तूला। जे न नमत हरिगुरुपदमूला॥
२६७ जिन हरिभक्ति हृदय नहिं आनी। जीवत शव समान ते प्रानी॥
„ जो नहिं करै रामगुण गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥
„ कुलिश कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती॥
„ रामकथा सुन्दर करतारी। संशय विहँग उड़ावन हारी॥
२६९ मुकुर मलिन अरु नयन विहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना॥
२७० बातुलभूत विवश मतवारे। ते नहिं बोलहिं वचन विचारे॥
„ जिन कृत महामोह मदपाना। तिन कर कहा करिय नहिं काना॥
२७१ अगुण अरूप अलख अज जोई। भक्त प्रेमवश सगुण सो होई॥
„ जो गुण रहित सगुण सो कैसे। जल हिमउपल विलग नहिं जैसे॥
„ सहज प्रकाशरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि विज्ञान विहाना॥
२७२ हर्ष विषाद ज्ञान अज्ञाना। जीवधर्म अहमिति अभिमाना॥
२७३ निज भ्रम नहिं समझहिं अज्ञानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी॥
„ यथा गगन घनपटल निहारी। झम्पेउ भानु कहँ कुविचारी॥
२७७ विवशहु जासु नाम नर कहहीं। जन्म अनेक रचित अघ दहहीं॥
„ सादर सुमिरण जे नर करहीं। भववारिधि गोपद इव तरहीं॥
२८५ बोले विहँसि महेश तब, ज्ञानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छण होइ॥
२८७ जे कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहि डराहीं॥
„ सूख हाड़ ले भाग शठ, श्वान निरखि गजराज।
छीन लेइ जनि जानि जड़, तिमि सुरपतिहि न लाज॥ १२५॥

१ तप बल रचै प्रपंच विधाता । तप बल विष्णु सकल जगत्राता
तपबल शंभु करहिं संहारा । तपबल शेष धरहिं महिभारा
२ तपअधार सब सृष्टि भवानी । करहु जाइ तप अस जिय जानी
७ मात पिता गुरु प्रभु की बानी । बिनहिं विचार करिय शुभ जानी ।
तुम सब भाँति परम हितकारी । आज्ञा शिर पर नाथ तुम्हारी ।.
६ मन हठ परा न सुनइ सिखावा । चहत बारि पर भीत उठावा ॥
नारद कहा सत्य सोइ जाना । बिन पंखन हम चहहिं उड़ाना ॥
सुनत वचन विहँसे ऋषय , गिरिसंभव तब देह ।
नारद कर उपदेश सुनि , कहहु बसेउ को गेह ॥ ७८ ॥
२ नारद सिख जु सुनहिं नर नारी । अवशि भवन तजि होहिं भिखारी ॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा । आप सरिस सबही चह कीन्हा ॥
सहज एकाकिन्ह के भवन , कबहुँ कि नारि खटाहिं ॥ ७६ ॥
३ सत्य कहहु गिरिभव तनु एहा । हठ न छूट छूटै बरु देहा ॥
कनको पुनि पषाण ते होई । जारेहु सहज न परिहर सोई ॥
नारद वचन न मैं परिहरऊँ । बसौ भवन उजरौ नहिं डरऊँ ॥
गुरु के वचन प्रतीति न जेही । सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही ॥
जेहि कर मन रम जाहि सन , तेहि तेही सन काम ॥ ८० ॥
४ जन्म कोटि लग रगर हमारी । बरौं शंभु नतु रहौं कुमारी ॥
७ तदपि करब मैं काज तुम्हारा । श्रुति कह परम धर्म उपकारा ॥
८ परहित लागि तजै जो देही । सन्तत सन्त प्रशंसहिं तेही ॥
८ सासति करि पुनि करहिं पसाऊ । नाथ प्रभुन कर सहज सुभाऊ ॥
६ तात अनल कर सहज सुभाऊ । हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ ॥
४ जस दूलह तस बनी बराता । कौतुक विविध होहिं मग जाता ॥
६ कहिय कहा कहि जाय न पाता । यम कर धार [illegible]
८ जेहि बिधि तुम्हहि रूप अस दीन्हा । तेहि जड़बर [illegible]
जो फल चहिय सुरतरुहि सो [illegible]
६ पापर पावक ज्ञान न भोरा [illegible]
अस बिचारि सोचहु जनि [illegible]
० तुम सन मिटहिं कि बिधि के अं[illegible]
दुख सुख जो लिखा लिखा [illegible]
६ करहु सदा संकरपद [illegible]
० [illegible] हृदयँ नाहि अस पा [illegible]

नत नूतन सब बाढ़त जाई । जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई ॥
कामरूप जानहिं सब माया । सपनेहुँ जिन के धर्म न दाया ॥
बाढ़े खल बहु चोर जुआरा । जे लम्पट परधन परदारा ॥
मानहिं मात पिता नहिं देवा । साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिनके ये आचरण भवानी । ते जानहु निशिचर सम प्रानी ॥
ार सरि सिन्धु भार नहिं मोही । जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ॥
ाके हृदय भक्ति जस प्रीती । प्रभु तहँ प्रकट सदा तेहि रीती ॥
रि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम ते प्रकट होहिं मैं जाना ॥
श काल दिशि विदिशिहु माहीं । कहहु सो कहां जहां प्रभु नाहीं ॥

‡ उत्तरार्द्ध ‡

धाये धाम काम सब त्यागी । मनहुँ रंक निधि लूटन लागी ॥
श्याम गौर किमि कहौं बखानी । गिरा अनयन नयन बिन बानी ॥
बरणत छवि जहँ तहँ सब लोगू । अवशि देखियहि देखन योगू ॥
रघुवंशिन कर सहज सुभाऊ । मन कुपंथ पग धरैं न काऊ ॥
मोहि अतिशय प्रतीति मन केरी । जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी ॥
जिन के लहहिं न रिपुरण पीठी । नहिं लावहिं परतिय मन डीठी ॥
मंगन लहहिं न जिन के नाहीं । ते नर वर थोरे जग माहीं ॥
सुनु सिय सत्य असीस हमारी । पूजिहि मनकामना तुम्हारी ॥
राम कहा सब कौशिक पाहीं । सरल सुभाव छुआ छल नाहीं ॥
सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे । राम लषन सुनि भये सुखारे ॥
जिन के रही भावना जैसी । प्रभुमूरति तिन देखी तैसी ॥
वृथा मरहु जनि गाल बजाई । मनमोदक नहिं भूख बुझाई ॥
सुधासमुद्र समीप बिहाई । मृगजल निरखि मरहु कत धाई ॥
डगै न शंभु शरासन कैसे । कामीवचन सती मन जैसे ॥
तव प्रताप महिमा भगवाना । का बापुरो पिनाक पुराना ॥
सखि सब कौतुक देखनहारे । जेउ कहावत हितू हमारे ॥
कोउ न बुझाइ कहइ नृप पाहीं । ये बालक अस हठ भल नाहीं ॥
सो धनु राजकुँअर कर देहीं । बाल मराल कि मन्दर लेहीं ॥
बोली चतुर सखी मृदुबानी । तेजवन्त लघु गनिय न रानी ॥
काम कुसुम धनुसायक लीन्हे । सकल भुवन अपने बश कीन्हे ॥

सीय कि चाँपि सकै कोउ तासू। पड़ रसवार रमापति जा॰
राम कीन्ह चाहैं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं को॰
अतिप्रचंड रघुपति की माया। जेहि न मोह अस को जग जाया
जप तप कछु न होइ इहि काला। हे विधि मिलै कवन विधि बाला
कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। वैद न देइ सुनहु मुनि योगी।
मुनि अति विकल मोह मति नाठी। मणि गिर गई छूटि जनु गाँठी।
परम स्वतंत्र न शिर पर कोई। भावै मनहि करहु तुम सोई॥
भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥
जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव नर भक्ति हमारी॥

तुलसी जसि भवितव्यता, तैसी मिलइ सहाय।
आपन आवे ताहि पहँ ताहि तहां लेइ जाय॥ १५९॥

वैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा॥
सपथि-राज सुख दुखित अराती। अवाँ अनल इव सुलगइ छाती॥
रहहिं अपनपौ सदा दुराये। सब विधि कुशल कुवेष बनाये॥
तेहि ते कहहिं संत श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे॥

अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ, मैं न जनायउँ काहु।
लोकमान्यता अनलसम, करि तप कानन दाहु॥
तुलसी देख सुवेस, भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुन्दर केकिहि पेख, वचन सुधा सम अशन अहि॥ १६१॥

मधु जानत सब विनहि जनाये। कहहु कवन सिधि लोक रिझाये॥
छठे श्रवण यह परत कहानी। नाश तुम्हार सत्य मम बानी॥
बड़े सनेह लघुन पर करहीं। गिरि निज शिरन्ह सदा तृण धरहीं॥
जलधि अगाध मौलि वह फेनू। संतत धरणि धरत शिर रेनू॥
योगयुक्तितपमंत्रप्रभाऊ। फलै तबहि जब करिय दुराऊ॥

रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिय न ताहु।
अजहुँ देत दुख रवि शशिहि, शिर अवशेषित राहु॥ १७०॥

परिहरि सोच रहहु तुम सोई। बिन औषधिहि व्याधि विधि ॰॰
भूपति भावी मिटइ नहिं, यदपि

छत्रिय तनु धरि समर सकाना । कुल कलंक तेहि पामर जाना ॥
विप्रबंश को अस प्रभुताई । अभय होइ जो तुमहिं डराई ॥
तिन कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हे । देखिय रवि कि दीप कर लीन्हे ॥
देव देखि तव बालक दोऊ । अब न आँखि तर आवत कोऊ ॥
मुनि बोले गुरु अति सुख पाई । पुन्यपुरुष कहँ महि सुख छाई ॥
जिमि सरिता सागर महँ जाहीं । यद्यपि ताहि कामना नाहीं ॥
तिमि सुख सम्पति बिनहि बुलाये । धर्मशील पहँ जाहिं सुभाये ॥
महा भीर भूपति के द्वारे । रज होइ जाइ पषान पवारे ॥
नित नूतन सुख लखि अनुकूले । सकल बरातिन मन्दिर भूले ॥
चले जहाँ दशरथ जनवासे । मनहुँ सरोवर तकेउ पियासे ॥
विविध भाँति होइहि पहुनाई । प्रिय न काहि अस सासुर माई ॥
उपरोहितहि कहेउ नरनाहा । अब विलम्ब कर कारण काहा ॥

सुर साधु चाहत भाव सिंधु कि तोष जल अंजलि दिये ॥
सम्बन्ध राजन रावरे हम बड़े अब सब विधि भये ॥

होइहु सन्तत पियहि पियारी । चिर अहिवात असीस हमारी ॥
बहुरि बहुरि भेटहिं महतारी । कहहिं विरंचि रची कत नारी ॥
पुनि पुनि मिलति सखिन्ह बिलगाई । बालवच्छ जिमि धेनु लवाई ॥
भये विकल खगमृग इहि भाँती । मनुज दशा कैसे कहि जाती ॥
लीन्ह राय उर लाय जानकी । मिटी महा मर्याद ज्ञान की ॥
समझावत सब सचिव सयाने । कीन्ह विचार अनवसर जाने ॥
मैं कछु कहउँ एक बल मोरे । तुम रीझहु सनेह सुठि थोरे ॥
बधू लरिकिनी परघर आईं । राखेहु नयन पलक की नाईं ॥
मुनिप्रसाद बलि तात तुम्हारी । ईश अनेक करवरें टारीं ॥
आज सुफल जग जन्म हमारा । देखि तात विधुवदन तुम्हारा ॥
करब सदा लरिकन्ह पर छोहू । दरशन देत रहब मुनि मोहू ॥
आये ब्याहि राम घर जबते । बसे अनन्द अवध सब तब ते ॥

सिय रघुवीर विवाह, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं ।
तिन कहँ सदा उछाह, मंगलायतन रामयश ॥ ३६१ ॥

॥ पुरौनी सम्पूर्ण ॥

* शुभम भूयात *